



हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा  
और  
उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

[ आगम विश्वविद्यालय की डी० लिट० उपाधि  
के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध ]

डॉ गोविन्द त्रिगुणायत

एम ए., पी-एच. डी., डी लिट

प्रकाशक  
साहित्य निकेतन  
कानपुर

प्रथम संस्करण १९६१ ]

[ मूल्य २५ ]

प्रिधरामे !  
 स्वप्ननाटकेसु कपूर, साहित्य विवेचन, अखिलेश्वर शर्मा, बनारस ।



## लेखक की अन्य रचनाएँ

आलोचनात्मक—

कबीर की विचारधारा

लेखक को पी-एच डी० की पौचित, हरजीमल कालिका साहित्य पुरस्कार समिति, दिल्ली से २१००) की बनारस से पुरस्कृत ।

कबीर और जायसी का रहस्यवाद

संशोधित और परिष्कृत संस्करण, उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रभूत बनारस से पुरस्कृत ।

शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—(दो भागों में)

साहित्य शास्त्र के सरल सिद्धान्त

धार्मिक—

हिन्दी ब्राह्मण्य

बनारस के महान् माध्यमस्थीय ग्रंथ ब्राह्मण्य का प्रथम प्रकाशित हिन्दी व्याख्यात्मक ग्रन्थकार । उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत ।

काल्पनिक—

हिन्दी की छोट्ट कहानियाँ

१०० छोट्टों में कहानी कला पर पाठ्यक्रम पूरा भूमिका कलित ।



मुद्रक :

मेमरंर देहण, म्यू ईण मेठ, ८ मराण मूनुक रोड, इलाहाबाद ।

उन्हीं सतों के श्रीचरणों में  
जिनकी प्रेरणा और कृपा से यह ग्रन्थ लिखा गया है।



“भातमा राम है, राम है भातमा ।  
जोति है जुगति सौं करो मेसा ॥  
तेज है सेज है, सेज है तेज है ।  
एक रस दाह सेस सेसा ॥”

रावूदयाल की बानी ।  
भा० २, पृ० १९२ ।

“निर्गुण राम रहै स्यौ साई ।  
सहज सहज मिलै हरि जाई ॥”

रावूदयाल की बानी ।  
भा० २, पृ० १९१ ।

## प्राक्कथन

भारतीय साहित्य-क्षेत्र में हिंदी की निरुपेक्ष काव्यधारा का एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थापक है। शैक्षिक राग से विरहित होते हुए भी वह सहज काव्य का सहजतम उदाहरण है। उसमें आत्मा का वह दिग्गज रस प्रवहमान है जिसका एक ही कथ्य पाकर त्रिबिंब-लाप-संतप्त स्वरूप भावव्यभिचार हो उठता है। मध्य-युगीय भारत के लिए वह बारा महान् बरदान थी। भारतीय संस्कृति का जीवित रक्षक का श्रेय उसी को है। आज भी हम उसके प्रकाश में सम्मार्ग खोज सकते हैं। इतनी महिमामयी होते हुए भी वह काव्यधारा १४ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक संकेत उपेक्षित रही। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ ईसाई विद्वानों ने संतों के नाम पर प्रवर्तित प्रसिद्ध पंथों की आलोचना करने की दृष्टि से उनका अध्ययन और विवेचन प्रारम्भ किया। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में ईसाई सुसूत्रप्रसाद लिखित "कबीरज्ञान", वैष्णव आह्वय लिखित "कबीर ऐव चि कबीर पंथ" श्री, साहज लिखित "कबीर ऐव चि द्विज आशोभस" भिषंग साहज लिखित "इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिबीजन ऐव चि ऐव चि" श्रेणियों के नाम विशेष रूप से लिखे जा सकते हैं। ईसाइयों की आलोचना से प्रेरित होकर कुछ पंथी आइयों ने और कुछ भारतीय विद्वानों ने संतों की रचनाओं और उनकी पवित्र विचारधाराओं को प्रकाश में आने का प्रयास करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार का प्रयास करनेवाले विद्वानों में डा० श्यामसुन्दरदास कविसदा, हरिऔध, डा० रामकुमार वर्मा, महाकवि रवीन्द्र, और आचार्य चित्तमोहन सेन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने क्रमशः "कबीर प्रयागजी," "कबीर प्रयागजी," "संत कबीर," "इंड्रेड पोइन्ट ऑफ कबीर" और "हाटू" शीर्षक सुंदर संग्रह प्रकाशित किये। ताराचन्द्र गराबा द्वारा संयुक्त "शाम्य हाटू" नामक संग्रह भी महत्त्वपूर्ण है। संतों की बातियों को प्रकाश में आने का सबसे बड़ा श्रेय वैलपैडियर प्रेस को है। इसके मैनेजर ने अनुमं पाव, प्रयास शीर अन्त के साथ संतों की बातियों का प्रकाशन किया है। संतों की बातियों के प्रकाशन से उनके आलोचनात्मक अध्ययन को बल मिला। संतों के व्यक्तित्वक अध्ययन से प्रभावित हुए अरब कोरि को आलोचनाएँ प्रकाश में आईं। इनमें

डा० रामकुमार वर्मा लिखित "कबीर का रहस्यवाद" आचार्य इन्दरीमसाह्र द्विवेदी प्रणीत "कबीर" तथा डा० मोहनसिंह रचित "कबीर पृथक् विज्ञ बाह्यप्राची" नामक रचनाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में भी संतों की चर्चा विशेष रूप से की जाने लगी है। आचार्य रामकृष्ण टण्डन और डा० रामकुमार वर्मा आदि के इतिहास ग्रंथों में किर्तुय काव्यभारा का विरलेपक विशेष प्रतिपाद के साथ किया गया है। भारतीय नर्म और साधना से संबंधित ग्रंथों में भी संतों की अच्छी चर्चा मिलती है। इस दृष्टि से डा मरदारकर लिखित 'दीप्यन्तिम संकिम्' मैत्रिकण साहब लिखित "इदियन धीइरुम" निरुपम साहब लिखित "रिखीजय संकिम् आक हिन्दु" ककुभर साहब लिखित काडरसाइस आक रिखीजय खिदेवर आक इंडिया', इकिठ साहब लिखित "कुविम पुरइ विनुइरुम" नामक ग्रंथ विशेष निर्दिष्ट है। डा० वाराकृष्ण ने अपने इन्पुपेस आक इस्वाम' में भी संतों की चर्चा की है। मैत्रिकण इस ग्रंथों में इस कोटि के अध्ययन से संबंधित कुछ भीतिग्रही की लिखी गई है। इनमें डा० गोविंद शिगुन्वावत लिखित 'कबीर की विचारधारा', डा० बर्मैत्र अकधारी रचित "धंत दरियासागर" तथा डा मिलोपी वारापय दीक्षित प्रणीत 'मरुकदास के नाम' विशेष उल्लेखनीय हैं।

संतों के समष्टिपक्षक अध्ययन का क्षेत्र भी बढ़ता नहीं रहा। इस दिशा में सबसे उत्तम प्रयास आचार्य जितिमोहन सेनजी का हुआ। उनके 'मिदिकण मिस्वीग्राम' नामक ग्रंथ में महाकाव्यीय संतों का अच्छा विवेचन किया गया है। सेन जी के परचार्य स्वामीन डा० बरुपशाह का प्रयास धराहनीय है। डा० बरुपशाह ने किंगु बिर्वा कर्मियों का सांग और अन्वस्तिठ अध्ययन प्रस्तुत किया है। किंगु ने संतों की विचारधारा के मास को बढ़ी पत्रक धके। यही कारण है कि उन्होंने संतों की स्वतन्त्र धारणा को विविध बाधों के कटवरे में बंद करने की चेन्दा की है। ऐसा करने उन्होंने संतों के साथ वास्तव में बड़ा अन्याय किया है। इससे उनका अध्ययन अनुसंधानपूर्ण और परिश्रमपूर्ण होते हुए भी क्षुब्ध हो गया है।

संतों का सबसे अधिक अनुसंधानपूर्ण और अन्वस्तिठ अध्ययन प्रस्तुत करने का श्रेय परिवर्तनर भी पराशुराम अनुबेदी को है। उनकी 'उत्तरी भारत की संन्य

परम्परा" अपने अंग की बेजोड़ रचना है। उसमें उन्होंने भारत के सभी प्रसिद्ध और अज्ञात संतों का जोसपूर्व विवरण प्रस्तुत किया है। इतना होते हुए भी उधमें छत्तों की विचारधारा का समष्टिमूल्यांकन अप्ययन बहुत कम हुआ है। और जो कुछ हुआ है वह अशुभपूर्व और अचूरा-आ मतीत होता है। इस बात की अनुमृति प्रायः सभी विद्वान् कर रहे थे। आज से आठ वर्ष पूर्व जब मुझे "कबीर की विचारधारा" पर पी-एच० डी० उपाधि के साथ साहित्य अकादमी का इन्वैसि सौ ६० की धन राशि का प्रसिद्धतम 'हरवी मक वाचस्पत्या साहित्य पुरस्कार' प्राप्त हुआ तो मेरे गुणजनों ने मुझे निगु ब काव्यधारा के अप्ययन का गुठर कार्य करने का आदेश दिया। उनको सद्मेरसा से मुझे बिलोप बध मिला। जिसके फलस्वरूप मैंने अपनी डी० डि० की उपाधि के लिए 'हिन्दी की निगु ब काव्यधारा और उसकी दार्शनिक दृष्टमूमि' शीर्षक विषय चुनने का साहस किया। आज बीस वर्ष के घोर परिश्रम के फलस्वरूप सद्भिययक अप्ययन का यह साकार स्वरूप प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ हूँ। अनुसंधान काल में कुछ तो अप्ययन-कर्मित कठिनाइयों के कारण कुछ दो विषयों के एम० ए० और अनुसंधान विभागों के प्रधान प्राध्यापक से आत्यधिक अत्यस्त रहने के कारण तथा कुछ अत्यस्पता के कारण मैं कभी कभी इतना निरुत्साहित होता रहा हूँ कि यदि आचार्य इन्दरीप्रसाद द्विवेदी, डा० राम कुमार वर्मा, पं० परशुराम चतुर्वेदी जैसे विषय के मर्मज्ञ पण्डित अमूल्य परामर्श लेकर प्रेरणाहित न करते, तो हो सकता था कि कार्य अब भी पूर्ण न हुआ होता। उपरु क तीनों ही विद्वानों ने अपना अमूल्य समय देकर मरी रचनाओं को पूर्ण बनाये में पूरा पूरा योग दिया है। मैं उनके अत्य से कभी उबल नहीं हो सक्या। इसी प्रसंग में मैं एम गुजर पं० अयोध्यानाथ शर्मा को भी भक्ति पुरस्कार प्रदान करता हूँ। वास्तव में यह रचना उन्हीं के आशीर्वादों के फलस्वरूप पूरा हो सकी है। प्रथम छापन में मैंने बेह-बिरेह के अनेक विद्वानों क प्रयोग का निर्येच्छाच मात्र स उपयोग किया है। उनके प्रति मैं हार्दिक अमार का अनुभव करता हूँ। सबसे अधिक अक्षी मैं अपनी कर्मपत्री डा० अरुणा त्रिगुणाधर एम० ए० पी-एच० डी० का हूँ। उन्होंने इस प्रयोग के क्षेत्रन में प्रतिपक्ष प्रेरणा प्रदान की है। उनको इस प्रेरणा के बिना यह प्रयोग कदापि पूर्ण नहीं हो सकता था। मेरे मित्र शिष्य डा० रघुवीरचन्द्र रामा पी० एच० डी० ने प्रथम की नामावली और पारिभाषिक शब्दावली तैयार करके मेरे काम को हलका कर दिया है। मैं उन्हें अपने अन्तस्मय से आशीर्वाद देता हूँ।

बहु प्रथम आगत विरहविद्यालय की थी० बिद्० उपाधि के लिए योव प्रथम के रूप में शिक्षा तथा आ० दिव्यी के प्रकाशक परिषद आ० इन्दौरमिमात्र विवेकी, सर्वप्रथम मिन्हाव आ० आमुदेव्यराव कम्पराव और म्हापविद्यत राहुव घोड्यावतन इन्हे परीपक थे। इन तीनों ही विद्वाओं ने प्रथम की मुद्रकाल से प्रकाश की थी, जिसे काल स्वरूप बह विरहविद्यालय द्वारा उपर्युक्त उपाधि के बिद् स्वीकृत ही सका। मैं इन तीनों ही विद्वाओं का हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मैंने कदापि प्रपत्नी इस रचना को कदापि पूर्ण और विरहोप कनावे की चेष्टा की है, अगि-परीक्षा में बह विरहोप निकली भी है, फिर भी इतने बड़े प्रथम में कुछ कोष अक्षरिण रह गये हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। मैं उनके बिद् विरहपूर्वक समाप्तकी हूँ। आशा है विद्वावर कामती को 'जोबदि बरी कलक न परा, कांच होरे कर्षि कंचन करा' काही पंक्ति स्मरण कर उपारतापूर्वक बसा करेंगे। को भी हो, इस रचना को म्मुत काले समय तुझसी के शब्दों में मुझे इतना उत्तोर तो है ही—

“अपिथ मोरि सब गुणपदिव, विरह विरिध गुण एक।  
सो विचार मुनिर्हि सुजन, जिनके विमल विवेक॥”

शरद पूर्णिमा, सम्वत् २०१३  
के० जी० के कालेज  
मुपदापार।

गोविन्द विगुणायक

# विषय-सूची

## प्रथम अध्याय

### विषय-मवेश

भारत के सांस्कृतिक विकास में निर्गुण काव्यचार का योग और महत्त्व  
अभिधान की सार्थकता

स्वल्प रूप-रेखा

समुच्चय से पार्यक्य

ऐतिहासिक स्थिति

निर्गुण काव्यचार के प्रस्तावनाकालीन कवि—

जयदेव, जामदेव, किशोचन, लदन, बेनी, रामानन्द, पला,  
पीला, छेन ।

निर्गुण काव्यचार के प्रमुख कवि—

कबीर, धर्मदास, नानक, रैदास, राहु, रघुबन्धी, मुन्दरदास,  
गरीबदास (रावृष्यपी), गरीबदास, (निरंजनपपी), गरीबदास  
(अदतीरपी), पारी साहब, हुम्नावाहब, जगजीवन साहब, गुलाल  
साहब, मौला साहब, पसदू साहब, दरिया साहब (बिहारी वासे),  
महूदास, परनदास, लहरोदाई, दयादाई, गुलामी साहब ।

विशेष्य सामग्री—

हिन्दी की निर्गुण काव्यचार के उदय और विकास की  
मेरक परिस्थितियाँ, राजनीतिक प्रेरणाएँ, धार्मिक प्रेरणाएँ,  
सामाजिक प्रेरणाएँ, परिस्थितिक्रम्य व्यक्तिगत मेरक घटनाएँ ।

## द्वितीय अध्याय

### सम्प्रदाय

धार्मिक पृष्ठभूमि के रूप में विश्वारणीय प्राचीन दर्शन-मददतियाँ  
सम्प्रदाय, मत और विचारधाराएँ—

उन्तों को प्रभावित करनेवाली प्राचीन धर्म और दर्शन  
मददतियाँ ।

श्रीत दर्शन—

महात्म्य, संविदाओं का दार्शनिक दृष्टिकोण, आध्यात्मिक  
किन्तुन और रहस्यवाद, उपनिषदों का दार्शनिक दृष्टिकोण, लक्ष्म,  
अभिन्नरी, मुक्त, अद्वैतवाद, ब्रह्म जीव, सृष्टि, तात्त्वार्थ ।  
निर्गुण आत्म्यवाद पर श्रीत दर्शन के प्रभाव— ।  
वैष्णव मत और निगुण आत्म्यवाद, स्वस्म और सिद्धांतों  
के प्रभाव ।

निर्गुण आत्म्यवाद और योगप्रतिष्ठ—

योगप्रतिष्ठ दर्शन के प्रमुख सिद्धांत ।

निर्गुण आत्म्यवाद पर योगप्रतिष्ठ दर्शन की छाया ।  
बद्धदर्शन और सन्त कवियों द्वारा उनकी स्तुति ।

श्रीमद्भगवद्गीता और सन्त कवि—

निष्काम कर्मयोग, समत्वयोग, इन्द्रिय बन्ध और प्रपत्ति,  
अद्वैतवाद, आध्यात्मिकता ।

निर्गुण आत्म्यवाद में शम्भ्राद्वैतवाद के सिद्धांतों की अवधारणा—  
गौडपाद का असाववाद और निर्गुण आत्म्यवाद ।

शंकराचार्य का मायावाद और सन्त कवि—

शैव दर्शन और सन्त कवि ।

बौद्ध-धर्म और निर्गुण आत्म्यवाद ।

## तीसरा अध्याय

६१—

आध्यात्मिक पृष्ठभूमि (उत्तरार्ध)

शैव दर्शन पर्यवेक्षा ।

पाशुपत दर्शन—

सिद्धांत विवेचन, प्रभाव निर्देश ।

शैव सिद्धांत मत—

सिद्धांत विवेचन प्रभाव निर्देश ।

वीर शैव मत—

सिद्धांत विवेचन, प्रभाव निर्देश ।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन—

छिद्रांत पक्ष, प्रमाद पक्ष ।

कुछ अन्य छोटी छोटी दर्शन पद्धतियाँ—

रक्षेवर दर्शन, शैव शाक्त तंत्र और तन्त्रों की विचारधारा ।

प्रमुख मनुषियों और मिथ्यांतों का निर्दोश—

भ्रातृत्व, महत्त्व, दैवी उत्पत्ति, प्राचीनता, साहित्य काम्यवाद, साधनापरकता, बाह्यचार विरोध, ईश्वर स्मरना, मुक्ति-मुक्तिपरकता, ज्ञान का महत्त्व, गुह्य, रहस्यवाद, तर्कविरोध, मंत्र चैतन्य, शक्तिपक्ष पक्ष, शक्तियों की बुद्धिमूलक विचारधारा, शक्ति तत्त्व, शिव और शक्ति की अद्वैतता, माया शक्ति महाभासा, साधारण माया, प्रतिष्ठा कला, निरुक्ति कला, साधारण माया, मायातत्त्व, माद, किन्तु तत्त्व, शक्तियों के अलग संबंधी विचार, आत्मवाद, अंतःकारणा, आत्मावीवादि ।

साधना पद्धति—

बाह्यात्मक साधना का रूप, शक्ति तत्त्व, उपासना, कुप्यवहनी साधना, कुप्यवहनी मार्ग, मुद्रासाधना, म्यास और शक्तिपक्ष, निगूय काम्यवाद पर शैवशाक्त तन्त्रों का प्रभाव ।

बौद्धतंत्र साधना और हिन्दु के निर्गुणियाँ कवि—

बौद्ध शक्तियों की विविध शाखाएँ—

मंत्रयान और उसके प्रमुख तत्त्व—

बहुयान, सद्बुद्धयान, कालवक्रयान, बौद्ध शक्तियों का शैविक दृष्टिकोण ।

निर्गुणियाँ कवियों पर बौद्ध शक्तियों का प्रभाव—

शैव शक्ति ।

नाय पन्थ—

नायपंथी साहित्य, नाय सम्प्रदाय का ऐतिहासिक विकास मत्स्येन्द्रनाथ का योगीनी कील ज्ञान, मत्स्येन्द्रनाथी मठ में किन्तु का स्वर ।



निर्गुण काव्यधारा पर मत्सेन्द्रनाथी धारा के प्रभाव—

गोरक्षनाथी धारा, परिचय, चार्चनिक विचार, साधना  
पद्धति निर्गुण काव्यधारा पर गोरक्षनाथी नायक के प्रभाव ।  
सन्तों पर इस्लाम धर्म की ध्याय—

प्रभाव की सीमाएँ, अवनिष्ठा, शून्य, इमान काव्यवाद,  
निवृत्तिवाद सन्तों की प्रतिष्ठा, कर्मवाद लंङनात्मक महति ।  
सूक्ष्मत्व और सन्त कवि—

इस्लाम और सूक्ष्मत्व में अन्तर अन्वयतम किन्तु, तरीका  
या साधना पथ, सन्त मत पर सुकियों के प्रभाव ।

### चौथा अध्याय

#### साम्प्रदायिक पुष्टभूमि

निर्गुणियाँ सन्तों के पूर्व की साधु परम्पराएँ-माषीन साधु परम्पराएँ  
ब्राह्मण साधुओं की परम्पराएँ—

मुनि— ऋषि और राजर्षि ।

तपस्वी— भवन, वैखानस आसना सिद्ध ।

दशोत्पत्तिन अरमकुट्ट पुगारारी, भूमराती, पंचार्थि  
बाबरू, शैवालयोगी, अंतकेशवरा आदि ।

हृषीम साधु—  
ब्राह्मण, बौद्ध और जैन ।

पाणिनिआसीन कुछ अन्य ब्राह्मण साधु परम्पराएँ—

उच्चरुषि साधु कार्य वासिन नैऋतिक साधु, कौकतिक  
साधु ।

ब्राह्मण्येतर आस्तिक साधु परम्पराएँ—

आस्तिक प्रतिक्रियाकारी, ब्राह्म, जागतिक, पाशुपत्य,  
सकुलीय, नाथपन्थी, अषोरी, रक्षिण के तामिळ शैव सन्त,  
ब्राह्मण्येतर आस्तिक साधु परम्पराएँ, अक्रियाकारी उन्धेरकारी  
अहलनाकारी, अनिर्विचयवाकारी, सुरुर्वाय संवरवादी, आजीवक -  
कर्मचार, बौद्ध साधु सम्प्रदाय, जैन संतों की परम्पराएँ ।

उपर्युक्त साधु परम्पराओं की निर्गुण अभ्युपाय पर क्रियार्थ और प्रतिक्रियार्थ—

मध्ययुगीय साधु और सन्त परम्पराएँ—

रुड़िबादी धारा—

वेगाइम्बरी साधु, महन्त जोग ।

सुधारवादी धारा—

संन-संन की प्रवृत्ति लेकर चलनेवाले शैवशाक्त तथा सिद्ध धार्मिक साधु संन-संन की प्रवृत्ति लेकर चलनेवाले नायपन्थी साधु संन-संन की प्रवृत्ति लेकर चलनेवाले ब्रह्मपा साधु ।

प्रतिक्रियावादी दार्शनिक आचार्य सन्त सुधारक वर्ग—

शङ्कराचार्य—शैव, रामानुजाचार्य, वैष्णव, मध्वाचार्य—वैष्णव, निम्बकाचार्य—वैष्णव, रामानन्द—वैष्णव, विष्णु स्वामी—वैष्णव ।

भारतीय—

इक्ष्वाकू के आश्रम मठ छठ, इक्ष्वाकू के धर्मज्ञत्ववादी शैव मठ छठ, महापन्थीय रक्ष्वाकू मठ छठ, (बाईरी सम्प्रदाय) निर्जन मत और निर्जनी साधु, ब्रह्म के सङ्कल्प वैष्णव सम्प्रदाय और उसके छठ, चैतन्यस्वामी आश्रम के गोसाईं और महापुरविया सम्प्रदाय, मानमाव वैष्णव सम्प्रदाय, इक्ष्वाकू का अक्षय्य सम्प्रदाय, कार्मरी छठ परम्पराएँ, आश्रम, आश्रमों का अथवा अक्षय्य धारी धार्मिक और पंचपरिया सम्प्रदाय ।

अभारतीय—

सूत्रे छठ सम्प्रदाय, इक्ष्वाकू छठ सम्प्रदाय ।

मिश्रित—

छठ छठ, धर्म मत के साधु ।

मध्यकालीन सन्त परम्पराओं की निर्गुण अभ्युपाय के प्रति प्रेरणाएँ ३०२—३०४

## पाँचवाँ अध्याय

### अध्यात्म निरूपण

सन्तों के धार्मिक विचारों का मूल स्रोत विचारणा और अनुभूति— अनुभूति का स्वरूप ।

सन्तों द्वारा प्रयुक्त ब्रह्म के अभिधान—

ब्रह्म का स्वरूप निरूपण—

ज्ञानमार्गियों के ढंग पर ब्रह्म निरूपण—

अनिर्बन्धीयतावाचक शैलियों, अमनात्मक शैली, विरोधात्मक शैली, असमर्थाद्योक्त शैली, सृष्टि के पूर्व का वर्णन करके ब्रह्म निकारा की शैली, विमामनप्रमक शैली, निषेधात्मक शैली, अनन्वेषमावाचक शैली, मैत्रिचारी शैली, व्यापार्य वर्णनत्मक शैली, मोक्षात्मक शैली, अनिर्बन्धीय को बचनीय बनाने की शैलियाँ, ब्रह्म का तत्त्वस्म में वर्णन, ब्रह्म का अद्भुत रूप में वर्णन, ब्रह्म का तृतीय रूप में वर्णन, ब्रह्म का इन्द्रादीय रूप में वर्णन, ब्रह्म का विचार रूप में वर्णन ।

नेर्गुण में गुणों की प्रतिष्ठा—

एकता, निष्पता, अद्वैतता और सर्व-स्वापकता, धर्म्यदानंदरूपता, निगुणतावाची विशेषणों का आरोप, निगुण ब्रह्म पर पूर्णता का आरोप, कर्तृत्व शक्ति का आरोप ।

भक्तिमार्गियों के ढंग पर ब्रह्म निरूपण—

मायना विनिर्मित स्वरूप वर्णन, बुद्धि विनिर्मित स्वरूप वर्णन, प्रतीक रूप में वर्णन ।

योगमार्गियों के ढंग पर ब्रह्म निरूपण—

चोकर रूप में, शम्भु रूप में, द्वैताद्वैत विलास्य तत्त्व के रूप में, शून्य के रूप में, बहुदेववाद की निन्दा, सन्तों का आत्मविचार ।

बैदान्त ग्रन्थों में ब्रह्म निरूपण—

आत्मा को स्वर्ण प्रकाशकर्मण्य, आत्मा की शुद्ध बुद्धि और तत्त्व स्वरूपता, आत्मा की दैतन्य रूपता, आत्मा की एकरूपता, आत्मा की जीव प्रायः मन आदि से म्लिन्नाता, आत्मा और ब्रह्म की एकता, जीव और उतका स्वरूप, जीव और ब्रह्म का संबंध, जीव की एकता और अद्वैतता क्रमन्तरवाद, प्रायः और जीव, सृष्टि और जीव ।

सन्तों का माया संबंधी दृष्टिकोण—

मायावाद का वैदिकवैदिक विकास रूप, सन्तों का माया

सम्बन्धी दृष्टिकोण, माया का विस्तार, माया की मोहन शक्ति, माया की विषय प्रकानता, माया की शक्तियाँ, माया और मन, माया और ज्ञान का सम्बन्ध ।

सन्तों की जगत संबंधी धारणाएँ—

जगत तथा का स्वस्म, सृष्टि विकास क्रम

सन्तों की मोक्ष संबंधी धारणाएँ—

विविध दर्शनों के अनुकूल भक्ति स्वस्म, सन्तों की मुक्ति सम्बन्धी धारणा ।

सन्तों की बार्शनिक पद्धति—

बार्शनिक बातों और सम्प्रदायों की उपेक्षा, सहजाईत बाद के प्रति बमन ।

१७५—४४२

## छठा अध्याय

सन्तों की आध्यात्मिक साधनाएँ—

सन्तों का शब्द, सन्तों की साधनाएँ, कर्ममार्ग, कर्ममार्ग का सहजीकरण अनन्तपन्न, सन्तों का स्वस्म, सन्तों में ज्ञान का स्वस्म, सन्तों द्वारा अनन्तमार्ग का सहजीकरण ।

योग साधना और सन्त कवि—

योग का अर्थ, योग के प्रकार, योग मार्ग के प्राप्यमूल सिद्धांत, अष्टांग योग साधना ।

हठयोग साधना—

हठयोग के प्रकार—

परिभाषा, हठवायु, अन्नपात्राप, नाड़ी विचार, मुद्राओं का महत्त्व, पदकर्म, कुडलनी, उत्त्वापन मन्त्रिमा, प्लो का बचन ।

सन्तों की क्षययोग साधना—

क्षययोग, हिंदू तंत्रिकों के अनुसार न्यूनतम साधना, मन्त्रयोग, शैव तंत्रों की नाद बिंदु साधना, राजयोग साधना, राजा विराज योग, अष्टैतवारक क्षयवा क्षय योग, सन्तों का शब्द सुरति योग, सहजयोग ।

सन्तों की भक्ति साधना—

भक्ति का महत्त्व स्वस्म सन्तों की भक्ति में प्रेम और

विरह तत्त्व, आसक्तियाँ, मक्ति के अनिर्वाये साधन, मक्ति के पोरक साधन, मक्ति के बाधक-तत्त्व, मक्ति के प्रकार, सन्तों की मात्र मक्ति की प्रमुख विशेषताएँ, मक्ति मार्ग का सहजीकरण । ४९१-५००

## सातवाँ अध्याय

### रहस्य और सहज साधनाएँ

सन्तों की रहस्य साधना—

स्वस्म, परिभाषाएँ, विचार और प्रेम का मिश्रण विदु, अनुभूति मूलकता, आसक्तिता, रहस्यवादी और शारीरिक का भेद, रहस्य भिन्नता, रहस्यवादियों का भिन्नता, प्रेम तत्व गुरु, विरह तत्व, रामरस, रहस्यवाद की दो प्रक्रियाएँ, अन्तर्मुखी रहस्यवाद, रहस्यवाद की अवस्थाएँ, रामरस की अवस्था परिष्करण की अवस्था, अनुभूति की अवस्था, विष्णावस्था, मिशन की अवस्था, तादात्म्य की अवस्था, भौतिक रहस्यवाद, अभिप्रायिक-मूलक रहस्यवाद विशेषताएँ ।

सन्तों की सहज साधनाएँ—

धर्म क्षेत्रीय सहज साधना, युग की प्रेरणा, सन्तों की धार्मिक साधना के दो पक्ष, सन्तों के धार्मिक दृष्टिकोश की मौखिकता महायुग की दो धर्म जाटाएँ, धर्म स्वस्म और तत्व, बुद्धिवादिता, अभ्यात्मिकता ।

सन्तों की धर्मसाधना का धर्मसात्मक पक्ष—

अन्धविश्वासों का प्राधान्य और उनका लंडन, मिष्ठाधारों और आडम्बरों का प्राधान्य और उनका लंडन, मक्तिवाद का प्राधान्य और ठठका लंडन, सहजीकरण परिष्करण, सहाचारमूलक मानकीकरण सहाचार के सहारे धर्म का सहजीकरण, सहजापरस्य, सहजवैपश्य, सहजकर्म सहज त्याग, सहज विचारणा सहजज्ञान, सहज प्रेम ।

सन्तों की सहज साधना—

उसदी पाठ, नामजन और स्मरण उत्तंगति, सहजबोध ।

सन्तों की समाज क्षेत्रीय सहज साधनाएँ—

तत्कालीन स्थितियों समाजसुधार के स्वरूप और फैलनाएँ,

दूषित सामाजिकप्रथाओं और व्यवस्थाओं का खंडन, और सही  
नूत सामाजिक व्यवस्थाओं का मण्डन, समाज के भेद भाव को  
दूर करने का बुद्धिवादी प्रयास, सन्तों का साम्प्रदाय ।

५७७—६१७

## आठवाँ अध्याय

### सन्तों की धारियों की साहित्यिकता और अभिव्यक्ति

सन्तों की धारियों के प्रमुख गुण—

शार्वतता, सजीवता, रसात्मकता सर, उदात्मक चमत्कार  
शब्दमय, शब्दार्थी भयगत, अलंकार गत, अद्भुत बंधन प्रधान ।

शैली—

शुद्ध उपदेश प्रधान शैली, प्रमुखमिथ उपदेश प्रधान  
शैली, सुद्ध सम्मत् शैली, खंडन मण्डन प्रधान शैली, सन्तों की  
रहस्यवादी शैली, भाव प्रधान रहस्यरमक शैली, धारणा प्रधान  
रहस्यात्मक शैली ।

प्रतीक—

सांकेतिक प्रतीक पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक,  
रूपकारमक प्रतीक, विरोधमूलक प्रतीक ।

अभिव्यक्तिमूलक चमत्कार प्रधान रहस्यात्मक शैली—

उलटवर्ती शैली, अलंकार प्रधान उलटवर्तियाँ, प्रतीक  
प्रधान उलटवर्तियाँ, अद्भुत रस प्रधान उलटवर्तियाँ ।

संभामापा और संत लोग—

सन्तों की भाषा का स्वरूप ।

धर—

शाली, शब्द, रमणी, अन्य ।

६१८—६७६

## नवाँ अध्याय

### सपर्महार

संतमय की संक्षिप्त रूपरेखा—

तत्कालीन युग पर विरगम दृष्टि, सन्तों की स्वभावगत  
प्रेरणाएँ सन्त मय चारमादी मन है, वह विचारणामूलक अनुभव  
पर टिका हुआ है ।

संतमठकी दृष्टमूमि पर विहंगम दृष्टि—

निर्गुणकारी मठ है, संत मठ की आत्मधारिता और  
आसक्तिता ।

संतमठ का सद्वाचरण—

सद्ब्रह्म ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, और योग का मिश्रण किन्तु  
संतों की सद्ब्रह्म आर्हत भावना, सद्ब्रह्म मठ की भावनात्मक पूज्य  
विधि, संत मठ का मध्य मानामुसरण, सत्वाचरण ।

निष्कर्ष—

सहायक ग्रन्थों की सूची

परिशिष्ट

१८०—७२२

७२३—७२६



## सकेत-सूची

क० प्र०—	कबीर प्रयागली
सं० क०—	सठ कबीर
स० ख० स०—	संत बानी समूह
सं० मु० सा०—	सठमुपाठार
मु० नि०—	मुन्दर बिलास
कठ०—	कठोपनिषद्
मुपड०—	मुपडकोपनिषद्
ते०—	तैत्तिरीयोपनिषद्
वे०—	वेदान्त सूत्र
गो० ध०—	गोरक्ष बानी
छा०—	छांदोग्योपनिषद्
बृ०—	बृहदारण्यकोपनिषद्
श्वे०—	श्वेताश्वतथ उपनिषद्
यो० ब०—	योग बसिष्ठ
ई० आर० ई०—	इन्ध्याइकलोरीडिया आऊ रिक्तीबन एरड पपिकस
यस० बी० ई०—	येकेड बुक आऊ रि ईस्ट डेरीअ





## प्रथम अध्याय

### विषय-प्रवेश

भारत के सांस्कृतिक विकास में निर्गुण काव्य-धारा का योग और महत्त्व  
अभिधान की सार्वभौमता

रबूल कुरैशी

समुच्चय से पारम्यक

ऐतिहासिक स्मृति

निर्गुण काव्यधारा के प्रस्तावनाकालीन कवि—

अयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, सदन, बेनी, रामानन्द, घना, पीपा, सेन

निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवि—

कबीर, परमदास, नानक, रैदास, दादू, रजबनबी, सुन्दरदास, गरीबदास,  
(दादू पंथी), गरीबदास (निरंजन पंथी), गरीबदास (बाबरी पंथी), मारी  
साहब, बुस्तासाहब, बगबीबन साहब, गुमाल साहब, मीला साहब, फलदू साहब  
परियासाहब (बिहार बाधे), मलूखदास, बरन दास, सहजोर्बेबाई, दयाबाई,  
कुलसी साहब ।

विशेष्य सामग्री

हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा के उदय और विकास की प्रेरक परिस्थितियाँ—

राजनैतिक प्रेरणार्थ, धार्मिक प्रेरणार्थ, सामाजिक प्रेरणार्थ, परिस्थितिक  
व्यक्तिगत प्रेरक घटनाएँ ।

### भारत के सांस्कृतिक विकास में निर्गुण काव्य-धारा का योग और महत्त्व -

हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का वह दिव्य  
हार है जिसमें युग-युग के बिलसरे हुए जीवन सत्त्व रूपी मोक्षी संज्ञो-सँज्ञोकर विरोध  
गये हैं । उधे पाकर वह कृतार्थ हो गई थी । उसमें मर्दे पेटना आ गई थी । उल्लभ  
मान कजेवर दिव्य-सीदर्य से मोदभासित हो उठ्य था । उल्लभे छवि-धिरसे ध्यान की  
संस्कृति का भी जीवन का संदेश दे रही हैं । सार्थ और संरूप के कदम में उँठे हुए  
निरा के लिए यही एकमात्र त्रास है । अज्ञान के अंधकार में दृगमगाती हुई मानव  
जाति उली के प्रकाश में अपने सत्त्व को ताब सधती है ।

मायतीक संस्कृति सुरसरिता के स्रष्टा है। देश-विदेश की अनेक संस्कृतियों उससे मिलकर पूव और उत्तरूप हो गई हैं। इस तदुत्सीकृत्य प्रक्रिया में आदिभक्त से ही संतों ने पूव पूव, बोग दिया है। मन्वजर्तन निर्गुणियों संतों का अर्थ अपने पूर्वजों संतों के अर्थ से अतिनतर पा। किन्तु अपनी प्रतिभा और तापता के बल पर उन्होंने उठ अतिनतर अर्थ का बड़ी मुबास्ता से सम्भव किया। प्राचीन संतों द्वारा प्रवर्तित सम्भव तापता का पूर्ण करने का श्रेय उन्हीं को है। इस सम्भव तापता का इतिहास बड़ा रोचक है। वहाँ पर उत्तम परिचित दिग्दर्शन का देना अनुपपुक्त न होना।

माय आदि भक्त से ही विविध विदेशी जातियों का श्रीहास्य रखा है। कुछ जातियों भाराचार्य द्वारा थी। कुछ ने विषय की छाकटा से उद्भिन्न होकर प्रवेश किया था और कुछ धर्म-विज्ञान और ज्ञान-विद्या से प्रेरित होकर इस देश में प्रविष्ट हुई थी। भाराचार्य आनेवाली जातियों में कोनेशियन<sup>१</sup>, अरब<sup>२</sup>, ग्रीक<sup>३</sup>, पारसी<sup>४</sup>, एबेसीनियन<sup>५</sup>, पुर्तगीज<sup>६</sup>, डच<sup>७</sup>, फ्रांसीसी<sup>८</sup> अँगरेज<sup>९</sup> आदि प्रमान हैं। अरबमन्वजर्तन जातियों कुछ उत्तर-पश्चिम से आई थी और कुछ उत्तर-पूर्व से। उत्तर पश्चिम से आनेवाली जातियों में ग्रीक<sup>१०</sup>, सीबियन<sup>११</sup>, पाबियन<sup>१२</sup>, यक<sup>१३</sup>, डच<sup>१४</sup>,

<sup>१</sup> इस जाति के आगमन का बड़ा परिष्कृत काव दि ब्रूनिविससरी<sup>१</sup> नामक ग्रीक रचना में जो ७८ ई० में लिखी गई थी, जतता है। (इपडवा यू दि ब्रूज ५ २ से) देखिये—ईमिज हिन्दी काक इबिडवा, भाग १—पृष्ठ १५०

<sup>२</sup> देखिये—ईबुहीन लिखित तुदकततक मुजाहिदीन का रोसिड कृष अँगरेजी अनुवाद पृष्ठ १८१३

<sup>३</sup> ईमिज हिन्दी काक इबिडवा—भाग १, अध्याय—१६

<sup>४</sup> ईमिज हिन्दी काक इबिडवा—भाग १ पृष्ठ २८१ २८८

<sup>५</sup> इबिडवा यू ही पृष्ठ—क० सरकार—१६५० पृष्ठ ५

<sup>६</sup> ईमिज हिन्दी काक इबिडवा—भाग ५, अध्याय—१

<sup>७</sup> वही अध्याय—२

<sup>८</sup> वही अध्याय—३

<sup>९</sup> वही अध्याय—४, ५

<sup>१०</sup> ईमिज हिन्दी काक इबिडवा, भाग १ अध्याय—१५

<sup>११</sup> ईमिज हिन्दी काक इबिडवा भाग १, पृष्ठ ५०८ ५ ६

<sup>१२</sup> वही पृष्ठ ५१०-५१२

दुर्ग<sup>१</sup>, मदन<sup>२</sup> और मंगोल<sup>३</sup> आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तरपूर्व के मार्ग से आक्रमण करनेवाली जातियों में तिब्बती और अहोम, इन दो का नाम लिखा जाता है। पहली ने दसवीं शताब्दी के आसपास आक्रमण करके उत्तरी बंगाल में अन्ना राज स्वामित्व किया था। इस आक्रमण का वर्णन दसवीं शताब्दी के बानगढ़ के खंभ शिलालेख में मिलता है। अहोम जाति ने पटकोई पहाड़ों को पारकर ब्रह्मपुत्रा की घाटी को जीतने का प्रयास किया था।<sup>४</sup> इनके इतिहास बहुत ही जातियों के धर्म-विज्ञान और ज्ञानविषय साधक भी समय-समय पर भारत में आते रहे हैं। वे समस्त जातियाँ अपने-अपने साम अपनी संस्कृति भी लाई थीं, जो युग युग में उदय होनेवाले तर्कों के प्रवाह से भारतीय संस्कृति रूपी सुरसरिता में संगमित होकर तद्रूप होती रही हैं।

आर्यों के मूल अभिजन के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। खोइल, शैगल, पार्टव और सेअस नामक विद्वानों के मतानुसार आर्य लोग भारत में मध्य एशिया से आए थे।<sup>५</sup> लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने उन्हें उत्तरीयुव का मूल निवासी सिद्ध किया है।<sup>६</sup> कुछ दूसरे विद्वानों ने बिनके मुलिया प्रो. गार्हस्थ हैं, कैम्ब्र नदी की घाटी को आर्यों का मूल उद्भव-स्थान प्रमाणित किया है।<sup>७</sup> गार्हस्थ नामक विद्वान् का कहना है कि आर्य साग दक्षिणी कूट से विश्व भर में फैल प।<sup>८</sup> इतक विपरीत कुछ भारतीय विद्वान् उत्तरीयुव देश को ही आर्यों का मूल निवास-स्थान मानने के पक्ष में हैं।<sup>९</sup> जो भी हो इतना ता मानना ही पड़ेगा कि आर्य जाति भारत की आदिम मूल-जाति से भिन्न थी। भारत के आदि निवासी संभवतः द्रविड़ लोग ही थे। उनकी संस्कृति आर्यों की संस्कृति से भिन्न थी। आर्य संस्कृति को द्रविड़-संस्कृति से संघर्ष करना पड़ा था। यह संघर्ष मध्ययुग तक चलता रहा। आर्य-संस्कृति बलवती थी। यह धीरे-धीरे द्रविड़-संस्कृति को आत्मसात् करती गई। शिबलिंग, शालिग्राम एवं नागपूजा आदि सख आर्य संस्कृति में द्रविड़ संस्कृति से ही आये हैं<sup>१०</sup>। नवोन्मयी आर्य जाति देश में प्रतिष्ठित होती गई,

<sup>१</sup> इनके आक्रमण का विवरण के विष्णु देविये—

कङ्काम हिन्दी आर्य इतिहास द्वितीय खण्ड

<sup>२</sup> देविये—इतिहास पृ. ही पृष्ठ—अ. सरकार—पृष्ठ ५

<sup>३</sup> भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास—सरबकेतु विद्यासंसार—पृष्ठ १११

<sup>४</sup> देविये—आकृतिक होम इन ही मेहात्र—विषयक

<sup>५</sup> भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास—आ. सरबकेतु—पृष्ठ ११३

<sup>६</sup> देविये—ईश्वर हिन्दी आर्य इतिहास अध्याय ३, भाग १

<sup>७</sup> देविये—आर्यों का आदि देस—आ. सरबकेतु

<sup>८</sup> इतिहास पृ. ही पृष्ठ

त्वों-स्वों उसके संकृति में समूह होती गई। वैदिक संकृति की सबसे बड़ी देन उपनिषद् दर्शन है। उपनिषद् दर्शन का उदय ब्राह्मणों के कर्मबोध की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। आगे चलकर शैव विचारधारा का विकास क्रमशः गीता-दर्शन, योगशास्त्र दर्शन, शंखाद्वैतवाद, पद्मदर्शन आदि के रूप में हुआ। पद्मदर्शनों में वेदान्त का प्रचार सर्वाधिक हुआ। वेदान्त में ही अद्वैतवाद को अधिक मान्यता मिली। अनात्मवाद, मायावाद आदि उसके परम प्रसिद्ध धारण हैं। इन दार्शनिक पद्धतियों के विकास के फलस्वरूप अग्नि-मुनि और संन्यासी आदि विभिन्न छात्र पर पण्डितों का भी प्रबलण हुआ। वैदिक संस्कृति और विचारधारा में इस प्रकार सारे माध्यमों को अभिमूल्य कर लिया।

वैदिक विचारधारा के रुढ़िग्रस्त हो जाने पर उसके प्रतिक्रिया के रूप में अनेक धर्म, दर्शन और छात्र-सम्प्रदायों का उदय हुआ। इनमें से कुछ का संकेत श्वेताश्वतर उपनिषद्<sup>१</sup> तक में मिलता है। जैन उत्तराख्यपन सूत्र और सूत्रहोताय नामक ग्रंथों में तीन ही शीघ्र प्रतिक्रियाकारी नास्तिक मतों का निर्देश किया गया है।<sup>२</sup> इसी प्रकार 'दीपनिकाव' नामक ग्रंथ में भी ६२ नास्तिक मतों की चर्चा मिलती है।<sup>३</sup> इनमें पूर्व अश्वप का विशावाद<sup>४</sup>, आचार्य अश्विकेय कम्पल का उप्येदवाद<sup>५</sup>, मरुप कात्यायन का अकृतवावाद<sup>६</sup>, बिलहपुत्र का अनिश्चिततावाद<sup>७</sup>, निगह नाम पुत्र का अद्वैतवा संवरवाद<sup>८</sup>, तथा मन्वलि गोपाल का आश्विक सम्प्रदाय<sup>९</sup> बहुत प्रसिद्ध हैं। इनसे मिलते-जुलते वैदिक ब्राह्मणों को भी नहीं मुझाया जाना चाहिए। वे भी प्रतिक्रियाकारी थे। उनका उदय श्रुतौदिककाल में ही हो गया था। इन सबके सम्भव की कामना से बुद्धिवादी बौद्ध धर्म जैन धर्मों का प्रबलण किया गया। इन दोनों में बौद्ध धर्म अधिक विकसित हुआ। मगवान् बुद्ध के निर्वाण

<sup>१</sup> देखिये—श्वेताश्वतर उपनिषद् १।२

<sup>२</sup> देखिये—उत्तराख्यपन सूत्र १६।२३ तथा सूत्रहोताय २।१।७९

<sup>३</sup> देखिये—'दीपनिकाव' हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ६१७

<sup>४</sup> हिन्दी पण्डित अश्विकेय काव ही आश्विकेय-पुस्तक वासम, पृष्ठ १८

<sup>५</sup> बौद्ध दर्शन मीमांसा—बकदेव उपाध्याय—पृष्ठ २६ ३२

<sup>६</sup> शीघ्रविकाव—हिन्दी अनुवाद पृष्ठ २०—२१

<sup>७</sup> शीघ्रविकाव—हिन्दी अनुवाद पृष्ठ २९

<sup>८</sup> बौद्ध दर्शन पृष्ठ ३० ३१

<sup>९</sup> हिन्दी पण्डित अश्विकेय काव ही आश्विकेय-पुस्तक वासम और भी देखिये

अश्विकेय-पुस्तक वासम और भी देखिये—भाग १, पृष्ठ २११

<sup>१०</sup> श्वेताश्व—पुस्तक वासम पृष्ठ २३-२४

के पश्चात् अनेक सम्प्रदायों एवं उपसम्प्रदायों में विभक्त होकर दिन दूती चल चोगुनी  
 रुन्नति करने लगा। इस विच्छन्न के अन्तस्वरूप एक विशिष्ट बौद्ध संस्कृति का उदय  
 हुआ। वैदिक-संस्कृति को इस संस्कृति से भी लोका देना पड़ा। जब तक बौद्ध धर्म  
 बलवान् रहा और विश्वधर्म के रूप में संसार में प्रतिष्ठित रहा तब तक आर्य-संस्कृति  
 बौद्ध-संस्कृति से दबी रही। किन्तु पारस्परिक द्वेष<sup>१</sup>, बौद्धिक द्वाेष<sup>२</sup> और विनाशिता<sup>३</sup>  
 के अतिरिक्त के कारण जब से बौद्ध धर्म का पतन प्रारम्भ हुआ, तभी से आर्य-संस्कृति  
 उसे पराभूत कर आत्मसात् करने लगी। बौद्ध-विचारधारा के चीन्हा पड़ते ही वैदिक  
 विचारधारा पंच-देवोपसना को लेकर ठठ लकी हुई। एक-एक देवता को लेकर एक  
 एक सम्प्रदाय और उसके भी अनेक उपसम्प्रदाय प्रकटित हुए। उन पंच-देवोपसना  
 प्रधान स्यद्धायों के नाम क्रमशः गन्धर्व-सम्प्रदाय, सूर्य-सम्प्रदाय, शक्ति-सम्प्रदाय,  
 शैव और वैष्णव सम्प्रदाय हैं। इनमें प्रथम दो अधिकाधिक विकास न पा सके। इसके  
 विरुद्ध अन्तिम तीन विच्छन्न की पराकाष्ठा पर पहुँच गये। इनका आचार लेकर  
 अनेक दार्शनिक पद्धतियों और साधु एवं साधना सम्प्रदायों का उदय हुआ। शैव  
 दार्शनिक पद्धतियों में पाशुपत, शैवसिद्धांत, शैवीय और प्रत्यभिज्ञा-दर्शन विशेष  
 प्रसिद्ध हैं। साधु और साधना सम्प्रदायों में कल्पसिद्ध, कालमुल्ल, अषाढी, कोपक, सिगा  
 वगैरे एवं ताम्बिल के शैवमन्त्र विशेष उल्लेखनीय हैं। वैष्णव दर्शन पद्धतियों में पांच  
 यम, विशिष्टाष्टौव, देवाष्टौव, देव और शुद्धाष्टौव आदि के नाम निर्दिष्ट किये जा  
 सकते हैं। साधु और उपासना सम्प्रदायों में इक्ष्वाकु के आलवार मन्त्र सम्प्रदाय,  
 महाउन्नी शैव सम्प्रदाय, बंमाल के लहबिया और गौरीय वैष्णव सम्प्रदाय, आसाम  
 के गुहार और बुरपिया वैष्णव सम्प्रदाय तथा उड़ीसा के पंचलला सम्प्रदाय, मानमाव  
 सम्प्रदाय, वृत्ताश्रम सम्प्रदाय विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनके मिश्रण से उत्पन्न "लालादेव"  
 सम्प्रदाय, लालवेग सम्प्रदाय, बाल्मीकि सम्प्रदाय भी उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार मध्य-  
 युग के प्रारम्भ द्वात-द्वाते वैष्णव और शैव शक्ति विचारधाराओं की विविध शाखा-  
 प्रशाखाओं के रूप में भारतीय संस्कृति का बहुमुल्य विकसित हुआ। इन शाखाओं-  
 प्रशाखाओं ने बौद्ध-विचारधारा और संस्कृति को कमलित करने का पूरा-पूरा प्रयास  
 किया। कुछ शंको में वे अपने प्रयास में सफल भी हुए। वैष्णव धर्म की मन्त्र-भावना  
 महायानियों के मन्त्र उल्लेख से ही अनुप्राणित है। शैवों की मन्त्रवादी प्रवृत्ति को महा-  
 यानियों की मन्त्रवादी प्रवृत्ति से ही बल मिला था।<sup>४</sup> वैष्णवों की रमयाना बौद्धों के ही

<sup>१</sup> द्वेषिये—दीर्घघन भाव बुद्धिजन—दा० कर्ने—पृष्ठ १०३ से १०९ तक

<sup>२</sup> उपाक, सुयोग-वाक्य—पृष्ठ २ पृष्ठ १००

<sup>३</sup> इक्ष्वाकु का ही पत्र—जे० सरदार (१९५०)

<sup>४</sup> इक्ष्वाकु का ही पत्र—जे० सरदार—पृष्ठ ३१

एक उत्सव का स्माँतर है।<sup>१</sup> पुरी के बगन्नाम की कुद का ही वैश्ववीकरण का है।<sup>२</sup> सारनाथ के समीप में एक सभ्यतर महादेव स्थित है। संभ्यतर शब्द इस बात का प्रमाँनित करता है कि यह मूर्ति कुद का ही शिषीकृत का है। बौद्ध विचारवाय और तत्त्वों के वैश्ववीकरण और शिषीकरण की यह प्रक्रिया तत्त्वों के समक तक चलती रही।

शैव, शाक्त, वैश्वान और बौद्ध विचारधाराओं से प्रमाँनित होकर विकसित होने वाले संभ्यत का भारतीय संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसको वैदिक विचारवाय के समक ही महत्त्व दिया गया है।<sup>३</sup> वास्तव में यह वैदिक विचारवाय की ही एक शाखा है जो अनेक विदेशी संस्कृतियों को आत्मसात् करने के कारण अक उससे सिद्ध दिखाई पड़ने लगी है। कुद लोगों की बाराखा है कि तांत्रिक विचारवाय विदेशी है, किन्तु मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ। मेरी अपनी बाराखा यह है कि बिन विदेशी संस्कृतियों को वैदिक और बौद्ध संस्कृतियाँ आत्मसात् करते में अकमर्ष रही उनको स्थापक करने की कामना से भारतीयों ने संभ्यत को बनम दिया। संभ्यत ने अनेक विदेशी विचारवायों को आत्मसात् करके भारतीय का दे दिया था। संभ्यत के दो का हैं—एक हिन्दू, दूसरा बौद्ध। हिन्दू तंत्रों के अंतर्गत शैव, शाक्त और वैश्वान तंत्र आते हैं। बौद्ध तांत्रिक धारणाओं में मंत्रधान, सहस्रधान, ब्रह्मधान, अक्षयकधान की विशेष ध्याति है। इनके अतिरिक्त मूदान का “इक्या” तन्त्रदाय भी अकालनीय है। तंत्रों की इन दोनों ही धाराओं में विदेशी संस्कृतियों को आत्मसात् करके उन्हें भारतीय रंग में रँगने का सफल प्रयास किया था। उदाहरण के रूप में सिन्धु के जेन धर्म के तांत्रिकीकरण का इतिहास ले सकते हैं।<sup>४</sup> सिन्धु में एक समय जेन नाम का एक बंगाली धर्म प्रचलित था। परसम्मक नामक आचार्य ने आकर वहाँ तांत्रिक बौद्ध धर्म का प्रचार किया और उस धर्म को आत्मसात् कर लिया।<sup>५</sup> इसी प्रकार का इतिहास जेन<sup>६</sup> तन्त्रदाय का है। जेन तन्त्रदाय भी तांत्रिक बौद्धों का ही एक तन्त्रदाय है बिलक्य प्रकार महाबोधि नामक किरी आचार्य ने चीन

<sup>१</sup> देखिये—बौद्ध रचनावार्यों का पर्यन के निपु—आदिवाक ३ का बयन—अमकृत पृष्ठ २९

<sup>२</sup> देखिये—इकिया में ‘दास अक्या’ नामक रचना—पर्यनो अक्याव

<sup>३</sup> सिधिविस्त काक तन्त्राक—धायर एवेसेन—पृष्ठ ५९

<sup>४</sup> देखिये—सिन्धु में सबाबराक—राहुन साँक्यावक—पृष्ठ २२०-२२३

<sup>५</sup> देखिये—डोम काक तांत्रिक—‘माडर्न सिन्धु’, अमकृत २९३०

<sup>६</sup> बौद्ध धर्म का जेन तन्त्रदाय नामक धारिणकण काक—‘बिलक्यबोधि’ अक्याव—क. ५० परसुराम अनुबेदी

## विषय प्रवेश

और जापान में वहाँ के बंगाली धर्मों को परामूर्त करके किया था।<sup>१</sup> तंत्रों में हमें ताप, उपतारा, एकजाता और महानील सरस्वती की चर्चा मिलती है।<sup>२</sup> इनकी प्रतिष्ठा चीन, तिब्बत, भोट आदि देशों की साधनाओं के आरम्भवात् करने के फलस्वरूप हुई थी। महाचीन में किसी समय तापदेवी की पूजा होती थी।<sup>३</sup> तंत्रों ने अब वहाँ के धर्मों को आत्मसात् कर लिया तो तापदेवी की पूजा को क्या कर रखा गया। भोट और तिब्बत में इसी प्रकार एकजाता देवी की प्रतिष्ठा थी। उसके तांत्रिकीकरण होने पर तंत्रों में एकजाता देवी को तारा के एक स्वरूप के रूप में ग्रहण कर लिया गया। इसी प्रकार तंत्रों ने और भी अनेक विदेशी धर्म और साधना-प्रवृत्तियों को आत्ममूर्त किया। इनका अनुमान तंत्रों के हादी और क्वदी सम्प्रदायों के प्रकार क्षेत्रों के नाम निर्देश से किया जा सकता है।<sup>४</sup>

मध्ययुग में तांत्रिक बौद्ध, शैव तथा योग साधनाओं के मिश्रण से कुछ नवीन साधना प्रवृत्तियाँ प्रवर्तित हुईं, इनमें नाथ सम्प्रदाय और निरंजन पंथ विशेष उल्लेखनीय हैं। मध्ययुग में यवनों के देश में प्रतिष्ठित हो जाने पर इस्लामी धर्म और संस्कृति का भी अच्छा विचार हुआ। इस्लाम के साधु और साधना सम्प्रदायों में खड़ी सम्प्रदायों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत में इस सम्प्रदाय का अच्छा प्रचार हुआ था। मध्ययुगीन भारतीय विचारधारा पर इसका असुलभ प्रभाव दिखाई पड़ता है। खड़ी, इस्लाम और भारतीय साधु-साधनाओं के सम्मिश्रण से बहुत-सी छोटी-छोटी साधना प्रवृत्तियाँ उदित हुईं, इनमें धर्म मत और बाह्य साधना प्रवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति विदेशी संस्कृतियों का अवलम्बित करने के प्रयास में शतधा दिक्कियाँ हो गई थी। मध्ययुग में एकदम हिन्दू धर्म के अभाव में म्पुत्रादिता के प्रबल पड़ने पर ये सब स्वतन्त्र और निरपेक्ष हो चली थीं, जिसके फलस्वरूप भारतीय सम्प्रदायिक संघों का अलाका बनता जा रहा था। भारतीय संस्कृति सहस्रधा विच्छिन्न हो जाने से अत्यन्त दुर्बल हो गई थी। बचन संस्कृति विविध भाषा की संस्कृति होने के कारण उसे अवलम्बित करने के लिए विकल्प रूप धारण करनी पड़ी जा रही थी। ऐसे ही समय में निरुत्थियाँ संघों का उदय हुआ था। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा, अदम्य पीरप और अठार साधना के बल पर उपर्युक्त सभी दर्शन, धर्म, साधु और साधना सम्प्रदायों में

<sup>१</sup> प्रमेज इन जैन बुद्धिम्—पृष्ठ ३१३—३१०. सुंशुकी—पृष्ठ १११ तथा आगे

<sup>२</sup> खड़ीय इन की तत्रात्र—३०. बाग्नी—पार्श्व १—पृष्ठ १३१

<sup>३</sup> खड़ीय इन दि तत्रात्र—३०. बाग्नी—पार्श्व १

<sup>४</sup> वही पृष्ठ ४०



विश्वी हुई जीवन शक्तियों को एकत्रित किया और उनसे अनुपायित कर वह दिव्य "रामरसायन" तैयार किया, जिसके स्पर्शमात्र से वह चेतन और चेतन सम्भव हो जाते हैं। उन्हीं रामरसायन के बल पर भारत काय तक सीमित है और मभिन्न में भी युग-युग तक उन्हीं से शक्ति का संघष कला रहेगा। इन्हींलिए निर्गुणियों सतों का मार तीव्र जीवन और संस्मृति में इतना प्रसिद्धि स्थान है।

### अभिधान की सार्थकता

इस रचना में सतों के विषय वर्ण की बानियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उसके लिए हमने निर्गुण कल्पना का अभिधान प्रयुक्त किया है। यहाँ पर इस अभिधान की सार्थकता को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। उसके स्पष्ट करने के लिए हमें 'निर्गुण' शब्द और उसके अर्थ के ऐतिहासिक विचार-क्रम की सोच करनी पड़ेगी। शीत साहित्य में हमें इस शब्द का प्रयोग नहीं मिला है। इसका प्रयोग सम्भवतः यह है कि उक्त युग में सगुण और निर्गुण मूलक साम्प्रदायिकता का उदय नहीं हो पाया था। निर्गुण शब्द का प्रयोग हमें सर्वप्रथम महाभारत<sup>१</sup> और गीता<sup>२</sup> में मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों में यह शब्द 'गुणरहित' के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गीता और महाभारत के पर्याय इस शब्द का प्रयोग कृत्तिकोपनिषद्<sup>३</sup> में पाया जाता है। यहाँ पर यह निर्विरोध ब्रह्मत्व के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द का प्रयोग आप्तार्थ शंकर ने कई बार किया है। वे उसे हृदयस्थ बौद्धिक ब्रह्म से विद्वत्त्व स्वयं सत्त्व्यादि गुणों से विनिर्गुण ब्रह्मत्व का वाचक मानते थे।<sup>४</sup> रामानुज और उनके मतानुयायियों ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उन लोगों ने इसका अर्थ शक्तिप्रसादसम्बन्धी द्वारा दिये गये अर्थ से निश्चय रूप में निर्धारित किया है। उनकी दृष्टि में वह अस्मत्त्वादि स्वाम्य गुणों से रहित सगुण ब्रह्म का ही वाचक है।<sup>५</sup> रामानन्दी सम्प्रदाय के आनन्द भाष्य में भी लगभग ऐसा ही अर्थ दिया है। अन्य दर्शनशास्त्रियों ने भी इस शब्द के अर्थ को अपनी साम्प्रदायिक दृष्टि का अनुकूल बदलने<sup>६</sup> की चेष्टा की थी। नाथ सम्प्रदाय में इस शब्द का प्रथम प्रयोग

<sup>१</sup> 'महाभारत' शांतिपर्व—१११।१११ १८

<sup>२</sup> देखिये—'गीता' १३।१७ 'असफलं सपमृच्छीय निर्गुणं गुणमोपवृत्तं'

<sup>३</sup> कृत्तिकोपनिषद्—७ में—'सविद्यमत्यं निर्गुणम्' पर का प्रयोग है।

<sup>४</sup> कृत्तिकोपनिषद्—शांकरभाष्य—गीता प्रेर—७४ ८०७-८०५

<sup>५</sup> सर्वज्ञान समूह—सं. वासुदेव शास्त्री—१९५१ पृ. ११

(पृ. ११० पर निर्गुणवाद शब्द का प्रयोग और निर्गुण शब्द की व्याख्या)

<sup>६</sup> आनन्द भाष्य—१।१।१ में किया है।

निर्गुण शक्तिप्रसाद सत्त्व्यादि प्राकृतता गुणा ब्रह्मात्मविगुणमिति ध्युपसर्गिहृत्पुण्य साहित्यमेव निर्गुणत्वम्।

मिलता है।<sup>१</sup> वे लोग अपने हृदयस्थ योगिक ब्रह्म को अभिव्यक्ति प्रायः इसी शब्द का माध्यम से करते थे।

मध्यकालीन आचार्यों और नाथ पन्थियों के द्वारा किये गये निर्गुण शब्द के प्रयोग से माध्यम के कुछ संतकवि इतना अधिक प्रभावित हुए कि वे उसी को केन्द्र बनाकर अपनी विचारधारा प्रसारित करने लगे। वे लोग अपने इष्टदेव, अपनी साधना और अपने मंत्र सबको निर्गुण कहते थे। संत तुल्ला साहब ने अपने इष्टदेव को 'निर्गुण, दयाल, दानी'<sup>२</sup> कहा है। उनके यह निर्गुण, दयाल, दानी ही राम के नाम से भी प्रसिद्ध है। राम को वे निर्गुण शब्द का साररूप मानते थे।<sup>३</sup> संतों ने अपने इष्टदेव का प्रसंग में निर्गुण शब्द का प्रयोग अधिकतर द्वैताद्वैत विलक्षण परम तत्त्व रूपी हृदयस्थ योगिक ब्रह्म के अर्थ में किया है। देखिए, यादी साहब अपने निर्गुण ब्रह्म को मुमुक्षा की शैल्या पर घोषा हुआ बताते हैं, साथ ही उसे वे परम तत्त्व रूप भी मानते हैं। यह सिलते हैं—

“सुखमन सेज परमठठ रहिया किया निर्गुन निरंकार”।<sup>४</sup>

संतों ने प्रायः अपनी साधना को भी निर्गुण ही कहा है। उनकी साधना का मुख्य अंग ध्यान है। उससे पहले निर्गुण शब्द का प्रयोग करते हुए संत जगजीवन साहब ने सिला है—

“जगजीवन गुरु पवन परि के निरगुन परि ध्यान”।<sup>५</sup>

उन्होंने अपने इष्टदेव और साधना को ही निर्गुण नहीं कहा है, वरन् अपने वैदिक मंत्र को भी निर्गुण का ही अभिधान दिया है। उसे वे वेदान्त का पर्यायवाची मानते थे। संत तुल्ला साहब ने स्वप्न शब्दों में पोषणा की है कि “निर्गुण मंत्र सोइ वेद को अता”।<sup>६</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन संतों के एक वर्ग में निर्गुण शब्द का बहुत अधिक प्रचार था। निर्गुण शब्द उनमें द्वैताद्वैत विलक्षण परम तत्त्व रूपी योगिक ब्रह्म, योगिक साधना और वैदिक विचारधारा के पारिभाषिक अर्थ में

<sup>१</sup> सिद्धसिद्धान्त पद्धति—सम्पारिका कल्याणी बौद्ध—१९५७ पूजा पृष्ठ ७०

निर्गुणसिद्ध शिव साम्प्रदाय गगने विरबतोमुग्धम्।

धूमध्वे हृदिमाहाय ध्यात्वा ब्रह्ममया मबेन् ॥

<sup>२</sup> तुल्ला साहब की बानी—पृष्ठ २६

<sup>३</sup> तुल्ला साहब की बानी—पृष्ठ १९ ‘तुम तो राम इउ निर्गुन सार’

<sup>४</sup> संत मुषा सार—पियोगी हरि—रायड ९, पृष्ठ ७१

<sup>५</sup> संत बानी समग्र भाग २ पृष्ठ १३१

<sup>६</sup> हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० बङ्गलाल—प्रस्तावना (घ)

रुद्र हो गया था। निर्गुण शब्द को इसी पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग करनेवाले सन्तों को हमने निर्गुणिया कवि और उनकी परम्परा को निर्गुण आम्बुषाय का अभिधान दिया है। हिंदी साहित्य के कुछ इतिहासों में इस अभिधान का प्रयोग कुछ अधिक व्यापक अर्थ में मिलता है। उनमें इस शाय के अन्तर्गत प्रेमाशयी सूत्री कवियों को भी रखा गया है। ऐसा करते समय इतिहासकारों की दृष्टि निर्गुण के सामान्य अर्थ पर थी, उसके पारिभाषिक अर्थ पर नहीं। उसके पारिभाषिक अर्थ को दृष्टि में रखते हुए इस अभिधान के अधिकारी केवल वे ही सन्त उल्लेख करते हैं जिन्हें हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने जानाभरी निर्गुणशायर के कवि कहा है। अधिक व्यापक अर्थ में यह शाय संत परम्परा और उसके कवि सन्त कवि कहलाते हैं। कहीं कहीं पर हमने भी उनके लिए इन्हीं नामों का प्रयोग कर दिया है।

### स्पृष्ट रूपरेखा

निर्गुण आम्बुषाय का उद्भव रुद्रिवादी अंधविश्वास प्रधान पार्थिक सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इस शाय के कवियों का लक्ष्य किसी पंथ या सम्प्रदाय विरोध को बन्म देना नहीं था, और न वे किसी पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी ही थे। सब तो यह है कि उन्हें पंथवाद या 'पक्षापक्षी' से विरोध प्युषा थी। बाद के संतों में पंथ निर्माय की ओ प्रवृत्ति उदित हुई, यह निर्गुणियाँ कवियों की विरोधता नहीं करी जा सकती। सच्चे निर्गुणियाँ कवि पंथ निर्माय की प्रवृत्ति को इस धमकते थे। वे लाग अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न होते थे, विरह्य परिश्रम यह होता था कि एकदो साधु-संत उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो जाते थे। वे गुरु के स्वर्गवासी हो जाने पर उनकी पूजा करने लगते थे और उनके नाम पर एक पंथ बसा देते थे। यद्यपि वे शिष्य भी अपने गुरुबनों के लक्ष्य निर्गुणवादी ही होते थे, किन्तु इनकी निर्गुण विचारशाय अपने अपने पंथों के विधि-विधानों और अंध विश्वासों से अन्तर्कृत हो जाती थी। वे गुरु निर्गुणवादी संत नहीं रहते थे। अतः निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत उन्हीं संतों को लिया गया है जिनका व्यक्तित्व किसी विशेष विद्वत् विधि-विधानों, अंधविश्वासों और मिष्ठाशायों से अन्तर्कृत नहीं हुआ है। इनमें भी उन्हीं संतों के अभ्यन पर विरोध महत्तर दिया गया है जिनमें अम्पत्य का स्वरुप और मधुर रहस्यमायना का उन्मेष पाया जाता है। इस दृष्टि से कबल निम्नलिखित कवि ही महत्त्वपूर्वक प्रतीत हुए हैं :—अधीर, अर्मदास, नानक, रैदास, दादू, रज्जब, सुन्दरदास, गरीबदास, यापी साहब, तुलना साहब, अगशीसन साहब, गुलाब साहब, भीष्मा साहब, पलटू साहब, दरिया साहब (बिहार वाले), मज्दुदास, बज्रदास, ब्याभारि, सद्ब्याभारि और तुलसी साहब।

उपर्युक्त समस्त कवियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ एक ही थीं। आरम्भिकता इन

संतों की प्राणभूत विशेषता थी। उन्होंने अपने समय की समस्त प्रचलित धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं, साधनाओं और साधु सम्प्रदायों के सारभूत तत्त्वों को 'समुच्चै' के द्वारा आत्मसात् करने तथा उन्हें अपनी प्रतिभा और प्रयाग के साथ में दालकर एक अभिनव रूप दे दिया है, जो उनकी मौलिक देन है। वे स्वयं के अन्तर्मय उपासक थे। उन्हें मृत और मिथ्यात्व से घृणा थी। यही कारण है कि उन्हें बर्हा नहीं भी मिथ्यात्व दिखाई पड़ा है, बर्हा पर उन्होंने उसका बरकर विरोध किया है। स्वयं के मर्दन और अमृत के सपान की उनकी यह प्रवृत्ति बहुत महत्वपूर्ण है।

निर्गुणियों का लोभ निर्गुणोपासक थे। उनमें निर्गुण शब्द का प्रयोग अधिकतर द्वैताद्वैत मिलनस्य हृदयस्य यौगिक ब्रह्म के लिए हुआ है। कुछ स्थलों पर यह निर्बिरोध ब्रह्म का वाचक बनकर भी आया है। निर्गुण शब्द के इन दोनों अर्थों की दो परम्पराएँ उन्हें शृङ्खली के रूप में प्राप्त हुई थीं। प्रथम अर्थ की परम्परा उन्हें नाथ पंथियों से मिली थी और दूसरे अर्थ की प्रेरणा का भेष श्रद्धेय वेदास्त्रियों को है। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने प्रचलित साधनाओं में समन्वय स्थापित करने की भी चेष्टा की थी। नहीं कारण है कि उनकी साधना में ज्ञान, मक्तिबोध और वैराग्य के समन्वित रूप पर ही विशेष बल दिया गया है। उन्होंने एक दूसरा सबसे बड़ा कार्य प्रचलित बहिन विचारधाराओं, साधनाओं और साम्प्रदायिक आचारों के सहजीकरण का किया था। अपनी सहजीकरण की इस प्रवृत्ति के कारण वे मध्यकालीन संतों में अलग लगे दिखलाई पड़ते हैं। बुद्धिवादिता, सदाचरणमियता, सामाजिक और आध्यात्मिक साम्प्रदाय, विचारसत्त्वता आदि उनकी अन्य प्रमुख उल्लेखनीय प्रवृत्तियाँ हैं। उनकी ऐसी विशेषताओं ने उन्हें एक सूत्र में बाँध रखा है। इसीलिए उनकी परम्परा अन्य संतों की परम्पराओं से मिलनस्य और निरपेक्ष दिखाई पड़ती है।

### “सगुण से पार्यक्य”

मध्ययुग में वैश्याव साधना दो रूपों में विकसित हुई थी—निर्गुण और सगुण। निर्गुणोपासना प्रकृति शुद्ध वैश्याव नहीं रह पाई। उस पर अपने सुग की कमल साधनाओं और विचारधाराओं का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा। संक्रमण, नाथपंथ और निरंजन पंथ ने उसका स्वरूप ही बदल दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि वह वैश्याव होते हुए भी उल्लेख विरहमय विषय प्रतीत होने लगी। उसके विपरीत सगुणोपासना सभी प्रमाणों से विनियुक्त रहने के कारण शुद्ध वैश्याव ही पनी रही। संतों के दो वर्ग अलग अलग इन दोनों उपासनाओं को लेकर पले। इन दोनों ही वर्गों के संतों में अन्तर्मय का अन्वय स्वरूप हुआ। दोनों ही दिग्दी-साक्षित की विमूर्ति रने। एक वर्ग सगुण साध के नाम से प्रकृत हुआ और दूसरा त्रिगुण के नाम से। इस रचना में किन

संतों का सम्पन्न किया गया है उनका सम्बन्ध निर्गुणधारा से है। पीछे हम हम धारा की स्थूल रूपरेखा का संकेत कर आये हैं। किन्तु उसका सम्बन्ध सही प्रकार तक तक नहीं हो सकता जब तक उसके सगुणधारा से पारंपरिक विभायक तन्त्रों का संकेत न किया जाय।

सगुण और निर्गुण धाराओं का मौलिक भेद रूपोपासना से सम्बन्धित है।<sup>१</sup> निर्गुणियों का संत हृदयस्थ हैतावैत विलक्षण असल निरंजन, निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका वह निर्गुणब्रह्म रूप और आकार से विहीन पुण्य की सुगन्ध से मी सुगन्ध और अनिर्वचनीय है।<sup>२</sup> किन्तु वह वेदादित्यों के ब्रह्म के सरस शृङ्खलन मात्र नहीं है और न बौद्धों का शून्य ही है। वह सुगन्ध और अनिर्वचनीय होते हुए भी कल्याणमय, गरीबनिवारण और मस्तकस्तक है। मस्तों के भगवान् की इन विशेषताओं से विशिष्ट होने पर भी वह उससे सर्वथा भिन्न है। मस्तों के भगवान् 'बाहिर बामी' हैं किन्तु इनके राम 'अन्तरबामी' हैं। अन्तरबामी होते हुए भी वह मस्तों को दर्शन देते हैं।<sup>३</sup> उनका वह रूप अनिर्वचनीय होता है। मस्त उसका बखान नहीं कर सकता और यदि वह किसी प्रकार उसका बखान करने का प्रयास भी करे तो उसको कोई समझ नहीं सकता। यदि योका बहुत समझने लगे तो उस पर उसे विश्वास नहीं होता।<sup>४</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों का निर्गुण उपास्य भगवान् और अरूप होते हुए भी दोनों से विलक्षण है। इसके विपरीत सगुणवादियों का उपास्य मानवों के बीच में ऊर्ध्वी के रूप में प्रतिष्ठित रहता है। मानव-जीवन की सम्पूर्ण शक्ति, साध सौंदर्य और समस्त शील का पूर्ण आविर्भाव उर्ध्वी में मिलता है। यही कारण है कि एक का उपास्य केवल अनुभूति और साधनागम्य मात्र होने के कारण रहस्यपूर्ण है और दूसरे का प्रवच्य होने के कारण प्रेम और भय का पात्र है।

<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में देखिये—मन्त्रभाष्यीय धर्मसाधना—डा० इजारीमसाद विवेकी पृष्ठ २३०

<sup>२</sup> कबीर प्रत्यावली—पृष्ठ ६०

जाके मुँह माया नहीं जाती रूप और धरूप।  
पुद्गलवास से पाठरा ऐसा रूप रूप ॥

<sup>३</sup> कबीर प्रत्यावली—पृष्ठ १५

'कबीर देना बूक भग महिमा करी न जाई।'

<sup>४</sup> कबीर प्रत्यावली—पृष्ठ १०

'दीया है तो कस कहु कसो न काहू पतिवाइ'

<sup>५</sup> उर्ध्वी के प्रायोगिक कबीर के रहस्यवाद के सिद्ध देना जा सकता है—

कबीर और जाबसी का रहस्यवाद—डा० त्रिगुणावत

भगवान् का प्रथम रूप केवल बुद्धिवादी साधनों को ही आकृष्ट कर पाता है, जब कि उत्कृष्ट दूतर रूप सम्पूर्ण सृष्टि को तमय और रहस्यमय रखने की छत्रछाया रखता है। उदात्त रूप सम्बन्धी इस अन्तर ने निगुंश और सगुण काव्यपाठकों को विस्तृत प्रत्यक्ष कर रखा है।

निगुंश और सगुणवादी कवियों में स्वभावगत भेद भी दिखाई पड़ता है। निगुंशवादी अपिच्छर आन्तरवादी, सत्यान्वेषी, अस्तित्व, अस्मत्क और पुनस्तत्क होते थे। उनके व्यक्तित्व की ये विशेषताएँ उनकी रचनाओं में स्पष्ट प्रतिबिम्बित मिलती हैं। इसके विपरीत सगुणवादी कवि अपिच्छर साम्बन्धवादी, रुढ़िवादी, प्रिय-सत्यवादी, प्रेमी जीव होते थे। उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओं ने उनकी रचनाओं को निगुंश विधा कवियों की रचनाओं की अपेक्षा अधिक कोमल, राग-रहित और मधुर बना दिया है। निगुंश काव्यपारा सगुण काव्यपाठ से इस दृष्टि से भी भिन्न है।

निगुंश एवं सगुण कवियों में हमें एक सम्बन्धी अंतर भी दिखाई पड़ता है। निगुंश काव्य-पाठ मक्ति, शक्ति और जीव' की वह विशेषी है जिसमें अज्ञानजन्य मानव जाति अपने पुन-पुन के आह्वान को सकती है। इसका विपरीत सगुण काव्य पाठ में हमें शृंगार और भक्ति के मधुरमय मुद्राग से उद्भूत माधुर्य भाव स्वी शिशु की रहस्यमयी साँलाओं का वैभव मिलता है। उस वैभव पर अनुभूतिमात्र से ही मानव का निम्न मानव रूप और आह्लाद से विरक्त उच्छ्वा है। एक धारा पठितपावनी है और दूसरी आनन्द विभाविनी यही दोनों में अंतर है। इसके अतिरिक्त दोनों पाठकों में प्रकृतिगत भेद भी दिखाई पड़ता है। निगुंश काव्यपाठ की आधारभूमि बुद्धिवादिता और विचारमयता है। इसके विपरीत सगुण काव्यपारा परम भावप्रवण भवामूक्तक और अनुभूति प्रधान है।

दोनों पाठकों में साधना और सिद्धि सम्बन्धी अंतर भी है। निगुंश काव्य-पाठ का सम्बन्ध जीवन के साधना पक्ष से है, जब कि सगुण काव्यपाठ में जीवन के सिद्धि पक्ष की भाँती उभारि गई है। एक में उन समस्त साधनों और प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है जिससे आनन्द ब्रह्म की उपलब्धि हो सकती है। दूसरे में स्वयं आनन्दरूप ब्रह्म का ही बयान किया गया है। सगुण कवियों का लक्ष्य भगवान् के सगुण साक्षर आनन्दमय रूप की मधुरमयी भाँती का उद्घाटन करना था। उक्त विरहीत निगुंश कवियों का उद्देश्य अपने सद्दयस्य "मुनि मंडल बासी पुरय" की यशस्वन्मूर्ति करना था। सगुण एवं निगुंश पाठ के इन भेदों ने ही एक दूसरे का परस्पर अलग कर रखा है।

१ भारतीय साहित्य की सामूहिक रचनाएँ—५० परमुराम अनुबेदी—पृष्ठ ६५ से १०८ (१९५५)

## • ऐतिहासिक स्थिति

ऐतिहासिक स्थिति से हमारा उद्देश्य निर्गुण कव्यधारा के अन्त सम्बन्धी सीमा और विस्तार के निर्णय से है। निर्गुण कव्यधारा के प्रमुख प्रवर्तक संत कबीर माने जाते हैं। किन्तु सच बात यह है कि निर्गुण कव्यधारा का बीजारोपण बबदेब, नाम देव, त्रिलोक्यन चरन बेनी रामानन्द, पना, पीया सेन कबीर से पहले ही अन्त हुआ था। कबीर ने उसे व्यवस्थित रूप देकर विकसित, प्रसारित और प्रसारित किया था। लोकप्रिय निम्नलिखित उक्ति इसी तथ्य की ओर संकेत कर रही है—

“ मक्ति द्वाविड़ ऊपकी जाये रामानन्द ।  
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नबल्लड ॥

यदि हम इस उक्ति में कोई चार स्वीकार करते हैं या निर्गुण कव्यधारा का उदय १४ वीं शताब्दी से मानना पड़ेगा। हमारी दृष्टि में प्रसिद्ध सोफोस्तिवाँ सर्वत्र छत्र की आभारभूमि पर ही प्रतिष्ठित होती है। यह उक्ति तो हमें विशेष रूप से सार्वभौमिक प्रतीत होती है। वास्तव में निर्गुण कव्यधारा का उद्भव १४ वीं शताब्दी से मानना ही ठीक है। डा० इब्राहिमसाद भी इसी मत हैं।<sup>१</sup>

निर्गुण कव्यधारा की अन्तिम सीमा निर्दिष्ट करना थोड़ा कठिन मामला होता है। क्योंकि निर्गुणियों संतों की परम्परा मात्र में धारा भी बीजित है— विविध पंथों के रूप में नहीं, अपितु उनकी ऐसी प्रवृत्तियोंवाले धारु-संतों के रूप में भी। किन्तु संत तुलसी साहब के बाद के संतों में कोई ऐसा अलौकिक प्रतिभात्मन् संत नहीं हुआ जिसकी बाणी में सरस काव्यत्व का उन्मय मिलता हो। ऐसे ऐसा प्रतीत होता है कि संत तुलसी साहब के बाद यह धारा केवल मामलात्र को ही रोप रह गई थी। संत तुलसी साहब के संबंध में थोड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् उनका समय १५१७ विक्रमी से लेकर १५६६ विक्रमी तक मानते हैं, और कुछ १५२० से लेकर १६०० विक्रमी तक निर्दिष्ट करते हैं।<sup>२</sup> तुलसी साहब की रचना के संबंध में हम उनसे कुछ दोनों मतों में से कोई किसी को स्वीकार करें, पर उनकी अन्तिम रचना के संबंध में कोई विशेष मतभेद नहीं है। इस आभार पर हम निर्गुण कव्यधारा की अन्तिम अवधि १६वीं शताब्दी का अन्तिम रूप मान सकते हैं।

<sup>१</sup> इतिहास—संस्कृत-भाषीय धर्म मापना—डा० इब्राहिमसाद लिखते—पृष्ठ ६७

## निर्गुण काव्य-धारा के प्रस्तावना कालीन संत-कवि

जयदेव, — माखीय साहित्य में हमें कई जयदेव मिलते हैं—मान्या शाक नामक न्याय ग्रन्थ के रचयिता पद्मपर जयदेव<sup>१</sup>, चन्द्रालोकधर पीयूष जयदेव,<sup>२</sup> प्रसन्नराज्य नामक नाटक के प्रणेता जयदेव, गीतगोविन्द के गायक जयदेव तथा संत जयदेव जिनके पद ग्रन्थ साहस में संग्रहित हैं तथा जिनका भद्रापूर्व स्मरण कबीर<sup>३</sup> और गुरु अर्जुनदेव ने भी किया है।<sup>४</sup> विद्वानों के मतानुसार प्रथम तीन जयदेव एक ही व्यक्ति हैं।<sup>५</sup> अन्तिम दो के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद हो सकता है। कुछ लोग इन दोनों को एक ही मानते हैं।<sup>६</sup> कुछ लोग अलग-अलग।<sup>७</sup> मैं इन दोनों को अलग-अलग व्यक्ति मानने के पक्ष में हूँ। अपने मत के समर्थन में यद्यपि मुझे अभी तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं उपलब्ध हुए हैं किन्तु माय, माया और शैली की दृष्टि से दोनों में आश्चर्य और पाठार्थ का अंतर दिखलाई पड़ता है। यदि हम शैली का लेखक के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब मानते हैं तो फिर हमें निर्विवाद रूप से दोनों को अलग-अलग व्यक्ति ही मानना पड़ेगा।

संत जयदेव के अर्थ केवल दो पद ही उपलब्ध हैं। ये पद ग्रन्थसाहस में संग्रहित हैं। यहाँ पर उनमें से एक को उद्धृत कर देना आवश्यक है क्योंकि बिना उद्धृत किये हुए माया और शैली का रूप प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

<sup>१</sup> देखिये—'साहित्य दर्पण' की भूमिका—काशे—पृ० २८०

<sup>२</sup> 'पीयूषवर्ध' उपाधि का प्रयोग चन्द्रालोकधर जयदेव के लिए ही किया जाता है। प्रमाणरूप में हम चन्द्रालोक की विमलकिरित पक्ति से सच्यत हैं—  
'चन्द्रालोकमसु स्वयं वितनुत पीयूषवधः कृती ॥१९॥

चन्द्रालोक के एक प्रसिद्ध टीकाकार न लिखा है—

'जयदेववर्धेय पीयूषवध इति नामान्तरम्'

द्विगुणे—चन्द्रालोक के ३६ श्लोक की टीका 'शौचम्या मस्कृत सिरीम से प्रकाशित।

<sup>३</sup> देखिये गुरुग्रन्थ साहस—पृष्ठ १३०

<sup>४</sup> गुरु परसारी शैले नामा । भगवति मरम इगही है जाना ।

<sup>५</sup> गुरु ग्रन्थ साहस—पृष्ठ ११९२

<sup>६</sup> 'साहित्य दर्पण' का भूमिका—काशे—पृष्ठ १८०

<sup>७</sup> इतरा भारत की सगल परम्परा—प० परमुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ ९४

<sup>८</sup> अथवा हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत कृती आर है (मीनिक वातपीत के आधार)



### ऐतिहासिक स्थिति

ऐतिहासिक स्थिति से हमारा तादरबं निगुंश काव्यभारा के अन्त तर्कची सीमा और विस्तार के निर्णय से है। निगुंश काव्यभारा के प्रमुक्त प्रकर्षक संत कबीर माने जाते हैं। किन्तु अब बात यह है कि निगुंश काव्यभारा का बीबाद्येय नवदेव, नामदेव, किलोकन, चदन मनी रामानन्द, पना, पीपा ऐन कबीर से पहले ही कर चुके थे। कबीर ने उन्हे आधिकारिक रूप लेकर विकसित, प्रचारित और प्रचारित किया था। लोकप्रसिद्ध निम्नलिखित उक्ति इसी तथ्य की ओर संकेत कर रही है—

“ भक्ति प्राणिक रूपजी लावे रामानन्द ।  
परगट किया कबीर ने सप्त बीप नबल्लंड ॥

यदि हम इस उक्ति में कोई धार स्वीकार करते हैं ता निगुंश काव्यभारा का उद्भव १४ वीं शताब्दी से मानना पड़ेगा। इसी दृष्टि में प्रसिद्ध सांख्यिकीय सूर्य स्य की आचारभूमि पर ही प्रतिष्ठित होती है। यह उक्ति तो हमें विशेष रूप से सारगमित प्रतीत होती है। वास्तव में निगुंश काव्यभारा का उद्भवकाल १४ वीं शताब्दी से मानना ही ठीक है। डा० इबारीप्रसाद जी का भी यही मत है।<sup>१</sup>

निगुंश काव्यभारा की अन्तिम सीमा निश्चित करना थोड़ा कठिन मालूम होता है। क्योंकि निगुंशियाँ संतों की बरम्पय मारत में आब मी जोकित है— विविध संतों के रूप में नहीं, अपितु उनकी कैसी प्रकृतिबोधने सातु-संतों के रूप में मी। किन्तु संत तुलसी साहब के बाद के संतों में कोई ऐसा अलौकिक प्रतिभासम्पन्न संत नहीं हुआ जिसकी बाबूरी में सरत काव्यत्व का उन्मत्त मिलना हो। इसके देता प्रतीत होता है कि संत तुलसी साहब के बाद यह धारा केवल माममात्र को ही रोप रह गई थी। संत तुलसी साहब के संबंध में थोड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् उनका समय १८१० विक्रमी से लेकर १८८२ विक्रमी तक मानत हैं, और कुछ १८२० से लेकर १८०० विक्रमी तक निश्चित करत हैं।<sup>२</sup> तुलसी साहब की स्थिति के संबंध में हम उन्हे क ब्रह्मों मनों में से पादे किती को स्वीकार करें, पर उनकी अन्तिम तिथि के संबंध में कोई विशेष मतभेद नहीं है। इस आचार पर हम निगुंश काव्यभारा की अन्तिम अवधि १६वीं शताब्दी का अन्तिम वर मान सकते हैं।

<sup>१</sup> इतिहास—मध्यकालीन धर्म साधना—डा० इबारीप्रसाद त्रिबारी—पृष्ठ ६० (१९५५)

<sup>२</sup> इतिहास—धर्म साधना में—डा० इबारी साहब का उल्लेख

## निर्गुण कान्य-धारा के प्रस्तावना कालीन संत-कवि

जयदेश .—भारतीय साहित्य में हमें कई जयदेश मिलते हैं—मान्या लोक नामक न्याय ग्रन्थ के रचयिता पद्मपर जयदेश<sup>१</sup>, चन्द्रालोककार पीपूष जयदेश,<sup>२</sup> प्रथमराज नामक नाटक के प्रणेता जयदेश, गीतगोविन्द के गायक जयदेश तथा संत जयदेश जिनके पद प्रथम साहस में संग्रहीत हैं तथा जिनका महापूर्ण धरम्य कबीर<sup>३</sup> और गुरु अर्जुनदेव ने भी किया है।<sup>४</sup> विद्वानों के मतानुसार प्रथम तीन जयदेश एक ही व्यक्ति हैं।<sup>५</sup> अन्तिम दो के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद हो सकता है। कुछ लोग इन दोनों को एक ही मानते हैं।<sup>६</sup> कुछ लोग अलग-अलग।<sup>७</sup> मैं इन दोनों को अलग-अलग व्यक्ति मानने के पक्ष में हूँ। अपने मत के समर्थन में यद्यपि मुझे अभी तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं उपलब्ध हुए हैं किन्तु मात्र, भाषा और शैली की दृष्टि से दोनों में आकार और पाठाला का अंतर दिखलाई पड़ता है। यदि हम शैली का लेखक के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब मानते हैं तो फिर हमें निर्विवाद रूप से दोनों का अलग-अलग व्यक्ति ही मानना पड़ेगा।

संत जयदेश के अब केवल दो पद ही उपलब्ध हैं। ये पद प्रथमसाहस में संग्रहीत हैं। यहाँ पर उनमें से एक को उद्धृत कर देना आवश्यक है क्योंकि बिना उद्धृत किए हुए भाषा और शैली का रूप प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

<sup>१</sup> हेमिने—'साहित्य दर्पण' की भूमिका—काव्य—पृ० १८०

<sup>२</sup> 'पीपूषवर्ष' उपाधि का प्रयोग चन्द्रालोककार जयदेश के लिए ही किया गया है। प्रमाणरूप में इस चन्द्रालोक की निम्नलिखित पंक्ति दे सकते हैं—

'चन्द्रालोकमसु स्वर्णं वितपुते पीपूषवर्षः कृती ॥१२॥

चन्द्रालोक के एक प्रसिद्ध टीकाकार ने लिखा है—

'जयदेशस्थित पीपूषवर्ष इति नामान्तरम्'

हेमिने—चन्द्रालोक के ६४े श्लोक की टीका 'बालम्बा सरकृत सिरीज से प्रकाशित।

<sup>३</sup> हेमिने गुरुग्रन्थ साहस—पृ० १३०

'गुरु परमासी केरेव पाया। भगतिक मरम इतही है जाना।'

<sup>४</sup> गुरु ग्रन्थ साहस—पृ० ११९९

<sup>५</sup> 'साहित्य दर्पण' की भूमिका—काव्य—पृ० १८०

<sup>६</sup> इतरी मारन की सम्म परम्परा—प० परशुराम चतुर्वेदी—पृ० ९८

<sup>७</sup> आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत इसी प्रकार है (मौलिक बालचरित क आचार्य)

✓ 'बह सत भेदिआ नाह सत पुरिआ सूर सत ओइसावतु कीआ ॥  
 अबल बलु तोड़िआ अबल बलु यपिआ अबल बलिआ तहा आपठ पीया ॥  
 मन आदि गुणु आदि बखरीआ ॥ तेरी हुविआ हसटि संमानिआ ॥१॥ खाह ॥  
 अरधि कइ अरधिया सरधि कइ सरधिया ससल कइ सललि संमनि आइआ ॥  
 बइति जैदेव कइ रंभिआ बइ निरवाणु लिबखीणु पाइआ ॥२॥'

इस पद की माया-शैली की दुसना यदि गीत गोविन्द की माया शैली से की जाय तो बड़ी अन्तर दिखलाई पड़ेगा जो स्वर्ण और रजत में दिखलाई देता है। गीतगोविन्द की मधुरता, पदकालित्य, लौला बर्चन, समुदाय भावना आदि तत्त्वों की इस पद में भूमिका खाना भी नहीं मिलती है। कबीर<sup>२</sup> आदि निगुंथियों कवियों ने जिन अपदेव का अन्त के साथ अमर्य किया है वह निरवय ही अत्यन्त के कोई अंग महात्मा होंगे। वे श्लोक शृंगारी महाकवि अपदेव के प्रति इतना अधिक आकृष्ट नहीं हो सकते थे। यदि वे इस प्रकार के समुदायवादी मन्त्र मिले होते तो फिर उन्होंने माया के अन्तर्लौकिक मन्त्र<sup>३</sup> महाकवि विद्यापति के प्रति भी अन्त प्रकृत की होती। विद्यापति की गणना तो वैष्णव सद्बिना सम्प्रदाय के प्रविष्ट नी अन्तों में की जाती है। भक्तमाल में अपदेव का भी उल्लेख किया जाता है, वह मन्त्र या संत अपदेव का नहीं है, उसमें गीतगोविन्दकार महाकवि अपदेव की प्रशंसा की गई है।<sup>४</sup> हम महाकवि अपदेव को अन्त अपदेव नहीं मान सकते। अन्त अपदेव निरवय ही अन्त का ही महात्मा रहे होंगे किन्तु कबीर जैसे अन्त मन्त्र के रहस्यों का बेचा मानते हैं।<sup>५</sup> वास्तव में यह हमारा दुर्भाग्य है कि आबकल अन्त अपदेव की अन्त रचनाएँ

<sup>१</sup> गुह मन्त्र साहब—पृष्ठ—११०६ (अमृतसर १९५१)

<sup>२</sup> कबीरप्रधानकी—परिसिप्य—पृष्ठ २९०

<sup>३</sup> 'अपदेवनामा विष्णुशामा तिलकी कृपा मर्त है अपार'

<sup>४</sup> डा० उमेश मिश्र ने विद्यापति का जन्मकाल स १७९५ माना है। कबीर का जन्मकाल १४५५ माना गया है। अपदेव कबीर से २५ वर्ष बड़े हुए। वैश्वदेव—विद्यापति का पुत्र—डा० उमेश मिश्र हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद—१९३० (पृष्ठ ३९)

<sup>५</sup> वैश्वदेव 'भक्तमाल' सटीक—पृष्ठ ३९

<sup>६</sup> 'अपदेव कवि मूर अन्तकवयमन्त्रमन्त्रमेवमेव भाव कवि

मधुर भवो ठिहु खोक गीत गोविन्द उद्योग

काव्य तब रस सरतधरार का सागर— हृषिकेश

<sup>७</sup> हिन्दी गुहमन्त्र साहित्य—अमृतसर—१९५१, पृष्ठ ३३०

<sup>८</sup> 'गुह मन्त्रादी वैश्व नामा भागति के प्रम इवही है जगत्'

उल्लम्ब नहीं हैं और उनके सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रामाणिक तथ्य भी उल्लम्ब नहीं है। विद्वान् अनुसन्धान करने से शायद सन्त नामदेव के सम्बन्ध में कुछ और बातों का पता लगे। इस समय तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह कोई उल्लम्बोटि के निर्गुणोपासक सन्त थे। इन्होंने कबीर आदि निर्गुणियों कवियों को ब्रह्मवती प्रेरणा प्रदान की थी।

सन्त नामदेव—संत ज्ञानेश्वर के समकालीन सन्तों में संत नामदेव भी बहुत प्रसिद्ध हैं। यह पंढरपुर के निवासी किन्हीं दृष्टमेंती नामक दर्जी के पुत्र थे। डॉ० मंडारकर<sup>१</sup> के मतानुसार इनका जन्म नरही, बमनी नामक स्थान में सं० १३२७ (सन् १२७०) में हुआ था। इनकी जाति के सम्बन्ध में मतभेद है। मरुमाल में उन्हें क्षीरा जाति का कहा गया है। कुछ लोगों ने उन्हें क्षत्री जाति का सिद्ध करने की चेष्टा की है।<sup>२</sup> वैराग्य ग्रहण करने के पूर्व के छहरण भी थे। इनकी पत्नी का नाम राबाबाई था। इन राबाबाई से इनके चार पुत्र भी हुए थे। इनके नाम क्रमशः नारायण, महादेव, गाविन्द और विठ्ठल थे।<sup>३</sup> इनके वैराग्य ग्रहण करने के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि पहले यह एक बहुत बड़े शकू थे। किन्तु एक दिन एक पटना ने इनका हृदय को इतना प्रवित्त कर दिया कि वे घर-बार छाड़कर बेरागी हो गये और देशभ्रमण को निकल पड़े।<sup>४</sup> प्रसिद्ध है कि देहली में उनकी मुहम्मद बिन तुगलक से भी भेंट हुई थी।<sup>५</sup> उत्तर भारत का भ्रमण कर वे पंजाब में रहने लगे थे।<sup>६</sup> मेकलिक साहय का कहना है कि नामदेव ने अपने पंजाब निवास काल में बहुत से हिन्दी पद कहे थे, प्रथमसाहय में इन्हीं का संग्रह किया गया है।<sup>७</sup> इनके गुरु के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। मरुमाल के अनुसार इनके गुरु संत ज्ञानेश्वर थे।<sup>८</sup> मीकनिल साहय बिलोना जेवर नामक एक भायपंथी संत

<sup>१</sup> नामदेव नाम के बहुत से सन्त हुए हैं। निर्गुण विचारधारा वाले सन्त नामदेव सन्त ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। विरिपु—

उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—पृ० परशुराम जनुषेरी—पृष्ठ १०५

<sup>२</sup> विन्ध्यविष्णु दीविष्णु—मंडारकर—पृष्ठ ९२

<sup>३</sup> नामदेव बसावत्री—मन्देश्वरते बर्मा—पृष्ठ ११ भूमिका

<sup>४</sup> उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—पृष्ठ १०५ १०९

<sup>५</sup> मिश्र रितीव्रत—मीकनिक—भाग ६, पृष्ठ ११२०

<sup>६</sup> नामदेव—डॉ० ए० जेम्स—मद्रास—पृष्ठ २०

<sup>७</sup> मेरीकण मिस्त्रीविष्णु पृष्ठ ५५ (१९२९)

<sup>८</sup> मिश्र रितीव्रत—भाग ६—पृष्ठ ४०

<sup>९</sup> मरुमाल—हरिमणि प्रकाशिका—जगन्नाथसाहू बम्बई—पृष्ठ २९४ (सं० १६८९)

### हिन्दी की नियुक्त सम्बन्धों और उच्च शैक्षणिक दृष्टि

को इनका गुरु मानने के पक्ष में हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक कथा भी दी है। जनमुक्ति है कि जब नामदेव की विजोला सेवर के दर्शन करने गये तो देखा कि वे मन्दिर में शिवलिंग के दोनों और पैर डाले हुए पड़े हुए हैं। उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ। किन्तु जब उन्होंने उनकी आवाज से उनके पैर हटाने की चेष्टा की तब उनके पैरों के साथ-साथ शिवलिंग भी भूमने लगा। वे उनके इस महारम्य को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़े और उनके शिष्य हो गये।<sup>१</sup> इनकी निर्वास-स्थिति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद नहीं है। मराठी इतिहासकारों के अनुसार संवत् १५२१ का इनकी निर्वास-स्थिति-माना है। मराठी इतिहासकारों के अनुसार इनका निपन संवत् १५०० में हुआ था।<sup>२</sup> निश्चित प्रमाणों के अभाव में हम इस संबंध में किसी निश्चित स्थिति का निर्देश नहीं कर सकते।

नामदेव की ही हिन्दी रचनाएँ बहुत कम उपलब्ध हैं। उनके ६२ पद वा गुरु सम्बन्धों में संक्षिप्त मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पद और भी पाये जाते हैं। जनमुक्ति है कि मुवाकाल में यह सगुणोपासक ने किन्तु बुद्धावरणा में विजोला सेवर के प्रभाव से यह नियुक्तकारी हो गये थे। इनकी हिन्दी रचनाएँ बुद्धावरणा की ही जान पड़ती हैं। उनमें हमें नियुक्त विचारवाच के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

- (१) मन्द-भाषविहीनता (२) मन की नियुक्ता
- (३) अनन्य-मन-माधना (४) सर्वज्ञान और अद्वैत-माधना (५) मक्ति-माधना
- (६) नाम-साधना (७) संभ-सेवक-माध (८) खल्य-माधना (९) उमात्र-पुषार की माधना।

(१) मन्द-भाषविहीनता—नामदेव स्वयं हीनकी भाँति के होने का कारण बर्शाभम व्यवस्था में विरक्त नहीं करते थे। फिर मक्ति-सेव में बर्शाभम व्यवस्था की उद्देश्य के माध का हीनात्मक मागत में तथा उपानुब की बाणी में पहले से ही मुका था। नामदेव ने उक्त शीघ्र को अपनी पीपुलरिणी बाणी से हीन की चेष्टा की। वे मक्ति-सेव में जानि-बाँति के समझे को निरर्थक समझते थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—जहाँ जानि-बाँति को लेकर क्या करें! मैं तो दिन-रात राम का नाम ब्रह्मा खटा हूँ।<sup>३</sup>

१ इतिहास कीर्त्तन—मैकलिकन साहब—पृष्ठ ११५  
 २ मैकलिकन मिलीसिम—विजिमाहन सेव—पृष्ठ ५६  
 ३ खिल रिबीजव—मैकलिकन—भा० ६ पृष्ठ ३७  
 ४ सत्त्व मुपासारा—भाग १—पृष्ठ ७१  
 ५ 'कहा करी जाती क्या करी पती। राम को नाम ब्रह्मो दिन राती ह'

(२) ब्रह्म की निर्गुणता—नामदेव ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप में विश्वास करते थे। इस निर्गुण स्वरूप का वर्णन उन्होंने अनेक प्रकार से अनेक स्थलों पर किया है। उस निर्गुण का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—बह निर्गुण ब्रह्म अनेक और एक वर कुल है। सर्वत्र तत्ती का प्रकथन दिश्वार् पकटा है।<sup>१</sup>

(३) अनन्य प्रेम-भावना—नामदेव प्रेमवारी संत थे। उन्होंने अपनी साधना में सबसे अधिक बल प्रेम तत्त्व को दिया है। हे राम तुम्हारी मूर्ति और नाम मुझे उसी प्रकार से अनन्य भाव से प्रिय हैं, जिस प्रकार मारवाड़ी को बल, ऊँट को सडा, मृग को नींद, पृष्ठी को सुष्टि, अमर को पुष्पों की रंघ, कोयल का आगम की और और चर्च को सुन्दर प्रिय होते हैं। इत्यादि<sup>२</sup>

(४) सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद—नामदेव में इन दोनों वादों की प्रसिद्ध हृद मूमिका पर पारि जाती है। सर्वात्मवाद के उदाहरण के रूप में उनकी निम्नलिखित पंक्ति से सकते हैं—‘सब गोविन्द है सब गोविन्द है गोविन्द विनु नहि चार्इ’।<sup>३</sup> अद्वैतवाद के लिए उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं :—

कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदै विचारी ।  
घट-घट अन्तरि सरब निरन्तरि केवल एक मुरारी ॥<sup>४</sup>

(५) भक्ति भावना—नामदेव एक महान् भक्त थे। उनकी साधना का मूल स्वर भक्ति सम्बन्धी ही है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है—

भगति भाव मूं सीवनि सीयों ।  
राम नाम विनु धरी म ओबौ ॥

<sup>१</sup> सप्त सुभा सार—भाग १ पृष्ठ ३६

<sup>२</sup> एक अनेक सुभापक पूरक मिल देजौ वित सोई ।

<sup>३</sup> सप्त सुभा सार—भाग १—पृष्ठ ५३

<sup>४</sup> मारवाड़ि जैसे नीर बाजहा, बेजि बाइया करइला ।

स्यो बुरग बिलि बाइ बाकहा, तूं मेरे मम रमइया ३

चकरी की जैसे मूर बाकहा, मानसरोवर इसका ।

स्यो तरुणी का कल्प बाकहा त्यों मेरे मम रमइया ४<sup>१</sup>

<sup>२</sup> सप्त सुभा सार—पृष्ठ ३५, पं. १

<sup>३</sup> सप्त सुभा सार—पृष्ठ ३५, पं. १

भगति करी हरि के गुन गावौ ।  
भाठ पहर अपने लसम को ध्यावौ ॥<sup>१</sup>

(६) नाम-साधना—अभी मक्ति-भावना को स्पष्ट करने के प्रसंग में हमने जो उद्धरण दिया है उसी में एक पंक्ति धार्मिक है—‘राम नाम किन धरी न धीयो’ यह पंक्ति उनकी नाम-साधना की ओर ही संकेत कर रही है ।

(७) सौम्य-सेवक भाव—नामदेव ने अपनी मक्ति में सौम्य-सेवक भाव को विशेष महत्त्व दिया है । प्रससाह्य में संग्रहित बहुत पदों से यह बात स्पष्ट प्रगट होती है ।

(८) रहस्य भावना—रनाडे ने महाराष्ट्र के रहस्यवादी संतों के विवेचन के अंतर्गत नामदेव का भी उल्लेख किया है । उन्होंने उनके रहस्यवाद को बान संभ्रातक (बिनाक्रैदिक)<sup>१</sup> रहस्यवाद कहा है । नामदेव ने अपने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति प्रायः दाम्पत्य प्रतीकों से की है । उदाहरण के लिए हम उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से सकते हैं :—

मैं, चौरी मेरा राम भरतार ।  
रवि रवि ताकी करी सिङ्गार ॥<sup>२</sup> इत्यादि

(९) समाज-सुधार भावना—नामदेव की बातों में हमें मिथ्यात्व के अत्यन्त के साथ-साथ लोच-संग्रह की भावना मिलती है । हम दोनों ने ही उन्हें सुधारक का रूप दे दिया था । मूर्तिपूजा का अत्यन्त करते हुए उन्होंने एक स्थल पर लिखा है—‘कितनी पूजा करूँ मुझे तो कोई बूढ़ा दिलार ही मही पकता । लाग एक परपर को पूजते हैं और बूढ़े परपर पर पर रखत हैं । यदि परपर देखता हो सकता है तो हम भी देखता हो सकते हैं ।’<sup>३</sup> इसी प्रकार लोच-संग्रह की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने खान-खान पर सबाबार का उपदेश दिया है । एक स्थल पर ये लिखते हैं—

<sup>१</sup> सन्त सुभा सार—पृष्ठ ३९, पं. १

<sup>२</sup> मिस्त्रीसिद्धा इन महाराष्ट्र—पृष्ठ २८६

<sup>३</sup> सन्त सुभा सार—पृष्ठ ३८

<sup>४</sup> सन्त सुभा सार—पृष्ठ ५३

“कितनी पूजा करूँ मुझे तो कोई बूढ़ा दिलार ही मही पकता ।  
लाग एक परपर को पूजते हैं और बूढ़े परपर पर पर रखत हैं ।  
यदि परपर देखता हो सकता है तो हम भी देखता हो सकते हैं ।”  
इसी प्रकार लोच-संग्रह की भावना से प्रेरित होकर  
उन्होंने खान-खान पर सबाबार का उपदेश दिया है । एक स्थल पर ये लिखते हैं—  
जो भी देख तो हम की देख करै नामदेव हम हरकी सेवा ।”

‘हे मन, तू विषय-वासनाओं के बीहड़ वन में क्यों फँस रहा है। तू मोह-स्त्री का भी मूर लाकर भूल गया है। तू संसार में इसी प्रकार मामा-भाई के बाल में फँसा हुआ है जिस प्रकार मछली बाल में खड़ी हुई बाल में फँस जाती है।’<sup>१</sup> इत्यादि।

यदि नामदेव की बानियों का और सङ्गठना से अध्ययन किया जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि नामदेव शुद्ध निर्गुणप्राय के ही कवि थे। यदि उन्हें निर्गुणप्राय का प्रवर्तक न भी माना जाय तो भी उन्हें उसकी आभास-भूमि का एक दृढ़ स्वप्न तो कह सकते हैं। डा० मोहनसिंह का यह कहना है कि कबीर आदि नामदेव से बहुत प्रभावित हुए हैं, पूर्ण सार्थक है।<sup>२</sup>

त्रिलोचन—ग्रंथ साह्य में संत क्लिपचन की भी कुछ रचनाएँ संकलित हैं। यह पंढरपुर के निवासी एक वैश्य थे। इनका अन्तर्ग्रन्थ संवत् १३२४ के आस-पास निश्चित किया जाता है।<sup>३</sup> फरक़ुहर साहब ने इन्हें नामदेव का समकालीन माना है। मस्तमाल में इन्हें नामदेव का शुक्राई बताया गया है। उतमें लिखा है कि दोनों ही संतों ने संत ज्ञानदेव से दीक्षा ली थी।<sup>४</sup> विल गुरु अर्बुन देव ने तथा संत रेदास ने इनके प्रति अद्भुत प्रकट की है। इससे इनका महत्त्व स्पष्ट है। वास्तव में यह एक उष्ण कोटि के संत थे, यह हमारा दुर्भाग्य है कि उनकी अल्प रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

सुदन—कबीर के पूर्ववर्ती संतों में संत सुदन का नाम भी बड़ी अद्भुत से लिया जाता है। ग्रंथसाह्य में इनका भी कुछ पद संकलित हैं। यह जाति के कव्याई थे। कहते हैं कि जिस साक्षिप्रान की बढिया की पूजा करते थे उसी से वह मांस भी तोलते थे। एक दिन एक क्षापी ने उनकी अद्भुत मक्ति देखकर उन्हें उपदेश दिया। उस उप-

<sup>१</sup> काहे रे मन विषया वन जाह  
मूला रे का मूरी गार्ह

दिये मीन पासी में रहे।—सम्बत सुपा सार—पृष्ठ ४९

<sup>२</sup> कबीर पण्ड ही मक्ति मूवमेष्ट—डा० मोहनसिंह—भाग १—पृष्ठ ४८

<sup>३</sup> वन साइड साह्य काठ रिहीजस किररेबर काठ हृषिकवा—

म फरक़ुहर, पृष्ठ १८० ३००

<sup>४</sup> अरनमाछ—पृष्ठ ३९३

‘विष्णु स्वामी सङ्गप्रदाय द्यु नामदेव गम्भीर मति।

नामदेव प्रिस्ताचन सिष्य मूर शक्ति सरता उजागर ३’

<sup>१</sup> हेरिये—गुरु प्रथमसाह्य—अष्टमपर (१९५१) पृष्ठ ११९२

<sup>२</sup> ‘नामदेव कबीर प्रिस्ताचन सुदन सैन चरे’—रविदास



वेश से उनके हृदय-रूपार सुल गुण और सही दिन से बह संत हो गये। डा० राम-कुमार वर्मा ने इनका रिपब्लिकन १४वीं शताब्दी का मध्यमाय निरूपित किया है।<sup>1</sup>

**वेणी—**ग्रंथसाहस में किन संतों की बानिवाँ संश्लिष्ट हैं उनमें से वेणी भी एक है।<sup>2</sup> अभी तक इनका कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं हो सके है। किन्तु गुरु अर्जुन देव ने अपने पूर्ववर्ती संतों के उल्लेख के प्रसंग में इनके प्रति भी भ्रष्टा प्रकृत की है।<sup>3</sup> ग्रंथसाहस में इनके जो पद संश्लिष्ट हैं उन पर बौद्धिक प्रभाव कुछ अधिक दिखाई पड़ता है। यह संभवतः गोरख के परवर्ती और रामानन्द के पूर्ववर्ती संत हैं।

**रामानन्द—**गणकालीन हिन्दी-साहित्य में स्वामी रामानन्द का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह युगप्रवर्तक आचार्य थे। हिन्दी-साहित्य के मन्दिपत्र के तो यह एकमात्र कर्षाकार ही थे। उसकी उगुण और निर्गुण पारम्यों का विरूपण इन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप हुआ था। इनका जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। मन्तमाला सदीक में संवत् १३५६ को इनकी जन्म-तिथि माना गया है।<sup>4</sup> मिशरुन साहस<sup>5</sup> एवं डाक्टर भंडारकर<sup>6</sup> भी मन्तमाला के इस मत से सहमत हैं। फुडुंहर साहस<sup>7</sup> और की साहस<sup>8</sup> का मत इनसे भिन्न है। उनके अनुसार इनका रिपब्लिकन १४०० से लेकर १४०० ई० तक माना जाना चाहिए। किन्तु इनके मत को अधिक सम्बद्धता नहीं मिल सकती है। अभिधाय विद्वान् मन्तमाला सदीक के मत के ही पक्ष में हैं। मैं उतसे सहमत नहीं हूँ। मेरी अपनी धारणा है कि वे संवत् १३५५ के आसपास जन्म हुए थे। मेरे इस मत के आधार प्रसंग-पारिजात<sup>9</sup> नामक ग्रंथ और वह जनभुक्ति विनिके अनुसार रामानन्द की आयु १२ वर्ष की मानी जाती है। प्रसंग-पारिजात नामक ग्रंथ के लेखक एक साधु हैं। इन्होंने लिखा है कि रामानन्द संवत् १३०५ में स्वर्ग गयीं हुए थे। उतने यह भी लिखा है कि वह स्वामी रामानन्द की बर्षों में स्वर्ग उपस्थित था। एक साधु की बात में आविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

<sup>1</sup> हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृष्ठ ३३३

<sup>2</sup> गुरु ग्रंथसाहस—अमृतसर (१९५१) पृष्ठ ११९९

<sup>3</sup> श्री भक्तमाल सदीक—पृष्ठ १०३

<sup>4</sup> वैष्णवग्रन्थ शोधग्रन्थ—पृष्ठ ६६

<sup>5</sup> जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (१६२०) पृष्ठ ३३३

<sup>6</sup> एन साइड साइल आफ रिनीजस डिस्टेन्स आफ इतिहास

<sup>7</sup> कबीर पदक दिव्य आतोषस—पृष्ठ २०

<sup>8</sup> रामानन्द और प्रसंग-पारिजात—हिन्दुस्थानी कलकत्ता, १६३९

बनभुक्ति क अनुसार रामानन्द ने १२० वय की लम्बी आयु प्राप्त की थी। १५०५ में १२ वय पढ़ाने पर १३८५ शोध करते हैं। मेरी हृदय धारणा है कि स्वामी रामानन्द का जन्म संवत् १३८५ में ही हुआ था। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। कबीर का जन्म संवत् १४५५ में माना जाता है। कबीर के जन्मकाल के समय रामानन्द की आयु लगभग ७० वय की होगी। गुरु और शिष्य की आयु में इतना अंतर होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसके विपरीत यदि १३५५ को रामानन्द की जन्म-तिथि स्वीकार किया जाय तो कबीर को रामानन्द का समकालीन सिद्ध करने में थोड़ी कठिनाई पड़ेगी। उस अवस्था में कबीर के जन्मकाल के समय में रामानन्द की आयु १०० वर्ष से ऊपर माननी पड़ेगी। फिर कबीर ने लगभग २०-२५ वर्ष की आयु में शिष्यत्व भी ग्रहण किया होगा। उस दशा में कबीर के रामानन्द का शिष्य होने में संदेह हो सकता है। अतएव उनका जन्मकाल संवत् १३८५ को ही मानना चाहिए।

श्री लोग कबीर का जन्मकाल १३५६ मानते हैं उनमें से अधिकांश विद्वान् कबीर को रामानन्द का शिष्य स्वीकार नहीं करते। किन्तु मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ। कबीर रामानन्द के ही शिष्य थे। मच्छमाल<sup>१</sup>, दक्षिणाने मन्नाहिन<sup>२</sup> और तब कीरत कुच्छ<sup>३</sup> नामक ग्रंथों में कबीर को रामानन्द का ही शिष्य कहा गया है। कबीर की बानियों से भी यही प्रकट होता है कि वह रामानन्द के ही शिष्य थे। डा० इनाम मुन्दर दास भी कबीर को रामानन्द का ही शिष्य मानते थे।<sup>४</sup>

रामानन्द ने बहुत सी संकल्प-रचनाएँ लिखी थीं। इन रचनाओं में श्रीवैष्णव मनास्य मास्कर, रामार्चन पद्धति, आनन्द भाष्य, योग चिन्तामणि, रामरक्षा स्तोत्र विद्योत्पत्त विरोध मसिद्ध हैं। इनमें प्रायः लोग प्रथम दो को ही प्रामाणिक मानने के पक्ष में हैं।<sup>५</sup>

रामानन्द की विचारधारा का लोचनीय अध्ययन करनेवाले कुछ संशयों का कहना है कि उनमें मक्ति-भावना का ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। उस मक्ति

<sup>१</sup> शैशिवे—(१) कबीर ण्यह हिस बाहमाकी—पृष्ठ ११, १७

(२) वैष्णवविहम्म सैबहम्म—पृष्ठ ११२

<sup>३</sup> मच्छमात्र संप्रदाय—पृष्ठ ११

<sup>४</sup> पृष्ठ ११, १७

<sup>५</sup> तबकीरत कुच्छा—पृष्ठ

कबीर प्रयागकी—पृष्ठ २०

रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव (अप्रकाशित भीति) पृष्ठ १२५

में ज्ञान और कर्म की उपाधि की गई है।<sup>१</sup> उन्होंने उनकी विचारधारा में यौगिक तत्त्वों की मान्यता स्वीकार नहीं की है। किन्तु मेरी अपनी यह धारणा है कि रामानन्द ज्ञान, भक्ति, योग एवं वैराग्य—इन चारों के मिलनबिन्दु थे। उनकी इस सम्मन्वय की प्रकृति में सभी परवर्ती सत्तों को प्रभावित किया है। जहाँ तक भक्ति और वैराग्य की बात है, इस सम्मन्वय में दो मत नहीं हैं। सभी विद्वानों की निश्चित धारणा है कि रामानन्द की विचारधारा में इन दोनों तत्त्वों को विशेष महत्त्व दिया गया है। रही योग के सम्मन्वय की बात, इसको स्वर्गीय ब्रह्मबाल अपनेक प्रमात्तों से सिद्ध कर चुके हैं कि रामानन्द योग-साधना में भी विश्वास करते थे। जहाँ तक ज्ञान तत्त्व का सम्मन्वय है, रामानन्दमानव एवं अस्पृश्यमानव के पढ़ने से ज्ञान हो जाता है कि रामानन्दी सम्प्रदाय में उक्तकी उपाधि नहीं की गई है<sup>२</sup>। अतएव यह मानने में कितनी को आपत्ति न होनी चाहिए कि रामानन्द, ज्ञान भक्ति, वैराग्य और योग के मिलनबिन्दु थे।

समस्त परवर्ती तत्त्व लोग उनकी इस प्रकृति से पूर्णतया प्रभावित हैं। रामानन्द ने भक्ति-क्षेत्र में बर्खामम कर्म की प्रतिष्ठा की और भी संकेत किया था।<sup>३</sup> अन्य लोगों को उनकी इस प्रकृति से भी प्रेरणा मिली होगी। सत्तों का रामानन्द की हैन है।<sup>४</sup>

रामानन्द ने एक सम्प्रदाय प्रवर्तित किया था जो भी सम्प्रदाय, रामानन्दी सम्प्रदाय और रामानन्द सम्प्रदाय से प्रसिद्ध है। कुछ लोगों के मतानुसार ये तीनों प्रलग-प्रलग हैं। रामानन्दी सम्प्रदाय का अनुयायी लोग कुछ अव्यक्त<sup>५</sup> कहलाते हैं

<sup>१</sup> बही, पृष्ठ २४५।

<sup>२</sup> योगसमाह—पृष्ठ

<sup>३</sup> रामानन्दमानव, १११२ में ज्ञान-पक्ष की महत्ता प्रकाशित से प्रकृत की गई है।

<sup>४</sup> इन्साइक्लोपीडिया आफ रिर्जीजन एंड डेवियस, वाशिंग्टन—१, पृष्ठ—२८०

<sup>५</sup> वैदिक रामानन्दमानव—१११२ 'इस राम का ही एकमात्र ब्रह्म कहा गया है।

<sup>६</sup> अव्यक्त शब्द का अर्थ है कि जिसकी धारणा हीनों सम्प्रदायों के सत्तों के लिए किया जाता है। इस अव्यक्त अर्थ का अर्थ यह है कि जीवन के प्रति वे पूरे उदारतापूर्ण रहते हैं। ब्रह्मादि भी बहुत कम परवर्ते हैं। गार्हपत्य आदि अव्यक्त कहे जाते हैं।

वैदिक अव्यक्त रामानन्दी ज्ञान है। रामानन्द ने सत्तों को अव्यक्त कहा है। वे लक्ष प्रकाश के धार्मिक और सामाजिक भेदभावों से उत्तरदायक रहते हैं।

देखिये—इन्साइक्लोपीडिया आफ रिर्जीजन एंड डेवियस—भाग २—पृष्ठ १९६

कर्मो ... विषय-विवेक

और कुछ बेरागी। इन दोनों साधु-सम्प्रदायों में वेशभूषा और मान्क्या-सम्बन्धी अन्तर भी है। रामानन्द के इन दोनों साधु-सम्प्रदायों ने निगणियाँ सन्तों को कुछ क्रियात्मक और कुछ प्रतिक्रियात्मक प्रेरणाएँ अवश्य प्रदान की होंगी। रामानन्द फ बहुत से शिष्य थे। इनमें से अधिकांश की बिबार्त्वारि निर्गुण ही थी। इनमें पद्मा, पीपा और सेन की विशेष ख्याति है।

पद्मा—रामानन्द के शिष्यों में पद्मा साहब का स्थान भी ऊँचा है। यह जाति के बाट थे। इनका जन्मकाल १४०२ के आस-पास निश्चित किया जाता है।<sup>१</sup> मछमाल और उसकी टीकरी उनके सम्बन्ध में बहुत-सी अलौकिक घटनाएँ दी गई हैं। गुरु अर्जुनसिंह ने इनके धरल स्वभाव की प्रशंसा की है। गुरु प्रण्यसाहब में इनके तीन पद संक्षिप्त हैं।

पीपा—यह भी कबीर के समकालीन सन्त हैं। रामानन्द के शिष्यों में इनका भी स्थान महत्त्वपूर्ण है। बैराग्य ग्रहण करने के पूर्व यह गरीब गढ़ के अधिपति थे। मछमाल में इनके सम्बन्ध में भी बहुत-सी प्रशंसनात्मक बातें कही गई हैं। उसमें उन्हें एक उष्ण काटि का सन्त बतलाया गया है।<sup>२</sup> फर्रुख साहब ने इनका जन्मकाल संवत् १४८२ निश्चित किया है।<sup>३</sup> में भी इसी तिथि के पद में हैं। प्रण्य साहब में इनके भी कुछ पद संग्रहित हैं।

सेन—यह भी रामानन्द के शिष्य थे। इनका स्थितिचल कबीर से कुछ पहले माना जाया है। यह जाति के मारि थे और शोधगढ़ के राजा की सेवा करते थे। इनका बैराग्य ग्रहण के सम्बन्ध में मछमाल में एक सुन्दर कथा दी हुई है। करते हैं एक बार साधु-सन्तों की सेवा में लगे रहने के कारण वह अपने स्वामी के पास समय पर नहीं पहुँच सके। भक्त की असमर्थता देखकर भगवान् राम ने सेन का रूप धारण करके उचित समय पर ही राजा की सेवा स्वयं की। इस रहस्य का पता उस समय जाता जब कि उन्होंने विसम्भ के लिए राजा से क्षमा-याचना की। प्रण्यसाहब में इनका जो पद संग्रहित हैं, उनसे उनकी उच्छ्रित मन्त्रि-भावना का पता चलता है। वास्तव में वह एक उष्ण काटि के भक्त संत थे।

<sup>१</sup> इनका विवरण देखिये—इस्वाहरेत्पीडिया काक रिलीजन एवढ पृथिवस, भाग—१ पृष्ठ १२०

<sup>२</sup> दि सिंग रिलीजन—मेकनिक—भाग ६—पृष्ठ १०६

<sup>३</sup> भक्तमाल—नामादास—(सीतारामचरण भगवान्प्रसाद सम्प्रदाय) पृष्ठ ५०४

<sup>४</sup> एन आरडर काहन काक रिलीजन विवरण काक इतिहास—फर्रुख—पृष्ठ २३

<sup>५</sup> भक्तमाल—नामादास (सीतारामचरण भगवान्प्रसाद सम्प्रदाय) पृष्ठ ४५५

## निर्गुण काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि

“सुन्दर कबीर” (संवत् १४५५-१५७५)

हिन्दी की निर्गुण कल्पना के प्रवर्धक कवि सुन्दर कबीर का जीवनरूप बड़ा विवादग्रस्त है। कुछ पारंपरिक विद्वानों ने तो कबीर के अस्तित्व पर ही संदेह किया है। किन्तु इस प्रकार की धारणा अतिमूलक है। महात्मा कबीर हम लोगों के मूल्य उन्नी प्रकार अवतरित हुए थे कि प्रकाश राम, कृष्ण और बुद्ध हुए थे। भारत के महात्मानों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कबीर की कल्पना का निर्देश केवल “कबीर चरितबोध”<sup>१</sup> में किया गया है। इसके अतिरिक्त गुलाम सरवर ने अपनी “अलीगढ़ अरकिया”<sup>२</sup> में भी कबीर की कल्पना का निर्देश किया है। प्रथम ग्रंथ के अनुसार वे संवत् १५५५ में अवतरित हुए थे और दूसरे में उनका जन्मसम १५६५ बताया गया है, जो सर्वथा असम्भव है। अंतस्तापत्र में कबीर पर भी इनकी कल्पना का उल्लेख नहीं मिलता है। एक कथन से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि वह<sup>३</sup> जयदेव और नामदेव के परवर्ती थे। जयदेव और नामदेव का समय बाणेश्वरी और तेरहवीं शताब्दी का अंतिम पक्ष माना जाता है। इतना अर्थ यह हुआ कि कबीर बीसहवीं शताब्दी के प्रथम पक्ष या तेरहवीं शताब्दी के अंतिम पक्ष में हुए थे। सुन्दर कबीर रामानन्द और तिकंदर लोधी के समकालीन थे। रामानन्द का समय ११८५ से लेकर १५०५ के बीच में माना है।<sup>४</sup> कबीर की विचारधारा में मैं अपने इस मत का सर्वप्रथम प्रतिपादन कर चुका हूँ। तिकंदर लोधी का समय संवत् १५५६ से लेकर १५७५ के अन्त-पक्ष माना गया है।<sup>५</sup> यदि हम “कबीर चरितबोध” वाली विधि का स्वीकार कर लें और कबीर की आयु १२० वर्ष मान लें तो वे दाना ही के समकालीन सरलता से ठिक हो जाते हैं। अब केवल आदिवासी-बीछत सर्वे में ही हुई कबीर के रोना बनवाये जाने की विधि की समस्या रह जाती है। आदिवासी-बीछत सर्वे<sup>६</sup> आदि इतिहास में मिलता है कि बिबली लॉ में संवत् १५०० में कबीर

<sup>१</sup> कबीर चरितबोध—पृष्ठ ६

<sup>२</sup> अलीगढ़ अरकिया—११९

<sup>३</sup> माहात्म्य पृष्ठ हिन्दुधर्म—सौमित्र-विक्रम—पृष्ठ १४६

<sup>४</sup> वैष्णवधर्म सौमित्र पृष्ठ माहुर रिजोअस सिस्टम्—डा० महाशर—पृष्ठ १९

<sup>५</sup> कबीर की विचारधारा—डा० गान्धिविद्यापीठ—पृष्ठ १० ११

<sup>६</sup> हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ११५

<sup>७</sup> आदिवासी-बीछत सर्वे आदि इतिहास (शु विरोध) मार्च कैम्ब्रिज प्राइमिस, प्राग—

का रोका बनबाया था। यदि यह मान लिया जाये कि १५०७ में कबीर सतलोकगामी हो चुक वे तो कबीर की आयु केवल ५२ साल माननी पड़ेगी। ऐसी अवस्था में वह विकन्दर के समकालीन नहीं माने जा सकेंगे। किन्तु असस्ताक्ष्य के आपार पर इन दोनों का मिलना प्रमाणित होता है।<sup>१</sup> हमारी समझ में बिबलीखाने ने कबीर के जीवनकाल में ही उनके प्रति अद्भुत प्रकट करने के लिए उनका स्मारक बनबाया होगा। कबीर का जन्म बालक में १५५५ में ही हुआ था और उन्होंने सौ वर्ष से ऊपर की ही आयु प्राप्त की थी। अनन्तदास ने अपनी परिचर में कबीर की आयु १२० वर्ष ही बतलाई है।<sup>२</sup> कबीर जैसे समयी महात्मा के लिए इतनी आयु अधिक नहीं है। मैं भी उनकी इतनी ही आयु मानता हूँ। इस दृष्टि से उनकी निबन्ध-विधि १५७५ निश्चित होती है। कबीर के जन्मस्थान के संबंध में अधिकतर लोगों का विश्वास है कि यह बनारस में उत्पन्न हुए थे। किन्तु मेरी दृढ़ धारणा है कि उनकी जन्मभूमि मगहर थी। उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि सारा जीवन धरती में व्यतीत करके मगहर चले गये।<sup>३</sup> एक दूसरे स्थल पर उन्होंने यह भी लिखा है कि मुझे जीवन में सबसे पहले मगहर के दर्शन हुए थे, बाद में मैं फिर काशी में जाकर बस गया।<sup>४</sup> बालक में यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी जन्मभूमि पर ही मूर्त्ता चाहता है। सम्भवतः इसीलिए कबीर जन्म समय में मगहर चले गये थे और वहीं पर वह सतलोकगामी भी हुए।

कबीर की जाति के सम्बन्ध में भी बहुत मतभेद है। सबसे अधिक प्रचलित और प्रामाणिक मत आचार्य हजारीप्रसाद जी का माना जाता है। उन्होंने अनेक वर्षों के आपार पर कबीर-को आभममन्त्रजुगी जाति का रत्न सिद्ध करने की चेष्टा

<sup>१</sup> कबीर प्रत्यावर्त्ती—पृष्ठ २०३

‘मति घषाह बज गहिर गमीर,

बापि बनीर ठाढ़ हैं कबीर।

बज की तरग उठ करिहै कबीर,

हरि सुमरत तर बैडे हैं कबीर ॥

(इस पद में विकन्दर मोदी द्वारा कबीर के प्रति किये गये अपाचारों का संकेत है।)

<sup>२</sup> अनन्तदास की परिचर—पृष्ठ

<sup>३</sup> सम्य कबीर राग गङ्गुड़ी—१५

‘सकन बनम शिबपुरी गषाहपा, मरती बार मगहर उदि धाहवा’

<sup>४</sup> सम्य कबीर—राग रामली—३

‘पहमे दरमज मगहर पापा पुनि कासी बने धाई।

<sup>५</sup> कबीर—द्वितीयप्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ—५—११

की है। आचार्य जी के प्रति गुणवत् भद्रा रखते हुए भी मैं उनके मत से सहमत नहीं हूँ। मेरी दृष्टि धारणा है कि कबीर बुलाहा वासि के ही रूप थे। अपने इस मत का प्रस्तापन मैं 'कबीर की विचारधारा' में अनेक उदाहरण उद्धरणों के आधार पर कर चुका हूँ।<sup>१</sup> कबीर के माता-पिता के संबंध में भी मतभेद नहीं है। कुछ लोग उन्हें दिव्य गणितम्भूत महापुरुष मानते थे।<sup>२</sup> कुछ के अनुसार वह नीरु और नीमा के पोष्य पुत्र थे। कुछ लोग नीरु और नीमा को ही उनका वास्तविक माता पिता मानते थे। एक जनश्रुति के अनुसार वे किसी बिचवा ब्राह्मणी के गर्भ से संभूत हुए थे। मैं अंतिम मत से पहले मत के ही पक्ष में हूँ। यदि कबीर नीरु और नीमा के पोष्य पुत्र होते तो नीमा उनका बुलाहा वासि विरुद्ध आचार को देखकर रोती नहीं। वहाँ तक प्रथम मत और अंतिम मत की बात है वह बहुत कुछ भ्रष्ट-भेदिता है। कबीर के गुण के सम्बन्ध में भी तीन मत प्रचलित हैं—कुछ लोग कबीर के किसी मानव गुण होने के पक्षगामी नहीं हैं।<sup>३</sup> कुछ दूसरे विद्वानों के अनुसार वे शैल तपी का भूत थे।<sup>४</sup> अधिकांश विद्वान् उन्हें रामानन्द का शिष्य मानते हैं। मैं भी इसी मत का समर्थक हूँ। अंतस्थापन और बहिस्थापन से इसी मत की पुष्टि भी होती है। कबीर की विचारधारा में अनेक उदाहरण उद्धरणों का आधार पर मैं इस मत का पोषण कर चुका हूँ।<sup>५</sup>

कबीर संभवतः पहरब भी थे। अंतस्थापन से ऐसा प्रमाणित होता है कि उनके दो शिष्यों की एक का नाम शार्द या और दूसरी का रमबनिवाँ। कहते हैं इनके दो पुत्र कबीर पुत्री भी थे। इनके एक पुत्र का नाम कमास या बिलसे संभवतः कबीर बमूत प्रथम नहीं रहते थे। यही बाद में कबीर-पंथ की एक शाखा के प्रवर्तक हुए थे।<sup>६</sup>

कबीर कुछ पढ़े लिखे न थे। यह बात 'बिदिया न परछों बाद नहि जानैं' से प्रकट होती है। ऐसी अवस्था में उन्हें बीबिधनार्जन के लिए पैतृक व्यवसाय का ही आश्रय लेना पड़ा था। किन्तु उन्हें उनका मत नहीं लगता था। वह अपना अधिकांश समय सत्यवति और पर्यटन में ही व्यतीत करते थे। उन्होंने जगन्नाथपुरी,<sup>७</sup>

<sup>१</sup> कबीर की विचारधारा—डा० त्रिगुणाचल—पृष्ठ १०४

<sup>२</sup> कबीरपंथी लोग ऐसा ही मानते हैं।

कबीर की विचारधारा—डा० त्रिगुणाचल—'कबीर का जीवनचरित'

<sup>३</sup> कबीर विद्वान् ब्राह्मणी—डा० मोहनसिंह पृष्ठ १२१४

<sup>४</sup> कबीर पहर दि कबीर बमूत—पृष्ठ १५

<sup>५</sup> कबीर की विचारधारा—डा० त्रिगुणाचल—पृष्ठ ४२४०

<sup>६</sup> मात कबीर—नागविभाजन—१

<sup>७</sup> देवस्त—दक्षिण—भाग २ पृष्ठ २२६

खनपुर,<sup>१</sup> बगदाद, समरकंद,<sup>२</sup> गुजरात,<sup>३</sup> पंटरपुर,<sup>४</sup> आदि स्थानों की यात्रा की थी। हरम और कब्रों को वह न मालूम कितनी बार गये थे।<sup>५</sup>

आबकल कबीर के नाम पर एक बिल्लूत साहित्य उपलब्ध है। विसयन साहब न कबल कबीर के आठ ही ग्रंथों का उल्लेख किया था। बेरकत साहब ने उनके नाम पर बपावी ग्रंथों की सूची दी है। विमलचंद्र ७५ ग्रंथों का कबीर रचित मानते थे। डा० रामकुमार वर्मा ने खामरिपादों के आधार पर कुल ६१ ग्रंथ ही कबीर के लिखे हुए बताये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा के अमरकशित विकरवों के आधार पर कबीर १३० ग्रंथों के रचयिता मान जाते हैं।<sup>६</sup> इनके अतिरिक्त भी कबीर के नाम पर देश में कई सौ बानियाँ प्रचलित हैं। कुछ बानियों का संग्रह आचार्य क्षितिमोहन सेन ने किया है।<sup>७</sup> इतने विशाल साहित्य में यह निश्चय करना कि कबीर की वास्तविक बानियाँ कौन सी हैं, बड़ा कठिन है। मिने कबीर-ग्रन्थानवली और संत कबीर में संग्रहित बानियाँ का ही प्रामाणिक माना है। बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित ग्रंथों की भी अधिकांश बानियाँ प्रामाणिक प्रतीत होती हैं। किंतु उनका प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए हमारे पास पर्याप्त तर्क नहीं हैं।

### धर्मदास (संवत् १५५०-१६२५)

धर्मदास भी कबीर के सर्वाधिक विषय शिष्य थे।<sup>८</sup> इनकी जन्म तिथि का निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। इनकी तिथि का निर्णय करने में इनकी गरी की गुप्त-परम्परा थोड़ी बहुत सहायक होती है। इनसे लेकर आज तक १५ गुप्त गरी पर आसीन हो चुके हैं।<sup>९</sup> प्रत्येक महत्त्वा का गरीफल औसत से ३५ वर्ष

<sup>१</sup> मुहम्मदाब्दुलबारीय (दिफती संस्करण) पृष्ठ ७३

<sup>२</sup> कबीर संघर्ष पृष्ठ १०३

<sup>३</sup> मेरीचक मिस्ट्रीसिम्स—क्षितिमोहन सेन पृ० ९० (१९२९)

<sup>४</sup> गृहस्थी भाग की मराहट्-दापीयुक्त—भाग २—पृष्ठ ७०६

<sup>५</sup> सप्त कबीर पृष्ठ १६२

<sup>६</sup> क्षितिमोहन कबीर की विचारधारा पृष्ठ ५९

इस काव्य हृदय हृदय गया कभी बार कबीर।

<sup>७</sup> क्षितिमोहन—कबीर की विचारधारा—पृष्ठ ५५ ६०

<sup>८</sup> सप्त बार्बा संग्रह भाग—२ पृष्ठ ३०

बाबा बाबा रहित का पदा अगर में मार।

मर सरगुरु मंग कबीर है नगर न भाव मार।

<sup>९</sup> इतरी भारत की गुप्त-परम्परा—पृष्ठ २६९



मानना चाहिए। ऐसी अवस्था में उनका जन्मभ्रम १५वीं शताब्दी के अंतिम चरण में मानना पड़ेगा। कबीरदास के बाद वह गरी पर आसीन हुए थे। उक्त समय उनकी आयु कम से कम २५ वर्ष की अवस्था होगी। कबीर का निधन-काल हमने १५७५ निर्दिष्ट किया है। ऐसी अवस्था में इनका जन्म-काल १५५० के आसपास मान लेना अनुचित न होगा। किंतु ऐसी स्थिति में प्रत्येक गुण का औचित्य गरीबकत कुल और अधिक मानना पड़ेगा। संत-महात्माओं के लिए ५० वर्ष तक का औचित्यकाल अधिक नहीं कहा जा सकता। आखिर वह लोग वे तो कबीर और रैदास जैसे दीर्घ आयु महात्माओं के शिष्य ही। परमदास भी ने भी ७५ वर्ष से कम की आयु नहीं प्राप्त की होगी। ऐसी अवस्था में उनकी निधन-स्थिति १६२५ के आसपास माननी पड़ेगी, किंतु ये स्थितियाँ हैं अनुमानित ही। इनके सम्बन्ध में विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है। वह जाति के कबीरन वैश्य थे<sup>१</sup>, पंथ में दीक्षित होने से पहले इनका नाम सुहावने था। अन्य संतों के सदृश वह भी गृहस्थ थे। इनकी पत्नी का नाम आम्बिका और उनके दो पुत्रों के नाम क्रमशः नारायणदास और पूरामणि थे। कबीर के सदृश उन्होंने भी परमदत्त बहुत किया था।<sup>२</sup> झारिका, जगन्नाथपुरी, गवा आदि तक यह गये थे। जैसे तो वह बाँबनगढ़ तक निवासी थे किंतु उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग बनारस में व्यतीत किया था।<sup>३</sup> यह कबीरपंथ की कुशीगढ़ी शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी रचनाओं की भी अभी तक सम्यक खोज नहीं हो सकी है। इनकी सबसे प्रमुख रचना 'आमर मूल निधान' है। इसके अतिरिक्त बहुत ही बानियों का संग्रह दैत्यवेदियर ग्रंथ से भी प्रकाशित हुआ है।

### नानक (संवत् १५२६-१५६५)

गुरु मानक का जीवन-चरित्र उनकी विविध जन्म-साक्षियों में मिलता है। उनके जीवन की बहुत ही बारी विविध जनश्रुतियाँ से भी प्रकट होती हैं। इतने जन्म-साक्षियों और जनश्रुतियों में कुछ बारी इतनी अतिशयोक्तिपूर्ण मिलती है कि सच्चा प्राप्त नहीं होती है। इतना होते हुए भी गुरु नानक की जन्म-स्थिति, निर्वाण-स्थिति माता-पिता, जन्म-स्थान, व्यवसाय आदि के विषय में अधिकांश विद्वानों में मतीय है। प्राप्त प्रामाणिक विवरणों के आधार पर इनकी जन्म स्थिति संवत् १५२६ निर्दिष्ट की गई है। पांडा या मयमेद इनके जन्म क महीने के विषय में है। बाबा द्युर्गति<sup>३</sup>

<sup>१</sup> उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृष्ठ २१९

धरमदास एक बतिया हो की कूड़ी बाजार हो।

<sup>२</sup> उत्तरी भारत की संत-परम्परा—श्री परमुराम कुशीगढ़ी—पृष्ठ २७०

<sup>३</sup> हिन्दी साहित्य के आत्मचरित्रक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृष्ठ २८३

धरम सुनसिपान की निम्न परिण लच्छन है—

“झारिका जगन्नाथ होइ आप गवा बनारस गाव महाव।”

अधिक को इनका जन्म प्राप्त मानने के पक्ष में हैं। रोप विद्वान् बेशक मात शुक्ल पत्र की स्त्रीया को ही इनका जन्मस्थल सिद्ध करते हैं।

इनके पिता का नाम कालूर्ध्व और माता का नाम तृसा देवी मतलाया जाता है। अश्वत्थ पंचांग के उत्तरवर्ती नामक गाँव के पठवारी थे। नानक का जन्म इसी गाँव में हुआ था। आबकल यह गाँव नानकाना नाम से प्रसिद्ध है और सिक्खों का बहुत बड़ा तीर्थस्थल माना जाता है।

नानक के बाल्यकाल और युवावस्था से सम्बन्धित अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इनमें से अधिकतर किंवदन्तियों में उनके असौक्य चरित्र और महिमा का ही संकेत किया गया है। विस्तारमय से हम उन किंवदन्तियों का उल्लेख नहीं कर सकते। बचपन से ही यह चिंतनशील, सरल स्वभाव और उदासीन प्रकृति के थे। युवा होने पर इनके पिता ने इन्हें व्यवसाय में लगाने की चेष्टा की किन्तु इनका मन भिन्नी व्यवसाय में न लग सका। यह सर्वप्रथम भगवद्भक्ति में लक्ष्मी रहते थे। कहते हैं कि किसी मूला नामक व्यक्ति की सुपुत्री सुलक्ष्मी के साथ इनका विवाह हुआ था और उससे इन्हें दो पुत्र भी प्राप्त हुए थे। उनके नाम अमरश भीचन्द्र और सखीचन्द्र थे। भीचन्द्र ने भी युवा होने पर अपने पिता का अनुगमन किया और एक प्रसिद्ध संत हुए। उदासी अग्रदास का प्रवर्तन उन्होंने ही किया था। इनका वैवाहिक जीवन में एक किंवदन्ती है उसके अनुसार यह कुछ दिन के लिए एक मोदीखान में नाकर हो गये थे। कहते हैं एक बार आठ तीसरे समय वह इतने मान-निम्न हो गये कि तेरह की संख्या आने पर तेरह-तेरह करते हुए मोदी का धारा आटा ग्राहक को देने लगे। मोदी ने अग्रसप्त होकर उन्हें नौकरी से हटा दिया। उसी दिन से वह विरक्त होकर देश-भ्रमण को निरत पड़े। मर्दाना नामक एक गवैया इनका बड़ा मित्र था। यह उसके साथ बैठकर भजन गाया करते थे। यात्रा में वह उसे भी साथ ले गए। इन्होंने बहुत दूर-दूर तक यात्रा की थी। यहाँ तक कि वह बगदाद भी गए थे। वहाँ पर इनकी समाधि अब तक बनी हुई है और समाधि पर तुर्की भाषा में लिखा हुआ एक श्लोक भी लगा हुआ है। वहाँ का एक उपद्वयानदान इस समाधि की देख-रेख करता है। इनकी जन्म-शालियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनकी मृत्यु रोप फरीद से हुई थी। फरीद की संत शकारगंज की बंश-परम्परा के थे। स्वच्छाह्वर में इनके भी कुछ पद दिए हुए हैं।

१ इम्माह्वरवर्तीहिवा काक रिर्वाअन पृष्ठ पधिरस—भाग ९—पृष्ठ १८१  
 २ इम्माह्वरवर्तीहिवा काक रिर्वाअन पृष्ठ पधिरस—भाग ९—पृष्ठ १८१  
 ३ इम्माह्वरवर्तीहिवा काक रिर्वाअन पृष्ठ पधिरस—भाग ९—पृष्ठ १८१  
 ४ मरीचत विस्तीरिअ—आचार्य सित्तिसोहन सेन पृष्ठ १०९ (१९९९)

अंतिम दिनों में गुरु नानक पंथाव में ही आकर रहने लगे थे। इतक समय इनका सहजा मानक शिष्य इन्हें सबसे प्रिय हो चला था। उन्होंने गुरु की गरी अपने श्रीकन्यास ही में सहजा को दे दी थी। इसके पश्चात् वह अजोरापुर आरक्षणी गुप्तों द्वारा संवत् १५६५ में एक पेड़ के नीचे बाढ़ गुरु बहल हुए समाहित हो गये। मानक ने बहुत से पद, साहित्य और मन्त्र लाले थे। उनमें से अधिकांश गुरु ग्रन्थ साहज में संग्रहीत हैं। कहते हैं इनकी बहुत सी अर्थात् रचनाएँ बगदाद समाधि-स्थल पर रली हुई हैं।<sup>१</sup> उनके हिन्दी में स्मारकित करने की बड़ी आवश्यकता है।

### रैदास (संवत् १४६१-१५६७)

संत रैदास का वास्तविक नाम रविदास था।<sup>२</sup> रैदास, रईदास, रूहिदास, राय दास आदि उन्हीं के विद्वत् और अपभ्रंश रूप हैं। बहिस्ताव<sup>३</sup> और अतस्ताव<sup>४</sup> के प्रमाणों से यह प्कार जाति के एक सिद्ध होते हैं। संत रैदास की जन्म तिथि और निर्वास-काल का कहीं पर भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। रविदासी सम्प्रदाय के महन्तों का कहना है कि वह माघ पूर्णिमा को रविवार के दिन उत्पन्न हुए थे। किसी निश्चित संवत् का निर्देश वह भी नहीं करते हैं। बहिस्ताव<sup>५</sup> के प्रमाणों के आधार पर इनकी सम्भावित जन्म-तिथि १४०१ विक्रमी प्रकृत होती है। कुछ पंडितों की गणना के अनुसार इसी संवत् में माघ पूर्णिमा रविवार को पड़ती भी है। अतएव मैं इसी का उनकी जन्म-तिथि मानता हूँ। इसी संवत् को जन्म-तिथि स्वीकार कर लेने से यह उल्लेख

<sup>१</sup> मेदिनीक मिस्रीसिद्धि—जाचार्य इतिमोहन सेन—पृ० १ २

<sup>२</sup> इस्तावकपीडिका काफ दित्रीअप पृष्ठ एविशु—भाग ९—पृष्ठ ३८१

<sup>३</sup> इस मत का समर्थन विष्णुकिरीट प्रमाणों पर दाता है—

(क) गुरु ग्रन्थसाहिब—राग बासाम

“रविदास बुजना दारनी तितिनी तिधानी भाइया।”

(ख) रैदास जी की बानी—पृष्ठ ७३

“बीजे से प्रभु ऊँच कियो है यह रविदास जमार।”

<sup>४</sup> (क) अविष्णुपुराण अनुष पदक—श्लोक ५३

(ख) गुरुग्रन्थ साहिब

<sup>५</sup> रैदास जी की बानी—पृष्ठ २१

“जेसी मेरी जाति बिरुपात जमार,

हरण राम गोविन्द गुरु सात।

बीजे से प्रभु ऊँच कियो है यह रविदास जमार।”

<sup>६</sup> भगवान रविदास की सत्य कथा—रामचरण कुरनि—रितेर कथन

से रामानन्द के शिष्य ठहरते हैं।<sup>१</sup> अनभुवि है कि इन्होंने १२६ वय से ऊपर की आयु प्राप्त की थी। यह बात बहुत सी बहिस्ताबन और अंतस्थापन के प्रमाणों से सिद्ध होगी है। निघन की निरिक्त विधि का उल्लेख केवल दो स्थलों पर किया गया है। एक के अनुसार यह संवत् १५७६ में सतलोकगामी हुए थे और दूसरे के अनुसार उनका निर्वाण संवत् १५६७ में हुआ था। यदि अनभुवि के अनुसार उनकी आयु १२६ वय स्वीकार कर ली जाय तो संवत् १५६७ ही उनका निर्वाण-काल निश्चय होगा। संत रविदास के जन्म-स्थान और निर्वाण-स्थान के सम्बंध में भी कोई प्रामाणिक या निश्चित उल्लेख नहीं मिलता है। 'गुरु ग्रन्थसाहिब' की एक पंक्ति से ऐसी जनि निश्चली है कि वह बनारस के ही मूलनिवासी थे। उनके अनुसार उनके वंश के लोग वन भी बनारस में ढोर दोते फिरते थे।<sup>२</sup> गुरु ग्रन्थसाहिब के कथन की प्रामाणिकता निर्विवाद है। निश्चय ही उनका जन्म बनारस प्रांत में ही किसी स्थल पर हुआ होगा। बनारस-निवासी होने के कारण ही यह स्वामी रामानन्द के महत्त्व से परिचित होकर उनके शिष्य हो गये होंगे। बाद में सिद्ध हो जाने पर उन्होंने देश भर में प्रमथा किया था। उठी अजसर पर उनका महत्त्व से प्रभावित होकर बड़े बड़े लोग उनके शिष्य हो गये होंगे। अनभुवि और अन्तस्थापन से प्रभावित होना है कि मन्जीरानी<sup>३</sup> और मीराबाई भी इनकी महिमा से प्रभावित होकर इनकी शिष्या बन गई थी।<sup>४</sup> संत देदाठ भी कबीर के शिष्य पुरुष थे।<sup>५</sup> विश्व क मतानुसार इनकी

<sup>१</sup> रामानन्द का समय ईसे 'कबीर की विचारधारा' में सन् १३८५ निश्चय किया है। रेगिप ७० ११ प्रथम सम्करण।

<sup>२</sup> ग्रन्थसाहिब—राग मझार पद १—७० ६९८  
जाके कुटुम्ब से डेढ सभ होर बीबस्त फिरहि अजहु बनारसी आसपास।  
आचार सहित विप्र करिहि बबहीनि तिनठकन रविदास दासानुदास ॥

<sup>३</sup> पारासम जगुर्बेदी मीरा और मन्जीरानी का अलग अलग व्यक्ति मानते हैं, मैं उनसे सहमत हूँ।

रेगिप—उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—७० २३९ २४०

<sup>४</sup> मीराबाई ने इस लघु का समयन किया है।

रेगिप—मीराबाई की पदावली—पद २४, ७० १५६  
गुरु रविदास मिले मोहि पूरे पुर स जन्म मिथां  
सद्गुरु सन हूँ अब पाऊ जात मैं जाति रथी।

<sup>५</sup> कबीर साहब ने इसी मत का समयन किया है—

रेगिप—आउट साहन पाऊ बी रितीजस निदरेबर पाऊ इदिषा—७० ३०९ की  
पारासम जगुर्बेदी न इस विषय में सम्यक् किया है—

रेगिप—उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—७० २३९

विष्णु मंत्र की इससे सहमत है—

रेगिप—निर्वाणक मिरदीसिम्न—७० ७९

फली का नाम लोना था।<sup>१</sup> चूते हैं उनके विभववास नामक एक पुत्र भी था। कबीर के उद्यम बह भी पड़े-लिप्ते नहीं थे। उन्होंने भी उत्तुंगति और पर्यटन के आचार पर अनंत ज्ञान अर्जित किया था। जनश्रुति है कि बिरक होते हुए भी उन्होंने अपने व्यवसाय को नहीं छोड़ा था।<sup>२</sup>

रैदास के नाम पर भी एक अच्छा साहित्य उपलब्ध होया है। मायरी प्रचारिणी सभा की लोभ रिपोर्टों के अनुसार निम्नलिखित ग्रंथ रैदास के नाम से उपलब्ध हुए हैं—रैदास जी की बानी, रैदास जी की साली तथा पद, रैदास के पद, प्रह्लादकीर्ता, इन सब हस्तलिखित ग्रंथों का प्रतिक्रिया कल अभ्यास: संवत् १८५५, संवत् १८५६, संवत् १६३८, संवत् १७०८, और संवत् १८८९ है। यदि लोभ की भाव तो संत रैदास जी की और भी अन्य अनेक बानियाँ उपलब्ध होगी। रैदास जी की प्रशयित रचनाओं में गुड ग्रंथशास्त्र के पारमार्थिक पद बेलभण्डियर प्रेस से प्रशयित रैदास जी की बानी तथा हाल में ही प्रशयित 'संत रविदास और उनका कार्य' नामक ग्रंथ में संग्रहित रचनाएँ विशेष उत्कलनीय हैं। कुछ बानियाँ चक्रवर्ती के संत चक्र और विप्रेरि हरि के संतमुखासार में भी उपलब्ध हैं।

संत दादू (सं० १५४४-१६०३)

हिन्दी की निर्गुण आत्मभाव में दादू का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। किंतु तत्त्वज्ञानों की प्रवृत्ति अभी तक उनके शास्त्रीय और राग अल्पवन की धार नहीं गई है। उनका और उनके पंथ का अद्ययन करने का प्रयास उचलू उचलू हरर,<sup>३</sup> उचलू कुक,<sup>४</sup> ई० उचलू हार्किंस,<sup>५</sup> ए० डी० कैरमैन,<sup>६</sup> गार्तादेवाती, विलसन,<sup>७</sup> कर्पुरर आदि

<sup>१</sup> मुस्ताइकलोपीदिवा आर रिस्वीरन एवड अविम भाग—१०, पृ० ५६०

<sup>२</sup> वही।

<sup>३</sup> हार्पीरियल गजेरिबर आर इडिया—उचलू उचलू हरर (१८८५-८७) भाग

० पृ० ३७७, भाग ८ पृ० ५३

<sup>४</sup> इरिम्स एवड आरुस आर एन० बी० प्राविन्स एवड अचप—उचलू कुक

(१८६६), भाग २—पृ० २३६ २३९

<sup>५</sup> रिस्वीरन आर इडिया—३ उचलू हार्किंस १८९६ पृ० १३

<sup>६</sup> इरिम्स आर रिस्वीरन (१९०२) पृ० ७० ७५

<sup>७</sup> इरिम्स आर रिस्वीरन आर रिस्वीरन आर रिस्वीरन भाग १, पृ० ७०३ इमी की गुणता

वृत्ति—रिस्वीरन आर रिस्वीरन आर रिस्वीरन—उचलू रिस्वीरन—पृ० १०३

<sup>८</sup> मुस्ताइकलोपीदिवा आर रिस्वीरन एवड अविम भाग ७, पृ० ३८५

पारकाल्य विद्वानों ने तथा पं० मुषाकर दिवदी<sup>१</sup>, आचार्य चित्तिमोहन सेन,<sup>२</sup> डा० वाणकर,<sup>३</sup> परगुराम चतुर्वेदी,<sup>४</sup> तारादत्त गोपाला<sup>५</sup> आदि भारतीय विद्वानों ने किया है। जनगोपाल लिखित जनमश्रीलापनी, रायबदास विरचित मस्तमाला आदि कुछ ठाण्डाकारिक ग्रन्थों में भी इनके जीवन-चरित्र का उल्लेख किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भी इनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इन सबमें सबसे अधिक स्रोतपूर्व और स्पष्टरिप्ट वर्णन पं० परगुराम चतुर्वेदी<sup>६</sup> और डा० रामकुमार बर्मा<sup>७</sup> के हैं।<sup>८</sup> आचार्य चित्तिमोहन सेन के विवरण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

इम्शाहस्तोरीडिया आठ रितीजन एण्ड एजिक्स के अनुसार इनका जन्म सन् १५४४ और मृत्यु सन् १६०३ में हुई थी। आचार्य चित्तिमोहन सेन और पं० परगुराम चतुर्वेदी ने<sup>९</sup> इसका समर्थन किया है। डा० रामकुमार बर्मा ने इनका जन्म लगभग स० १६५८<sup>१०</sup> के आस-पास माना है। उनकी मृत्यु-तिथि के संबंध में यह मौन है। डा० साहब ने इस तिथि को किन आधारों पर मान्यता दी है यह स्पष्ट नहीं है। मरी पारखा है कि दादू का जन्म १५४४ ई० अर्थात् संवत् १६०१ के आसपास ही हुआ था। इनके ऊपर कबीर का जो प्रभाव दिखाई पड़ता है उसको देखते हुए यही तिथि अधिक ठपठक प्रतीत होती है। कबीर के पञ्चीस पञ्चीस तारे बाद उत्पन्न होनेवाले दादू पर यदि उनका अनुसंधान प्रभाव पड़ा हो तो कार्र आश्चर्य नहीं है।

दादू की जाति के संबंध में बड़ा विवाद है। इम्शाहस्तोरीडिया आठ रितीजन एण्ड एजिक्स में इनको लोदीयम नामक जातिय का पुत्र बतलाया गया

<sup>१</sup> दादूदत्तजी की घानी—बैकबद्विबर प्रेस—भाग १, पृ० १

<sup>२</sup> दादू—चित्तिमोहन सेन

<sup>३</sup> इंग्लिश प्रेस आठ इस्नाम जान इण्डियन कम्पन्—पृ० १

<sup>४</sup> उत्तरी भारत की संत परम्परा—पं० परगुराम चतुर्वेदी—पृ०—४०९ ४२९

<sup>५</sup> तीर्थ आठ दादू—जारादत्त गरोता—भूमिभ

<sup>६</sup> उत्तरी भारत की संत-परम्परा—पृ० ४०९ ४२९

<sup>७</sup> हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार बर्मा—पृ० ३०९ ३९३

<sup>८</sup> इम्शाहस्तोरीडिया आठ रितीजन एण्ड एजिक्स—भाग ४—पृ० ३८५

<sup>९</sup> मेदिनीय मिन्दीसिग्न—तीर्थ—पृ० १०९

<sup>१०</sup> उत्तरी भारत की संत-परम्परा—पृ० ४०६ ४२२

<sup>११</sup> हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में डा० रामकुमार बर्मा दादू का जन्म ईसवी १६०० (१६३८)

है।<sup>१</sup> मोखिनखानी साहब इन्हें पुनियाँ मानते थे।<sup>२</sup> प० सुभाषर दिवेरी ने इन्हें बनारस का मोबी सिद्ध करने की चेष्टा की है।<sup>३</sup> आचार्य चित्तिमोहन सेन<sup>४</sup> और डा० बाबुसाहब इन्हें पुनियाँ मानने के पक्ष में हैं। प० परशुराम चतुर्वेदी ने इसी मत के प्रति पक्षपात प्रकट किया है।<sup>५</sup> मेरी समझ में दादू साहब तो किसी भी प्रकार से नहीं थे। यदि वह ब्राह्मण होते तो अपने को स्वयं कमीन नहीं कहते।<sup>६</sup> बालकविज्ञा यह है या तो वह पुनियाँ थे वा फिर मोड बनानेवाले मोषी। रजब की ने<sup>७</sup> इन्हें कम्म से पुनियाँ माना है। रजब की इनके शिष्य से इसलिए उनके कम्म की प्रामाणिकता में विश्वास करना चाहिए। हमारी समझ में वह पुनियाँ ही थे इसलिए उन्होंने अपने को सबसे नीच और कमीन कहा है।<sup>८</sup> हिन्दुओं में बिल प्रखर खेड़ी और चमार मीन समझे जाते हैं उही प्रकार मुसलमानों में पुनियाँ और मुलाहे नीच समझे जाते हैं। संभवतः इसीलिए उन्होंने अपने को बार-बार नीच और कमीन धारि कहा है।

इसके गाम के सम्बन्ध में भी मतभेद है। कुछ लोग इनका नाम दादू ही मानते हैं कुछ महात्माजी बल्लाव हैं<sup>९</sup> और कुछ दाऊद<sup>१०</sup> मानने के पक्ष में हैं। अंतिम मत ही कुछ चार्पक प्रतीत होता है। इस मत की पुष्टि में आचार्य चित्तिमोहन सेन ने पाऊजो की कहरना सम्बन्धी एक वाक्य<sup>११</sup> उद्धृत किया है जिसमें दादू और दाऊद को

<sup>१</sup> एम्साहबकोपीटिका काक रिजीजन एचड बुपिक्स—भाग ४, पृ० ३८५

<sup>२</sup> हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा रामकुमार वर्मा, पृ० ३११

<sup>३</sup> दादू साहब की बाबी भाग १, पृ० १

<sup>४</sup> मैरीबल मिल्लीसिम्म—सिद्धिमाह्य सेन—पृ० १०६

<sup>५</sup> हिन्दी व्यंग्य में विगुण संग्रहाण—पृ० ७२

<sup>६</sup> उत्तरी भारत की संत-परंपरा—प० परशुराम चतुर्वेदी—पृ० ४१० ४१६

<sup>७</sup> दादू बाबी—भाग १, पृ० १६३

‘तह मुक कमीनकी कीब बकावे’

<sup>८</sup> रजब की की सबबगी (साधु महिमा को कग)

<sup>९</sup> दादूसाहब की बाबी—दैनिकीपर प्रेस—राग पीरो ३८९, पृ० २६३

<sup>१०</sup> प० सुभाषर दिवेरी उक्ता नाम महाकर्म मानते थे। देखिये—दादूबाबी—भाग १,

पृ० १

उत्तरी भारत की संत-परंपरा—पृ० ४११

<sup>११</sup> जो लोग उन्हें पुनियाँ मानते हैं वे उक्ता नाम दाऊद बताने हैं।

<sup>१२</sup> दादू—सिद्धिमाह्य सेन—पृ० १७

एक ही व्यक्ति ध्वनित किया गया है। इस परम्परागत धारणा का हम सहसा निराकरण नहीं कर सकते। हमारी समझ में इनका नाम दाऊद ही था। इनके सम्बन्धान के सम्बन्ध में विशेष मतभेद नहीं है। पं० सुभाषर<sup>१</sup> द्विवेदी को झाड़कर शेष सभी विद्वान् आहमदाबाद का उनका सम्बन्धान मानते हैं।<sup>२</sup> पं० सुभाषर द्विवेदी भी के मतानुसार दादू का जन्म बीनपुर जिले में हुआ था।<sup>३</sup> हमारी समझ में यह मत बहुत स्वीकृत नहीं है। बीनपुर जिले में उत्पन्न होनेवाला कोई भी आध्यात्मिक विहासु प्रकार में दस-बीस वर्ष बिना रहे हुए किसी दूसरे सुदूर स्थान पर अपने पन्थ का प्रसार नहीं कर सकता। इनका हीला केन्द्र अधिकतर गुजरात और राजस्थान प्रदेश ही था। इसाहबलोपीडिवा आक रिर्लीजन एवम् एक्टिविस्म में लिखा है कि दादू ने जयपुर की पुरानी राजधानी अम्बर में अपना पर कनाया था और राजस्थान के संमर नगर में उन्होंने अपना बहुत-सा समय व्यतीत किया था।<sup>४</sup> लोब करने पर संमर नगर में दादू के फोट और लकाऊँ की उपलब्धि भी हुई है। वहाँ के लोग उन लकाऊँ को दादू के संदेश पूजते हैं। इनकी मृत्यु-स्थान के सम्बन्ध में सभी विद्वानों में मतभेद है। सर्वमान्य मत यही है कि इनकी मृत्यु संमर नगर से आठ मील की दूरी पर स्थित निराना नामक ग्राम में हुई थी। इस स्थान पर अब भी एक बहुत बड़ा मेला लगता है। इन सब बातों से यही प्रमाणित होता है कि दादू गुजरात के रहनेवाले थे और यही उनका जन्म हुआ था। बीनपुर से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं था। यह बात इसी है कि आध्यात्मिक और धार्मिक केंद्र होने का कारण वे एक-दो बार जारी बले मरे हो। बहते हैं कि इनकी सगाट अक्षर से भी मेंट हुई थी।<sup>५</sup> इनके स्थितिफल को देखते हुए यह असम्भव नहीं है। इनके गुरु के सम्बन्ध में भी कोई निश्चिन्त मत नहीं है। जनश्रुति के आधार पर बुद्धन या बुद्धनन्दन को इनका गुरु स्वशाखा जाता है।<sup>६</sup> जनश्रुति है कि भगवान् ने बुद्धे का रूप धारण करके दादू का गुरु-दीक्षा दी थी। ठानी साहब बुद्धन का कथोर रूप का एक छात्र मानते हैं और उन्होंने दादू को रामानन्द की शिष्य-परम्परा में लक्ष्मी पौड़ी का शिष्य माना है। उन्होंने शिष्य परम्परा का जो क्रम दिया है, उसके अनुसार सन्तों के नाम क्रमशः इस प्रकार आदोंगे—रामानन्द, श्रीर, ज्ञान, जगत्, जित्त, बुद्धन और<sup>७</sup> दादू। ये क्रम उन्होंने किठ आधार पर

<sup>१</sup> रेनिय दादूबाजी की भूमिका ।

<sup>२</sup> इसाहबलोपीडिवा आक रिर्लीजन एवम् एक्टिविस्म भाग ४-५० १८५

<sup>३</sup> उत्तरी भारत की संत-परंपरा—पराशुराम जगुर्वेदी—५० ४१०

<sup>४</sup> वही ।

<sup>५</sup> उत्तरी भारत की संत-परंपरा—५० ४१८

<sup>६</sup> उत्तरी भारत की संत-परंपरा—५० ४१३

<sup>७</sup> इसाहब द का विहास एवम् बुद्धे व द्विवेदी, भाग १—५० ४०३



दिया है यह स्पष्ट नहीं है। दानू में कबीर पर जो अपनी रचनाओं में कुहदन या कुहानन्द नाम का उल्लेख नहीं किया है और म कबीर इस पदना का ही संकेत मिलता है। मेरी अपनी धारणा यह है कि दानू ने कबीर की विभिन्न मनुष्य को अपना गुरु नहीं बनाया था। वह कबीर को सम्भवतः अपना मानस-गुरु मानते थे। उनकी यह बात कबीर के प्रति आगत्य और अनन्य भयाप्रधान उक्तिवश से प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त एक स्थल पर उन्होंने 'गौब माहि गुरु देव मित्रा' लिखकर यह बात प्रकट की है। कबीर के सद्य दानू भी पदे-लिखे न थे किन्तु उनकी के सद्य इन्हें भी 'अलीकिण' प्रतिभा प्राप्त थी। जनगोपाल<sup>१</sup> के कथनानुसार इन्होंने बाह्य रूप में ही धर्तीत कर दिये थे। उसके बाद इनकी गुरु से भेंट हुई है और तीस वर्ष की अवस्था में यह लोभर आप और कसीत वर्ष की अवस्था में गरीबदास का सम्बन्ध हुआ था। कबीर के सद्य इन्होंने मी देश-नेशान्तरो में पर्यटन किया था, यह बात इनके विविध भाषाओं के ज्ञान से प्रकट होती है। कबीर के सद्य यह भी पदरूप जीवन धर्तीत करते थे। इनकी तीन और सम्मानों काटारि जाती हैं। उनके नाम मितकीनदास मानीवारि और मातावारि कहे जाते हैं।<sup>२</sup> गरीबदास के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोग इन्हें दानू का औरत पुत्र मानते हैं और कुछ उन्हें उनका शिष्य और प्रदत्त पुत्र मानने के पक्ष में हैं। गरीबदास की भी कानिचो से यही प्रकट होता है कि वे उनके शिष्यमात्र थे।

दानूदयाल की सिन्धी हुई लगभग बीस सहस्र रचनाएँ कृतकारि जाती हैं, किन्तु इनमें से अधिकांश अनुपलब्ध हैं। इनके दो शिष्यों ने इसकी बहुत-सी कानियों का एक संग्रह तैयार किया था जिसका नाम 'हरदे पायी' है<sup>३</sup>।

सन्त दानू ने एक परब्रह्म सम्प्रदान का वर्णन किया था। इसी का दूत नाम दानूदय है। यह पंथ का मार्ग में विभाजित है—एक शाखा का नाम गण्ड बख पहनत है, दूसरी शाखा का संकट बख। दानू के ५२ शिष्य थे। इनमें से प्रत्येक शिष्य ने ५२ दानूदयों की रचना की थी। इन्हें बाबा भी कहत हैं। इन ५२ पाँचों का अन्तगम मी बहुर-स उरबायें या उरबप्रदाय मी हैं। दानूदयों में दानूदानी की मगवान के रूप में पूजा की जाती है। ऊपर हमने दो प्रकार के दानू-शिष्या का उल्लेख किया है। एक का पदरूप होने से और दूसरे से जा बैरगी होने से। पदरूपों का संकट कहत हैं और बैरगिणों का पौब भेद माने गये हैं—गालेठा, नागा, उघटारी, बिरस और गारी। इत

<sup>१</sup> दानूदानी—भा० १—पृ० १—'गौब माहि गुरु देव मित्रा बाबा हम बरसाद'

<sup>२</sup> उत्तरी भारत की संत-परम्परा—पृ० ३१४

<sup>३</sup> कबीर—पृ० ३१९

<sup>४</sup> उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परमहंस चतुर्वेदी—पृ० ३२०

प्रश्न हम देखते हैं कि दातृपंथ कभीरूपंथ से कम धारक और महत्त्वपूर्ण नहीं है?।

### रजजबनी (१६२४-१७४०)

दातृ के शिष्यों में रजजबदास भी एक स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इनका जन्म संवत् १६२४ विक्रमी में आबेर से लगभग १४ १५ मील दक्षिण की ओर स्थित रजजमर स्थान के एक प्रतिष्ठित पत्रन-वंश में हुआ था। इनके पिता जयपुर-नरेश के यहाँ नायक के पद पर कार्य करते थे। इनका प्राथमिक नाम रजजब अली खान था। इनके सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है कि जब यह विवाह के लिए मीर आदि धारण करके नौशा बने हुए जा रहे थे, उन्ही समय मग में इनकी दातृ से भेंट हो गई। उनका उस रूप में देखकर दातृ ने कहा कि “अप्य रजजब मुने गजब कर दिया। तू इस संसार में मगवान् के मजन के लिए आया था। किन्तु सर पर नीर बाँधकर नरक की धार जा रहा है। तू मगवान् की प्रार्थना करना भूल गया है जिसके लिए तेरा जन्म हुआ था<sup>१</sup>, विवाह करके तेरा कोई भी कार्य सिद्ध न होगा<sup>२</sup>।” इस घटना का उत्कलम रजजबदास जी ने अपने मकमात्त में भी किया है। रजजब<sup>३</sup> जी उन्ही घण्टे से दातृ के अनन्य मछ हाँ गये और फिर विवाह करने नहीं गये। कुछ दिनों बाद दातृ ने उनसे विवाह करने का

<sup>१</sup> हिन्दी साहित्य का धारकानामक इतिहास - पृ ३६२

<sup>२</sup> सप्त सुधा सार—पृष्ठ ५१ पर दक्षिण —

“रजजब है गजजब किया, सिर पर बाँधा मीर।

पाया था हरि मजन कूँ, करे नरक को डीर ॥”

<sup>३</sup> सप्त सुधा सार—पृ० ५१० से उद्धृत—

“कीया था कुछ काज की सेवा सुमरन साज।

दातृ भून्वा बरगी सार्थी न णकी काज ॥”

<sup>४</sup> सप्त सुधासार—पृ० ५११ पर दक्षिण—

‘रजजब जी गजजब राजधान आबेर आये

गुद के सबद प्रिया व्याह सग त्याग्यो है।

पायो नरदेह प्रमुतेवा काज सहज येद,

हाथे भूक्ति गया सठ द्विरे रस त्याग्यो है ॥

धीर भक्ति बार्थी मन मन धन बार्थी,

मन सीक इत धार्थी मन भार्थी काम भाग्यो है।

भक्ति मीत्र रानी गुण दातृ रचा बानी

उर भाइ प्रीति खीनी माये बड़ा भाग जाग्यो है ॥’

आग्रह भी किया, किन्तु वह प्रसन्न न हुए। रज्जव ने अपनी बानियों में अनेक स्थलों पर दादू के प्रति अनन्त श्रद्धा मान प्रकट किया है। उनकी निर्वाण-तिथि का निश्चित निर्णय नहीं किया जा सका है। अनुमानतः वह संवत् १७४० के आस पास सांगनेर स्थान में ही इस नरेश्वर शरीर से मुक्त हो गये थे।

रज्जव जी के दो बृहत् ग्रन्थ उपलब्ध हैं—एक का नाम काली है और दूसरे का सर्वगी। उनकी कितनी हुई साखियों की संख्या ५४९८ और पदों की संख्या २१८ तथा अंगों की संख्या १६४ बताई जाती है। इनके अतिरिक्त रज्जव जी ने कविता, छन्दों और अरिण आदि और भी अनेक छन्दों में अपनी रचना प्रसन्न की थी। उनकी रचनाओं की भाषा अविच्छन्न-रसस्थानी है। कुछ लोग अंगवधू नामक पुस्तक को रज्जव जी की ही रचना कहलाते हैं। किन्तु भी परशुराम चतुर्वेदी जी के अनुसार उसमें दादूदास जी की बानियाँ ही संयोजित हैं। रज्जव जी की विचारधारा पर दादू जी का पूरा-पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। ऐसा स्वाभाविक भी है। प्रत्येक शिष्य अपने गुरु से अपरन ही प्रभावित होता है।

### सुन्दरदास (१६५३-१७४६)

सुन्दरदास सन्त दादू के एक परमप्रिय शिष्य थे।<sup>१</sup> वह जाति के लडेलवाल वैश्य थे। इनकी जन्मतिथि पूर्णतया निश्चित नहीं है। डा० रामकुमार वर्मा ने संवत् १७१० का इनका जन्मफल माना है<sup>२</sup>। भी परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार इनका जन्म संवत् १६५३ में हुआ था<sup>३</sup>। मुझे चतुर्वेदी जी का मत अधिक उपयुक्त और समीचीन लगता है; क्योंकि सुन्दरदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'बानसमुद्र' संवत् १७१० में लिखी थी।<sup>४</sup> इतने प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना निरन्तर ही उन्होंने पचास वर्ष की अवस्था के पश्चात् ही की होगी। संवत् १६५३ का इनका जन्मफल मान लेने में इस दृष्टि से कोई अड़िनाई नहीं पड़ती है। इनकी निधन-तिथि के सम्बन्ध में एक पद्य प्रसिद्ध है। उसके अनुसार वह जयपुर के सांगनेर नामक स्थान में संवत् १७४६ में लालोत्सामी हुए थे।<sup>५</sup> इनका जन्म-स्थान विधिवाद रूप से जयपुर की प्राचीन राजधानी दिबोठा

<sup>१</sup> संत सुधासार—पृ. ५६

<sup>२</sup> 'नमस्कार गुरुदेव की त्रिनि बरि सुदावा ।

दादू हीनदवात का सुंदर बस गावा ॥'

<sup>३</sup> संत सुधा सार—पृ० ५६१ 'दादू का जन्म परम पठता सुन्दर शारा है तेना ।'

<sup>४</sup> हिन्दी साहित्य का जन्मकालात्मक इतिहास—पृ० ३६५

<sup>५</sup> उत्तरी भारत की संत-विरपा—पृ० ४२९

<sup>६</sup> वही



## गरीबदास (बावरीपंथी)

बावरीपंथ के अग्रिम प्रतिद्वन्द्वी कन्ठ गरीबदास जी ने गरीबदासी पंथ के नाम से स्वयं एक पंथ प्रवर्तित किया था। इनका जन्म बैताल सुदी १५ को संवत् १७७४ में रोहतास जिले में रिबत बहरील मन्बर के तुहानी नामक गाँव में एक बगीचदार बाबू बनने में हुआ था। इनके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कन्ठ बगीर ने इनके दृशन दिये थे और इन्होंने उन्हें अपना मानसगुरु स्वीकार कर लिया था। इन्होंने बहुत-सी कस्तूरी, चमड़े, रेशम, सूतना, अरिख, कैठ रेशमी, आरखी और बहुत-सी यग-यागनियाँ कियी थीं। 'हिन्दू बोध' नामक उनकी एक गृह्य रचना भी उपलब्ध हुई है। यग-यागनियों को देखकर स्पष्ट मन्त्र होना है कि वह बहुत बड़े गरीब थे। इन्होंने अपना अधिग्रह जीवन तुहानी में रहकर व्यतीत किया था। और अन्त में वही पर यह भावो सुदी बुध से २८३५ में स्वर्गवासी भी हो गये। गरीबदास जी गृह्य थे। अनभुक्ति के अनुसार उनके पार पुत्र और दो पुत्रियाँ बतारें जाती हैं। इनके पंथवासी अब भी गृह्य ही रहते हैं।<sup>१</sup>

## बारी साहब (१७२५-१७८०)

अकर के शासनकाल में बारी साहिब ने बावरी पंथ का प्रवर्तन किया था।<sup>२</sup> उस पंथ में आगे चलकर ६-७ बहुत अधिक कन्ठ हुए। उनमें से कुछ भी रचनाओं में अच्छी साहित्यिकता मिलती है। ऐसे कन्ठों में बारी साहब, तुहला साहब, बगरीबन साहब, तुलाल साहब, मीठा साहब, पसड़ साहब का कन्ठ गठ में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।<sup>३</sup> बावरी साहिब पर भी विशेष अनु-  
सन्धान करने की आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि बित्तक शिष्यवर्ग से इतने उच्च कोटि के साहित्यिक कन्ठ हुए थे वह निश्चय ही स्वयं भी एक उच्च कोटि के साहित्यमूला और कन्ठ होंगे। किन्तु उनका साहित्य आज लगभग अनुरक्षण में है। ऐसी अपरवा में हमने उन्हें अपने विवेचन में महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। उर्वीक्षित उनके जीवनकाल पर भी प्रकाश नहीं टांक रहे हैं। यहाँ पर हम उनकी शिष्य-व्यवस्था से होनेवाले उन प्रमुख कन्ठों का जीवनकाल पर, जिन्होंने निर्गुण व्यापार के विषय में साहित्यिक भाग दिया है, ही विचार करेंगे। अन्ततम में इन कन्ठों में बारी साहब ही सर्वप्रथम आते हैं। बारी साहब बारी साहिब के शिष्य बीर साहब के शिष्य थे। इनका जीवनकाल के सम्बन्ध में हमें बहुत कम जानकारी

<sup>१</sup> इतिवृत्त—उत्तरी भारत की जन परवारा—पृ० १०१००

<sup>२</sup> इतिवृत्त—उत्तरी भारत की जन-परवारा—बीर परवारा अनुपेंदी—पृ० ४४५-०३

<sup>३</sup> इतिवृत्त—दारी साहब की रचनाएँ—मुद्रिका—पृ० २ पर दिया हुआ शिष्य वृत्त।

प्राप्त है। यारी साहब की रत्नावली में इनका स्थितिकाल १७२५ से लेकर १७८० के बीच में निश्चित किया गया है।<sup>१</sup> किन्तु भी परशुराम चतुर्वेदी का अनुमान है कि उनका देहांत ठकुराण के पूर्वाप में ही किसी समय हो चुका होगा। और यह सम्भवतः मस्तूकदास (संवत् ११३६), सन्त प्राणनाथ (संवत् १७५१) के समकालीन होंगे।<sup>२</sup> जो भी हो, इनका स्थितिकाल १८वीं शताब्दी का मध्य ही था।

यारी साहब जाति के मुसलमान थे। इनका पहला नाम यार मोहम्मद था। यह किसी शाही पराने से सम्बन्धित थे और किसी समय शाहबादा भी रहे चुके थे। किन्तु किसी कारणों से उन्हें मौलिक पेशवर्ष से मुखा हो गई और यह सन्त मत में दीक्षित हो गये।<sup>३</sup> हिन्दी में इनकी 'हर्म अमी तक कुल्लु फुटकर खनारें ही प्राप्त हुई हैं। इनके सम्बन्ध में अनुसन्धान करने की बड़ी आवश्यकता है।

### मुस्ता साहब : (१६८६-१७६६)

मुस्ता साहब यारी साहब के प्रमुख शिष्य थे। यह गाजीपुर जिले में स्थित मुरकुवा नामक गाँव में रहते थे। सन्त मत में दीक्षित होने से पहले इनका नाम मुलाखीराम था। यह जाति क कुर्मी थे। यह एक अमीदार के यहाँ हल चलाने का काम करते थे। मुकु साहब ने इनके सम्बन्ध में एक कथा दी है, वह इस प्रकार है—'मर्दन सिंह नामक एक अमीदार मालगुजारी न दे सन्ने क कारण तत्कालीन पयन-सरदार क द्वारा गिरफ्तार करके दिल्ली भेज दिया गया, उनकी रिहाई के लिए उन्हें एक मीकर या सम्भवतः मुलाखीराम ही था, यारी साहब के पास गया और उनसे अपने स्वामी की मुक्ति की प्रार्थना की। यारी साहब के आशीर्वाद से मर्दनसिंह शीघ्र ही मुक्त कर दिये गये। इस घटना से मर्दनसिंह और उनका नौकर सम्भवतः मुलाखीराम बहुत अधिक प्रभावित हुए और दोनों ही यारी साहब के शिष्य हो गये। यह मुलाखी राम ही आगे चलकर मुस्ता साहब का नाम से प्रसिद्ध हुए। पं० परशुराम चतुर्वेदी<sup>४</sup> मुकु साहब का इस कथन से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि मर्दनसिंह का मुस्ता साहब से कोई सम्बन्ध नहीं था। मर्दनसिंह का सम्बन्ध मुस्ता साहब से था। इसी प्रकार की और भी अनेक कियदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। समस्त कियद

<sup>१</sup> वही

<sup>२</sup> इतरी भारत की सन्त-परम्परा—पृ० ३७६

<sup>३</sup> वही

<sup>४</sup> इनकी उपाध आरामी खनारें भी थीं, जो अनुपेक्ष्य हैं।

<sup>५</sup> इस्लाम पर आधुनिक आंक दि नाथ वैतरण प्रारिगेस एव अक्षय भाग २—पृ० ३६ ३७

<sup>६</sup> इतरी भारत की सन्त परम्परा—पृ० ३६३

दशियों का सार यह है कि पहले यह गुनाल साहब के यहाँ हल होने का काम करते थे। इनकी अलौकिक भगवद्भक्ति देखकर गुनाल साहब इनके शिष्य हो गये। इनका धर्मकाल संवत् १६८८ माना जाता है और निधनकाल संवत् १७६६ निश्चित किया गया है<sup>१</sup>। इनकी रचनाओं का एक संस्मृत कैलवेदियर प्रेस से प्रकाशित हुआ है। बिनासे इनके महत्त्व का अफ़स़ आभास होता है।

### जगजीवन साहब (१७२७-१८१८)

सन्त साहित्य में जगजीवन साहब नाम के कई सन्तों का उल्लेख मिलता<sup>२</sup> है। किन्तु सबसे अधिक प्रशंसा हुआ साहब के शिष्य जगजीवन साहब की है। यह शक्ति के अतिरिक्त वे और खेती-बाड़ी करके जीविकोपार्जन करते थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन जब यह बैल चरा रहे थे तो उसी समय हुआ साहब और गोविन्द साहब नाम के सन्त वहाँ पहुँचे। उन्होंने उनसे बिलम के लिए आग ले आने को कहा। तापु-सन्तों के मकर तो यह थे ही, इसलिए शून्य ही बर गये और बिलम के लिए आग तथा सन्तों के लिए एक लोहे में दूध ले आये। किन्तु वह दूध अपने पिता से पूछकर नहीं लाये थे, इसलिए बर रहे थे। बर पहुँचने पर उन्हें बात हुआ कि बिल बर्तन से यह दूध ले सके थे, वह बरों का स्वो मर हुआ है। यह शून्य ही उन तापुओं के पीछे दीक पड़े और उनसे हीचा देने का आग्रह किया। बुस्ता साहब ने उन्हें अप्रमा शिष्य बना लिया।

सन्त-साहित्य के विद्वानों के मतानुसार इनका धर्म-संवत् २०२० विक्रमी में मिला

<sup>१</sup> बही पृ ४८२

<sup>२</sup> इस विषय में बड़ा विवाद है। श्रीनाथजी इन्हें गुनाल साहब का शिष्य मानते हैं। मतलामी इन्हें विनोदचर पुरी का शिष्य कहते हैं। अफ़स़ी इन्हें बुस्ता साहब का शिष्य मानते हैं। मेरी धारणा है कि मूल मत के अनुपाती कई जगजीवन नाम के मूल हुए थे। जो मरना है कि एक गुनाल साहब के शिष्य हों और दूसरे विनोदचर पुरी के शिष्य हों। किन्तु हमारे विवेक जगजीवन साहब बुस्तासाहब के शिष्य हैं। एक जगजीवन साहब निर्जगपणी थे। हेमिने—

कलती भारत की सन्त-परम्परा—पृ ४६९

एक जगजीवन दासपणी थे। हेमिने—

कलती भारत की सन्त-परम्परा—पृ ४२१, २२, २०, २८, ३०, ३१, ३२ और एक मत नामी थी थे हेमिने—

कलती भारत की सन्त परम्परा—पृ २६३, ३८०, ४८१, ४८३, ४८६, ४८७, ५३८ ५४२, ५५०

## विषय प्रवेश

बाहद्वारी के सखीदा गाँव में हुआ था<sup>१</sup> और इनकी मृत्यु बिला बाहद्वारी के कोटवा नामक स्थान में संवत् १८१८ में हुई थी। इनके सम्बन्ध में सबसे अधिक कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं है। इनके लिखे हुए ७ ग्रन्थ पतलाए जाते हैं, जिनके नाम क्रमशः ज्ञानप्रकाश, महाप्रलय, शब्दसागर, अपविनाश, आगमपद्धति, प्रथम ग्रन्थ और प्रेम ग्रन्थ हैं। इनमें से शब्दसागर का प्रकाशन बेल्लवेडियर प्रेसवालों ने 'अगनीबन साहब की बानी' के नाम से दो भागों में किया है। कहते हैं, इन्होंने सचुनामी सम्प्रदाय की पुनर्प्रतिष्ठा की थी।

## गुलाल साहब (संवत् १७५०-१८५०)

इनका कोई प्रामाणिक विवरण प्राप्त नहीं होता है। अन्तस्कारण से पता चलता है कि यह किसी बलहरिया नामक स्थान के निवासी<sup>२</sup> थे जो सम्भवतः गाबी पुर में बही पर है। मुल्कुटा गाँव भी इसी के अन्तर्गत बताया जाता है। यह जाति के क्षत्रिय थे<sup>३</sup>। अपने यहाँ के इलाक़े सन्त गुलाल साहब की अलौकिक मक्ति से प्रभावित होकर वह इनके शिष्य हो गये थे और सन्तमठ में दीक्षित हो गये थे। इनका जन्म संवत् १७५० के आसपास बल्लाबा गया है और निर्णायक तिथि १८५० अनुमानित की जाती है<sup>४</sup>। इनकी रचनाओं का एक संग्रह गुलाल साहब की बानी के नाम से पहला नाम गोविन्द साहब था<sup>५</sup>। कुछ विद्वानों के अनुसार गुलाल साहब का ही पहला नाम गोविन्द साहब था<sup>६</sup>। किंतु इस सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इनकी ज्ञानगुप्ती और राम सहस्र नाम की दो रचनाएँ और बल्लारै जाती हैं, किंतु वे अभी तक प्रकाश में नहीं आई हैं<sup>७</sup>।

## भीखा साहब : (१७७०-१८२०)

गुलाल साहब के शिष्यों में सबसे अधिक ख्याति भीखा साहब की हुई है। इनका जन्म-संवत् १७७० विक्रमी पतलाया जाता है और निर्णायक-तिथि १८२० निश्चित की गई है<sup>८</sup>। यह जाति का ब्राह्मण्य था और सन्त मत में आने से पहले भीमानन्द चौधे

<sup>१</sup> दि निर्गुण रचक आक हिंदी पोपरी—पृ० ३१४

<sup>२</sup> गुलाल साहब की पानी—पृ० १० पन्ति १२

<sup>३</sup> संत गुण सागर—बियाती हरि—भाग २—पृ० ११६

<sup>४</sup> रामकुमार बन्ना ने इसका आदिमात्र काव्य १०५० से सन् १८०० तक माना है

<sup>५</sup> हेल्प—हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० ४०४

<sup>६</sup> मिश्रिय मिस्तीसिद्ध—आचार्य सेन—पृ० १२४

<sup>७</sup> हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० ४०४

<sup>८</sup> उत्तरी भारत की संत परंपरा—पृ० ४८३

<sup>९</sup> संत गुणसागर—विद्योती हरि भाग २—पृ० १३५



के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका जन्म-स्थान धाबमगढ़ के मोहम्मदाबाद नाम के परगना में स्थित खानपुर बहना नामक ग्राम बताया जाता है। उन्हें वात्स्यधरम ही वैष्णव हा गया था और तभी से स्वतंत्रगति में लीन रहते थे। इनका प्रमुख स्वतंत्र-रसल मुकुंदा नामक ग्राम बताया जाता है<sup>१</sup>। यहाँ उक्त गुलाब साहब को इनके गुरु थे, इनको उद्देश्य दिया करते थे। गुलाब साहब की मृत्यु के बाद संवत् १८१७ में<sup>२</sup> यह अन्ध गरी के अधिपति बने। मीरा साहब की बानियों का एक संग्रह बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त राम कुंडलियाँ, राम-खलनाम, रामशब्द, रामराम, रामअभिष और भगत वष्णुवली आदि उनके अन्य ग्रन्थ कृतियाँ बताई हैं।

### पलटू साहब

बाबरी पंथ के प्रसिद्ध अन्तों में से पलटू साहब भी एक हैं। इनका जन्म संवत् १८२०<sup>३</sup> के आठ-पाठ अक्षय के नवाब मुबारकीला और दिल्ली के बादशाह साह आत्म के शासनकाल में कैलाश और धाबमगढ़ की लड़ाई पर सिक्ख नगरपुर बसालपुर नामक स्थान में एक बैरव के घर में हुआ था। यह मीरा साहब के शिष्य गणेश साहब के पद शिष्य थे<sup>४</sup>। इनके माँ पलटूसाहब ने इनका जीवन-चरित्र लिखा था। जिसके अनुसार उन्होंने बहालपुर शहर में अपना मूँह मुकाया था और अक्षय में अपनी कर्पनी ठाड़ी की और अन्त में मर गये थे<sup>५</sup>। जनश्रुति है कि वह निरलक म होकर सदैव ही एहरव रहे थे। ऐसी अक्षरका में पलटूसाहब मूँह मुकाने और कर्पनी ठाड़नेवाली का जो आत्मचरित्र और प्रतीकचरित्र का में ही प्रकाश करना चाहिए। इतने उन्होंने पलटू साहब के अन्तमय में दीक्षित होने को अन्त व्यक्तित्व की है, बैरगी होने की नहीं। अन्तमय में गेहूँ बन्न रंगने का उद्देश्य धर्म ने भी नहीं दिया है। अतएव हमारा निष्पाठ है कि संत पलटू ने गेहूँ बन्न कभी नहीं रेंगाये होंगे। अतस्मात् ए प्रमादित होता है कि उन्हें अपने जीवनकाल में ही बहुत अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। बहुत से लोग अन्ध धर्मियों को ईश्वर उनमें ईशान् भी करने लगे थे।<sup>६</sup> इनके जन्म और निष्प-तिथि क्या ज्ञा नहीं

<sup>१</sup> उत्तरी भारत की जन-वार्ता—पृ० ४८८

<sup>२</sup> उत्तरी भारत की जन-वार्ता—पृ० ४८३

<sup>३</sup> हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा—पृ० ४१५

<sup>४</sup> उत्तरी भारत की जन-वार्ता—पृ० ४८२

<sup>५</sup> पलटू साहब की कथा—भूमिदा—भाग १, पृ० १

‘लहर जगन्नाथ पुर मूँह मुकाना अक्षय मुड़ी करपवियाँ।

साहब का बैरगाँव घर में पलटू निर्गुण बनिषाँ है’

<sup>६</sup> उत्तरी भारत की जन-वार्ता—पृ० ४८०-२१

है। अयोध्या में उपलब्ध जनसूचियों के आधार पर इनका जन्म संवत् १८१० और निधन-तिथि १८७० के आस-पास मानी जा सकती है।<sup>१</sup> पलटूरपंचियों में प्रसिद्ध है कि इनमें सामान्य ६० वर्ष की आयु प्राप्त हुई थी। पलटूर साहब की बहुत-सी रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह तीन भागों में बेलवेडिवर प्रेस से प्रकाशित हुआ है। फैजाबाद, आमनगढ़, अयोध्या आदि स्थानों में खोज करने पर इनकी और भी शानियाँ उपलब्ध हो सकती हैं।

### संत दरिया साहब (बिहारवाले) \* (१७३१-१८३७)

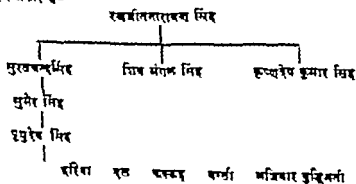
मध्ययुग में दरिया नाम के दो संत हो गये हैं। एक का निवासस्थान मारवाड़ या और दूसरे का बिहार। बिहारवाले दरिया साहब का साहित्यिक महत्व मारवाड़ वाली दरिया साहब से अपेक्षाकृत अधिक है। मारवाड़वाले दरिया साहब की एक ता रचनाएँ ही बहुत कम उपलब्ध हुई हैं और का कुछ उपलब्ध भी हैं उनमें साहित्यिकता की भांश बहुत कम है इसलिए हमने अपनी निगुण काम्यधारा के विवेचन में उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया है। यही कारण है कि यहाँ पर हम बिहारवाले दरिया साहब के जीवनवृत्त पर ही प्रथम बाल रहे हैं।

बिहारवाले दरिया साहब की जन्म-तिथि क संबंध में दो मत हैं। एक मत के प्रवर्तक चतुर्वेदीदास<sup>२</sup> नामक संत हैं। इनके अनुसार दरिया साहब का जन्म ज्योतिष पूर्णिमा संवत् १६६५ में हुआ था और उनकी मृत्यु मात्रपर चतुर्वेदी संवत् १८३८ में हुई थी।<sup>३</sup> संत चतुर्वेदीदास ने स्थिति का निश्चिन्नीकरण का पीतल की मोहरों के आधार पर किया है। किन्तु इन मोहरों की प्रामासिद्धता संदिग्ध है। फर्मेन्ड ब्रह्मचारी ने अपने संतकवि दरिया में इन मोहरों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करत

<sup>१</sup> पलटूर पंचियों से बाल करने पर यह तिथियाँ प्राप्त हुई हैं।

<sup>२</sup> संत दरिया एक चतुर्वेदीक — डा० फर्मेन्ड ब्रह्मचारी — पृ० १

<sup>३</sup> संत चतुर्वेदीदास ने दरिया साहब का बंसवृत्त भी दिया है। उमका निर्देश भी परसुराम चतुर्वेदी ने 'इसरी भारत की संत-परम्परा' में पृ० ५९८ पर किया है। यह हम प्रकट है—



### हिन्दी की निर्गुण काव्यपाठ और उसकी दार्शनिक दृष्टभूमि

दुष्ट लिखा है कि—परन्तु मोहर नगर दो में सन् १७११ मुया है न कि संवत् १७११ क्योंकि विक्रम संवत् के आगे सन् नहीं लिखा जाता है। अतएव मेरे विचार से सन् १७११ को शक बर्ष मानना ठीक है। १७११ के अनुकूल विक्रम संवत् १८८१ पड़ेगा। जब कि दरिया साहब रिदा नहीं थे। उनकी मृत्यु संवत् १८१७ में हो ही गई थी। अतः मैं अनुमान करता हूँ कि वे मोहरें दरिया साहब के उधराधिकारी गुम्बराब, और यदि वह मर गये थे तो उनके बाद गरी पलेवाले डेकराब ने बनवाई होगी।<sup>१</sup> ब्रह्मचारी की के मत से मैं भी सहमत हूँ। मोहरों की प्रामाणिकता संदिग्ध होने के कारण शुद्धीदास द्वारा निर्दिष्ट तिथि भी संदिग्ध ही मानी जायेगी।

शुद्धी तिथि का निर्देश हमें वैश्वेश्वर प्रेस से प्रकाशित दरिया सागर की भूमिका में मिलता है।<sup>२</sup> उसमें दरिया साहब का जन्मकाण्ड संवत् १७११ और मृत्यु जल १८१७ दिना हुआ है। इन तिथियों को स्वीकार कर लेने पर उनकी आयु १०६ बर्ष की निकलती है। दरियापंथियों में उनका इतनी आयु पाना प्रसिद्ध भी है। अत एव मैं इन्हीं दोनों तिथियों को मान्य समझता हूँ।

संत दरिया साहब संत मत में दीक्षित होने से पूर्व मुसलमान थे और बरब्रीगिरी का कार्य करते थे। शुद्धी साहब ने दरिया साहब का जो बंशवृक्ष दिना है विशिष्ट निर्देश हम पीछे फुज्जोट में कर चुके हैं उतने स्पष्ट प्रकट होता है कि इनके पूर्ववत् संभवतः उसी बंश के हिंदू ही थे। बुकेबन साहब के अनुसार दरिया साहब को कितो अरिफ अली ने परछे में ग्वाह पीचे मनीन दी थी। दरिया साहब ने ऐसी अद्वैत रूप उली ग्वाह पर अपना जीवन व्यतीत किया।<sup>३</sup> समय-समय पर आचारात के रूपाना में बाहर उदेश्य भी करते थे।

अंतरसाह्य से प्रभावित होता है कि उन्होंने लगभग १६ ग्रंथ लिखे थे।<sup>४</sup> कुछ काम उनके लिखे हुए २० ग्रंथ प्रकृत हैं।<sup>५</sup> उनके ग्रंथों के नाम क्रमशः प्रेममूल, ज्ञानरत्न, मक्ति हेतु, मूर्ति उगाह, शक वा बीजक, जल उगाह, विवेकसागर, दरिया

१ बरी—१० ८  
 २ दरिया साहब—वैश्वेश्वर प्रेम—भूमिका—१० १  
 ३ श्री बर्बंग भाऊ की विहार बरब ब्रह्मिना रिमक सामाहदा मा० १४ (१९३८)—  
 पृ० ११३  
 ४ ज्ञान मर्बोदक में लिखा है—  
 प्रथम अष्टदश कथा बर्बानी लव सरार कई दिन आयुमावी।  
 इतनी मारत की मन्त्र-नामना—५७  
 ५ संत कवि दरिया—दुक अनुगानक—४० धर्मेश्वर ब्रह्मचारी—१० १७

सागर, ज्ञान दीपक, ब्रह्म विप्रेक, अमर सार, निर्मय ज्ञान, सहस्रानी, ज्ञानमाला, दरिया नामा अमरज्ञान, ब्रह्म चैतन्य, ज्ञानमूल, काल परित्र और यज्ञ समाधि हैं। इनके अतिरिक्त भी इनके लिले हुए ब्रह्म ज्ञान, गमविज्ञापन, गणेश गोष्ठी, रमेश्वर गोष्ठी, संत-सेवा पारलरन, ज्ञान सुप्कसार, आदि ग्रंथ खलापे जात हैं।<sup>१</sup> इनमें कौन प्रामाणिक है और कौन अप्रामाणिक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अब तक फल इनके दा ग्रंथ और एक संग्रह-ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। उन दा ग्रंथों का नाम क्रमशः दरिया सागर और ज्ञान दीपक हैं। संग्रह का नाम 'दरिया साहस के' चुने हुए शब्द है।

### मल्लूदास

संत-साहित्य में हमें कई मल्लूदास मिलते हैं। एक कबीर के शिष्य व दूसरे कई पैगम्बी धर और तीसरे मल्लूक पंथ के प्रवर्तक निगुणियाँ संत थे। इनका जन्म संवत् १६३२ विक्रमी में कड़ा बिला इलाहाबाद में एक लक्ष्मी पटन में हुआ था। इनका पिता का नाम सुन्दरदास था। इनका भ्रान्त अठरमल और प्रपितामह वेण्डीराम थे। इनके तीन माता भी व बिनक नाम हरिचन्द्र, गृह्यारचन्द्र और रामचन्द्र थे। इनके जीवन की व सम्पन्न पत्ने संत मुखरदास, जो मल्लूदास के माये थे, की मल्लूक परचपी मानक रचना से विदित होती है।<sup>२</sup> यह पाल्यकाल से ही भगवान् के अनन्य मक्त थे। इनके गुरु के संबंध में धाका मतभेद है। कुछ लोगों के मतानुसार इन्होंने किसी इन्डिफे रेगनियारी विट्पल दास से टीका ली थी।<sup>३</sup> कुछ लोगों का कहना है कि यह ज्ञान जीवन के प्रारम्भ काल में किसी देवनाथ नामक महात्मा के शिष्य हो गये थे। इनके अण्पारिक जीवन में प्रवेश करने का भेष महात्मा मुखर स्वामी का था। मूल गाथाएँ अरिण से ऐसी भी जानि निकलती है कि यह इन्हीं महात्मा का साथ लेकर गाथाएँ मुखरीदास की व दशन करने गये थे।<sup>४</sup> संत मुखरदास की मल्लूक परचपी से यह पता चलता है कि विट्पलदास मल्लूक के गुरु देवनाथ के गुरु के गुरु थे। मुख साहस

<sup>१</sup> कैरिये—दरिया सागर का भूमिका—पृष्ठ २

और भी कैरिये—

दि अबक काक दि बिहार पण्ड आदिसा रिमय संतादुदी भाग २४ (१९३८)

पृष्ठ २१३ २१८

<sup>२</sup> उतरी भारत की गण-परपरा—परगुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ ५०४

<sup>३</sup> नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भाग १५ (मघ १९११) पृष्ठ ७९

<sup>४</sup> उतरी भारत की गण-परपरा—पृष्ठ ५०४

<sup>५</sup> मूल गाथाएँ अरिण—पृष्ठ ८३

का मत इन छत्रों भिन्न है।<sup>१</sup> उनके मतानुसार मल्लप्रदास रामानन्द की शिष्य परम्परा में होनेवाला किसी श्रीरुद्र नामक महत्तमा के शिष्य थे। किन्तु यह मत निरुपलब्ध प्रतीत होता है। इन्होंने पदस्थ-जीवन स्वीकृत करते हुए ही मंगलद् कायचना की थी। जनश्रुति है कि इनकी पत्नी का वैद्वान्त पीलीभीत की कन्या के प्रसव में ही हो गया था। छत्रों यह मंगलद् भजन के लिए और भी निर्द्वन्द्व हो गये थे। मल्लप्रदास की तीन रचनाएँ अलार्क जाती हैं। उनके नाम क्रमशः ज्ञानबोध, सतत्वज्ञान, मल्लप्रदासली, मल्लप्रदासली, पुस्तकविज्ञान, दसरत्न ग्रंथ, गुण प्रकाश, ज्ञानसुखानी एवं रामानन्दार लीला हैं।<sup>२</sup> इनके अतिरिक्त भी इनके लिखे हुए कुछ और ग्रंथ कल्पिते जाते हैं किन्तु<sup>३</sup> इनमें से कौन से प्रामाणिक हैं और कौन से अप्रामाणिक कुछ कहा नहीं जा सकता।

### सन्त चरनदास

चरनदास की उच्च मध्ययुग का एक महान् संत थे। अपने एक शिष्य रामस्वरूप<sup>४</sup> की तथा शिष्यों सहबोबार्द<sup>५</sup> का मतानुसार इनका जन्म मंगलवार भाद्रपद सुदी तीस संवत् १७१० विक्रमी में और मृत्यु-संवत् १८१६ में हुई थी।<sup>६</sup> इनकी सखा का नाम कुंभो बैबी<sup>७</sup> और पिता का नाम मुस्लीमर था। अंतस्मात्त से कवि का बंशवृक्ष का भी पता चलता है। वह बंशवृक्ष इस प्रकार है —

शोभनराज, पुरदास, गिरधर, सोहन, ज्ञानदास, प्रागदास, मुस्लीमर, चरनदास।

- <sup>१</sup> ब्राह्मण पंथ कास्तुत—कु.स्तु—भाग ३—पृष्ठ ५७३
- <sup>२</sup> उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—पृष्ठ ५०६
- <sup>३</sup> विक्रम ने 'सागी' और 'बिन्नु बर' नामक दो ग्रंथ मल्लप्रदास के अतिरिक्त लिखे जाते हैं। देखिए—  
उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—पृष्ठ ५०६
- <sup>४</sup> सन्त चरनदास—डा० त्रिभोक्ती बाराबखरी की संश्लेषित—पृष्ठ १५ पर रामस्वरूप की की पंक्तिओं देखिए हैं।
- <sup>५</sup> सहबो बार्द की बानी—पृष्ठ ५३
- माही तीज मुरी जगन्नाथ साग पकी दिन पाए।  
सम्पन्न सपह साह हुन तब शुभ समया सब बाब ॥
- <sup>६</sup> उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा—डॉ० बरधुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ ५६६
- <sup>७</sup> सन्त चरनदास—डा० त्रिभोक्ती बाराबखरी की संश्लेषित—पृष्ठ १९ १०
- <sup>८</sup> सहबो बार्द की बानी—पृष्ठ ५३
- ‘सब सब कुंभो भाग निहारे चरनदास मुन बार्द’

अंतःस्थापन से वह भी पता चलता है कि अग्नि का अमरदान बहुरा नामक गाँव या भार उनका पहला नाम रघुबीठ था। यह आति के दूसरे बनिय से।<sup>१</sup> अपने पिता के साथ यह बाल्यकाल में ही दिल्ली आ गये थे। एक बार घूमते हुए उन्हें शुद्धदेव जी के दर्शन हुए। उन्होंने ही इनका नाम परनदास रख दिया। इन्हें भीमदुमागवत और ज्ञानयोग की शिक्षा भी गुरु ने ही दी थी। इन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में सर्वे लिखा है—संवत् १७८२ की वैश्व पूर्णिमा को सोमवार के दिन मैंने यह विचार किया कि कुछ प्रश्नों की रचना करनी चाहिये। यह निश्चय करके मैंने उठी दिन कुछ शानिर्वा कना वाली। फिर मैंने वैसी ही पाँच हजार शानिर्वा लिखी और गुरु के नाम की गंगा में उन्हें प्रवाहित किया। इसके पीछे मैंने पाँच हजार अन्य पद लिखे जो तीसरे पाँच हजार रचनाएँ की उन्हें अपने साधुओं को दिया।<sup>२</sup> कहते हैं कि जब इनकी अक्षरवा आठ वर्ष की थी तब इनकी माता और माना ने इन्हें विवाह के माया बाल में बाँधने की बड़ी चेष्टा की किन्तु परनदास की आत्मीयिक भगवद्भक्ति के आगे सबको परास्त होना पड़ा।<sup>३</sup> उनकी भक्ति-भावना निरंतर बढ़ती गई। यहाँ तक की १६ वर्ष की आयु में एक दिन वह गुरु की शीष में उद्द प्रविष्ट होकर गंगा जी के तट पर ध्यानस्थ करके बैठ गये। और वह निश्चय कर लिया कि जब तक गुरु नहीं मिलेंगे तब तक मैं यहाँ से नहीं उठूँगा। कहते हैं उनका यह उद्द निश्चय देखकर शुद्धदेव जी ने उन्हें दर्शन दिए और शुद्धदारा बाने पर आदेश दिया। वह प्रसन्न होकर शुद्धदारा चले गये और वहाँ पर विधिपूर्वक शुद्धदेव जी के मार्ग में दीक्षित हुए। दीक्षा देकर शुद्धदेव जी ने उनका नाम श्यामस्वरन दास रख दिया। कहते हैं इन्होंने अपने महाप्रयास के पूर्व ही अपनी देह-स्वाग के दिन और समय पर निर्देश कर दिया था। उठी के अनुरूप वह संवत् १८३६ में समाधिस्थ<sup>४</sup> हो गये। परनदास जी अंधि पढ़े-लिखे नहीं थे। यद्यपि इनके माता-पिता ने पढ़ाने का प्रयास किया था किन्तु वह अंधि न पढ़ सक। अन्य सत्ता क उद्यय वह निरक्षर मनुष्य तो नहीं थे किन्तु सत्त मुन्दरदास पं उद्यय वह सर्वशास्त्र पारंगत भी नहीं थे।

सत्त परनदास की रचनाओं प सम्बन्धित उन्हीं का एक कथन हम प्रस्तुत कर चुके हैं। इस समय उनकी लगभग इकतीस रचनाएँ प्राप्त हैं जिनमें स कुछ प्रामाणिक और कुछ आमायिक प्रतीत होती हैं।<sup>५</sup>

<sup>१</sup> सहजों बाई की बाणी—पृष्ठ ५२

<sup>२</sup> दूर हुए मैं प्रकृत हुए है बाबत आत्मन् बपार्

<sup>३</sup> श्री जगिन सागर प्रणय—ज्ञान सरोवर (नवम् किशोर प्रस—१९३१) पृष्ठ १५६

<sup>४</sup> सत्त बरदाशस—डा० शिखीजीबारायण दीक्षित—पृष्ठ ३६

<sup>५</sup> उन्हीं भारत की सत्त-परम्परा—पृष्ठ ५९९

<sup>६</sup> उन्हीं भारत की सत्त-परम्परा पृष्ठ ६००

पन्द्रह ग्रंथों का एक संग्रह जेम्स बार्ड ने प्रकाशित हुआ है और इनकी छठ्ठी ग्रंथों का एक संग्रह नवल क्रियार प्रेस से प्रकाशित हुआ है। इनकी कुछ पानियाँ का संग्रह तीन भागों में बेल्गारिअर प्रेस से प्रकाशित हुआ है। मेरी अपनी धारणा है कि यदि कहीं अनुसंधान किया जाये तो इनके और भी ग्रंथ उदात्त हो सकते हैं।<sup>१</sup>

### सहजोबार्ड

सहजोबार्ड अग्नदास जी की पिय शिष्या थीं। यह अपने गुरु को मुगलान् से भी अधिक मानती थीं।<sup>२</sup> इनकी जन्म और निधन काल की तिथि अभी तक निश्चित नहीं हो पाई है। इनका आनुमानिक स्वतंत्रता १७७० से लेकर १८४० के आस-पास माना जा सकता है। यह यमपूतला के प्रतिष्ठित ठहर कुल की महिला थीं। इनके पिता का नाम हरिप्रसाद था यह उन्होंने स्वयं लिखा है।<sup>३</sup> अठस्ताहर से यह भी पता चलता है कि संवत् १८०० का आठ वात इन्होंने सहज प्रकाश नामक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ की समाप्ति दिग्भी शहर का आठ वात में स्थित किसी परीक्षितपुर नामक स्थान में हुई थी।<sup>४</sup> बाद में उन्होंने अपनी यह रचना अपने गुरु का समर्पित कर दी थी। वही सहज प्रकाश नेल्सनेरियर प्रेस से प्रकाशित हुई है। हो सकता है कि उन्होंने और भी कुछ रचनार्थ लिखी हों किन्तु वे अभी तक उदात्त नहीं हो सकी हैं।

### दयाबार्ड

दयाबार्ड सहजोबार्ड की गुरु महन थी और अग्नदास जी की शिष्या थीं। इनका स्वतंत्रता १७७५ से लेकर १८१० का मध्य में माना जा सकता है। १८१८ में उन्होंने दयागोप नामक ग्रंथ लिखा था। उस समय उनकी आयु निरन्तर ही

१ वही—

२ सहजोबार्ड की धारणा—पृष्ठ ९

‘परमेसुर मू गुरु पर्यं गायत्र वेद पुराण’

३ सहजोबार्ड की धारणा—पृष्ठ ४९

‘हरि प्रसाद की सुता नाम है सहजोबार्ड।

उसका कुल है जन्म सदा गुरु नाम सहजोबार्ड’

४ सहजोबार्ड की धारणा—पृष्ठ ४९

‘दिवनी सहर मुदाचना प्रीभितपुर में नाम।

सहाँ समापन हा मई मकरा सहज प्रकाश ४’

१८ वष के आस-पास रही होगी। 'मक्ति-विषयक' का भी प्रौढ़ ग्रंथ २५ वष की कम अवस्था में लिखा जाना संभव नहीं होता है। यह भी दूसर जाति की वेश्य थी। इन्होंने भी अपने गुरु के कुल में ही बन्म लिया था। इनकी रचनाओं का एक संग्रह दयाशार्द की बानी क नाम से वेलेवेडियर प्रेस से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में दयाशार्द लिखित किन्तुमालिका नामक ग्रंथ भी संकलित है। इस ग्रंथ में दयाशार्द क स्थान पर सर्वत्र दयादास नाम मिलता है। ऐसा अनुमान है कि इन्होंने मक्ति क आवेश में अपना दयाशार्द स दयादास नाम कर लिया था। भाग्य, शैली और विषय को देखते हुए विनय मालिका किसी दूसरे की रचना नहीं मानी जा सकती।

### • तुलसी साहब

साहित्य पंथ के प्रकृतक संत तुलसी साहब की जन्म और निर्वास स्थितियों क संबंध में विद्वानों में मतभेद है। वेलेवेडियर प्रेस के सम्पादक ने उनका जन्मकाल संवत् १८२० और निधनकाल संवत् १६०० निश्चित किया है।<sup>१</sup> आचार्य द्विनिमोहन मेन<sup>२</sup> और पं० परशुराम पटुबेदी<sup>३</sup> संवत् १८१७ को उनका जन्मकाल और १८६६ को उनका निर्वास काल मानने क पक्ष में हैं। इन दोनों विद्वानों ने उपर्युक्त स्थितियाँ वैज्ञानिक ग्राहों क आधार पर निश्चित की हैं। अतः उनका स्वीकार करने में शक्य विधि का आवृत्ति न हा।

तुलसी साहब का जीवन कृत भी संदिग्ध है। कहते हैं कि य बाबीराज पराधा द्वितीय क बड़े भाई स। इनका नाम श्यामराज पेशवा था। किन्हीं विशेष कारणों से प्रेरित होकर इन्होंने मुघलन पद का परित्याग कर वैराग्य का मार्ग ग्रहण किया। इनका रिता ने इनकी बहुत गौरव कदर किन्तु इनका कहीं भी पना न लग सका। अंत में उन्होंने निराश होकर अपने छोटे कुंवर बाबीराज का अन्वी गरी सौच दी। 'मुरतयिलास' नामक<sup>४</sup> ग्रंथ क आधार पर यह कहा जाता है कि एक बार गंगा तट पर यह एक शूद्र धार प्राप्त क भगदों को निवृत्त रहे य कि बाबीराज पराधा द्वितीय क एक पत्नित में उन्हें देगवर पहचान लिया और अपने महाशय स जाकर इस पल का निवेदन कर दिया। बाबीराज पराधा अग्रे मिलन गंध और उन्हें यह आदर-उत्कार क साथ अपने

<sup>१</sup> संत बानी नामक—भाग १, पृष्ठ २१६

<sup>२</sup> दीर्घवृत्त मिश्रीमिहिर शाक इतिहास—आचार्य द्विनिमोहन मेन—पृ० १६०-६१

<sup>३</sup> उर्दू भारत की सभ्य परम्परा—पृष्ठ ६५०

<sup>४</sup> उर्दू भारत की सभ्य परम्परा—पृष्ठ ६५५



पर ले गये। कहते हैं कि वहाँ पर वह टिक न सके और दो पार दिन में ही पुराणा यहाँ से चले गये।

संत तुलसी साहब ने अपना उत्तम-रूपन हाथरस में गंगा के तट पर स्थित जोगिया यौब बनाया था। लोगों का कहना है कि वेणुस्य ग्रहण से पूर्व वह ग्रहण भी थे। उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मीबाई था। उनके एक पुत्र भी था जिसका नाम विनायक राव फल्लावा जाता है।<sup>१</sup> उनके गुरु क संबंध में भी कुछ बात नहीं है। अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि इन्होंने किसी मानव देहधारी व्यक्ति का अपना गुरु नहीं बनाया था। इसके प्रमाण में वे उन्हीं की निम्नलिखित वक्ति उद्धृत करते हैं—

‘कंज गुरु ने यह बताया देह गुरु से कुछ नहीं पाई।’<sup>२</sup>

एही वक्ति क आधार पर कुछ बुरे विद्वान यह कल्पना करते हैं कि उनके गुरु का नाम कंज गुरु या पय गुरु था। कंज शब्द से उन्होंने उसी नाम की धार संकेत किया है। किन्तु हमें यह बुरा कल्पना करना नहीं है। उद्युक्त वक्ति में इदय कमल में स्थित योगिक पुरुष के लिए ही कंज गुरु शब्द का प्रयोग किया है।

तुलसी साहब के सिन्धे हुए आश्रम केवल तीन संघ उल्लेख हैं—पटरमापय,<sup>३</sup> शम्भारली और खनाहर। शम्भारली माग हा क अंत में एक पयसागर नाम अपूर्व संघ भी उका हुआ है। इन संघों में पटरमापय नामक संघ विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें विद्व और ब्रह्मों के उद्योगों का उद्धारन किया गया है।<sup>४</sup> इन मक्तिवाग और वेणुस्य परक उद्योगों की भी इसमें अपूर्व बर्णना मिलती है। हमारी समझ में संत तुलसी साहब निर्गुण काय धारणों क उन अंतिम संतो में से हैं जिनकी पत्नी में सदा काय का मयुमय उन्मय पाया जाता है। वह संत-साहित्य क एक बर्णनार कवि है।

### विशेष्य सामग्री

उद्युक्त कवियों की यदि समस्त रचनाएँ परिगणित की जाएँ तो एक हजार से भी अधिक निकलेगी। इनमें स तीन-ती प्रामाणिक हैं और तीन-ती अप्रामाणिक यह निश्चित करना कठिन हा जायगा। ऐसी अग्ररथ में हमने अपने अप्ययन का आधार उन्हीं रचनाओं का बनाया है जो किन्हीं संत मत क विद्वानों द्वारा संश्लेषित करके प्रकाशित की गई हैं। इन प्रकाशित रचनाओं में भी यथार्थक प्रामाणिक मर्मज्ञ होनेवाली रचनाओं का ही ग्रहण किया गया है। संत मत क प्रगत महात्मा कपीर की रचनाओं के बहुत

<sup>१</sup> वैनिब—उत्तरी भारत की मन्त-परम्परा—पृष्ठ ६४४

<sup>२</sup> पटरमापय—वेन्वर्द्धिपर प्रेम—भाग २—पृष्ठ ४१६

<sup>३</sup> उत्तरी भारत की मन्त-परम्परा—बाभुलाल जनुवैरी—पृष्ठ ६५१

से संग्रह उपलब्ध हैं। इनका नाम से प्रसिद्ध शीबक ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुका है। कबीरजीयों में इस ग्रंथ की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। किन्तु हमने इसका अपने अध्ययन में आधार नहीं बनाया है। हमें यह ग्रंथ बहुत प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता है। अपने इस मत के कारकों का निर्देश हम 'कबीर की विचारधारा' में कर चुके हैं। कबीर के संग्रहों में भी प्रामाणिकता की दृष्टि से हमें फेरल दा ही महत्वपूर्ण प्रतीत होत है। एक डा० स्वामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित और संकलित 'कबीर-ग्रंथावली' और दूसरा संत साहित्य के ममठ डा० रामकुमार बर्मा द्वारा संकलित और सम्पादित 'संत कबीर'। प्रथम संग्रह का संकलन बहुत प्राचीन प्रतिष्ठों के आधार पर किया गया है किन्तु प्रामाणिकता के संबंध में संदेह नहीं किया जा सकता। संत कबीर में प्रपञ्चाह्वय में दिय हुए बचन संकलित किये गए हैं। प्रपञ्चाह्वय के संबंध में किसी का भी संदेह नहीं हो सकता। कबीर के अध्ययन में हमने बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित ग्रंथों का ज्ञान-बूझकर छोड़ दिया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे ग्रंथ सच्चा अप्रामाणिक हैं। हाँ दत्ता अर्थ यह है कि कबीर ग्रंथावली और संत कबीर की तुलना में इनमें संदिग्ध धारणियों की संख्या अधिक है। इसीलिए हमने अपने अध्ययन में इनका स्थान नहीं दिया है। संत नानक को अध्ययन हमने अपने प्रपञ्चाह्वय के आधार पर किया है। प्रपञ्चाह्वय की प्रामाणिकता निर्विवाद है। संत रैदास की धारणियों का अध्ययन शुरू ग्रंथ साहज तथा बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित रैदास जी की धारणा तथा संत रैदास और उनका काम्य शीबक संग्रहों से किया गया है। पनी फर्दास जी की धारणियों के लिए बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित 'पनी फर्दास जी के शब्द' संत दानी संग्रह और संत मुषायार नानक संग्रह अध्ययन का आधार बनाये गए हैं। संत दानू जी की रचनाओं के अध्ययन के लिए पत्रिका प्रसाद त्रिपाठी द्वारा सम्पादित और संग्रहीत रानी दानूदयाल की धारणा तथा बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित दानूदयाल की धारणा भाग १ और दो-तथा आचार्य चित्तिमाहून संत हाथ संग्रहों दानू शीबक संग्रह ग्रंथों का उपयोग किया गया है।

निर्गुण काम्य धारण के अन्तर्गत संतों के अध्ययन का आधार, फेरल बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित ग्रंथ तथा संत साहित्य के ममठ विद्वान् विषयार्थ हरि द्वारा सम्पादित संत मुषायार नामक ग्रंथ बनाये गए हैं। शीबक का यही खानसी प्रामाणिक प्रतीत हुआ है।

बसवदियर प्रेस से प्रकाशित ग्रंथों के संकलनकर्ता और सारादक पर ही विश्राम काजुश्री साहब हैं। इसका अर्थ यह बड़ा प्रमाण्य यही है कि उन्होंने संग्राहक और संकलनकर्ता के रूप में अपना नाम नहीं पर भी नहीं दिया है। ग्रन्थक भूमिका के अंत में आभारार्थक अध्ययन शब्द लगा गया है। इस संग्राहक का अर्थान विनय भाव रखता है। पान्तर में भी धारणियों की गाय और गद्य बचने के अर्थकार्य उग दी विनय समस्त विश्राम काजु-श्री महत्त्वा दान है। संग्राहक ने संत-धार्मिक पुस्तकालय

का प्रकाशन किसी स्वरूप मात्र से नहीं किया जा। उनका दृष्टिकोण ब्रह्मत्मक और अन्वेषणात्मक ही अपेक्षित है। उसने वक्तव्य किया यही प्रयत्न किया कि जो बानियाँ प्रकाशित की जाएँ, वह प्रामाणिक ही हों। इसके लिए उतने धर्म और भय का ही रूप नहीं किया है, परन्तु अपनी अप्रतिम प्रतिभा पर भी उद्योग किया है। वह बात उसी के निम्नलिखित शब्दों से प्रकट होती है—“संलग्नी पुस्तकालया के ध्वजने पर अभिप्राय जगत्-मसिद्ध महात्माओं की बानी और उद्देश्य का जिनका स्वरूप इच्छा जाता है, क्या होने का है। जितनी बानियाँ हमने छपी हैं, उनमें से विचार तो पहले नहीं छपी ही नहीं थी और जो छपी भी थी प्रायः ऐसे द्वि-मिश्र और बजाह रूप में या चेतक और कृति से भी हुई कि उनसे पूरा लाभ नहीं उठया या छफता था। हमने देश-देशांतर से यह परिश्रम और रूप के साथ इच्छाभिन्विष्ट कुर्मम प्रथम या पुस्तकालय जहाँ तक मिल सक, अथवा या नष्टन करके भेजवाये। मरुतक ता पूरे प्रथम छाप गये हैं और पुस्तकालय शब्दों की द्वापत में धर्म-साधारण के उद्देश्यक पद युन सिव हैं प्रायः कार्य पुस्तकालय का लिपियाँ का मुद्राविका क्रिये और टीक रीति से शब्द नहीं छपी गई हैं।”—यह कथन प्रथम अर्थवाद मात्र नहीं है; इसमें उक्त का अर्थ बहुत अपेक्षित है। यही कारण है कि संत-साहित्य का अध्वन्य करनेवाले सभी पिशाचाने अपेक्षित संत बानी पुस्तकालया के संस्था का ही उपयोग किया है। स्वर्गीय महामहाराजगार मुन्नाकर द्विपेनी ता इन संस्थाओं को देखकर इतने प्रभावित हुए कि “न मृता न मरिणति” तक कह जाया था। और महाशय्या फारीनदेय ता इच्छा होने की ताज से भी मईगा मानते थे। यही भी अपनी धारणा यही है कि संस्था की बानियों पर यदि कोई प्रामाणिक संश्रय उल्लेख है ता वे वेकवक्तिपर प्रथम क ही हैं। प्रायः प्रामाणिक कहे जानवाने संश्रय-धर्म अन्विष्ट रूप में इतो संश्रयानी पुस्तकालया के आधार पर उधार किया गया है। इसीलिए हमने अपने अन्वेषणन का आधार इन्हीं धर्मों को बनाया है। संस्था की बानियों पर दूसरा प्रामाणिक संश्रय विपत्ती हरि की या संत मुन्नाकार नामक प्रथम है। इसका संश्रयता और अन्वेषण भी विपत्ती हरि संत शास्त्रिक संश्रय विद्वान् हैं। अन्वेषणन प्रथम साहित्य का अध्वन्य कि य है, अन्विष्ट उतमे इच्छा उक्त प्रथम भावना अन्वेषणन का भी प्रयत्न किया है। प्रकाशक का यह कथन उक्त से दूर नहीं है। विपत्ती हरि का संत साहित्य के निश्चय ही एक मुन्नाकार विद्वान् हैं और उन्हीं के प्रथम संश्रय पर परिश्रम से उधार किया है। विपत्ती की न ता इत संश्रय की मुक्त कृत से प्रकट की है। यह निम्न है—“हिन्दी धर्म शास्त्र भाषा बनो है ता उक्त साहित्य का अध्वन्य हिन्दुध्यान मर में दानवाता है। अन्वेषणन में गालन उच्छेदी का सर्वोत्तम और सर्वमान्य संश्रय दुष्प्रा है, यथा कोई संश्रय हिन्दी के लिए बकर ही चाहिए। हरि की क इस धर्म मुन्नाकार का बना दाता ता नहीं है, लेकिन मुक्त लगता है कि यह भी प्रायः अनिर्दिष्ट संश्रय है और प्रायः

का हिन्दी सन्त साहित्य का व्यापक अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें इसका बहुत उपयोग होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं।" विनाशा भी के शब्द अक्षरशः सत्य हैं। संस्कृत को इतना महत्वपूर्ण और मास्य देखकर ही हमने अपने अध्ययन को आधारभूत सामग्री में उसको भी स्थान दिया है।

## हिन्दी की निर्गुण विचारधारा के उदय और विकास की मेरेक परिस्थितियाँ

पगत में किसी भी विचारधारा का उदय और विकास निरालम्ब और निरपेक्ष नहीं होता। उसकी अपनी एक अलग पृष्ठभूमि होती है, उसके उदय और विकास की मेरेक परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ और परम्पराएँ भी पूरक ही होती हैं। इन सबको समझे बिना हम उस विचारधारा के सही स्वरूप का ज्ञान नहीं समझ सकेंगे। हिन्दी की निर्गुण विचारधारा इस नियम का अपवाद नहीं है। अतएव उसका विश्लेषण करने से पूर्व हम उसके उदय और विकास की परिस्थितियाँ तथा प्रवृत्तियों का निर्देश कर देना आवश्यक समझते हैं। मुविषय के लिए उनका वर्णन निम्नलिखित शीपको से किया जा सकता है—(१) राजनीतिक प्रवृत्तियाँ। (२) धार्मिक प्रवृत्तियाँ। (३) सामाजिक प्रवृत्तियाँ। (४) परिस्थितिकरण्य व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ।

(१) राजनीतिक प्रवृत्तियाँ—मध्ययुग की राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत ही विचित्र एवं विचित्रपूर्ण थी। पञ्चनों के आक्रमण भारतीय वातावरण का अपनी पनाग्वता, नृशंठता और उद्वेगता से ऋद्धकार रह गये। भारत पर अरबों के आक्रमण भी शताब्दों से ही आरम्भ हो गये थे किन्तु इन आक्रमणों से भारत का राजनीतिक वातावरण विचित्र प्रभावित न हुआ था। भारतीय राजनीति की पत्रता सर्वप्रथम महमूद गजनवी के आक्रमणों से विकृत हुई थी। महमूद गजनवी ने भारत पर सभ्य आक्रमण किया था। इनमें सबसे महानक सम्मान का आक्रमण कहा जाता है। इस आक्रमण का

<sup>१</sup> भारत और भारत के सम्बन्ध—मूल संप्रदाय संपद सुसेमान मदी—अनुवादक-सामयिक जर्ना (१९३०), पृष्ठ १९

<sup>२</sup> पद ब्रह्मस्य हिंसा काक इतिहास—भार० सं० मजूमदार, राव बीररी आदि (१९५०, अमृत) पृष्ठ २०९

<sup>३</sup> हिंसा काक इतिहास पद टोस्ट काक इतिहास काक हिंसापरिचय—इतिहास पद कापस्य (अमृत, १९९९ (१०) भाग ४, पृष्ठ १८१

और भी हेगिप—ई० आर० ई० १२, पृष्ठ ९०

इतिहास हिन्दू जाति के आशुभों से लिला हुआ है। भारतीय इतिहास का वह पहला अवसर था जब भारतीय अर्थ का निरन्तरित मुमन विदेशियों के द्वारा लुप्टे तख से पदबलिह किया गया था। अहते हैं सोमनाथ के मन्दिर की निरन्तरात्वा मूर्ति रखने स्वयं लोकी की और मन्दिर की अनन्त बन-नाथि गाकियों और लम्पये पर लादकर ले गया था। राजपूतों ने उतअर सामना करने की चेष्टा भी की थी, किन्तु माम्ब ने उनअर साथ नहीं दिया, वे लुप्टे तख से पण्डित हुए और हवायों की संस्था में नीर यति को प्राप्त हुए। महमूद के अन्त आक्रमण भी सोमनाथ के आक्रमण के तख ही प्रलम्बकापी थे। उतके इन आक्रमणों से भारतीय राजपूती की नीब हिल गई।

महमूद गजनवी के बाद मोहम्मद गौदी ने लूटमार करके पन एकत्रित करने, मन्दिर लोके, निरन्तर हिन्दुओं की वरन्त हत्या करने की दानवी परम्परा को बीनित रखने की चेष्टा की। वह बहुत लुली और लूटनीतिवा था। अपनी लूटनीति और लुल के बल पर उतने पुष्पीरुब जैसे दिस्ली के सम्राट् को पण्डित करके बंदी बना लिया था। दिस्ली-निबल के इत अवसर पर उतने नगर के लालो हिन्दुओं को लतवार के पाठ उठार दिया था। तत्कालीन इतिहासकर हसन निबामी ने अपने आभिल लषापील<sup>१</sup> नामक इतिहास ग्रंथ में उतके रोमहर्षक अत्याचारों का विस्तार से बर्रान किया है।

इन बर्मान्थ बर्षों और अर्धशोहण लुटेरों के परचात् गुलाम बादशाहों का समय आया। कुयडुलिन ऐबक<sup>२</sup> (१२०६-१२१०) इत बर्र का पहला बान्शाह था। दिस्ली का पहला मुतलमान लुलग्रान भी वही माना जाता है। वह बडा ही बन्दर और बर्मान्थ था। तत्कालीन इतिहासकर हसन निबामी ने अपने लालुलमालीर नामक इतिहासग्रंथ<sup>३</sup> में उतके हिन्दुओं के प्रति किये गये अत्याचारों का बर्रान किया है। उतने लिखा है कि ऐबक ने बनारल, कोपल और आलिबर<sup>४</sup> नामक नगरों पर आक्रमण करके उनको लुप्टे तख से मप्य अन्ध किया था। इतिहासकार कहते हैं कि ऐबक ने केवल बनारल में ही ललगम एक हजार मन्दिरों को लुलनाथर उनके स्थान पर मुतबिरे बनवाई थीं। आपल नगर पर त्रिंश आनकण अलीगडु बर्रत

<sup>१</sup> ललनक काक देहली का० पृ० ६० लुल आललनक पृष्ठ ११० १६

<sup>२</sup> इस मन्थ का विवरण ईलिबट लषा लूमन किलिज हिस्ती काक इतिहास पन् लोसक काडु इरुल काक हिन्दीरिबल (लण्डन, १०६६-७७) काग २ में देलिड।

<sup>३</sup> हिर।। काक इतिहास लुल लोसक काडु इरुल लीन हिन्दीरिबल, इलिबट लषा लूमन काग २, पृष्ठ १२३

<sup>४</sup> ललनक काक देहली, पृष्ठ १२० लषा देगिदे—मिग लिबीरन, कागक—मैडिकल (१९०९), काग १ व २, लूमिका पृष्ठ ७२

हैं, आक्रमण करने उठने वहाँ की समस्त हिन्दू जनता को तलवार के बल पर इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था। बिन लामों ने इस्लाम धर्म का स्वीकार करने में आनामनी थी, उन्हें क्रूरतापूर्वक काट डाला गया। उसकी अतिबुर विषय की कमा और भी अधिक कथ्य है। उसने इस नगर के सैकड़ों हिन्दू-मन्दिरों का पत्त करके उनके स्थान पर मसजिदें बनवाई और लगभग एक लाख हिन्दुओं की हत्या की और लगभग पचास हजार हिन्दुओं को गुलाम बनाकर ले गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक के परचात अस्तमश<sup>१</sup> सिद्दाउनासुद् हुमा। वह कुतुबुद्दीन के सद्य बर्माण्य हाते हुए भी उठना कर नहीं था। इसके शासनकाल में हिन्दू जनता को बोका सँस लेने का अवसर मिला ही था कि पंगोसो<sup>२</sup> का आक्रमण हो गया जिससे माछ को बड़ी गहरी छति पहुँची। अस्तमश के परचात शासन की बागडोर उसकी दुहिता रजिया<sup>३</sup> के हाथ में गई। श्री होने के नाते वह बर्बर, क्रूर, दुरास और बर्माण्य नहीं थी। किन्तु उसे अधिक दिन शासन करने का अवसर नहीं मिला। सिद्दाउनासुद् होने के पार बप परचात उसकी हत्या कर डाली गई। रजिया के बाद बलबन<sup>४</sup> बादशाह बना। यह अपने पूर्ववर्ती सुलतानों के सद्य ही बर्बर, क्रूर, दुरास, बर्माण्य और छत्याचारी था। मंगोलों ने उसे बिन नहीं लेने दी। मंगोलों के आक्रमणों से वह तंग आ गया था। यदि उसे मंगोलों के आक्रमणों का भय न होता तो सम्भवतः वह हिन्दुओं के प्रति और भी अधिक छत्याचार करता। बलबन के परचात गुलाम बंश के पैर उखाड़ गये। मंगोलों के हमलों ने अन्त में उसे विस्तृत पंगु बना दिया।

<sup>१</sup> १२६० के आसपास दिल्ली के सिद्दाउन पर खिलजी बंश का प्रमुख स्थापित हो गया। इस बंश का सबसे प्रसिद्ध बादशाह अलाउद्दीन<sup>५</sup> माना जाता है। वह

<sup>१</sup> एन ब्रह्मांस हिन्दी भाषा इतिहास (१९५०) पृष्ठ २८२, ८५

सुलतान भाषा देहली - डा० श्रीवास्तव (१९५०) पृष्ठ १२९

<sup>२</sup> " " " " " " " १३१

<sup>३</sup> एन ब्रह्मांस हिन्दी भाषा इतिहास (१९५०) पृष्ठ २८५, ८८

सुलतान भाषा देहली (१९५०) पृष्ठ १२२, २५

<sup>४</sup> " " " " " " " १५१

एन ब्रह्मांस हिन्दी भाषा इतिहास (१९५०) पृष्ठ २८५, २९४

<sup>५</sup> सुलतान भाषा देहली पृष्ठ ४०१

" " " " " " " अध्याय १०

" " " " " " " पृष्ठ २११

# १०. हिन्दी की निर्गुण सम्प्रदाय और उसकी दार्शनिक दृष्टमूर्ति

महान् क्रूर और रक्त-पिपासु मुसलमान था। उसका व्यवहार हिन्दुओं के प्रति बहुत ही कठोर था। अम्बुल बसाऊ ने अपने तबीयत अन्तर्गत नामक इतिहास ग्रन्थ में लिखा है कि अलाउद्दीन खिलजी ने लम्बाव की लड़ाई पर स्थित लम्बावत नगर को भीतर यहाँ के हिन्दु पुण्ड्रों को मारकर रक्त की नदियाँ बहा दी थीं और उनकी लगभग २० हजार युवा क्रिषी को गुलाम बनाकर ले गया था। इसी बादशाह के सम्बन्ध में एक इतिहासकार ने लिखा है कि उसके पाठ ५० हजार गुलाम थे। यह भी कहते हैं वह अपना शासन अश्लेषाओं के मन्त्रागुलार बसाता था। उसने एक बार अपने कब्रि की पूजा कि इस्लाम धर्म में हिन्दुओं के प्रति ऐसे व्यवहार का आदेश दिया गया है। इसके उत्तर में कब्रि ने कहा कि हिन्दु लोग पुष्पी के लक्षण भीषण हैं। उनसे यदि चाँदी माँगी जाये तो उन्हें किनबपूर्वक स्वर्ण में बदलना चाहिए और यदि मुसलमान उनके मुँह में पूरना बाहता है तो उसे अपना मुँह कैसा देना चाहिए। फारस की आबा है कि यदि हिन्दु इस्लाम का स्वीकार न करें तो उन्हें कैद करके लूट सजाया जाना चाहिए और अन्त में उन्हें मारकर उनकी लम्पति छीन लेनी चाहिए। इस पर बादशाह ने उत्तर दिया कि मैं पहले ही हिन्दुओं को यह आदेश दे चुका हूँ कि वे अधिक से अधिक १ मास क सिय मोटा भाजन और मोटे पत्र मरकर रक्त लकते हैं। इसी बादशाह क सिय कहा जाता है कि उसके मन्त्र के सामने ४० या ५० हिन्दुओं की लार्गे लरेष पकी खली थीं। अलाउद्दीन के परचात् भिल्लजीपंश में कोई पैसा मुल्तान नहीं हुआ जो दिल्ली के सिंहासन की रक्षा कर सफ़ता। फलस्वरूप दिल्ली का सिंहासन दुगलक बंश के अधिष्ठात में पला गया। इस बंश का सबसे प्रसिद्ध बादशाह मोहम्मद दुगलक माना जाता है। वह एक सनकी, क्रूर और बिही बादशाह था। कश्चित् को मारने और मन्दिरो को तोड़ने में वह पूर्ववर्ती सुलतानों क लक्षण ही अपना गौरव समझता था। महात्मा क प्रसिद्ध सन्त नामदेव के प्रति उसने जो दुर्जन्य व्यवहार किया था, उसे हिन्दु भाति कभी नहीं भुला सफ़ती। मोहम्मद दुगलक के परचात् पीराब दुगलक बादशाह हुआ। यह बहुत ही परांग्य और अत्याचारी था। एक इतिहासकार

१ सिल्व रितीकृत भाग १, २, सप्तक—मैकटिक, भूमिका पृष्ठ ४२ से उद्धृत।

२	"	"	"	"	४२	"
३	"	"	"	"	४४	"
४	"	"	"	"	४३	"
५	"	"	"	"	४३	"
६	"	"	"	"	४३	"

केविने अन्तर सुसरा त्रिगुण, तारीख इन्वारी अथवा अन्वयन उत्तपुत्र





सिखा है कि इतने लालनऊ के बुद्धन ब्राह्मण के केवल इतना बहने पर कि उत्तम कर्म भी इस्लाम के सदृश लम्बा है, बीबिन बलका दिया था<sup>१</sup> संत कबीर के प्रति किये गये भ्रत्याचारों से तो प्रायः सभी लोग परिक्रिष्ट हैं।<sup>२</sup> इतने केवल हिन्दू जाति और धर्म पर ही कुठारपात करने की चेष्टा नहीं की, अपितु इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए इतने पीठबशाह के सदृश राजकीय कोष और अभिन्नपों का भी उपयोग किया था।

सोही बंश के बाद भारत का शासनसूत्र कुछ दिनों के लिए विखुल हो गया और छोटे छोटे राज्य प्रकट हो गये। इसी समय बाबर<sup>३</sup> ने भारत पर आक्रमण किया। हिन्दू वीरता के प्रतीक राधा सांगा की पराभव हुई और स्वच्छता के लिए प्रयत्नशील भारत पुनः बिरबाल के लिए बन्दी बन गया। बाबर जैसे तो एक योग्य शासक था, किन्तु हिन्दुओं से यह भी घृणा करता था। उनके प्रति उतने निर्दयता का व्यवहार किया था। सेनपुर के हिन्दुओं के प्रति किये गये दुर्महारायों और भ्रत्याचारों का संकेत सन्त मानक<sup>४</sup> ने भी कि वहाँ पर उत्पिष्ट थे, किया है। उन्होंने लिखा है कि घाम का मुगलवार का मुगल है, बादशाह कठोर है, हिन्दू बान्धव है। म्याग पर लगाकर उड़ गया है, अठरव के इस महान् अन्वेषण में लक्ष्य का मूर्त दिग्दर्शक नहीं करता। मैं ऊपरी लोच में स्थायुक्त हूँ। अर्धधर के विमूर्धित में दुःख से रोता हूँ कि मोक्ष किन्तु प्रभार मिलेगा। बाबर के बाद कुछ दिन तक शेरशाह<sup>५</sup> का प्रशासन चल रहा। किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसके द्वारा उपाधिष्ठित साम्राज्य की रक्षा न कर सके और वह फिर मुगलों के आधिपत्य में बला गया। शेरशाह एक बहुत ही योग्य शासक था। वह मूर्खी परमन्वेषण और निरर्थक भ्रत्याचार में विरक्त नहीं करता था। उसके बाद शासन की पागडोर मुगलवंश के महान् सम्राट् अकबर के हाथ में आई। अकबर<sup>६</sup> एक योग्य शासक था। हिन्दुओं के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उसका व्यवहार कुछ नहीं था। उसके उत्तराधिकारी सम्राट् बहादुर और शाहजहाँ बलाधिक और विस्तृष्टी अधिक थे और बर्माग्य धर्म।<sup>७</sup> इन सम्राटों के शासनकाल में हिन्दुओं को घोर विषमय मिला। किन्तु विषमय के ये दिन मित्रे हुए ही निकली। इनके बाद आने तीन मारवी की हत्या करके औरंगजेब<sup>८</sup> दिल्ली के सिद्धान्त पर

<sup>१</sup> मुस्लिम रूक हब इतिहास—का० ईश्वरीप्रसाद,

<sup>२</sup> सप्तमन भाग ईदली, पृष्ठ ४५६

<sup>३</sup> बब ब्रह्मसमूह हिन्दी भाग इतिहास, पृष्ठ ४२१

<sup>४</sup> सिद्धा तिलीत्रक, भाग १, २, भूमिभूत पृष्ठ ४७

<sup>५</sup> बब ब्रह्मसमूह इतिहास, पृष्ठ ४२४, ४२२

<sup>६</sup> " " " " " ४४५

<sup>७</sup> " " " " " " " ४४२

<sup>८</sup> " " " " " " " ४५२

आरुढ़ हुआ। यह बड़ा ही कट्टर धर्मान्ध बादशाह था। हिन्दू जाति और धर्म के लिए उसने अकेले ही इतने अत्याचार किये थे, जितने मुगलवंश के अन्य समस्त बादशाह मिलकर भी न कर सके थे। श्रीरंगनेश के संबंध में माहीरए आलमगीरी<sup>१</sup> नामक ग्रंथ में लिखा है कि खर्म इस्लाम के रक्षक आलमगीर श्रीरंगनेश के कानों तक यह बात पहुँची कि पापा, मुस्तान और पनारस के माहारा लोग बहुत दुष्ट हो गये हैं, जो अपने धर्म-ग्रंथों की शिक्षा में लगे रहते हैं और दूर-दूर के हिन्दू मुसलमान उनके शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनके पास जाते हैं। यह सुनते ही उसने अपने राजपालों को आज्ञा भेजी कि वे लोग अपने प्रान्त के उपर्युक्त स्थानों के मन्दिरों को तोड़कर उनकी वाठशालाओं को मजबूत कर, बुतपरस्ती की सारी शिक्षा-दीक्षा समाप्त कर दें। राजपालों ने उसकी आज्ञा का पालन छोड़कर कसब किया। उन्होंने उपर्युक्त स्थानों के मन्दिरों को टूटवाकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा दीं, उनके पुस्तकालय बलवा दिये और वाठशालाएँ नष्ट कर दीं। अपने शासन के १३वें वर्ष में<sup>२</sup> उसने मथुरा के मन्दिरों का तोड़ने की आज्ञा दी। उसके सेनापतिना ने मथुरा के कुछ मन्दिरों का तोड़कर एक बहुत बड़ी मस्जिद की नींव डाली। इसी की आज्ञा से १६८० में<sup>३</sup> शाहजादा मौहम्मद आज़म और खानबहादुर बहादुर ने उदयपुर पर आक्रमण किया। यद्यपि राजपूतों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से मन्दिरों की रक्षा करने का प्रयत्न किया, किन्तु समुद्र क उदय यवन सेना के आगे दस-बीस सराबरो की गिनती भी क्या होती। यवनों ने बहाँ की जनता को लूट लिया और मन्दिर तथा मूर्तियाँ तोड़ डालीं। हजारों की हत्या की, हजारों का बंध कर दिया और शेरकों को गुनाहम बना लिया। कहते हैं कि निजीक के आक्रमण के अक्षर पर श्रीरंगनेश मन्दिरों का तोड़ने स्वयं गथा था। बहाँ के प्रसिद्ध ६३ मन्दिरों का उसने अपनी आँसों के सामने विध्वंस करवाया। सिक्कों के मर्चे गुप्त संग्रहादुर को उत्तार के पाठ उतारने का मूर्च्छतापूर्ण कार्य भी इसी राज्य में किया था। गुप्त गोविन्दसिंह के पार पुत्र की हत्या का उद्योग भी यही मराम था।<sup>४</sup> इसके राज्यघात में हिन्दुओं को धरना पनेपालन करने का अधिकार न था। वे अपने मन्दिरों का पुनर्स्थापन भी नहीं कर सकते थे। गंगा खान करने तक की उन्हें आज्ञा न थी। कोई भी हिन्दू निजी सार्वजनिक स्थान में पार्थिक अनुष्ठान और पूजा भी नहीं कर सकता था।

<sup>१</sup> सिंग रिर्वाज्व भाग १ व २, मसक—मैकलिक (१६०६) भूमिका पृ० ४० से उद्धृत।

<sup>२</sup> राजेश्वर मिरी काक मथुरा—माहज, पृष्ठ ३१६

<sup>३</sup> ही सिंग रिर्वाज्व भाग १ व २, मैकलिक, भूमिका, पृष्ठ ६८

इस प्रकार हम देखते हैं अक्षर शाहबर्ही और बर्हीगीर के युग में हिन्दू धर्म में थोड़ी-बहुत आशा का संसार हो गया था। वह आगे चलकर औरंगजेब की कुर नीति द्वारा पददलित कर दिया गया। कभी हुई कभी नादिरशाह<sup>१</sup> और अहमदशाह<sup>२</sup> के आक्रमणों ने पूरी कर दी। हिन्दुओं की आशा-कला चिरकाल के लिए मूर्च्छा गई।

उपर्युक्त राजनीतिक परिस्थितियों के प्रचारा में हमें निम्नलिखित राजनीतिक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट परिभाषित होती हैं।

१—दिल्ली का सिद्दासन, कपल राजसूयनी की भाँति किसी भी राजवंश का अधिपति में नहीं रह पाता था। इती प्रथम बादशाहों का शासन-काल भी अधिक दिन नहीं टहर पाता था। कभी कभी तो एक-एक वर्ष में द्वा-दो तीन-तीन मुसलमान सिद्दासनारूढ़ हो जाते थे। सभी बादशाह स्वच्छपाती<sup>३</sup> और स्वतंत्र प्रकृति के होते थे। कभी-कभी उनमें प्रकृति एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होती थी। इतक बुद्धिगाम बनता तो वह भी विशेषकर हिन्दू जनता को उठाने पकड़ प। वह सर्व ही बल और शक्ति रखती थी। इस प्रकार शासन रूप की अस्थिरता से देश में सर्व ही अस्थान्ति और अस्त-व्यस्तता फैली रहती थी।<sup>४</sup>

२—निरपयति लालों निरपयनी हिन्दू पशुओं की भाँति तलवार के पाद उतार दिये जाते। कोई भी हिन्दू अपने को किसी भी परिस्थिति में सुरक्षित नहीं समझ सकता था। मृत्यु की तलवार सर्व ही उनके सर पर लटकती रहती। उसे पता नहीं कि वह किस समय उतका शिखर बन जावे।

३—हिन्दुओं की समाधि विकृत श्रद्धा नहीं थी। मृत लोग जब ब्याहृत के लूट लेते थे। मृत बादशाहों ने उन्हें हर प्रकार से दमि और दारिद्र बना दिया था। वहाँ तक कि कभी ये कभी हिन्दू के घर में ६ मर्दाने के लाल का आशा अन्न भी नहीं खाता था। यही हालत कभी की थी। लगन से लगन हिन्दू के घर में एक भी मूत्रपान बन्ध नहीं निकल सकता था। उन्हें मूत्रपान बन्ध पहनने की आशा भी नहीं थी।

४—हिन्दुओं की आँगों के सामने ही उनके मंदिर ताँडे और अन्ननिष्ठ रिये जाते थे। उनकी चिरव्याप्तियाँ मूर्तिप्रां पचनागूर करक पैरों के नीचे कुपत्ती जाती थी। कुछ मुसलमान तो उन्हें हिन्दुओं के रक्त से आन भी कराते थे। मंदिरों के स्थाप पर मरिबदे बना दी जाती थी।

<sup>१</sup> एम बहामान हिन्दी आक इतिहास, पृष्ठ ५२१

<sup>२</sup> " " " " " " ५२४

<sup>३</sup> मजबूत आक १६वीं

पृष्ठ १२४

<sup>४</sup> मजबूत आक १६वीं—रा० ६० पृ० ०५० श्रीबालक—पृष्ठ ५२६

५. राजनीतिक मेदमात्र<sup>१</sup> अपनी परकाष्ठ पर पहुँच गया था। कोई भी हिंदू उच्च पद पर नियुक्त नहीं किया जाता था। मोहम्मद तुगलक ने एक बार किसी रतन नामक हिंदू<sup>२</sup> की योग्यता पर मुग्ध होकर उसे उच्च पद पर नियुक्त भी किया था। किंतु उस विचारे को इस पद के लिए बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा। ईर्ष्यालु मुसलमानों ने उसकी हत्या कर डाली। रोप दिल्ली के सुसयानों में स किसी के शासनकाल में भी किसी हिंदू को ऊँचा पद नहीं दिया गया। इस दृष्टि से हम तुगलक सम्राट् अफ़्जल को सहायक कह सकते हैं। उसने मेदमात्र की भावना को कुछ कम करने की चेष्टा की थी। सुसयान सांग वा इतने अधिक भ्रमों और पक्षपाती थे कि वे इस्लाम में परिवर्तित हिंदुओं को भी उच्च पद पर नियुक्त नहीं करते थे और न ही देल सकते थे।

६. मध्यकाल की गुलामों की प्रथा हिन्दुओं के लिए अभिघात बनी। यवन बादशाह हिन्दुओं को लालों की संख्या में गुलाम बना लेते थे।<sup>३</sup> कहते हैं कि अलाउद्दीन के पास ५० हजार गुलाम थे। फ़ीरोज़ तुगलक के समय में गुलामों की संख्या बढ़कर दो लाख तक पहुँच गई।<sup>४</sup> यह लोग एक एक नगर से ५० हजार गुलाम बना लेते थे। कुतुबुद्दीन<sup>५</sup> और अलाउद्दीन<sup>६</sup> क शासन-काल में पुरुष ही फवल गुलाम नहीं बनाये जाते थे बल्कि स्त्रियाँ भी लौबी बना ली जाती थीं। अलाउद्दीन के मरण में हम अभी बता आये हैं कि वह केवल सम्भाव्य नगर से २० हजार युवतियों को लौबी बनाकर लाया था।<sup>७</sup>

७. हिन्दू जागों को करने बर्मासलन का अधिकार नहीं था। अधिकार यवन बादशाहों के समय में उन्हें गंगा-स्नान करने तक की मनाई कर दी गई थी। किसी भी धार्मिक स्थान पर बैठकर वे किसी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान न पूजा नहीं कर सकते थे।<sup>८</sup>

८. उस युग में हिन्दू लक्ष्मणों की मर्यादा भी सुरक्षित नहीं थी। मुसलमान बादशाह और सरदार अपनी यादियाँ अधिकतर उच्च कुल की हिन्दू ज्ञानियों से

<sup>१</sup> सफ़्फ़त आक़ देहली, पृष्ठ ४८१

<sup>२</sup> " " " ४८०

<sup>३</sup> सफ़्फ़त आक़ देहली पृ० ४८०-८८

<sup>४</sup> बृहत् पद्मनाभ हिन्दू आक़ इतिहास, पृ० ३९६

<sup>५</sup> हिन्दू आक़ इतिहास के ब्रह्म दत्त बाई इट्स ओन हिस्ट्रीरिबन्स भाग २

<sup>६</sup> (१८२६-३०) पृ० २२१

<sup>७</sup> सिंग रिबीज भाग १ व २, भूमिका पृ० ७२

<sup>८</sup> सफ़्फ़त आक़ देहली, पृ० ४८०-८८

करते थे। जिस हिन्दू की लड़की को वे सुन्दर स्तन पाते थे उसका वे बसपूर्ण अपहरण कर लेते थे। उसे इस्लाम में परिवर्तित करके उससे शादी कर लेते थे।<sup>१</sup> साधारण मुसलमान भी किसी भी हिन्दू सुखी के प्रति जब चाहते थे बलात्कार कर लेते थे।

८. शासन व्यवस्था के सूत्रधार अधिकतर उलेमा लोग हुआ करते थे। वे बड़े ही कष्ट और परीक्षा होते थे। यवन बादशाह इन्हीं के आदेशों पर न्याय का विधान करते थे इसलिए हिन्दुओं के साथ किसी भी प्रकार का न्याय नहीं होता था।<sup>२</sup>

९. यवन बादशाहों का प्रायः प्रधान लक्ष्य येन कन प्रकारेण इस्लाम धर्म का प्रचार करना होता था। इसके लिए वे राजकीय क्षेत्र और अधिकारी का दुस्व बोध करते थे जिसके द्वारा हिन्दुओं की मुक्ति पकते थे।<sup>३</sup>

१०. मध्यकालीन भारत प्रायः नित्य ही विदेशियों के आक्रमण का रंगरसल रहता था। वे परीक्षा, क्रूर, अत्याची और पदारी होते थे। इनका लक्ष्य हिन्दू धर्म और जाति का असमानित कर अधिक से अधिक क्षति पहुँचाना होता था। इनका प्रत्येक आक्रमण भारतवर्ष को शमशान भूमि बनाकर ही छोड़ता था। इस प्रकार हिन्दू जाति को किसी प्रकार की मुक्ति और शान्ति नहीं मिलती थी।

उपर्युक्त राजनीतिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के हिन्दू समाज पर निम्न लिखित प्रभाव दिखाई दिये—

- (१) सारे समाज में घोर निराशावाद का प्रावण्य हो गया। जीवन मार कम लगने लगा।
- (२) मौखिक मुक्तों से उदासीनता की भावना में समाज में एक विविध वैराग्य की लहर पैदा कर दी।
- (३) मुसलमानों की स्वच्छाचारिता और किसी भी समय फलात्कार करने की प्रवृत्ति में समाज में बाल-विवाह, पर्व प्रथा, भगमने ही लड़कियों की हत्या कर दानना, आदि विविध कुप्रथाओं को जन्य दे दिया।
- (४) मूर्तियों के और हिन्दू-धर्म के ठेकेदारों के प्रति एक उदासीनता और अज्ञान की भावना जन्म दी गई थी।
- (५) धर्म के रहस्य का इस प्रकार निरुत्थित रूप जाने की चेष्टा की जाने लगी जिससे यह तत्कालीन राजनीतिक वातावरण में उपयुक्त सिद्ध हो सके।

<sup>१</sup> साम्प्रत चक्र देहली १० ४८९ ४८५

<sup>२</sup> " " १० ४९२-९३-९४ ४९०

<sup>३</sup> साम्प्रत चक्र देहली; १० ४९८

इन सब बातों ने निर्गुण विचारधारा के उदय और विभव में पूर्ण-पूर्ण प्रेरणा प्रदान की।

## धार्मिक प्रेरणाएँ

सम्भवतः प्राचीन भारत में धर्मों की विविधी प्रवाहमान थी। उस विविधी की तीनों धाराएँ इस प्रकार थीं — (१) हिन्दू धर्म, (२) बौद्ध धर्म आदि अन्य भारतीय धर्म पद्धतियाँ और (३) इस्लाम धर्म।

इन तीनों धाराओं में हिन्दू धर्म प्रधान है। उसी के विविध तत्वों ने हिन्दुओं की निर्गुण चरित्रधारा के अन्वेषण को क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक प्रेरणाएँ प्रदान की थीं। यहाँ पर हमारा लक्ष्य उसी का संकेत करना है।

### १—हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म की उन प्राथमिकी, जो जिन्होंने हिन्दुओं की निर्गुण विचारधारा के उदय और विभव में योग दिया था, विवेचन करने के पूर्व हम योही ही व्याख्या उसके स्वरूप की भी कर देना चाहते हैं। हिन्दू धर्म की हमें केवल वा व्याख्याएँ मिलती हैं। एक तो सांख्यिक तिलक की थी और दूसरी मण्डानमीन किष्की इत्यदिना नामक ग्रन्थ की। इन दोनों की व्याख्याओं से हिन्दू धर्म का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। सांख्यिक तिलक ने लिखा है कि वेदों में प्राप्त हुए बुद्धि का रक्षण, नाना विधि नियमों का पालन करना और उनके प्रथम से ईश्वर की उपासना करना ही हिन्दू धर्म है।<sup>१</sup> इत्यदिना<sup>२</sup> में केवल हिन्दू शब्द की व्याख्या करके हिन्दू धर्म का स्वरूप की ओर संकेत किया गया है। उसमें लिखा है कि कर्मा हिन्दू धर्म ही जो हिता से दुःखित होता है, सदापरम्य से उत्तर खता है, वेद, मूर्ति पूजा और गौ सेवा में विरपाठ करता है। यदि इन तीनों परिभाषाओं को ध्यान से देता जाय तो हमें हिन्दू धर्म की पाँच सामान्य विशेषताएँ दिगताई पड़ेंगी। (१) भुक्तियों में विरपाठ, (२) स्मृति धाराओं में विरपाठ, (३) अस्तित्वता, (४) मूर्ति पूजा और (५) गौ-ब्राह्मण आदि में भेदा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक, पौराणिक एवं स्मार्थ धर्म

<sup>१</sup> सामान्य बुद्धिबोधेण नियमात्मकम् ।

व्याख्यात्मकानियमा हिन्दू धर्मस्य व्याख्याम् ॥

—अन्याथ हिन्दू संस्कृति श्रृंख, पृ० ७४ से उद्धृत

<sup>२</sup> दिसवाहृयते परम सदापरम्यतत्परः ।

पर गौ प्रतिमा मैत्री स हिन्दु सुगतात्मकम् ॥

—'अन्याथ' का हिन्दू संस्कृति श्रृंख, पृ० ७५ से उद्धृत

सम्प्रदायों का समष्टि रूप ही हिन्दू धर्म है। कुछ लोगों ने हिन्दू धर्म का अन्तर्गत बौद्ध और जैन धर्मों को भी धरीटने की चेष्टा की है। मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ क्योंकि हिन्दू धर्म की उपरनिर्दिष्ट विशेषताएँ इन दोनों धर्मों में नहीं पाई जाती हैं। यह बात धृष्टी है कि हिन्दू धर्म ने इन दोनों धर्मों की कुछ बातें ग्रहण कर ली हों। किन्तु केवल इसी आधार पर इन दोनों धर्मों को हम हिन्दू धर्म का अंग नहीं मान सकते।

वैदिक युग के समाप्त होते-हाते भारतीय धर्मोत्थेन में पौराणिक युग का समावेश हुआ। वैदिक बहुदेववाद की प्रवृत्ति पौराणिक पंच देववाद की ओर हो चली थी। वैदिक धर्मग्रंथ और शानकायक के स्थान पर उपासनाग्रंथ की प्रतिष्ठा होने लगी थी। इतना परिष्कार यह हुआ कि पुराणों में वर्णित पाँच देवताओं—ब्रह्मा, विष्णु शिव, गणेश, सूर्य का पूजक-पूजक आधार लेकर पाँच उपासना प्रधान धर्म-प्रवृत्तियों का उदय हो गया। उनके नाम क्रमशः ब्राह्मण्य, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, गायत्र्य सम्प्रदाय और शीर सम्प्रदाय हैं।<sup>१</sup> इन पाँचों में द्वितीय और तृतीय अर्थात् वैष्णव और शैव्य धर्म नाम्यता बहुत अधिक बढ़ी। ये भारत के प्रधान धर्म-सम्प्रदाय बन गये। इनमें ही वैष्णव धर्म शैव धर्म से कहीं अधिक प्रचलित हुआ। आगे चलकर वैष्णव<sup>२</sup> और शैव सम्प्रदाय भी विविध उप-सम्प्रदायों में विभक्त हो गये। इससे हिन्दू धर्म की स्थापकता बहुत अधिक बढ़ गई।

पूर्व मध्य युग में (पाँचवीं शताब्दी के आस-पास) इन पाँच सम्प्रदायों के अतिरिक्त भगवान् शिव की फली शक्ति को लेकर शाक्त सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की गई।<sup>३</sup> यह शाक्त सम्प्रदाय नया नहीं था। वैदिक साहित्य में इसके बीजाणु पहले से ही वर्तमान थे।<sup>४</sup> इस सम्प्रदाय के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग<sup>५</sup> तो इसे हिन्दू धर्म का ही अंग मानते हैं और कुछ विद्वान् इसे स्वतन्त्र धर्म<sup>६</sup> मानने के पक्ष में हैं। हमारी धारणा है कि इतना धर्म हिन्दू धर्म की सीमा के अन्तर्गत ही हुआ था।

<sup>१</sup> पञ्चाङ्गवर्षादीनिषा आच रिक्तत्रय एव पृथक् पृथक्

दीर्घिम एव वैष्णविष्म—अन्तरकर आदि में इन सब के वर्णन देने जाते हैं।

<sup>२</sup> वैष्णव सम्प्रदायों का उद्भव 'वैष्णविष्म दीर्घिम' नामक ग्रन्थ में अन्तरकर से किया है। ई० आ० ई० में भी देखिए।

इन ग्रन्थों में मन्वन्तकालीन सुधारकारी सम्प्रदायों का ही उद्भव किया गया है।

<sup>३</sup> पञ्चाङ्गवर्षादीनिषा आच रिक्तत्रय एव पृथक् पृथक् भा० १—७० ७०५

<sup>४</sup> देखिए—प्रितिविष्म आच तंत्र आर्धर अवेकन—भूमिष्म (१९५१)

<sup>५</sup> देखिए—मनुस्मृति की टीका में कुम्भक भद्र का मत। उन्होंने वैदिक और तांत्रिक दो प्रकार की शक्तियों का उद्भव कर लोगों को एक ही धर्म का अंग धर्मित किया है।

<sup>६</sup> प्रितिविष्म आच तंत्र—आपर अवेकन—७० ५१ (१९५१)

बाद में कुछ विदेशी प्रभावों के कारण इसे लोग हिन्दू धर्म से मिला समझने लगे । किन्तु वह उनका भ्रम है । शाक्त सम्प्रदाय हिन्दू धर्म का ही एक अंग है ।

पौराणिक युग के बाद स्मृति युग आया । उपर्युक्त पौराणिक सम्प्रदायों पर स्नातक धर्म का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप उपासना प्रधान पौराणिक सम्प्रदाय स्नानार्थ आचार प्रवण भी हो गये । कुछ दिन तक तो आचारों का स्वरूप शुद्ध और सात्विक बना रहा किन्तु परिस्थितियों के फेर से लोग स्मृतियों के अर्थ का अनर्थ करके हिन्दू धर्म के विविध आचारों और तत्त्वों को विहृत करने लगे । परिणामस्वरूप मध्यमशील हिन्दू धर्मक्षेत्र में घोर अनाचार फैल गया । हिंदी श्री निर्गुण काम्यपाठ के उदय और निरास के प्रेरक हिन्दू धर्म के कुछ तो विहृत तत्व थे और कुछ अविहृत तत्व । विहृत तत्वों के प्रति उनमें प्रतिक्रिया साम्य हुई । उन्होंने उनका दृष्टकर विरोध किया । वा तत्व सात्विक और अविहृत थे, उन्हें उन्होंने हर्षपूर्वक प्रहारा कर सिवा । यहाँ पर पहले हम उन तत्वों का उल्लेख करेंगे जिनके विहृत स्वरूप के प्रति 'छतों में प्रति क्रिया साम्य हुई थी । वे तत्व क्रमशः इस प्रकार हैं—१—पुरोहितवाद, २—वर्णाभ्रम धर्म, ३—भुक्ति प्रामाण्यवाद, ४—मूर्ति-पूजा, ५—धार्मिक अंध विश्वास, ६—बाह्याचार, ७—पूजा विधियाँ और ८—पौराणिकता ।

### पुरोहितवाद

पुरोहितवाद का उदय आर्य ईयानी धर्म में ही हो चला था<sup>१</sup> । वैदिक धर्म में उसका समावेश नहीं हो हुआ था । जो लोग यह कहते हैं कि इसका उदय वैदिक ऋषि पति<sup>२</sup> श्री मावना से हुआ था उनके में सहमत नहीं हैं । क्योंकि इस प्रथा के विहृत वैदिक धर्म के पूर्व भी मिलने हैं । यह हो सकता है कि पहले से पत्नी आनी हुई इस प्रथा को वैदिक ऋषिपति श्री मावना से बल मिला हो किन्तु उसने उसे अन्व नहीं दिया था । मेरी धरनी धारणा यह है कि पुरोहितवाद वैदिक वर्षा धर्म का पूर्वाचार साम्य था । पुरोहितवाद का उदय उषी समय हुआ होगा जब कि आर्य-जाति विविध वर्गों में विभक्त होने लगी होगी । उस समय पुरोहित वर्षा ब्राह्मण वर्ग का पर्यायवाची रहा होगा ।

वैदिक युग में वर्षा व्यपस्था दृढ़ और कद नहीं हो पाई थी । यद्यपि उस दिशा में उसकी मरुति बढ़ती जा रही थी<sup>३</sup> । ऐतरेय ब्राह्मण<sup>४</sup> में दी गई निश्चामित्र श्री कथा

<sup>१</sup> रिचर्ड ब्रन इन वैदिक लिटरेचर—पी० एस० देवामुख (आशुषाद्यं १६३३) अध्याय

६—इन्द्रापोरापिन कन्ट पण्ड प्रीत्युक्त शीपक से, पृ० १३०-१५८

<sup>२</sup> मेरुड कुछ आक दि सेरमि मा० ७ भूमिध

<sup>३</sup> एनसाइक्लोपीडिया आफ रिडीजन एण्ड एपिगस, भाग १०, पृ० ३१३

<sup>४</sup> ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१८२



से प्रकट होता है कि उस युग में क्षत्रिय लोग भी उपर्या के बल पर पुत्राहित बन सके थे। द्वाय्योभोपनिषद् की<sup>१</sup> सत्यकाम और बानासी की कथा भी बड़ी प्रभावित करती है कि पुरोहितवाद की प्रथा तब तक रुद्ध नहीं हो पाई थी। किन्तु उस आर उद्योगी प्रवृत्ति का बली थी। पौराणिक युग में आकर पुरोहित का पद परम्परागत और रुद्ध हो गया। पुरोहित के पुत्र भी पुरोहित होने लगे। अग्निहोत्र का मात्र गीष्प पक गया। स्मार्त धर्म के प्रचलित होने पर ब्राह्मणों के महत्त्व के<sup>२</sup> साथ-साथ पुरोहितों का महत्त्व भी बहुत बढ़ा। स्मृतिओं के बार्मिक जीवन में पुरोहित की अनिहार्यता विविध प्रकार से प्रतिपादित की गई। पराशर स्मृति में तो यहाँ तक लिखा है कि जो पुरुष उपवास उप, वर, ऋ, स्नान आदि विविध धर्म कृत्य ब्राह्मणों से नहीं करता उसके वे सब निष्कृत हो जाते हैं<sup>३</sup>। स्मृतिओं के इस प्रकार के उल्लेखों का प्रभाव यह हुआ कि बार्मिक जीवन में पग-पग पर पुरोहितों की आश्रयकक्षा बढ़ने लगी। धमात्र में पुरोहितों का सम्मान बहुत अधिक बढ़ गया। पुरोहित पद के परम्परागत और रुद्ध हो जाने के कारण प्राचीन षड्विधों के पांडित्य और उदात्तरण प्रवृत्तता का लोप होने लगा। पुरोहित लोग अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लगे। अपने आदर्शों से गिर गये उनका दृष्टिकोण स्थायी हो गया और उन्मत्त लक्षण अर्ध-सामान्य हो गया। अपने इस लक्षण की पूर्ति के लिए वे विविध प्रकार के पालकों और मिष्पाचारों के प्रकार में लग गये। मध्यकालीन जनता इन मिष्पाचारों के कर्म में बुरी तरह से कैदी हुई थी।

मध्ययुग में हिन्दू धर्म की बर्धाभिम अपर्या भी विकृत और लदोप हो चली थी। बर्धाभिम व्यवस्था के जो बीजालु वैदिक साहित्य<sup>४</sup> में वर्तमान थे, स्मृतिकारों ने उन्हें जो विकसित किया। स्मृतिओं में बार-बार इस व्यवस्था का महत्त्व का संकेत किया गया है।<sup>५</sup> साथ तो यह है कि स्मार्त धर्म की आवात्सुमि भी यही है।

<sup>१</sup> ऐतियु—द्वाय्योभोपनिषद् ५३४, ५ अण्ड

<sup>२</sup> ऐतियु—सम्पादकानुसूति—१२ अध्याय  
शातातप स्मृति—अध्याय १

<sup>३</sup> उपवासा प्रसंख्ये स्नान तीर्थ उपस्तपः।

विद्वैः सुम्यादिनं बरु सत्यम् तस्य तदुपवेत् ०

—पराशरस्मृति १।१८

<sup>४</sup> ब्राह्मण का उद्धरण ऐतियु—अध्याय, द्वितीय अध्याय, १।१६।१।७५

<sup>५</sup> बर्धाभिम व्यवस्था का महत्त्व प्रतिपादन निम्नलिखित स्मृतिओं में किया गया है:—

(क) बृहत् पराशर गौडिना—प्रथम अध्याय

(ग) कपु दारिण स्मृति—प्रथम अध्याय

वैदिक साहित्य में ब्रह्म आदियों को लेकर बर्खास्त व्यवस्था के धीमायु प्रतिष्ठित किये गये व स्मृतिकार आचार्य वर्णों के आदेश में उनको बहुत कुछ मूल गये। वैदिक युग में बर्खास्त-व्यवस्था का अन्त किसी प्रकार के मेदभाव के कारण नहीं हुआ था किन्तु स्मार्त बर्खास्त-व्यवस्था विविध मेदभावों पर आधारित प्रतीत होती है। परन्तु इसका अर्थ हम यह नहीं कह सकते कि स्मृतियों का दृष्टिकोण वृषित था। उनसे विचारधारा उनके युग का प्रतिबिम्ब है। उस युग में पुरोहितवाद के प्रभाव से ब्राह्मणों का महत्त्व बहुत बढ़ गया था। जैसे-जैसे ब्राह्मणों का महत्त्व बढ़ता गया वैसे ही वैसे शूद्र उनसे अधिक बढ़ गया था। स्मृतिकारों ने अपने युग की इसी प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब किया है। उनमें हमें एक ओर तो ब्राह्मणों की महान् महिमा का बर्णन मिलता है और दूसरी ओर शूद्रों और चाण्डालों की निन्दा मिलती है। यहाँ पर हम ब्राह्मण महिमा और शूद्र निन्दा के कुछ उदाहरण दे देना चाहते हैं। ब्राह्मणों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए वेदों में शिल्पा है कि पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर से विमुक्ति देना दक्षिणा में देनी चाहिए।<sup>१</sup> उनी स्मृतिपर का करना है अथ, तप, यज्ञ आदि सब तभी सफल होते हैं जब ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं। क्योंकि जो कुछ ब्राह्मण प्रसन्न हैं देवता उनी बात को मानते हैं। वे सर्वगुण सम्पन्न होते हैं। उनके बचन कभी झूठ नहीं होते।<sup>२</sup> इसी संदिग्धता में चाण्डाल आगे बढ़कर पुनः शिल्पा गया है कि ब्राह्मण तीर्थ के सहाय होते हैं। उनके वाक्यस्वी कल से ही पापी लोगों का उद्धार हो जाता है। अतएव उनसे आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त करके और उन्हें मोहन कराके मोहन करना चाहिए।<sup>३</sup> अन्य स्मृतियों में भी ब्राह्मण महिमापरक इसी प्रकार की स्मृतिधरों का दृष्टिकोण ब्राह्मणों के लिए बिलना उदार था शूद्रों के प्रति उतना ही संकुचित भी था। शूद्र और चाण्डालों की निन्दा से स्मृतियों में पड़ी हैं। चाण्डाल लोग स्मृतिधरों की दृष्टि में इतने देव थे कि कोई

स्मृतिधरों का दृष्टिकोण ब्राह्मणों के लिए बिलना उदार था शूद्रों के प्रति उतना ही संकुचित भी था। शूद्र और चाण्डालों की निन्दा से स्मृतियों में पड़ी हैं। चाण्डाल लोग स्मृतिधरों की दृष्टि में इतने देव थे कि कोई

<sup>१</sup> शातलप स्मृति १।२२

<sup>२</sup> उपरिपुत्र उपरिपुत्र अथ अथम्बि ब्रह्म कर्मणि ।  
ब्राह्मणा वाणि मापन्ते माप्यन्त वाणि देवताः ।  
वर्षं देवमया विद्या न तद्ब्रह्ममभ्यया ॥

शातलप स्मृति १।२१ २७

<sup>३</sup> ब्राह्मणा जगम तीर्थं निजम् शातलामिदम् ।

उनां वारुणी दृष्टनैव शुद्धवन्ति मतिना जनाः ॥ इत्यादि  
शातलप स्मृति १।२१ ३०

उनके हाथ का बल भी नहीं पी सकता था। हाथ का ही नहीं उनके कुर्रों का बल पीना भी पार था।<sup>१</sup> अग्नि संहिता में पांडिता का बल पीने पर प्रायश्चित्त रूप में पंचगव्य का विधान दिया है।<sup>२</sup> इती प्रश्नर उशी स्मृति में शूद्र का अन्न दधिर के लक्षण कहा गया है।<sup>३</sup> उसमें सिला है कि यदि वेदपात्री ब्राह्मण शूद्र का अन्न खा ले तो वह शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। स्मृतिचरों ने वेदारे पयशाली को नगर वा गाँवों में रहने तक की आज्ञा नहीं दी है।<sup>४</sup> मनुजी ने सिला है कि पांडिता और स्वयंशों को श्रम के बाहर निवास करना चाहिए। इती प्रश्नर स्मृतियों में वैकुण्ठ स्थानों पर विविध प्रश्नर सं शूद्रों की निषा की गई है। स्मृतिचरों ने उचर्युक्त ढंग की ठकियाँ किसी रूपमात्र से नहीं सिली थी। उन महत्माओं का लक्ष्य अना था। वे संत और अंत में मेद बताना चाहते थे। किन्तु हिन्दू धर्म और समाज पर इतका प्रभाव अष्टा नहीं पड़ा। समाज में बुद्ध से बुद्ध ब्राह्मण उच्च माना जाने लगा। इसके विपरीत उचम से उचम शूद्र किसी प्रश्नर भी ऊपर नहीं उठ सकता था। इस-भेद भावना ने समाज में बहुत ही कुप्रचारों उत्पन्न कर दीं। ब्राह्मण लोग 'पूषिय विम जो सब गुणहीन' जैसी ठकियों का अनुचित लाभ उठाने लगे। शूद्रों को हिन्दू समाज से बुरा हो चली। विदेश से आये हुए इस्लाम धर्म की ओर उनका आकर्षण हुआ। क्योंकि उच धर्म में धार्मिक और सामाजिक मेद बहुत कम था। संतों के हस्त में मेदमात्र प्रधान भावना इत बर्ख-स्वरथा के प्रति प्रतिक्रिया बाधन हो गई और वे उच पर कुटारापात करने लगे। हिन्दू धर्म अथवा ब्राह्मण धर्म के प्रधान प्रामाण्य ग्रंथ भुति और स्मृति<sup>५</sup> माने गये हैं। इनमें भी भुतियों को अधिक महत्त्व दिया गया है। पंडितों में प्रसिद्ध है—

<sup>१</sup> भागवतम् स्मृति—३ अध्याय

<sup>२</sup> अग्नि संहिता—

“इदराकचवडातपरिमदे तु पीषाजसं पचगव्येन शुद्धिः”

१३३वें श्लोक (स्मृति सन्दर्भ—भाग १, पृ० ३४५)

<sup>३</sup> वेदपत्य आश्रमैवाद्य शूद्राश्च दधिरं स्मृतम्। (स्मृति सन्दर्भ—भाग १, पृ० ३४५)

<sup>४</sup> अग्नि स्मृति—पृ० ३४५ (स्मृति सन्दर्भ—भाग १)

<sup>५</sup> बहः स्मृतिः सदाचारः रक्ष्य च प्रियमात्मनः।

इतस्त्वनुविद्य प्राणु साशास्त्रमस्य सप्रथम् ॥

—मनु

अतिम्नु बरी विज्ञवा पममाद्यन्तु वै स्मृतिः।

ते सर्वाश्वर्षामांभ्य नाम्नां घर्मोदि विदधी ॥

(स्मृति सन्दर्भ—भाग १, पृ० १ से उद्धृत)

“यस्य विद्यासमानानां प्रमाद्ये परमं कृतिः”<sup>१</sup>

“वेदोद्दिऽल्लिखो ज्ञर्ममूलमाचारस्तु प्रकीर्तितः”<sup>२</sup>

वेदाद्यमोद्दि निर्बर्मी<sup>३</sup> वेद पय द्विज्रातीनां निमेषस्वर परः<sup>४</sup>

इस प्रकार श्री उदितो के फलस्वरूप समाप्त में वेद प्रामाण्यवाद श्री माम्स्ता अत्रिच कर्त्तुं । उसके फलस्वरूप मध्यकालीन समाज में पालकों और मिथ्याचारों का बोधवाला हो जाता था । तबों श्री बाबा उन्हीं के प्रतिरोध में उठी थी । यहाँ पर हम बोझा-सा परिचय मध्यकालीन पालकों, मिथ्याचारों, बाधाधारों का दे देना आवश्यक समझते हैं ।

हमारे स्मृति ग्रंथों में विविध प्रकार के आचारों का विविध रूप में उल्लेख किया गया है । इनमें सबसे प्रमुख प्रतिमा या मूर्ति-पूजा का उल्लेख मात्र में उल्लेख आदर्शों को लेकर हुआ था । यह बात पारम्पर्य विद्वानों तक ने स्वीकार की है ।<sup>५</sup> इसके बीजालु हमें वैदिक संहिताओं में भी मिलते हैं ।<sup>६</sup> किंतु इसके पूरा विषय बौद्ध अथवा पुराण युग में ही हुआ । इसके उदयकाल के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है । कुछ विद्वानों ने इसके उदयकाल मध्य शताब्दी ई० के आस पास निश्चित किया है ।<sup>७</sup> कुछ दूसरे विद्वान् इसके समय शताब्दी ई० पू० में मानने के पक्षपाती हैं ।<sup>८</sup> हमारी धारणा है कि प्रतिमा-पूजन की धारणा बहुत प्राचीन है । चौथी शताब्दी ई० पू० के आस-पास इसके सम्बन्ध विचार होना प्रारम्भ हो गया था । महाभारत<sup>९</sup> विशेष रूपना कर्त्तु वेद महीदय<sup>१०</sup> ने दूसरी से चौथी शताब्दी पूर्व माना है, में मूर्ति-पूजा की रांभ स्पष्ट है । बौद्धों ने मूर्ति-पूजा को विरोध बल मिला था । उन्होंने

<sup>१</sup> स्मृति सङ्घर्ष, भाग १—

साम्बन्धो धर्मवाचः इति पृ० ५

<sup>२</sup> स्मृति सङ्घर्ष, पृ० ६

<sup>३</sup> कल्याण—वेदान्तिक ।

<sup>४</sup> वैदिक माहोत्सवी—तीर्थजालसूत्र, याज्ञिको, १८६७, पृ० १५४

<sup>५</sup> बुद्धवाचसंतीतिना काक रितांजय उदय पृथिवस—भाग ६, पृ० ७१

<sup>६</sup> रितांजय काक इतिहास, ई० अ० ५० हापकिन्स कृत, पृ० ३००

<sup>७</sup> श्री महाभारत—७ द्विपिपिपिपि—ती० बी० वैय (१९०२) पृ० १७०

<sup>८</sup> अथर्व—२, ३३, ६, १

<sup>९</sup> बुद्धिमान् इव निरुपय—आ वैदिक, अथर्व (१८८५) पृ० १३

<sup>१०</sup> का० पृ० (१३) १६०२, १७५ पृ०

उसे बन्म नहीं दिया या देता कि कनिष्क साहब<sup>१</sup> का मत है। पुण्य युग में यह हिन्दू-धर्म का प्रधान ग्रंथ बनने लगी। भारत धर्म में तो ऐसे धर्म का अनिर्धार्य अंग बतलाया गया। पौराणिक और स्नात प्रभावों के परिवर्तन स्वयं लक्ष्मण चौबी चौबरी शताब्दी से हिन्दू-धर्म में मूर्ति-पूजा की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गई। भारतवर्ष के बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही प्रधान धर्म कट्टर मूर्ति-पूजाक हो गये। ठाठरी शताब्दी के प्रारम्भ में जब अरब लोग सिंध में आये तो वहाँ उन्हें मगधान् बुद्ध की बहुत सी मूर्तियाँ मिललाई थीं। उन मूर्तियों को हिन्दू लोग बुद्ध कहते थे। ठाठरी के अनुभव पर अरबों ने उन्हें बुद्ध कहना प्रारम्भ कर दिया।<sup>२</sup> मूर्ति-पूजा ठाठरी आठवीं शताब्दी के आठ-पाठ अपनी पचास पर पहुँच गई थी।<sup>३</sup> उत्तर मध्यकाल की मूर्ति-पूजा पर प्रकाश डालते हुए शेरिंग<sup>४</sup> ने लिखा है कि हिन्दू मूर्तियों की संख्या हिन्दुओं की संख्या से भी अधिक बढ़ गई थी। एक-एक मन्दिर में एक-एक मूर्ति ही होती थी। पूर्वी मध्यकाल में इसके भी बड़ी हालत थी। १४८ ई० में होनेवाले एक मुसलमान इतिहासकार ने गुजरात के एक मन्दिर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसमें २० हजार मूर्तियाँ थीं।<sup>५</sup> उनके बन्नासकार भी पृथक्-पृथक् होते थे, उनकी पूजा-विधियाँ भी विविधरूपिणी थीं। ये मूर्तियाँ स्वर्ण, रक्त, ताम्र पीतल, हाथीदाँत, शिथ, ताम्र आदि विविध धातुओं की बनी होती थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिककालीन बहुदेववाद मध्यकाल के बहुमूर्तिवाद में परिवर्तित हो गया था।

मूर्तियों की शक्ति का ताव-ताप मन्दिरों की संख्या भी लक्ष पड़ी। एक-एक नगर में एक हजार से भी अधिक मन्दिर होते थे। १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शेरिंग ने केवल बनारस में ही १४४४ मन्दिरों की गणना की थी।<sup>६</sup> इन मन्दिरों में हजारों ब्राह्मण पूजा-पाठ किया करते थे। कुछ बड़े-बड़े मन्दिरों में तो हजारों की संख्या में पुजारी लगे हुए थे। लोमनाथ<sup>७</sup> के मन्दिर पर महमूद गजनवी ने जब

<sup>१</sup> महाबोधि—कनिष्क (१८८३) पृ० ५३

<sup>२</sup> भारत और अरब के संबंध, अनुवादक—रामचन्द्र वर्मा (१९१०) पृ० १५३ २०५, और देखिए पृ० १० :

<sup>३</sup> ई० आर० ई० भाग ६, पृ० ७१०

<sup>४</sup> बनारस की संकेत सिरी आरु ही हिन्दूज कीरि कृष्ण (१८९८ कन्दन) पृ० ४२

<sup>५</sup> अरब और भारत के संबंध (१८१०, इसाहाबाद), पृ० ११८

<sup>६</sup> वही " " " "

<sup>७</sup> हिन्दी भाषा इतिहास बृज दास बाहू इत्सु आन हिन्दौरियम्स, भाग ४, इतिहास तथा व्युत्पत्ति, पृ० १८१

आक्रमण किया था, उस समय दो हजार पुजारी नित्यप्रति पूजा करने के लिए नियुक्त थे। यह मन्दिर केवल मूर्तियों के केन्द्र ही न थे, सङ्घी श्री लीलाभूमि भी थे। एक एक मन्दिर में लाखों और करोड़ों की सम्पत्ति लगी रहती थी। इतिहासकारों ने सोमनाथ<sup>१</sup> के मन्दिर के विषय में लिखा है कि जिस समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था, उस समय उसमें दस लाख गाँवों की आय लगी हुई थी। मन्दिर पर अपिघ्नत मातृ स्वर्ण, रत्न और रत्नों से आच्छादित था। अर्थात् कि मन्दिर के एक भाग में दो ही मन रत्ने की बहुत बड़ी ग्यङ्गला में एक बहुत बड़ा मयरा डोंगा हुआ था। सोमनाथ की श्री मय्य मूर्ति अमूल्य रत्न-पथि से सुशोभित थी। अन्य मन्दिरों में भी इसी प्रकार अपार सम्पत्ति लगी हुई थी। विदेशी आक्रमणकारियों को मन्दिरों की सम्पत्ति में भी निमग्न किया था। उत्तर-मध्यकाल के अधिकांश आक्रमणकारियों को सङ्घ मन्दिरों की सम्पत्ति को लूटना, उनको तथा उनकी मूर्तियों को तोड़ना और निर्दिष्ट पदार्थों का बर्ण करना होता था।

मध्ययुग के मन्दिर केवल पैसों के ही नहीं, विज्ञान के भी केन्द्र बन रहे थे। इस विज्ञान की उत्तरदायिनी भारत की देवदासी<sup>२</sup> प्रथा रही था सङ्घी है। इस प्रथा का जन्म ता दक्षिण में हुआ था, किन्तु रानी रानी समस्त भारत में पलात हो गई थी। एक एक मन्दिर में वेदों देवदासियाँ रहती थीं। उनका सङ्घ<sup>३</sup> मयसान् को गीत और नृत्य से प्रसन्न करना होता था। सोमनाथ के मन्दिर के सम्बन्ध में एक उत्कलनीन मुक्तमान इतिहासकार ने लिखा है कि उसमें सदैव ही गीत ही सर्वकियाँ, तीन ही गाने-बजानेवाले नृत्य, गायन और वादन करते रहते थे।<sup>४</sup> इसी प्रकार प्राचीन शिक्षालयों से बचा पला है कि लंबी के एक शोलाखरीब राजा के मन्दिर में बार ही देवदासियाँ लगी हुई थीं। इन देवदासियों के रहने के लिए मङ्गल मन्दिरों के पास ही बने रहते थे। इनके जीवन की ठापी व्यवस्था मन्दिरों से ही होती थी।<sup>५</sup> इस प्रकार की देवदासियों की चर्चा मावीन पाणियों में बहुत की है। देवलीपर<sup>६</sup>

<sup>१</sup> हिस्ती थ्यक इतिहास पेत्र टोल्ड बार् इरुस बीम हिस्तीरिपन्स, भाग ४, इडिचट तथा डाउसन्, पृ० १८१

<sup>२</sup> सरस्वती मयन स्टडीज, भाग ८, से० सम्मयबाध मुक्त, पृ० १९९, २२१

<sup>३</sup> कभी-कभी ता वे बीम बेरबावृत्ति से कथना पैदा कर मन्दिरों के महंतों को देती थी। इडिचट—सरस्वती मयन स्टडीज, भाग ८, पृ० ११० (बनारस १९३०)

<sup>४</sup> हिस्ती थ्यक इतिहास पेत्र टोल्ड बार् इरुस थ्येन हिस्तीरिपन्स—इडिचट डाउसन् (जन्म १८९९-००) भाग ४, पृ० १८१, भाग १ पृ० १८८, भाग २ पृ० ४०२

<sup>५</sup> काली प्राम बररास इ महुता—बुचन (जन्म, १९००) पृ० ९९

<sup>६</sup> देवलीपर इतिहास—टी० बी० देवलीपर, बी० बाबू द्वारा संपादित (१८८९) पृ० १५०

के बर्तन धमक नई एबनाओ से मरे पड़े हैं। पश्चिम मारुत में वे देवदासियाँ माविनी के नाम से प्रसिद्ध थीं।<sup>१</sup> ये मरुत और स्वतन्त्र रूप से वेद्यावृत्ति करती थीं। इनमें और सामान्य वेद्याओ से यही अन्तर होता था कि ये अपनी वृत्ति में प्रवेश करने से पहले अपना परिचय मगवान् की किन्ती मूर्ति से कर लेती थीं। मारुत की देवदासियाँ<sup>२</sup> मरुत के नाम से पुकारी जाती थीं। वे लोग भी वेद्यावृत्ति से ही बीबिकोपार्जन करती थीं। माविनीयों के लक्ष्य इनकी लक्ष्याँ भी वेद्यावृत्ति आरम्भ करने से पहले किन्ती साधु से नाम-मात्र के लिए अपना परिचय कर लेती थीं। वह साधु उठी समय कुछ पत्र लेकर उसे उसके परवासों के हाथ देकर देता था और वह स्वतन्त्र रूप से वेद्यावृत्ति करने लगती थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुग में मूर्तियों और मन्त्रियों की आका में सर्वत्र सम्पिचार पनप रहा था। यही नहीं बरमे की आका लेकर उगी कैसी कुशुचियाँ भी बिभ्रत पा रही थीं। उम लोग जाती को उगी की अविष्ठात्री मानते थे और<sup>३</sup> उनकी पूजा करते थे। सम्पिचार के प्रति सन्तो की सात्विक आत्मा विद्रोह कर उठी। उनही जाती में विद्रोह की सम्पत्क सम्पिचकि हुई है।

“ हिन्दू धर्म के सामान्य विरवात अपने मूल रूप में बड़े ही सात्विक थे। किन्तु मध्ययुग में ये सात्विक विरवात अंध विरवात में परिवर्तन होने लगे थे। इसके कई कारण थे। सबसे प्रमुख कारण सदाय पुराहितवाद था, जिसका संकेत हम ऊपर कर चुके हैं। अंधविश्वास पुरोहित लोग अर्चयित्व और अर्च-सोभी हाते थे। वे साधारण अशिक्षित समता को मानमने टंग कर मिथ्या बातें बढाते रहते थे। मध्यकालीन जनता का विरवात जानू-डोने आदि में बहुत हो गया था। जनता की इस दुर्बलता का परिचयों ने बुरी तरह से बुरूपबोग किया। अंधविश्वासों<sup>४</sup> की मशुरत का एक कारण और था। मध्ययुग में दार्शनिक धर्म और मन्त्रधर्म का मिश्रण हो जाने लगा था।<sup>५</sup> बहुत से दार्शनिक अंधविश्वात हिन्दू से धर्म में प्रविष्ट हो गये थे। अंध विरवातों का प्रचार धर्म के लक्ष्मी धर्मों में हो रहा था। यहाँ पर कुछ धर्मों के कुछ अंध विरवातों का दिग्दर्शन कर देना अनुचित न होगा। मध्ययुग में देवता का प्रथम करने

<sup>१</sup> नाम्ने गत्रेटिपर, १० (१८८०) पृ० १२८

<sup>२</sup> सेन्नेस रैपोट, मारुत (१८८१)

<sup>३</sup> इन्द्रोपाय आका ही हिन्दी दृष्ट प्रैक्टिसेज आका ही इम्स, एथोर्नटन इत (लन्दन, १८१०) में देगिय।

<sup>४</sup> सुनिष्पन्न रूप इव इरिचया—ईश्वरीप्रसार इत, व० १२४

<sup>५</sup> देलिय—इरिचय एवक कास्म आका बंगाल, पृ० ५५०' रिमेने, (कमकका) (१८८१), पृ० ११९





की बोधदा कर देता था तो उसके ऊपर से तब प्रकार के राबनीतिक, सामाजिक और नैतिक बंधन उठ्य दिये जाते थे। कामेच्छा प्रकृत करने पर काम की कोई भी की उसके प्रत्याय की उमेक्षा नहीं कर सकती थी। बर्षोत्सव के आने पर घटती बलि दे की जाती थी<sup>१</sup>। हिन्दू धर्म के विविध सम्प्रदायों में इस प्रकार की रीतों कुप्रचारों प्रचलित थीं।

लक्ष्मणसीन हिन्दू धर्म में उगास सम्बन्धी बहुत ही कुप्रचारों द्राविक धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप भी प्रचलित हो गई थीं। द्राविक धर्म में बनदेवता, मिट्टिदेवता, लठि देवता, पित्र, वृष, भूत, प्रेठ, नाग आदि विविध मिम्नश्रेति के तामतिक उगासों का प्राधान्य था। माण्डवर्ष की अधिभ्रंश नीच जातियों का धर्म द्राविक ही था। इनके माण्डव से उर्बुक्त प्रकार के मिम्नश्रेति के तामतिक उगासों का प्रचार हिन्दू धर्म में भी हो गया था<sup>२</sup>। बंगाल की घेरो और खवास मामक जातियों में पवित्र बनसबह में बिले के लोग बनदेवता का स्थान मानते थे, प्रति तीसरे वर्ष महिग की बलि चढ़ाने की प्रथा थी। बंगाल के मुर्स्या जाति के लोग अपने बन काठे समय उठकर एक माग अपने देवता के लिए छोड़ देते थे। वहाँ पर उठ देवता की विविध प्रकार से बलि देकर वे पूजा करते थे। मुंदा जाति का विश्वास था कि जो लोग इस पवित्र बनसबह के वेड को चढ़ने का हुस्ताहत करते हैं, उन्हें बनदेवता के कोर का मानन करना पड़ता है<sup>३</sup>। सुन्दरबन के लक्ष्मणहारी में यह प्रथा है कि वे कितनी बनसबह को चढ़ाने से पहले बनदेवता को प्रतन्न करने के लिए किली वायु की पूजा के लिए मेव देते हैं। पूजा हो जाने पर बन को चढ़ाने जाते हैं<sup>४</sup>। द्राविक जातियों में बहुत से बन-उत्सव भी हुआ करते थे। बार्हण और बालवन आदि विद्वानों में इनका विस्तार से बर्णन किया है। ये उत्सव भी विविध प्रकार की कुप्रचारों और अंध-विश्वासों से परिपूर्ण होते थे।<sup>५</sup> द्राविक लोग पहाड़ों की पूजा भी करते थे। उनकी बह-बहाइ पूजा का उल्लेख कई स्थानों पर

<sup>१</sup> वही

<sup>२</sup> द्राविक पत्र कास्ट्रु आक बंगाल—पृ० ५७० रिसेल क्ल (कलकत्ता १९११) पृ०—११५

<sup>३</sup> हेरिब्रिटिश एथनोग्राफी आक बंगाल (१८७१) बार्हण कास्ट्रु, पृ० ११९, १२९, १८६, १७१, १८८

<sup>४</sup> मोट्स जीव ही रेस कास्ट्रु पत्र देव आक ईस्टर्न बंगाल के० बार्हण क्ल (१८८८)

<sup>५</sup> देखिए उपपुत्र दोषों ग्रन्थ

<sup>६</sup> हेरिब्रिटिश एथनोग्राफी आक बंगाल, ई० टी० कास्ट्रु (१८७३) पृ० ११५, १८०, ११०, ११७, ११०

मिलता है। ये उस देवता को मँदे की बलि देकर प्रसन्न करते थे। उनमें सरित देवता विशेष कोपला कहते थे की पूजा<sup>१</sup> का भी प्रचार था। ये शोग नदी में मवा बाल बालने के पूरे बलि देकर श्रेयसा वावा की पूजा करना परमावश्यक समझते थे। इसी प्रकार पुस्तनी बालि के मछ्राहों में यह प्रथा थी कि नई नाव बलाने से पहले वे एक लपेट बन्दरे की बलि देते थे। द्राविड धर्म के ये समस्त अंधविश्वास हिंदू धर्म के विविध सम्प्रदायों में प्रविष्ट होकर उन्हें कृप्रयाओं और अंध-विश्वासों का मंडार बनाने लगे। सामान्य अशिक्षित जनता में उपर्युक्त ढंग के द्राविड अंध-विश्वास और कृप्रयाएँ मध्ययुग में क्यों की क्यों प्रचलित हो गयी थीं। उष्य और शिक्षित जनता भी इन द्राविड अंध-विश्वासों और कृप्रयाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। अंतर केवल इतना था कि अशिक्षित जनता ने उनको अपने मूलरूप में ही ग्रहण कर लिया था जब कि शिक्षित जनता ने उनके रूपों को परिष्कृत करके ग्रहण करने की चेष्टा की थी। वैष्णव धर्म में प्रचलित तुलसी पूजा, गोवर्धन पूजा, गंगा पूजा, पीपल, बर्गद, श्रावसा आदि इन्हीं की पूजा हमारे विचार से द्राविड प्रभाव के फलस्वरूप ही प्रचलित हुई थी।

बहुत ही कृप्रयाएँ और अंध-विश्वास स्मृतिबोध में वर्णित आचारों का अतिरूप में अंधानुकरण करने से उत्पन्न हो गये थे। इस प्रकार के अंधानुकरण किन्से जाने वाले स्मार्त आचारों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं :—

१ संप्राबदन <sup>१</sup>	२ पंचमहायज्ञ <sup>२</sup>	३ बलिबैराबदेव <sup>३</sup>
४ आह <sup>४</sup>	५. पौडश संस्कार <sup>५</sup>	६. मद्यामक्ष्य संबंधी आचार <sup>६</sup>
७ विविध प्रकार के व्रत	८ तीर्थ <sup>८</sup>	९. शीपाशीप संबंधी आचार
१० प्रापरिचय संबंधी आचार		

<sup>१</sup> ई० आर बपेवट्स, १९—२० पृ८३

<sup>२</sup> मनुस्मृति—बृसरा अध्याय श्लोक १०१ १०४

<sup>३</sup> " " " " " ६८

<sup>४</sup> " " " " २० ४३ ४४ (स्मृति संहर्षम भाग १)

<sup>५</sup> " " " " २० ४६ "

<sup>६</sup> मनुस्मृति अध्याय ५, २० पृ८

<sup>७</sup> अत्रिस्मृति " " २० २४४ "

<sup>८</sup> अत्रिस्मृति " " " " २११ २१५

की शोयसा कर देता या तो उसके ऊपर से सब प्रकार के राबनीतिक, सामाजिक और नैतिक बंधन उठा दिये जाते थे। कामेच्छा प्रकट करने पर प्राम की कोई भी की उतके प्रस्ताव की उपेक्षा नहीं कर सकती थी। बर्षोत्सव के आने पर उसकी बलि दे ही जाती थी<sup>१</sup>। हिंदू धर्म के विविध सभ्यताओं में इस प्रकार की चैतनों कुप्रचार प्रचलित थी।

उत्पत्तिसीन हिंदू धर्म में उपास्य सम्बन्धी बहुत ही कुप्रचारों द्राविक धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप भी प्रचलित हो गई थी। द्राविक धर्म में बनदेवता, गिरिदेवता, शरित देवता, पित्र, वृक्ष, मृत, प्रेत, नाम आदि विविध निम्नकोटि के तामसिक उपास्यों का प्राचाम्य था। माय्यवर्ग की अभिर्चय नीच जातियों का धर्म द्राविक ही था। इनके माध्यम से उपर्युक्त प्रकार के निम्नकोटि के तामसिक उपास्यों का प्रचार हिंदू धर्म में भी हो गया था<sup>२</sup>। बंगाल की पेरों और कबास नामक जातियों में पवित्र बनसखर में जिसे वे लोग बनदेवता का स्थान मानते हैं, प्रति तीसरे वर्ष महिष की बलि चढ़ाने की प्रथा थी। बंगाल के मुईयाँ जाति के लोग अपने बन चढते समय उसका एक माय अपने देवता के लिए छोड़ देते थे। वहाँ पर उस देवता की विविध प्रकार से बलि देकर वे पूजा करते थे। मुंडा जाति का विश्वास था कि जो लोग इस पवित्र बनसखर के पेड़ को काटने का हुस्ताहत करते हैं, उन्हें बनदेवता के क्रोध का माकन बनना पड़ता है<sup>३</sup>। दुम्बरवन के लक्ष्मणार्यों में यह प्रथा है कि वे किसी बनसखर को काटने से पहले बनदेवता को प्रसन्न करने के लिए थिड़ी चापु को पूजा के लिए भेज देते हैं। पूजा हो जाने पर बन को काटने जाते हैं<sup>४</sup>। द्राविक जातियों में बहुत से बन-उत्सव भी हुआ करते थे। बाइब और बाह्यन आदि विद्वानों ने इनका विस्तार से बर्णन किया है। वे उत्सव भी विविध प्रकार की कुप्रथाओं और अंध-विश्वासों से परिपूर्ण होते थे।<sup>५</sup> द्राविक लोग पहाड़ों की पूजा भी करते थे। उनकी बह-महाक पूजा का उल्लेख कई स्थानों पर

<sup>१</sup> वही

<sup>२</sup> द्राह्मण एवम काष्णस आक बंगाल—एक० एक० रिसेले कृत (कलकत्ता १८११) पृ०—११६

<sup>३</sup> डेविडविच ब्रह्मोसौत्री आक बंगाल (१८७२) बाई बाह्यन,

पृ० १२२, १२२, १२३, १२१, १२४

<sup>४</sup> नोडस जीव ही रस काष्णस एवम ईदस आक ईस्टरव बंगाल डे० बाइब कृत (१८८८)

<sup>५</sup> डेविड उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ

<sup>६</sup> डेविडविच ब्रह्मोसौत्री आक बंगाल, ई० डी० बाह्यन (१८७०), पृ० १२३, १२०, २१०, २१७, २२०

मिगता है। वे उठ देवता को मैसे श्री बलि देकर प्रसन्न करते थे। उनमें सरित देवता जिसे वे शोपता कहते थे श्री पूजा का भी प्रचार था। वे लोग नदी में नवा बाल बालने के पूर्व बलि देकर शोपता भावा श्री पूजा करना परम्परापरक समझते थे। इही प्रकार पुलनी बाढि के मज्जाहों में यह प्रथा थी कि मई मास चलाने से पहले वे एक लंकेर बकरे श्री बलि देते थे। द्वाविक धर्म के ये समस्त अंधविश्वास हिंदू धर्म के विविध सम्प्रदायों में प्रविष्ट होकर उन्हें कुपयाओं और अंध-विश्वासों का मंडार बनाने लगे। सामान्य अशिद्धि जनता में उपर्युक्त ढंग के द्वाविक अंध-विश्वास और कुपयारों मध्यम में क्यों श्री लो प्रचलित हो गयी थीं। उच्च और शिद्धि जनता भी इन द्वाविक अंध-विश्वासों और कुपयाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। अंतर केवल इतना था कि अशिद्धि जनता ने उनके अपने मूलस्म में ही प्रहय कर लिया था जब कि शिद्धि जनता ने उनके लो परिशुद्ध करके प्रहय करने की चेष्टा की थी। वैश्व धर्म में प्रचलित तुलसी पूजा, गोवर्धन पूजा, गंगा पूजा, पीरल, बर्गद, श्रीलला आदि हथों की पूजा हमारे विचार से द्वाविक प्रभाव के फलस्वरूप ही प्रचलित हुई थी।

बहुत ही कुपयारों और अंध-विश्वास स्मृतियों में बर्णित आचारों का अतिरूप में अंधानुकरण करने से उत्पन्न हो गये थे। इस प्रकार के अंधानुसरण किन्ने जाने वाले स्मार्त आचारों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं :—

१ संप्राबदन <sup>१</sup>	२ पंचमहापङ <sup>२</sup>	३ बलिवैशुवदेव <sup>३</sup>
४ आइ <sup>४</sup>	५ पाइरा संस्कार <sup>५</sup>	६ मद्यामक्ष संबंधी आचार <sup>६</sup>
७ विविध प्रकार के ऋत	८ तीर्थ <sup>८</sup>	९ शीबारी संबंधी आचार
१० प्राप्रविशत संबंधी आचार		

<sup>१</sup> ई० आर द्येरेडस, १२—२० ४८३

<sup>२</sup> अनुस्मृति—दूसरा अध्याय श्लोक १०१ १०४

<sup>३</sup> " " तीसरा " " ६८

<sup>४</sup> " " " " ४३ ४४ (स्मृति सम्मर्ष भाग १)

<sup>५</sup> " " " " ४० ४१ " "

<sup>६</sup> अनुस्मृति अध्याय ५, ४० ८६ " "

<sup>७</sup> अश्विस्मृति " " ४ १४४ " "

<sup>८</sup> अश्विस्मृति श्लोक १११ ११५

उत्पन्नक समस्त अर्थात् आचार, अपने मूलरूप में बहुत ही सात्विक, पवित्र और कल्याण विधायक थे। सृष्टिसुग के प्रारम्भ में लोग इनका आचरण मन्वा वाचा धर्मना से करते थे, क्योंकि वे इनका महत्त्व समझते थे। मध्ययुग के मनुष्यों के लिए वे परम्परागत कृतियों के पतन के रूप में रह गये थे। इस लीग इनका बिना सोचे विचारे अंधानुसरण करने लगे। उनका वास्तविक महत्त्व भी खम हो गया। वे आङ्ग्ल और बाङ्गाल माने जाने लगे। अंतो की बाधी उनके इन्ही विद्वत् रूपों के लखन में प्रकृत हुई थी। धर्म के वास्तविक स्वरूप के छुट हो जाने पर मध्ययुग में एक सर्वकर दानवी महत्ति का उदय हुआ। वह भी विविधि धम्बरापो की पारस्परिक द्वेष और संघर्ष की भावना। लोग बाङ्गालियों में इतना उलझ गये थे कि धर्म के मूल वस्तु तक उनकी दृष्टि जा ही नहीं पाती थी। आयेदिन प्रायः साम्प्रदायिक विग्रह और संघर्ष हुआ करते थे। कमी कमी के संघर्ष युद्ध का महानक रूप बाराब कर लेते थे। हिंदू और बौद्ध संघर्ष का उल्लेख प्राचीन इतिहास में बार-बार आया है। इनकी परंपरा १६वीं शताब्दी तक भीवित थी। ऐर साहब ने अपनी परिपादिक रीसर्च में सन् १७६० में हरिहार में होनेवाले एक धर्मदायिक युद्ध का बिलकुट उल्लेख किया है। यह युद्ध रोब और बैम्बरा नागों के बीच में हुआ था। दोनों ही किली पर पर धार्मिक स्थान के लिए आये हुए थे। दोनों में किली बल पर मठमेद हो गया। यह मठमेद सर्वकर युद्ध के रूप में परिचित हो गया। उसमें बैम्बरा-नागों की पारबब हुई और लगभग अठारह हजार की संख्या में मारे गये। इसी प्रकार के एक धर्मदायिक युद्ध का बर्तन अम्मुलकबल ने अपने आहने अक्षरी में किया है। यह युद्ध कुबबेन में हुआ था। इत धार्मिक खलीसा को देखने स्वयं अम्माड अक्षर गये थे।<sup>१</sup>

इत प्रकार के धार्मिक और युद्धों को देखकर निर्गुणियों अंतो की आत्मा अक्षर ही व्यथित हुई होगी। और वे उत्पम की प्रतिष्ठा में अक्षर हो गये होंगे। मध्ययुग के हिंदू धर्म की बिन महत्तियों और परिस्थितियों ने प्रतिक्रियामक निर्गुण आम्बारा के उदय और विभव में बोग दिया था उनका बिन्दरान हो बुक्य अत्र हम हिंदू धर्म के उन वस्तु पर विचार करेंगे जिन्होंने निर्गुणियों अंतो को क्रियात्मक प्रेरणाएँ प्रदान की थी।

प्रत्येक धर्म के प्रायः १ पच हुआ करते हैं। एक सामान्य और दूसरा विशेष। पहले का संबंध उन धार्मिक नैतिक बातों से होता है जो समय और परिस्थितियों

१ अरब और भारत के सम्बन्ध पृ १८ १९  
 २ इतिहास परिपादिक रीसर्च—१७८८ १८१६, पृ० की ऐर  
 ३ इतिहास पृ० डाउसन, भाग ५, पृ ३१८

के प्रवाह में पड़कर भी बिकूल नहीं होती। ऊपर हमने हिन्दू धर्म के विरोध पक्ष का विस्तरान करवाया है। अब हम उसके सामान्य पक्ष के कुछ प्रमुख तत्वों पर भी प्रवेश डाल देना चाहते हैं।

हिन्दू धर्म के सामान्य पक्ष का सबसे महत्वपूर्ण तत्व उत्तरी आचरण-प्रवणता है। हिन्दू धर्म का प्रायः ही सदाचार है। स्मृति और पुराण ग्रंथों में सदाचार की महिमा की भूरि-भूरि वर्णना की गई है। महाभारत<sup>१</sup> में धर्म को आचार प्रथम कहा गया है।<sup>२</sup> पराशर ने लिखा है कि आचार अष्ट लोगों से धर्म पराङ्मुख हो जाता है। बृहस्पति स्मृति में<sup>३</sup> आचारहीन पुत्र को मृतोपचार के उद्योग कहा गया है। बिम्बु पुराण में<sup>४</sup> लिखा है कि सदाचार की उपस्था करके अर्द्ध भी शोभा को प्राप्त नहीं होता है।<sup>५</sup> मातृ स्मृति में आचारहीन मातृत्व को शूद्र के उद्योग और आचारवान् शूद्र को ब्राह्मण के उद्योग कहा गया है। बशिष्ठ ने वा<sup>६</sup> यहाँ तक लिखा है कि आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते चाहे उनका योग्य अध्ययन ही क्यों न किया गया हो। हिन्दू धर्म का दूरात उन्मूलनीय तत्व तप है। इसकी महिमा अथ वर्णान् भुक्ति स्मृति ग्रंथों में बार बार किया गया है। ऋग्वेद में सृष्टि के विघ्न अथ कारण तप ही बतलाया गया है। ब्राह्मण<sup>७</sup> ग्रंथों में भी योका हेर-केर क तप इती भाष की पुनरावृत्ति की गई है।<sup>८</sup> इसी प्रकार उपनिषद् ग्रंथों में भी तपसा के महत् महत्व का प्रतिपादन किया गया है।<sup>९</sup> गुरु के लिए उत्तरी सवस बकी दक्षिणा भी यही है। छांदोग्योपनिषद् में एक स्थान पर लिखा है कि जो ब्रह्मचायि तप और तप अथ आचरण करता है वह ही भेज है।<sup>१०</sup> धृति ग्रंथों के अतिरिक्त पुराण और स्मृति ग्रंथों में भी तपसा की महिमा

<sup>१</sup> ऐगिण्ड—महाभारत 'आचार प्रथम धर्म' महाभारत १०४, १५०

<sup>२</sup> आचार अष्ट वेदानामवेद्यमः पराङ्मुख (स्मृति रत्नाकर ५० २८ अ उद्धृत)

<sup>३</sup> आचारहीनो पुत्रस्तु मृतोपचार समः स्मृतः ? (स्मृति रत्नाकर ५० २८)

<sup>४</sup> समुत्थं तपसाचार कश्चिन्वाप्नोतिशोभनम् (स्मृति रत्नाकर ५० २८)

<sup>५</sup> विग्रह्याचाररहितम् (बही)

भूदेऽपि दूषत वृत्त माह्वणै न तु दूषत

भूदेऽपि माह्वणा न यो माह्वणोः शूद्र पूर्व सः (स्मृति रत्नाकर ५० २८)

<sup>६</sup> आचारहीन न पुनन्ति बन्धु बन्धुवर्षिता सह बन्धुभिर्दमि (स्मृति रत्नाकर ५० २६)

<sup>७</sup> ऋग्वेद १०।१९६।३

<sup>८</sup> ऐगिण्ड पत्रस्य ब्राह्मण ११।६।४ और ऐगिण्ड भातपय ब्राह्मण १।१।२१

<sup>९</sup> ऐगिण्ड बृहदारण्यक्योपनिषद् १।२५०

अनारविषद्, ३३, महाभाष्यविषद् १।२०—मुण्डकोपनिषद् १।१।११

<sup>१०</sup> छांदोग्योपनिषद्

प्रतिष्ठित की गई है। भीमदमागवत् में एक स्थल पर लिखा है—“अमो अहं ह्य स्म पूक” ११।१०।११।

अर्थात् तप, शौच, दवा और उत्प नामक चार विचारात्मक रूपों की रूपों में ही हैं। स्मृतिबोध में भेद्य मनुस्मृति में लिखा है कि तप और विद्या दोनों ही ब्राह्मण के लिए मोक्षदायक होते हैं। वैश्वदेवोपनिषद् की श्रुति ब्राह्मणी कथा में भी भारतीय संस्कृति, बर्तमान दर्शन के परम लक्षण की प्राप्ति उपलब्धि के सहारे ही दिव्यताई गई है। अतएव स्पष्ट है कि वास्तव में हमारे बर्तमान दर्शन तथा संस्कृति की प्राच्यमूल विशेषता है। बर्तमान और दर्शन की वह प्राच्यमूल विशेषता ही साधु-संतों की परंपरा की ब्रह्मवादी श्रुति का लक्ष्य है। वह बात केवल भारतीय साधु-संतों के लिए ही नहीं बल्कि पारंपरिक संतों के सम्बन्ध में भी उत्पन्न है। जौरी महोदय ने अपने ‘सांख्यिकी भाष्य संस्कृत’ नामक ग्रंथ में प्रमाणित कर दिया है कि पारंपरिक संत-परम्परा की आध्यात्मिक उत्पत्ति ही है।<sup>१</sup>

तप के पर्याय भारतीय संस्कृति और बर्तमान का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व उत्पन्न माना गया है। उच्यते यह है कि उत्पन्न तप से ही उत्पन्न हुआ है। श्रुतेः में एक स्थल पर यह बात कही भी गई है कि वैदिक ग्रंथों में उत्पन्न की महिमा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। केवल श्रुतेः में ही उत्पन्न की महिमा से संबंधित २५ वा ३० उक्तिवाँ आई हैं। उनमें से कुछ प्रमुख उक्तिवाँ इस प्रकार हैं —

“पुरुषो ने उत्पन्न का ही प्रतिपादन किया है और वे उती का आचरण करते हैं।”<sup>२</sup>

“उत्पन्न का मार्ग उच्यते”<sup>३</sup>

“दुष्कर्मों लोग उत्पन्न के मार्ग पर नहीं चल सकते”<sup>४</sup>

“धर्मिता को उत्पन्न की भाव ही पार लगाती है”<sup>५</sup>

श्रुतेः के अतिरिक्त उत्पन्न के महत्त्व का संक्षेप बजुर्बेद में भी किया गया है। इसमें लिखा है—उच्यते उत्पन्न के मार्ग पर ही यत्नना चाहिए।<sup>६</sup> उपनिषद्

<sup>१</sup> वैश्वदेवोपनिषद् वैदिक, बरणी १ अमुखाक १, २, ३, ४, ५

<sup>२</sup> सांख्यिकी भाष्य संस्कृत—बाकी पृ० १-५६

<sup>३</sup> ‘सत्यमूर्तुर्नरणादि ब्रह्म’—श्रुतेः ३।११।६

<sup>४</sup> ‘सुगम श्रुतस्व पन्था’—श्रुतेः ४।११।११

<sup>५</sup> श्रुतस्व पन्था न तस्मिन् दुष्कृता—श्रुतेः ५।११।६

<sup>६</sup> उत्पन्न वाचं मुक्तमपीपरा—श्रुतेः ६।११।१

<sup>७</sup> श्रुतस्व पन्था प्रेत—बजुर्बेद ७।४५

ग्रंथों में कल्प को ब्रह्मरूप कहा गया है।<sup>१</sup> वैदिक साहित्य के अतिरिक्त कल्प की महिमा का बखान काव्य, पुराण और स्मृति ग्रंथों में भी किया गया है। महाभारत में "नास्ति सत्यात्परो धर्मः"<sup>२</sup> खिलकर कल्प का ही महत्त्व संकेतित किया गया है। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी कल्पाचरण को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। उसमें स्पष्ट कहा है—“कल्पपूर्ता वदेदायम्” (मनु० ६।१४६)। उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारतीय धर्म और संस्कृति में कल्प काल को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। भारतीय संतों का प्रधान लक्ष्य कल्प का पालन करना और उसमें शोक करना ही रहा है। कल्प को हम संतों के हाथ की अग्नि की लकड़ी कह सकते हैं।

तप और कल्प काल की स्थापना बिना योग और वैराग्य के संभव नहीं होती। इसीलिए भारतीय धर्म और संस्कृति में ज्ञान और वैराग्य को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। श्रुतवैदिक संस्कृति वैदिककाल में ज्ञानप्रधान अधिक थी, वैराग्यप्रधान कम। किंतु उपनिषद्काल में उद्योग कम निरस्तकृत बदल गया। यह ज्ञानप्रधान होने के साथ ही साथ वैराग्यप्रधान भी बन गई। ज्ञान और वैराग्य को उपनिषद्काल में बिलकुल मिला या उठना भारतीय संस्कृति के विकास की किस्ती भी अक्षरणा में नहीं मिल सका है। उपनिषद्-कालीन संस्कृति में बिल वैराग्य मति को प्रथम दिया गया उसमें ब्रह्म विस्तार पर से जाने का श्रेय शीघ्रों को है। उपनिषद् और शीघ्र ग्रंथ वैराग्य की महिमा से भरे पड़े हैं। उपनिषद् में भी वैराग्य का सबसे अधिक महत्त्व वददायपराकारनिष्त् में दिया गया है। उसमें एक स्पष्ट पर लिखा है—‘संसार को निरस्तकृत छोड़ करके मन को निर्दिपय और निष्काम करना ही ब्रह्म में मनुष्य का एक परम् धर्म है।’ (५।५।६)

शीघ्र ग्रंथ<sup>३</sup> वैराग्य और संन्यास के वर्णनों से भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए हम मुक्तनिपातों के बभिवस्तुष में दिये गये एक कुट्ट बचन को ले सकते हैं। मगवान् कुट्ट कहते हैं—

“परुषाधम मे मोक्षमिति कमी भी नहीं होती। बहुत दुष्का तो स्वयं प्रचयय वैरलोक की प्राप्ति हो जायेगी। ब्रह्म धम्म-भरण के चक्र से पूरणाया कुट्टकरा पान के लिए संसार तथा सांसारिक बंधनों को त्यागकर वैराग्यप्रधान भित्तु धर्म ही स्वीकार करना चाहिए।” (बभिवस्तुष १०।१६) इसी प्रकार वैविग्बनुष। महाभारत, धम्मरत्त, भित्तुधम्म मन्त आदि ग्रंथों में भी अनेक स्थलों पर वैराग्य की महिमा प्रतिपादित की

<sup>१</sup> सर्वे भगवो विविदास इति । धा—०।१६।१०

<sup>२</sup> महाभारत आश्वि बच—१६२।२४

<sup>३</sup> महावर्तिनिष्ठाव सुत १।२४



गई है। उपनिषदों और बौद्ध ग्रन्थों में प्रतिपादित इस वैराग्य धर्म का पूर्ण माध्यम में समाज में इतना प्रभाव पड़ा कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्म-कुसमय में ही वैरागी और संत बनने की धुन सवार हो गई जिसके फलस्वरूप भारतवर्ष में छात्र-संतों और वैरागियों की बाढ़ सी आ गई।

छात्र-संतों की परंपरा को प्रायः प्रदान करनेवाली शक्ति आस्तिकता की उपनिषद् कला में जहाँ तप, उपव, वैराग्य आदि तत्त्वों को महत्त्व दिया गया वहीं आस्तिकता की भी पूर्ण प्रतिष्ठा की गई। ईशावास्योपनिषद् का पहला भाग ही आस्तिकता की पूर्ण प्रतिष्ठा कर देता है। उपनिषदों की आस्तिकता सर्वात्मवाद पर आधारित है। उनमें सर्वात्मवाद से सम्बन्धित अनेक कथन मिलते हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्ध और प्रमुख इस प्रकार हैं :—

- (१) ईश्वर केवल ऐक्य नहीं बल्कि अद्वितीय ब्रह्मरूप है।<sup>१</sup>
- (२) केवल नहीं नहीं कि और कोई ईश्वर नहीं है, बल्कि ईश्वर ही सब कुछ है।<sup>२</sup>
- (३) वह ऊपर है, वह नीचे है, वह पीछे है, वह सामने है। वह दक्षिण ओर है, वह उत्तर ओर है यही नहीं बल्कि यही सब कुछ है।<sup>३</sup>

उपनिषदों का यह सर्वात्मवाद समक-समय पर संत-परम्परा को बहुत बल देता रहा है।

मात्सीय धर्म और संस्कृति में आध्यात्मिकता को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। यह बात मात्सीय और पार्श्वतय सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। मगवान् ब्रह्म ने गीता में "आध्यात्म विद्या विद्यानाम्" कहकर इसी बात की पुष्टि की है। उपनिषदों में भी ब्रह्म विद्या के नाम से आध्यात्मविद्या की ही महिमा बख्ति की गई है। वे आध्यात्मशास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ हैं। आध्यात्म में आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत् और उनसे संबंधित विषयों पर विचार किया जाता है। माय में आध्यात्म विद्या को ही सर्वश्रेष्ठ विद्या माना जाता था। इसीलिए यहाँ के मनीषी सबसे पहले आध्यात्म विषयों का ही मनन और चिंतन करते रहे हैं। इसी क फलस्वरूप भारतवर्ष में अनेक आस्तिक व नास्तिक दर्शन-प्रवर्तकों की उत्पत्ति होती रही है। इन दर्शन-प्रवर्तकों के प्रतिपादन और विवेचन का भेद अभिन्नतर शास्त्रक आधारों का रहा है।

<sup>१</sup> सुद्वैत सोम्भेदमय आसीदैक्येवादिधर्म—ब्रह्मसूत्र १।२।१  
<sup>२</sup> न तु सर्वद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद् विभक्त यत्परमेष्ठ—बृ ३।१।१३  
<sup>३</sup> स द्वावत्मान् स अपरिप्यात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स पूर्वो—सर्वभूति सू० ३।२५।१

किन्तु इनके प्रसार और परीक्षण का कार्य साधु-संत ही करते रहे हैं। समय-समय पर विविध साधु-संत अपनी साधना के सहारे शास्त्र-आचार्यों के उर्ध्वप्रदान विवेचनों की प्रतिक्रिया के रूप में स्वानुभूतिमूलक दार्शनिक विचारपाराओं का बन्ध देते रहे हैं। ऐसे ही साधु-संतों का एक वर्ग निर्गुणियों कर्मियों का है। इन साधु-संतों की दार्शनिक विचारपाराओं को तब तक सही रूप में नहीं समझा जा सकता जब तक पृष्ठभूमि का रूप में शास्त्र-आचार्यों और महात्माओं के द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक पद्धतियों का स्पष्टीकरण न किया जाय। अतएव भाग्य हम अत्यन्त संक्षेप में शास्त्र-आचार्यों द्वारा प्रतिपादित उन दर्शन-पद्धतियों की स्मरण का संक्षेप करेंगे जिनकी पृष्ठभूमि पर हिन्दी के निर्गुणियों सन्तों की विचारपारा का महत्त्व लगा हुआ है।

### सामाजिक प्रेरणार्थ

निर्गुण विचारपारा के विकास की प्रेरक शक्तियाँ कुछ दल्पलालीन सामाजिक परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ भी थीं। मध्ययुग में धर्म-क्षेत्र के लक्ष्य सामाजिक क्षेत्र में भी अनेक प्रवृत्तियाँ और कुप्रचार्य उत्पन्न हो गई थीं। उक्त समय देश में दो समाज प्रचलन थे। एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान। इन दोनों समाजों की दृष्टा साम्यनीय थी। मुसलमान समाज शास्त्र-वर्ग की दुर्बलताओं से परिपूर्ण था और हिन्दू समाज शक्ति-वर्ग की विपदाओं से व्यथित था।<sup>१</sup>

राजनीतिक परिस्थितियों के प्रसंग में दिलासा चुके हैं कि हिन्दू जाति और धर्म पर मुसलमान लोग कितने दुर्दृष्टतापूर्ण अत्याचार कर रहे थे।<sup>२</sup> इन अत्याचारों से हिन्दू जाति अत्यधिक व्यथित थी। हिन्दू समाज में निराशावाद का पोर खोला हुआ था। हिन्दू जाति की प्रवृत्ति सामाजिक वैमन्य से दुःखित विराग की ओर हो गई थी। हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक भेदभाव ने उभरते प्रवृत्तियों को धीरे धीरे अधिक पल दिया। ये सब बात राजनीतिक परिस्थितियों के प्रसंग में उल्लिखित असाहसिक और अजीब के संवाद से प्रकट होती हैं।<sup>३</sup> एक मुसलमान इतिहासकार ने लिखा है कि एक बार अजाउदीन ने अजीब से पूछा कि हिन्दुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाय। इस पर अजीब ने जो उत्तर दिया था विसर्पे प्रकट होता है कि मुसलमान लोग हिन्दुओं का बहुत ही नीच समझते थे। सिध्द्वर सोदी और बापन ब्राह्मण

<sup>१</sup> सत्यनन्द आनन्द—७० पृष्ठ—जीवात्म्य (१९५०) पृ० ७८९-७९६

<sup>२</sup> हेगिन्स—इस ग्रन्थ की राजनीतिक प्रेरणार्थ

<sup>३</sup> हेगिन्स—सिद्ध विष्णु—मेडगिन्स—भाग १ पृ० ७२

बासी' पदना भी इसी बात को पुष्ट करती है। सिक्न्दर लोदी अपने धर्म को हिन्दू धर्म से अधिक पवित्र समझता था। बोधन ब्राह्मण ने हिन्दू धर्म को इस्लाम धर्म के सदृश पवित्र बन्दू दिया था। इस पर उस विचारे को मैं भीकित बलवा दिया गया था। बित प्रखर मुसलमान हिन्दुओं को नीच और दुष्ट समझने से ठीकी प्रखर हिन्दू भी मुसलमानों को पवित्र और अचम समझने से और उनके लिए श्रेष्ठ शब्द का प्रयोग करते थे। उनकी कृपा पद जाने पर अपने को अपवित्र समझने से और स्नान तथा पूजा करते थे।<sup>१</sup>

हिन्दू और मुसलमान समाजों में ही मेद-भावना वर्तमान न थी बल्कि उनमें आपस में भी ऊँच-नीच की बड़ी मनाकनी भावना स्थित थी। हिन्दू समाज तो ब्राह्मण और शूद्र के पारस्परिक मेद के लिए बहनाम था ही।<sup>२</sup> मुसलमान समाज में भी यह भावना कम बरकर रूप में वर्तमान नहीं थी। बिदेही मुसलमान हिन्दू जाति से परिवर्तित भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं के सदृश ही नीच और पवित्र समझते थे। करते हैं कि कलकत्ता<sup>३</sup> ने एक बार अपने एक उच्च समाज को उसके सामने इच्छिए मूर्तविय किया था कि उसने अमरोहे में कलकत्ता के धर्म के लिए एक हिन्दू जाति से परिवर्तित भारतीय मुसलमान को चुन लिया था। यह बहना मुसलमानों के पारस्परिक मेद भाव को पूर्णतया प्रमादित करती है। सुधी और शिवा के पारस्परिक मेदभाव से तो सभी परिवर्तित हैं। यह इतिहासप्रतिष्ठ बात है कि सुधी बादशाह शिवा लोगों को ऊँचे पद नहीं देते थे। इस प्रखर शिवा लोग भी सुधियों से पूजा करते थे और ऊँचे पद उन्हें नहीं देते थे।

मध्यकालीन मुसलमान समाज की दृष्ट्या<sup>४</sup> की प्रथा बहुत ही मयानक थी। एक-एक मुसलमान बादशाह के हाथों गुलाम हुआ करते थे।<sup>५</sup> इनमें से अधिकांश निर्दह हिन्दू होते थे, जिनके प्रति उच्च व्यवहार बहुत ही अठोर होता था।<sup>६</sup> यह लोग किराँ और बन्धों को भी गुलाम बना लेते थे। बन्धों की इस गुलाम बनाने की प्रथा ने

<sup>१</sup> इतिहास एवम अठसठ से घोषण नाम दिया है। मो० पृ० ५५ विद्वत्स्य कर मत है कि यह कबीर का शिष्य था।

<sup>२</sup> अठसठ भाग देहकी—पृ० ४८८

<sup>३</sup> देहिए—इसी अर्थवाक में धार्मिक मेरवाह

<sup>४</sup> मुसलमान भाग देहकी पृ० ४०६

<sup>५</sup> " " " " पृ० ४८०

<sup>६</sup> अलाउद्दीन के ५०,००० गुलाम थे। बीरोज के समय में उसकी संख्या २,००,००० हो गई थी।

पुन पुनवास्त्र हिन्दी भाग इतिहास, पृ० ३६६

हिन्दू समाज में मय और निराशा की भावना भर दी थी। मुसलमान समाज का नैतिक स्तर इस प्रकार की कुपयाओं से बहुत नीचा हो गया था। इनमें पोर ब्यभिचार फैल रहा था। बलात्कार उनके लिए साधारण ही बात थी। मुबारक शाह<sup>१</sup> और कैम्बुवाद् के सामाजिक ब्यभिचारों का वर्णन सभी इतिहासकारों ने किया है। उक्त युग में मुवती नरुकिर्वा और सुन्दर लकड़ बाजारों में झुलेझाम बिन्दते थे। कमी-कमी एक-एक लकड़े की भीमय दो-दो हजार टंक तक लग जाती थी।<sup>२</sup> फीथम हुगलक के समय में इस प्रकार क. १८ हजार लकड़े बर्तमान थे। मुसलमानों के बहुखीवाद ने भी उनके समाज में पार ब्यभिचार फैला रखा था। एक-एक बादशाह के हजारों खिर्वा हठी थीं। मौहम्मद हुगलक के सिपहसालार लामबर्दा के समय में इतिहासकारों ने लिखा है कि उसके हरम में भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न जातियों की दो हजार खिर्वा थीं।<sup>३</sup> तरदारों की इस प्रकार की दया से ही उबाओं की दया का अनुमान किया जा सकता है। वे साधारणतया दो-दो तीन-तीन हजार खिर्वा रूतते थे।

बहुखीमिया के अतिरिक्त बचन शाऊन-बख्त में बेश्यावृत्ति का भी अण्डा प्रचार था। अणुलकबाल ने आर्देने अकबरी में लिखा<sup>४</sup> है कि अकबर के समय में राजपानी में इतनी बेश्याई थी कि कनकी गणना नहीं की जा सकती थी। उनके खने के लिए नगर का एक मग्न अक्षय कर दिया गया था। उक्त रीतमपुर बढ़ते थे। अकबर से पूर्व के बादशाहों ने भी बेश्यावृत्ति को आमय दिया था। बचन शाऊन ने इतिहास एक औरियेव<sup>५</sup> में ऐसा बादशाह मिलता है। बितने इस वृत्ति को कनाम करने का प्रयत्न किया था। उतने बेश्याओं को वह राख आजा दी थी कि वे वा तो अपनी वृत्ति छोड़ दें वा किसी से विवाह कर लें। यवनों के राजघरल में शराब, लुचा, बालठाबी<sup>६</sup> आदि कुप्रवृत्तियों को भी पूरा आमय मिला था। बालनर्वा<sup>७</sup> की बालठाबी वा इतिहासप्रसिद्ध है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बचन समाज नैतिक दृष्टि से बहुत गिर गया था।

नैतिक दृष्टि से मुसलमान समाज कितना पतित हो रहा था हिन्दू समाज का

<sup>१</sup> मुस्लिम इन्क इन् इतिहास पृ० १६५

<sup>२</sup> " " " " पृ० १६५

<sup>३</sup> " " " " पृ०

<sup>४</sup> आर्देने अकबरी, कपुबकजकबल, कमीकमीन द्वारा अख्दिर (१८०३ १४) पृ० ११३

<sup>५</sup> म्यारिवा डू भोगर—इम्बू आबिन द्वारा सम्पादित (मन्थन १६००) ६

<sup>६</sup> मुस्लिम इन्क इन् इतिहास पृ० २५०

<sup>७</sup> मीरीबन इतिहास पृ०

वाली<sup>१</sup> घटना भी इसी बात को पुष्ट करती है। सिक्खर खारी अपने धर्म को हिन्दू धर्म से आधिक पवित्र समझता था। बोधन ब्राह्मण ने हिन्दू धर्म को इस्लाम धर्म के सदृश पवित्र कर दिया था। इस पर उस विचार को नैतिक बलवा दिया गया था। जिस प्रकार मुसलमान हिन्दुओं को नीच और दुष्ट समझने से उठी प्रश्न हिन्दू भी मुसलमानों को पवित्र और आदर समझने से और उनके लिए श्रेष्ठ शब्द का प्रयोग करते थे। उनकी खाना पकवाने पर अपने को अपवित्र समझने से और खान तथा पूजा करते थे।<sup>२</sup>

हिन्दू और मुसलमान समाजों में ही मेद-माधना कर्ममान न थी बल्कि उनमें आपस में भी ऊँच-नीच की बड़ी मयाकनी भावना स्थित थी। हिन्दू समाज तो ब्राह्मण और शूद्र के पारस्परिक मेद के लिए बरनाम था ही।<sup>३</sup> मुसलमान समाज में भी यह भावना कम भड़कर रूप में कर्ममान नहीं थी। विदेशी मुसलमान हिन्दू जाति से परिवर्तित भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं के सदृश ही नीच और पवित्र समझते थे। करते हैं कि बलकम<sup>४</sup> ने एक बार अपने एक उच्च समाजद को सबके सामने इसलिये भर्त्सित किया था कि उसने अमरोहे में कर्क के कर्म के लिए एक हिन्दू जाति से परिवर्तित भारतीय मुसलमान को चुन लिया था। यह बय्या मुसलमानों के पारस्परिक मेदमात्र को पूर्णतया प्रमादित करती है। सुधी और शिवा के पारस्परिक मेदमात्र से तो सभी परिचित हैं। यह इतिहासप्रसिद्ध बात है कि सुधी बाबरशाह शिवा लोगों को ऊँचे पद नहीं देते थे। इस प्रकार शिवा लोग भी सुधियों से भूषा करते थे और ऊँचे पद उन्हें नहीं देते थे।

मध्यकालीन मुसलमान समाज की शाला<sup>५</sup> की प्रथा बहुत ही मयाकनी थी। एक-एक मुसलमान बादशाह के हाथों गुलाम हुआ करते थे।<sup>६</sup> इनमें से अधिकांश मिराह हिन्दू होते थे, जिनके प्रति उनका व्यवहार बहुत ही क्रूर होता था। यह लोग शिवा और कर्क को भी गुलाम बना देते थे। यकनी की इस गुलाम बनाने की प्रथा में

<sup>१</sup> इतिहास एवम् हाउसब मे सोबन नाम दिया है। प्रो० एच० एच० चिदमन का मत है कि यह कबीर का सिख था।

<sup>२</sup> सुस्तवत भाषा देहली—पृ० ४८८

<sup>३</sup> इतिहास—इसी सम्प्रदाय में धार्मिक प्रेरणाएँ

<sup>४</sup> सुस्तवत भाषा देहली पृ० ४७६

<sup>५</sup> " " " पृ० ४८७

<sup>६</sup> अकबरशाह के ५,००० गुलाम थे। औरंगजेब के समय में उनकी संख्या २,००,००० हो गई थी।

एन ब्रह्मचर्य हिन्दी भाषा इतिहास, पृ० १६६

हिंदू समाज में मय और निराशा की भावना भर दी थी। मुसलमान समाज का नैतिक स्तर इस प्रकार की कुप्रथाओं से बहुत नीचा हो गया था। इनमें और स्वभिचार फैला रहा था। बलात्कार उनके लिए साधारण ही बात थी। मुबारक शाह<sup>१</sup> और कैम्बुबाद के सामाजिक स्वभिचारों का वर्णन सभी इतिहासकारों ने किया है। उस युग में पुषी<sup>२</sup> मर्तियाँ और हुन्दर लाइक<sup>३</sup> नामों में लुलेआम बिच्छे थे। कमी-कमी एक-एक लड़के की शीमय दो-दो हजार टंक तक लग जाती थी।<sup>४</sup> फीरोज तुगलक के समय में इस प्रकार के १८ हजार लड़के बर्तमान थे। मुसलमानों के बहुखीबाद ने भी उनके समाज में और स्वभिचार फैला रखा था। एक-एक बादशाह के हजारों स्त्रियाँ होती थीं। मोहम्मद तुगलक के खिखवास्तार खामबहाँ के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने लिखा है कि उसके हरम में भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न भिन्न जातियों की दो हजार स्त्रियाँ थीं।<sup>५</sup> सरदारों की इस प्रकार की दशा से ही राजाओं की दशा का अनुमान किया जा सकता है। वे साधारणतया दो-दो तीन-तीन हजार स्त्रियाँ रखते थे।

बहुस्त्रीप्रथा के अतिरिक्त यवन शासन काल में वैश्यावृत्ति का भी अप्पड़ा प्रचार था। अजुलकमल ने चारूने अकबरी में लिखा<sup>६</sup> है कि अकबर के समय में रावधानी में इतनी वैश्याएँ थीं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती थी। उनके खाने के लिए नगर का एक भाग अलग कर दिया गया था। उधे शैवानपुर रहते थे। अकबर से पूर्व के बादशाहों ने भी वैश्यावृत्ति को प्राम्भय दिया था। यवन शासकों के इतिहास एक औरंगजेब<sup>७</sup> में ऐसा बादशाह मिलता है। बिछने इस वृत्ति को तनाम करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने वैश्याओं को यह राज्ञ आज्ञा दी थी कि वे या तो अम्नी वृत्ति छोड़ दें या किसी से विवाह कर लें। यवनों के राज्यकाल में शराब, जुआ, बालसामी<sup>८</sup> आदि कुप्रवृत्तियों को भी पूरा प्राम्भय मिला था। बालसामी<sup>९</sup> की बालसामी तो इतिहासप्रसिद्ध है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यवन समाज नैतिक दृष्टि से बहुत गिर गया था।

नैतिक दृष्टि से मुसलमान समाज कितना पतित हो रहा था हिन्दू समाज का

<sup>१</sup> मुस्लिम रज्ज इज्जिया पृ० ११५

<sup>२</sup> " " " " " पृ० ११५

<sup>३</sup> " " " " " पृ०

<sup>४</sup> चारूने अकबरी, अजुलकमल, अमीरुल्लाह द्वारा अद्वित (१८७३-७४) पृ० ११२

<sup>५</sup> ग्यारिका डू मोर - डम्पू अरबिन द्वारा सम्पादित (मन्दन १९००) ९

<sup>६</sup> मुस्लिम रज्ज इज्जिया पृ० २५०

<sup>७</sup> मीदीयत इज्जिया पृ०

स्वर उठना ही उँचा था। इस नैतिक उन्नता का बहुत बड़ा कारण उन्नी संस्कृति थी। उन्नीयसीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी अपना नैतिक स्वर उँचा बनाये रखने की प्रेरणा दी थी। शासित वर्ग से संबंधित होने के कारण वे सदैव ही शासक वर्ग के अत्याचारों का शिकार रहते थे। उन्हें किसी प्रकार के भी राजनैतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त थे।<sup>१</sup> बरानी ने उन्नी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि किसी भी हिन्दू को सिर उठाने का साहस नहीं होता था। उन्हें अपने घर में सोने और चाँदी के बिकड़े तथा आभूषण रखने का अधिकार नहीं था। वे घोड़े की सवारी भी नहीं कर सकते थे। वे अन्न-शुद्ध भी नहीं रख सकते थे। मूषकान् बरन लरीदना भी उनके पक्ष में अपराध था।<sup>२</sup> इतने पर भी उन्हें बर्बिया कर देना पड़ता था। कुल्ल बादशाहों के समय में तो यह बर्बिया कर बहुत अधिक बढ़ गया था। अलाउद्दीन खिलजी ने दोआब के लोगों की आय पर पचास फी सदी बर्बिया कर लगा रखा था।<sup>३</sup> इन सबके फलस्वरूप हिन्दू जाति दरिद्रता और दीनता की परकाष्ठा पर पहुँच गई थी।

इस युग में विद्या और पांडित्य की प्रतिष्ठा कम हो गई थी। अधिकांश बादशाह लोग अशिक्षित और बर्बर होते थे। वे न तो विद्वानों और पंडितों को सम्मान ही देते थे और न उनके प्रति सम्मान का भाव ही रखते थे। मीरम्मद गुजरात के विप्लव में इतिहासकारों ने लिखा है कि वह हिन्दू पंडित को तो बात ही क्या मीसवी और शेख सागों को छाटे से छाटे अपराध पर कड़े से कड़ा दंड दे देता था।<sup>४</sup> मुसलमान बादशाहों के इतिहास में केवल अफसर ही एक ऐसा बादशाह-मिलता है जो विद्वानों और पंडितों का उचित सम्मान करता था। विद्या और पांडित्य की प्रतिष्ठा कम हो जाने के कारण सामान्य जनता की अधिभक्ति उन्नी और से हट गई। समुचित शिक्षा और पांडित्य के अभाव में हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों में बोर अंधविश्वास और कुप्रवृत्तियाँ व कुप्रथाएँ उत्पन्न कर दी गिनच उजेल हम धार्मिक प्रेरणाओं के प्रसंग में कर चुके हैं। संतों की सुबालादी आत्मा उपर्युक्त सामाजिक दुर्बलताओं और विचारों का सहन न कर सकी और उनके प्रतिरोध में प्रवृत्त हो गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों ने निर्गुण विचारधारा के उद्भव और विकास में प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा प्रदान की थी।

<sup>१</sup> सलतनात नाफ देहली पृ ४८६

<sup>२</sup> मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ० २५२

<sup>३</sup> " " " पृ १२३

<sup>४</sup> " " " पृ० १६४

## परिस्थितिनन्व व्यक्तिकत

उपर्युक्त विविध परिस्थितियों के अतिरिक्त बहुत सी ऐसी भी प्रेरक शक्तियाँ हुआ करती हैं जिन्हें हम परिस्थितिबन्ध व्यक्तिकत कह सकते हैं। प्रत्येक मनुज के जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं, ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जिससे जीवन की गति सहसा बदल जाती है। महापुरुषों के जीवन में तो इस प्रकार की घटनाएँ और परिस्थितियाँ कुछ अधिक आया करती हैं। अविष्णु महापुरुष इन परिस्थितियों और घटनाओं की ठाकर खाकर ही महापुरुष बने हैं। उदाहरण रूप में हम महात्मा हुलसीदास को ले सकते हैं। उनकी स्त्री की ललकारवाली घटना ने ही उनको कमुच हुलसीदास से महात्मा हुलसीदास बना दिया था। संतों के संबंध में प्रायः इस प्रकार की घटनाएँ प्रचलित हो जाया करती हैं। इस घटनाओं के वर्णन में पादे अतिरचना की जाती हो किन्तु वे आभासित स्वरूप पर ही रहती हैं।

निर्गुणियों कर्मों के जीवनदृष्टों पर दृष्टि डालने से हमें लगभग प्रत्येक के सम्बन्ध में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने उनके जीवन को, उनके मात्स्य को और उनकी विचारधारा को प्रभावित कर नई मोड़ देने की चेष्टा की है। कुछ प्रसिद्ध संतों की प्रसिद्ध जीवन घटनाओं का संकेत तथा उनके कृतस्वरूप उद्भूत क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा।

महात्मा कबीर में हमें एक विविध अस्वभावता और प्रतिभावना मिलती है। इस अस्वभावता और प्रतिभावना के मूल में भी तो कई बातें थीं किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात उनकी विचर लोदी क द्वारा उठाया जाना था। तिकन्दर लोदी ने उनके साथ बड़े अत्याचार किये थे। कबीर ने अपनी रचनाओं में कई स्थलों पर इनका संकेत किया है।<sup>१</sup> तिकन्दर लोदी के इन अत्याचारों ने कबीर की मक्तिभावना को तथा उनकी पंडन की प्रवृत्ति को अत्यंत ही बल दिया होगा। उनकी बाणी में जो विद्रोह मय हुआ है उसकी उत्तरदायिनी उनके जीवन की यह घटना भी मानी जा सकती है।

संत नामक के संबंध में एक किंवदंती है कि यह वैताग्योदय से पूर्व एक मोदी-साने में मीकर थे। कहते हैं एक बार आया लीकते समय वह इनने माकमन हो गये कि

<sup>१</sup> कबीर रचनावर्ती—१० २०३

यदि बघाइ जल गदिर गमीर ।  
 बौधि जरीर राई हैं कबीर ॥  
 जप की तरग उठि करि है कबीर ।  
 हरि सुगिरन लट बिडे हैं कबीर ॥



तेख श्रीसंख्या आने पर तेख-तेख करते हुए मोदी का सारा आवा माहक को देने लगे। उन्हें नौकरी से अलग कर दिया। मोदी की इस कुमपत्ता पर संत नानक को बड़ी आनति हुई और ठठी दिन से उन्होंने वैराग्य प्रवृत्त कर लिया तथा देश भ्रमण को निकल पड़े। मानक में संसार के प्रति जो एक अनिश्चयीय विरुग माव मिलता है ठठकर बहुत कुछ भेष इस पटना को भी है।

दादू के शिष्यों में रम्बन भी का बड़ा महत्वपूर्व स्थान है। इनके सम्बन्ध में भी एक कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि जब वह विवाह के लिए मीर आदि भारत किये हुए हुआ बने हुए विवाह के लिए जा रहे थे ठठी समय मार्ग में उनकी मंड दानू से हो गई। दादू ने उनके पत्ता आरे रम्बन, तुने गबन कर दिया, व संसार में मंगलदम्बन के लिए आया या किन्तु सर मीर बाँधकर नरक की आर जा रहा है। दादू के इस कथा का रम्बन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने ठठी समय मीर आदि फुँककर वैराग्य का मार्ग प्रवृत्त कर लिया।

निर्गुण अम्बपाय में बारी साहब का भी उल्ला स्थान है। कहते हैं कि यह साहबादे थे। किन्तु किन्हीं व्यक्तिगत पटनाओं से इनके जीवन में इतना परिवर्तन आता कि यह संत मत में दीक्षित हो गये। बारी साहब और उनके शिष्य तुला साहब का सम्बन्ध में एक पटना और अज्ञेयनीय है। किंबदन्ती है कि मर्दानसिंह नामक बारी-दार को मातृगुबारी न दे सकने के कारण दरबारीन स्थानीय शासक ने उसे गिरफ्तार करके दिल्ली भेज दिया। तुला साहब मर्दानसिंह के यहाँ कम करते थे। उन्होंने संत बारी साहब से बाकर मर्दानसिंह की मुक्ति की प्रार्थना की। बारी साहब ने आशीर्वाद दिया और उनके आशीर्वाद के फलस्वरूप मर्दानसिंह कारागार से मुक्त हो गया। इस पटना का प्रभाव तुला साहब पर इतना अधिक पड़ा कि वह घर-बार छोड़कर बारी साहब के शिष्य हो गये। इसी प्रकार की अनेक किंबदन्तियाँ अन्य संतों के सम्बन्ध में भी प्रचलित हैं। इन किंबदन्तियों में बहुत कुछ सार भी है। इस प्रकार की पटनाओं में निर्गुणियों कर्मियों की विचारधारा को बसा दिया या। उनमें अल्पनिष्ठा और वैराग्य माव की प्रतिष्ठा का बहुत बड़ा भेष इन्हीं परिस्थितिकम्प व्यक्तिगत पटनाओं को ही है। इतमें संदेह नहीं कि निर्गुण विचारधारा के अम्बपम में हमें इन परिस्थिति कम्प व्यक्तिगत परिस्थितियों पर भी ध्यान रखना चाहिए वही हम उसे ठीक-ठीक समझने में समर्थ हो सकेंगे। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की रचना उसके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब होती है।

# द्वितीय अध्याय

## सम्प्रदाय

दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में विचारणीय प्राचीन दर्शन-पद्धतियाँ, सम्प्रदाय मठ और विद्यापाराएँ—

सन्तों को प्रभावित करनेवाली प्राचीन धर्म और दर्शन-पद्धतियाँ—

भौतदर्शन का महत्त्व संहिताओं का दार्शनिक दृष्टिकोण, प्राणायामिक विष्णु और  
खुल्लुबाद उपनिषदों का दार्शनिक दृष्टिकोण, शक्य, अपिस्तली, गुण,  
ब्रह्मवाद, ब्रह्म, जीव सृष्टि, शाशनाएँ

निर्गुण काय्यपाठ पर भौतदर्शन के प्रभाव—

बैद्यबन्ध और निर्गुण काय्यपाठ, स्वरूप और विद्वानों के प्रभाव

निर्गुण काय्यपाठ और योगबहिष्कृत—

योगबहिष्कृत दर्शन के प्रमुख सिद्धांत,

निर्गुण काय्यपाठ पर योगबहिष्कृत दर्शन की कृपा,

पददर्शन और सन्त कवियों द्वारा उनकी उपेक्षा,

भीमद्वयवर्गीयता और सन्त कवि—

निष्काम धर्मयोग, सम्प्रयोग, इन्द्रिय बन्ध और प्रकृति, ब्रह्मवाद,  
प्राणायामिकता

निर्गुण काय्यपाठ में सम्राज्यवाद के सिद्धांतों की अवतारणा

गौरववाद का अभाववाद और निर्गुण काय्यपाठ

संन्यासार्थ का मायावाद और सन्त कवि

सैन दर्शन और सन्त कवि

शैव पर्यं और निर्गुण काय्यपाठ ।

दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में विचारणीय दर्शन पद्धति,  
सम्प्रदाय मठ और विद्यापाराएँ

सन्तों को प्रभावित करनेवाली धर्म और दर्शन-पद्धतियों का निर्णय—  
हिंदी की निर्गुण काय्यपाठ की दार्शनिक पृष्ठभूमि का विशेषण करने से प्रथम  
पद निर्णय कर लेना आवश्यक है कि सन्त लोग माल की धिन-धिन दार्शनिक  
पद्धतियों, सम्राज्यवाद और विद्यापाराओं के श्रेणी में । सन्त लोग अज्ञानी महत्त्वा

ये। उन्होंने अपने समय की समस्त दार्शनिक विचारधाराओं के रत्नभूत सिद्धान्त ग्रहण किये हों तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु केवल अनुमान के आधार पर मातृ के समस्त प्राचीन और मध्यकालीन दर्शनों का संग्रह विवेचन करना और कर्बल उन समस्त दर्शनों के प्रभावों को हूँद निकालना हठधर्म-भाव होगा। कोई आश्चर्य नहीं 'विनायक्य विकृर्षो रचयामास ज्ञानम्' वाली उक्ति बरिठायी हो जाये। अतएव सर्वप्रथम हमें सन्तों की बानियों की छानबीन करनी है और देखना है कि इन बानियों में हमें किन किन दार्शनिक सम्प्रदायों, पद्धतियों और परम्पराओं के प्रभाव के संकेत-सूत्र मिलते हैं।

**भुक्तिग्रन्थ**—मातृ की समस्त विचारधाराओं का मूल स्रोत भुक्तिग्रन्थ है। इनमें प्रतिपादित विचारधारा भीतरदर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त स्रोत भीतरदर्शन से प्रभावित थे या नहीं इस संबंध में दो मत हो सकते हैं। कुछ लोग उन्हें वेद-विरोधी मानते हैं और कुछ वेदानुवासी। इस मत-वैचल्य का कारण सन्तों में पाई जानेवाली उक्तियाँ हैं। सन्तों ने कहीं पर तो वेद-शास्त्रों की निंदा की है और कहीं पर उनकी पुजारी देकर उनके प्रति भक्ति प्रकट की है। मिथ्यात्मक उक्तियों को एकदम पसन्दनासे लोग उन्हें वेद-विरोधी कहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि सन्तों ने कहीं-कहीं वेद का विरोध किया है। हरिना साहब विहारवाले की एक उक्ति<sup>१</sup> है—

‘अबोधक भीचारि अतुरद्वेष वेद मते अरुभ्राना’

इसी प्रकार अन्य सन्तों ने भी वेदों के प्रति निंदामात्र प्रकट किया है। किन्तु वेद-संबंधी इन निंदालमक उक्तियों के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि सत्त लोग भुक्तिग्रन्थों के प्रति भक्ति रखते थे या उनसे वे प्रभावित नहीं हुए थे। उन्होंने भुक्तिग्रन्थों की मीमांसा कई कारणों से की थी। उनमें एक कारण अंधानुसरण की प्रवृत्ति का विरोध करना था। वेद प्रामाण्यवादी भुक्तिग्रन्थों का अनुसरण बिना विचार के करते हैं। विचार विरहित अंधानुसरण उन्हें मिथ्यात्व की ओर ले जाता है। इसीलिए कबीर ने उक्त स्वर में श्लोकवा की है—

‘वेद कतैव कही मत मूँठा मूँठा सोइ जो म आप बिचारे’

जो लोग भुक्तिवाक्यों पर विचार भी करते हैं वे माया विमूर्छित<sup>१</sup> होने के कारण उनके रहस्य तक नहीं पहुँच पाते हैं। भीष्मा साहब ने सिद्धा है कि संसार का भ्रमवात बना कठिन है, मनुष्य भ्रमित होकर उसमें कैलवा है। बानी लोग अज्ञानी हो जाते हैं।

<sup>१</sup> हरिना साहब विहारवाले के पुत्रे हुए यह—पृ० ४६ और भी देखिए पृ० वि० पृ० ७६।

बुद्धिमान् बाल बुद्धिवादी हो पाते हैं। वे परमार्थ का स्वाग करने के स्वार्थ सेवन में सगे रहते हैं। इतने पर भी वे वेद और वेदान्त का अर्थ विचारने का हाँग करते हैं। किंतु माया और मोह को नहीं समझ पाते हैं।<sup>१</sup> वेदों का प्रति उद्देशा प्रकृत करने का एक कारण और भी था। सुन्दरदास<sup>२</sup> के शब्दों में यह इस प्रकार है—

वेद बहुत विस्तार है नानाविधि के शब्द ।

पढ़ते पार न पाइय जो भीते बहु अर्थ ॥

इन्हीं सब कारणों से संत लोगों ने भक्तियों के प्रति उदासीनता का माय प्रकृत किया है किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उनके प्रति भद्रा नहीं रखते थे। वास्तव में वे उनका हृदय से आदर करते थे और उनकी विचारधारा से प्रभावित भी हुए थे।  
कबीर<sup>३</sup> श्री—

‘वेद कतेब कइहु मत मूँठा मूँठा सोइ जो न आप विचारे’

बापी उक्ति उद्धृत कर चुके हैं। इससे स्पष्ट प्रकृत है कि कबीर वेदों के प्रति भद्रा रखते थे। संत<sup>४</sup> सुन्दरदास ने तो वेदों की माम्यता स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की है—

वेद सार तत्व सार सिद्धित पुण्यसार ।

प्रयन की सार सोई हृदय माहि आन्यो है ॥

इसी प्रकार भीमा साहब<sup>५</sup> ने भी एक स्थल पर वेद और वेदान्त को प्रमाण रूप से उद्धृत करते हुए लिखा है—

<sup>१</sup> ब्रह्म के अर्थ बहुत कठिनाई ।

तानें भरमि भरमि कहंदाई ॥

ज्ञानवंत अज्ञान होत हैं बुद्ध करत करिआई ।

परमात्प तत्रि स्वात्म सेवहि यह भी धीनि बदाई ॥

वेद वेदान्त को अर्थ विचारहि बहु विधि दधि उपजाई ।

माया मोह प्रसिद्ध निख बासर कौन बड़ो मुकदाई ॥—भीमा साहब की बापी पृ० २ ।

<sup>२</sup> संत मुखासार पृ० ५२६ और ५३२ ।

<sup>३</sup> क० ग० पृ० ३२३

<sup>४</sup> सुन्दर विनास पृ० १०

<sup>५</sup> भीमा साहब की बापी पृ० ३

कहत है वेद वेदान्त सब पुनि गुरु कान मह टण ।  
भीष्मा भाग बिना नहीं वेसत निकट हि दीप अंधिये ॥

इन उद्धरणों से प्रकट है कि संत लोग वेद और वेदान्त के प्रति उपेक्षा भाव नहीं रखते थे, बरन अज्ञा भाव ही रखते थे। ऐसी अवस्था में उनका अतिशयोक्ति की विचारबाध से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

**वैष्णवमत**—संत लोग वैष्णव विचारबाध) के प्रति भी अज्ञा रखते थे। उससे वे बहुत अर्थों में प्रभावित भी हुए थे। कबीर ने अनेक स्थलों पर वैष्णवों की प्रशंसा की है। वह शाक्तों के यौन की उपेक्षा वैष्णवों की छुरी को भेबरकर मानते<sup>१</sup> थे। सुंदरदास ने यहाँ तक लिखा है 'सुन्दर विष्णु को भव विष्णु में समाइय'<sup>२</sup> अन्य संतों ने भी वैष्णवों के प्रति इसी प्रकार अज्ञा प्रकट की है। अतः स्पष्ट है कि संतों की विचारबाध के मूल में वैष्णव विचारबाध प्रतिक्रिया थी। उसको समझने के लिए वैष्णव विचारबाध का स्वीकरण आवश्यक है।

**योगबशिष्ठ दर्शन**—वैष्णव दर्शनों में योगबशिष्ठ का महत्वपूर्ण स्थान है। संत लोग इस दर्शन से भी परिचित थे। वह उनकी बानियों से प्रकट है। गुलाब साहब ने मोरल, रचाबेय, आठ, सुन्दरदास आदि के साथ ही योगबशिष्ठ के प्रति भी अज्ञा प्रकट की<sup>३</sup> है। बशिष्ठ का दर्शन ही योगबशिष्ठ दर्शन के नाम से प्रकट है। इससे स्पष्ट है कि संत लोग इस दर्शन से परिचित थे, और ऐसा कि आने के विवेचन से प्रकट है वे प्रभावित भी हुए थे।

**गीता दर्शन**—माय का प्राथम्य दार्शनिक ग्रंथ गीता है। संत कवि लोग गीता के महत्व से पूर्णतया परिचित<sup>४</sup> थे। इसीलिए उनकी विचारबाध में गीता के बहुत से उद्धरण मिलते हैं।

**बहूदर्शनों की उपेक्षा**—माय के आधुनिक दर्शनों में सबसे अधिक प्रतिष्ठा बहूदर्शनों<sup>५</sup> की ही है। इन दर्शनों का संघर्ष बौद्धिक ध्यानात्म से अधिक और स्वातु

<sup>१</sup> कबीर सम्पादनी पृ० ४९ पर सन्धी ४ देखिये।

<sup>२</sup> संत सुभासार प० ६३०।

<sup>३</sup> गुलाब साहब की बानी पृ ४६।

<sup>४</sup> बरबदास की बानी भाग २ पृ० १२

<sup>५</sup> बहूदर्शन के समग्र में प० परशुराम जगुर्वेरी का सुझाव बहुत मौलिक और कीमती है। वे लिखते हैं चण्ड का जय बहाँ अर्थात् कोई भी चण्ड या समग्रदास है जिसे प्रभावतया १ करने की परम्परा कबीर साहब के पीछे तक जाती पाई है। देखिये—कबीर साहब की बरबदास पृ० ४३।

मृति से कम है। यह कारण है कि सुन्दरदास जी<sup>१</sup> रत्नचरणी<sup>२</sup> सहजोबाई<sup>३</sup> दादू<sup>४</sup> फलट्ट साहब<sup>५</sup> आदि संतों ने पद्दर्थनों के प्रति अधिकतर अमादर और उपेक्षा का माव ही प्रकट किया है। वे लोग अपनी विचारधारा को पद्दर्थनों से परे मानते थे। क्योंकि पद्दर्थन बाद के इन्द्रजाल में फँसे हुए हैं और संतों की विचारधारा एतानु मूर्तिप्रधान है। सुन्दरदास ने स्पष्ट लिखा है--

सुन्दर कहत पद साक्ष माहि मयो दादू<sup>४</sup> ।  
जाके अनुभव ज्ञान धार में न बहयो है ॥

पद्दर्थनों के नाम क्रमशः म्याय, मीमांसा, वैशेषिक, पार्श्वकल भोग, सांख्य और वेदान्त हैं। इनमें वेदान्त ही केवल एक ऐसा दर्शन है जिसमें अनुमृति का महत्त्व है। अतः संत सांग पद्दर्थनों में यदि किसी के प्रति थोड़ी-बहुत भ्रद्धा रखते हैं तो वह वेदान्त है। मीमांसा साहब<sup>५</sup> ने वेदान्त के महत्त्व का संकेत करते हुए लिखा है कि मूल संत वेदान्त के उपदेश को क्यापि नहीं सुनते हैं। यद्यपि वह चारों युगों में उन्हें उषा उपदेश देता आया है। उन्होंने एक दूसरे स्थल पर लिखा है--

वेद वेदान्त संत मुख माझहि धन्य जो नाम उपासी ।

इन पंक्तियों में स्पष्ट ही वेदान्त के प्रति भ्रद्धा प्रकट की गई है। अतः स्पष्ट है कि संतों पर वेदान्तदर्शन का प्रभाव भी पका था।

अद्वैत वेदान्त के प्रति भ्रद्धा—वेदान्त की बहुत ही शान्कार्यें प्रकटायें हैं। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि। इनमें संत सांग अद्वैत को ही महत्त्व देते थे। कबीर<sup>६</sup> दादू<sup>४</sup> जगदीवन<sup>७</sup> दयाबाई<sup>८</sup> रेदाव<sup>९</sup> सुन्दरदास<sup>१०</sup> मीमांसासाहब<sup>५</sup>

<sup>१</sup> (सुन्दरदास) संत सुधासार पृ० ५६१ ।

<sup>२</sup> रत्नचरणी—संत सुधासार पृ० ५१३ ।

<sup>३</sup> सहजोबाई की बाणी पृ० ३९ ।

<sup>४</sup> दादू—संत सुधासार पृ० ४८६ ।

<sup>५</sup> फलट्ट साहब की बाणी मूनीय भाग पृ० १०२ ।

<sup>६</sup> सुन्दर विज्ञान पृ० १६० ।

<sup>७</sup> मीमांसा साहब की बाणी पृ० १० ।

<sup>८</sup> संतबानी संग्रह भाग २ पृ० १९८ ।

<sup>९</sup> कबीर प्रभावती—पृ० १५१ ।

<sup>१०</sup> दादूबाणी भाग १ पृ० ८९ और ९७ ।

<sup>११</sup> संतबानी संग्रह भाग २ पृ० ६२ और ७० ।

<sup>१२</sup> दयाबाई की बाणी पृ० १९ और १७ ।

<sup>१३</sup> संतबानी संग्रह भाग २ पृ० १६६ ।

<sup>१४</sup> संत सुधासार पृ० ५८० ।

<sup>१५</sup> संतबानी संग्रह भाग १ पृ० १६ ।

पल्लू साहब<sup>१</sup> बारी साहब<sup>२</sup> गुप्ता साहब<sup>३</sup> आदि सभी संतों ने अद्वैत के प्रति ही बड़ा प्रकट की है। बड़ा ही नहीं उनकी स्वामाधिक प्रवृत्ति भी अद्वैत की ओर ही प्रतीत होती है। अद्वैत भी कई प्रकार का होता है—सत्ताद्वैत, केवलज्ञानद्वैत, शिवाद्वैत आदि। इन सभी प्रकार के अद्वैतवाद का प्रभाव संत कवियों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनका विवेचन आगे किया जाएगा। वेदान्त के अतिरिक्त संतों पर सांख्य और योग का भी योजन-बहुत प्रभाव पड़ा था। योग के प्रभाव को सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। उनकी लगभग प्रत्येक रचना उसका स्वयं प्रमत्त प्रमाण है। स्थान-स्थान पर पाये जानेवाले पाँच पचीठ<sup>४</sup> के उल्लेख संतों के प्रमाण के प्रमाण के रूप में निर्दिष्ट किये जा सकते हैं। किंतु इन दृश्यों का उन पर कोई व्यापक प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है।

बौद्ध और जैनमत—संत लोग कुछ तथा कथित नास्तिक दर्शन-प्रवृत्तियों से भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए थे। इस प्रकार की दर्शन-प्रवृत्तियों में जैन और बौद्ध विरोध अत्यन्तनीय हैं। संत मुन्दरदास<sup>५</sup> बरनदास<sup>६</sup> रामदास<sup>७</sup> गुप्ता साहब<sup>८</sup> आदि में इन दर्शनों के प्रति भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बड़ा प्रकट की है। उदाहरण रूप में हम संत मुन्दरदास<sup>५</sup> की निम्नलिखित उक्ति से सकते हैं :—

बौद्ध के नाम तब जब मन को निरोध होय।

बौद्ध के विचार सोध आत्म को करिय ॥

इन उक्तिओं से स्पष्ट प्रकट होता है कि संत लोगों ने बौद्धचार्य को आस्तिक मतकार आत्मसात् किया था। अतः बौद्ध विचारपात्र के प्रकाश में संत विचारपात्र का अक्षय्यवन करना बड़ा आवश्यक है।

संत लोग जैन दर्शन से भी परिचित थे। संत मुन्दरदास ने एक स्थल पर अपने जैनी की परिभाषा भी की है। उनके मतानुसार सच्चिदानेनी नहीं होता है जो

<sup>१</sup> पल्लू साहब की बारी भाग २ पृ० १५ २०।

<sup>२</sup> बारी साहब की बारी पृ० ७।

<sup>३</sup> गुप्ता साहब की बारी पृ० १०४।

<sup>४</sup> भीष्मा साहब की बारी पृ० २९ और बरनदास की बारी भाग २ पृ० ४८।

<sup>५</sup> मुन्दर विद्यास पृ० १०० और १०९।

<sup>६</sup> बरनदास की बारी भाग २ पृ० ४२।

<sup>७</sup> रामदास की बारी भाग २ पृ० ३५।

<sup>८</sup> गुप्ता साहब की बारी पृ० ५६।

<sup>९</sup> मुन्दर विद्यास पृ० १००।

प्रकृति धर्म का पालन करते हुए सदाचार से जीवन व्यतीत करता है<sup>१</sup>। इससे स्पष्ट होता है कि वंश जैन दर्शन का नैतिक पक्ष से काशी प्रभावित हुए थे।

संक्रमण—मध्ययुग में भीठ विचारधारा की पृष्ठभूमि पर शैवाग्रियों और संन्यासियों का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। संक्रमण से संतों का सीधा संबंध था। वे शैव-शाक्त संन्यास और बौद्ध संन्यास दोनों से ही सम्पर्क रूप से प्रभावित हुए थे। कहीं कहीं पर ठा संतों की उत्कृष्टता का संतों ने भाषानुवाद तक कर डाला है। यहाँ पर इतक स्पष्ट की पुष्टि में एक उदाहरण दे सकते हैं। विष्णुवार संन्यास में एक स्थल पर लिखा है —

प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्याद्दामाचारगतौ प्रिये ।

अतो वामपथं देवि गोपायेत् मातृजातवत् ॥

अर्थात् हे प्रिये, दामाचार मार्ग में साधन का प्रवर्धित करने से सिद्धिहानि होती है। अतः हे देवि, वाममार्ग को मात्रा का चार का समान गुण रखना चाहिए। संत दूखनदास<sup>२</sup> ने संक्रमण के संदर्भ में ही लगभग इसी भाषा की गुणवृत्ति की है। उनकी उक्ति इस प्रकार है —

दूखन यह मत गुण है प्रगट न करो बखान ।

ऐसे रास्तु छिपाय मन जस विषया औषधान ॥

इसी प्रकार संतों में संन्यास का दृष्टिकोण उपलब्ध होता है। अश्वमेधादी संन्यासों में दाल और बौद्ध का दृष्टिकोण बहुत प्रसिद्ध है। उनका अनुसार शिव और शक्ति उन्हीं प्रकार दो होने हुए भी एक होती हैं जिस प्रकार की चने की दालें हो जाती हैं हुए भी एक ही होती हैं। संत मुन्दरदास<sup>३</sup> ने इतक दृष्टिकोण को लगभग यही का रूप देखा है। यह सिद्ध है :—

एक बीजहूँ से होय दालि नाम पाये हैं ।

एक स्थल पर संत पल्लू ने स्पष्ट रूप से शिव और शक्ति का अन्तर्गत किया<sup>४</sup>

<sup>१</sup> मुन्दर विरासत पृ० १०० ।

<sup>२</sup> अन्त्याय के योगांक पृ० १०५ से उद्धृत ।

<sup>३</sup> संतशास्त्री संग्रह भाग २ पृ० १८६ ।

<sup>४</sup> मुन्दर विरासत पृ० १२९ ।

<sup>५</sup> संत पल्लू सिद्धांत है—

भाग तीन अथ द्वादश भूमिका श्रवण की पाये ।

भाग सत्रस्र समाधि पाठि से नीच बनारस व

पाण्डु मादय की बानी भाग १ पृ० ५२

गिरि प्रसि के मिश्रण से मी को मना बनारस ।

पल्लू साहब की बानी भाग १ पृ० ६८ ।



है। इसी प्रकार और भी बहुत से प्रमात्रों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है कि संत लोग शेष शाक्त तंत्रों से परिचित और प्रभावित थे।

**बौद्ध संत**—बौद्ध तंत्रों से संतों का सीधा संबंध था। डा० भर्मवीर माखी ने अपने सिद्ध साहित्य नामक ग्रन्थ में संतों पर पड़े हुए सिद्धों के प्रमात्रों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। यद्यपि उनके बहुत से निष्कर्षों से मैं सहमत नहीं हूँ किंतु यह स्वीकार करने से मुझे कोई संकोच नहीं है कि संत लोग सिद्धों की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। संतों की बानियों से भी उनकी विचारधारा पर पड़े हुए सिद्धों के प्रमात्रों का पता चलता है।

**नाथ पंथ**—शैव, शाक्त और बौद्ध तंत्रों के सम्मिश्रण से विकसित हुए नाथ-पंथ के संतों की विचारधारा के अध्ययन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। संत लोग तंत्रों से भी अधिक नाथपंथ से प्रभावित हुए थे। यह प्रमाण इतना व्यापक और बहुमुखी था कि बहि दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह प्रतिष्ठित प्रयोग एक से ही दिखाई पड़ेंगे। कहीं-कहीं पर तो दोनों में एक ही पद्य कर्मों का त्यों समान रूप से मिलता है। उदाहरण के लिए हम निम्नलिखित उक्ति दे सकते हैं—

यह मन सकठी यह मन सीव<sup>१</sup>  
 यह मन पंच तरब का बीव ॥  
 यह मन जे उनमनि रहै।  
 तो तीन शोक की बाता कहै ॥

वैसे ही संतों ने गोरक्षनाथ के प्रति जो भव्य भाव प्रकट किया है उसके भी वही निष्कर्ष निकलता है कि वे लोग नाथ सम्प्रदाय से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।

**इस्लाम और सूफी मत**—संत लोग हिन्दू और मुसलमान दोनों ही वर्गों से आये थे अतएव उनकी विचारधारा पर हिन्दू दर्शनों के प्रमाण के अतिरिक्त इस्लामी विचारधारा का प्रमाण पकना भी स्वाभाविक था। हुआ भी ऐसा ही। उन पर इस्लाम धर्म और सूफी मत के भी बहुत से क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक प्रमाण दिखलाई पड़ते हैं।

**विशेष**—संत में वहाँ पर एक बात और स्पष्ट कर देना चाहते हैं। पृष्ठभूमि के रूप में हम जिन संत उग्रवादियों, बर्तन पद्धतियों और मनों का विश्लेषण करने का रहे हैं, संत लोगों का उनमें से एक भी अपनी पूर्णता में मामू न था। मान्य

<sup>१</sup> गोरक्ष बाबी संग्रह पृ १८ और सत कबीर—डा रामकुमार वर्मा पृ० ८९।

होना तो बुरा था वे प्रायः उसका लोक-प्रचलित रूप के विरोधी थे। यदि लोक की भाँव तो उनकी भाँवियों में हमें उन समस्त दर्शनों और विचारधाराओं के प्रति उपेक्षा भाव मिलेगा किन्तु वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए थे। वास्तव में वे सार्वभौमिक संत थे। उन्होंने अपने समय की लोक-प्रचलित विचारधाराओं के सारमूल विद्वान् महत्त्व कर सिये व और शेष का परित्याग कर दिया था। उनकी निहारमक अकिर्वा इन्हीं शेष विद्वानों को दृष्टि में रखकर कही गई थी। बुसठी ने 'संत इंत गुन गह्वि परिहरि वारि विचार' सिलकर सार्वभौमिकता को ही उच्चत महान् विशेषता कहा है। निर्गुणियों संता में यह विशेषता अपनी सम्पूर्णता में विद्यमान थी। अपनी इन्हीं विशेषता के फल पर वे दर्शनों के विस्तृत सागर से सुन्दर सारमूल विद्वान् रूपी मोती चुन सके थे।

### श्रीसदर्शन

महत्त्व—मात्र की समस्त विचारधाराओं का मूल स्रोत भुक्तिप्रिय है। भुक्तिप्रियों के सम्मान्यता पर विभाग माने जाते हैं—१—सहिता, २—ब्रह्मण्य, ३—आरव्यक और ४—अनियत्। दार्शनिक दृष्टि से इन भागों में अनियत् प्रथम सर्वाधिक महत्त्वमान माने जाते हैं। सहिताओं में अति अल्पमत्त विस्तृत का बीजापेक्ष प्रिया गया था उनका सम्बन्ध और सर्वतन्मयी विकास अनियत् में ही दिखाई दिया। किन्ती समय भीत साहित्य बड़ा व्यापक और विस्तृत था। मुक्तिअनियत् के अनुसार अन्तर की इच्छा, यजुर्वेद की एक ही नी, सामवेद की एक हजार और अथर्ववेद की भी सार्वभौमिक थी। इनसे संबंधित ब्राह्मण, आरव्यक और अनियत् प्रथम भी सैद्धों की संख्या में वर्तमान थे। इस भुक्ति-साहित्य की बरतृष में समस्त मात्रा सूक्ति को अल्पमत्त कर रखा था। इच्छादि विद्वान् ने वेदों की महती महिमा का प्रतिपादन किया है। वेद की महिमा अत्यन्त अतिरिक्त रूप प्रचर है—

- १ वेदोक्ति अन्तिसो पर्य मूलम।
- २ वेदाद्यो हि निर्बभी।
- ३ वेद एव दिवादीनां निभेयस्तु परः।
- ४ सर्वे वेदात् प्राहुमवन्ति।

१ वेद के विभागों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। सायण ने केवल का ही विभाग माने हैं—मत्र और ब्राह्मण। बुद्ध लोग तीन विभाग मानते हैं—सहिता, ब्राह्मण, आरव्यक और बुद्ध मात्र अनियत् ४ विभाग मानते हैं।

२ इच्छा वैदिक साहित्य परिभाषक—रजनीश्वर्य शास्त्री पृ० ८०।

## २। श्री निर्गुण काव्यभारा और उनकी दार्शनिक दृष्ट्युक्ति

५. बोधनधीत्य द्विबो वेदमन्त्रत्र कुस्ते भगम् ।

उ बीनन्नेव सुदत्त्वमागु गच्छद्विवात्कत ।<sup>१</sup>

यहाँ पर हम पहले संहिताओं में आयेलेख और दर्शन के उन बीबाणुओं का जो विद्याल उपनिषद् साहित्य रूपी बद्रूप के रूप में प्रस्तुत और विस्तृत हुए थे, उल्लेख करेंगे। यानु में फिर उपनिषदिक विचारधारा के उन तत्त्वों का विवेचन करेंगे जिसे हिन्दी की निर्गुण विचारधारा प्रभावित है।

संहिताओं का दार्शनिक दृष्टिकोण—संहिताओं में यद्यपि आप्तत्व का प्रत्यक्ष प्रतिपादन नहीं किया गया है फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से उनमें हमें एक विस्तृत और व्यवस्थित दार्शनिक विचारधारा मिलती है। उपनिषदिक<sup>२</sup> आध्यात्म चिन्तन की यह आचारमूर्ति कही जा सकती है। उस विचारधारा का विस्तृत विवेचन यहाँ पर संभव नहीं है। किन्तु संक्षेप में हम उन बातों का संक्षेप अवतरण करेंगे जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और प्रत्यक्ष रूप से उपनिषदिक विचारधारा को प्रभावित किया है।

अध्यात्म चिन्तन और रहस्यवाद—श्रुत्येद-संहिता में हमें आध्यात्म-चिन्तन के साथ साथ रहस्यमिम्पत्ति भी मिलती है। अध्यात्म क्षेत्र में इस संहिता के श्रुतिबोध में अद्वैतवाद सृष्टिबोधसिद्धि आदि पर अपने विचार विशेष रूप से प्रकट किये हैं। श्रुत्येद-संहिता में विविध देवताओं का वर्णन देखकर बहुत से विद्वानों को यह भ्रम होता है कि उनमें अद्वैतवाद का अर्थवाद के बीबाणु नहीं मिलते हैं। किन्तु यह पारक्षा निर्मूल और अज्ञ है।<sup>३</sup> श्रुत्येदिक श्रुति पूर्वकनेय अद्वैतवादी थे। 'एक उद्दिष्टा बहुधा बन्दि' जैसी उक्तिपूर्ण इस कल्प के प्रमाण रूप में दी जा सकती है। ऐक्य निम्नलिखित पंक्तियों में ईश के रूपक से आध्यात्मिक अद्वैतवाद की वर्णना चिन्तने सुन्दर ढंग से की गई हैं। यह वर्णना आलंकारिक और साहित्यिक होने के कारण रहस्यवाद का उदाहरण भी मानी जा सकती है—

चत्वारिंशत् गान्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्या ।

त्रिधाकण्डोऽप्यमो रोरबीति महोद्देशो मर्त्या आविवेश<sup>४</sup> ॥

<sup>१</sup> अस्यास्य का बोधान्तांश पृ० ३८४ ।

<sup>२</sup> ऐक्येद पद दिल्ली का.क. विद्यालय की का.० पत्र.० पत्र. का.क. गुप्त. भाग. १, ईशिका. १९५३ ।

<sup>३</sup> ऐक्येद—विष्णुमिति

<sup>४</sup> दिल्ली का.क. संस्कृत

<sup>५</sup> इन्द्र मित्र बरुचमणि

बहुधा बन्दि

मध्यम ही अध्यात्म—पत्र १९३४ ।

पृ० ७०-७२ (१९)

अपलो गद्यमान

इस मंत्र में एका ने वैश्व के रूप के द्वारा गुरु आप्पात्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। यहाँ अन्नमत्स्य को ही इन्द्र कहा गया है। यह अम्बिदानन्द स्वकपी होने के कारण विरायद् है। सावन अनुत्प या अनुर्महावाक्य ही उसका वाक्य शृंग है। अन्न वाक्य के प्रधान तीन साधन भवत्य, मनन, निदिध्यासन उसका तीन परम हैं ब्रह्म और विदेह मुक्ति ही उसके दो शिर हैं। विदामास की साथ अक्षरपाएँ अरिषा, आयरस्य, विश्व, पराक्षरान, अरयक्षान, साकारगम और तृप्ति ही उस वैश्व की मूल मुक्तियाँ हैं। मैं पश्य हूँ, मैं हनहृत्प हूँ इस प्रकार ही एतियाँ ही उस वैश्व का रस हैं। इस ईश की बहुत ही अक्षिणी श्रुत्येद में पार्य जाती हैं। इन सबको हम आप्पात्मिक उद्वेगवाद का उदाहरण मानेंगे। भावनामूलक उद्वेगवाद के उदाहरण भी श्रुत्येद का बागारम्भशीय सूक्त में मिलते हैं। इस सूक्त में अद्वैतवाद का प्रतिपादन मावात्मक शैली में किया गया है। उसके दो-एक अक्षरवाक्य उद्धृत कर देना अनुपसुक्त न होगा—

अहं ऋत्रेभि वसुमिग्धरा  
 स्वदमादित्यरूत विग्धवेवैः ।  
 अहं मित्रावरुणभाभिर्म  
 न्यदयमिन्द्राग्नी अहं अरिबनोमा' ॥

अर्थात् मैं ऋत्र और वसु के साथ ही रहती हूँ तथा अन्न देवताओं के साथ भी रहती हूँ। मैं मित्र और वरुण की शान्ता का धारण करती हूँ मैं दो अरिबन इन्द्र और अग्नि को हस्त करती हूँ—

अहं इन्द्रायपनुरातनोमि  
 प्रसाद्विष शान्तुऽह्नवाड ।  
 अहं जनाय ममद् हृष्यो  
 न्यहं ताया पृथिवी आविबेश' ॥

अर्थात् मैं इन्द्र का अनु वान्नी हूँ ताकि तब वे शत्रु का वध किया जा सके और उन शत्रुओं का वध कर कर आ ईश्वर का पूजा करते हैं। मैं मनुष्यों में सुख की भावना भरती हूँ। मैं स्वर्ग और पृथ्वी सभी में परिणत हूँ। इस मंत्र की अंतिम पंक्ति में एका का वे अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। वहनी तीन पंक्तियों में मावात्मक

१ अम्बद का अन्वय ७ व ११ म० १

२ अम्बद २१०११

अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संहिताओं में अद्वैत-वाद की स्थापना विवेचनात्मक, बर्णनात्मक, रहस्यपूर्ण आत्मकारिक और रहस्यपूर्ण भाषात्मक शैलियों में की गई है।

संहिताओं में सृष्टियोग्यति संबंधी विचार भी यत्र-तत्र मिलते हुए मिलते हैं। ऋग्वेद में कई सूक्तों में सृष्टियोग्यति पर विचार किया गया है। इन सूक्तों में नासदीय सूक्त द्विरवयवार्थक, पुनरुक्त विरोध दृश्य है। इनके अतिरिक्त ब्रह्म महत्त्व के ७२वें और ८२वें सूक्त में भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला गया है<sup>१</sup>। सृष्टियोग्यति का निरूपण भी इन सूक्तों में यही बर्णनात्मक और यही रहस्यात्मक शैलियों में किया गया है। नासदीय सूक्त इन सबमें अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। सम्भवतः यही कारण है कि वेदोपदेशासीन प्रायः सभी विचारधाराओं पर इसकी छाया दिखाई पड़ती है। इस सूक्त में अनादिकासीन मूलतत्त्व के संबंध में विविध प्रकार की विज्ञाधार्य और विविधविज्ञाध्यै प्रकृत की गई हैं। उस मूल तत्त्व का बर्णन विविध प्रकार से किया गया है। उसमें लिखा है कि वह मूल तत्त्व अकेशा एक ही वायु के बिना स्वासोच्छ्वास होता था। इसके अतिरिक्त और इसके परे और कुछ भी न था। वह तत्त्व अक्षररूप या, अक्षररूप या या आसुररूप या वह कुछ नहीं कहा जा सकता। तपसा से इसके मन में अम उत्पन्न हुआ और अम की प्रेरणा से ही प्रागे सृष्टि का विघ्नत हुआ। ऋषियों ने वह जो लिखा है कि—देवाना पूर्वो जुगेऽसतः<sup>२</sup> अर्थात्—वह ही विघ्नतकम का योग्य है। जिस मूल तत्त्व का संकेत अक्षर के रूप से किया गया है, उसी को प्रागे चलकर किसी ने विराट् रूप माना<sup>३</sup> है किसी ने श्रुत और छल रूप कहा है<sup>४</sup> किसी ने अक्षररूप निर्दिष्ट<sup>५</sup> किया है किसी ने सतत्त्व समग्र है तथा किसी<sup>६</sup> ने आक्षररूप, किसी ने मूलरूप<sup>७</sup> और किसी ने तम-रूप तक कह दिया<sup>८</sup> है—

<sup>१</sup> हिन्दी भाषा संस्कृत सिद्धेतर—मैकडानेक ५० १२१ सम्पन्न १९०९।

और भी वैदिक ए हिन्दी भाषा इतिहास विकासकी भाग १५० २३ वृत्त ५५ वास गुप्त वैदिक १९५१।

<sup>२</sup> ऋग्वेद १०।७२।०

<sup>३</sup> ऋग्वेद १। १८

<sup>४</sup> ऋग्वेद १०।१११।१

<sup>५</sup> तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।३

<sup>६</sup> साम्प्रदायिकविषय १।२।१।१२३

<sup>७</sup> बृहदारण्यक १।२।१

<sup>८</sup> मैत्रायणी उप० ५।१३



व्याख्यानविषय प्रविषाद्येयस्य निषिद्धाविद्योत्पत्तेः—अर्थात् उपनिषद् ग्रंथ से हम विद्युत् प्रथम श्री व्याख्यान करना चाहते हैं। उसके प्रविषाद्य और वेद्य अक्षयिद्वय विद्या का प्रविषादन किया जाता है। इस विद्या का लक्ष्य संसार के बीच का विस्तार करना माना गया है। जो इस विद्या का ज्ञान होता है वह मृत्यु के मुख से बूट जाता है।<sup>१</sup> मुमुक्षु-परजय के पास पहुँच जाता है। परजय के पास पहुँचने ही पुष्प विरल और विमृत्यु हो जाता है।<sup>२</sup> इसीलिए इस शास्त्र का उपदेश है—

आत्मा वा अरे दृष्टव्यं श्रोतव्यं मन्तव्यो निदिग्धासितव्या<sup>३</sup>

लक्ष्य अधिकारी और गुरु—अर्थात् आत्मा ही उपात्कार करने योग्य है, अवश्य करने योग्य है, मनन करने योग्य है और ध्यान करने योग्य है। इस प्रकार हम यह सच्चे हैं कि उपनिषद् विद्या का प्रधान प्रविषाद्य आत्मज्ञान है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति ही उद्योग प्रधान लक्ष्य है। आत्मतत्त्व की प्राप्ति के साधन रूप में अष्टांग योग का उपदेश दिया गया है। कठोपनिषद् में लिखा है कि उपात्कार अष्टांग योग के द्वारा उद्योग आत्मा को ज्ञानकर हर्ष और शोक रहित हो जाता है।<sup>४</sup> वहाँ पर योग का अर्थ केवल इन्द्रियवशय लिखा गया है। कठोपनिषद् में इसकी व्याख्या इसी रूप में की गई है।<sup>५</sup> अतएव हम यह यह सच्चे हैं कि अष्टांग विद्या से अष्टांग और अष्टांग के लिए उद्योगकारण्य होना बहुत आवश्यक है। आत्मदर्शी उपात्कार के संभव में बृहदारण्योपनिषद् में लिखा है कि जो उपात्कार मन और इन्द्रियों को संयमित करके उपरान्त वृत्ति धारण करके तिष्ठति होकर समाधिपरवय हो अपने अन्दर आत्मा को देखता है वही सच्चा उपात्कार उद्योग वा उद्योगी है। अष्टांग विद्या की इस आन्तरिक-मनस्यता के ही कारण शिष्य और गुरु के मुवात्र और अधिकापी होनेवाली बात पर अधिक ध्यान दिया है। कठोपनिषद् में लिखा है कि अमरदर्शी आचार्य द्वारा उद्योगी किये जाने पर ही आत्मा अक्षि और मास्ति रूप में अनुभव किया जा सकता है।<sup>६</sup> अमेरदर्शी आचार्य का उद्योग सम्भवतः ब्रह्मनिष्ठ महात्मा से है क्योंकि

<sup>१</sup> कठोपनिषद्—गीता प्रेस सप्त १९९० पृ० १९

<sup>२</sup> देविय कठोपनिषद् का अर्थ भाष्य—गीता प्रेस पृ १३ स १६६०

<sup>३</sup> कठोपनिषद् १।३।१५

<sup>४</sup> कठोपनिषद् २।३।१६

<sup>५</sup> बृहदारण्योपनिषद्—४।४।५

<sup>६</sup> कठोपनिषद् २।३।११

<sup>७</sup> कठोपनिषद्—२।३।११

<sup>८</sup> बृहदारण्योपनिषद्—४।४।२२

<sup>९</sup> अष्टांग १ अध्याय २ मंत्र ८

मुद्गकोपनिषद् में लिखा है कि ब्रह्मास्तु व मुमुक्षु शिष्य को वेदक और ब्रह्मगुरु के पास जाना चाहिए।<sup>१</sup> उपनिषदों में कबल गुरु की सुयोग्यता पर ही बल नहीं दिया गया है बल्कि शिष्य के सुपात्र्य को भी बड़ा आवश्यक ठहराया गया है। ऋग्वेदोपनिषद् में लिखा है कि ब्रह्मका मन दुरन्तरियों से बिरक्त होकर शान्त और स्थिर नहीं हुआ है ऐसा धरातल मनवाला सावक ब्रह्मज्ञान का अधिकायी नहीं हो सकता।<sup>२</sup> इसी प्रकार मुद्गकोपनिषद् में भी लिखा है कि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्य को सत्यनिष्ठ ब्रह्मचारी और सग्नान् ब्रह्म विशिष्ट होना चाहिए।<sup>३</sup> गुरु को अपने शिष्य की सुगमता का विश्वास उसके हाथों में ठनिषा देखकर हो जाता है। इससे उसे निश्चय हो जाता है कि शिष्य उसकी सद्भाव से सेवा करेगा। इसीलिए मुद्गकोपनिषद् में लिखा है कि अग्न्यात्मज्ञान प्राप्त करने की कामना से शिष्य को वेदक और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास हाथों में ठनिषा लेकर जाना चाहिए।<sup>४</sup>

**अद्वैतवाद**—उपनिषदों में सर्वत्र अद्वैतवाद की ही भक्तक मिलती है। यह बात उनके अग्न्यात्म विवेचन से स्पष्ट हो जायगी। अग्न्यात्म विवेचन के अन्तगत हम ब्रह्म और अज्ञान माया और तापनाम्ना आदि पर प्रकाश डालेंगे।

उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म को एक ही माना गया है। यह बात भूतियाँ क निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट है—‘पुरुष एवेदं विरभम्’ स एवमेतद्वैत रूपम्’।

**ब्रह्म**—इस आत्मा या ब्रह्म का वर्णन उपनिषदों में विविध प्रकार से विभिन्न शैलियों में किया गया है। संक्षेप में निम्नलिखित शैलियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं :—

- १—विरोधात्मक २—निवेपात्मक ३—गिमायनात्मक ४—अनिर्बचनीयत्वक  
५—साधरात्मक ६—सगुणात्मक ७—पवीत्रात्मक ।

१—**विरोधात्मक**—उपनिषदों में ब्रह्म का निरूपण बहुत से स्थानों पर विरोधात्मक शैली में किया गया है उदाहरण के लिए हम ईशावास्योपनिषद् की यह उक्ति से लक्ष्य हैं—

<sup>१</sup> मुद्गकोपनिषद् १।१।४

<sup>२</sup> काठकोपनिषद्—१।२।२७

<sup>३</sup> मुद्गकोपनिषद्—१।१।५

<sup>४</sup> मुद्गकोपनिषद् १।२।७

<sup>५</sup> मुद्गकोपनिषद् १।१।१० तथा साम्कोपनिषद् २।१।५ २



व्याख्यानप्रतिपाद्य प्रतिपाद्येयस्तुविषयाविद्याभ्यते—अर्थात् उपनिषद् ग्रंथ से हम जिस ग्रंथ की व्याख्या करना चाहते हैं उसके प्रतिपाद्य और वेद्य ब्रह्मविद्यक विद्या का प्रतिपादन किया जाता है। इस विद्या का लक्ष्य संसार के बीच का विश्रम्भ करना माना गया है। या इस विद्या का ज्ञान होता है वह मृत्यु के मुक्त से तुरंत जाता है।<sup>१</sup> सुमुच-परमेश के पास पहुँच जाता है। परमेश के पास पहुँचने ही पुरुष विरल और किम्ल्यु हो जाता है।<sup>२</sup> इसीलिए इस शास्त्र का उपदेश है—

‘आत्मा वा अरे दृष्टव्यं श्रोतव्यं मन्तव्यो निदिष्यासितव्या’<sup>३</sup>

लक्ष्य अधिकारी और गुरु—अर्थात् आत्मा ही साक्षात्कार करने योग्य है, भवना करने योग्य है, मनन करने योग्य है और स्थान करने योग्य है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपनिषद् विद्या का प्रधान प्रतिपाद्य आत्मतत्त्व है। इस आत्मतत्त्व की प्राप्ति ही उच्चतम प्रधान लक्ष्य है। आत्मतत्त्व की प्राप्ति के साधन रूप में आभ्यसन योग का उद्देश्य दिया गया है। ऋग्यजुर्वेद में लिखा है कि सायक आभ्यसन योग के द्वारा उस आत्मा को जानकर हर्ष और शोक रहित हो जाता है।<sup>४</sup> यहाँ पर योग का अर्थ केवल इन्द्रियबन्ध सिद्धा गया है। ऋग्यजुर्वेद में इसकी व्याख्या इसी रूप में की गई है।<sup>५</sup> अथर्वण हम यह यह कह सकते हैं कि आभ्यात्म विद्या के अभ्यसन और अभ्यासन के लिए उद्देश्यपरम्य होना बहुत आवश्यक है। आत्मदर्शी सायक के संबंध में बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि जो सायक मन और इन्द्रियों को संयमित करके उपरम वृत्ति धारण करके स्थिति होकर समाप्तिधारा हो अपने अन्दर आत्मा को देखता है वही सन्धा सायक कहा जा सकता है। अभ्यात्म विद्या की इस आचरण-मन्त्रता के ही कारण शिष्य और गुरु के मुनात्र और अधिकारी होनेवाली बात पर अधिक जोर दिया है। ऋग्यजुर्वेद में लिखा है कि अमर्दशी आचार्य द्वारा उददिष्ट किने जाने पर ही आत्मा अस्ति और नास्ति रूप में अनुभव किया जा सकता है।<sup>६</sup> अमेददशी आचार्य का उद्देश्य सम्भवतः ब्रह्मनिष्ठ महात्मा से है क्योंकि

<sup>१</sup> ऋग्यजुर्वेद—गीता प्रेस सन १९२० पृ० १२

<sup>२</sup> वैश्विष् कर्मोपनिषद् का सारक भाष्य—गीता प्रेस पृ० १३ सं १६०

<sup>३</sup> ऋग्यजुर्वेद २।३।१५

<sup>४</sup> कर्मोपनिषद् १।३।१८

<sup>५</sup> बृहदारण्यकोपनिषद्—२।४।१

<sup>६</sup> कर्मोपनिषद् २।३।११

<sup>७</sup> कर्मोपनिषद्—२।३।११

<sup>८</sup> बृहदारण्यकोपनिषद्—१।४।२२

<sup>९</sup> अन्वय १ अक्षर १ मंत्र ८

मुंढकोपनिषद् में लिखा है कि मिठासु व मुमुक्षु शिष्य को वेदक और ब्रह्मक गुण के पास जाना चाहिए।<sup>१</sup> उपनिषदों में केवल गुण की सुयोग्यता पर ही बल नहीं दिया गया है बल्कि शिष्य के सुप्राक्त्व को भी बड़ा आश्चर्यक टिप्पणी किया गया है। ऋग्वेदोपनिषद् में लिखा है कि जिसका मन दुस्स्वरिषो से विरक्त होकर शक्ति और स्थिर नहीं हुआ है ऐसा अज्ञान मन्वन्ता सामक ब्रह्मज्ञान का अधिभारी नहीं हो सकता।<sup>२</sup> इती प्रकार मुंढकोपनिषद् में भी लिखा है कि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्य को अत्यनिष्ट ब्रह्मचारी और सम्यक् ज्ञान विशिष्ट होना चाहिए।<sup>३</sup> गुण को अपने शिष्य की सुप्राक्त्वा का निरवास उसके हाथों में समिधा देकर हो जाता है। इससे उसे निरन्ध्र हो जाता है कि शिष्य उसकी सद्भाव से सेवा करेगा। इतीलिए मुंढकोपनिषद् में लिखा है कि अभासज्ञान प्राप्त करने की कामना से शिष्य को वेदक और ब्रह्मनिष्ठ गुण के पास हाथों में समिधा लेकर जाना चाहिए।<sup>४</sup>

**अद्वैतवाद**—उपनिषदों में सर्वत्र अद्वैतवाद की ही भलाक मिलती है। यह बात उनके अर्थात्म विवेचन से स्पष्ट हो जायगी। अर्थात्म विवेचन के अन्तगत हम ब्रह्म की वरुण माया और साधनाओं आदि पर प्रकाश डालेंगे।

उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म को एक ही माना गया है। यह बात भूतियों के निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट है—‘पुरुष एवेदं विश्वम्’ व एवमेतद्दत्त रूपम्’।

**ब्रह्म**—इस आत्मा या ब्रह्म का बर्णन उपनिषदों में विविध प्रकार से विविध शैतियों में किया गया है। संक्षेप में निम्नलिखित शैतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं :—

- १—विद्योपात्मक २—निवेशात्मक ३—शिवायनात्मक ४—अनिर्बन्धनीयत्वक  
५—साक्षात्क ६—सगुणक ७—प्रतीकात्मक ।

**१—विद्योपात्मक**—उपनिषदों में ब्रह्म का निरूपण बहुत से रूपों पर विद्योपात्मक शैली में किया गया है ब्रह्महर्ष के लिए हम शिवायनात्मक की यह उक्ति से उक्त है—

<sup>१</sup> मुंढकोपनिषद् १।२।४

<sup>२</sup> ऋग्वेदोपनिषद्—१।१।२७

<sup>३</sup> मुंढकोपनिषद्—१।१।५

<sup>४</sup> मुंढकोपनिषद् १।२।७

<sup>५</sup> मुंढकोपनिषद् १।२।१० तथा साक्षात्कविषद् २।१।५ २

आसीनो वृत्तं प्रवृत्तिं शयानोयासि सर्वतः<sup>१</sup> ।

अर्थात् वह रहस्यमय ब्रह्म स्थल होते हुए भी वृत्तगामी है और चोला हुआ भी सर्व गामी है ।

२—निषेधात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहीं-कहीं निषेधात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है जैसा कि श्वेताश्वतरे उपनिषद् में लिखा है—

नैव स्त्री न पुमानेव न चैवायं नपुंसकः<sup>२</sup>

अर्थात् न वह स्त्री है न पुरुष है और न नपुंसक ही ।

३—विमावनात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म के विमावनात्मक वर्णनों की भी कमी नहीं है । उदाहरण के लिए हम श्वेताश्वतरे उपनिषद् की 'अपादिपादो बभूवो प्रहीता' 'पर्यत्यञ्चतः स शृङ्खल्यञ्चर्याः'<sup>३</sup> वाली उक्ति से सकते हैं ।

४—अनिर्बन्धनीयात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म के अनिर्बन्धनीयात्मक निर्गुण वर्णनों की भरमार है । उदाहरण के रूप में हम बृहदारण्यकोपनिषद् की यह उक्ति से सकते हैं—इन सब नाम रूपात्मक मूर्त या अमूर्त पदार्थों के परे जो अमाद्य और अवर्यनीय है वही ब्रह्म<sup>४</sup> है । ब्रह्म की अनिर्बन्धनीयता और निर्गुणता का उल्लेख उसे इन्द्रियों के स्वामी मन और वाणी के परे बतलाकर किया गया है जैसे—

'कतो वाचो निर्वर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह'<sup>५</sup> इसी प्रकार मुंडकोपनिषद् में उसे पञ्च और वाणी दोनों के परे बतलाया गया है जैसे—पञ्चुया श्रवते नापि वाचा<sup>६</sup> ।

५—साकारात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म के कहीं-कहीं साकाररूपक वर्णन भी मिलते हैं । ये साकाररूपक वर्णन स्थूल रूप से दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं । एक विराट् रूप संबंधी और सूक्ष्मे कोटिरूप संबंधी । विराटरूप का वर्णन करते हुए मुंडकोपनिषद्कार लिखता है—अ न्न विराट् ब्रह्म की मूर्ति है, सर्व और चन्द्र उच्चरी आर्त्त हैं, विराट् अन्न हैं, विवृत वेद उच्चरी वाणी है, समस्त उसके चरखों का आश्रित है । वह

<sup>१</sup> इत्यामरवोपनिषद् ५।१०

<sup>२</sup> श्वेताश्वतरे उपनिषद् ५।१०

<sup>३</sup> वही—३।१८

<sup>४</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् २।३।६

<sup>५</sup> कोपनिषद् ब्रह्मसूत्र अष्टमी ९ की प्रथम पंक्ति ।

<sup>६</sup> मुंडकोपनिषद् ३।१

तर्कभूत की संतारप्रमा में निवास करता है<sup>१</sup>। दूयरे प्रकार के बर्चन में ब्रह्म की व्याप्ति स्वरूपी बननाया गया है। यह व्याप्ति भी अचिन्तर अंगुष्ठप्रमाणी बनलाई गई है। स्वतारवत उरनिपद् में लिखा है—'अंगुष्ठ मात्रा यत्र ह्यन्यरूपा'। अठोरनिपद् में भी ब्रह्म का बचन इही ढंग पर किया गया है। उरमें लिखा है कि 'अंगुष्ठप्रमाणी पुनः लागो य इदया में निवास करता है<sup>२</sup>।

६—सुगुणारमक—उरनिपदों में ब्रह्म के विविध प्रकार के सुगुणारमक बर्चन मिलते हैं—ब्रह्मे—सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म ( तृतीय उरनिपद् २।१ ), विद्वानमानन्दं ब्रह्म ( ५० ३।१।२८ ) ब्रह्म की अन्वयता का प्रतिपादन भी विविध प्रकार से किया गया है। उदाहरण के लिए हम मुद्रकारनिपद् का यह अक्षरवचन ले सकते हैं—ब्रह्म हमारे गान्धे है, ब्रह्म हमारे पीछे है, ब्रह्म हमारे बायीं ओर है तथा दायीं ओर है। वही ऊपर है वही नीचे भी है वही अष्टादिभेद है<sup>३</sup>।

७—प्रतीकात्मक—उरनिपदों में हमें ब्रह्म के बहुत से प्रतीकात्मक बर्चन भी मिलते हैं। बृहदारण्यकोपनिपद् में गार्ग्यशास्त्रापी ने अवातशत्रु को ब्रह्म का उरदेश आदित्य चन्द्र विद्युत् आकाश वायु अग्नि जल आदि प्रतीकों क सहारे किया है।<sup>४</sup> हा प्रसरी के अतिरिक्त उरनिपदी में ब्रह्म बर्चन के और भी अनेक प्रकार दूरे का सकते हैं। परब्रह्मी दार्शनिक विचारधारणा में ब्रह्म बर्चन की य विविध प्रणालियाँ सर्वत्र अन्वय गई हैं। द्विती की निर्गुण काय्यवाय क अविषो में उन्हें ब्रह्म का रूप प्रदत्त किया था। यह बात उनके दार्शनिक विचारों के बचन की तुलना से स्पष्ट हो जायगी। यहाँ पर उरण्य रचना चाहिए कि ब्रह्म सचरी यह समस्त बर्चन अनुभूति मूलक है तर्कमूलक नहीं। उरनिपदों के तथा अण्पात्मसूत्र में एक की अग्रविद्या मानते थे—'निरामानि तर्क्य आरणीया' अक्षर क उरनिपदुधर न स्पष्ट ही तर्क का विरोध किया है। उरनिपदों में हमें मात्रा संबंधी बर्चन भी मिलत हैं जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं। उरनिपदों में सर्वप्रथम इत्यका उल्लेख स्वतारवत<sup>५</sup> उरनिपद् में मिलता है। यहाँ पर इत्यका प्रयोग मानस्य क लिए किया गया है। नामरूप शब्द का प्रयोग

<sup>१</sup> मुद्रकारनिपद् २।१।४

<sup>२</sup> स्वतारवत ५।८

<sup>३</sup> अठोरनिपद् २।१ १३

<sup>४</sup> मुद्रकारनिपद् २।२।११

<sup>५</sup> बृहदारण्यकोपनिपद् ३।१

<sup>६</sup> अठोरनिपद् २।१।८

<sup>७</sup> स्वतारवत ३।१०

आसीनो वृरं ब्रजति शयानोयाति सर्बत<sup>१</sup> ।

अर्थात् यह रहस्यमय ब्रह्म स्वप्न होते हुए भी वृरगामी है और सोता हुआ भी सर्ब-गामी है ।

२—निषेधात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहीं कहीं निषेधात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है जैसा कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में लिखा है—

नैव श्री न पुमानेव नपैवायं नपुंसक<sup>२</sup>

अर्थात् न वह श्री है न पुरुष है और न नपुंसक ही ।

३—विभाषनात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म के विभाषनात्मक वर्णनों की भी कमी नहीं है । उदाहरण के लिए हम श्वेताश्वतर उपनिषद् की 'अपाधिपादो बनो महीता' 'अक्षय्यचक्षुः च श्चक्षोत्पक्ष्यं'<sup>३</sup> वाली उक्ति से सकते हैं ।

४—अनिर्वचनीयारम्भक—उपनिषदों में ब्रह्म के अनिर्वचनीयारम्भक निर्गुण वर्णनों की भरमार है । उदाहरण के रूप में हम बृहदारण्यकोपनिषद् की यह उक्ति से सकते हैं—'एन एव नाम रूपात्मकमूर्तं वा अमूर्तं पदायों के परे ओ अमात्र और अनवर्तनीय है वही ब्रह्म<sup>४</sup> है । ब्रह्म की अनिर्वचनीयता और निर्गुणता का संकेत उसे इन्द्रियों के स्वामी मन और वाची के परे बतलाकर किया गया है जैसे— 'कतो वाचो निवर्तन्ते । अत्राप्य मनठा सः'<sup>५</sup> इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् में उसे पशु और वाची दोनों के परे बतलाया गया है जैसे—'पशुपा एवमे नापि वाचा'<sup>६</sup> ।

५—साकारात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म के कहीं-कहीं साकाररूपक वर्णन भी मिलते हैं । ५ साकाररूपक वर्णन स्थूल रूप से दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं । एक विद्युत् रूप संबंधी और दूसरे व्यापिरूप संबंधी । विद्युत् रूप का वर्णन करते हुए मुण्डकोपनिषद्कार लिखता है—'अ म विद्यत् ब्रह्म श्री मूर्धां है, सूर्य और चन्द्र उसकी अंतिं हैं, विशार्वं अन्त हैं, विद्युत् वेद उसकी वाची है, समस्त उसके परसों से व्याप्यंत है । यह

<sup>१</sup> ब्रह्माश्वतोपनिषद् ५।१०

<sup>२</sup> श्वेताश्वकोपनिषद् ५।१

<sup>३</sup> वही—३।१८

<sup>४</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् ३।३।१

<sup>५</sup> कोपनिषद् ब्रह्माण्य वसुधि ९ की प्रथम पंक्ति ।

<sup>६</sup> मुण्डकोपनिषद् ३।१

सर्वभूतोषी अंतरात्मा में निवास करता है<sup>१</sup>। दूसरे प्रकार क वर्णन में ब्रह्म को ज्योति स्वरूपी बनलाया गया है। वह ज्योति भी अविच्छन्न अंगुष्ठप्रमाणी बनलाई गई है। श्वेतारवण उपनिषद् में लिखा है—‘अंगुष्ठ मात्रा रवि तुल्यरूपा’। कठोपनिषद् में भी ब्रह्म का वर्णन इसी ढंग पर किया गया है। उसमें लिखा है कि ‘अंगुष्ठप्रमाणी पुरुष सप्तो के हृदया में निवास करता है’<sup>२</sup>।

६—सुगुणात्मक—उपनिषदों में ब्रह्म के विविध प्रकार के सुगुणात्मक वर्णन मिलते हैं—<sup>३</sup>वेदे—सर्वं ज्ञानमन्तं ब्रह्म (तैत्तिरीय उपनिषद् २।१), विठानमानन्दं ब्रह्म (शु० ३।६।२८) ब्रह्म की अलंकार्यता का प्रतिपादन भी विविध प्रकार से किया गया है। उदाहरण के लिए हम मुण्डकोपनिषद् का यह अक्षरार्थ ले सकते हैं—ब्रह्म हमारे धाम्ने है, ब्रह्म हमारे पीछे है, ब्रह्म हमारे बायीं ओर है तथा दायीं ओर है। वही ऊपर है वही नीचे भी है वही भेदातिभेद है<sup>४</sup>।

७—प्रतीकात्मक—उपनिषदों में हमें ब्रह्म के बहुत से प्रतीकात्मक वर्णन भी मिलते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्ग्यबालाक्री ने अजातशत्रु को ब्रह्म का उपदेश आदित्य पन्द्र विद्युत् आकाश वायु अग्नि जल आदि प्रतीका के सहारे किया है।<sup>५</sup> इन प्रकार के अतिरिक्त उपनिषदों में ब्रह्म वर्णन के और भी अनेक प्रकार दूँडे का सकते हैं। परबर्ती दार्शनिक विचारधाराओं में ब्रह्म वर्णन की ये विविध प्रयासियाँ सर्वत्र अस्नाई गई हैं। हिंदी की निर्गुण काव्यनाय के कवियों ने उन्हें ज्यों का त्यों ग्रहण किया था। यह अस्त उनके दार्शनिक विचारों के वर्णन की तुलना से स्पष्ट हो जायगी। यहाँ पर स्मरण रखना चाहिए कि ब्रह्म शब्द ही यह समस्त वर्णन अनुभूति मूलक है सर्वमूलक नहीं। उपनिषदों के द्वारा अस्पात्मवेत्त में तक की अप्रतिष्ठ मानते थे—‘नैषमाति तर्कैश्च आम्नीया’ ब्रह्म का कठोपनिषद्कार ने स्पष्ट ही तर्क का विरोध किया है। उपनिषदों में हमें माया संबंधी बयान भी मिलते हैं जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं। उपनिषदों में सर्वत्रम्प हतका उल्लेख श्वेतारवण<sup>६</sup> उपनिषद् में मिलता है। यहाँ पर हठका प्रयोग नामरूप के लिए किया गया है। नामरूप शब्द का प्रयोग

<sup>१</sup> सुब्रह्मोपनिषद् २।१।७

<sup>२</sup> श्वेतारवण ५।८

<sup>३</sup> अकारनिषद् २।१।१३

<sup>४</sup> सुब्रह्मोपनिषद् २।१।११

<sup>५</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् २।१

<sup>६</sup> अकारनिषद् २।१।६

<sup>७</sup> श्वेतारवण ३।१०

माया के ही अर्थ में ब्रह्मदारस्यकोपनिषद्<sup>१</sup> में किया गया है। उसमें लिखा है कि नाम-रूप स्वयं है। यहाँ पर स्वयं शब्द का प्रयोग अमूर्तत्व से विस्तारवाचक शब्द के लिए किया गया है। अमूर्तत्व के लिए स्वयं कहा गया है। इस प्रकार स्वयं के भी वाक्य रूप एक शब्द और अमूर्त रूप है। दूसरा मामकवात्मक अथवा प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला और मूल रूप में नश्वर। इन्हीं स्वयं और अमूर्त के लिए कुछ उपनिषदों में अविद्या और विद्या शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माया के लिए उपनिषदों में अविद्या शब्द का प्रयोग मिलता है।<sup>२</sup> अविद्या और माया दोनों ही पर्यायवाची से लगते हैं। मुंडक में विद्ये अविद्या कहा गया है, स्पेष्टावतर में उसी को माया।<sup>३</sup>

**जीव**—उपनिषदों में जीव का बर्णन विविध प्रकार से किया गया है। ब्रह्मदारस्यकोपनिषद् में एक स्थल पर प्राण शब्द आत्मा का वाचक है और स्वयं शब्द माया का। अर्थात् जब आत्मा माया से आच्छन्न हो जाती है तभी जीव कहा जाता है। इसे प्रत्यक्ष आत्मा की छाया कहा जाता है। प्रत्यक्ष आत्मा शुद्ध नित्य मुक्त ब्रह्मरूप है। जीव कर्त्ता और भोक्तारूप होता है। मानव शरीर में प्रत्यक्ष आत्मा और जीव दोनों ही निवास करते हैं। जीव का प्रत्यक्ष आत्मा को पहचान लेना ही आत्मदर्शन है। आत्मा का बर्णन ऋग्वेदोपनिषद्<sup>४</sup> में छाया और आवरण के प्रतीक से किया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में यही बात दो पक्षियों के रूप से प्रकट की गई है।<sup>५</sup> दर्शन क्षेत्र में एक ज्ञाता माना जावेगा और दूसरा ज्ञेय। इससे स्पष्ट है कि आत्मा के ही आत्मा का ज्ञान ही संकष्ट है। उपनिषदों का यह सिद्धान्त भारतीय दर्शन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

**सृष्टि**—उपनिषदों में सृष्ट्योत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विचार किये गये हैं। उपनिषदों में ऋग्वेदिक सृष्ट्योत्पत्ति सम्बन्धी विचारों का ही अपने-अपने ढंग पर प्रतिपादन किया गया है। वैश्वीय और ऋग्वेदोपनिषद् में लिखा है कि उस परब्रह्म के हृदय में अनेक होने की इच्छा हुई और उस इच्छा के फलस्वरूप ही सृष्टि का विकास

<sup>१</sup> ब्रह्मदारस्यकोपनिषद्—१।१।३ और २।१।९

<sup>२</sup> श्वेताश्वतर—५।९

<sup>३</sup> श्वेताश्वतर—४।९।१०

<sup>४</sup> ब्रह्मदारस्यकोपनिषद्—१।१।९।१५।१६।१७

<sup>५</sup> ब्रह्मदारस्यकोपनिषद् १।१।९

<sup>६</sup> ऋग्वेदोपनिषद् प्रथम अध्याय ३ ब्रह्मकी १ मंत्र

<sup>७</sup> श्वेताश्वतर ३।९

दृष्टा<sup>१</sup>। उस मूल अद्वैत तत्त्व को विवेक द्वारा कहा गया है, सम्भव में मित्र मित्र उपनिषदों में मित्र मित्र प्रकार की विविधिरुपाएँ प्रकट की गई हैं। वैतरीयोपनिषद् में उस मूल तत्त्व को अस्तु माना गया है<sup>२</sup> और छान्दोग्योपनिषद् में मूल तत्त्व की संज्ञा अस्तु ही गई है। इसी उपनिषद्<sup>३</sup> में एक दूसरे स्थल पर आकाश को ही अस्तु का मूल बताया गया है।<sup>४</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि सृष्टि का पूर्व में मूल तत्त्व से अस्तु आन्ध्रादित<sup>५</sup> या। मैत्रुपनिषद् में उसको तम रूप कहा गया<sup>६</sup> है। कुछ उत्तराखलीन उपनिषदों में सृष्टि विस्तृत के प्रसंग में त्रिवृत्तचक्रण और पंचीचक्रण के सिद्धांतों का भी संकेत किया गया है। इत्येताश्चतस्र उपनिषद् में कहा है 'अबामेक्षं शोहितशुक्लकृष्णांशुः प्रभा सुवमानसि रूपः'<sup>७</sup> अर्थात् सात तेष चक्रद्वय काशे पुष्पी रगां की एक अन्त से मम्मरूपतमक सृष्टि की उत्पत्ति हुई। यहाँ पर प्रत्यक्ष ही त्रिवृत्तचक्रण<sup>८</sup> के सिद्धांत का संकेत किया गया है। इसी प्रकार कुछ उपनिषदों में पंचीचक्रण का वर्णन मिलता है। संक्षेप में उपनिषदों की आध्यात्मिक विचारधारा यही है।

**साधनाएँ—**उपनिषद् में हमें सभी प्रसिद्ध आध्यात्मिक साधनाओं की पर्चा मिलती है। प्रमुख आध्यात्मिक साधनाएँ त्रिचक्र संकेत उपनिषदों में किया गया है। वे इस प्रकार हैं—मन्त्रमार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग।

उपनिषदों में सबसे अधिक पर्चा ज्ञानमार्ग की मिलती है। इसीलिए उन्हें लोग वेद का ज्ञानचंद्र मानते हैं। मुद्गलेयनोपनिषद् में लिखा है कि धीर साधक विज्ञान के द्वारा ही आत्मदर्शन प्राप्त करत है। उपनिषदों में इन्हीं ज्ञानचंद्र की पर्चा विविध विधाओं के रूप में भी मिलती है। इनमें हम ज्ञान और उपासना का विभिन्न स्वरूप मानेंगे। उपनिषदों में बर्णित प्रसिद्ध विचार्य १० हैं। उनके नाम क्रमशः उदगीथ, मनु, उरुधेयन्, भृगु, दीर्घाश्रुत, संपर्ग, पंचाम्नि, शांतिस्व, दहर और मंग हैं।

<sup>१</sup> वैतरीयोपनिषद् २।६

<sup>२</sup> वैतरीयोपनिषद् २।७

<sup>३</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् १।९

<sup>४</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् १।६

<sup>५</sup> बृहदारण्यक १।१।१

<sup>६</sup> मैत्रुपनिषद् ५।२

<sup>७</sup> इत्येताश्चतस्र ५।१

<sup>८</sup> वैतरीय २।१। मन्त्रोपनिषद्—७।८ । बृहदारण्यक—७।७।१ इत्येताश्चतस्र—२।१६



इन<sup>१</sup> ज्ञानप्रधान उपासना मार्गों को हम साधना संबंधी सम्यक् गानने के पक्ष में हैं। इन विद्याओं की छत्रा भी हमें निर्गुण काव्यधारा के कवियों में मिलती है। इनका उल्लेख हम उनके साधना मार्ग वाले प्रकरण में करेंगे। श्वेताश्वतर उपनिषद् में हमें भक्ति या उपासनामार्ग का स्वतंत्र उल्लेख भी मिलता है। इसमें गुह और मगधान् दोनों को भक्ति का उपदेश दिया गया<sup>२</sup> है। उपनिषदों में योग साधन की चर्चा भी कम नहीं मिलती। ऋग्वेद-संनम को ही योग कहकर योग-संबंधी चर्चा में उदाहरण को सबसे अधिक महत्त्व दे दिया गया है। उर्वी उपनिषद् में एक वृत्त स्वप्न पर मयवान् की प्राप्ति अस्मात्मयोग के द्वारा ही बतलाई गई है। उपनिषदों में योग साधना के अंगों का उल्लेख मिलता ही है। उनमें विविध प्रकार की रहस्यमयी यौगिक अनुभूतियों का भी वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए हम श्वेताश्वतर उपनिषद् की वह ठकें से सक्त हैं।

नीहार घूर्माकनिष्ठांनिष्ठांनानां लघोत् विशुत्स्फटिक शरिणाम्।

पतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मस्यमिष्यन्ति कदाचि<sup>३</sup> ॥

अर्थात् योग साधन करने पर उक्त ब्रह्म की अनुभूति नीहार घूम एवं अग्नि वायु बुध्नी विष्वक्नी स्फटिक और चन्द्र के रूप में हुआ करती है। इसी प्रकार भव्येन्द्रिय से संबंधित अनुभूतियाँ भी मिलती हैं। बृहदारण्यकउपनिषद् में ब्रह्मानुभूतियों का वर्णन देखिए किन्तु रहस्यमय शब्दों में किया गया है शब्द पचनक्रिया और मोहन क्रिया का परिचय है कोई भी मनुष्य इसे अपनी भाँति बंद करके सुन सकता है। किंतु वह मनुष्य मरने लगता है। वह वह प्निषों नहीं सुन पाता।<sup>४</sup> मुद्गलेपनिषद् में किया गया श्लोक्तिस्वरूपी ब्रह्म का वर्णन भी बड़ा ही रहस्यमय है—हिरण्यमय लण्ड कोप पर निष्कल ब्रह्म, जो श्लोक्तियों में श्रेष्ठ श्लोक्ति है, विराजमान मग्नम पड़ता है। अस्मत्प्रतीति हाग इसकी अनुभूति करते<sup>५</sup> हैं। इस प्रकार के रहस्यानुभूतिपरक वर्णनों से उपनिषद् भरे पड़े हैं। हिन्दी के निर्गुण काव्यधारा के कवियों ने उपनिषदिक रहस्यानुभूतियों की मूर्तों को अपने ढंग पर सजाई है। उनके रहस्यवाद का विवेचन करते समय यह बात स्पष्ट कर दी जायेगी।

<sup>१</sup> इन विद्याओं के ससिद्ध विवरण के लिए देखिए कबीर और जाबसी का रहस्यवाद का० गोविन्द विद्यावाचन पृ ११ से ११ तक।

<sup>२</sup> श्वेताश्वतर उपनिषद्—४।१।३

<sup>३</sup> श्वेताश्वतर उपनिषद् २।१७

<sup>४</sup> बृहदारण्यक उपनिषद् ५।१।१

<sup>५</sup> मुद्गलेपनिषद् २।१।६

उपनिषदों का प्रणवयोग भी विचारणीय है। संतों में बिना शब्द सुरति का भी प्रतिष्ठा मिलती है उद्यमि आचारभूमि उपनिषदों का प्रणवयोग ही है। उपनिषदों का प्रणवयोग का स्वरूप मुद्गालनिषद् के इस श्लोक से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है—

प्रणवो धनु शरोऽह्यात्मा ब्रह्म तस्करयमुच्यते ।  
अप्रमतेन वेद्मह्यं शरवस्तन्मयो भवत्<sup>१</sup> ॥

अर्थात् प्रणव धनुष है। आत्मा शर है। ब्रह्म सत्य है। जो अप्रमत्त होकर इस सत्य का वेधन करता है उसकी आत्मा ब्रह्म में प्रविष्ट होकर तद्रूप हो जाती है। संतों ने अपने शब्द सुरति नाम में ब्रह्म के स्थान पर शब्द ब्रह्म और आत्मा के स्थान पर सुरति और प्रणव के स्थान पर नाम स्वरूप अपनाया है।

उपनिषदों का दृष्टिकोण निवृत्त्यत्मक ही था। उनमें सर्वत्र ज्ञान वैराग्य और त्याग की महिमा का संकलन किया गया है। कनोपनिषद्<sup>२</sup> का इन्द्रियों को अन्तमुन्नी करने का उद्देश स्पष्ट रूप से वैराग्य का ही संदेश दे रहा है। जब तक इन्द्रियाँ अन्तर्मत्वा नहीं होती तब तक पूर्ण वैराग्य का उदय नहीं होता।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त भौत-दर्शन की धार भी अनेक छाटी-माटी विशेषताएँ हैं। उनमें से बिन-बिन विशेषताओं ने संता का प्रभावित किया है उनका भी यथास्थान उल्लेख किया जायगा।

### निर्गुण काव्यधारा पर श्रौतदर्शन के प्रभाव

संतों में संहिताओं के एकेव्यधी अष्टौत्पाद, रहस्य भावना, विराट् ब्रह्म उग्न एवं सृष्टपात्रादि सम्बन्धा विचित्रताओं की अष्टौ भक्तक मिलती है। एकेव्यधी अष्टौत्पाद की धार संकेत करत हुए संत दरिवा न लिया है—जत्र एव है सब<sup>३</sup> पठ बना रही का का शब्द ने 'दाद् के पूरा नहीं एके अल्प राम<sup>४</sup> लिखकर व्यक्त करने की धारा की है। संहिताओं की रहस्य भावना का भा अष्टौ प्रभाव संतों पर दिव्यार्थ का है। अष्टौत्पाद के प्रकरण में इतना विचार स व्यधीकरण कर दिया गया है। पुरुष सूक्त का विराट् ब्रह्म बगुन लोचनविद्य है। संतों ने इसका अनुगमन किया है। संत वरीर निम्न है—

<sup>१</sup> मुद्गालनिषद् २।४

<sup>२</sup> अष्टौत्पाद २।१।१

<sup>३</sup> इतिहा माग १० ६

<sup>४</sup> शब्द भावना की काशी भाग १ पृ० १७

कोटि सूर जाके परगास कोटि महादेव अरू कबिलास ।  
 दुगा कोटि जाके मईन करै मझकोटि बेह बचपरे ॥

बिंदु प्रकार पुरुष एक ब्रह्म के बिराट् बर्चन के लिए प्रसिद्ध है, उसी प्रकार नासदीय एक की स्थापि सृष्टि सम्बन्धी विविधिकाओं के लिए है। संतों में भी उसी ढंग की विविधिकाएँ मिलती हैं। निरुपम ही उन्हें नासदीय एक से प्रेरणा मिली होगी। सृष्टि के पूर्व की अवस्था का जो बर्चन कबीर ने प्रस्तुत किया है वह नासदीय एक के बर्चन से बहुत प्रभावित प्रतीत होता है। कबीर लिखते हैं—सृष्टि<sup>१</sup> के पूर्व केवल आत्मा मात्र ही था। उस समय पवन, बल आदि पंच तत्व न थे। उस समय सृष्टि का विकास भी नहीं हो पाया था। मानव शरीर की रचना भी नहीं हुई थी। आकाशादि का अस्तित्व भी न था। इसी प्रकार संत बाबू ने भी एक स्थल पर लिखा है—इस प्रकृति का रहस्य समझ में नहीं आता। उसके स्वरूप और तत्त्व स्थानों का ज्ञान किसी को भी नहीं है। उसी से बल और समीर आदि तत्व निर्मित हुए हैं। पृथ्वी और आकाश भी उसी से प्रार्जुभूत हुए हैं। इनके अतिरिक्त संतों की धारणाओं पर और भी बहुत से प्रसिद्ध सन्तों की श्रामा दिखाई पकती है। इन सब का ज्ञान उन्होंने बहुमुठ होने के माते ही प्राप्त किया था।

संदिताओं की अपेक्षा संतों की विचारधारा पर उपनिषदों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। यदि इत विषय का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो एक नई सीखित तैयार हो सकती है नहीं पर स्थूल प्रमात्रों का ही निर्देश कर रहे हैं।

उपनिषदों का बर्चन आत्मवादी है। उसमें आत्मा का ही विवेचन किया गया है। उसी के ज्ञान की प्राप्ति की विद्याया प्रकृत की गई है। उनका प्रमुख लक्ष्य आत्म स्वस्म निरूपण करना और उसकी अनुसृति करना ही था। इन्द्रावरुणकोपनिषद् के 'आत्मा वाअरेण्यन्माभोतन्मा निदिष्यासतस्या' उक्ति से उपनिषद् साहित्य का कौन सा विद्वान् परिचित नहीं है। उपनिषदों के लक्ष्य योग से संत लोग भी पूर्णतया प्रभावित हुए थे। उन्होंने भी आत्मसाधन अथवात्म जितन का ही अपने ध्यान का लक्ष्य बनाया था। संत परमदास ने संतों के जीवन का लक्ष्य प्रकृत करते हुए

<sup>१</sup> कबीर प्रभाषणी पृ० २७८

<sup>२</sup> यह नहीं होत पवन नहीं पानी

अहं नहीं हीती सृष्टि ।

बह नहीं होते पवत वास

अहं नहीं धरनि आकास ॥ इन्द्रादि । कबीर प्रभाषणी पृ २१८ ।

लिया है—संतों का अण्वात्म विद्या का ही पठन-पाठन करना चाहिए और मगवान् के प्यान में निमग्न रहना चाहिए ।

सद्यः साम्य होने के कारण संतों की विचारभारा उपनिषदों की गुरुशिष्य अभिचारित्व, ज्ञानवैराग्य की स्वीकृति, आप्यात्मिक अद्वैतवाद, ब्रह्म निर्मपण्य, आप्त निरुपण्य, मुक्ति धारणा, साधना पद्धति, सदाचार प्रवणता, विद में आत्मा और परमत्मा के अस्तित्व की कल्पना, प्रवणपाद, ब्रह्मान्तरपाद, श्रीसिद्धांत, रहस्यभावना आदि विविध बातों का प्रमाण दिखाई देता है । शिष्य के अभिचारित्व पर तो सभी पक्ष देते हैं । संतों ने उपनिषदों से प्रभावित होकर गुरु के अभिचारित्व को भी अपचित्व कल्पाया है । दरियासाहब ने लिखा है—सद्गुरु सोइ जो सत्त पलावे<sup>१</sup> । उपनिषदों की विचारधारा निवृत्तिमार्गी है । इसीलिए उनमें ज्ञान और वैराग्य पर विशेष बल दिया गया है । निवृत्तिमार्गी विचारधारा से संत लाग भी प्रभावित हुए थे । इसी लिए उन्होंने भी ज्ञान वैराग्य को महत्त्व दिया है । दरियासाहब ज्ञान को महत्त्व देते हुए कहते हैं—आत्मवदरसन ज्ञान जो जाने तबहि लोक पयाना टयने<sup>२</sup> । मुक्तिसाधना में ज्ञान के लक्ष्य ही वैराग्य का भी महत्त्व माना गया है । संत पण्ड ने देखिए किनने मपुर शब्दों में वैराग्य का महत्त्व प्रतिपादित किया है—

पहल ससार से तोरि आये  
सब बात पिवा की पूछिण जो<sup>३</sup> ।

उपनिषदों का प्रसिद्ध प्रतिपादन आप्यात्मिक अद्वैतवाद है । संतों ने जहाँ संस्थाओं के अन्तर्गत अद्वैतवाद का स्वीकार किया है वहीं उपनिषदों के आप्यात्मिक अद्वैतवाद का प्रतिपादन भी किया है । संत दरिया ने त्रितयी अभिष्पक्ति—अद्वैतब्रह्म बट प्यानक<sup>४</sup> कहकर भी है । उसी क्र संकेत कबीर ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—तामिक तनक लनक में तामिक सब घट रखा समार<sup>५</sup> । उपनिषदों

कारि कुरल मगी न जाइ

कहने उपमे कहीं समार<sup>६</sup> ।

बानि गगन अनि जाव न जार्नी

बद लर कावा प्राय अकास ॥ इत्यादि—दादू बाणी भाग २ पृ० २२

<sup>१</sup> ज्ञानम विद्या पद पदार्थ परमाणु का स्थान धर्माय ॥ संतबाणी समग्र भाग २ पृ० १७१

<sup>२</sup> दरिया सागर पृ० ५ ।

<sup>३</sup> दरिया सागर पृ० १५ ।

<sup>४</sup> संतबाणी समग्र भाग २ पृ० २६

<sup>५</sup> दरिया साहब के पुन हुन पर पृ० ४६ ।

<sup>६</sup> कबीर प्रभाषणी पृ० १०४ ।

के अद्यतनत्व का भी पूरा-पूरा प्रमाण संतों पर दिखाई पड़ता है। अद्यतनत्व में जितनी शक्तियों का प्रयोग उपनिषदों में किया गया है संतों में वे सब पाई जाती हैं। अद्यतनत्व के प्रसंग में इस प्रमाण का स्पष्ट और विस्तृत संकेत किया गया है।

उपनिषदों की धारणा पद्धति की छाया भी संतों पर टूटी जा सकती है। उपनिषदों में ज्ञानमक्ति और योग वीनों धारणाओं का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup> संतों ने वीनों को ही महत्त्व दिया है<sup>२</sup>। वीनों के महत्त्व का संकेत करते हुए संत चरनदास ने लिखा है<sup>३</sup>—साधनरूपी वृक्ष की मूल मक्ति, शाखा योग, और ज्ञान फल है। उपनिषदों के सरल और सदाचारपूर्ण जीवन से संत लोग पूर्णरूप से प्रभावित हुए थे। उन्होंने सर्वत्र सरल और सदाचारपूर्ण जीवन पर बल दिया है—

कई शत्रु मोहि अपरख भारी हृदय कपट क्यों मिले सुररी<sup>४</sup>।

उपनिषदों का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत पिबदरव जीवनत्व और ब्रह्मत्व का निरूपण है। ऋग्वेदोपनिषद् में छाया और आत्म के म्यात्र से तथा सुबहक और श्वेतारण्य में दो पक्षियों के रूपों से इन्हीं का वर्णन किया गया है। संत लोग इस सिद्धांत से भी पूर्णतया प्रभावित हुए थे। उनकी सुरति और निरति सम्बन्धी धारणा इसी सिद्धांत पर आधारित है। इस बात का स्पष्टीकरण शम्भु सुरतिबोध के प्रसंग में किया जाएगा। इसी प्रकार उपनिषदों में ब्रह्मास्त्रवाद, प्रत्ययवाद, एवं कर्मवाद आदि अनेक उपनिषदिक सिद्धांतों का भी प्रमाण संतों पर टूटा जा सकता है। कहीं कहीं तो संतों ने उपनिषदों के शब्दों का अनुवाद तक करके रस दिया है। जैसे मुक्तिवाक्य 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' का अनुवाद करते हुए शम्भु ने लिखा है—शम्भु आये ब्रह्म को ब्रह्म उठिला होब<sup>५</sup>। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि भौतदर्शन संतों की विचारधारा में प्रबलत्व से प्रतिष्ठित है।

## वैष्णव धर्म और निर्गुण काव्यधारा

स्वस्म और सिद्धांत विवेचना—सम्पुग में वैष्णव धर्म का बहुत अधिक प्रचार

<sup>१</sup> वही।

<sup>२</sup> वही।

<sup>३</sup> मेरे सद्गुरु देवत बसंत आकी महिमा गावत संत।

ज्ञान विवेक के होने तक कई शाला भीम चस भक्तिरूप ॥ संतशास्त्री संग्रह पृ १०१ भाग २

<sup>४</sup> शत्रु बानी भाग २ पृ० १३८।

<sup>५</sup> शत्रु बानी भाग २ पृ० ८५।

और प्रसार था। अन्य धर्मों की अपेक्षा समाज में इतनी प्रतिष्ठा भी अधिक थी इतनी सरलता, सात्विकता और स्वाबहारिकता ने इसे बहुत अधिक लोकप्रिय बना दिया था। इतनी सात्विकता पर संत लोग भी मुग्ध थे। इसीलिए उन्होंने बहुत से स्थानों पर इसके प्रति भद्रात्मन्मान<sup>१</sup> प्रकट किये हैं। वैश्याओं की अभिधराय बार्ते संतों की बलि के अनुकूल थीं। हाँ उस धर्म की आचार प्रपानता उन्हें मिय नहीं लगती थी। फिर भी वे उनसे प्रभावित थे। उन्होंने उनके आचारों का इसीलिए मानसीकरण किया है। इस मानसीकरण प्रक्रिया पर हम धर्म प्रकरण में विचार करेंगे। यहाँ हम वैश्य धर्म के ऐतिहासिक विकास पर और उसके प्रमुख तत्त्वों तथा संतों पर पढ़े हुए उन तत्त्वों के प्रमाणों का निर्देशमात्र करेंगे।

वैश्य धर्म सामान्यतया वामुदेव मातृयण एचमिक पांचरत्र तात्व और भस्मिभार्मा आदि विविध नामों से प्रसिद्ध<sup>२</sup> हैं। वैश्य शब्द का प्रयोग हमें वैश्वीय संहिता<sup>३</sup> ब्राह्मणेयी संहिता<sup>४</sup> एतरेय<sup>५</sup> ब्राह्मण शतपथब्राह्मण<sup>६</sup> आदि मान्योन ग्रंथों में मिलता है। इसी प्रकार भागवत शब्द का प्रयोग भी हमें ऋग्वेद<sup>७</sup> और अथर्ववेद<sup>८</sup> तक में मिलता है। वामुदेव का उल्लेख पदकनालक,<sup>९</sup> महामारत<sup>१०</sup>, पाणिनी<sup>११</sup>, और पर्वबलि<sup>१२</sup> आदि में किया गया है। पांचरत्र शब्द की जर्वा भी शतपथब्राह्मण में की गई है। वैश्वीय<sup>१३</sup> आरस्यक महामारत<sup>१४</sup> मनुस्मृति<sup>१५</sup> और अप्याप्यायी<sup>१६</sup>

<sup>१</sup> संत मुपासाह खबह १ पृ० ६२० प कि १८

<sup>२</sup> गीता रहस्य—तिरुक्क पृ० ५३९-५५८ (१६१०)

<sup>३</sup> वैश्वीय संहिता ५।६।६

<sup>४</sup> ब्राह्मणेयी संहिता ५।२१

<sup>५</sup> ऐतरेयब्राह्मण ३।३८

<sup>६</sup> शतपथब्राह्मण १।१।१३

<sup>७</sup> ऋग्वेद १।१६।३।४०

<sup>८</sup> अथर्ववेद १।१०।१२

<sup>९</sup> जानक—२० हिस्ती आक इदियन किनासकी दास गुता भाग २ पृ० ५४२

<sup>१०</sup> महामारत हिस्ती आक इदियन किनासकी भा० २ पृ० ५४४ दास गुता ।

<sup>११</sup> पाणिनि ३।३।६८

<sup>१२</sup> भागवत संग्रहाय ४० उपाख्याय पृ० ४९

<sup>१३</sup> वैश्वीय आरस्यक १०।१।६

<sup>१४</sup> महामारत ५।२५।६८

<sup>१५</sup> मनुस्मृति १।१०

<sup>१६</sup> पाणिनी ३।३।६६

में हमें नारायण शब्द की व्याख्या भी मिलती है। इन उल्लेखों के आधार पर यह कर्म अत्यधिक प्राचीन कहा जा सकता है। यदि इस मत को मान्य न भी माना जाय और विपक्षियों की यह बात स्वीकार भी कर ली जाय कि वैष्णव नारायण पांचरात्र वासुदेव आदि शब्दों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में स्वतंत्र रूप से किया गया है। वे किसी स्वतंत्र कर्म सम्प्रदाय के चोख नहीं हैं फिर भी 'पोद्गुडी और बेसनगर' के शिष्टा लेखों तथा पतंजलि और कैनट के द्वारा दी गई वासुदेव शब्द की व्याख्या और निरुद्ध नामक पालीग्रंथ में किये गये उल्लेखों से इस कर्म की प्राचीनता निर्दिष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती है। हमारी समझ में वैष्णव कर्म उतना ही प्राचीन है जितना कि श्रुतवेद। श्रुतवेद में ५ व स्रुतों में विष्णु देवता की स्तुति की गई है। इनमें प्रथम मंडल का १५४ वाँ सूक्त विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस सूक्त में विष्णु के उन गुणों पर बड़ा विचार किया है जो उन्हें अधिक मानवोपयोगी देवता बनाने में समर्थ हुए हैं। उन गुणों में अद्वितीय पराक्रम, अश्वत्थार चारणा शक्ति, मातुर्ब्रह्म, विश्व धारणा शक्ति, मनुष्यों के पोषण की शक्ति, विश्ववंपुत्र, अमीष्ट भयंकरता, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन गुणों के होते हुए भी विष्णु श्रुतवेद में प्रधान देवताओं की श्रेणी में नहीं आ पाये हैं। किंतु परवर्ती संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में उनके व्यक्तित्व का विशेष विकास हुआ और वे प्रधान देवता के रूप में पूजे जाने लगे। वैचरीय संहिता<sup>१</sup> ब्राह्मणेय संहिता<sup>२</sup> अथर्ववेद<sup>३</sup> तथा ऐतरेय<sup>४</sup> ब्राह्मण में कई स्थलों पर विष्णु श्रेष्ठतम और प्रधानतम देवता कहे गये हैं। उदाहरण के लिए हम ऐतरेय ब्राह्मण की यह उक्ति से उक्तो हैं—अग्नि उत्तम देवता है—विष्णु परम देवता है अन्य देवता इनके बीच में आते हैं।

विष्णु के स्थान पर 'शनी-शनी' वासुदेव नारायण भगवत कृष्णहरि आदि नामों की प्रकृति बढ़ने लगी। वासुदेव संभवतः बादव काल के कोई उपास्य देवता थे। जब यह काल ब्राह्मण धर्म में दीक्षित हुई उस समय ब्राह्मणों को उस काल

<sup>१</sup> पृ० हिंदी भाषा इतिहास विकासकी भाग २ पृ० ३३८ वासुदेव ।

<sup>२</sup> भागवत सम्प्रदाय ब्रह्मवेद अथर्ववेद पृ० ६१ ।

<sup>३</sup> रामगोविन्द त्रिवेदी स्रुत ब्रह्मवेद का हिन्दी अनुवाद पृ० ५३ भाग १ ।

<sup>४</sup> वैदिक शिखर मैकडानेस पृ० ३० से० १६५४ ।

<sup>५</sup> वैचरीय संहिता १।७।५।४

<sup>६</sup> ब्राह्मणेय संहिता—१।१।१।१।८

<sup>७</sup> अथर्ववेद—५।२६।०

पुनर्वच ब्राह्मण १।१

<sup>८</sup> अग्निर्ब्रह्म देवानामममो विष्णुः परम तदन्तरेय सर्वा अग्न्या देवताः ऐतरेय १।१

के देवता वासुदेव का विष्णु या नारायण के समकक्ष स्थान देना पड़ा। तैत्तरीय आरण्यक में विष्णु नारायण और वासुदेव का एक ही बताया गया है। आगे<sup>१</sup> बभ्रु पादक आदि के महापुरुष कृष्ण और वासुदेव का एकीकरण हो गया। एक स्वल्प वासुदेव कृष्ण विष्णु का अनन्तार माने जाने लगे। प्राचीन साहित्य में हमें तीन कृष्ण मिलते हैं एक काई कृष्ण श्रुति व। यह श्रुत्येव क अष्टम मंडल के पाहचरवें सूक्त के द्वा प्रदे गये हैं। दूसरे कृष्ण अगिरस वे इनका उल्लेख महाभारत में किया गया है। तीसरे कृष्ण का उल्लेख क्षान्दोम्बोरनियर में देवकी पुत्र कहकर किया गया है। विद्वानों की धारणा है कि महाभारत युग में वे तीनों ही कृष्ण मिस्रकर एक हो गये व।<sup>२</sup> जब काश्यप कृष्ण का सात्वत आदि के उपास्य देवता वासुदेव से सामंजस्य स्थापित हुआ और वासुदेव प्राचीन वैष्णव धर्म में प्रतिष्ठित हो गये, उस समय सात्वत आदि द्वारा स्वीकृत वैष्णव धर्म सात्वत धर्म के नाम से अभिहित किया जाना लगा। सात्वत एक प्राचीन आदि है। यतपम और ऐतरेय ब्राह्मणों में इनका उल्लेख मिलता है।<sup>३</sup> सात्वत आदि से कुछ क्षत्रिय दक्षिण में भी आकर बस गये व। उनका नाम उनका धर्म भी गया। दक्षिण में वैष्णव धर्म को ब्रह्म देवता निश्चित करने का श्रेय इन्हीं क्षत्रियों को दिया जाना चाहिए। इन्हीं की प्रेरणा से आसुरार मन्त्रों में कृष्ण मन्त्र का प्रचार हुआ होगा।

महाभारत में वैष्णव धर्म के सात्वत अभिधान की व्याख्या दूसरे ही प्रकार से की गई है। उसमें लिखा है कि संकयस ने वासुदेव पूजा में सम्भव विधि का उपयाम किया था। इसीलिए वासुदेव धर्म सात्वत धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो गया। मध्ययुग<sup>४</sup> के अत्यन्त दार्शनिक यमुनापार्वी का मंत्र कुक्ष और ही है। उन्होंने लिखा है कि जो लोग सात्विक ऋग से भगवान् की पूजा करते हैं उन्हीं का सात्वत या भागवत कहा जाता है। ज़ा भी दो इतना निश्चिन्त है कि सात्वत धर्म का प्रचार विशेष रूप से सात्वत आदि में ही था। पण्यदिना में सात्वत धर्म को वैष्णव धर्म का एक प्रकार कहा गया है। इससे प्रकट है कि सात्वत धर्म का प्रचार कुछ सीमित स्थल और सीमित व्यक्तियों में ही था।

<sup>१</sup> तैत्तरीय आरण्यक क द्वायम प्रपाठक में विष्णु गणेशी देविय इह प्रकार है—

नारायण विश्वं वासुदेवाव श्रीमदि

नमो विष्णुः प्रचोदवात्

<sup>२</sup> ५ दिग्दी काक इतिहसन चिनामकी भाग २ पृ० ५७० पृ० ५४५

<sup>३</sup> भागवत् साप्रदाय—वासुदेव उपाख्याय पृ० १०५।

<sup>४</sup> वही

<sup>५</sup> ५ दिग्दी काक इतिहसन चिनामकी भाग २ पृ० ५७२ पृ० ५७० पृ० द्वायम गुप्त



कैवल्य धर्म का एक प्राचीन नाम पांचरात्र धर्म भी है। पांचरात्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हमें सतपथ<sup>१</sup> ब्राह्मण में मिलता है। उसमें लिखा है कि मातृपथ पुरुष ने पांचरात्र पत्र किया था। इस अर्थ में माराक्य और पांचरात्र दोनों ही शब्द विचारणीय हैं। प्राचीन ग्रन्थों में नाट्यक्य शब्द की व्याख्या और धर्म के सम्बन्ध में स्पष्टता दिखाई पड़ता है। वैश्वदेव आरम्भक<sup>२</sup> में मातृपथ को बभ्रुदेव का पर्यायवाची माना गया है। महाभारत में नाट्यक्य<sup>३</sup> मानवों के शरणागतता देवाधिदेव कहे गये हैं। मनु ने नाट्यक्य<sup>४</sup> को नरो का ध्यान वा निवास केन्द्र कहा है। महाभारत में एक वृत्ते स्मरत पर नाट्यक्य नाम के एक ऋषि का उल्लेख किया गया है। वह भागवत् धर्म के मूल ऋषि थे। नारद ने भागवत् धर्म का ज्ञान इन्हीं से प्राप्त किया था।<sup>५</sup> हमारी धारणा है कि नाट्यक्य नाम के कोई ऋषि ही थे। उन्होंने कैवल्य धर्म के विकास में बहुत बड़ा योग दिया था। अतः कैवल्य धर्म उनके नाम पर नाट्यक्य धर्म भी पुकार जाने लगा।

कैवल्य धर्म की एक प्राचीन संज्ञा पांचरात्र भी है। इस शाखा का बह्य और विकास कम हुआ वह निश्चयपूर्वक बताया नहीं है।<sup>६</sup> इसका प्रथम विलुप्त विवेचन हमें महाभारत के शान्ति पर्व के नाट्यक्यविशेषज्ञान में मिलता<sup>७</sup> है। इस उपाख्यान का रचनाकाल ए० स० के० आर्यगर साहब ने तथा डा० मंडारकर ने भगवान् बुद्ध के पूर्व ही निश्चित किया<sup>८</sup> है। इस आधार पर पांचरात्र का उद्भवकाल हम भगवान् बुद्ध के पूर्व पाँचवीं या छठीं शताब्दी ई० पूर्व निश्चित कर सकते हैं। पांचरात्र शब्द की व्याख्या महाभारत नारदपांचरात्र अर्हिसुब्रह्म संहिता ईश्वर संहिता पाण्ड्य विष्णु संहिता आदि कई ग्रंथों में की गई है। महाभारत में लिखा है कि ऋषि वेद और वाङ्मय योग दर्शन के समावेश के कारण कैवल्य धर्म या नाट्यक्य धर्म के लिए पांचरात्र शब्द का प्रयोग किया जाने लगा<sup>९</sup>। नारद पांचरात्र के अनुसार परमस्वरुप मुक्ति मुक्ति योग तथा विषय इन पाँच तत्त्वों के निरूपण के कारण इस धर्म को

<sup>१</sup> सतपथ ब्राह्मण १३।६।१

<sup>२</sup> वैश्वदेव आरम्भक १०।१।६

<sup>३</sup> महाभारत ५।१५६८

<sup>४</sup> मनुस्मृति १।१

<sup>५</sup> महाभारत—शान्ति पर्व ३३१।१०

<sup>६</sup> भागवत् सप्रदाय—बभ्रुदेव उपाख्यान पृ० १००

<sup>७</sup> महाभारत शान्ति पर्व ३३७ से ३५१ अध्याय।

<sup>८</sup> भागवत् सप्रदाय—बभ्रुदेव उपाख्यान पृ० १०२

<sup>९</sup> महाभारत शान्ति पर्व—अध्याय ३३९।

पांचरात्र कथा गवा<sup>१</sup> है। अहिबुद्धन्व संहिता का भी यही मत है<sup>२</sup>। ईश्वर संहिता के अनुसार पांचरात्र वेद की एकायन शाला के पाँच प्रतिनिधि भूमियों के नाम पर रखा है<sup>३</sup>। पादुमर्वच में पांचरात्र की स्थापना दूसरे प्रकार से की गई है। पांचरात्र उक्त धर्म को कहा गया है जिसके आगे पांचशास्त्र भूमिल पढ़ जाते हैं<sup>४</sup>।

पांचरात्र धर्म का सम्बन्ध अग्निधर्म विद्वान् वेद की एकायन शाला से मानते हैं। इस दृष्टि से यह धर्म वैदिक ही हुआ। पांचरात्र धर्म का साहित्य बड़ा विस्तृत है। इस साहित्य से सम्बन्धित लगभग १६ संहिताएँ प्रचलित हो चुकी<sup>५</sup> हैं। इन संहिताओं में पीठधर्म, सप्तधर्म और ब्रह्मस्य विशेष प्रामाणिक मानी जाती<sup>६</sup> हैं। पांचरात्र धर्म में शाप्य का दार्शनिक निरूपण भी किया गया है। ऋतु विशेष बल साधना पद्य पर दिया गया है। आबकल वैश्वधर्म के अन्तर्गत भागवत् धर्म, पांचरात्र धर्म, सालत धर्म, नारायणीय धर्म आदि के सभी उद्य प्रचलित हैं। हमारी समझ में उपर्युक्त सभी वैश्वधर्म के विकास की भिन्न भिन्न स्थितियाँ हैं जिसके कारण प्रत्येक नाम का वैश्वधर्म का पर्यायवाची माना जाने लगा है<sup>७</sup>। वैश्वधर्म या भागवत् धर्म के विकास की प्रियर्शन ने तीन स्थितियाँ मानी<sup>८</sup> हैं। पहली स्थिति में उसने इस धर्म पर शाप्य और योग का प्रभाव दितलाया है। विकास की इस अवस्था का समन चौथी शताब्दी ई० पूर्व तक माना गया है। उनके मतानुसार अपनी पहली अवस्था में यह धर्म ब्राह्मण धर्म से अपना धर्मरूप स्थापित नहीं कर सका था। यह धर्म विघात की दूसरी अवस्था में हुआ था। इनके अनुसार इस सामञ्जस्य का संघट्ट हमें भागवत् गीता में मिलता है। इस दृष्टि से इस धर्म में भागवत् गीता का विशेष महत्व है। ब्राह्मण धर्म से सामञ्जस्य स्थापित कर इस धर्म में अवतारवाद की धारणा महत्व की। अवतारवाद की प्रतिष्ठा हो जाने पर भागवत् धर्म में उगत्य क रूप में किशु के विविध अवतारों की अवतारणा की गई। इसके बाद भागवत् धर्म के विकास की तीसरी अवस्था आती है। इस अवस्था में भक्ति भावना को सबसे अधिक महत्व

<sup>१</sup> नारद पांचरात्र—१।४।३।३

<sup>२</sup> अहिबुद्धन्व संहिता—१।१।१४

<sup>३</sup> ईश्वर संहिता अध्याय ११

<sup>४</sup> पादुमर्वच १

<sup>५</sup> भागवत संग्रहालय १० ११२

<sup>६</sup> बर्ही—१० ११५ ३८

<sup>७</sup> वैदिक साहित्य—४।२।८२

<sup>८</sup> इन्द्राह्नोरीहिका काक रिलीजियस क्वेश्चन एजिन्स भाग २ पृ० ५२९-५५०।

दिवा गया है। महाभारत और भी महाभारत, भागवत धर्म के विचार के इसी अन्त में लिखे गये थे। मियर्सन साहब पांचरात्र धर्म पर प्रकाश डालना शुरू ही गये हैं। जिस समय भागवत के मणि मार्ग पर प्रकाश कट रहा था उसी समय पांचरात्र धर्म अपने विचार की पराकाष्ठा पर पहुँच रहा था। भागवत धर्म और पांचरात्र धर्म वैष्णव धर्म के ही दो मोड़ हैं। अतएव दोनों में सरलता से सामञ्जस स्थापित हो गया। इसी समय मुबारवादी वैष्णव आचार्यों का उदय हुआ। उन्होंने वैष्णव धर्म को अपने ढंग पर परिष्कृत करने की चेष्टा की। बाद के छठे सम्प्रदायों पर इन्हीं का प्रभाव है।

अवतारवाद की भावना बहुत प्राचीन है। श्रुत्येव संहिता एक में इसके बीजाणु मिलते हैं। पुरुष सूक्त में<sup>१</sup> पुरुष का वर्षान पुरुषावतार के रूप में ही किया जान पड़ता है। विष्णु देवता के एक सूक्त में कामनावतार का संकेत किया गया है।<sup>२</sup> ब्राह्मण ग्रंथों में अवतारवाद की भावना अधिक विकसित रूप में दिखाई पड़ती है। ब्राह्मण में षण्ड<sup>३</sup> मत्स्य<sup>४</sup> और कूर्मावतारों<sup>५</sup> की स्पष्ट मन्त्रक दिखाई देती है। षण्ड अवतार का संकेत वैतरीय संहिता<sup>६</sup> में भी किया गया है। कैमनीय ब्राह्मण<sup>७</sup> में हमें कूर्मावतार की ख़ास मिलती है। ब्राह्मण ग्रंथों के बाद अवतारवाद की भावना महाभारत और नीता में उल्लेख होती है। गीता की 'स्वामिभक्ति अवष्टम्भ संभवामि मुगे-मुगे' वाली उक्ति अवतारवाद की ओर ही संकेत कर रही है। आगे चलकर पांचरात्र दर्शन में वह सिद्धान्त रूप में स्वीकार की गई। उस दर्शन के अनुसार अवतार का विनाश करने के लिए भगवान् चार रूपों में अवतार धारण करते हैं। वे क्रमशः ग्युह विभव अर्चावतार और अंतर्गामी हैं। ग्युह के अंतर्गत तीन अवतार माने गये हैं—संक्षेप, मधुन्न और अनिरुद्ध। विभववतार ३८ अवतार माने गये हैं। अर्चावतारों के अंतर्गत मूर्धियाँ ही जाती हैं। अंतर्गामी अवतार का रूप इन्द्रजित वाली पुरुष माना जाता है। वीरशक्ति युग में अवतारवाद की भावना को और भी अधिक बल मिला। वह समाज में पूर्वात्म से प्रतिष्ठित हो गई। १८ पुराणों में से भगवान् के

<sup>१</sup> पुरुष सूक्त श्रुत्येव १।१८

<sup>२</sup> श्रुत्येव १।१५४

<sup>३</sup> छतपथ ब्राह्मण १।४।१।१।११

<sup>४</sup> छतपथ ब्राह्मण १।८।१।१

<sup>५</sup> छतपथ ब्राह्मण ७।५।१।५

<sup>६</sup> वैतरीय संहिता १।२।४।२।१

<sup>७</sup> कैमनीय ब्राह्मण ३।२०९

<sup>८</sup> भागवत संग्रहाण—१२४ १३० की बन्देब उपाध्याय ।

मूर्त्त और अमूर्त्त अथवा सगुण और निगुण दोनों रूपों का वर्णन किया गया है। त्रि<sup>१</sup> महत्त्व निर्गुण रूप का अधिक दिशा गया है। ब्रह्मवेवर्त्त<sup>२</sup> पुराण में कृष्य और यथा श्री लीलाओं का वर्णन किया गया है।<sup>३</sup> यह ही परम देवता माने गये हैं। पद्मपुराण में जैसे ठो कई अवतारों की पत्नी श्री गई है पर सबसे अधिक महत्त्व रामायतार को दिया गया है<sup>४</sup>।

सैन्धव धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भागवत है। भागवत में हमें पुरुषावतार गुणावतार, मन्त्रस्तावतार, ऋष्यावतार, युगावतार आदि विविध प्रकार के अवतारों की पत्नी मिलती है। अवतारवाद को सर्वाधिक मान्यता देते हुए भी भागवत निर्गुण ब्रह्म का महत्त्व को नहीं भूली है। विष्णुपुराण के लक्ष्य इस पुराण में भी निर्गुणरूप को ही परमपद पदा गया है।<sup>५</sup> इस निर्गुण ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार है। देवकी स्तुति करते हुए कहती हैं—हे प्रभु वेद में आरके जिस रूप को अग्र्यत तथा सर्वत्र कारण पदा गया है जो सर्वकारी और ज्योतिस्वरूप है तथा निर्दिष्टर निर्दिशेय क्रियाविहीन उत्तमात्र है वही<sup>६</sup> रूप विष्णु का सन्ना रूप है। यही निर्गुण परमेश्वर पुरुष रूप में अभिम्यक्त हुआ है। यह<sup>७</sup> पुरुष ही आदि अवतार माना जाता है। पुरुष नारायण का ही नामांतर है<sup>८</sup>। पुरुषावतार की भाषना बहुत प्राचीन है। श्वेदे<sup>९</sup> श्वेताश्वतर<sup>१०</sup> उनिपद् मु हकोरनिद्<sup>११</sup> गीता<sup>१२</sup> आदि में बराबर इसका उल्लेख मिलता है। पुरुषावतार के बाद गुणावतार की मान्यता है। भागवत में पुरुषावतार का निर्गुणरूप कड़ा गया है। जब<sup>१३</sup> पत्नी गुण वृष्टि रूप से अलग अवतरित होत हैं तब उन्हें गुणावतार कहते हैं। इस दृष्टि से विष्णु सत्वागुण के, मछा रबोगुण

<sup>१</sup> विष्णुपुराण १।२२।५।५६

<sup>२</sup> विष्णुपुराण १।२२।७१

<sup>३</sup> मध्वरूप पुराण—आनन्दभक्त सस्कृत

<sup>४</sup> ऐनिपद् गीता का पद्मपुराणोंक । प्रख्यातली १९३७ ३५

<sup>५</sup> भागवत २।१।१८

<sup>६</sup> भागवत १०।३।२७

<sup>७</sup> भागवत २।१।७१

<sup>८</sup> भागवत ११।१।६३

<sup>९</sup> अश्वत्थ १०।६०

<sup>१०</sup> श्वेताश्वतर ३।१४।१५।१६

<sup>११</sup> सुब्रह्मवर्त्तनिपद् १।४।६

<sup>१२</sup> गीता ११।१५।३३

<sup>१३</sup> भागवत ११।४।३।

के और सब उभोद्युक्त के अवतार माने गये हैं। इसी प्रकार मन्वंतयज्वतार, युगावतार, स्वर्गावतार आदि की विविध प्रकार से कल्पनाएँ की गई हैं। रामकृत्य आदि कथावतार माने गये हैं। कूर्म, बृहह, वृत्तिह आदि मन्वंतयज्वतार माने जाते हैं। युगावतारों के अंतर्गत ब्रह्म, प्रह्लाद आदि मत्त जाते हैं। स्वर्गावतार के रूप में परमनाम कर्त्तव्य आदि की गणना की जाती है। मगवान् के अवतारों के साथ-साथ मगवान् की शक्ति के अवतारों की भी कल्पना की गई है। लीला, राधा, दुर्गा आदि मगवान् की शक्ति का ही अवतार मानी जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव धर्म में अवतारवाद का बड़ा विचार किया गया है। संतों को उनका यह सिद्धांत मान्य न था।

वैष्णव धर्म में विष्णु और उनके भक्तों के नामों की बड़ी प्रतिष्ठा है। भगवान् विष्णु के सहस्र नाम कहे जाये गये हैं। विष्णुसहस्र नाम को हम उन नामों की शिष्ट मान सकते हैं। संतों को मगवान् के वैष्णवी नाम अति प्रिय थे। उन्होंने अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए हरि, गोविन्द, गोपाल, माधो विश्वम्भर, नन्द, हरि, चरंगपाणि, धर्म, आदि ऐकान्त वैष्णवी अभिधान प्रयुक्त किये हैं। इन छम्ब अभिधानों में उन्हें रामगोविन्द और हरि विशेष प्रिय थे। संतों द्वारा मगवान् के इन वैष्णवी नामों के अपमान को वैष्णव धर्म का ही प्रमाण मानते हैं।

वैष्णव धर्म का प्रायःसर्वत्र उदात्त चरित्र है। महाभारत समावतर्गीता तथा अम्व पुराण ग्रंथों में उदात्त उदात्तार की महिमा प्रतिपादित की गई है। उदात्तार के लिए उदात्त बहूत उदात्तार होती है। महाभारत में लिखा है कि जो पुरुष अपने ही उदात्त दूतों को भी समझता है और बिलने श्रेष्ठ को बलि दिया है वह परलोक में मुक्त पाता है।<sup>१</sup> इसी ग्रंथ में एक दूसरे स्थल पर पुनः लिखा गया है कि दूतों के प्रति ऐसा व्यवहार न करो जो अपने को प्रतिदूत प्रतीत हो। वही उदात्त धर्म और नीतियों का चार है।<sup>२</sup> महाभारत में इन्द्रिय निग्रह पर भी विशेष बल दिया गया है। शक्तिर्ष में एक स्थल पर लिखा है कि इन्द्रिय निग्रह करने धर्म का आधार बनना चाहिए और अपने उदात्त ही अम्व प्राप्ति के प्रति व्यवहार करना चाहिए।<sup>३</sup> इस प्रकार उदात्तार का उदात्त देनेवाली बहूत ही उक्तिवाँ गीता में भी मिलती है। उदात्तार के लिए हम निम्नलिखित उक्ति ले सकते हैं—अम्व श्रेष्ठ और लोभ ये तीनों मरक के द्वार हैं और ये इमाय नाय कल्पेवाले हैं अतएव इमका परित्याग कर देना चाहिए।<sup>४</sup> वैष्णव धर्म में अहिंसा को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। महाभारत

<sup>१</sup> महाभारत अनु १११।३

<sup>२</sup> महाभारत अनु १११।८

<sup>३</sup> महाभारत भाग्य—११८।२९

<sup>४</sup> भगवद्गीता—११।१९

के अहिंसा परमो धर्म<sup>१</sup> वाले मूल मंत्र से कौन नहीं परिचित है। अहिंसा के साथ साथ दान, दया, शक्ति आदि गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। उठमें सत्य की महिमा का प्रतिपादन भी अहिंसा के उद्देश ही किया गया है<sup>२</sup>। शक्तिधर्म की 'नासिद्धत्वात् परोधर्म'<sup>३</sup> वाली उक्ति लोकोपस्थित है<sup>४</sup>। मागधत में सदाचार के महत्त्व का बर्णन कम और नियम के अंतर्गत किया गया है। उठमें यम के १२ भेद माने गये हैं वे क्रमशः अहिंसा अल्पय अर्धम ही असंख्य आस्तिस्य अल्पवर्ष मीन स्वैर्य दाना अमय हैं<sup>५</sup>। नियम के भी १२ भेद बताये गये हैं यथा शीचवाप्य, शीच आम्बुतर, अप, तर, होम, भद्रा, आतिथ्य, मगधर् अर्चन, तीर्थाटन, परार्थिणा, आचार्य सेवा और संताप<sup>६</sup>। इस प्रकार वैष्णव धर्म के ग्रंथों में सर्वत्र सदाचार के कर्तों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

### निर्गुण काव्यपारा पर वैष्णव सिद्धान्तों के प्रभाव

वैष्णव धर्म की सदाचारप्रियता का संतों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था।<sup>७</sup> अहिंसा और सदाचारप्रियता उनकी विचारधारा में प्राथम्य से प्रतिष्ठित दिखाई पड़ती है। सच का यह है कि संत मत की प्राथम्य विशेषता ही यही है। संत दादू ने निम्नलिखित पंक्तियों में सारक्य से संत मत की इस प्राथम्य विशेषता का इस प्रकार संज्ञा किया है<sup>८</sup>—

निर्मल मन मन आत्मा निमल मनसा सार ।  
निर्मल प्राणी पंच करि दादू लंपै पार ॥

इस निर्मलता और साक्षिकता की अभिव्यक्ति संतों में विविध सद्गुणों के आचरण पर बल देकर भी की है। बिन सद्गुणों पर उन्होंने विशेष बल दिया है वे क्रमशः शील, दान, संताप, धीरज, दीनता, दया, शौच, विचार, विवेक, तप, अहिंसा, साधुसेवा आदि हैं। इनका उपाय उनही पानियों में उनके उद्देश मिलते हैं। इनमें भी उन्होंने सबसे अधिक महत्त्व सत्कारण, अहिंसा और साधुसेवा का दिया है। इनमें भी अहिंसा पर विशेष बल दिया गया है। संत मधुच्छदा अहिंसा के महत्त्व की आर संकेत करते हुए

<sup>१</sup> महाभारत ११।१३

<sup>२</sup> महाभारत बल धर्म १८।१।८

<sup>३</sup> महाभारत शक्ति पर १६।१।२४

<sup>४</sup> श्री मधुभागवत—१।१।१।३३

<sup>५</sup> श्री मधुभागवत—१।१।१।३४

<sup>६</sup> इस ऊपर दिया आश है।

<sup>७</sup> दादूदासी भाग १ पृ० ४

लिखते हैं कि जो आत्महत्या करता है वह करोड़ों स्वार्थियों के सदृश होता है<sup>१</sup>। जीव हिंसा के कारण ही वह मच्छली मांस खादि जामे को भी पाप समझत थे। इनको जामे वाले ब्राह्मण के शिष्य नरक के अतिरिक्त और कहीं स्थान ही नहीं मिल सकता। वही बात संत दरिया में निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की है<sup>२</sup>—

मांस मछरि बाछन जो खाई अंतकरक जो समपुर खाई ।

जहाँ तक साधुसेवा की बात है उध पर भी संतों ने कम बल नहीं दिया है। वह साधु बरखों की सेवा को करोड़ों तीर्थाटन के फल के सदृश समझते थे। संत दरिया में इसी को इस प्रकार व्यक्त किया<sup>३</sup> है।

कोटिम तीरथ साधुन के करना ।

बाल्य में संत लोग वैष्णव धर्म की सहायकप्रियता और सात्विकता से बहुत अधिक प्रभावित थे।

— वैष्णवधर्म में जन्मान्तरवाद का सिद्धांत भी मान्य है। बाल्य में यह जन्मवाद ही मान्य हुआ का कारण है। इस युक्त से सुनिश्चित पाने का एक ही उपाय है वह है मंगल-शरणा प्रपत्ति<sup>४</sup> सहजोबाई ने लिखा है<sup>५</sup> जन्म जनम कूटे नहीं बिना तरन भगवंत । प्रपत्ति वैष्णव धर्म का प्राथम्य सिद्धांत माना जाता है। इस दृष्टि से भी हम संतों को वैष्णव धर्म से प्रभावित मानते हैं। वैष्णव धर्म में सबसे अधिक महत्त्व मक्ति को दिया गया है। नारद<sup>६</sup> ने साधु अस्मिन् परम प्रेम रत्ना<sup>७</sup> कहकर वैष्णव मक्ति की परम प्रेमरूपता पर विशेष बल दिया है। वह इस मक्ति को ज्ञान योगादि साधनों से भी अधिक भेदकर मानते थे। संतों ने वैष्णव धर्म के अनुकरण पर मक्ति को ज्ञान साधनों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। और उलझी प्रेम प्रभावता और माध-विशिष्टता पर विशेष बल दिया है। मक्ति को सब साधनों से श्रेष्ठ ठहराते हुए संत सहजोबाई ने लिखा है<sup>८</sup> ।

<sup>१</sup> कपदि क्यार्ई दुख है जो आठम मारि ।

मच्छकदास की बानी पृ० ८

<sup>२</sup> हरिबासागर पृ० ४८

<sup>३</sup> हरिबासागर पृ० २८

<sup>४</sup> श्री महामायावत १।१।२२

<sup>५</sup> सहजोबाई पृ० ३२

<sup>६</sup> नारद भक्तिसूत्र सूत्र २

<sup>७</sup> सहजोबाई की बानी पृ० ३२

### बिना मक्ति योगे सभी जोग लुक्ति आचार

प्रेम भगति और भावभगति का उद्देश्य ता संता ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र दिया है। संत गीताह्व कहते हैं<sup>१</sup>।

निसि दिन प्रेम भगति कर लीजे ।

इसी प्रकार कबीर ने कहा है 'मात्र भगत बिन हरि न अउपा, बियन मज की मियी न बाधा'<sup>२</sup>। इसी प्रकार अन्य संतों ने भी भाव भगति और प्रेम भगति के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। संतों ने वैष्णवों की प्रेम भगति को केवल स्थूलरूप से ही नहीं लिया है बल्कि उन्होंने उसको समस्त विशेषताओं, सूक्ष्मताओं और अंगों का साथ साथ माने की चेष्टा की है। मक्ति विवेचन के प्रसंग में इन प्रभावों का और अधिक सूक्ष्म संकेत किया गया है। यहाँ पर हम केवल इसी बात पर बल देना चाहते हैं कि वैष्णवों की सदाचरणाभिसा और प्रेम भगति ने संतों को अत्यधिक प्रभावित किया है। उन्होंने इन दोनों तत्वों का अपनी विचारधारा का प्रधान अंग बनाया है। दाहू शिलते हैं।

सहजशील स्तोप सत प्रेम भगति ले सार<sup>३</sup> ।

### निर्गुण वाच्यधारा और योगबशिष्ठ दर्शन

योगबशिष्ठ दर्शन के प्रमुख सिद्धांत—दार्शनिक ग्रंथों में योग बशिष्ठ का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।<sup>४</sup> उसका कल्पनावाद का सिद्धांत भारतीय दर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय विचारधारा इस सिद्धांत से बहुत अधिक प्रभावित हुई है। यों तो इस सिद्धांत का धीकारांतरण वेदवेद उपनिषद्<sup>५</sup> में ही मिलता है किन्तु उसके अंकुर शीघ्र महायान धर्म की विविध शाखाओं<sup>६</sup> तथा मज्झि<sup>७</sup> सुदेवगणपार्व<sup>८</sup> आदि वेदान्तियों की रचनाओं में प्रसुरित हुए।

<sup>१</sup> बारी साहब की रत्नावली पृ० १२

<sup>२</sup> कबीर प्रथावली पृ० २४४ बंक्ति ५

<sup>३</sup> दाहू बानी भाग १ पृ० ६५

<sup>४</sup> डॉ० राधाकृष्णन इन दिग्गज का बह भाग की किनासकी भाग की योगबशिष्ठ । पृ० ११५

<sup>५</sup> ऐगिन्द—०५ ब्रह्मण्ड सूत्र—प्रज्ञान ब्रह्म । धर्मवेदोपनिषद् १।३

<sup>६</sup> ऐगिन्द आडरकाहण्ड भाग महायान बुद्धिहर्म—पृ० ६६ सूत्र की ।

<sup>७</sup> काव्य बारीय ३।०

<sup>८</sup> ऐगिन्द भावमोक्षात् १।१८



योगवशिष्ठ में आकर वे ही अंकुर वृक्षाकर में परिवर्त हो गये। अंकुर का मायावाद योगवशिष्ठ के रूपनावादरूपी वृक्ष का ही फल है। भास्व का अधिष्ठाता धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र इसी रूपनावादरूपी वृक्ष की छाया से आच्छन्न है। संत कवि तो पूर्वात्म से उसी की छाया में विभ्रम करते हुए मरीत होते हैं।

योगवशिष्ठ में किस रूपनावाद का प्रतिपादन किया गया है उसको लक्ष नहीं समझ सकते। उस सिद्धांत के समझने का बड़ी अधिकांश ही जो अपने को मायावाद के बाल से मुक्त करने का निश्चय कर लुप्त है।<sup>१</sup> योगवशिष्ठ में अधिष्ठाता की विशेषताओं का उल्लेख बड़े विस्तार से किया गया है। उसके वैराग्य प्रकारण में केवल इसी नियम का विशेषण हुआ है। इस प्रकारण में आचार्य ने राम की मानसिक दशा के चित्रण के बहाने अधिष्ठाता की स्वरूप निर्धारित कर दिया है।<sup>२</sup> संत कवियों की आलोचना करने पर हमें स्पष्ट अनुभव होता है कि साधना के प्रारम्भ में लगभग सभी की वही अवस्था रही है जैसी कि योगवशिष्ठ में उन्मत्त की की चित्रित की गई है।

योगवशिष्ठ के अनुसार वही साधक अर्थात् क्षेत्र में आसक्त हो सकता है जो इस मन्त्र संसार से ऊपर उन्नत है जिसकी आत्मा इत लोक की स्थानि वेदना का सहन करते-करते किसी दूसरे लोक की लाल के लिए न्याकुल हो उठी है।<sup>३</sup> योगवशिष्ठ में साधक की उपर्युक्त मानसिक अवस्था के कारणों तथा उसके दूर करने के उपायों का भी संकेत किया गया है। इत प्रकार की मानसिक अवस्था के उद्घन का मूल कारण वासना, कृप्या, राग<sup>४</sup> और अज्ञान कहा गया है।<sup>५</sup> वासना राग और कृप्या तथा ज्ञान से अज्ञान का निराकरण करके ही साधक बुद्धि से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। और निर्वाण नामक परमसुख को, बिसे प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता लाभ करता<sup>६</sup>

<sup>१</sup> जहाँ बड़ो विमुक्त : स्वामिनि वस्वास्ति विरचयः।

नात्यन्तमज्ञो वे उरुवाः शोऽस्मिन्नात्मे अधिष्ठाता वाग् बो० प० १।२

<sup>२</sup> ऐश्वर्य ही किनासकी आक ही योगवशिष्ठ से० की० पृ० आशेष पृ० ५५०-२०

<sup>३</sup> किनासकी आक योगवशिष्ठ—पृ० ५५५ और पादशास्य किनास दार्शनिक पुस्तके के विचार भी ऐसे ही हैं। ऐश्वर्य इन्द्रोदयज्ञान दु किनासकी पृ० १२५

<sup>४</sup> योगवशिष्ठ—२।१२।१४। किनासकी आक योगवशिष्ठ पृ० २२४

<sup>५</sup> योगवशिष्ठ—१-५-८-१०—किनासकी आक योगवशिष्ठ पृ० १२५ से उद्धृत

<sup>६</sup> संसारतरण अस्तोक्त्यावो लावनेवहि।

तयो दान तदा तीर्थमनुपायाः प्रकीर्तिताः ॥

निर्वाण नाम परमसुख येन पुनर्जन्म।

न जायते न म्रियते तज्ज्ञानादेव सम्मत ॥ ही किनासकी आक योग

वशिष्ठ पृ० १२ से उद्धृत

है। ज्ञान का श्रेष्ठतम रूप आत्मज्ञान कहा गया है। इस आत्मज्ञान<sup>१</sup> की प्राप्ति साधना से संभव है। जो लोग देव से उषस्वी याचना करते हैं उन्हें ज्ञानी प्राप्त नहीं होता। आत्मज्ञान की कामना रखनेवाले को एक विशिष्ट प्रकार का साधना माग्य स गुजरना पड़ता है। इसका उद्देश्य हम आगे करेंगे। यहाँ पर हम पहले कल्पनावाद का व्यापारिक पक्ष का संक्षेप कर देना चाहते हैं।

अभी हम ऊपर योगवशिष्ट के अनुसार आत्मज्ञान प्राप्त को ही साधक का परम लक्ष्य बताया चुका है। इस आत्मज्ञान के प्रमाणों के विवेचन सम्बन्ध में भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं। भौतिक पारवाक्य प्रत्यक्ष को ही एक मात्र प्रमाण मानते हैं। शैक्षों ने प्रत्यक्ष का अतिरिक्त अनुमान को भी प्रमाण माना है। लॉक में प्रत्यक्ष और अनुमान का अतिरिक्त एक तीसरा प्रमाण शब्द माना गया है। नैपथ्यिक लोग उक्तान नामक एक चौथे प्रमाण का भी स्वीकार करते हैं। प्रभाकर मन्त्राचार्य श्रीमन्मोक्षो ने अर्थावृत्ति नामक एक पाँचवें प्रमाण की कल्पना की है। मरूट लोग अनुष्णवि नामक एक छठे प्रमाण मानते हैं। शंकराचार्य इन छहों प्रमाणों में विश्वास करते थे। इन छह का अतिरिक्त प्रमाणों की संख्या निम्न नहीं बढ़नी गई और ऐतिय और परिशेर नामक कई नये प्रमाण बहिस्त किये गए। वागवशिष्ट में इन प्रमाणों में से किसी भी भी बर्षा नहीं मिलती। उनमें तबत अत्रिह महत्त प्रत्यक्ष<sup>२</sup> और अनुभव<sup>३</sup> का दिया गया है। किन्तु यहाँ पर यह मतलब करना चाहिए कि योगवशिष्ट का प्रत्यक्ष पारवाक्यी का प्रत्यक्ष स सर्वथा भिन्न अर्थ लगा है। उनका प्रत्यक्ष बुद्धिवादी है। उसके अर्थ का स्पष्ट करन हुए पञ्चाशद्विचार<sup>४</sup> ने लिखा है कि यह सब अक्षरों का ठार कर दे सब प्रकार का ज्ञान बदना, अनुभूति, प्रतिवधि और संविद् का अन्वय है। यही जीव है यही प्रत्यक्ष रूप है,

<sup>१</sup> भाग्य शर्म विदुशर्म ज्ञानात्मव्याप्ति वाचिनु  
तानि ज्ञानावमासा पारस्वाय वापनात—द्विमासकी आक वागवशिष्ट  
१ १२१।

<sup>२</sup> ही द्विमासकी आक वागवशिष्ट—१० १४४ प्रमाणपत्र अनु में प्रत्यक्ष नाम  
बनात् १४२।१५।

<sup>३</sup> अनुभूति विना तत्र तन्महादेवजिभूक्तने।  
अनुभूति विना रूप भाग्यवृत्तानुभूयत ॥ वा० प० ५।१०।५२।

<sup>४</sup> महाशरामार भाषता करत विदुःशर्म  
रून तन्मनिर्निर्दिष्ट तन्मपत्र सुराहतम। द्विमासकी आक वागवशिष्ट १० १४९  
वा० प० ५।१०।५३ में हम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

वही प्रमाण रूप है, वही अर्थ रूप है। इत प्रकार योगबसिष्ठ का प्रत्यक्ष एक विशेष महत्त्वशास्त्री प्रमाण कहा जा सकता है।

अब हम कल्पनावाद के मूल सिद्धांत पर आते हैं। योगबसिष्ठ में ब्रह्म को केवल बोधनाश<sup>१</sup> वा चिन्मात्र कहा गया है। ब्रह्म की चिन्मात्रता के प्रकाश में ही महर्षि बसिष्ठ ने कल्पनावाद का सिद्धांत स्पष्ट किया है। बसिष्ठ की सारे संसार को कल्पनामात्र मानते थे।<sup>२</sup> वे उसका वास्तविक अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे।<sup>३</sup> उनके मतानुसार संसार मन में ही उत्पन्न होता है और उठी में निवास करता है।<sup>४</sup> मन की प्रकृति ही दोनों लोक का बन्ध होती है।<sup>५</sup> सारा विश्व मन का ही विस्तार है। यह एक दीर्घ और महास्वप्नमात्र है।<sup>६</sup> देव काल इन्द्र सम्राट सब कुछ<sup>७</sup> मन की भावना में ही निवास करते हैं। जिस तरह से स्वप्न बगल व्यक्ति-विशेष की भावना और कल्पना से निर्मित होता है उसी प्रकार यह वास्तव बगल भी भावना या कल्पना विनिर्मित है।<sup>८</sup> संसार की समस्त वस्तुएँ ठीक उसी प्रकार विश्व का विविध रूप कही जा सकती हैं जिस प्रकार पाप बलक्या, उर्मि और फेन आदि बल का ही विविध रूप होते हैं।<sup>९</sup> संज्ञे में एव बगल के सम्बन्ध में बसिष्ठ की यह भी मत है।

बसिष्ठ की कल्पनावादी होते हुए निवृत्तिवादी भी थे। वहाँ पर हम उनके निवृत्तिवाद पर भी कुछ प्रकाश डाल देना चाहते हैं क्योंकि उनके निवृत्तिवाद का प्रभाव संत कवियों पर भी दिखाई पड़ता है। बसिष्ठ की यह कल्पना या कि नियति अपरिवर्तनीय होती है। किन्तु उनके रूप का स्थिरकरण मन के द्वारा होता है। अतएव संशय के अदुस्म ही नियति होती है।<sup>१०</sup> संशय को परिवर्तित करना उक्त नहीं है उसके लिए कठिन साधना की आवश्यकता होती है। इत प्रकार स्पष्ट है कि कठिन

<sup>१</sup> ही त्रिकासकी भाष्य योगबसिष्ठ पृ० १५० और १५१

<sup>२</sup> 'समस्त कल्पना मात्रमित्त्वं' कि नासकी भाष्य को० ब० पृ० १५५

<sup>३</sup> 'विश्व वास्तवेव मनमात्रते' त्रिकासकी भाष्य योगबसिष्ठ पृ० १५५

<sup>४</sup> मनसदि जगत्कस्त्वं—'एकार स्फुरति वासिष्ठ च। को० ब० ४, ४, ११

<sup>५</sup> मनोविबुद्धमन्वसिष्ठ संसार इति संमतम् को० ब० ४, ११, २१

<sup>६</sup> जगद् दीर्घ महास्वप्नः सोऽपमग्नः समुत्थित—ही त्रिकासकी भाष्य को० ब०

पृ० १५६

<sup>७</sup> ही त्रिकासकी भाष्य योगबसिष्ठ पृ० ५५५

<sup>८</sup> ही त्रिकासकी भाष्य योगबसिष्ठ पृ० ५५५

<sup>९</sup> ही कि नासकी भाष्य योगबसिष्ठ पृ० ५५५

<sup>१०</sup> योगबसिष्ठ—३।१२।८ ३।१२।१६

साधना के अन्तर्गत में नियति का रूप नियत और स्थिर ही रहगा। संकल्प साधना पर इसीलिए वशिष्ठ जी ने आशुषिष्ठ आर दिया है। उनके अनुसार मन का चित्त सर्व शक्तिमान है और उसमें सब कुछ करने की क्षमता रहती है। किसी बहूषणना प्रकृत है उसके अनुसार बाह्य क्रिया व्यापार चलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि योगवशिष्ठ के अनुसार मन की साधना या संकल्प ही सब धारा का मूल है। उन्होंने साधना को बहुत अधिक महत्त्व दिया है।

योगवशिष्ठ में साधना मार्ग के रूप में कुशल कुशलनी बोध तथा ज्ञान वाग<sup>४</sup> की बातों की गई है किन्तु उनमें भी सबसे अधिक बल भावना के परिष्कार, बुद्धि का शुद्धता और मन की परिक्रम का दिया गया है।

योगवशिष्ठ में कई स्थानों पर शून्य की विवेचना भी की गई है। ब्रह्म का विचन करन हुए एक स्थान पर लिखा है कि ब्रह्म का हम शून्य नहीं कह सकते हैं क्योंकि प्रलय में तारे निरा की स्थिति उसी में हमों है किन्तु फिर भी वह शून्य का कहा जाता है। शून्य का अर्थ ऐसे स्थानों पर आशय से लिया गया है। शून्य इसीलिए कहते हैं कि यह वाग और विषय अनिष्ट स्वरूपों से परे है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमहत्मा के लिए शून्य का प्रयोग योगवशिष्ठ के समय से ही किया जान लमा था। निगुशिरा क्रियाओं में इसी के अनुकरण पर ब्रह्म के लिए शून्य का प्रयोग किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि योगवशिष्ठ का बुद्धिवादी चरणावादी आरी चरणा माध नहीं है। इसमें सदाचार और योग की गहरी पुष्ट दी गई है जिससे वह पूर्ण व्यावहारिक भी प्रतीत होने लगा है।

### निर्गुण काव्यधारा पर योगवशिष्ठ दर्शन की छाया

धर्मों पर योगवशिष्ठ दर्शन के निम्नलिखित सिद्धान्तों की छाया दिखाई पड़ती है। १—शिव के वाक्य का विचार। २—बालना का निराशय। ३—ब्रह्मावादी। ४—नियतवाद। ५—मातृवाद। ६—शून्यवाद। ७—ब्रह्मवाद।

धर्मों ने धरती रचनाओं में शिव के वाक्य पर विशेष बल दिया है। धर्म पद्धति ने निगा है कि शिव का ज्ञान बहुत शान-विचारकर करना चाहिए। बिना

<sup>१</sup> श्री विद्यावर्धनी आर योगवशिष्ठ पृ० २३६

<sup>२</sup> श्री विद्यावर्धनी आर योगवशिष्ठ पृ० २६६

<sup>३</sup> श्री विद्यावर्धनी आर योगवशिष्ठ पृ० २२४

<sup>४</sup> श्री विद्यावर्धनी आर योगवशिष्ठ पृ० २१०

सोपे-विचारे शिष्य बना देने से गुह पर बहुत मार पड़ जाता है<sup>१</sup>। संत लोग बासना की मयंछटा से भी परिचित थे। उन्होंने इसीलिए सर्वत्र उसके त्याग का उपदेश दिया है। बाबू ने स्पष्ट शिखा है—साधु का चाहिए कि बासनाओं का परि त्याग करके सहज सत्पारख के मार्ग में प्रवृत्त हो<sup>२</sup>। सहजोबाई तो सांख्य-मरलोक के बासना से रहित साधु को सदात् मह ही मानती थी<sup>३</sup>। अरनाबाद भी संतो का प्रिय शिष्य है। संत सुन्दरदास ने उषरी अमिम्बकि बड़े सुन्दर दृष्ट से की है। वे लिखते हैं कि मन<sup>४</sup> के ही भ्रम से यह संसार दिखाई पड़ता है। मन के भ्रम बिहीन हो जाने पर यह विलुप्त हो जाता है। कर्ममार्ग से उदासीन संतो को निपतिवाद का शिष्य भी प्रिय लगता है<sup>५</sup>। बाबू की दृष्टि भारत की मगवान् में जो रच दिया है वह सहज मात्र से त्वयं ही होगा, उसके लिए खुशी होना स्वयं है। संत अरनदास ने भी शिखा है कि जो ज्ञानहार है वह होकर रहेगा कोई उसको भेद नहीं छपता<sup>६</sup>। भावनाबाद की क्रांति भी संतो में दिखाई पड़ती है। संत सुन्दरदास ने स्पष्ट शब्दों में शिखा है कि मनुष्य की दृष्टि वैसी ही होती है जैसा उसका भाव होता है। जब तो वह है कि मनुष्य का व्यक्तित्व ही वैसा होता है जैसा भाव होता है<sup>७</sup>। शून्यवाद और ज्ञानवाद के प्रति भी संतो की अद्वैत आस्था थी। हाँ उन पर योगशिल्प का आस्तिक शून्यवाद का प्रभाव बाबू के इन शब्दों में अनुमानित किया जा सकता है—मानव शून्य से ही प्रादुर्भूत होता है और अन्त में शून्य में ही वह लय का प्राप्त हो जाता है। उठ चेतन शून्य की प्राप्ति सुखी के सहार लय योग के द्वारा ही जाननी

<sup>१</sup> पकड़ शिष्य की कीर्तिप सीमे बूढ़ विचार

विष बूझे मिस करोगे परि है तुम पै भार ३ पकड़ सा की बानी भाग ३ पृ ९०

<sup>२</sup> काम बड़े सहज रहे और शून्य विचारे ३ संत सुभासार पृ० ३३३

<sup>३</sup> सहजोकोक परशोक की नहीं बासना चाहि ।

सो वह ब्रह्म स्वरूप है सागर बहाँ समान ३ सहजोबाई की बानी पृ० २२

<sup>४</sup> मन के ही भ्रम से जगत् यह देखियत

मन ही के भ्रम गप् जगत् यह विज्ञान है ३ सुन्दरदास पृ० १४८

<sup>५</sup> बाबू सहज सहज होबगा जे कुप रचिवा राम ।

बाहे के कर्षण मरे हुली होत पैराम ३ संत सुभासार पृ ३८८

<sup>६</sup> होत सोई जो होनहार है कार्य मेरी जात । अरनदास भाग ३ पृ ३ ।

<sup>७</sup> (क) जैसोई ज्ञानो भाव है सुंदर तैसा ही रग याकि के बीसो सुंदरदास पृ १२१

(ख) सुन्दर जैसोई भाव है आपनो

तैसाइ होव गया वह प्राणी ३ सुंदरदास पृ० १२१

वादिण<sup>१</sup>। इसी प्रकार सुन्दरदास<sup>२</sup> के निम्नलिखित शब्दों में ज्ञानवाद की पूर्ण स्वीकृति दिलाई जाती है। समुद्र के तट पर अनन्त एवं गम्भीर ज्ञान की महिमा का ब्यक्तन नहीं कर सकता। वह समुद्र का समुद्र होता है। उसे लक्षण के तट पर लक्षण नहीं समझना चाहिए। उतर्बुद्ध उदाहरणों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि संतों पर योगवशित दर्शन का भी प्रभाव पड़ा था।

### पद्दर्शन और सतकवि

भारतीय दर्शन क्षेत्र में पद्दर्शनों की बड़ी प्रतिष्ठा है। पद्दर्शनों के नाम क्रमशः योग ब्रह्मन्त मीमांसा स्याप और वैशेषिक है। मध्ययुग में ये दर्शन पद्धतियाँ संतों का वाग्विलास मात्र थीं। सामान्य जनता में इनका प्रचार न था। इनमें भी सबसे अधिक प्रतिष्ठा वेदान्त की थी। विविध परम प्रतिष्ठा सम्पन्न आचार्यों की विवेचना का विषय होने के कारण हरिदोष भद्र से इसकी भी कई शाल्पार्थ प्रशाम्पार्थ प्रस्तुति हुई। इनमें अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत विद्यमान स्थूलनीय हैं। अद्वैत भी कई प्रकार के हैं। सत्त्वाद्वैत, रज्ज्वाद्वैत, विज्ञानाद्वैत, शिवाद्वैत आदि। केनला केनलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैतवाद आदि सत्त्वाद्वैत के भद्र माने गये हैं। केनलाद्वैत के भी अभाववाद और मायावाद का प्रमुख भेद होने हैं। वेदान्त के इन समस्त भेदाभेदों का उदय और निम्नता मध्ययुग में हुआ था। उस का यह है कि वेदान्त की इन विविध पद्धतियों के सम्पन्न विज्ञान और प्रचार के आगे संतप्रयोग, मीमांसा, स्याप वैशेषिक आदि प्राचीन दर्शन पद्धतियाँ शिथिल पड़ गई थीं। संतों को रुद्रियादी इन पद्दर्शन पद्धतियों से विशेष प्रेमा थी।<sup>३</sup> इसीलिए उन्होंने सर्वत्र उनकी निम्ना की है। अन्य ही इन निदात्मक टर्कियों से स्पष्ट प्रगट है कि उन्होंने पद्दर्शन में किसी को भी शान्ति से आनन्दने की चेष्टा नहीं की थी। उनकी विचारधारा पर वेदान्त के अतिरिक्त पद्दर्शनों में से और किसी भी दर्शन पद्धति के प्रत्यक्ष प्रभाव दिलाई भी नहीं पड़ते। इन प्राचोक्तों ने संतों के लक्षि विचारक रूप पर संतों का प्रभाव दिखाने की चेष्टा की है। शिष्टु में उनसे सहमत नहीं हैं। मरी हट्ट धारणा है कि संतों का लक्षि विचारक रूप भी ब्रह्मात्मी है। संतप्रचार्य ने संतों और वेदान्त के संतों का संबंध करते हुए

<sup>१</sup> मूलदि भाग आदिका मूलदि भाग आय।

<sup>२</sup> केन विंश मुनि का दासू रहु कपी काह ॥ सत सुभाषण १० ७१६

<sup>३</sup> मुनरा ज्ञान समुद्र की महिमा कहि कह्यौ कौन।

कल्प रह से है अरों तुम द्विज जावतु कौन। सत सुभाषण १० ५८१

<sup>४</sup> मुनरा कल्प बरगाकर माहि भया बाप

बाके समुद्र ज्ञान बाप में न बरदा है। सुन्दरविष्णव १० १११

सिखा है—'प्रकृति और पुरुष के परे इस बगल का पल्लव कभी एक ही मूल तत्व है और उभी प्रकृति पुरुष आदि से सब सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। चाम्पवार के योग सिद्धांत हमें माल्य है।'<sup>१</sup> शंभुदासजी कुछ संस्य और वेदान्त के इस विभाजन रेखा से संत लोग पूर्णतया परिचित थे। उन्होंने अपना सम्पन्न सद्य रूप से वेदान्त की और इंगित किया है। संत सुदरदास ने कहा वे पुरुष और प्रकृति प्रगत मय शिखर<sup>२</sup> वेदान्त के प्रति ही अपनी आत्मा प्रगत की है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना अनुपयुक्त न होना कि संतों की विचारधारा पर वेदान्त के अतिरिक्त पद्धतियों<sup>३</sup> में से किसी का भी कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ा है। अतएव यहाँ पर उनका विवेचन नहीं किया जा रहा है। वेदान्त की भी केवल अद्वैतवादी पद्धति ही ने उन्हें प्रेरणा प्रदान की थी। अद्वैतवाद की दो शाखाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं गौडपाद का अबास्तवाद और शंभर का मायावाद। वे हम दोनों से प्रभावित हुए थे। इनके अतिरिक्त शब्दद्वैतवाद और शिवाद्वैत का भी उनपर पूरा-पूरा श्रवण है। विज्ञानाद्वैत की हलकी छाया भी दूँटी जा सकती है। आगे इन प्रभावों का उल्लेख किया जा रहा है।

### श्रीमद्भगवद्गीता और संत कवि

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू धर्म और दर्शन का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। मात्र का क्या क्या उसकी विचारधारा से प्रभावित है। संत लोग भी इसी भारत भूमि में अवतरित हुए थे। अतएव उपनिषदों के तार रूप हलमें महत्त्वपूर्ण ग्रंथ से उनकी विचारधारा का प्रभावित होना स्वाभाविक था।

निष्काम योग—गीता में सबसे अधिक महत्त्व निष्काम योग को दिया गया है। भगवान् का शब्द आदेश है कि 'मानवों को केवल धर्म करने मात्र का

<sup>१</sup> वैदिक सूत्र भाष्य—२।१।३

<sup>२</sup> सुन्दरविताह—४ ११०

<sup>३</sup> पद्धतियों की सं० परशुराम पदुबेदी जी ने एक लोकरत्न मीथिक और नवीन व्याख्या की है। यहाँ पर उसे अधिकक उद्धृत कर देना अनुपयुक्त न होगा। यह इस प्रकार है—हरसब शब्द का अर्थ यहाँ कर्त्तव्य कोई भेष वा सम्प्राप्त है जितने प्रभावतः का अर्थ की परम्परा करीर साह्य के पीछे तक जाती आई है। अद्वैतवाद के लिए यह शब्दवाचक सं० (१९०१—१९१०) में भेष की रंग की अपनी एक सार्थी में इसका प्रयोग सम्भवतः इसी अर्थ में किया है और का हरसबों के नाम भी दिये हैं। वे कहते हैं—

जोपी जगम सेवई भोव सन्पासी और सेव ।

यह शब्द शब्द राम विव शर्ष क्यट के भेष ॥ करीर साहित्य की परल पृ० ४३

अधिकार है। जब ईश्वरशील रहना है। ऐसी अवस्था में जल की अनिच्छा रखते हुए ही साधना मार्ग में प्रवृत्त होना चाहिए।<sup>१</sup> गीता के इस निष्काम योग का प्रभाव संतों पर प्रायः दिखाई पड़ता है। संत चरनदास<sup>२</sup> ने लिखा है कि हमारे गुरु मुन्देर जी ने बिनके चरखों के हम सेवक हैं, हमें निष्काम साधना का ही उपदेश दिया है।

**समस्त योग**—गीता का दूसरा प्राथम्य विद्वान् समस्त योग है। इस समस्त योग का साक्षात्कार करत हुए भगवान् ने लिखा है कि विधि और अविधि पर सम दृष्टि रखना ही समस्त योग कहलाता है।<sup>३</sup> उनके मतानुसार बड़ी धीर पुष्प अमृतत्व का प्राप्त किया है या समस्त योग का आचरण करते हुए बुद्ध-मुनि को समान समझता है। इसी समस्त योग के महत्त्व का व्यक्तित करत हुए भगवान् कृष्ण<sup>४</sup> ने अर्जुन से कहा था हे अर्जुन तुम बुद्ध न मुनि, हानि-साम, बन्-यशस्व को समान समझते हुए युद्ध करा। तुम किसी बात के भङ्गी नहीं बनोगे। गीता के समस्त योग का प्रभाव संतों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। संत पलटू<sup>५</sup> साहब ने लिखा है—उत्त महत्त्वा के दर्शनों

<sup>१</sup> कर्मण्येवाधिगम्यते मा कमेषु कदाचन । गीता २।४७

<sup>२</sup> कई गुरु मुन्देर जी चरनदास गूनाम ।

देवी साधक चारिण हर्मिण निष्काम ॥

चरनदास की बानी भाग २ पृ० ३६

<sup>३</sup> सिद्धासिद्धरी समी मूल्या समस्त योग उपरत २।४८

<sup>४</sup> मुग-मुने समे कृष्ण व्यमा कामी उवाचनौ ।

ततो बुद्धाव बुगपस्व नैव पापं अवाप्स्यसि ॥

गीता २ श्लोक ३८

<sup>५</sup> काम अथ विनक नहीं ली न भूय विवास ।

कौ न भूय विवास रई निरागुन मे ल्यारा ॥

भाव मार इकार भीरु की गद्वन मारा ।

सुनु मिय सब एक-मुक ई राजा रका ।

दुःख-मुग कीरव मरन तनिक ल्यारि ना लका ॥

कचन बीडा एक एक ई गामी पात्रा ।

अभुति मित्रा एक एक ई गान बुसाका ॥

बम्बू उबडे दास मे होत पाव का नास ।

कास काव मिबडे नहीं ली न भूय विवास ॥

पलटू साहब की बानी भाग १ पृ० १४



से पाप नष्ट हो जाते हैं जो समस्त बोग का आचरण करते हुए रात्र-मित्र, रात्र-रंक, दुःख-सुख, जीवन-मरण लोहाहंसन खुवि निरा आदि सभी बंधों को समान भाव से देखता है। ऐसे महात्माओं को मूल-व्यास और अम-श्लेष अभिभूत नहीं कर पाते हैं। ऐसे लोग त्रिगुणातीत रहे जाते हैं। गीता में बखित स्वतन्त्र की अवस्था भी लगभग ऐसी ही होती है।

**इन्द्रिय जय और प्रपत्ति**—गीता में इन्द्रिय संयम पर भी विशेष बल दिया गया है। इन्द्रियों पर बिना विषय प्राप्त किये कोई भी धारक बुद्धि और मन को केन्द्रित नहीं कर सकता है। मयवान्<sup>१</sup> ने कहा है कि जिस प्रकार क्लृप्ता ध्यने सब अवयव सिद्धांत होता है उसी प्रकार वह कोई पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को खींच लेता है सभी उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

इन्द्रिय संयम के साथ ही साथ संतों ने गीता की आत्मसमर्पण की भावना को भी ध्यानाने की चेष्टा की है। संत तुंगर दास<sup>२</sup> ने लिखा है वही उन्ना भक्त है वही उन्ना प्रेम मानी है जिसका मन ईश्वर से एक भर के लिए भी अलग नहीं होता। अनन्य आत्मसमर्पण की भावना का विकास प्रपत्तिभाव में देखा जाता है। गीता में भगवान् ने प्रपत्तिभाव<sup>३</sup> का उद्देश्य बड़े प्रयोग पूर्व शब्दों में किया है। अठारहवें अध्याय में भगवान् अर्जुन से कहते हैं—इ अर्जुन तू मुझमें अपना संपूर्ण मन समर्पण करके मेरा भक्त बन जा। तुझमें मेरी ही बंधना और अर्चना करनी चाहिए। तू मुझमें ही लीन हो जायेगा। सब कर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। गीता के इस प्रपत्तिवाद ने संतों का बहुत अधिक प्रभावित किया था। उसकी बाखी में रचान-रचान पर इसकी ब्यंजना मिलती है। संत दातू किलते<sup>४</sup> हैं—

शरण्य तुम्हारी आय परे।

जहाँ तहाँ हम सबि फिरि आए राखि राखि हम तुलित करे ॥

इसी प्रकार सहजोबाई<sup>५</sup> ने भी प्रपत्तिभाव की ब्यंजना निम्नलिखित सूक्तियों में की है :—

<sup>१</sup> बड़ा सुदरते जाय कर्मों का गीत सर्षसः

इन्द्रियाधीन्द्रिबाधेभ्यस्तस्य प्रया प्रतिष्ठिता ॥

गीता २ श्लोक ५८

<sup>२</sup> जिस एक ईश्वरसों केकडू व म्पारो होन

बई भक्ति कहिबत वही प्रेममार्ग। मुन्वरविज्ञास पृ १४८

<sup>३</sup> गीता १८ अध्याय ६५, ६६ श्लोक

<sup>४</sup> दातू बाणी भाग २ पृ० १०९

<sup>५</sup> संत सुपासार पृ० १६६

शरणा तेरी ऐसी आई ।

टेक ऐसी गहरी मुम बिन जानु को मारी जानु ॥

जीवन में मगवान् अनुग्रह का बड़ा महत्त्व होता है। मगवान् का अनुग्रह प्राप्त कर लेने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। वास्तव में संसार में सब कुछ उसके अनुग्रह और हुन का परिणाम है। विविध कामनाओं और बाधनाओं का परिणाम भी प्राप्त होकर होता है। गीता<sup>१</sup> में मगवान् ने कहा है कि जो निरतुह होकर जीवन व्यतीत करता है उसी को सच्ची शांति मिलनी है। इसी प्रकार उन्होंने तीसरे अध्याय में उनके स्वामी श्री और भी संकेत किया है। गीता श्री एत उदाहारणियता ने सत्तो श्री उदाहारणियता को विशेष बल प्रदान किया था। संत लोग उदाहरण को संतप्त का प्राथमिक मानते थे। कबीर ने लिखा<sup>२</sup> है—

निर्विरी निह कामता सांठ सैनी मेह ।

विषया सून्यारा रहै मस्तन का बग पेद ॥ \*

इसी प्रकार संत वानू ने भी लिखा है<sup>३</sup> ।

कहै दादू माहि अचरज भाषी ।

हृदय कपट क्यों मिल मुरारी ॥

संत मुन्दरदास<sup>४</sup> ता बाधना छिदित मगुन श्री बंदना करने एक का विचार था ।

वामना न फाड़ पाओ ऐसी मति सज्ञ जाकी ।

मुंदर कहत ताही बंदना हमारी है ॥

संत मुषामार संद १ पू० ६२०

गीता में मगवान् ने ईश्वर में पूज्य आत्मसमर्पण का उद्देश्य दिया है। उन्होंने अर्चन से कहा है<sup>५</sup>—हे अर्चन तुम मुझमें अणतम बुद्धि से सब कर्मों का मस्त और अर्चन करके रहस्य हो जाओ। उन्होंने नवम<sup>६</sup> अध्याय में तो यही एक कहा है—हे श्रीमान् नू बा करता है, जो लाजा है, बा हजन करता है, बा वान करता है, बा तररा करता है वह सब कुछ मुझसे ही अर्चन कर ।

इसकाई<sup>७</sup> ने एक बात को मुंदर रामों में प्रकट किया है—

<sup>१</sup> गीता द्वितीय अध्याय श्लोक ६८

<sup>२</sup> कबीर अष्टावली पू० ५०

<sup>३</sup> सप्त मुषामार ४४२

<sup>४</sup> सप्त मुषामार पू० ६८०

<sup>५</sup> गीता—अष्टावली अध्याय १ श्लोक १०

<sup>६</sup> गीता—६।१०, १८

<sup>७</sup> सप्त मुषामार पू० ३०८ ।

योग जज्ञ जप तप ब्रह्म वीर्य नेम अन्धार ।

बार वेद पटशास्त्र सप्त प्रमु कृमा श्री बार ॥

गीता में महात्मान् ने ज्ञान भक्ति और योग की समन्वित राक्षना को ही महा दिया है। गीता के इस खड्ग से कल्प लोम भी परिच्छिन्न थे। उन्होंने ज्ञानभक्ति और योग की विचारी में अवगाहन किया है<sup>१</sup>। लहरोबाई ने अपने गुण को महि ज्ञान और योग का उद्धार कहकर गीता के उदरुक्त सिद्धांत का ही समर्थ किया है।

**ब्रह्मैतवाद**—गीता ब्रह्मैतवाद का एक प्रमुख ग्रंथ है। प्रत्यानवयी अंतर्गत इसकी भी राक्षना की जाती है। गीता में महात्मान् ने अनेक प्रकार से ब्रह्म मानना की प्रवृत्ति की है। वे ब्रह्मैत दृष्टि का ज्ञान की परम सीमा मानते हैं। महात्मान् ने कहा है—उद्धार में ऐसा ज्ञानी दुर्लभ है जो सबका वासुदेव रूप देखता है<sup>२</sup>। गीता में और भी कई स्थलों पर ब्रह्मैतवाद की अभिव्यक्ति मिलती है। तब लोग गीता के ब्रह्मैतवाद से अत्यधिक प्रभावित थे। तबों की दर्शन-मदति के सम्बन्ध में हम इस प्रमाण का अधिक स्पष्ट रूप से दिलावाँगे।

**अध्यात्म**—गीता के अध्यात्म फिलन का प्रमाण भी तबों पर पड़ा था उनके प्राप्तात्मिक विषयों का विश्लेषण करते समय उन प्रमाणों का संकेत कि बायेगा। नहीं पर इतना ही कहना चाहते हैं कि गीता के मूल सिद्धांतों ने तबों का विचारधारा के स्वरूप को ठीकाने की चेष्टा की थी।

निर्गुण काव्यधारा में शब्दाद्वैतवाद के सिद्धान्तों की अवतारणा

श्रीवद्वयन के प्रसंग में विश्वान् काम प्रायः इसका भी उल्लेख करते हैं। प्रत्यक्षवाद, लोकोत्तरवाद, शब्दवाद<sup>३</sup>, व्याकरण दर्शन आदि सभी शब्द इसी दर्शन का अन्वयकारी माने जाते हैं। इस दर्शन के अन्वय में अग्नेय में मिलते हैं किन्तु इसका काम और शब्दों के स्वरूप इसे अन्वयम पर्वतलि<sup>४</sup> के महात्मान् में मिलता है। क-

<sup>१</sup> भक्तिज्ञान योग के राजा, लहरो के सब पुरखी कामा। सहजाचार्य की बार पृ० २।

<sup>२</sup> वासुदेव सबविति स महात्मा सुदुर्लभ गीता अध्याय ७१ श्लोक १९।

<sup>३</sup> हम दर्शन का अन्वय निम्नलिखित शब्दों पर देखिए—

क—ब्रह्मदेव उपासनाय भारतीय द्वाय पृ० ५६६।

ख—वाचिनीय दर्शन सर्वदर्शन मन्द वासुदेव शास्त्री—(G O S) पृ० १८८-१९०।

ग—कव्याय का वेदांगिक पृ० १७०।

शताब्दी में हमें बालि आचार्य मनुहरि<sup>१</sup> ने अपने वाक्यपदीय नामक ग्रंथ में इसी दर्शन का विस्तार से प्रतिपादन किया है। अष्टाश्वकी शताब्दी के नागेश भट्ट ने सप्तमस्कंध में भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। इनमें सबसे अधिक प्रामाणिक विवेचन मनुहरि का माना जाता है। इस दर्शन के अनुसार स्फोटरूप शब्द ही एकमात्र अद्वैत तत्त्व है। यह सगुण्य सृष्टि उसी अद्वैत तत्त्व का विवर्त है। इस शब्द के चार स्वरूप माने गये हैं। परा, परमन्त्रि, मत्प्रमा और वैलपी। इनमें परमन्त्रि रूप पर ब्रह्म स्वरूप कहा गया है। यह वैतन्य और अद्वैत तत्त्व है। शब्द का वह यह परमन्त्रि स्वरूप शब्दों का अर्थ को व्यक्त करने लगता है तब उसे मत्प्रमा का अभिपान दिया जाता है। इन्द्रियों के सम्पर्क से प्राण में त्रित शब्द का उदय होता है उसी को वैलपी कहा जाता है। बाहरी अर्थ की व्यञ्जना करनेवाली ध्वनि यही है।<sup>२</sup> श्रुतवेद में इन चारों का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है—

अत्पारि वाकपरिमिता पदानि  
तानि बिदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।  
गुहा त्रीणि निहिता नेगवन्त्रि  
सुरीष वाचो मनुष्मा वृन्ति ॥

अर्थात् चार का परा, परमन्त्री, मत्प्रमा और वैलपी हैं। इनमें से परा मूलाकार में है, परमन्त्री माभि में, मत्प्रमा हृदयाकार में और वा हम मुनये अथवा बोधन हैं वह वैलपी में है। प्रथम तीन का अर्थ प्राप्त शक्तिवाले पाणिपों को ही मान्य हैं। त्रित ध्वनि का वाक् दर्शन देना बाहरी है यही उसको ज्ञान उच्छा है। इस शब्द बाद की प्रविश वाक्त्वा के रूप में शक्तवन्त्रि के भाग दृश्य में मिलती है। उक्तमें<sup>३</sup> 'उत्पदवाक्त्वात् प्रगुण्य' अर्थात् शब्दबाह का प्रत्ययबाह का रूप दे दिना गया है। इस प्रत्यय के संबंध में कठानिचर में लिखा है—

एतदेवाक्षरं ब्रह्म श्वेतदेवाक्षरं परम् ।  
एतदेवाक्षरं शात्वा यो परिच्छदितव्यं तम् ॥<sup>४</sup>

अर्थात् जो ही अक्षर अभी नाश न होनाशाना प्रथम है। यही परब्रह्म है। इसके दान से सापक वा बाद वह मात्र कर उच्छा है। अक्षर की उच्छादना का उच्छेद

<sup>१</sup> आचार्य का बंशानांक पृ० १००

<sup>२</sup> वाग्द—११२९३१०

<sup>३</sup> योग सूत्र—११२०

<sup>४</sup> कठानिचर—११११२९

प्रज्ञोपनिषद्<sup>१</sup> में किया गया है। उसमें लिखा है कि इसके उच्चारण में से ही साधक को विविध प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है। ओम्कार की तीन मात्राओं का निम्न-निम्न उच्चारण साधक के अन्तर्गत का कारण होता है। यदि उसकी मात्राएँ समकालिक उच्चारण में एक वृत्तरे से सम्बद्ध करके उच्चारित की जायें और वास्तव में अन्तर्गत और मध्यमा क्रियाओं में सम्बन्ध रूप से प्रयुक्त हों तो साधक को ज्ञान क्रिया में सफलता प्राप्त होती है।

शब्द साधना या प्रत्यक्ष साधना का मूल-मंत्र क्या है, यह बात मुख्यतः मुक्ति<sup>२</sup> के निम्नलिखित वाक्यों से प्रकट है—

प्रत्यक्षो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तस्मिन्मयं सुष्यते ।

अममत्तेन वेद्वन्मयं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अर्थात् प्रत्यक्ष धनु है, आत्मा शर है, ब्रह्म तन्मय है, साधक का शरत विद्य से ओम्कार के द्वारा शब्द ब्रह्म में लीन होना चाहिये। उपर्युक्त श्लोक में प्राप्त रूप में ओम्कार को और प्राप्तम् रूप में शब्द ब्रह्म को ध्वनित किया गया है। अर्थात् वृद्धे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ओम्कार के उच्चारण साधक की ध्वनि को ब्रह्मध्वनि में लीन कर सकता है। प्रत्यक्षवादी इस शब्दलय योग का सम्बन्ध विष्णु और विद्यार तंत्र मतछिद्र मत, माय पंच में दिखाई पड़ा। आगे हम उन्हीं का विवेचन करेंगे। शब्दाद्वैत का प्रमाण तंत्रों के साधना पत्र पर बहुत अधिक पड़ा है। उनका शब्द मुक्ति काग शब्दाद्वैत से ही सम्बन्धित है। विभिन्न प्रकार शब्दाद्वैत वादियों की साधना प्रत्यक्ष रूपी धनु और आत्मा रूपी शर से परमात्मा रूपी तन्मय को मेदम करने में प्रयुक्त होती है उन्हीं प्रकार तंत्रों का शब्द मुक्ति योग अत्रयावाप रूपी धनुष मुक्ति रूपी आत्मा को निरति रूपी परमात्मा में लीन करने का कारण रहता है। शब्दाद्वैत का प्रमाण तंत्रों के अन्तर्गतपत्र पर भी देखा जा सकता है। शब्दाद्वैत वादियों के उच्चार ही तंत्रों में भी शब्द को ही सर्वम् माना है। तंत्र दातू लिखते<sup>३</sup> हैं कि—

शब्द ही मुक्ति मया सर्वै ही सहज समान ।

सर्वै ही निर्गुण मिले सर्वै निर्मल ज्ञान ॥

शब्द का बचन रूपी-रूपी उन्होंने कहीं-कहीं नाद के अतिमान से भी किया है। तंत्र पत्रदात जी<sup>४</sup> की निम्नलिखित सूक्तियाँ उदाहरण के रूप में ली जा सकती हैं—

<sup>१</sup> प्रज्ञोपनिषद् ४।०

<sup>२</sup> मुक्त्योपनिषद् २।३

<sup>३</sup> दातू बाबी भाग १ पृ० १२९

<sup>४</sup> सत बाबी सम्प्र भाग १ पृ० १६६

अनहद शब्द अपार दूर मू दूर है ।  
 पेतन निमल सुद्ध वेई मरपूर है ॥  
 नि-अच्छर है ताहि और नि-कर्म है ।  
 परमात्म तेहि मानि घली, परब्रह्म है ॥  
 या के कीन्हे ध्यान होत है ब्रह्म हीं ।  
 धारे तेज अपार जाहि सब भर्म हीं ॥  
 या को छात्रै नाहि सहा रहे क्षीन हीं ।  
 यही जो अनहद सार जानि परबीन हीं ॥

उठों में शब्द ब्रह्म की अतुल्यता के विविध लक्षणों का वर्णन भी किया है ।  
 द्वापार<sup>१</sup> निकली हैं—

परम्य तास मूर्द्गध्वनि सिद्ध गरज पुनि होय ।  
 द्वा सुनत गुरु क्यारै बिरला साधु कोय ॥

इत प्रकार शब्द है कि संत लोग शब्दब्रह्मवाद से पूर्णतया प्रभावित हुए थे ।

### गौड़ पादाचार्य का अनातवाद और निर्गुण काव्यधारा

अनातवाद नामक प्रथम दार्शनिक सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य गौड़पाद आचार्य शंकर के गुरु कहे जाते हैं । शंकर के मायावाद पर बीजारोपण भी उन्होंने ही किया था । अतः शंकराचार्य के सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि के रूप में हमारी विचारणा का बल निवृत्त आचर्यक है ।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि गौड़पाद बौद्ध विद्वान् थे उन्होंने वेदान्त का शरीररूप बौद्ध दर्शन के प्रकरण में किया है ।<sup>१</sup> किन्तु मैं इत मत से सहमत नहीं हूँ । यह भुक्ति प्रमाणापवादी आचार्य थे । इतना प्रमाण यह है कि उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ माहृत्यपरिचय के प्रारम्भ में सर्वप्रथम मोक्षकारनिर्णय की व्याख्या की है । यदि वह बौद्ध हों तो भुक्ति प्रमाणापवादी नहीं हो सकते थे । यह हो सकता है कि वह बौद्ध दर्शन से प्रभावित हो ।

मोक्षपरिचय में हां तो पन्द्रह परिचार्द हैं और चार प्रकरण हैं । आगम प्रकरण, शैव्य प्रकरण, अद्वैत प्रकरण और अनातारुति प्रकरण । आगम प्रकरण में

<sup>१</sup> द्वापार की कानी पृ० ११

<sup>२</sup> श्री सुतग्रन्थक राम गुप्ता विविध—ए हिन्दी भाषा इतिहास विज्ञानसंघी भाग १ पृ० ४११—(१६११)

गौड़पाद ने द्वयीय के सिद्धांत की प्रतिक्रिया की है<sup>१</sup> इन्होंने वैश्वानर हिरण्यगर्भ एवं ईश्वर तथा ब्रह्म स्वप्न द्रुमुक्ति अवस्थाओं से विशिष्ट द्वयीय तत्त्व की चर्चा की है। इसे उन्होंने भोजन का चतुर्थ<sup>२</sup> पाद कहा है। इस द्वयीय का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—‘अद्वैतसर्वमाद्यो देवाः द्वयीयो विभूः स्मृतः’<sup>३</sup> अर्थात् द्वयीय ब्रह्म अद्वैतकम मन्त्रकम और सर्वभ्यापी कम है।

दूसरी कारिकाओं में उन्होंने इसे ‘सुखमनुत्तम तनिवार्थम अनानन्दम अद्वैतम सम-तामिगम’ विचारद अनिष्टा असन्न लक्ष्मिभिर्गोत उर्ध्वान और स्वप्नावस्था से अभिप्रेत किया है। इस द्वयीय अद्वैत तत्त्व के लिए गौड़पाद ने ब्रह्मा ब्रह्म और ब्राह्मण आदि शब्दों को प्रयोग किया है।

गौड़पाद का प्राथमिक सिद्धांत अबाधवाद था। उनका कहना था कि कोई भी वस्तु कभी उत्पन्न नहीं होती। उन्होंने यह बात इसलिए नहीं कही थी कि वे बौद्धों के शून्यवाद में विश्वास करते थे। बल्कि इसलिए कही थी कि यह ब्राह्मण्य के ऐतिहासिक शिष्टों को भी पारम्परिक तत्त्व नहीं मानते थे। उन्होंने स्पष्ट उद्घोषित किया था कि कोई भी चीज उत्पन्न नहीं होता उत्पन्न कोई फल भी नहीं है<sup>४</sup>। यही मान्य छप है। कोई भी वस्तु उत्पन्न नहीं होती<sup>५</sup>। मन्त्र यह उठता है कि जब कोई वस्तु उत्पन्न ही नहीं होती तो उत्पन्न प्रसंग का क्या उपादान होगा। इसका उत्तर उनका मात्रावाद का सिद्धांत है। मात्रा के लिए उन्होंने वैतम्य, मिथ्या, कल्पित, ब्रह्माद्य, विपर्यय, लक्ष्मि आदि शब्दों का प्रयोग किया<sup>६</sup> है।

गौड़पाद ने अपने प्राथमिक की स्थापना<sup>७</sup> तीन मूलभूत सिद्धांतों पर की है। पहला सिद्धांत है कि ब्रह्म ब्रह्मा के द्वारा ही ब्रह्मा की रचना करती है जैसे—

अल्पपति ब्रह्मानः ब्रह्मानम् ब्रह्मा<sup>८</sup> ।

गौड़पाद का दूसरा सिद्धांत है कि अद्वैत तत्त्व में भेद स्थापित करनेवाली

<sup>१</sup> भारतीय दर्शन—कन्देब अणुपाठ पृ० ३१३, १६४८ ।

<sup>२</sup> यही पृ० ।

<sup>३</sup> मीरक कालिका—१।१०।१।१३ ।

<sup>४</sup> गौड़पाद—महादेवम्—पृ० १४० ।

<sup>५</sup> गौड़पाद—महादेवम् १९५४ पृ० १२९ पर देखिए

न कश्चित्प्रापते जीवः स्वप्नबोध्य न विद्यते ।

एतदेव परमं सत्यम मात्र चिन्मिदं प्रापते ॥

<sup>६</sup> गौड़पाद—महादेवम् लिखित पृ० १५० ।

<sup>७</sup> यही पृ० १५० ।

<sup>८</sup> मीरक कालिका—२। १ ।

शक्ति माया है। तीसरे सिद्धांत के अनुसार यह साध हीव मनोहरमात्र माना गया है।

### मनोहरयं इह द्वैतम्<sup>१</sup>।

इन तीनों सिद्धांतों पर यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाएगा कि इस संसार का कारण माया विशिष्ट आत्मतत्त्व ही है। इस माया विशिष्ट आत्म तत्त्व को माया कहते हैं। गीट्पाद ने गीता के सद्यः समस्त मानवों के हृदय में ईश्वर का स्थान माना है। यही ईश्वर वास्तव में सृष्टि का सृजन करता है और आन्तरिक तत्त्वों का विपाल करता है। उन्होंने अपने माया के सिद्धांत का अज्ञात के अज्ञान से स्पष्ट करने की चेष्टा की है। अज्ञात का अर्थ है महात्म। यह संसार को उठी प्रकार मन का भ्रम मानते हैं जिस प्रकार महात्म पुमाए जाने पर अग्निगोलक का भ्रम होता है। उनका महात्मुत्कार मन ही संसार की व्यस्तता का कारण है। मन के व्यापार फलस्वरूप ही संसार की सत्ता प्रतीति होती है और उसका निरोध कर देने पर उनका अस्तित्व क्षुभ हो जाता है। गीट्पाद ने मन को यही-यही आत्मा का वाचक भी कहा है। इस अर्थ में मन मयन की आशाभूमि कहा जा सकता है।

गीट्पाद ने माया का एक स्थान पर अनादि कहा है। किंतु अनादि से उनका तात्पर्य ब्रह्म की समकक्षता या नहीं है। बल्कि उसकी प्रभावकता से है। गीट्पाद माया को मात्र रूप मानते थे और उनसे उद्भूत मयन को अस्तित्व कहते थे। उनके मानुत्कार जगत् का उदय और विनाश यह सब कल्पनामात्र है।<sup>२</sup>

सृष्टि विनाश क्रम के सम्बन्ध में गीट्पाद ने कुछ अभिन्न नहीं लिखा है। एक स्थान पर उन्होंने प्राण को सब सृष्टि का उत्तरदायी माना है। और एक दूसरे स्थान पर उन्होंने पुरुष को सृष्टि का कर्ता कहा है। प्राण और पुरुष वास्तव में आत्म तत्त्व के ही वाचक हैं।<sup>३</sup>

यहाँ पर हम प्रतिविम्बवाद और अकल्पेदवाद का भी संकेत कर देना चाहते हैं। विदर्शनवादियों का कहना है कि जीव चैतन्य का प्रतिबिम्ब है जो अहंकार तत्त्व में प्रतिविम्बित दिगार्य पड़ता है। वास्तव में यह अज्ञानम्ब ही है केवल अहंकार या माया का कारण ही यह विषय दिगार्य पड़ता है। अकल्पेदवादी ब्रह्म की अर्थात् सत्ता में विहास करते हैं। उनका कहना है कि बिल प्रकार बापु पद के अन्दर भी होती है और बाहर भी रहती है। उनसे अहं मय नहीं होता केवल यह का वाचक स्थापित

<sup>१</sup> माहेश्वर आरिका १।११

<sup>२</sup> गीट्पाद—महादेश्वर १० १५१

<sup>३</sup> यही—१० १५४-५५



ही व्यावहारिक मेद का अरथ बन जाता है। बीच और अन्त में इसी प्रकार का अंतर है। इस अंतर का अरथ अविद्या मात्र है। गौडपाद अवच्छेदवादी आचार्य थे। यहाँ-यहाँ पर उन्होंने आमास शब्द का प्रयोग करके प्रतिषिक्तवाद का समर्थन भी किया है। शंकराचार्य दोनों के अनुपायी थे। इस बात का प्रमाण यह है कि उनमें दोनों वादों के दृष्टान्त मिलते हैं।<sup>१</sup>

गौडपाद ने माया के नियन्त्रण के लिए उपाय के रूप में ज्ञान और त्यागना दोनों को महत्त्व दिया है।<sup>२</sup> ज्ञान के ताप-साप उन्होंने ध्यान योग का भी प्रतिपादन किया है। ध्यान योग क अंतर्गत वह प्रत्यक्षवाद के समर्थक थे। यहाँ पर हम इस बात का स्पष्ट संकेत कर देना चाहते हैं कि गौडपाद का दार्शनिक सिद्धांत किस प्रकार शैली के शून्यवाद से प्रभावित था उसी प्रकार वह प्रत्यक्षवाद, शून्यवाद वा व्यापकत्व दर्शन से भी अनुप्राणित था। उन्होंने अस्वर्ण योग को विशेष महत्त्व दिया है। अस्वर्ण योग का अर्थ है अद्वैतानुभव। जब तापक बाध भेदी और विभक्तों से ऊपर उठकर अद्वैत तत्त्व में लीन होने का प्रयास करता है तब उसे अस्वर्णवाद कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि गौडपाद का दर्शन निवृत्तिमार्गी भी था।

संतों पर गौडपाद के अभाववाद का प्रमाण निम्नलिखित रूपों में मिलता है—

- १—द्वितीय का सिद्धांत।
- २—कल्पनावाद।
- ३—अवच्छेदवाद।
- ४—अद्वैतवाद।

संतों ने अग्नी बानी में सर्वत्र द्वितीय के सिद्धांत को महत्त्व दिया है। इस द्वितीय के सिद्धांत की अभिव्यक्ति उन्होंने बीषा पद शब्द से की है। संत मनुष्य ने सिखा है कि तीन अक्षरमात्रों से ऊपर उठकर ही बीषे पद की प्राप्ति हुई है।<sup>३</sup> इन्हीं संत ने एक दूधरे रमल पर पुनः सिखा है<sup>४</sup>—

“सैन पदों में ताप संतार बीषा हुआ है। बीषा पद अनिर्वचनीय और अपरम्पार है।” इसी प्रकार अन्य संतों ने भी द्वितीय के सिद्धांत की अभिव्यक्ति की है। संत मनुष्यदास ने अन्न वा आत्मा को द्वितीय रूप कहा है। गौडपाद के कल्पनावाद का प्रमाण भी संतों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। किस प्रकार गौडपाद इस संतार को मन

<sup>१</sup> यहाँ—पृ० १५८-१५९

<sup>२</sup> यहाँ प०—१९५ १९६

<sup>३</sup> तीनों दृष्टा बिसार करि बीषा पद पावा। मनुष्यदास की बानी प २१

<sup>४</sup> तीन्हे पद से सब जग बया बीषा अपरम्पार। मनुष्यदास की बानी पृ २३

का भ्रम मात्र मानते हैं उसी प्रकार संत लोग भी इसे मनोद्भूत ही समझते हैं। संत मुन्दरदास ने लिखा है<sup>१</sup> इस संसार की उत्पत्ति मन का भ्रम से ही हुई है। उस भ्रम का दूर हो जाने पर संसार भी बिलीन हो जाता है।

संतों ने गीष्पाद के अक्षरद्वय का भी अपनाने की चेष्टा की थी।<sup>२</sup> संत मुन्दरदास की निम्नलिखित पंक्तियों में हमें उसी की झलक दिखाई पड़ती है—

देह के संजोग पाइ जीव ऐस नाम भयो,  
घट के संजोग घटाकास ही कहायो है।  
इस्वर सकल बिराट में बिराजमान,  
मठ के संयोग मठाकास नाम पायो है ॥  
महाकास माहिं सब घट पठ रेखियत,  
बाहिर भीतर एक गगन समायो है।  
ससे ही मुन्दर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव,  
त्रिविध उपाधि भेद प्रथम में गायो है ॥<sup>३</sup>

इसी प्रकार सन्तों पर गीष्पाद के अद्वैत सिद्धांत की छाया भी दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए हम संत मुन्दरदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं—

आप कू समुक्ति देखौ आपही सकल माहिं,  
आपही में सकल जगत रेखियतु है।  
जैसे भूमि व्यापक अर्थात् परिपूरण है,  
बाइल अनेक माना रूप रेखियतु है ॥  
जैसे भूमि घट जल तरंग पाबक बीप,  
पापु में अपूरा सोई विस्य रेखियतु है।  
ऐस ही विचारत विचारहू क्षीन होइ,  
मुन्दर ही मुन्दर रहत पैगियन है ॥<sup>४</sup>

इस प्रकार हम निःसंशय कह सकते हैं कि संतों पर गीष्पाद का भी प्रभाव है।

<sup>१</sup> मुन्दरबिद्याम पृ० ६३

<sup>२</sup> सब ही कम से जगत् यह देखियत ।

सब ही के कम गये जगत् बिनात है ॥ मुन्दरबिद्याम पृ० ६३

<sup>३</sup> मुन्दरबिद्याम पृ० १०६

<sup>४</sup> मुन्दरबिद्याम पृ० १०५ और १०६

## शंकराचार्य का मायावाद और निर्गुण काव्यपाद्य के कवि

**सिद्धान्त विवेचन—**दार्शनिक सार्वभौम स्वामी शंकराचार्य ने ब्रह्म ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा की भी उतने उतने प्रथम ब्रह्मभक्त का विवेचन किया गया है। दार्शनिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो सम्पूर्ण ब्रह्म ब्रह्म और द्रव्य इन ही भावों में बाँटा जा सकता है। एक समस्त प्रतीतियों का अनुभव करता है और दूसरा समस्त अनुभवों का विषय। समस्त प्रतीतियों के अनुभवकर्ता को ब्रह्मा और समस्त प्रतीतियों के अनुभव के विषय को अनब्रह्मा कहा गया है। इन दोनों का एक दार्शनिक विवेचन करना ही शंकराचार्य का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

शंकराचार्य ने ब्रह्मा का नित्य, निर्मित्य, निर्मित्य निश्चल, निर्मित्य अतंग, अतंग और कृत्य कहा है। ब्रह्मा एक स्वयंछिद्र प्रत्यय है। उसे जब छटा मानते हैं तो उच्चरी स्वयंछिद्रता स्वयंभव छिद्र हो जाती है। ब्रह्मा की स्वयंछिद्रता के पक्ष में एक ऐसे हुए शंकराचार्य ने लिखा है—

ब्रह्मा तु प्रमाणादि व्यग्रहायमभवात् प्रागेव प्रमाणाविष्यबहायम् सिद्धयति ।

अर्थात् ब्रह्मा प्रमाणादि सञ्ज्ञा प्रमाणां पराभवात् होने के कारण स्वयंछिद्र है। इसी प्रकार के अन्य तर्कों के द्वारा ब्रह्मा की स्वयंछिद्रता प्रतिपादित की गई है। ब्रह्मा की यह स्वयंछिद्रता ही आधिष्ठता की आचारमूर्ति है। दूसरे शब्दों में हमें यह कह सकते हैं कि शास्त्र दर्शन कष्ट आन्तिक दर्शन है।

ब्रह्मा ब्रह्मा ही नहीं ज्ञानरूप भी कहा गया है। 'ब्रह्मा ब्रह्मानं जानाति' का छिद्रत शास्त्र वेदान्त को भी मान्य है। इनके मतानुसार एक ही परार्थ कर्ता और कर्म दोनों रूपों में माहित होता है। शंकराचार्य ब्रह्मा को ब्रह्मैव तस्य भी मानते थे। यह बात भी 'ब्रह्मा ब्रह्मानं जानाति' वाले छिद्रत से प्रकट है। बुद्धि में बार बार ब्रह्मा की इन विशेषताओं का वर्णन मिलता है। इसी ब्रह्मत्त्व को शास्त्र वेदान्त में ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। शंकराचार्य कर्म निर्गुण ब्रह्म के ही अनुपायी थे। उनके मतानुसार उच्चरीतों का प्रथम प्रतिपाद्य निर्गुण ब्रह्म ही था। इसी निर्गुण ब्रह्म को यह शंकराचार्य लक्षा मानते थे। यद्यपि लक्ष्य ब्रह्म का भी वर्णन उनके दर्शन में मिलता है। किंतु उच्चरी लक्षा उन्हें मायिक ही मानी है। शंकराचार्य ने ब्रह्म का निरूपण दो विधियों से किया है—उच्चरी लक्ष्य और स्वयं लक्ष्य। उच्चरी लक्ष्य के अन्तर्गत उन अन्तर विशेषताओं का वर्णन किया जाता है जो उच्चरी और अन्तर होती रहती हैं।

स्वरूप लक्षण के अन्तर्गत बस्तु के सभ्य और तात्त्विक गुणों का निरूपण किया गया है।

ब्रह्म की ज्ञानरूपाता, अद्वैतता और सच्चिदानन्द स्वरूपाता आदि विशेषताएँ ब्रह्म स्वरूप लक्षण से सम्बन्धित हैं। ब्रह्म के तटस्थ लक्षणों में तटस्थ भगवत् की उत्पत्ति स्थिति और सवरूप होना है। वेदान्त ग्रन्थों में ब्रह्म के तटस्थ और स्वरूप लक्षणों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। स्वरूप लक्षण का सम्बन्ध अविच्छेद निर्दिशेय और निर्युक्त ब्रह्म से माना जाता है और तटस्थ लक्षण अविच्छेद ब्रह्म के सगुण और उचिरोप स्वरूप से सम्बन्ध रखते हैं। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि निर्दिशेय ब्रह्म स उचिरोप भगवत् और जीव की उत्पत्ति कैसे हुई? इस समस्या को मुलभूतन के लिए आचार्य का माया की कल्पना करनी पड़ी है। शंकर का मायावाद दर्शन ज्ञान की सभ्य अद्भुत और महत्त्वपूर्ण परतना है। अब हम योद्धा-वा विचार माया के स्वरूप पर करेंगे। शंकराचार्य ने ब्रह्म के स्वरूप लक्षणों में अग्र्यस्त प्राण का भी उल्लेख किया है। ब्रह्मभूत भाष्य में लिखा है—

बीजशक्तिरग्र्यस्त शब्दनिर्देशा मायामयी महामुमुत्ति<sup>१</sup>

भवात् अग्र्यस्त शब्द स उच वाच शक्ति का वाच होता है जो माया विशिष्ट होकर महामुमुतावस्था में है। इस अग्र्यस्त का उद्धान माद्रिक अतिक्रामान्य में प्राण का अभिधान दिया है।<sup>२</sup> प्राण और अग्र्यस्त के लिए उन्होंने माया शब्द का प्रयोग भी किया है।<sup>३</sup> माया और ब्रह्म के संबंध पर प्रश्न उठाने हुए उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि अग्र्यस्त प्राण या माया ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। प्राण और माया जब तक ब्रह्म में लीन रहते हैं तब तक उनमें अन्वय काई किया शक्ति नहीं रखती। किन्तु विजागारस्था में ब्रह्म अभिधान बन जाता है और माया क्रियाशील होकर नाम रूप का विस्तार करती है। माया का विस्तार वामुगी कहा गया है।<sup>४</sup> माया के इस क्षेत्रों स्वरूपों का कारण, शब्द और मुतावस्था के सट्टा माना गया है। यह पहले कारण रूप में विवक्षित होती है फिर मूल रूप में और उठकर परन्तत् रूप रूप कारण बनती है। माया के इस विवक्षित रूप को आमास्य कारण्य अत्रिया अग्र्यता अज्ञान कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य में आचार्य ने स्पष्ट किया है कि माया रूप की कल्पना अत्रिया के कारण से जाती है।

<sup>१</sup> ब्रह्म भूत शंकर भाष्य १।१।३

<sup>२</sup> माद्रिक अत्रिया भाष्य १।२

<sup>३</sup> माद्रिक अत्रिया भाष्य १।२

<sup>४</sup> अत्र कवेरीरमण वाक्यसूत्र ७० ३२.३।३.४२

ईश्वरत्व आत्मभूते इव अविद्याकल्पिते मामरूपे संसार प्रवेसुबीजभूते माया शक्ति<sup>१</sup> नामकम् क्व कल्पना श्री अरवाक्या अविद्या क्व निराकरण विद्या ही क्व लक्ष्मी है । ब्रह्मज्ञान मात्म में आचार्य ने कही बात इस प्रकार लिखी है —

अविद्याभ्यस्तो ब्रह्मणि एकस्मिन्नयं विद्या प्रविरुध्नाप्यते<sup>२</sup>

किन्तु विद्या से केवल व्यष्टि अविद्या क्व ही निराकरण ही लक्ष्मी है समष्टि विद्या क्व नहीं । समष्टि अविद्या से माया का जन्म लिना जाता है और व्यष्टि अविद्या से प्रपञ्च का अभिधान करनेवाली माया क्व बोध होता है । आत्मा के मुक्त होते ही संसार नष्ट नहीं हो जाता बल्कि श्री अबरवा में मुक्तता श्री दृष्टि अविद्या विमाहित नहीं रह जाती । अविद्या के निराकरण से केवल व्यष्टि माया क्व ही बोध होता है । समष्टि माया ब्रह्म के साथ-साथ अदृशित रहती है । शंकर श्री माया वा अज्ञान के संबंध में कुछ लोगों श्री धारणा है कि वह केवल मन श्री भाति मात्र है किन्तु वास्तव में शंकर श्री माया मानक्या है । इसीलिए उन्होंने उसे त्रिगुणात्मिका कहा है । जैसे ही उन्होंने एक स्थल पर मांडूक्य कारिका के मात्म में स्पष्ट लिखा है अक्षिणो में तत् शब्द से कारण रूप प्राण का संकृत किया गया है और नेत्रि से निर्विकल्प निर्विशेष और निर्गुण ब्रह्म का । माया श्री अरवा कल्पना क संबंध में उन्होंने स्पष्ट लिखा है :—

इतरान सत्त्वाभाषन प्राख्यानवीभादे प्रवेहि<sup>३</sup>

उनके इस कथन से भी माया क्व विपक्ष प्रधान इना प्रकृत होता है । गौडपादाचार्य और शंकराचार्य के माया संबंधी दृष्टिकोण में सबसे बड़ा मौलिक अंतर एक ही है । गौडपाद बैठा कि पीछे दिना आप हैं माया का विपरीत प्रधान मानते थे किन्तु शंकराचार्य श्री दृष्टि में वह विपक्ष प्रधान लक्ष्मी थी । शंकराचार्य क्व अनिर्वचनीयता बाद भी बहुत प्रसिद्ध है । वहाँ पर प्रश्न उठ लक्ष्मी है कि इनक अनिर्वचनीयताबाद का उनके विपक्षबाद से किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जा लक्ष्मी । जब वह माया क्व तत् रूप मानते थे फिर वह अनिर्वचनीय क्यों कहते थे । किन्तु अभी हम ऊपर कहें कि तत् से उनका अभिप्राय आरंभभूत लक्ष्मी मात्र से था, निर्विशेष लक्ष्मी से नहीं । निर्विशेष लक्ष्मी ही तुलना में वह माया क्व न तो लक्ष्मी कह लक्ष्मी क्व और न अक्षत् । तत् इक्षीय नहीं क्व लक्ष्मी हैं कि वह ब्रह्म के लक्ष्मी विभ्रतावाधिना से रहित नहीं है । प्रत्यक्ष प्रतीतमात्र इने के कारण उसे अक्षत् भी नहीं कह

<sup>१</sup> बृ० मा० १।१४

<sup>२</sup> ब्रह्मसूत्र भाष्य ३।१।११

<sup>३</sup> मांडूक्य कारिका ६

सन्ने, इसीलिये उसे अनिर्वचनीय कहा गया है। इस प्रसंग में एक प्रश्न पुन उठ सकता है कि वह यह कि वह भाग अनिर्वचनीय है या फिर उष मिथ्या क्यों कहा जाता है। वास्तव में माया ब्रह्म की तुलना में मिथ्या कही जाती है। वह ब्रह्म का सदृश नहीं है। इसीलिए उसे मिथ्या कहा जाता है किन्तु इसमें यह अर्थ नहीं निष्पन्नना चाहिए कि माया अभावस्था होती है। ऊपर हम उसकी भावनाएँ स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर चुके हैं।

शंकराचार्य ने ब्रह्म को ब्रह्मत्त्व और उपादान और निमित्त दोनों कारण कहा गया है। अज्ञान रूप से तो वह निमित्त कारण कहा गया है। उसका माया से अन्वय रूप उपादान कारण होता है। इस विद्वान् को तार्किक व्याख्या करने के लिए शङ्कराचार्य को विवर्तवाद की कल्पना करनी पड़ी थी। उन्हें परिश्रामनाद मान्य नहीं था। परिश्रामनाद में कारण रूप की कार्यरता में परिवर्तन निमित्त की जाती है। निर्निरोध और निर्निश्चय कारण ब्रह्म या इस अर्थरूप परिश्रामनाद की उत्पत्ति जैसे विद्वान् की जा सकती है। इसीलिए शङ्कराचार्य को विवर्तवाद की कल्पना करनी पड़ी थी। विवर्तवाद के स्वरूप का संकेत कर देना आवश्यक है। विवर्तवाद अन्वयवाद, अन्वयवाद, अज्ञानवाद आदि विविध नामों से प्रसिद्ध है। अन्वयवाद का सही अर्थ करने हुए आचार्य ने लिखा<sup>१</sup> है :—

### अन्वयवादो नाम अतामिन्वयमुद्रि

किन्ती वास्तविक वस्तु में किन्ती वस्तु ही वास्तविक वस्तु का प्रतिपूर्णा अन्वयवाद अन्वयवाद के नाम से प्रसिद्ध है। अन्वयवाद का दूसरा नाम अन्वयवादी है।

प्रमादप्रस—सर्वो पर शङ्कराचार्य का दार्शनिक विद्वान्तां का बहुत बड़ा श्रेण्य है। इस श्रेण्य का प्रमुख कारण युग का प्रसार था। वह युग शङ्कराचार्य के विद्वान्तां की शक्ति से प्रतिपन्नित हो रहा था। उस प्रतिपन्नित से संग लागों की हृदयतंत्री भी निना दिन हो उठी थी। यही कारण है कि उनकी विचारधारा पर शङ्कराचार्य का बहुत अधिक प्रभाव दिगारं पड़ता है। यहाँ पर हम उस प्रभाव का संक्षेप में ही संकेत करेंगे।

शङ्कराचार्य ने निर्गुण और अणुत्क को ही ब्रह्म कहा है। उन्होंने उपादानों में ब्रह्म सर्वव्यापी तार्किक ईश्वर को ब्रह्म का पारमार्थिक रूप नहीं माना है। उस वह अतीत्यन्तक उपाधि से किञ्चित् मान्य थे। उनकी दृष्टि में निर्निरोध ब्रह्म केवल निर्गुण और निराकार ही है। शङ्कराचार्य के इस दृष्टिकोण से प्रभावित होकर ही संज्ञा में अन्वय विचारधारा में निर्गुण ब्रह्म का ही ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप कहा है। निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण ही उन्हें निर्गुणियाँ संत कहा जाने

<sup>१</sup> वेदान्तसूत्र का भाष्य।

सगा है। वहाँ पर एक बात अवश्य स्मरण रखनी पड़ेगी वह यह कि शंकर के निर्गुण निर्दिशेष ब्रह्म से संतों का निर्गुण ब्रह्म योका विलक्षण था। उसकी निर्गुण ब्रह्म-सम्बन्धी चारखा योगियों और तांत्रिकों से प्रभावित होने के कारण सगुण निर्गुण उभयात्मक अधिक प्रतीत होती है शुद्ध निर्गुण ब्रह्म। किन्तु शंकराचार्य की ब्रह्म सम्बन्धी चारखा ब्रह्म के शुद्ध निर्गुण स्वरूप से ही सम्बन्धित है।

आत्मा का स्वरूप निरूपण भी संतों ने बहुत कुछ शंकराचार्य के दृष्ट पर किया है। शंकराचार्य के उक्त ही वे उसे भेदन, स्वयं प्रकाशरूप, निर्दिशेष, निर्दिश्य, निरुक्त निरस्य और अद्वैतरूप मानते थे। आत्मा की स्वयं प्रकाशिता का उल्लेख करते हुए सुन्दरदास ने लिखा है—

तेसहु सुन्दर भावम जानहु आपु के ज्ञान तें आपु प्रकाश<sup>१</sup>।

इसी प्रकार उसकी अलंकार का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

सुन्दर कहत एक आत्म अलंकार जानि<sup>२</sup>।

उक्त सांग शंकराचार्य के उक्त ही आत्मा और ब्रह्म की एकता और अलंकार में विस्वास करते थे। उक्त सुन्दरदास<sup>३</sup> की निम्नलिखित उक्ति से यह बात प्रकट होती है—‘सुन्दर जेय अह ज्ञानहु बसहि आपुहु ब्रह्महि जानत जानी’। इन पंक्तियों में ज्ञानाज्ञान और ज्ञेय की एकता प्रविवक्षित करके आत्मा और ब्रह्म की अद्वैतात्मकता की गई है। अद्वैत आत्मा बस अज्ञानाहित हो जाती है तब वह जीव कहलाने लगती है। शंकर के दृष्ट सिद्धांत से मी संत लोग सहमत थे। उक्त सुन्दरदास ने इस सिद्धांत का अनुसरण करते हुए लिखा है कि चैतन्य आत्मा ही अपने अज्ञान से बंधन में डूँठ जाती है।<sup>४</sup>—उन्हीं संत ने एक वृत्ते स्पष्ट पर लिखा है कि जीव अपने को अपने भ्रम से ही मूल गवा है। भ्रम का निराकरण ही जाने पर जीव शुद्ध आत्मरूप हो जाता है।<sup>५</sup> जीव को शंकराचार्य ब्रह्म का अंग नहीं अंगरह मानते थे। संतों में मी नहीं-कहीं पर शंकराचार्य के दृष्ट दृष्टिकोण की स्वीकृति प्रकट की है।

<sup>१</sup> सुंदरदास पृ० १५६

<sup>२</sup> सुंदरदास—पृ० १५५।

<sup>३</sup> सुंदरदास पृ० १४९।

<sup>४</sup> तसेहि सुंदर कह आप ही कैल्य जाहि।

अपने अज्ञान करि जीर सुं बंधावा है ॥ सुंदरदास पृ० १२९

<sup>५</sup> तसेहि सुंदर कह अम करि भूष्या आप।

अम के गप तें यह आत्मा रूप है। सुंदरदास पृ० ६७

शंकराचार्य ने ब्रह्म की सृष्टि विभिन्न रूप का मूल स्रोत माना है। संत लोग इनके इस विद्वान्त से भी सहमत थे। संत सुंदरदास ने लिखा है कि पुरुष और प्रकृति ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं और इन्हीं पुरुष और प्रकृति से आग चलकर सृष्टि का निष्पन्न हुआ है। निर्विशेष ब्रह्म से रूप्य जगत् श्री संभावना सिद्ध करने के लिए शंकराचार्य ने निवर्तवाद का आभय लिया है। निवर्तवाद की अभिम्यक्ति ब्रह्म कुंडल रत्न, हीन आदि के हृदयों के सहारे की गई है। संतों ने इन हृदयों का उत्कल्य ब्रह्म निवर्तवाद के प्रति धरनी मान्यता प्रकट की है। उदाहरण के रूप में हम संत सुंदरदास की निम्नलिखित उक्तियाँ से सहमत हैं—

१—इनके समाय क्यों ही होय रह्यो आभूपय ।  
कनक कहयो न कोऊ आभूपय कह्यो है ॥

—भामत है कुछ और को औरहि  
ज्यों रजु मँ अहिसीप में रूपा ॥<sup>२</sup>

संत साग शंकर की भाषा संयंभी धारणा से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं। वे साग शंकर के सदृश ही भाषा का मिथ्या रूप मानते थे। संत सुंदरदास ने लिखा है कि बही तब नाम रूप विस्तार पड़ता है यह सप मिथ्या भाषा है।<sup>३</sup> शंकर के सदृश ही वे साग भाषा का त्रिगुणात्मिका भी मानते थे। संत कबीर ने<sup>४</sup> लिखा है—भाषा सतोगुण रत्नागुण, और तमोगुण से बनी हुई है। इन्हीं गुणों के सहारे उठने समस्त प्रपंच का विस्तार किया है।

शंकराचार्य ने जीव की जनकता स्पष्ट करने के लिए प्रतिबिम्बवाद का आभय लिया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार एक ही चन्द्र का प्रतिबिम्ब जल में पड़ने पर बीबिया के मेरु से अनेक रूप दिताई पड़ता है ठीकी प्रकार एक ब्रह्मदेव नामा ही अज्ञान और भ्रम के कारण अनेक दिगाई पड़ती है। संत मुन्दरदास ने शंकराचार्य के इस विद्वान्त की सर्व और पटों के मौलिक हृदयों के सहारे और भी सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति की है। वह लिखते हैं कि जिस प्रकार मुगन्धिन जल, दुर्गन्धिन जल, गंगा जल, मदिता गया लल जल पुन आदि निविष तरल पदार्थों से भरे हुए पटों पर एक ही सूर्य की लक्ष्या विविध प्रकार से प्रतिबिम्ब होती है ठीकी प्रकार ग देव मेरु

<sup>१</sup> ब्रह्म से पुरुष और प्रकृति प्रगट भई ॥ सुंदर बिनास प० ११०

<sup>२</sup> सुंदरबिनास प० १२१

<sup>३</sup> सुंदरबिनास प० १४०

<sup>४</sup> भावकृत अहाँ सगि मिथ्या भाषा मानिए । सुंदर बिनास प० १२१

<sup>५</sup> जल जलमे से बीन्ही भाषा ।  
बादि जालि विन्धारि उताषा ॥ ६० प० ५० २६६



से एक ही आत्मा विभिन्न जीवों के रूप में लक्षित होती है।<sup>१</sup> शंकराचार्य की मुक्ति सम्बन्धी चरणा ने भी संतों को प्रभावित किया है। उनका कहना है कि जीव के अज्ञान का जब निराकरण हो जाता है तभी वह लम्बिदानन्द आत्मरूप हो जाता है। इस सिद्धांत की मूलक संत मुन्दरदास की निम्नलिखित उक्ति में मिलती है—

तैसेहि सुन्दर यह भ्रम करि मूर्ख्यो आप ।

भ्रम के गये ते यह आत्मा अनूप है ॥

भ्रम के निराकरण के साधन रूप में शंकराचार्य ने ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया है। उनका विश्वास था कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। संत लोग ज्ञान के महत्त्व से पूर्णतया पर्युत्थित थे। मुन्दरदास ने ज्ञान के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि ज्ञान अमृत के समुद्र के समान है। उसकी महिमा का बर्णन कोई नहीं कर सकता।<sup>२</sup> वहाँ पर हमने संतों पर पड़ी हुई प्रतिक्रिया की बहुत साधारण भ्रंश प्रस्तुत की है। मेरी समझ में संत लोग शंकराचार्य से सर्वाधिक प्रभावित थे। यदि हम सब प्रमाणा की विवेचना की जाय तो एक मई पीसिस शिल बायेगी।

### जैन दर्शन और संत कवि

जैन दर्शन भी भारत का एक प्रसिद्ध माचीन दर्शन है। इस दर्शन के आदि प्रवर्तक पार्श्वनाथ माने जाते हैं। इनका जन्म काशी में ८२७ ई. पूर्व में हुआ था। इन्होंने तीस वर्ष की अवस्था में ही संन्यास ग्रहण करके वैश्या की उपासना कर ली

<sup>१</sup> एक बर माहिं ती सुगंध जब भरि राखी,  
एक बर माहिं ती सुगंध बल भरवा है ।  
एक बर माहिं पुनि गंगप्रक राख्यो आनि,  
एक बर माहिं आनि मरिराहु करबो है ॥  
एक बर एक एक एक माहिं लवणीत,  
सबही में सचिता को प्रतिबिम्ब परबो है ।  
तैसे ही सुन्दर ऊँच नीच मरप एक बर,  
देह भेद हेनि भिन्न-भिन्न नाम बरवा है ॥

मुन्दरदास पृ० ११९

<sup>२</sup> सुन्दरदास पृ० १७

<sup>३</sup> सुन्दर ज्ञान समूह की महिमा कविता की।

अमृत रस ने ही भरयो मुम त्रिन जावक स्वयं ॥

संत सुभाषार पृ० ५८१

की। इस मंत्र के अन्तिम तीर्थंकर महाश्वर स्वामी माने जाते हैं। इनका जन्मकाल ५६६ ई० पूर्व में माना जाता है। इन्होंने भी तीर्थ व्रत की व्यवस्था में ही अन्त्याय लेखक अर्धव्याख्या प्राप्त कर ली थी।

जैन वास्तववादी दर्शन है। इसका वास्तववाद भ्रम्य दर्शनों के वास्तववाद से बड़ा भिन्न है। कुछ वास्तववादी ब्रह्म को इन्द्रियजन्य ज्ञानगम्य मानते हैं और कुछ मन और बुद्धिजन्य ज्ञानगम्य सिद्ध करते हैं। किन्तु जैनी ब्रह्म के अस्तित्व का अल्प प्रमाणित करने में इन्द्रिय मन और बुद्धि दोनों का आशय लेते हैं। ये लोग वास्तववादी भी हैं। उनका कहना है कि संसार श्री प्रत्यक्ष बस्तु अनेक धर्मों है। किन्तु बस्तुओं के इस अनन्त वर्णमाला स्वरूप का ज्ञान सब मानवों को नहीं होता है। उसमें प्रत्युत्थी उद्योग का हस्तौ है बिचने केवल ही उदात्तिय कर ली है।

जैन दर्शन में ज्ञान साधारणतया तीन प्रकार का पतलाया गया है—दुष्टय, नर आर प्रमाणा। दुष्टय वह ज्ञान है जिसमें विषयान वस्तु का विषयमानता का ही मान होता है। इसमें अन्य प्रमाणों का निर्बंध रहता है। जब अन्य प्रमाणों का निर्बंध बिना ही किसी वस्तु की विषयमानता निश्चित की जाती है तब उक्त ज्ञान का मत करते हैं। विषयमान वस्तु के प्रति अविश्व संदेहपूर्ण ज्ञान का प्रमाण कहा जाता है।

जैन दर्शन में उत्सवों की भीमांशा इन्वों के अभिधान से भी गई है। जैन म्याय में गुण और वर्णों (वशिष्ट वस्तु का रूप कहा गया है। वस्तु उच्छा के अनिवार्य धर्म गुण रहे जाने हैं और देशकाल आदि से प्रमाणित होकर परिणामित होनेवाले धर्म वर्णों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्व के भी दो विभाग किये गए हैं एक देशकाली इन्व और बुद्धेशकाली इन्व। एक देशकाली इन्व कालमात्र है किन्तु बुद्धेशकाली इन्व के दो स्थूल विभाग किये जाते हैं—बीज और अबीज। आग इनके भी कई विभाग और उर्वरिभाग किये गए हैं। संतो पर इनका चार प्रकार नहीं दिगार पड़ता हम-नर अन्व का चार निर्देश नहीं किया जा रहा है।

पदां पर हम जैन दर्शन के शास्त्राद या अनेकांशाद का भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। अर्थात्तों का कहना है कि यह संसार नामा मरु है। भिन्न-भिन्न स्थिति तब ज्ञान की प्रत्युत्थी अर्थात्तों का प्रमाण अनेक स्थितिमात्र से करते हैं। एकी रण में ज्ञान का वास्तविक रूप क्या है, यह निश्चय नहीं हो सकता। इन्व अर्थात्तों के शास्त्राद का प्रमाण दिया जा। ये प्रमाण परमाणु की भीमां बरने के अति उन्नत में शास्त्र का प्रमाण आसराय मानो य। जब पर विचार परमाणु का स्पष्ट करने के लिए जैन शास्त्रिक उन्नत परते ज्ञान का प्रमाण अन्व कर देते

है। प्रत्येक परामर्श के साथ स्वात का प्रयोग ही स्वातवात् है। इसी को कुछ लोग अनेकतवाद कहते हैं।

जैन दर्शन में जीव तत्त्व पर भी विचार से विचार किया गया है। उसमें उसे केवल इन्द्र माना गया है। प्रद्व दर्शन<sup>१</sup> समुच्च में स्पष्ट लिखा है—'केवल लक्षणो जीव' अर्थात् जीव का सामान्य लक्षण कैवल्यता है। इसके अतिरिक्त जीव में अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त स्वामाधिक गुण पाये जाते हैं किन्तु जीवों के सभी बरस से यह स्वामाधिक बर्ण आच्छेद रहते हैं। नही करवा है कि जीव इन गुणों की अनुभूति नहीं कर पाता किन्तु शुभ कर्मों से जब यह आबरव चीरा हो जाता है तब उसे इन शुभ कर्मों का ज्ञान होता है। जैनी लोग जीव को कर्मों का मोटा और कर्ता दोनों ही मानते हैं। इनके मतानुसार जीव शरीर के अदृश परिमाणवाला होता है। हाथी विद्यालक्ष्मण होता है इसीलिए उसका जीव भी पीरी जैसे लघुकाय बंदूक जीव की अपेक्षा बड़ा है। इनका सिद्धांत है कि बिना बड़ा शरीर होता है उतना ही बड़ा जीव भी होता है। इस दर्शन में जीव का परम सच्च मुक्तावरणा जिसे वे अर्हतावस्था कहते हैं प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए इस दर्शन में तीन साधन कथनाने गये हैं। उच्चक दर्शन उच्चक ज्ञान तथा उच्चक चरित्र। इन तीनों का जैन दर्शन में एतन्न बड़ा गया है।<sup>२</sup> इसमें इनका बड़े विचार से वर्णन किया गया है। इनमें से उच्चक चरित्र के पाँच महाजन विशेष उल्लेखनीय हैं। वे क्रमशः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं। पारिविक दृष्टि से उपास होने पर कोई भी दर्शन कष्ट मिटीशरकारी बना नहीं रह सकता। उसमें ईश्वर की भावना किसी न किसी रूप में स्वयमेव आ सुवती है। जैन दर्शन में भी ऐसा ही हुआ है। उसमें सिद्धों ने ईश्वर का स्थान ग्रहण कर लिया है। साधारण जनता उन्हें ईश्वर रूप में पूजने लगी।

जैन दर्शन में साधना मार्ग का भी बड़ा विलुप्त वर्णन मिलता है। वे लोग साधना के लक्ष्य मुक्ति तक पहुँचने में बौद्ध साधनों को पार करना अनिवार्य कथलाते हैं। यह लोग उनके बहाँ गुण स्थान कहलाते हैं।

संतों ने जैन दर्शन के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन की संभवतः कोई चेष्टा नहीं की थी। फिर भी तत्कालीन जैन मुनियों की उत्त-संगति के प्रभाव से जैन दर्शन का कुछ सिद्धांतों की लक्ष्य उनकी विचारधारा पर पड़ ही गई है। अस्वात्मवत् की अपेक्षा संत लोग जैन दर्शन का आचार पक्ष से अधिक प्रभावित हुए हैं। उसमें उच्चक दर्शन, उच्चक ज्ञान और उच्चक चरित्र से उच्चकित अनेक अतिमा मिलती हैं। उच्चक दर्शन और उच्चक ज्ञान पर बल देस हुए संत मुन्दरदास ने लिखा है—'जो साधन स्वर्ग को

<sup>१</sup> यह दर्शन समुच्चय कारिका ४६

<sup>२</sup> उच्चक दर्शन ज्ञान चरित्रादि मीमांसा मार्गः तंत्र सूत्र १।२ भारतीय दर्शन पृ० १५०

वर्षा बगल से बसकर समझता है वही सम्बन्धीय ज्ञानी होता है। उसी सम्बन्धीय ज्ञान से ज्ञान का निष्कर्षण होता है<sup>१</sup>। संत मुन्दरदास ने सम्बन्धीय का उद्देश्य भी दिया है। वह लिखते हैं कि जैन मत के चार रूप उत्तर दान, उप शील एवं सत्याचारण हैं। सम्बन्धीय जैन मत, बचन, ज्ञाना से शुद्ध होकर सबके प्रति सहानुभूति और दया का भाव रखता है और अज्ञानी बुद्धि से विचारों का दूर कर देता है<sup>२</sup>। कुछ संतों में हमें जर्मी-जर्मी पर श्रीरह गुप्त स्थानों का संकेत भी मिलता है। निम्नलिखित पंक्तियों में संत हरिका वाह्य ने सम्बन्धीय ज्ञानी की ओर इंगित किया है।

श्रीरह<sup>३</sup> श्रीही जमक होय

बिन सदगुण नहीं पाये कोय।

श्रीरह में भेद ओ भाये जाय जपलोक बहुरिन आवे ॥

जैन दर्शन के अन्तर्गत पद की दो एक बातों का प्रभाव भी संतों की बानियों पर देखा जा सकता है। जैन-दर्शन में जीव का शरीर परिमानी माना गया है अर्थात् जिस प्राणी का किन्ता बड़ा शरीर होता है उसका जीव भी उतना ही बड़ा होता है। संतों में एक साथ स्थल पर जैन-दर्शन के दस सिद्धांत की छाया मिलती है। संत मुन्दरदास ने दस सिद्धांत की स्पष्टता व्यक्त हुए लिखा है—जिस प्राणी का शरीर होता है वही उद्यम घटना होता है—एक प्रकार हम देखते हैं कि संतों की बानियों में जैन-दर्शन के कुछ सिद्धांतों की छाप भी मिलती है।

### श्रीरह-धर्म और निर्गुण काव्यधारा

श्रीरह-धर्म विरार का एक महान् धर्म है। इसके आदि प्रबलतक गीतम हुक माने गये हैं। कहते हैं कि उन्होंने अपने अनेक पुत्र जन्मों में पापविना का अन्वेषण किया था। इनके विना का नाम शुक्रासन और माता का नाम महामाया था। ५०५ विक्रमी<sup>४</sup>

<sup>१</sup> आप्तब्रह्मब्रह्मण एक कर जैन सब सुन्दर कहत बह ज्ञान धन भाग है। सुन्दरविपास पृ० १४८।

<sup>२</sup> — ईश मति उई बिन शत्रु क भूति जाव।

दास तर शीव साय भावना से तरिप ॥

मम बच काय शुक सबसु दयालु हई।

बाप बुद्धि हरि कर या उर धारिप ॥ सुन्दरविपास पृ० १००

<sup>३</sup> हरिका वाह्य विदार काव के पुत्रे हुए पर पृ० २

<sup>४</sup> का पर की उवहारु है श्रीवेदि ता पर जैन श्रीवेदि धर्म ॥ सुन्दरविपास पृ० १५

<sup>५</sup> श्रीरह दान पृ० ४

पूर्व में शुक्ली नामक स्थान में इनका बन्ध हुआ था। २६ वर्ष की अवस्था में वह अपनी पिय पत्नी महापती पद्यापत और नववत्स शिशु राहुण का मोह बँधन त्याग कर महाभिनिकम्ब<sup>१</sup> बन गये। पोर राधना के बाद लगभग ४०१ विक्रमी<sup>२</sup> पूर्व वैशाखी पूर्णिमा को उदयेला नामक स्थान में इन्होंने उमवाशि की प्राप्ति हुई और उठी समय उन्होंने चार प्रसिद्ध आर्ष उर्यों का साधुत्कार किया। उठी दिन से वह कुछ कदवाने लगे। इसी वर्ष आषाढी पूर्णिमा के दिन इन्होंने काशी में पाँच भिक्षुओं को अपने परम गुरु उद्देश्य दिया। वह पटना बौद्धधर्म में एक प्रवचन<sup>३</sup> के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद वे ८० वर्ष की आयु तक बनवा को उत्पर्म का उद्देश्य देते रहे और अस्थीर्षा वय लगने पर कुशीनगर नामक स्थान में शैव निर्वाण का प्राप्त हो गये।

मगधान् बुद्ध के उद्देश्य पाक्षी भाग में पिटक नामक ग्रंथों में संग्रहित हैं। ये पिटक तीन हैं। विनय पिटक, सुत्त पिटक, अमिषम पिटक। इन तीनों का मिलाकर त्रिपिटक की संज्ञा दी गई। विनय पिटक<sup>४</sup> भिक्षु भिक्षुशियों के नियमों का संकलन है। सुत्त पिटक में संघ परम गुरु प्रतिपादन किया गया है। अमिषम<sup>५</sup> पिटक में सुत्त पिटक के शिक्षाओं का विपरीकरण मिलता है। इस प्रकार त्रिपिटक ग्रंथ मगधान् बुद्ध उद्देश्य बौद्ध धर्म के मूल शिक्षाओं का संग्रह है।

<sup>१</sup> महाभिनिकम्ब मगधान् के महात्पाग की पारिभाषिक संज्ञा है।

<sup>२</sup> बौद्ध दर्शन पृ० ५

<sup>३</sup> बौद्ध शिक्षाओं के प्रथम बार ३ उद्देश्य दिये जाये की वह परिभाषिक संज्ञा है।

<sup>४</sup> विनयपिटक तीन भाग है—१ सुत्त विनय, २ संघक परिवार, सुत्त विनय के ४ दो भाग हैं। भिक्षु प्राप्ति मोक्ष और दूसरा भिक्षुकी प्राप्ति मोक्ष संघक के दो भाग महावण और चक्रवर्ण। इसका विलुप्त विवेचन—५ हिन्दी आक इतिहास सिन्दरेष भाग १ पृ० २१ ३३

<sup>५</sup> सुत्तपिटक—इसके चार भाग हैं जो भिक्षुओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे विनय अमरा १ शीबनिष्ठा २ मज्झिम निष्ठा ३ संतुल निष्ठा ४ सुद्धकनिष्ठा अगुत्तर निष्ठा हैं। इनमें से सुद्धकनिष्ठा बहुत प्रसिद्ध है। इसमें १५ सुत्तों संग्रहित हैं। १ गदक वाद २ चम्मपद ३ उद्दान ४ इतिपुत्त ५ सुत्तविपान ६ विमानवत्तपपेत्तवत्तु धेरणावा ७ वेरीणावा ८ जातक ९ निद्वैम १० परिसमिवा ममा ११ अणदान १४ उदयेला १५ वरिवापिटक ६ हिन्दी आक इतिहास सिन्दरेष भाग २ पृ० ३३। १५

<sup>६</sup> अमिषान पिटक के सात भाग हैं—१—चम्मसंगलि २—विणग ३—घानुकवा ४—पुगम वरणि ५—कवाणमु ६—दमक ७—पद्दान ८—हिन्दी आक इतिहास सिन्दरेष विनयपिटक पृ० १९५—१९३

बीद धर्म में बुद्ध धर्म और संघ इन तीन को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। तथा बौद्ध धर्म ही जो इन तीन धर्मों का शरणाग्र होना है। इन तीन धर्मों के अतिरिक्त मगधान् बुद्ध की शिक्षा के कुछ धर्म और बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें सबसे प्रमुख बुद्धिवाद<sup>१</sup> है। मगधान् बुद्ध ने अंबानुसरण को पार निदा की थी। उनका कहना था कि जिस प्रकार बुद्धिमान् पुण्य स्वर्ग को अग्नि में दासकर या पत्थरी पर पतित करके उसे प्रहस्य करते हैं उसी प्रकार मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मरे बचने को तार्किकता और सतकता की परीक्षा करके ही उन्हें प्रहस्य करे। बीद धर्म में स्थल स्थल पर पुद्गलशरणा की निदा और पुच्छिशरणा की प्रशंसा की गई है। बीद धर्म की यह बुद्धिवादित्व विरुद्ध के लिए उसकी महान् देन है।

मगधान् बुद्ध के उद्देश्यों की दृष्टी विरोधता उनकी व्यावहारिकता है। वह धर्म तर्कवाद में विरक्त नहीं करते थे। वह अत्याहुत प्रश्नों का उत्तर देना अनारम्भक मानते थे। दिव्या तर्कबाल में कौतुक समय का दुर्बलयोग करने से वह मौन समाधि में अधिक विरक्त करते थे। बाल्य में संशयता<sup>२</sup> से वे बहुत सही निता है कि उन्होंने कभी किसी को उद्देश्य नहीं दिया था। उनका मीन ही उनका बचन था। अग्निदिन से सैध्व निर्वास दिन तक का उनका जीवन-धरित ही उनका प्रधान उद्देश्य था।

मगधान् बुद्ध के द्वारा उद्दिष्ट पार धार्य सत्य बीद-धर्म की आधार<sup>३</sup> मूर्ति है। वे धार्य सत्य क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—दुःख<sup>४</sup> अर्थात् यह लौकिक जीवन अन्त-मरण के कारण अनन्त दुःखमय है।

२—समुदय<sup>५</sup> अर्थात् दुःख के उदय होने के कारणों पर विचार करना।

<sup>१</sup> शानसात समुत्थय — काय देव का ३२वाँ उदाहरण।

<sup>२</sup> ऐतिय संशयता — मूल हिन्दी अनुवाद पृ० १४३ १४४

<sup>३</sup> विरक्त से विरक्तता करनेवाला मार्गों में अर्थात् मार्ग श्रेष्ठ है। सत्यों में धार्य सत्य धर्म है। सब धर्मों में विरक्त धर्म श्रेष्ठ है। धम्म पाठ—२०।१

<sup>४</sup> दुःखी पृ० में ऐतिय।

<sup>५</sup> ऐतिय बीद धर्म—७० १४

हे विद्युत्तय दुःख समुदय दूरता धार्यमय है। दुःख का कारण हेतु नृप्या है जो बारबार प्राणियों का उत्पन्न करती है। पीबमिका विरक्तों के राग से कुछ है तथा सब विरक्तों का अविच्छिन्न बन्धनापी है। वहाँ कीर वहाँ सब धर्मों की प्रति शोचनी रहता है। वह नृप्या तीन प्रकार की है—काय नृप्या, मय नृप्या तथा विमय नृप्या संशय में दुःख समुदय के वही उत्पन्न है।

३—निरोध<sup>१</sup> गामिनी प्रतिपद अर्थात् दुःखों के विनाश के लिए प्रतिपद मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। यहाँ पर हम प्रतिपद मार्ग को घोषा अधिक स्पष्ट कर देना चाहते हैं। इस मार्ग का बृहत् नाम अर्थांगिक मार्ग भी है।<sup>२</sup> यह अर्थांग मार्ग प्रकाशील और समाधि नामक त्रिपल विविध पदों से ही बना है। इसके आठ-आठ अंग इस प्रकार हैं—

- १—सम्पक् इन्द्रि
- २—सम्पक् संकल्प
- ३—सम्पक् वाचा
- ४—सम्पक् कर्मान्त
- ५—सम्पक् आभीषिक्त
- ६—सम्पक् म्नायाम
- ७—सम्पक् स्मृति
- ८—सम्पक् समाधि

बौद्ध-धर्म में इस अर्थांगिक मार्ग की महती महिमा का बर्णन मिलता<sup>३</sup> है। अर्थांगिक मार्ग में सभी अंगों के आगे सम्पक् शब्द जुड़ा हुआ है। सम्पक् से अभिप्राय मन्वमात्र लिया गया है। मगवान् बुद्ध का कहना था कि किसी भी बस्तु में न अल्पविक-र्य होना चाहिए और न वियत होना चाहिए। वास्तव में सम्पक् या मन्व मात्र से उल्लेख सेवन करना चाहिए। इस सम्पक् का मन्वमात्र की तात्पर्य को ही बौद्ध मत में मन्वम प्रतिपदा का नाम दिया गया है। इस मन्वम मार्ग का मन्वम प्रतिपदा का प्रतिपादन मगवान् बुद्ध ने इस प्रकार किया<sup>४</sup> था।

<sup>१</sup> बुद्ध निरोध को ही निर्वाण भी कहते हैं।

बौद्ध दर्शन पृ० १५-१६ पर इस प्रकार देखिये—

बुद्ध का वह मित्रवत्ते बुद्धनिरोध प्रतिपद। जो तत्साधेन तद्व्याप अनेसविराग विरोधी बाणो पटिनिस्सामो मुक्ति अनासया। अर्थात् बुद्ध निरोध अर्थात्सत्य उस एव्य से अतीत सगुण<sup>५</sup> धैर्य का नाम है उस गुण का त्याग प्रतिपद मुक्ति तथा अनासय दयाव न देना बही है।

<sup>२</sup> बौद्ध दर्शन—पृ० १६।

<sup>३</sup> अन्वमर में किया है—मार्गाणां अर्थांगिकः श्रेयः—२०।२

पन्मपद में ही २०।२ में मिलता है—जसो व अगो नर्थांवा इस्समस विगुदिवा इत दि तुण्हे वटिपग्गव मात्सेन पमोहमू

<sup>४</sup> बौद्धदर्शन बज्रदेव उपासना पृ० ७२ (१६७६)

इस्समस विगुदिवा

हि मिथुगण्य संसार को परिष्कार कर निवृत्तिमार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति प्रथम जिन को चाहिए कि दानों अन्तों का सेवन न करें। कौन से दो अन्त ? एक अन्त है—योग वस्तुओं में योग की इच्छा से तदा जगा रहना। यह विद्यायानुयोग, हीन, प्राण्य आप्यामिष्या ये वृथक् से जानेवाला अनायं तथा अनर्थ उत्पन्न करनेवाला है। दूसरा अन्त है—शीघ्र को च्य देना। यह भी वृथक् अनायं तथा हानि उत्पन्न करनेवाला है। इन दानों अन्तों के सेवन करने से मानव भवचक्र से कमी उद्धार नहीं पा सकता। उसके उद्धार का साक्षात् इन अन्तों को छोड़कर शीघ्र का मार्ग है। बुद्ध ने इसी का प्रतिपादन किया है। यह मार्ग निम अन्वीजन करनेवाला ज्ञान उत्पन्न करने वाला है। यह निष्ठ का शान्ति प्रदान करता है, अन्वक् ज्ञान उत्पन्न करता है तथा निर्वाण उत्पन्न करता है। इसी मार्ग का सेवन प्रत्येक प्रभवित्र के लिए शिक्कर है।

दर्शन क्षेत्र में मगवान् बुद्ध की सबसे महान् देन प्रतीत्यसमुत्पादवाद<sup>१</sup> है। प्रतीत्य समुत्पादवाद बौद्ध-दशन के अर्थ कारण सम्बन्ध पर अत्यन्त प्रभाव डालता है। उनका कहना था कि एक पशु से दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। दूसरी वस्तु से तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है। इस प्रकार अर्थ कारण का पचाह सदैव इस जगत् में जागरूक रहता है। प्रतीत्य का सम्बन्ध अर्थ है किमी वस्तु को प्राप्ति होने पर और समुत्पाद का अर्थ है प्राप्त होने पर अर्थान् एक कारण का उत्पन्न होने पर दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। बौद्ध का यह सापेक्ष अर्थशास्त्रवाद अर्थ और योग का इतिहास स्पष्ट करता है। इसमें मनुष्य की उत्पत्ति शृ ललाओं पर विचार से विचार किया गया है। इस शृ लला के १२ अंग<sup>२</sup> और १ अंश<sup>३</sup> माने गए हैं। इन सब का बौद्ध ग्रंथों में बड़े विस्तार से उल्लेख किया गया है। बौद्ध लोग कारणता के इस चक्र का अन्त और विरतन मानते हैं। यही कारण है कि वे ईश्वर की ब्रह्म श्रेष्ठ जगत् के किमी मूल कारण<sup>४</sup> की कल्पना निरर्थक मानते हैं। इसीलिए उनका दशन निर्दिश्वरवादी हो गया है।

बौद्ध लोग निर्दिश्वरवादी हो नहीं अनात्मवादी भी थे। मगवान् बुद्ध अत्मा का अस्तित्व की बातें अज्ञा भी अन्तर्भ मानते थे। उनका कहना था कि अत्मा के अस्तित्व की मानना ही अर्थकार की मननी है। उनका विज्ञान था कि काम का उदय

<sup>१</sup> प्रतीत्यसमुत्पादवाद—बौद्धशास्त्र ८१

<sup>२</sup> देविय अविज्जय काण १।१०। य कारण चक्र इस प्रकार है—बौद्ध शास्त्र १० ८१

<sup>३</sup> बौद्ध शास्त्र अन्वेष उदात्तात् १० ८४-९१

<sup>४</sup> ईश्वरिवाच के अधिक मूल और केवलमूल में ईश्वर के अन्वेष का अर्थमान किया गया है।

<sup>५</sup> ईश्वरिवाच दिगी १० ७१ बौद्ध शास्त्र १ ११



आत्मनिश्वास की भूमि पर ही होता है। अतएव अम पर विचार प्राप्त करने के लिए आत्म-विचार का नियम परमावश्यक है।<sup>१</sup> नागार्जुन ने भी इसी बात का प्रतिपादन किया है। उन्होंने लिखा है—

यं परकस्यामानं तस्याहमिति शारवत स्नेहः ।

स्नेहात् गुणेषु मृष्यति मृष्या दोषोऽस्तिरक्कुलते ॥ इत्यादि

अर्थात् जो आत्मदर्शन करता है उक्तका अर्थ से वास्तव स्नेह हो जाता है और अह स्नेह से मृष्या उत्पन्न होती है। मृष्या से ही समस्त दोषों का उत्पन्न होता है। बौद्धों का यह आत्मवाद पुद्गल नैरत्मवाद<sup>२</sup> या अरहण दृष्टिवाद<sup>३</sup> के नाम से भी प्रसिद्ध है। यद्यपि वास्तविक दृष्टि से बौद्ध धर्म में आत्मवाद का विचार से खंडन किया गया है।<sup>४</sup> किंतु व्यावहारिक रूप से आत्मा की भावना उन्हें माय्य की रीति उस दर्शन के विवेकनों से प्रकृत होता है। आत्मा के लिए बौद्ध लोगों ने संतान शब्द का प्रयोग किया है। किंतु उनका कहना है कि इन्द्रिय, इन्द्रिय विषय तथा कृत उक्तत्व विज्ञान आदि अत्यंत पानुओं की प्राप्ति नामक संस्कार के द्वारा प्रतिष्ठित संपत्त ही संतान के नाम से प्रसिद्ध है।<sup>५</sup> वही बौद्धों का संतानवाद है। संक्षेप में हम यह लक्ष्य हैं कि बौद्धों की आत्मा का आध्यात्मिक सिद्धांत माय्य नहीं था। उनका आत्मा उक्तत्वी दृष्टिकोण बहुत कुछ विज्ञानपारी था। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने मन और मन की वृत्तियों की तथा में सर्वत्र धारणा प्रकृत की है। उन्होंने व्यक्ति का विरलेपण किया है और उसे रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का संपत्त माना है।<sup>६</sup>

बौद्ध-दर्शन में यद्यपि आत्मवाद का अवरण किया गया है किंतु अन्त्यात्मवाद<sup>७</sup> की प्रकृति मिलती है। इस विरोधात्मक सिद्धांत का प्रतिपादन मिलिन्द मम्म नामक ग्रंथ में बड़े कुम्भर ढंग से किया गया है। बौद्धों का कहना है कि मित प्रकार कीर शिवा<sup>८</sup> प्रत्यक्ष देखने में तो अतिरिक्त प्रतीत होती है किंतु यह प्रतिषेध परिवर्तन

<sup>१</sup> दार्शनिकशास्त्र—पृष्ठिका पृ० ३९९ ।

<sup>२</sup> " " पृ० ९९

<sup>३</sup> " " पृ० ९९

<sup>४</sup> मिलिन्द मम्म १।१।१ और २।०।१५ और लोक क्लृप्त काक की ईस्ट एंड २४ भूमिका पृ० २३ और २४

<sup>५</sup> बौद्ध द्वात—पृ० १८ ।

<sup>६</sup> बुद्धिद्वय देवदत्त मू दि बुद्धे—पूर्वोक्त । ई० काजें (१८५३) पृ० ८

<sup>७</sup> बौद्धविज्ञान—३।१ ९ का अनुवाद बुद्धिद्वय देवदत्त मू दि बुद्धे पृ० ७९ ईश्वरें भागसंध ११५४ ।

<sup>८</sup> बौद्ध द्वात—१०४ ।

शील है। जिस प्रकार दीर्घशिला का हम न तो बहली हुई बहू तकने हैं और न बही बहू तकने हैं ठही तरह से पुनर्जन्म लेनेवाले जीव का न तो हम पूर्वजन्म का जीव बहू तकने हैं और न नया जीव ही बहू तकने हैं। वास्तव में वह प्रवाह रूप जीव है जो एक जन्म के विज्ञान के रूप में घीरा होत ही दूसरे जन्म के विज्ञान के रूप में प्रकलित हा उठता है। शीक के अतिरिक्त इस सिद्धांत का स्पष्टीकरण रूप<sup>१</sup> से बनी हुई पीडा के दृष्टान्त से भी किया गया है। जिस प्रकार दूध से बनी हुई बस्तुरी दूध नहीं बहलाती फिर भी वे दूध की ही जाती हैं ठही प्रकार दूसरा जन्म लेने वाला जीव न तो पूर्व जन्म का जीव होता है और न उससे भिन्न ही होता है। इस प्रकार संक्षेप में मगवान् बुद्ध के द्वारा प्रपत्रित बोद्ध धर्म और दर्शन के मूल सिद्धांत पही हैं।

बौद्ध धर्म निवृत्तिमार्गी धर्म है। पही कारण है उसमें वैराग्य का सबसे अधिक महत्व दिया गया है। धम्मपद<sup>२</sup> में लिखा है—'पियगा सरठा पम्मान द्विपदामांष पबनुमा' अर्थात् एक धर्मों में वैराग्य भेष्ट है और मनुष्यों में अत्युत्तमान जानी बुद्ध भेष्ट है। इस उद्धरण का यह भाव भी प्रकट जाती है कि बौद्ध धर्म में वैराग्य के साथ साथ ज्ञान का भी विशेष महत्व दिया गया है। ज्ञान और वैराग्य में पूरी आर्या रखते हुए भी मगवान् बुद्ध ने अपना स्नेह प्रधान कटोर तपस्वा की उपेक्षा की थी<sup>३</sup>। उनका कहना था कि बटार तपस्वा से ही सम्भाषि प्राप्त नहीं हा सकती। यह बात उन्होंने स्वयं अपने जीवन में अनुभव की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म में पहाँ पर भी मत्पनाग<sup>४</sup> का ही महत्व किया है।

बौद्ध धर्म की उत्पुंका विशेषताओं का देखकर कुछ लोग उसे मीतिज्ञतादी बहू तकने हैं। किंतु बौद्ध-धर्म शैशानात्र भी मीतिज्ञतादी नहीं है यह बात इस धर्म की आचार निष्ठा से ही प्रकट है। मीतिज्ञतादी के लिए ज्ञान वैराग्य और सदाचार काई महत्त्व नहीं रखते हैं किंतु बौद्ध-धर्म में ज्ञान वैराग्य और सदाचार का महत्त्व दिया गया है, अतएव बहू मीतिज्ञतादी नहीं बहू जा सकता।

मगरान् बुद्ध के परवान् बौद्ध धर्म विविध निघांतों में विभाजित हा गया था। ये निघांत संश्रा में १८ भाग पव हैं। कयात्तपु नामक ग्रंथ में तथा जानी माता में अनुशासित मर्या बन्धित रविा अथादय निराय नामक बोद्ध-ग्रंथ में इन १८ निघांतों का याका देर फर के साथ वर्णन किया गया है। इन १८ सम्यग्दावों की

<sup>१</sup> बौद्धरत्न—पृ १०५।

<sup>२</sup> धम्मपद—पृ २१।

<sup>३</sup> महावज्ज—पृ १११७।

अतएव तो अष्टोक्त से पहले ही हो चुकी थी। अष्टोक्त के बाद इनकी और शास्त्रों प्रकाशार्थ विकसित हुई। इन शास्त्राग्रो-महाशास्त्रों में अनेक निष्कर्षों की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। इन्हीं अनेक निष्कर्षों से आगे चलकर महापान का विकास हुआ। महापानचक्र<sup>२</sup> में उसमें अपने इन सिद्धांतों की प्रतिष्ठा की बिनके कारण वे स्वयं बरिधियों से अलग हो गये थे। हीनवान मगवान् बुद्ध के प्राचीन सिद्धांतों को लेकर रिक्त रहा। हीनवानियों को स्वयंवरिवादी भी कहते थे। हीनवानी और महापानियों के मौखिक सिद्धांतों में बड़ा अंतर पड़ गया है। ऊपर हमने बिन सिद्धांतों का विशेषण किया है वे हीनवानियों के ही हैं। अब हम संक्षेप में महापानियों के सिद्धांतों पर भी प्रकाश डालेंगे।

महापान की के सिद्धांतों का विशेषण महापान सूत्रों में किया गया है। ये महापान सूत्र संस्कृत<sup>३</sup> में १६ हैं। उनके नाम क्रमशः अष्ट तादृशिक, प्रकाश पाठिका, अर्धमं बुद्धीक, ललित विस्तर, संकावतार नूत, स्वर्णपमात, गंधर्वूह, तन्नात गुणक, तन्नात गुणकान, समाधिगुण इत्यभूमेस्वर हैं। इस महापान की में हीनपान की अपेक्षा निम्नलिखित मनीन ठरने की प्रतिष्ठा हुई—बोधित्व का महत्त्व, विज्ञान का सिद्धांत इत्यभूमि की सम्पना, निर्वास की मानना, भक्तिरत्न का समावेश, पारमिता की वाप्ना, कर्मरूपता की धारणा। इनमें से कुछ सिद्धांतों का छोटा समावेश उत्तर कालीन हीनपान में होने लगा था किन्तु इनका सम्यक विस्तार हमें महापान में ही दिखाई दिया। अब हम इन सिद्धांतों का संक्षेप में विशेषण करेंगे।

महापान की उत्तम पहली विशेषता बोधित्व की वस्तुता है। इस बोधित्व की धारणा का समावेश उत्तम योग्य करनेवाले बोधित्वदान से हुआ था। बोधि<sup>४</sup> कावितार में इस बोधित्व की बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है। बोधित्व की प्राथम्य विशेषता महापानका है। महापान की इस विशेषता में बौद्ध धर्म को लोड<sup>५</sup> समूह का धर्म बना दिया था। महापानियों का विश्वास है कि उत्तर के प्रायःक व्यक्ति में सम्यक् सम्युद्ध होने की सम्पत्ता रहती है। यदि महापानका का धारण लेकर कोई धारणा करे तो वह इस जीवन में ही प्रबुद्ध हो सकता है। प्रबुद्ध होने पर भी साधक का लक्ष्य बड़ा कर्तव्य लोड-अपराध करना ही कहा गया है। पान देने की बात यह है कि महापानी निर्वास के उत्तर का में विश्वास नहीं करते

<sup>१</sup> बौद्ध दर्शन पृ ११६

<sup>२</sup> बौद्ध धर्म पृ० १२८

<sup>३</sup> अ हिन्दी आका द्दिव्यन निरूपण भाग १ विस्तर निरूपण पृ० १६७ १४१

<sup>४</sup> देविन्द्व दम्नाहर्कणवीडिया आका रिवाजत बुद्ध अविश्व भाग २ में बोधित्व।

<sup>५</sup> इन्द्राहर्कण द्दु लार्कि बुद्धिदम्न ल० दास गुप्त पृ० ६

विषय बर्णन हीनयानी लोग पहले कर चुके थे। महापानियों का अंतिम लक्ष्य अर्द्धवाचरथा की प्राप्ति करना न था। उनकी अरम साधना बोधिसत्त्व की अचरथा की साधना में लगी हुई थी। इस साधना में अलम्न साधन की संज्ञा बोधिसत्त्व थी। बोधिसत्त्व को पूर्ण अस्माय की अचरथा माना जा सकता है। बोधिसत्त्व ही सर्व अर्थ साधन की साम्यता रखता है। मगजाल से मुक्ति पानेवाले जीवों के लिए बोधिसत्त्व का आशय निरालम्न अचेतनीय है। ज्ञान में सत्त्व को प्रतिष्ठित करना महापानी साधना का प्रथम साधन है।<sup>१</sup>

बोधिसत्त्व की अचरथा की प्राप्ति के हेतु महापानी साधना में अनुत्तर पूजा का विधान दिया गया है। इस अनुत्तर पूजा का प्रथम अष्ट अंग बतलाये गये हैं। वे अमरा पारदेशना, पुण्यानुमोदन, बुद्धादेशण बुद्धायानता तथा बोधिपरिणामना है। इस अनुत्तर पूजा की सबसे प्रथम विशेषता उसकी मानसिकता<sup>२</sup> है। साधक को पहले बुद्ध संघ और धर्म की शरणा में जाना चाहिए और फिर अनुत्तर पूजा का प्रकार बुद्धों की तथा बोधिसत्त्वों की पूजा करनी चाहिए। इतनी साधना करने पर ही साधक बोधिसत्त्व की अचरथा का प्राप्त कर पाता है।

बोधिसत्त्व की अचरथा प्राप्त कर लेने के पश्चात् साधक को पारमिताओं की साधना करनी चाहिए।<sup>३</sup> पारमिताओं का साधारण अर्थ कुछ विशेष उदात्त गुण लिंगा जाता है। किन्तु इसका साम्बिक अर्थ पुण्यत्व है। महापान धर्म में दस पारमिताएँ या उदात्त वृत्तियाँ बताई हैं। उनके नाम अमरा: दान, शील, नैरऋम्य प्रसा, धीर्य, धान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मीथी तथा उदासीनता हैं। कहते हैं कि मगजान् बुद्ध ने इसी पारमिताओं की साधना में ५५०<sup>४</sup> जन्म व्यतीत किये थे। इन पारमिताओं की साधना पूर्ण होने पर ही उन्हें सम्यक् सम्यग्धि प्राप्त हुई थी। इस बात से स्पष्ट है कि महापान धर्म में पारमिताओं या उदात्तगुणों को किना अधिक महत्त्व दिया गया है।

महापान धर्म का दूसरा महत्त्वपूर्ण विज्ञान<sup>५</sup> विज्ञाप का है। विज्ञाप के विज्ञान का अर्थ संकेत हमें उत्तरवाचीन हीनयान में मिलता है। किन्तु इसका स्पष्ट और प्रीद विज्ञाप उत्तरवाचीन महापान धर्म में ही हुआ था। महापानियों ने अनागत के तीन

<sup>१</sup> बौद्धशास्त्र—पृ० १४५

<sup>२</sup> " "—पृ० १४६

<sup>३</sup> " "—पृ० १५०

<sup>४</sup> " "—पृ० १५० १५१

<sup>५</sup> " "—पृ० १५०

<sup>६</sup> " "—पृ० १५६ और हा अनागत बुद्धिबिम्ब पृ० १४।

कायों की कल्पना की है। उन कायों के नाम ममसा, निर्मासकाय, संमोसकाय और धर्मकाय हैं।

**निर्मासकाय<sup>१</sup>**—महापातियों का कहना है कि मगवान् बुद्ध ने संसार के कल्याण के हेतु निर्मासकाय धारण किया था। इस निर्मासकाय का वर्णन करते हुए महापान सूत्रलकार ने लिखा है कि शिष्य बन्धु और ज्ञान निर्वाण की शिक्षा देकर बगत् के कल्याण के लिए मगवान् बुद्ध ने इस शरीर को धारण किया था। इसी शरीर में स्थित होकर उन्होंने धान, चीस, धमाभि आदि का उपदेश दिया था। अन्तसे लोक का बहुत कल्याण हुआ था<sup>२</sup>।

**संमोसकाय<sup>३</sup>**—यह काय निर्मासकाय से अधिक सूक्ष्म माना गया है। इस काय को धारण करने की सामर्थ्य केवल बोधिसत्त्व में बसता है। संमोसकाय के दो भेद<sup>४</sup> प्रसिद्ध हैं। एक पर संमोसकाय और दूसरा स्व संमोसकाय। पर संमोसकाय बोधिसत्त्वों को प्राप्त होता है। तथागत ने इसी काय को धारण करके महापान सूत्रों का उपदेश किया था। यह संमोसकाय बोधिसत्त्व माना गया है। स्व संमोसकाय मगवान् बुद्ध का अपना एक विशेष शरीर कहा गया है।

**धर्मकाय<sup>५</sup>**—धर्मकाय को कुछ बीहद ग्रन्थों में स्वभावकाय का भी अभिधान दिया गया है। यह धर्मकाय संमोसकाय से भी सूक्ष्म होता है। बुद्ध का संमोसकाय एक ही माना गया है। यह धर्मकाय बीहद-ग्रन्थों के अनुसार अनिर्दिष्ट होता है। यह धर्मकाय महापातियों की शक्यता के अन्तर्गत मान्यता के अन्तर्गत है। धर्मकाय के सम्बन्ध में नागार्जुन का मत है कि बगत् के मूल में जो पारमार्थिक सत्ता है वही धर्मकाय है। बोधिसत्त्व दर्शन में धर्मकाय की कल्पना नागार्जुन से पाड़ी निम्न प्रतीत होती है। अन्तर्गत कहना है कि धर्मकाय निराकारत्व है। इस अन्तर्गत धर्मकाय के सम्बन्ध में विग्न-पिम्प महापानी बीहद उपदेशों में भिन्न-भिन्न धारणाएँ प्रसिद्ध हैं।

<sup>१</sup> महापान बुद्धिम्भ से० पृ० ६० दृष्टा पृ० १११

<sup>२</sup> महापान सूत्रलकार—१।१५। तिस्रग्रन्थ महापाति सत्ता निर्वाण धराने बुद्ध विभाग कायाऽर्थ महापातो विमाचने।

<sup>३</sup> आसपेक्षस आक महापात बुद्धिम्भ पृ० ११०

<sup>४</sup> बीहददर्शन—पृ० १६१

<sup>५</sup> हेतिय आसपेक्षस आक महापात बुद्धिम्भ—पृ० १११

<sup>६</sup> हेतिय बीहददर्शन—बन्धुव उपपायाव पृ० १५५

<sup>७</sup> बीहददर्शन—बन्धुव उपपायाव पृ० १६६

महाबान धर्म में साधना की दस भूमियों की विलक्षण व्यवस्था भी मिलती है। हीनयानियों ने अहंता की प्राप्ति साधना में केवल चार साधन माने थे—साध्यावस, छल्लायामी, धनायामी, अहंता। महायानियों ने इन चार अवस्थाओं की व्यवस्था न स्वीकार करके अपने ढंग पर साधना की दस भूमियाँ अस्तित्व की हैं। उनके नाम क्रमशः मुदिता<sup>१</sup>, विमला<sup>२</sup>, प्रमाच्छी<sup>३</sup>, अचिर<sup>४</sup>, प्रति मुद्रावरा<sup>५</sup>, अभिमुक्ति<sup>६</sup>, दूरगमावस्था<sup>७</sup>, अचला<sup>८</sup>, साधमती<sup>९</sup>, धर्म<sup>१०</sup> मेव हैं। संक्षेप में यही दस भूमियाँ महायान साधना की दस अवस्थाएँ हैं।

एक ही निर्वाण के स्वरूप को स्वीकार करना चाहते हैं। जो तो निर्वाण की प्राप्ति हीनयानियों को भी मास्य की किंतु उनके निर्वाण का स्वरूप महायानियों के निर्वाणस्वरूप से सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। यहाँ पर हम दोनों का संक्षिप्त तुलनात्मक विवेचन कर देना आवश्यक समझते हैं। पन० दत्त सख्त ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ अत्यंत अष्ट महाबान बुद्धिहर्म में तथा प० बलदेव उशामाय ने अपने बीज दर्शन में दोनों यानों के निर्वाण पर बहुत ही सुन्दर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। उशामाय जी ने दोनों यानों के निर्वाणस्वरूप की निम्नलिखित समान बातों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार निर्वाण की निम्नलिखित बातें दोनों ही यानों को समान रूप से स्वीकार हैं—

(क) यह शब्दों के द्वारा महत् नहीं किया जा सकता। निष्पक्ष यह अर्थात्कृत्य फल है, अतः न तो इच्छा उत्पत्ति है, न विनाश है और न परिवर्तन है।

(ख) इसकी अनुभूति करने ही अन्दर स्वतः की जा सकती है। इसको बोध्यापी लोग प्रज्ञानवापु कहते हैं और हीनयानी लोग 'पम्पत वेदिष' शब्द के द्वारा व्यक्त करते हैं।

<sup>१</sup> बीट्ट-दर्शन पृ० १६६

<sup>२</sup> भासपरवस का महाबान बुद्धिहर्म प० २६०

<sup>३</sup> बीट्ट-दर्शन पृ० १६६ १६९

<sup>४</sup> भासपरवस का महाबान बुद्धिहर्म प० २७०

<sup>५</sup> भासपरवस का महाबान पृ० १७१

<sup>६</sup> वही पृ० १७१

<sup>७</sup> बीट्ट-दर्शन पृ० १६८

<sup>८</sup> वही

<sup>९</sup> वही

<sup>१०</sup> वही

(ग) वह भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों के दुखों के लिए एक है और धर्म है।

(ब) मार्ग के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति होती है।

(ङ) निर्वाण में व्यक्तित्व का सर्वथा निरोध हो जाता है।

दोनों मत वाले बुद्ध के ज्ञान तथा शक्ति को लोकोत्तर अर्थात् के ज्ञान से बहुत ही उन्नत मानते हैं। महायानी लोग अर्थात् के निर्वाण को निम्नकोटि का तथा अतिशयवस्था का एवम् मानते हैं। इस बात को हीनयानी लोग भी मानते हैं।<sup>१</sup>

अब हम दोनों मतों में निरूपित निर्वाण के स्वरूप भेद को भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। १—हीनयान में निर्वाण स्वयं, नित्य और बुद्धात्माव रूप माना गया है।<sup>२</sup> महायानी इसके सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि निर्वाण वास्तव में मुक्तावस्था है। किन्तु महायान के माध्यमिक और बोधिसत्व<sup>३</sup> सम्प्रदाय इस मत से भी सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि निर्वाण में मुक्त अमुक्त नित्य और अनित्य की बात उठनी ही नहीं है, क्योंकि वह अनिर्वचनीय<sup>४</sup> अवस्था है। हीनयानी निर्वाण को लोकोत्तर स्थिति मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्राणी विचरत की इससे ऊँची स्थिति हो ही नहीं सकती, किन्तु महायानी लोग निर्वाण की लोकोत्तर अवस्था<sup>५</sup> से भी ऊपर लोकोत्तर्यम अवस्था मानते हैं। हीनयानी लोग निर्वाण को केवल एक प्रथम से मुक्ति की अवस्था मात्र समझते हैं। किन्तु महायान की दृष्टि में वह सर्वज्ञता और कर्मजन की स्थिति<sup>६</sup> है। दोनों मतों में किये गये भेदों के अभिपान भी अलग-अलग हैं। हीनयान में निर्वाण के दो प्रकार माने गये हैं। उनके नाम क्रमशः सोपाधिरोप और निरुपाधिरोप<sup>७</sup> हैं। महायान के बोधिसत्व सम्प्रदाय को भी निर्वाण के दो ही भेद मान्य हैं किन्तु उनके नाम हीनयानियों के नाम और स्वरूपों से भिन्न हैं। उनके नाम क्रमशः महति श्रुत निर्वाण और अमतिष्ठित निर्वाण बताये<sup>८</sup> गये हैं। हीनयानियों का निर्वाण और

<sup>१</sup> बही पृ० १८३

<sup>२</sup> आसपैरस आक महायान बुद्धिहम्म एवम् इरस रिलेपान बु हीनयान पृ० १२६

<sup>३</sup> बौद्ध दर्शन पृ० १८३

<sup>४</sup> बही पृ० १३० से १३९

<sup>५</sup> बही पृ० १६५

<sup>६</sup> बही पृ० १८३

<sup>७</sup> आसपैरस आक महायान बुद्धिहम्म पृ० ११९

<sup>८</sup> बौद्धदर्शन पृ० १८३ १८५

<sup>९</sup> बही पृ० १८३ १८५

संसार की धर्म समता स्वीकार नहीं है। किन्तु महायान के माध्यमिक सम्प्रदाय में दोनों की धर्म समता का सिद्धांत ही भूमिभर पर प्रतिष्ठित किया गया है। उस<sup>१</sup> सम्प्रदाय वालों का कहना है कि निर्वाण एक निराकार परमार्थ सत्ता है। संसार के मूल में भी वही परमार्थ सत्ता प्रतिष्ठित है। इस दृष्टि से निर्वाण और संसार में धर्म समता का संबंध निरिच्छ हो जाता है।

हीनयानी निर्वाण के संसार ही जगत् के पदार्थों की सत्ता सत्य मानता है। किन्तु महायान मत में हैठला क लिय अवकाश नहीं है। वह जगत् को प्रत्यक्ष और साधक मानता है। उच्छब्दी दृष्टि में कबल निर्वाण सत्ता मात्र ही सत्य है। वह सांसारिक पदार्थों के मूल में वर्तमान है। उनके वाद्य नामरूप मिथ्या हैं<sup>२</sup>।

महायान मत में निर्वाण प्राप्ति के साधक रूप दो आचरण माने गये हैं जिनके नाम क्रमशः ज्ञेयार्थ और ज्ञेयापार्थ हैं<sup>३</sup>। उनका कहना है कि हीनयानी केवल ज्ञेयार्थ से ही मुक्त हो सकता है ज्ञेयापार्थ से नहीं बल्कि महायान निर्वाण प्राप्ति के लिए इन<sup>४</sup> दोनों आचरणों का उच्छ्रद्ध करने में समर्थ होना ही है। हीनयानियों के आचरणों का यह सिद्धांत मान्य नहीं है। उस प्रकार संक्षेप में हम कहते हैं कि हीनयानियों की निर्वाण कल्पना महायानियों की निर्वाण कल्पना से कुछ अंशों में साम्य रखत हुए भी अविचार में विद्य है।

अभी तक हमने हीनयान और महायान के सामान्य भेदों पर प्रकाश डाला है। अब हम अत्यन्त संक्षेप में बौद्धदर्शन के साध्यसिद्धि<sup>५</sup> चार दार्शनिक पद्धतियों पर विचार करेंगे। ये चार दार्शनिक पद्धतियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं—१—वैसाधिक मत २—सौताधिक मत ३—माध्यमिक सम्प्रदाय ४—योगाचार सम्प्रदाय। इनमें से पहला मा हीनयान से संबंध रखता है अन्य तीन दार्शनिक पद्धतियाँ महायान की सीमा के अंतर्गत आती हैं। इन उक्त चार मतों की प्रसिद्धि क्रमशः वाच्यार्थ प्रत्यक्षवाद, वाच्यार्थ अनुभववाद, विज्ञानवाद और सत्यवाद के अधिष्ठान से भी है। नियुक्तियों<sup>६</sup> संतो की दार्शनिक विचारधारा की पुष्पभूमि के रूप में इनमें से केवल माध्यमिक मत और योगाचार के विज्ञानवाद ही महत्त्वपूर्ण हैं। संतो की विचारधारा की आध्यात्मिक

<sup>१</sup> बौद्धदर्शन पृ० १८४ १८५

<sup>२</sup> हेमिन्स बरी आसपीरम आर महायान बुद्धिहर्म विचार्य का सिद्धांत वाच्य प्रकाश

<sup>३</sup> आसपीरम आर महायान बुद्धिहर्म बरह इत्य रिममन हीनयान पृ० १३३

<sup>४</sup> आसपीरम आर महायान बुद्धिहर्म-चरर आर आसपीरम आर निर्वाण

<sup>५</sup> बौद्धदर्शन—पृ० १३३

<sup>६</sup> बरी पृ० १२३



के वे दोनों मत हो सतम समके वा सक्त हैं अतएव वहाँ पर हम केवल उन्हीं दो के उन प्रबान सिद्धांतों का उल्लेख करेंगे बिनासे निर्गुण आम्पारा का संबंध है।

### माध्यमिक मत या शून्यवाद

शून्यवाद बीजदरान का बड़ा ही महत्वपूर्ण मतवाद है। इसके प्रवर्तकों ने इतका मूल तथागत श्री शिवाओं में देँद निकाला है<sup>१</sup>। जो तो महा पारमिता सूत्रों में इस मत का विवेचन किया था पुत्रा वा किंतु इसकी प्रायः प्रविष्ट्य करनेवाले आचार्य नागार्जुन ही माने जाते हैं। उनसे माध्यमिक कारिका नामक रचना में इस सिद्धांत का बड़े प्रौढ़ ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इस दरान में शून्यता के सिद्धांत का बड़े ही विस्तार से विवेचन मिलता है। इसको ह्य भूमिअ पर प्रविष्टित करनेवाले आचार्यों में नागार्जुन और आर्यदेव<sup>२</sup> बहुत प्रसिद्ध हैं। नागार्जुन रचित माध्यमिक कारिका तो इस दरान का प्रायः मूल ग्रंथ<sup>३</sup> है। आर्यदेव के ग्रंथों में ज्ञान सार समुच्चय पद्यः पीठ तंत्र राज आदि श्री अर्धुर्ण्य ज्ञाति है। आचार्य अन्वशीति<sup>४</sup> और शशिदेव<sup>५</sup> ने भी इस दरान पर महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे थे। आचार्य शशिदेव का बोधिसत्वाक्षर नामक ग्रंथ इस दरान का बड़ा महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। आठवीं शताब्दि के आचार्य शतरुद्रि<sup>६</sup> भी इस दरान के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन्होंने लिखत में शून्यवाद का सूत्र प्रचार किया था। शून्यवादी आचार्यों ने बाल्किव तत्ता को शून्य-रूप<sup>७</sup> कल्पित किया है। अपने इस मत की पुष्टि शून्यवादी आचार्यों ने अनेक सरल तर्कों के आधार पर की है।<sup>८</sup> वहाँ पर हम बोधी-सी म्पारा शून्य शब्द की भी कर देना चाहते हैं। बीजों ने शून्य शब्द का प्रयोग समस्त तत्ता के निवेद के अर्थ में नहीं किया है। उन्होंने शून्य शब्द से उस पद्य तत्ता का कथन किया है जिसकी अमिष्यक्ति, अहित भाक्ति, तदुभय और मोमव नामक बहुरूप निर्वान की चार प्रकृतियों के द्वारा नहीं की जा सकती।<sup>९</sup> हमारी समझ में उनपरतों ने जिस भाव की अमिष्यक्ति मेवि

१ बीजदरान—पृ० ११२

२ भारतीय द्वाय पृ० २१६

३ भारतीय दर्शन पृ० २१६ और बीजदरान पृ०—२१५।

४ बीजदरान—पृ० २९०

५ " " —पृ० १२१

६ " " —पृ० १२३

७ " " —पृ० १२५

८ " " —पृ० १६१

९ सद् वासद् अज्ञासद् आप्यनुभवामकम्

अनुप्येति विनिर्मुक्त तत्र माध्यमिक विदुः ॥ माध्यमिक कारिका १।७

उ ही है बोद्धो ने उही का प्रतिपादन शून्य से किया है। साधारणतया उनका शून्य शब्द द्वैतवैत ब्रह्मसत्त्व अनिबन्धीय पारमार्थिक सत्ता के लिए प्रयुक्त हुआ है। हीनयानी बौद्ध ने जिस प्रकार आचार सूप में मत्पमाप्रतिपदा का प्रयोग किया था उही प्रकार मत्पमिद्धो ने दर्शन सूप में मत्पबर्गी सिद्धांत स्वीकार किया है।<sup>१</sup> उनका कहना है कि पारमार्थिक सत्ता न तो पूर्णतया सत् रूप है और न क्वचिद् अस्त रूप, यह बाल्य में शून्य रूप है। इस प्रकार शून्य का हम सत् और असत् मान और अमान होना के मत्प की स्थिति मान सकते हैं। यह तत्व सर्वभेद और अपराध माना गया है। साधु मंत्रय इसी का विर्ण्व है।<sup>२</sup> इतना जाने हुए भी यह वेदान्तियों के मूल तत्त्व से भिन्न है। बदान्ती ताय मूल तत्व का विरूप के समस्त पदार्थों के मूल में आभास रूप से वर्णित करत हैं। किन्तु मत्पमिद्धो की दृष्टि में संसार के समस्त पदार्थ किसी तत्व के आभास पर नहीं आधारित हैं। वे निरात्मक और नित्यमान रूप हैं। अन्ती निरात्मकता और नित्यमापता के धारण ही के शून्य रूप कह सकते हैं।<sup>३</sup> मागाजुन ने शून्य रूप का सफल देत हुए लिखा है—

अपरप्रत्यक्षं शान्तं प्रपञ्चप्रपञ्चितम् ।

निर्विकल्पमनानार्थं मतेनृ तत्त्वस्य सद्यस्य ॥

इस परिभाषा में शून्य की निम्नलिखित विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है—

१—अत प्रत्यक्षता :—अर्थात् एक व्यक्ति दूसरे से इतका पूर्णरूपय स्वभाव निरूपण नहीं कर सकता ।

२—शान्त —अर्थात् यह नि स्वभाव आर निरात्मक है ।

३—मंत्रयो द्वारा अव्यक्त होना :—यहाँ पर मंत्रय शब्द पारमार्थिक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। उतका अर्थ है शब्द। शून्य का विवचन शब्दों के द्वारा नहीं किया जा सकता ।

४—निर्विकल्पक —शून्यता का विषय से कोई संबंध नहीं होता है। यह विषय वस्तु भी नहीं होता है ।

<sup>१</sup> अर्थात् मत्पमिद्धो ने उही का प्रतिपादन शून्य से किया है।

मुद्रा अर्थात् मत्पमिद्धो ने उही का प्रतिपादन शून्य से किया है।

मत्पमिद्धो ने उही का प्रतिपादन शून्य से किया है।

मत्पमिद्धो ने उही का प्रतिपादन शून्य से किया है।

<sup>२</sup> हीन दर्शन—७ ३३०

<sup>३</sup> " , —७ ३५०

<sup>४</sup> " " —७ ३५३

५—अनात्मता :—शून्य से विविध अर्थों का बोध नहीं होता। इतीति एव यह तब नानार्थरहित माना गया है। शून्य के संबंध में माध्यमिक दृष्टि में लिखा है कि जो वस्तु प्रत्यक्षों के आकार पर अधिकार रखती है वह वास्तव में अनात्मता का होती है। शून्य की प्रत्यक्षों पर आधिकारिकता है इतीति एव ही अनात्मता ही है।<sup>१</sup>

माध्यमिक दृष्टि में शून्य को निर्वासनरूप भी कहा गया है। लिखा है—  
 तदेकमेवैवर्षभोपशान्तिस्तथा शून्यतामागम्य यस्मात् शेष कर्मना बाल प्रपञ्चिगमो  
 यतिः। प्रपञ्चिगमान् विष्णुनिवृत्तिः। विष्णुनिवृत्त्या पाशेपरम्यं श्रीरनिवृत्ति कर्म  
 अशेषनिवृत्त्या अन्वनिवृत्तिः तस्मात् शून्यतैव सर्वप्रपञ्चनिवृत्तित्वात्परिनिर्वाण मुच्यते।  
 अर्थात् समस्त प्रपञ्च के शून्य करने में समर्थ कर्मना रूपी शून्यता जिसमें कि समस्त  
 कर्मना आत्मों के प्रपञ्च विधीन हो जाते हैं सर्वथा आदर्शहीन है। इसमें पूर्ण कर्म  
 समस्त प्रपञ्चगत विष्णु भी नष्ट हो जाते हैं और जब विष्णु के प्रपञ्चगत विष्णु नष्ट  
 हो जाते हैं तो अणुस कर्म क्लेश भी निवृत्त हो जाते हैं। कर्म क्लेश की निवृत्ति से कर्म  
 की निवृत्ति हो जाती है, इतीति एव शून्यता ही सर्व प्रपञ्च निवृत्ति का निर्वासन कर्म ही  
 है। माध्यमिकों ने शून्य सत्ता का निष्कर्ष एक दूसरे रूप से भी किया है। उन्होंने  
 शून्य दो प्रकार का माना है। एक तात्त्विक शून्य दूसरा पारमार्थिक शून्य। तात्त्विक  
 शून्य का प्रयोग अविद्या उद्भूत प्रपञ्च व्यावहारिक सत्ता के लिए किया जाता है।  
 पारमार्थिक शून्य से प्रकाशित वास्तविक शून्य का बोध किया गया है। उन्होंने इन दो  
 प्रकार के शून्यों की विस्तृत व्याख्या करके शून्यता को समझने की चेष्टा की है।  
 उन्होंने शून्यता का पञ्चार्य रूप माना है। अर्थात् क लारे पदार्थ हेतु प्रपञ्चों से उद्भूत  
 माने जाते हैं, अतएव उनका चेहरे अनात्मता नहीं होता। यह निःस्वभावता ही  
 परिमार्थिक शून्य है वही निर्वासन रूप है। उसमें पूर्ण अद्वैतता रखती है इतीति एव  
 वाद एक प्रकार का अद्वैत माना जाता है। इस बात को अधिक स्पष्ट करते हुए  
 वाचिबर्षावतार नामक ग्रंथ में लिखा है—

सद्यश्चांश निःस्वभावता शून्यता तपता भूतकोटि प्रमथाधुरिति पर्यायाः।

सद्यस्य हि प्रतीत्यसमुत्पन्नस्य पदार्थस्य निःस्वभावता पारमार्थिक रूपम ॥

अर्थात् समस्त पदार्थों की निःस्वभावता शून्यता तथा भूतकोटि पर्यवस्तु आदि  
 तब शून्य पर्यायवाची हैं। समस्त प्रतीत्य उद्भूत पदार्थों की निःस्वभावता पारमार्थिक

<sup>१</sup> (क) माध्यमिक दृष्टि—पृ० १७२

(ख) बीहद अर्थ—पृ० १५६

<sup>२</sup> भारतीय दर्शन पृ० २२०

<sup>३</sup> वाचिबर्षावतार पृ० १५४, बीहदार्थ पृ० १५१

होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माण्डविके ने कल्प स्वरूप के विवेक के सहारे शून्यता का निरूपण किया है। अनुसूच शून्य का यही स्वरूप है। माण्डविके का इस मतवाद से हीनयानी सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि जब परमार्थ वाक्यावाक्य परे हैं और व्यावहारिक कल्प भ्रममात्र है ता कि विविध संसृत और असंसृत तत्त्वों के उद्देश्य भी क्या प्राप्त्यकता है। उनके इस आशय का स्वीकरण हमें नागाब्रून में मिलता है उन्होंने लिखा है कि परमार्थ कल्प के स्थान के हेतु व्यावहारिक कल्प की सहायता निवृत्त आनन्दक हाती है और निर्वास का प्रश्न ही नहीं उठता। आचार्य<sup>१</sup> फ्लोरेन्स ने भी वचनविधि साहित्यिक प्रकाशयिता—मे इसी विद्वान्त का समर्पण किया है। उनमें लिखा है—संसृत का बिना असंसृत का निदरान नहीं किया जा सकता। माण्डविके का यह विद्वान्त सुक्ति का 'यदे बुता मे मरे सुरा देवन है' से मिलता-जुलता है। हीनयानी लोग कल्प क उर्बुक्त दा मद स्वीकार नहीं करते थे। उनका प्रमुख कारण यह था कि ये शून्य का अभावकर मानने से परमार्थ तत्त्वरूप नहीं माण्डविके के और हीनयानियों के शून्यवाद में यही मौलिक अंतर है।

महापान ग्रंथों में शून्य के विविध प्रकार का उल्लेख मिलता है। सामान्यतया उनके निम्नलिखित २० प्रकार बहुत प्रसिद्ध हैं।

१—अप्यात्म शून्यता<sup>२</sup>—इसका अन्वय का निराकरण हो जाता है। क्योंकि इसके समर्पक पदाधी का विद्वान् अप्यात्म अर्थात् वह विद्वानों का रहित अस्तित्व अस्त है।

२—वर्द्धिपारुषता<sup>३</sup>—यह विद्वान्त महापानियों का प्रवृत्त इच्छा है। इसके अनुकार बाहरी बस्तुयें शून्यरूप होती हैं।

३—अप्यात्मनिर्वा शून्यता<sup>४</sup>—इसके समर्पक बस्तुओं के बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के तत्त्वों का शून्यत्व मानत हैं।

४—शून्या-शून्या<sup>५</sup>—शून्यानुभव की इस अवस्था में शून्य तत्त्व परावर्तित कल्प का रूप में आभासित होने लगता है।

<sup>१</sup> बौद्ध सप्तम २० १५१

<sup>२</sup> " " १५१ ।

<sup>३</sup> " " १५१ ।

<sup>४</sup> " " १५४ ।

<sup>५</sup> " " १५४ ।

<sup>६</sup> " " १५४ ।

<sup>७</sup> " " १५४ ।

५—महाशून्यता<sup>१</sup>—जब दिशाएँ भी शून्य प्रतीत होने लगती हैं तब यह महाशून्यता की अवस्था होती है।

६—परमार्थ शून्यता<sup>२</sup>—इस शून्यता का आभाव निर्वाण की अवस्था होता है।

७—संस्कृतशून्यता<sup>३</sup>—बौद्धदर्शन में बर्णित संस्कृत तत्वों की शून्यरूप में प्रतीति संस्कृतशून्यता कहलाती है।

८—असंस्कृतशून्यता<sup>४</sup>—बौद्धदर्शन में बर्णित तत्वों को शून्यरूप अस्ति करना असंस्कृत शून्यता कहलाती है।

९—आत्मशून्यता<sup>५</sup>—अत्येक अंतों को शून्यरूप अस्ति करना ही आत्मशून्यता है।

१०—अनवराम शून्यता<sup>६</sup>—आराम मग्न और अंत इन दोनों को शून्यरूप अस्ति करना अनवराम शून्यता होती है।

११—अनवकार शून्यता<sup>७</sup>—अनवकार का अर्थ होता है अनुपापिरोय निर्वाण। निर्वाण शून्यरूप अस्ति किया जाता है तब उक्त शून्यता को अनवकार शून्यता कहते हैं।

१२—मज्जति शून्यता<sup>८</sup>—जब बस्तु मज्जति को शून्यरूप मान लिया जाता है तो उक्त मज्जति शून्यता कहते हैं।

१३—उर्ध्वर्म<sup>९</sup> शून्यता—समस्त पदार्थ स्वभाव से रहित है यह कल्पना उर्ध्वर्म शून्यता की है।

१४—तक्षय शून्यता<sup>१०</sup>—बस्तुओं के लक्षणों को शून्यभाव मानना तक्षय शून्यता है।

<sup>१</sup> बौद्धदर्शन पृ० ३६४

<sup>२</sup> " " ३६५

<sup>३</sup> " " ३६५

<sup>४</sup> " " ३६५

<sup>५</sup> " " ३६५

<sup>६</sup> " " ३६५

<sup>७</sup> " " ३६६

<sup>८</sup> " " ३६६

<sup>९</sup> " " ३६६

<sup>१०</sup> " " ३६६

१५—उपसम्पन्न शून्यता<sup>१</sup>—विविध काल की कल्पना गत शून्यता उपसम्पन्न शून्यता कहलाती है।

१६—अभाव स्वभाव<sup>२</sup> शून्यता—विविध तत्त्वों के योग से बनी हुई वस्तु में पार्श्वबन्धनी शून्यता अभाव स्वभाव शून्यता कहलाती है।

१७—मात्र शून्यता<sup>३</sup>—विविध स्वभावों के भाव की शून्यता मात्रशून्यता कहलाती है।

१८—अभाव शून्यता<sup>४</sup>—आकस्मिक और प्रतिवर्तकानियोज्य और अप्रतिवर्तकानियोज्य भी शून्यभाव हैं। इस बात की कल्पना अभाव शून्यता कहलाती है।

१९—स्वभाव शून्यता<sup>५</sup>—वस्तुओं के स्वभाव की शून्यता स्वभाव शून्यता कहलाती है।

२०—परमात्र शून्यता<sup>६</sup>—वस्तुओं के परमार्थ रूप की शून्यता परमात्र शून्यता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माध्यमिष्ठों में शून्य भाव को स्पष्ट करने के लिए २० प्रकार की शून्यताओं की कल्पना की है।

शून्य का इतना विवेचन करने के पश्चात् हमारे सामने कल्पित की एक प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या शून्यवाद आस्तिक है या नास्तिक। इस सम्बन्ध में हमारे सामने दो प्रकार की धारणाएँ हैं। प्राचीन विद्वान् जिनमें आचार्य कुमारिल<sup>७</sup> और आचार्य रामचन्द्र<sup>८</sup> आदि प्रमुख हैं शून्यवाद को नास्तिक मत मानते थे। उन लोगों ने शून्य का अर्थ अभाव किया था। इसके विपरीत कुछ आधुनिक विद्वान् इस निरर्थक पर पहुँचने लगे हैं कि शून्यवाद आस्तिक मत था। इन विद्वानों में आचार्य बलदेव उपाध्याय विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने राय लिखा<sup>९</sup> है। मार्गार्जुन मारीशक ने। वह पूरे आस्तिक थे उनका शून्य भी परमार्थ तत्त्व तत्त्व है। एक दूसरे रूप पर यह फिर लिखते हैं कि शून्य तत्त्व की धर्मादा से यह राय स्वीत

<sup>१</sup> श्रीहरदत्त पृ० १६६

<sup>२</sup> " " " १६६

<sup>३</sup> " " " १६६

<sup>४</sup> " " " १६७

<sup>५</sup> " " " १६७

<sup>६</sup> " " " १६७

<sup>७</sup> " " " २०० और ब्रह्मसूत्र के पृ० २६८ १४५

<sup>८</sup> शंकर भाष्य १।२।११

<sup>९</sup> श्रीहरदत्त पृ० १६८

होता है कि शून्य परम तत्त्व है। यह वही तत्त्व है जिसके लिए वेदान्तियों ने ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया<sup>१</sup> है। इस प्रकार नागार्जुन के शून्यवाद के संर्षभ में स्पष्ट रूप से दो मूठ दिखलाई पड़ते हैं। हमारी समझ में नागार्जुन का शून्यवाद न तो पूर्ण आस्तिक चर्चा का चर्चा है और न पूर्ण नास्तिक। उनका शून्य अस्तित्व और नास्तिक के बीच की एक अनिर्वचनीय विशेषता है। इसीलिए ऊपर्यक्त चर्चा में माध्यमिक चरित्र के प्रारम्भ में ही निरुपेक्षात्मक<sup>२</sup> शैली में किया गया है। उसमें लिखा है—यह नाशहीन है, अप्रति हीन है, लय रहित है, अंत एक्याहीन, मानार्थ हीन, आगमन और निर्गमन रहित है। शून्य के उक्त विवेचन से भी उसकी अस्तित्व नास्तिक विलक्षणता ही प्रकट होती है। बिना प्रकार से शून्य ठरान अस्तित्व और नास्तिक विलक्षण है उसी प्रकार यह द्वेषाशेष विलक्षण भी<sup>३</sup> है। उसे हम केवल अद्वैतकर्म नहीं मान सकते यदि शून्य अद्वैतकर्म और आस्तिककर्म होना तो आचार्य<sup>४</sup> शंकर को उसका इतना खरबान न करना पड़ता। उन्होंने लिखा है—शून्यवादपक्षस्तु सर्व प्रमाद्य प्रतिषिद्ध इति तद्विपरस्यस्य नादरा क्रियते। यह उक्ति इस खरबान का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

### योगाचार अथवा विज्ञानवाद

माध्यमिक मूठ के लक्ष्य ही बोद्धों का योगाचार संप्रदाय भी बहुत महत्वपूर्ण है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों में मैत्रेय अतंग विंगनाग जैसे धीरे धीरे बहुत प्रसिद्ध हैं। संभवतः इस संप्रदाय का सबसे प्रामाणिक और प्रतिद्वन्द्व माना जाता है।

योगाचार मूठ में विज्ञान या चित्त को ही एकमात्र तत्त्व माना गया है इसीलिए इसे विज्ञान का भी चर्चा है। उन्होंने चित्त विज्ञान को ८ प्रकार का माना है। ७ प्रकार<sup>५</sup> वही हैं जो वैचारिकों का माध्यम है। केवल अचरणा विज्ञान हमारी अपनी चरणा<sup>६</sup> है। इसकी चरणा है कि समस्त संसार चित्त का ही परिणाम है और उपर्युक्त आठ प्रकार के चित्तों में ही उपर्युक्त अस्तमात्र हा जाता है। इस मूठ के लोग ब्रह्मणो के अस्तित्व को सत्य नहीं मानते उतन्ने यह उपर्यागत समझते हैं। ये उपर्युक्त भी २ प्रकार के बताए हैं—अस्तमोपचार और चरणापचार। अस्तमोपचार के अंतर्गत भीय आत्मा और मनुष्य आदि आते हैं। चरणापचार से स्वरूप पाठु आपतन

<sup>१</sup> " " पृ० १७१

<sup>२</sup> अनिरोध मनुत्वादमनुचैरमारावतम्

<sup>३</sup> माध्यमिक चरित्र पृ० ४ अनेकार्यमवधार्य कमनागमनिर्गमम् । माध्य ११३

<sup>४</sup> शंकर माध्य ११२।११

<sup>५</sup> वैचारिकों में माध्य विज्ञान के ७ प्रकार देखिए । बौद्ध द्वाय पृ २११

<sup>६</sup> विज्ञानवाद के ८ प्रकार देखिए । बौद्ध द्वाय पृ० २८४





आंतिभावना से प्रेरित होकर उन्होंने कर्त्तव्य का आत्मज्ञ परिष्कार कर दिया था। कबीर लिखते हैं कि पवित्र और मुक्ता ने जो कुछ किया है हमें उद्यम परिष्कार करके स्वान्वेष्य मार्ग में प्रवृत्त हुये हैं।<sup>१</sup>

बौद्धदर्शन के चार आर्य छत्सों की छाया भी संतों की विचारधारा पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। पहला आर्य छत्स दुःख है। संतों ने दुःख की उत्पत्तिसिद्धि और उत्पत्तिसिद्धि पर विशेष बल दिया है। संत कबीर ने एक स्थल पर लिखा है—सुखिया सब संसार है सुखिया दास कबीर। इसी भाव का विस्तार करते हुए संत चरनदास ने लिखा है—जो राम का भजन करता है वही सुखी है रोप सभी लोग पाहे राजा हो वा प्रजा नेमी हो वा दाता बुली दिव्यार्थ पढ़ते हैं।<sup>२</sup> बौद्धदर्शन के अनुसार इस विद्वान्मानी दुःख का कारण कर्मवाद और उसके प्रादुर्भूत होनेवाले जन्मोत्पत्तिकाद है। कर्मवाद की आचारभूमि वाचना और भजन हैं। इसीलिए उस दर्शन में वाचना के परिष्कार और वैराग्य पर बड़ा बल दिया गया है। संतों की बानियों में हमें कर्मवाद, जन्मोत्पत्तिकाद, कर्म और वाचना आदि का दुःख के मूलमूल कारणों के रूप में उल्लेख मिलता है। कर्मवाद पर कुटारापस्त करते हुए संत कबीर ने लिखा है कि कर्म कर्मन कर्म है उसमें सारा संसार उठी प्रकार पैदा हुआ है किछ प्रकारु मन्त्रलिपि पंजर के जाल में फँस जाती हैं। जन्मोत्पत्तिकाद किछ प्रकार दुःख का कारण होता है इसका और संकेत करते हुए भी संत कबीर ने लिखा है—बीज विविध बानियों में भ्रमण करके एक जाता है और अत्यधिक दुःख से दुःखी होकर निरक्षेप्य हो जाता है। वाचना के परिष्कार पर भी संतों ने विशेष बल दिया है। संत सुंदरदास ने लिखा है कि कर्मना मुनि उठी जो ब्रह्म हैं जो अपने अंतःकरण की वाचना कर परिष्कार कर देता है। इसी उद्यम में संत सुंदरदास ने वैराग्य की भी परिभाषा की है। उसमें भी उन्होंने वाचना के

<sup>१</sup> पवित्र मुक्ता जो निरख दिया कर्त्तव्य चतुष्टय कर्म ब लिखा। कबीर प्रभाषकी—पृ०

<sup>२</sup> साधो राम मंत्र से सुखिया—राजा परजा ने भी देखा सबही देते बुझिया। इत्यादि संत चरनदास की बानी भाग १ पृ० ७२

<sup>३</sup> कबीर प्रभाषकी—पृ० ४६०

<sup>४</sup> कबीर प्रभाषकी पृ० २२८

<sup>५</sup> कर्मकर्म जगजग बसारा मीं बीबर मनुष्यी गहिमारा—कबीर प्रभाषकी पृ० २२८

<sup>६</sup> वाचना जाबि जलम पमिबकयो जब दुःख करि हम दारया रे। कबीर प्रभाषकी पृ० २६२।

<sup>७</sup> अंतःकरण की वाचना विद्वत् होय ताहुं मुनि ब्रह्म है वही बड़ा त्याग है। सुंदर बिलास—पृ० १४८।

<sup>८</sup> सबसों उदासदाय कादिनक भिन्न करे ताजा नाम कहिबत परम वैराग्य है।



महाकव्या से आत्मापित रहता है। संत मुन्दरदास ने लोक संग्रह की ओर संकेत करते हुए लिखा है। सन्धा ज्ञानी साक संग्रह के कार्य में लगा रहता<sup>१</sup> है। बर्खाभम धर्म के विरोधी तो संत लोग थे ही। बर्खाभम धर्म पर कुठाराघात करते हुए चरनदास<sup>२</sup> ने लिखा है।

चारवरन आत्म नाहिं नाहिं कमना कोई

इन्हीं संत ने एक दूसरे स्वयं पर पुनः लिखा<sup>३</sup> है।

चरनदास मय बाधरे जाति वरन कुल छोरे

साम्प्रदाय भी संतों का प्रिय सिद्धांत है। साम्प्रदाय की प्रतिष्ठा उनकी बानियों में सर्वत्र मिलती है। जो सफ़ा है कि बौद्धों के साम्प्रदाय से उन्हें प्रेरणा मिली हो किंतु बौद्धों के साम्प्रदाय से उनका साम्प्रदाय मिला है। संतों का साम्प्रदाय सामाजिक और आर्थिक साम्प्रदाय है किंतु बौद्धों का केवल सामाजिक है। बौद्धों की प्रथा परिमिताओं ने संतों को आचरण प्रथा होने की प्रेरणा प्रकृत्य दी होगी। संत चरनदास की श्री निम्नलिखित पंक्तियों पर बौद्धों की प्रथा परिमिताओं का स्पष्ट प्रमाण दिखाते<sup>४</sup> पड़ता है—

दया ममता दीनता जमा शीघ्रै संतोप ।

इन्हूँ ने सुमिर न करै भिरखय पाषी मोक्ष ॥

बौद्धों की अध्यात्मिक मार्ग साधना भी बहुत प्रसिद्ध है। उसका प्रधान सिद्धांत मध्य मार्गात्तरय से संबंधित है। संतों पर इस सिद्धांत का भी प्रमाण बुर-पूर दिखाई पड़ता है। संत दासू ने इस मध्यमार्ग साधना की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि: हिंदू और मुसलमानों की साधना विविधा अपनी-अलग हैं। साधु का मार्ग उन दोनों के मध्य माध से संबंधित रहता<sup>५</sup> है। इसी प्रकार संत कबीर ने भी परम तत्त्व के निरूपण में मध्यमार्ग का अनुसरण किया है वह लिखते हैं—बायी से बिलकल बचन किया बाया है वह अबर बस है और जो यायी के परे है वहाँ मन रियर नहीं रहता

<sup>१</sup> ज्ञाना कोरु संग्रह के अन्त व्यवहार है। सुंदरविकास पृ० १५१

<sup>२</sup> चरनदास की बायी भाग २ पृ० ११

<sup>३</sup> चरनदास की बायी भाग २ पृ० ३५

<sup>४</sup> सत सुधासागर गीत २—पृ० १६४

<sup>५</sup> दासू करवी हिंदू दूरक की अपनी अपनी हीर ।

हीरूँ बीच मार्ग साधुका संतों की राह और ॥ सतसुधासागर—पृ० ४६६

है। वास्तव में वह परमात्मा बाकी और मौन दोनों के मध्य ही बसू है। वह बैठा है उसे बैठा ही समझना चाहिये। वह किसी को दिखाई नहीं देता है।<sup>१</sup>

अनघर तत्त्व के संबंध में बौद्ध दर्शन मौन भाव का ग्रहण करना ही उपरि समझता है। मागार्जुन ने महापान विभंङ्ग में परम तत्त्व को वाण्यावाप्त्य परे<sup>२</sup> कहा है। बोधिसत्वाभयवहार में भी बौद्ध धर्म का अनघर कहा गया है। इसी प्रकार आचार्य<sup>३</sup> ब्रह्मसूत्रि ने भी लिखा है आर्यों के लिए परमार्थ मौन रूप है। संत लोग बौद्ध दर्शन के इस सिद्धांत से भी प्रभावित हुए थे। इसी प्रभाव के फलस्वरूप जमीर ने लिखा है<sup>४</sup>—

भाषी कहीं तो यहूतों इस्का- कहीं तो मुंठ ।

मैं का जाणों राम की नीनों कबहूँ न दीठ ॥

संत लोग बौद्ध दर्शन के क्षयिष्वाद्, शून्यवाद और विज्ञानवाद से भी प्रभावित हुए थे। इनमें भी शून्यवाद और विज्ञानवाद का प्रभाव कुछ अधिक दिखाई पड़ता है। शून्यवाद को उन्होंने अपने ढंग पर अपनाया ही खोजा ही थी। बौद्धों का शून्यवाद नास्तिक है और संतों का आस्तिक। जहाँ तक क्षयिष्वाद् का संबंध है वह स्वन्नवाद से प्रभावित प्रतीत होता है। वास्तव में संत लोगों में क्षयिष्वाद् और स्वन्नवाद का समन्वित रूप मिलता है। जगत् बर्णन का प्रसंग में इस बात पर विशेष प्रकाश डालेंगे। विज्ञानवाद के उदाहरण के रूप हम सुंदरदास और संत दादू का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। संत सुंदरदास ने लिखा है—यह संतार मन का भ्रम का कारण ही दिलाकार पड़ता है। मन का भ्रम दूर हो जाने पर इस संतार का प्रभाव ही जाता है।<sup>५</sup> यहाँ पर हमें बौद्धों के विज्ञानवाद का भ्रम संबंधी सिद्धांत का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस सिद्धांत का स्वरूप हम ऊपर कर चुके हैं। संत दादू ने भी निम्न का महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—जय चित्त

<sup>१</sup> जहाँ बोल नहीं आगर आवा, जहाँ बचान नहीं मन न रहता ।

बाग अवात मध्य है सोर, जा है सा बुध मय न बाह ॥ क प्र०—प० २२

<sup>२</sup> वाचिसत्वाभयवहार—पृ० ३३५

<sup>३</sup> माध्यमिक हृदि—प० ५९

<sup>४</sup> कबीर प्रख्यादनों—पृ० १०

<sup>५</sup> मन ही के जय त जगन यह देनिवत,

मन ही के जय मने जगत् यह विज्ञान है ॥ सुन्दरदास पृ० ९९

विड में समा जाता है वह केवल ममत्व ही ममत्व रूप रह जाते हैं। नही विकृतता है। संतों पर बौद्धों की निर्वाण संबंधी मानना का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इतना स्पष्टीकरण सुक्ति के प्रसंग में किया जायेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों पर बौद्ध-दर्शन का अत्यंत प्रभाव पड़ा है।



<sup>१</sup> यह चित्तवि चित्त समाया।

इस हरि चित्त और न जाना ॥ शत्रु साहस की बायी भाग २ पृ० ३५

## तीसरा अध्याय

### आध्यात्मिक पृष्ठभूमि (उत्तरार्द्ध)

शैवदर्शन पद्धतियाँ

पाशुपत दर्शन

सिद्धांत विवेचन—प्रभाव निर्देश

शैव सिद्धांत मंत्र

सिद्धांत विवेचन—प्रभाव निर्देश

शैव शैव मंत्र

सिद्धांत विवेचन—प्रभाव निर्देश

प्रत्यभिज्ञा दर्शन

सिद्धांत पद्य—प्रभाव पद्य

कुछ अन्य छोटी दर्शन पद्धतियाँ

रत्नेश्वर दर्शन—

शैव शाक्त संन्य और छन्दो की विचारधारा

प्रमुख प्रवृत्तियों और सिद्धांतों का निर्देश

प्रातिपत्तियाँ—महत्त्व - ईश्वरी उत्पत्ति - प्राचीनता - साहित्य

साधनावाद—साधनादर्शना - वाक्साधार विरोध - ईश्वर

साधना—भक्ति-भक्तिकारणा - ज्ञान का महत्त्व - गुरु - रहस्यवाद

तर्कविरोध—मंत्र चैतन्य - दार्शनिक पद्य - शक्ति की बुद्धिमूलक

विचारधारा—शक्ति धारा - शिव और शक्ति की अद्वैतता

माया शक्ति—महामाया माया - साधारण माया - प्रकृष्टा ब्रह्मा

निवृत्तिब्रह्मा—साधारण माया - मायातत्त्व - माद - विदुत्तरा

शक्तियों के चतुर् संवर्षी विचार—आमातवाद - इतराधारा - अंतर्ज्ञान

आमातीरादि

साधना दर्शन—

वाक्साधक साधना का रूप—शक्ति उपाधना, बुद्धिनी साधना

बुद्धिनी मार्ग—दुःखसाधना, म्हात् और शक्तिवाद, निर्गुण अर्थ

निर्गुण वाक्साधक का शैव शाक्त संन्य का प्रभाव

बौद्ध तंत्र धारणा और हिन्दी के निर्गुणियों कवि

बौद्ध तांत्रिकों की विविध शाखाएँ

मन्त्रदान और उसके प्रमुख तत्व — 7 15

ब्रह्मदान—सहब्रह्मदान, अलक्ष्मदान, बौद्ध तांत्रिकों का नैतिक

दृष्टिकोण 17 1 3 3 1

निर्गुणियों कवियों पर बौद्ध तांत्रिकों का प्रभाव

कैन तांत्रिक और संत कवि

नाथ पंथ—

नाथ पंथी साहित्य—नाथ सम्प्रदाय का ऐतिहासिक विवरण—

मत्स्येन्द्रनाथ का योगनी कीर्तन ज्ञान—मत्स्येन्द्रनाथी मत में बिंदु का स्वरूप

निर्गुण काव्यधारा पर मत्स्येन्द्रनाथी धारा के प्रभाव—

गोरक्षनाथी धारा—परिचय, दार्शनिक सिद्धांत,

साधना पद्धति—निर्गुण काव्यधारा पर गोरक्षनाथी

माधुर्य के प्रभाव—

सन्तों पर इस्लाम धर्म की छाया—

प्रभाव की सीमाएँ—सत्यनिष्ठ — दीन — हमान,

साम्यवाद—निबन्धवाद — सन्तों की प्रतिष्ठ

धर्मवाद अद्वैतवादीक प्रवृत्ति—

सूक्ष्म और सन्तकवि—

इस्लाम और सूक्ष्म मत में अंतर—अप्यत्म चिंतन, शरीर या साधना पथ,

सूक्ष्म पर सूक्ष्मों के प्रभाव—

## शैबदर्शन और निर्गुण काव्यधारा

शैबदर्शन पद्धतियाँ—मध्य युग के प्रभावशाली दर्शनों में शैब दर्शन का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। शैबदर्शनों को स्पष्ट रूप से दो नामों में विभाजित करते हैं :—

धार्मिक और पाशुपत

इसमें धार्मिक दर्शनों को पाशुपत की अपेक्षा वैदिक विचारधारा से अधिक संबंधित माना जाता है। धार्मिक दर्शन की, बहुत ही शाखाएँ और

मराठारण्ड हैं। जिसमें शैव सिद्धांत प्रत्यभिज्ञा दर्शन, बीर शैवमत, तामिल मक्ति सम्प्रदाय विद्यय प्रसिद्ध हैं। पाशुपत दर्शनों के अंतर्गत पाशुपत, मङ्गलीय, कपालिक, सखरवर, मारुतनाथी आदि आते हैं। इनमें सबसे प्रमुख चार हैं —

- १ पाशुपत ।
- २ शैवमत ।
- ३ बीर शैव मत ।
- ४ प्रत्यभिज्ञा दर्शन ।

संतों पर बोझी-बहुत छाया इन्हीं चारों दर्शनों की दिसाई पड़ती है। शैव दर्शन कहीं बटिल है। मध्ययुग में भी वे सामान्य जनता की पहुँच के बाहर थे। जबतक अलौकिक प्रतिभाशाली दार्शनिकों की प्रतिभा का ही श्रीका क्षेत्र बने हुए थे। संभवतः इहोक्षिप संतों पर शैव दर्शनों के सिद्धांतों का बहुत अधिक प्रभाव नहीं दिसाई पड़ता है।

### पाशुपत दर्शन

सिद्धांत विवेचन—इस दर्शन का दूरत नाम मङ्गलीय या सङ्गलीय भी बताया जाता है। पाशुपति शब्द य पाशुपत शब्द मनुष्यप हुआ है। पाशुपति शिब<sup>१</sup> का ही दूरत नाम है। इस दर्शन का संकेत हमें सर्वप्रथम महाभारत<sup>२</sup> में मिलता है। महाभारत के बाद इत्यथे भयक बानन-पुराण<sup>३</sup>, शिब पुराण<sup>४</sup> आदि में दिसाई पड़ती है। पुराण ग्रंथों के परभाव इस दर्शन की विवेचना अभिनव गुप्त ने अपने संभालोच में, मध्वाचार्य ने अपने सर्वदर्शन संग्रह में, उदयनाचार्य ने अपनी स्याय कुमुदावलि में, और मातर्गङ्गा नामक आचार्य ने गण्य वाटिष्ठा में, अधिक व्यवस्था और सांगठ्य में की है। मुझे ऐसा लगता है कि इस दर्शन के बहुत से प्रमादिक ग्रंथ लुप्त हो गए हैं। उनके अनुसंधान की आवश्यकता है।

<sup>१</sup> वैदिक प्राचीन साहित्य में शिवनिमित्त रूपकों पर पाशुपति शब्द का प्रयोग मिलता है—

(क) शांख्य ब्रह्मसूत्र १६।१८

(ख) अथर्ववेद ११।१।२८

(ग) आश्वलायन श्रुत सूत्र ७।६

(घ) शांख्य श्रुत सूत्र ३।६

<sup>२</sup> महाभारत १३।१४।१८

<sup>३</sup> बाबल पुराण ६।८६-८९

<sup>४</sup> शिब पुराण आदर्शिक संदिता अष्टावक्र



इस दर्शन में पंच परमाणु की विवेचना की गई है। उनके नाम क्रमशः कर्म, आरब्ध, योग, विधि और बुद्धांत हैं।

आरब्ध के सम्बन्ध में सर्वदर्शन संग्रह में लिखा है कि पति ही सब का आरब्ध है। वही इस जगत् का अर्थात्-मूर्ता और संहर्ता है। वह बस्तुतः अद्वैत रूप है किन्तु गुण क्रिया आदि के भेद से अनेक प्रतीत होता है। वह अनंत ज्ञानरूप है, अनंत शक्ति रूप है।

दूसरा तत्त्व कर्म है, जो कुछ पर्याप्त है, वही कर्म कहलाता है। कर्म अपनी आरब्ध पति पर अवलम्बित रहता है। इस कर्म के तीन भेद बताये गये हैं—विद्या, कला और पशु। पशु के गुणों को अविद्या कहते हैं। यह अचेतन तत्त्व है। इसके भी दो प्रकार होते हैं—बोध और अबोध। विवेक ही जब साक्ष्य पर आश्रित होता है तब उसे चित्त कहते हैं। इसी के द्वारा प्राणियों को चिद्-चिद् बस्तुओं का बोध होता है। विद्या तत्त्व भी अविद्या समान प्रतीत होते हैं।

कला तत्त्व भी चेतन पति पर अवलम्बित रहनेवाला अचेतन तत्त्व है। उसके भी अर्थविद्या और अर्थरक्षा नामक दो भेद माने गये हैं। अर्थविद्या के अंतर्गत पाँच भूत और उनके पंच गंधादि पंच गुण आत हैं। अर्थरक्षा के अंतर्गत पाँच शानेन्द्रियाँ, पाँच अग्नेन्द्रियाँ, त्रिविधा अंतःकरण माने गये हैं।

पशु आश्रय जीव को कहते हैं। उसकी दो कोटियाँ बनलाई गई हैं—ध्यान और निरंजन। शरीर विशिष्ट जीव को साधन और अशरीरी जीव को निरंजन कहते हैं। पशु जब पाश से मुक्त हो जाता है तभी वह शिवस्वरूप हो जाता है।<sup>१</sup> इस दर्शन में पशु या जीव पति और जगत् से भिन्न बताये गये हैं। क्योंकि उसके गुण मूलतः वे ही होते हैं जो पति में हैं। इसे माहेस्वर का अंश भी माना गया है। इस दृष्टि से यह वेदांत विद्या के अधिक उभय है। अंतर केवल इतना है कि वेदांत में जीव का रूप अतिमय होता है किन्तु वहाँ पर पशु का पशुत्व प्राप्ति नहीं है। वेदांत दर्शन में जीव और परमात्मा के सम्बन्ध में वहाँ एक और अन्तर दिखलाई पड़ता है। वेदांत में जीव माया से मुक्त होकर ब्रह्म से जोर धीरे की तरह एक हो जाता है, किन्तु पशु बंधन से मुक्त होकर भी निरंजन पशु के रूप में पति के विराट् स्वरूप में अर्थात् अस्तित्व बनाये रहता है। वेदांत के अनुसार जीव को माया आश्रय करनी है किन्तु इस दर्शन के अनुसार जीव को मन या पाश आश्रय करनी है। वह मन तीन प्रकार का कहा गया है। अविद्या, कर्म और माया। यहाँ हम माया पर थोड़ा अधिक विचार कर लेना

<sup>१</sup> वैश्वानर आश्रय का वेदांत पृ० ५०६



## १—ईश्वर को जगत् का केवल निमित्त कारण मानना

यद्यपि अधिकांश संत लोग संकल्पना से ही प्रभावित थे। उन्हीं के आधार पर वे ब्रह्म को जगत् का निमित्त उपादान कारण मानते थे। किन्तु फिर भी कुछ संतों की रचना पाशुपत दर्शन की आरंभ थी। उल्लेख प्रभावित होकर उन्हींने ब्रह्म को जगत् का निमित्त कारण माना। प्रभाव रूप में हम संत पसंद चाहते की निम्नलिखित उक्ति से सकते हैं—

ऐसी कुरति तेरी साहिन, ऐसी कुरति तेरी है ॥  
घरती नम मुहु भीत छठाया, तिसमें पर इक छाया है।  
तिस पर भीतर हाट लगाया, लोग तमासे आया है' ॥

## २—निरंजन की कल्पना को आत्मसात् करने की खिन्ना

पाशुपतों की निरंजनवादी कल्पना से भी संत लोग प्रभावित प्रतीत होते हैं। हम ऊपर कल्ला चुके हैं कि पाशुपत दर्शन का विकास कई शाखाओं में हुआ था। उनमें से एक शाखा गोरक्षनाथी भी थी। हो सकता है कि कोई शाखा निरंजनमार्गियों की भी हो। आगे चलकर उन्हीं से निरंजन मत का उदय हुआ है। उन्हीं शाखा से निरंजन शब्द का प्रयोग संत कवियों ने सीखा हो। जैसे भी इसका प्रयोग गोरक्षपंथी संतों में बहुत मिलता है। हमारी दृष्टि धारणा है कि निरंजन शब्द निर्गुण कल्पना के कवियों में पाशुपत दर्शन की किसी शाखा के माध्यम से ही आया है। आगे वह गोरक्षनाथी शाखा हो या कोई अन्य। संत कवियों पर पाशुपत दर्शन का केवल इतना ही प्रभाव प्रतीत होता है।

## शैव सिद्धान्त मत

सिद्धान्त विवेचन—इस मत का प्रचार एवं प्रसार शैव-तान्त्रिक शैव शाखा है। इस मत में शक्ति की अत्यन्त मायता रही है। शैवतान्त्रिक शैव में उष्णशक्ति के शैव मत उदय हुए थे। इस दर्शन के प्रतिपाद तीन तत्त्व हैं—शिव, शक्ति और विन्दु। शिव शक्ति के रक्षक, शक्ति शैवतान्त्रिक और विन्दु उपादान माने गये हैं।

शिव तत्त्व—शिव के लिए इस दर्शन में 'पति' शब्द का प्रयोग किया गया है। परम ऐश्वर्य, स्वतंत्र तथा सर्वज्ञ इनके अलावा अन्य गुण माने गये हैं। उन्हीं कल्पना पंचमहातम के रूप में की गई है। उनके पाँच रूप

वर्धित किये गये हैं। वे क्रमशः सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरामास तथा अनुग्रह करण हैं। ये शिव दो अवस्थाओं में रहते हैं—कभी लयावस्था में कभी भोगावस्था में। लयावस्था में शक्ति शिव में अवर्धित रहती है और भोगावस्था में शक्ति उन्मेष को प्राप्त हो जाती है।<sup>१</sup>

पशु—वेदान्त में त्रिसु भीष कहते हैं, शेष मठ में उरी का पशु कहते हैं। ये साग पशु का प्रथम रूप और अनेक मानते हैं। इस मठ में इसे ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति से सम्बन्धित होने का कारण कर्ता भी कहा गया है। यह पशु तीन प्रकार का होता है—विशानाच्छ, प्रलयाकण और यकण। इनको विमूर्च्छित करनेवाला मल भी तीन प्रकार का होता है—आयुषमल, कामेण्यमल और मायीमल। पशुओं का बाधनेवाला पाप भी चार प्रकार का होता है—मल, कर्म, माया और रोष शक्ति। यहाँ पर विश्वात्म्य से सब का विवेचन नहीं करेंगे। हाँ, माया का सन्धीकरण अक्षर्य करना चाहते हैं। इस मठ में माया वेदान्त की भाँति मिथ्या नहीं मानी गई है। यह पशु रूप एक और नित्य रही गई है।<sup>२</sup>

इस दर्शन का सत्त्व पशु का मल एवं पाप का निराकरण करके उस मोक्ष दिलवाना है। जल, धर आदि वायु साधनों का ये इस सत्त्व की पूर्ति में अयोग्य मानते हैं। अक्षेप शक्तिराज नामक साधन पर अधिक बल दिया है। शक्तिराज का अर्थ है मगसान् की अनुग्रह शक्ति का प्राप्त करना। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ये साग मगसान् की द्वारा साप्पता में ही विरवास करत हैं। क्रिया साप्पता में उन्हें पिरोप आरणा नहीं दे। शक्तिराज के लिए दीक्षातत्व की बड़ी आवश्यकता बननाई गई है। मगसान् हरकृती गुण दीक्षा द्वारा शिव का उद्धार करता है और उसे धारणन से मुक्त करता है।

इसका मुक्ति साधनी सिद्धां भी वेदान्तियों से बड़ा सा भिन्न है। माय का हरण राज्य करत हुए अभिन्न गुण ने लिखा है “माय का न हो कोई स्थान होता है और न उगठ लिए अल्प की जाना पड़ता है। अज्ञान मदन करनेवाली रसशक्ति का उन्मेष ही माय है। इससे राज्य है कि ये साग कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति को ही माय नहीं मानते। उगठ लिए क्रिया शक्ति का उन्मेष ज्ञान आवश्यक होता है।”

विन्दु तुल्य—उपर अभी हम बताया था है कि शिव सिद्धांतवादी आचार्य विन्दु का उगात्म मानते हैं। इसका तुल्य नाम महामाया भी है। जब यह विन्दु

<sup>१</sup> ऐतिह्य—“शिव दृष्टि का द्वा द्विद्वय”—शिवरात्रि सुंदरम् ३५ से ६६ तक

<sup>२</sup> मय राजन मन्त्र—बेकनाथ मय स० १६८२ ७० १६० १६१

ब्रह्म होता है तभी शुद्ध देह ऐश्वर्य मोनों और भुक्तों की उत्पत्ति होती है। किन्तु के विद्योम से अण्वाओं का जन्म होता है। इस लक्षण में भी कई मत हैं। पंडिता मत है—किन्तु विद्युत्त्व होकर एक बार तो शुद्ध अण्वाओं को जन्म देता है और दूसरी बार माय का जन्म देता है। यह नाम भी कई प्रकार का होता है। दूसरे मत के अनुसार शुद्ध एवं अशुद्ध दानों अण्वाओं का कारण किन्तु ही है। इस मत वाले विदु की तीन अवस्थाएँ मानते हैं—परा, बिसे महामाया, परमात्मा और कुंडलनी आदि भी कहते हैं। यह परम कारण और नित्यरूप है। दूसरी दो अवस्थाएँ कृष्णा और शक्ता नाम से प्रसिद्ध हैं। ये अवस्थाएँ होने के कारण अनित्य हैं। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि विदु में घोम किस कारण से उत्पन्न होता है। तन्म ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि विदु का घोम शिव वा परमेश्वर के स्पर्श से होता है।

परमेश्वर, कैसा कि ऊपर कह आये हैं, पंचकृत्यपरी कहा गया है। अपने पाँचों कृत्यों के संवारनार्थ उसे विदु का घोम करना पड़ता है। विदु को दाम्पित करने के लिए शिव का सक्रिय होना आवश्यक होता है। स्वा-स्वो लक्षणरमा से शिव और शक्ति का क्रियावस्थाओं में विकसत होता जाता है उसी क्रम से विदु का भी विविध अवस्थाओं में विकसत होता है। ये अवस्थाएँ कृष्णाएँ कहलाती हैं ये संख्या में पाँच हैं—विद्युति, प्रसिद्ध, बिधा, शक्ति और शक्तिशील। अंतिम अवस्था विदु की लक्ष्मी बन्धा मानी जावेगी और शेष चार अवस्थाओं से ही योगाधिष्ठानों का जन्म होता है<sup>१</sup>।

विदु के लक्षण में कुछ आचार्यों का मत उपर्युक्त मत से भिन्न है। वे लोग परमेश्वर की दो प्रधान शक्तियाँ मानते हैं—संवाहनी शक्ति और परिग्रहणा शक्ति। परिग्रह शक्ति अप्रकृत होती है और संवाहनी शक्ति कृतन और निर्बिकार। परमेश्वर की परिग्रह शक्ति ही इनके मतानुसार विदु कहलाती है। विदु के भी य लोग दो मत मानते हैं—शुद्ध और अशुद्ध। उन्हें क्रमशः महामाया और माया कहा जाता है।

विदु के लक्षण में एक मत और प्रसिद्ध है। विदु, संवाह्यकारियों का कहना है कि शिव की संवाहनी शक्ति दो प्रकार की होती है—एक दृग शक्ति और दूसरी क्रिया शक्ति वा कुंडलनी शक्ति। दूसरी शक्ति का ही विदु कहते हैं। यह विदु ही शुद्ध एवं अशुद्ध अण्वाओं का कारण कहा गया है। संक्षेप में शिव सिद्धांत का मत यही है।

<sup>१</sup> शक्ति—मोर्ताभाव कवितार त्रिगुण—मांकिड दृष्टि नामक योग, कान्ताय के द्वापनार्थ में।

प्रभाव निर्देश — संतों पर इस दर्शन के दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

एक मोक्षाभारणा विषयक और दूसरा बिंदु धारणा सम्बन्धी। इस दर्शन के आपापों के अनुसार मात्र प्राप्ति के परन्तु मुक्तात्मा को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता है। उनके महानुकार अज्ञान भेदन करनेवाली स्वयंकी का उन्मेष ही मोक्ष है। मात्र सर्वथी इस धारणा की अभिव्यक्ति हमें कहीं-कहीं संतों की बानियों में मिल जाती है। उदाहरण के लिए हम कबीर की निम्नलिखित पंक्ति से सबते हैं—

कहै कबीर परम पद पाया कहीं जाऊँ न भाऊँ<sup>१</sup>

कहाँ तक बिन्दु धारणा का संबंध है संतों ने उसकी अभिव्यक्ति अपने ढंग पर की है। ब्रह्मनाद का प्रत्यक्ष मानने के और जीव को बिंदु रूप। उनकी धारणा का लक्ष्य इन दोनों में तादत्म्य स्थापित करना था। तादत्म्य स्थापित करनेवाली इस धारणा का उन्होंने नाद बिंदु प्राप्त किया है। वे नाद और बिन्दु दोनों की स्थिति शरीर के अंतर्गत ही मानते थे। यह बात उनकी बानियों से प्रकट है। उदाहरण के लिए हम मीना साहब की निम्नलिखित पंक्ति से सबते हैं—

नाद बिंदु को जोहु गगन में मन माया सब मरे<sup>२</sup>

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने नाद बिंदु में सम्बन्धक भाव का संबंध दिखलाया है—

नाद बिंदु को जूह होय, ये साहब ये सेवक जोय।<sup>३</sup>

इस प्रकार स्पष्ट है कि संतों ने इस दर्शन की बिंदु धारणा को अपने ढंग पर अपने-अपने प्रयत्न किया था। उन्हें अपनी नाद बिंदु धारणा के स्वरूप निरूपण में अनेक इस दर्शन के प्रेरणा मिली होगी।

### वीर धैर्य मत

सिद्धान्त विवेचन—वीर धैर्य मत का प्रचार इतिहास में ही अचिन्तित था। इस मत का धार्मिक पक्ष ठाना महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु धार्मिक पक्ष।<sup>४</sup> इस मत में धैर्य की ब्रह्मना ईश्वर के रूप में की गयी है। यह मत शूद्राचार का विरोध है। इस मत के अनुयायी ब्रह्म, बिन्दु और परमात्मा

<sup>१</sup> कबीर साहबकी पृ० १३४

<sup>२</sup> मीना साहब की बानी पृ० ७

<sup>३</sup> मीना साहब की बानी पृ० ४०

<sup>४</sup> श्रीगुरुदेव साहब धर्मशास्त्र—पृ० १३, पृ० १४, पृ० १५—वा० श्रीमद

शिवी पर भी विश्वास नहीं करते हैं। वे सोम शिवलिंग की पूजा में विश्वास करते हैं।

बीर शैव मत<sup>१</sup> का मुख्य नाम शक्ति विशिष्टाद्वैत ही है। शक्ति विशिष्टाद्वैत शब्द का अर्थ है शक्ति विशिष्ट बीज और शक्ति विशिष्ट शिव। इन दोनों का सामरस्य अर्थात् परस्पर एकद्वय होना। भाव यह है कि स्पष्ट बिद्विदात्मक शक्ति विशिष्ट बीज और सूक्ष्म बिद्विदात्मक विशिष्ट शिव—इन दोनों का अद्वैत ही विशिष्टाद्वैत कहा जाता है।

इस बीर शैव सिद्धांत या शक्ति विशिष्टाद्वैत दर्शन में शक्ति और शक्तिमान्, तत्त्वों का भेदाभेद संबंध स्पष्ट किया गया है। वृद्धे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इस मत में शिव और शक्ति अर्थात् शक्ति संबंध माना जाता है। उक्त शक्ति को विमर्शाशक्ति कहते हैं। यदि शिव में विमर्शाशक्ति म रहे तो वह ब्रह्मत् हो जाये। इस सूक्ष्म शक्ति को ही बिद्विदात्मिक शक्ति कहा गया है। बिद्व शक्ति सर्वव्युत्पत्ता होती है और अविद्यु शक्ति सर्वव्युत्पत्ता रूपा नहीं मानी है। इस विमर्शाशक्ति में त्रिगुण अन्तर्निहित रहते हैं। सृष्टि का विकास उन्हीं त्रिगुणों से होता है। इनके मत में तमोगुण शक्ति ही ब्रह्मभाव कहलाती है। यह तमोगुण शक्ति ही विमर्शा शक्ति में छोम पैदा करती है जिससे आगे सृष्टि का विकास होता है। अन्त दर्शनों की भाँति बीर शैव मत के मत का लक्ष्य आत्मा को परमात्मा में लीन करना है। इस भाषना ने इस दर्शन वालों को आत्मा और परमात्मा में भेदीकरण करने की प्रेरणा प्रदान की है। आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए सः सोपानों से गुजरना पड़ता है। प्रथम सोपान पर जो मक्ति के नाम से प्रसिद्ध है, पहुँचने पर परमात्मा ईश्वर की भाँति भावित होता है। इसी प्रकार अन्त सोपानों की कल्पना की गई है। आत्मा मिलने सोपानों को पार करती जाती है, वह परमात्मा के उन्हीं ही लीन जाती जाती है। पाँचवाँ सोपान शरण स्थल कहलाता है। यहाँ पहुँचकर आत्मा परमात्मा में पूर्ण आत्मसमर्पण कर देती है। अन्त में आत्मा उन्हीं प्रकार परमात्मा में लीन हो जाती है जिस प्रकार पटाक्षर ब्रह्माक्षर में लीन हो जाता है। इसीलिए लूटे स्थल को चैत्य स्थल कहते हैं। इसीलिए इस दर्शन को भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत दर्शन कहते हैं।<sup>२</sup> इस ऐक्य स्यात्मा के लिए तात्क को कर्म और ज्ञान दोनों प्रकार की साधनाओं में निरत होना पड़ता है।

इस मत में जीव की कल्पना शिव क अंश के रूप में की गई है और उते

<sup>१</sup> द् द्वैतबुद्धि आक बीरशैवियम्—पृ० १४० पर इसका विशेषण देगिये।

<sup>२</sup> द् द्वैत बुद्धि आक बीर शैवियम् भा० कर्मसंग्रह पृ० २६-२७

रूप विद्विदममक शक्ति च विशिष्ट माना गया है। वह इच्छाशक्ति च विशिष्ट यथा है। इनका अंशार्थी भाव द्वैताद्वैतवादी माना जाता है। इस दरान में ब्रह्मीय तत्त्वों की मान्यता है किन्तु उदय विमर्श शक्ति के स्वरूप से होता है। इस मा के अनुसार परम अरण्य शिव में, जो पूर्ण अन्वय्य है वे सर्वप्रथम विमर्श या इच्छाशक्ति उत्पन्न होती है। इच्छाशक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से क्रिया शक्ति का आविर्भाव होता है। जब परशिव 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस प्रकार के अभिमान से विशिष्ट हो जाता है, तब उसे शिव तत्त्व कहते हैं। इसी प्रकार जब परशिव क्रियाशक्ति में अन्तर्निहित होकर अपने को अर्थात् समझने लगता है तब तबसे शक्ति तत्त्व कहा जाता है। शक्ति तत्त्व को परात्पर जगत् का उदाहरण कारण और शिव तत्त्व को निमित्त कारण कहा गया है। जब शक्ति तत्त्व ज्ञान शक्ति की उन्मत्तावस्था में प्रवेश करके, मैं यह प्रपंच हूँ, इस प्रकार अनुभव करने लगती है तब उसी को इस दर्शन में शिव तत्त्व कहा जाता है। इसी प्रकार जब शक्ति तत्त्व क्रियाशक्ति में प्रवेश करके, मैं यह प्रपंच हूँ इस प्रकार अनुभव करने लगती है तब उस एत इस दर्शन में ईश्वर तत्त्व भी गंगा ही जाती है। इसी प्रकार मैं यह प्रपंच हूँ, इस रूप में मैं और यह प्रपंच, इन दोनों का अमेद ज्ञान को विद्यालय कहा गया है। यह विद्यालय और उसी में अन्तर्निहित मायी प्रपंच में विद्येर्ण्य रहन तत्त्वों में अनेकानेक भाव ही मंद बुद्धि च विशिष्ट होकर माया तत्त्व कहा जाता है। इसी प्रकार कला, विद्या, राग, क्रोध, निवृत्ति आदि भी अज्ञाना मी विस्तार से भी गई है। विनात्मक से इन सबकी ध्याना हम यहाँ नहीं कर रहे हैं। इस दरान में ब्रह्म ३१ तत्त्वों का क्रमिक विवरण हम और शक्त तत्त्वों के प्रवृत्त में तात्पर्य के साथ संकेतित करेंगे।

**प्रमाण निर्देश**—निगुणित संतों पर इस दरान का कुछ विकृत प्रमाण नदी निर्धार पड़ता। एक छात्र स्वप्नों पर इसके विशिष्टादित अंशार्थीभाव तथा सूत्रे विज्ञान रूप भी लक्ष्य मर निव्र जाती है। शक्ति विशिष्टादित क विद्येत को तो संतों ने बना कर लो दाहयने भी पाया भी है। संत सुन्दरदास ने देवप्रमाण का लक्षित करने क निदर इनके लक्ष्य तक का पुनरुद्धार किया है। इन लक्षणों ने परमात्मा और महात्म्य क निजान का उदाहरण तक करना लिखा है। नदी लक्ष्य देन हुए सुन्दरदास निवृत्ते हैं—

देव को मज्जोग पाद जीव एसो नाम मया,  
पर के मज्जाग पयाकास ही कहायो है।

१ ५ ईश्वरक पाद कीर्तन भा० नारीमर ५० १३०  
२ ईश्वर—५ ईश्वरक पाद कीर्तन भा० नारीमर ५० १३०  
३ सुन्दरदास ५ १०९



ईश्वर सकल विरुद्ध में विराज मान  
 मठ के समीप मठाकास नाम पायो है ॥  
 महाकास माहि सब, पठ मठ देखियत,  
 बाहिर भीतर एक, गगन समायो है ।  
 वैसे ही सुन्दर ब्रह्म, ईश्वर अनेक लीव ।  
 त्रिविध उपाधि मेव, प्रथम में गायो है ॥

इसी प्रकार दूढ़ने से संभवतः दो एक सिद्धांतों की मूलक और मिल सकती है । किंतु  
 इस दर्शन का संतो पर कोई व्यापक प्रभाव दिखाई नहीं पड़ा है ।

### प्रत्यभिज्ञा दर्शन

सिद्धान्त पक्ष—इस मत के प्रधान आचार्यों में श्रीमद् अभिनवगुप्ताचार्य,  
 श्री सोमानन्दाचार्य, श्री बसुगुप्ताचार्य आदि विशेष प्रसिद्ध हैं । काश्मीर में उदित  
 होकर विकसित होनेवाली शैव दर्शन की शाखा प्रत्यभिज्ञा दर्शन<sup>१</sup> के नाम से प्रसिद्ध  
 है । इसे त्रिकदर्शन भी कहते हैं । यह शैव दर्शन की आद्वैतवादी शाखा है । ये लोग  
 एक ही परमेश्वर को आद्वैततत्त्व या परमत्तत्त्व या शिवतत्त्व मानते हैं । इनके मत  
 अनुसार इतने अमेश्वर अमेश्वरी का सामरस्य रहता है । अमेश्वर को शिव और  
 अमेश्वरी को शक्ति कहा जाता है । शिवतत्त्व निर्बिम्बर रूप से समस्त पदार्थों में  
 परिभ्रमण है । वैतन्य परासंबिध अनुत्तर परमेश्वर तथा परम शिव एवं इसी आद्वैत तत्त्व  
 के पर्यायवाची हैं । वेदान्त में इसी को आत्मा कहा गया है ।

इस मत में परमेश्वर की शिष्ट, इच्छा और ज्ञान नामक शक्तियों को विशेष  
 महत्त्व दिया गया है । यह दर्शन उत्तु कार्बवादी दर्शन कहा जा सकता है । इनके  
 मनामुसार जगत् प्रलय काल में भी शिव शक्ति में ही अन्तर्निहित रहता है । व्यक्त  
 जगत् का परमेश्वर से इस दर्शन में प्रतिबिम्बवादी संबंध माना गया है । अभिनवगुप्त  
 के मनामुसार—“बिध प्रकृत निर्माण स्वर्ण्य में प्राप्त, नगद, वृष्टादि पदार्थ प्रतिबिम्बित  
 होने पर उठते मिथ न होने पर भी परस्पर मिथ प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार दूर्ध्व  
 लम्बिरूप परमेश्वर में प्रतिबिम्बित वह शिष्ट अभिन्न होने पर भी घटपटादिक्रम से मिथ  
 अन्मासित होता है । एक बात ध्यान देने योग्य है । लोक में प्रतिबिम्ब की कथा किन्  
 पर अचलम्बित है । पर त्रिकदर्शन में परमेश्वर की स्वास्त्य शक्ति के अरुद् बिना रूप

<sup>१</sup> इस दर्शन का विवेचन निम्नलिखित रचनाओं पर देखिए—

(क) सार्वभौम समग्र पृ० १६०

(ख) भारतीय दर्शन—बनारस उपाध्याय पृ० ५२३-५२६ (१६४=)

(ग) धर्मशास्त्र भाग ५० ८९-९९

के ही बालू रूप का प्रतिबिम्ब स्वयं उत्पन्न हुआ है।" यहाँ पर वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद से त्रिकदर्शन के प्रतिबिम्बवाद का भेद विस्तृत स्पष्ट प्रकृत है। वेदान्त में प्रतिबिम्ब के लिए बिम्ब की कल्पना अनिवार्य मानी गई है। किन्तु त्रिकदर्शन में बिना बिम्ब के ही प्रतिबिम्ब की कल्पना की गई है।<sup>१</sup> त्रिकदर्शन का यह प्रतिबिम्बवाद आयातवाद के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक बात और ध्यान देने की है कि वर्तन में बगलरूपी प्रतिबिम्ब को भ्रूतिमात्र माना गया है। उच्छ्वस काद वास्तविक अस्तित्व नहीं समझा जाता। किन्तु त्रिकदर्शन को स्वार्थन्यवाद का सिद्धांत मान्य है। ये भाग विवक्षित और परिशुद्धवाद दोनों ही नहीं मानते हैं। परिशुद्धवाद में बालू का स्वल्प मूलतः बदल जाता है। यदि परिशुद्धवाद स्वीकार न किया जाय तो प्रकाश तनु शिव के बगलरूपी नभ परिशुद्ध के विवक्षित होने पर हो सकता है कि शिव के प्रकाशत्व का उच्च बगलरूपी परिशुद्ध में न हो। यही अचरया में बगल विस्तृत प्रकाशहीन और अंधकाररूप रह जायेगा और यदि बदलत वा विवक्षितवाद स्वीकार किया जाय तो यी टीका नहीं है, क्योंकि उक्त लिए बिम्ब की आयात तत्त्व की आवश्यकता अनिवार्य है। बगलरूपी प्रतिबिम्ब का परम शिव को विवाहार मान लेना पर अद्वैतता का प्रतिबिम्ब ही है। इसीलिए य लोभ न ता परिशुद्धवाद मानत हैं और न विवक्षितवाद। इन दोनों में विसंगत स्वार्थन्यवाद की कल्पना की है।<sup>२</sup>

यदि भी उत्पत्ति के सम्बन्ध में इनका कथना है कि जब परमेश्वर के हृदय में विद्युत् उत्पन्न होती है तब उच्छ्वस का स्वल्प हो जाने हैं—शिव और शक्ति। शिव प्रकाशरूप माना जाता है और शक्ति विमर्शरूपिणी मानी जाती है। बिम्ब प्रसार बिना दर्शक के हुए नहीं होगा वगैरे उगी प्रचार शिव का प्रकाशत्व भी विमर्शरूपिणी के बिना सम्भव नहीं होता है। शक्ति का बिना शिव का प्रकाश ही रहेगा। फिर इन दोनों के सहारे आम विकास सम्भव होता है। शिवशक्ति की अन्तर्मुक्ति प्रकृति का अन्तर्गम और अन्तर्गम प्रकृति का अन्तर्गम कथना है। इसी प्रकार अन्तःकृत्य कृत्य का विवक्षित सम्भव दिखलाया गया है।<sup>३</sup>

अन्तर्गम दर्शन अन्तर्गमवादी दर्शन है। इस दर्शन में माय का 'विदानन्द लाभ'<sup>४</sup> कहा गया है। यह विदानन्द लाभ ही अन्तर्गम भाव में लाना और

<sup>१</sup> आर्य समाज—बनारस उपाध्याय पृ० ५२३

<sup>२</sup> आर्य समाज—बनारस उपाध्याय भाग ६, में शक्ति मूर्तिमात्र कथित है। अन्तर्गम आयातवाद का अर्थ पृ० ६०-६१

<sup>३</sup> आर्य समाज—बनारस उपाध्याय पृ० ५२३-५२४

<sup>४</sup> आर्य समाज—बनारस उपाध्याय पृ० ५६९

हिन्दी की निर्गुण आत्मभाव और उसकी दार्शनिक दृष्टान्त

स्वार्तम्ब<sup>१</sup> के नाम से भी प्रसिद्ध है। नीच या पशु को इसकी प्राप्ति कई महेश्वर के ज्ञानोदय के साथ ही साथ होती है। इस ज्ञानोदय के लिए ही प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग किया जाता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन का साधना मार्ग ज्ञान भक्ति और योग तीनों का सम्मिश्रित रूप कहा जा सकता है। वे लोग इन तीनों की समन्वित साधना से ही आनन्द की उपलब्धि मानते हैं।

प्रमाण पक्ष—संतों पर इनमें प्रत्यभिज्ञा दर्शन के दो-तीन प्रमाण स्पष्ट दस्तावेज पकते हैं। पहला प्रमाण आनन्दवादी धारणा का है। इस धारणा से कुछ संत लोग बहुत प्रभावित प्रतीत होते हैं। संत चरनदास<sup>२</sup> की निम्नलिखित वक्तियों में स्पष्ट रूप से आनन्दवाद की कृपा झलक रही है—

आदिहूँ आनन्द अन्तहूँ आनन्द,  
मध्यहूँ आनन्द, ऐसहि जानी ।  
बसहूँ आनन्द, गुणहूँ आनन्द  
आनन्द ज्ञान, अज्ञान पिजानी ॥  
सतेहूँ आनन्द, भैठेहूँ आनन्द,  
बोलेत आनन्द, आनन्द आनी ।  
चरनदास विचारि, सभै कुछ आनन्द,  
आनन्द खींचि के, मुकस न ठानी ॥

संतों पर इस दर्शन का बहुत प्रभाव साधना संबंधी था। भिन्न प्रकार के लोग अपने साधना में ज्ञान, भक्ति और योग तीनों का महत्त्व देते थे उसी प्रकार संतों में भी अपनी साधना में तीनों को महत्त्व दिया है। ज्ञान और भक्ति के सामंजस्य पर बल देते हुए संत पलटू<sup>३</sup> ने लिखा है—

‘भक्ति बीज जब बोधे निसिदिन करे विशेषक’

संत पलटू<sup>४</sup> साहब ने एक बृहते खसल पर भक्ति, योग और ज्ञान तीनों की साधना का महत्त्व की आरंभ किया है—

<sup>१</sup> भारतीय दूरान—बम्बई उपान्यास ५०-५८६ पर संज्ञाकार प्रथम का उद्धरण देखिए ।

<sup>२</sup> चरनदास की बाबो भाग २ पृ० ४०

<sup>३</sup> पलटू साहब भाग १ पृ० ५३

<sup>४</sup> संत बाणी संग्रह भाग १ पृ० १०१

मेरे सतगुरु गुरुसत निग बसन्त, जाकी मदिमा गावत साधु संत ।  
ज्ञान विबक के पूत्रे फूल, जहँ साग्य जोग और मक्ति सुल ॥”

वही-वही इस दर्शन में प्रतिबिम्बपाद की छाना का आभास भी प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए हम संत भीमा<sup>१</sup> साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं—

“जल भरि थल भरि पूरत समग्यो, भाव रहस्य बदावत ।  
जहँ देखो तहँ रूपदि भासे, अपुदि आमु दरमावत ॥”

इन प्रयोगों के आतिरिक्त संतों को इस दर्शन से नाद, विदु, उभनी, सतम आदि अनेक पारिभाषिक शब्द भी मिले थे। इनसे संबंधित पाठ्यालोचनोपस्थानों के स्वरूप निर्धारण में भी ऊँहें इस दर्शन से बाकी-बहुत प्रेरणा अपरर ही मिली होगी। वा भी हा इतना बड़े बिना नहीं रहा वा सच्चा कि मध्यकालीन शैव दर्शन पद्धतियों ने भी संतों की विचारधारा का यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से अपरर प्रभावित किया था।

**कुछ अन्य छोटी-छोटी दर्शन पद्धतियाँ** — कामसुख, कारात्मिक और खरर उद्युक्त प्रसिद्ध शैव दर्शन पद्धतियों के आतिरिक्त खरर दर्शन तथा कामसुख और कारात्मिक संवदाओं की भी प्रसिद्धि है। मत्स्यपुराण में इन सबका भी स्पष्ट प्रचार था। सांस्कृतिक दृष्टि में संतर्गत हम जालसुख साधुओं का दर्शन करेंगे। उनकी दार्शनिक विचारधारा का अभी तक कोई निश्चित ज्ञान नहीं है। मयि अपनी धारणा है कि ये दोनों ही बग साधना प्रधान संवदाय थे। इनमें किसी व्यापारित और विस्तृत दर्शन पद्धति का विकास नहीं हुआ था। आग बचकर ये दोनों ही संवदाय सिद्ध और माय मतो में आत्मिक हो गये। कामसुख और कारात्मिक संवदाओं में संभवा: कारात्मिक मा में दास निक तथा का विचार्य हुआ था। इनका उच्च सिद्धांत विशेष उन्नतनीर है। कहते हैं—नर काम में ही जाने वाली मदिम को ये लोग कहते थे। काम की व्याख्या मार्तनी शैर और तात्मिक संतों में विविध प्रकार से की गई है। कुछ हमका अर्थ किया और शक्ति का समन्वित रूप में है और कुछ इतना अर्थ प्रकरम में रिया म्द ये भ्रमेकाला समूह संत हैं। हमारी अपनी धारणा है कि इन सिद्धांत का संबंध म्दसा में रिया म्द तार से भ्रमेकाले समूह से है। पाल साधना के लगे म्दसा में रिया म्द तार से म्दसा इमेकाले समूह का पाल

<sup>१</sup> भीमा साहब की साधनावली पृ० ११

कल्प ही सोम साधना है और उठ साधना के तात्पर्यक रूप को ही सोम सिद्धांत कहा गया है।

रसेश्वर दर्शन.—इस दर्शन का लक्ष्य साधक को दिव्य शरीर की उपलब्धि करना है। इस मत के अनुयायियों का विश्वास है कि इस म्हाधिपत्य मन्त्रर शरीर से ब्रह्म साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। अतएव वे पहले इस शरीर को विविध रासायनिक प्रयोगों के सहारे अपने शरीर को दिव्य, इन्द्र, निस्प और रिपर बनाते हैं। फिर प्राण साधना करते हैं। शरीर को दिव्य बनानेवाला सबसे प्रथिम रसायन पारद है। इसी का रस भी करते हैं। पारद को शिव का नीर माना जाता है। इसी प्रकार अभ्रक को मंगलती का रस मानते हैं। इन दोनों के समस्थित प्रयोग से दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है। इस दर्शन का थोड़ा सा स्वरूप मिर्देश सर्वदर्शन संग्रह में किया गया है। किन्तु उठ विवरण से इसके आध्यात्मिक सिद्धांत स्पष्ट नहीं हो पाये हैं। हमारी समझ में यह भी तात्पर्य है और शिवशक्ति की साधना में विश्वास करते थे। इस साधना की पूर्य सफलता के लिए वे पहले शरीर को पारद और अभ्रक आदि के प्रयोग से दिव्य बनाते थे और फिर सोम और प्राण साधनाओं का आश्रय लेते थे। अंतो पर इस दर्शन का कोई विशेष प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। यह बात धूतरी है कि उनकी साधना आदि की एक आश्रय स्थलों पर चलते-फिरते वर्षों कर दी गयी हो।

## हिन्दू संघ और सन्तों की विचारधारा

भ्रान्तिपाँ—पम्पद्यत्नीन संघ मत संघ और मंत्र साधना एवं दर्शन से आरम्भिक प्रभावित है। अतएव हम संघ-मंत्र साधना एवं उसका दर्शन आदि का स्पष्ट संकेत कर देना चाहते हैं। संघ मत बहुत प्राचीन है। पहले वैदिक मत के उदय यह भी माग्य और प्रतिष्ठित समझा जाता था।<sup>१</sup> वायव्य संहिता में मारुतर्ष्य में केवल ३ मत प्रधान बताये गये हैं। उनमें संघ मत भी एक है। मनुस्मृति के तीर्थकार कुम्भूज भट्ट<sup>२</sup> ने संघों को भतिकर कहा है। कुत्तार्थक<sup>३</sup> संघ में तात्पर्य साधना का अलक्ष्य का प्रधान धर्म कहा गया है। इतना होये हुए भी आश्रय संघ साधना के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्तिपाँ फैली हुई हैं। बहुत से पार्वत्य विद्वानों ने इस

<sup>१</sup> इतिहास—मिस्रिपिस्त आर्य तन्त्रास आधर अनेकक प० ५६

<sup>२</sup> वैदिक तात्पर्यक विविधा भुति कीतिता—(कुम्भूज भट्ट)

<sup>३</sup> मिस्रिपिस्त आर्य तन्त्रास—आधर एवेकक पृ ४९

मन की पार निन्दा की है। इन विद्वानों में बाटें साहब<sup>१</sup>, त्रियन हाकसन<sup>२</sup>, मोनिवर विविचम<sup>३</sup> तथा विलसन<sup>४</sup> आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्हीं पारंपरिक विद्वानों से प्रभावित हो ब्रॉगरेजी चरम से भारतीय धर्म साधना को देखनेवाले हिन्दुत्वानी वाचु साग भी इस मन की निन्दा अतः मुने करते हैं। यदि विश्वपूर्वक देखा जाय तो उनकी उपेक्षा और निन्दा के मूल में तत्सम्बन्धी अज्ञानता ही है। उनकी अज्ञानता का प्रमुख कारण तंत्र मन की गुणता नहीं था सच्यती है।

साहस्य—भारतवर्ष की समस्त धर्म पद्धतियों और साधनाओं में तंत्र साधना सबसे अधिक गुण और रहस्यमय है। तांत्रिकों में उनकी गुणता बड़ी स्थापनीय मानी जाती है। उनका कहना है कि वेद शास्त्र और पुराणादि सामान्य गणिका के लक्षण हैं बिना एक सच्यती पहुँच ही सच्यती है किन्तु साम्प्रदायी विद्या कुल रूप के लक्षण आचरणान्तरण रहती है। उत तक अभिचारी की ही पहुँच हो पाती है।<sup>५</sup> इसी प्रकार तंत्रकार मानक मन्य में तांत्रिक साधना की गुणता पर बल देते हुए लिखा गया है कि उसे भी प्रकृत नहीं होने देना चाहिए।<sup>६</sup> विद्वत्कार<sup>७</sup> नामक तंत्र में तांत्रिक साधना का मातृकारण विज्ञाने का आदेश दिया गया है। तंत्रमन की इस रहस्यमयता और गुणगहनता ने उसके वास्तविक स्वरूप का साधारण जनता के समक्ष नहीं आने दिया। तांत्रिक साधकों ने अमूर्त रूप लक्ष्य की अभि प्रतीति सांकेतिक प्रतीतियों के माध्यम से करने की चेष्टा की। साधारण जनता इन्हीं प्रतीतियों में उलझकर रह गई। परिणाम यह हुआ कि प्रतीतियों के सांकेतिक अर्थ की परा ही लुप्त हो गई। इसीलिए साग तंत्रमा का वास्तविक स्वरूप से पर्यन्तित न हो सच्य के कारण उनके सांकेतिक प्रतीतियों का ही उलझन वास्तविक रूप समझकर उतकी

<sup>१</sup> व. व. पाठ दि हिमदी, निन्देकर अथवा माध्यास्तरी पाठ दि हिन्दूत वाच साहब पृ० ४२६ ५०२

<sup>२</sup> विमविचम पाठ संशय—भाष्ये पृथक् पृ० ४ (मूर्तिमा)

<sup>३</sup> ब्राह्मैयिष्म पाठ दिवृह्म मानिवर विविचम पृ० १०० (१८२१)

<sup>४</sup> हिन्दू संस्कृत—विज्ञान—भाग १ पृ० ८ तथा भाग २ पृ० ७०

<sup>५</sup> तांत्रिकों में निम्नलिखित शक्ति प्रसिद्ध है—

“ब्रह्माण्ड पुराणानि सामान्य गणिका ह्य।

वा गुणः साम्प्रदायी विद्या गुणा कुल वृत्तिव ह”

<sup>६</sup> तंत्रकार—आर० वृत्त० चटर्जी द्वारा सन् १९११

<sup>७</sup> प्रकाशात् मिद्विद्वानिः स्याद्ब्रह्माचार गनी विदे

अर्थात् ब्रह्म देवि गौरवण मातृकारण ह

निम्ना करने लगे। वास्तव में तन्मूल वैदिक धर्म के उदय ही दिव्य, महान् और शक्तिशाली है। मनस्वी पाश्चात्य विद्वानों ने भी यह बात स्वीकार की है। यही कारण है कि मध्यकालीन संत ऋषियों ने उच्च परम्परा को अपने ढंग पर जीवित रखने की चेष्टा की थी। निम्नलिखित विवेचन से बात स्पष्ट हो जायेगी।<sup>१</sup>

**दैवी उत्पत्ति**—तंत्रों की दैवी उत्पत्ति के प्रति तंत्रिणों की बड़ी आस्था है।

इस सम्प्रदाय में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। अधिकांश तंत्रिणों का कहना है कि मूल तंत्रों का आविर्भाव शिव के ईशानादि ५ मुक्तों से हुआ है।<sup>२</sup> कुछ पुराने तंत्रिणों के अनुसार शिव के पार मुक्तों से पार शैवों की अभिष्मक्ति हुई है और पाँचवें से तंत्रों की उत्पत्ति हुई।<sup>३</sup>

**परिभाषाएँ**—अब थोड़ा-सा तंत्र की प्रचलित परिभाषाओं पर विचार करना चाहते हैं। तंत्र से आमतौर पर प्रायः हिंदुओं की धार्मिक रचनाएँ या शाक्तों के धर्म ग्रंथों अथवा बान्-येने के ग्रंथों का अर्थ लिया जाता है।<sup>४</sup> किंतु तंत्र का वास्तविक अर्थ उपर्युक्त अर्थों से नहीं म्यारक है। उच्चरी शाक्तानुरूप व्याख्या करते हुए आर्चर एबेल्सन साहब<sup>५</sup> ने लिखा है—It denotes that body of religious scripture which is stated to be revealed by shiva as the specific scripture of the fourth or present Kallyug

अर्थात् तंत्रों से उन धार्मिक ग्रंथों का संकेत किया जाता है जिनसे कमला के लिए महाबान् शिव ने प्रकाशित किया है। निगम, आयम, यामल दामर, उदीय कच्छूत इत्यादि अनेक भेद बताये जाते हैं।<sup>६</sup> बहुत से विद्वानों की धारणा है कि तंत्र बहुत ही अर्वाचीन ग्रंथ हैं। इसी आधार पर वे तंत्र मूल की अर्वाचीन कहते हैं। इस मत के

<sup>१</sup> रिडीक्रेन्स आफ इन्डिया पृ० १९९ (१८८९)

<sup>२</sup> तांत्रिक दृष्टि नामक लेख—सेनक गोपीनाथ कविराज कम्पास के साधनांक में पृ० ४८०। इसमें विश्वाकर्षक ने लिखा है कि शिव के ईशान सत्पुरुष, सचो ज्ञान, कामदेव और अघोर नामक पाँच मुक्तों से भेद प्रदान १ शिव तंत्र भेदभेद प्रदान १८ कश्तक और अभेद प्रदान १४ भैरव तंत्र, उत्पन्न हुए हैं। (विलियम)

<sup>३</sup> प्रिसविस्स आफ तंत्र—आर्चर एबेल्सन पृ० ५१ (भूमिका) १९५२ मद्रास।

<sup>४</sup> प्रिसविस्स आफ तंत्र—आर्चर एबेल्सन पृ० १९४०

<sup>५</sup> प्रिसविस्स आफ तंत्र—आर्चर एबेल्सन पृ० ४१ (भूमिका)

<sup>६</sup> शक्ति क्वथ दि शाक्त—आर्चर एबेल्सन पृ० १४३

समर्थक पाठ्यपत्र विद्वान्<sup>१</sup> ही नहीं अगिष्ठ कुछ भारतीय विद्वान् भी हैं। दृष्ट्यमाना<sup>२</sup> ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में कुछ इसी प्रकार की मानना प्रकट की है। इन लोगों का उक्त है कि अमरकोष में तंत्र शब्द नहीं मिलता अतएव वे अमरकोष के बाद के ग्रंथ हैं। किन्तु यह तर्क ठीक नहीं है। अमरकोष में अथर्ववेद का उल्लेख भी नहीं किया गया है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अथर्ववेद अमरकोष के बाद की रचना है। अतएव केवल इस आधार पर तंत्र मंत्र को अर्वाचीन नहीं मान सकते। इन लोगों का दूसरा तर्क<sup>३</sup> यह है कि बीपी शताब्दी से लेकर ७वीं शताब्दी के बीच में जो बीनी पाठी आये उन्होंने तंत्र मंत्र का नहीं उल्लेख नहीं किया है। यह तर्क भी अशुभता से लेशित किया जा सकता है। प्रायः बीनी पाठी बौद्ध धर्म के अप्यवन के लिए ही मातृका में आया करते थे। अनेक गिय धर्म के अतिरिक्त उनकी बुद्धि दूसरे धर्मों, मतों और सम्प्रदायों की ओर नहीं जा पाती थी। इसमें उनका कुछ दोष भी नहीं था।

**मार्चीनता**—शक्ति विनाशाय अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के दशम मंडल के ८९वीं सूक्त में इस मंत्र की उदाहना का स्वकृत विज्ञान निम्नलिखित दिखता है। ऋग्वेद के बाद अथर्ववेद<sup>४</sup> में तंत्रिक कारना के आधार विनाश का अष्टा विधत्त दिगारं दिया। महाभारत<sup>५</sup> में भी बहुत से ऐसे उदाहरण दिये हुए हैं जिनमें देवी की महिमा का बहाना किया गया है। श्रीमद्भागवत<sup>६</sup> में भी एक स्थान पर कात्यायनी देवी की पूजा की बात कही गयी है। माकन्देय<sup>७</sup> पुराण में भी देवी की महिमा का बहाना मिलता है। अन्य पुराणों में भी तंत्र मंत्र संबंधी विविध बातों का उल्लेख पाया जाता है। अतएव तंत्रमंत्र का हम अर्वाचीन नहीं कह सकते। उस हम अनाथों<sup>८</sup> या विदेशियों की देन भी नहीं कह सकते। विश्व प्रचार मातृका की

<sup>१</sup> इतिवत् ने अपने दिग्दर्शन और बुद्धिदर्शन के दूसरे भाग में पृ० १६५ पर इस मंत्र का समर्थन किया है।

<sup>२</sup> दिग्दर्शन का अर्थ अतिरिक्त विचार—दृष्ट्यमाना पृ० ३४

<sup>३</sup> दिग्दर्शन—द्विधारे पृ० ६३ (१६३३ संस्करण)

<sup>४</sup> तंत्रादेश्वर विश्वामयी देवता आह्वान सूक्तम्—टी० पृ० ५५० वासु पृ० ३

<sup>५</sup> देविक—विश्वामयी आह्वान सूक्तम्—आध्यात्मिक पृ० १४ (मूर्ति)

<sup>६</sup> श्री

<sup>७</sup> तंत्रादेश्वर विश्वामयी देवता आह्वान सूक्तम्—टी० पृ० ५५० वासु पृ० ३

<sup>८</sup> दिग्दर्शन में अनेक द्विधारे न पृ० ६३ पर तंत्र मंत्र का अनाथों - २ - कहा है।





तंत्र आदि आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि तंत्रों का अपना एक अलग विस्तृत वास्तव्य है।

**साम्प्रदाय—**तन्त्रमत वैदिकमत की अपेक्षा अपनी कुछ अलग विशेषताएँ रखता है। यहाँ पर हम चाही की उन विशेषताओं का संकेत कर देना चाहते हैं जिनका विशेष प्रमाण निर्गुणियों तंत्रों पर पड़ता है। तन्त्रमत की सबसे प्रधान विशेषता उसका साम्प्रदाय है। तन्त्रमत जाति लिंग, वर्ण आदि का कोई भी भेद स्वीकार नहीं करता। गौतमीय<sup>१</sup> तंत्र में स्पष्ट लिखा है कि तंत्र शास्त्र की मात्र दीक्षा क अपिचारी सभी पक्षों का स्त्री-पुरुष हास है। इसी प्रकार महानिर्वाण<sup>२</sup> तंत्र में भी लिखा है—“वि कील वा अपने मत में बाह्यल यवन मा स्त्री आदि का, अस्मिमानवश दीक्षित करने को प्रस्तुत नहीं करते व पठित हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य तंत्र<sup>३</sup> ग्रन्थों में भी वर्ण मत भेदभाव की निन्दा की गई है। तन्त्रमत की दूसरी प्रधान विशेषता उसकी साधना परम्परा है। इसीलिए एत कुछ लोग साधना शास्त्र भी कहते हैं।

**साधनापरकता<sup>४</sup>—**इस साधना शास्त्र का लक्ष्य मर्याद का विराट में सीन करना होता है।<sup>५</sup> इसके लिए साधक का प्रसुप्त शक्ति विसे कुदलनी करते हैं, बाधन करनी पड़ती है। तंत्र मत में दार्शनिक पक्ष गौण समझा जाता है और साधना पक्ष प्रधान। तंत्रों का कहना है कि सुयोग्य गुरु<sup>६</sup> की अप्पन्नता में साधना प्रारम्भ करो। यदि छिद्रि की प्राप्ति न हो तो साधना छोड़ दो। तंत्र मत की इस साधना परकता ने ही भारत का समी का एकलिक और निर्जीव होने से बचा लिया है। इस मत का प्रभाव ए ही भारतीय जीवन में घोड़ी कर्मपरता का तंत्रार हुआ था। यह बात अचरित है कि यह कर्मपरता पक्षगी थी।

**बाधाधार विरोधः—**तन्त्रमत में बाधाधारो निष्पादकरो की पक्ष निरा की गयी है। महानिर्वाण तंत्र में लिखा है कि विद्ये मूल में निश्चल है उसक लिए शास्त्रार्थ और पण काई महत्त्व नहीं रखत हैं।<sup>७</sup> इसी तंत्र में एक दूसरे

<sup>१</sup> गौतमीय तंत्र—प्रथम अध्याय

<sup>२</sup> महानिर्वाण तंत्र—१.५११

<sup>३</sup> विमलिन आरु तंत्र—आधर एवमम १० १३ (भूमिडा)

<sup>४</sup> (क) शक्ति एवम दि शास्त्र—आधर एवमम १० १५ १६

(ग) विमलिन आरु तंत्र—आधर एवमम १० १५

<sup>५</sup> देविय—विमलिन आरु तंत्र—आधर एवमम १० ५५६

<sup>६</sup> बरी १० ५५९ की अन्तिम पंक्ति

<sup>७</sup> विमलिन आरु तंत्र—आधर एवमम १० ०६ (भूमिडा)

रक्त पर बाह्याचारों को लागू कर निकृष्टतम अंग कहा गया है।<sup>१</sup> इसी प्रकार बुद्धार्थक तंत्र में भी सिद्धा कर्मकांड की निंदा की है। उसमें लिखा है कि बहुत से ऐसे मूर्ख भी होते हैं जो कर्मकांड के नाम से प्रसन्न हो जाते हैं। वे अपने को अनेक सिद्धाचारों में कँसाकर बोन देते हैं।<sup>२</sup> इसी तंत्र में एक वृद्धे रक्त पर ममूत लगाने आदि की निंदा की गयी है। उसमें लिखा है कि यदि केवल शरीर में कीचड़ और ममूत लगाने से मुक्ति मिल जाती तो गाँव के कुत्ते भी जो दिन-रात कीचड़ और मिट्टी में लाटा करते हैं मुक्ति प्राप्त कर लेते। इस मंत्र में अनात्मत्वक उपस्था के प्रति भी उपेक्षा मात्र प्रकट किया गया है। बुद्धार्थक तंत्र<sup>३</sup> में लिखा है कि "दिन में केवल एक बार मोहन कर शरीर को ऋष देने से ही उत्पानुभूति नहीं हो सकती।" इस प्रकार धम्म तंत्र प्रयोगों में भी सिद्धाचारों की निंदा की गई है। तांत्रियों की इस विचारधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव हमें निर्गुणियों एवं कर्मियों पर दिखलाई पड़ा है। इन लोगों ने भी तांत्रियों के सदृश ही सिद्धाचारों व सिद्धाहमयों का संन्यत किया है। इसका हम आगे उल्लेख करेंगे।

**ईश्वर भावना**—तंत्रों की ईश्वर भावना भी अपनी अलग विशेषता रखती है। वे लोग ईश्वर का अस्तित्व तापक के शरीर से अलग नहीं मानते हैं। तंत्र मंत्र<sup>४</sup> के अनुसार तापक का शरीर ही ताप विरक है और उत्तरी आत्मशक्ति ही उत्तरी इष्ट देवता। वृद्धे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि तंत्र मवाकलामी बर्दिकामी ईश्वर से विरहाल नहीं करते, इसीलिए उनमें क्रवतारवाद को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। तांत्रिकों का ईश्वर अन्वयार्थी होता है। उत्तरी भावना में वे लीन रहते हैं। तंत्र मंत्र की यह विशेषता ही निर्गुणियों एवं तंत्रों में वृक्ष रूप से अनगई थी।

**सुक्ति मुक्तिपरकता**—तंत्र मंत्र की एक विशेषता<sup>५</sup> और है। इसमें मनुष्य मार्ग और विभूति मार्ग दोनों को समान स्थान दिया गया है। तंत्र प्रयोगों<sup>६</sup> में अनेक स्थलों पर स्पष्ट लिखा हुआ है कि तांत्रिक तापक का लक्ष्य मुक्ति और सुक्ति

<sup>१</sup> बही पृ० १७ (भूमिका)

<sup>२</sup> बुद्धार्थक तंत्र प्रथम उल्कास

<sup>३</sup> त्रिसप्तमिध्या तंत्र—आपर एबेनन पृ० २७ (भूमिका)

<sup>४</sup> त्रिसप्तमिध्या तंत्र—आपर एबेनन पृ० ५१२

<sup>५</sup> त्रिसप्तमिध्या तंत्र—आपर एबेनन पृ० १७७ और पृ० ११७ (१९१८ का संस्करण)

<sup>६</sup> बुद्धार्थक संहिता ५२२९

देनों की ही प्राप्ति करना होगा है। कुछ तंत्रों में ता मोम को मोच की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है।

ज्ञान का महत्त्व—तंत्र मंत्र में ज्ञान का भी विशेष महत्त्व दिया गया है।

कामायनी तंत्र के<sup>१</sup> निम्नलिखित उद्धरण से यह बात विस्तृत स्पष्ट है—

सर्वेषां मुच्यते मत्वं ज्ञानाय गुरुशेष हि ।  
 ज्ञानान्मोक्षमपान्नोति तस्माज्ज्ञानं परात्परम् ॥  
 अतो यो ज्ञानं न वृत्ते न ह्यमेतं स्वर्जन्गुरुम् ।  
 अमाकांक्षी निरन्तं हि सदा सत्यव्रति प्रिये ॥  
 ज्ञानं यत्र समामाति स गुरु शिष्येण हि ।  
 अज्ञानिनं वदयित्वा शरणं ज्ञानिनां व्रजेत् ॥  
 मधुलुब्धो यथा मूक्तः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।  
 ज्ञानलुब्धस्तथ शिष्या गुरोर्गुह्यतरं व्रजेत् ॥

अर्थात् गुरु से साधक को सब प्रकार का ज्ञान मिलता है। ज्ञान ही से मुक्ति मिलती है। इसीलिए ज्ञान ही सबसे महान् है। उस गुरु का ज्ञान देना हमें अत्यन्त ही परीक्षा कर देना चाहिए। सन्त गुरु यही है वा ज्ञान प्राप्तिमय है। उस ही शिष्य स्वरूप समझना चाहिए। साधक का कष्टमय है कि अज्ञानी गुरु को साधक कानी गुरु की शरणा में आवे। बिना प्रत्यक्ष से अन्तर मधु की प्राप्ति में एक पुन से दूसरे पुन पर जाना है उसी तरह से साधक का ज्ञान प्राप्ति पर देना सद्गुरु की प्राप्ति करनी चाहिए।<sup>२</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि तंत्र मंत्र में ज्ञान को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है और उसकी प्राप्ति गुरु से बनना है।

गुरु—जैसा कि ऊपर के अन्वय से प्रकट है कि ज्ञान के साधक ही साधक ज्ञान के दाता गुरु का भी स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए।<sup>३</sup> तंत्र मंत्रों में गुरु की महिमा का वर्णन विविध प्रकार से किया गया है। उनमें देवा पातना के संबंध के लक्षण ही गुरु काय, गुरु पद्मि, गुरु परम्, गुरु सहस्रनाम,

<sup>१</sup> विस्तारित आठ मंत्र—आध्यात्मिक पृ. ६३० से उद्धृत

<sup>२</sup> कामायनी के साधना में वा० भगवान् दास लिखित 'गुरु साधना शीघ्रक' पृ. ३३० पर देखिए

<sup>३</sup> गुरु का महत्त्व निम्नलिखित श्लोक से समझना है—

गुरु पूजा विना देवि स्वप्नानां करानि वाः ।

अथवा तत्र मेजाति इतो मित स्वप्नं च (बार्ती सिन्धु पत्र १११३)

गुस्वोम आदि मिलते हैं।<sup>१</sup> स्वप्न पुण्य की गुह मीठा प्रतिक ही है। अन्वामत्त तंत्र में गुह पादुका स्तोत्र एक रहस्यमय स्तोत्र समझा जाता है। कामन्द्युत तंत्र में भी एक गुह स्तोत्र मिलता है। कुम्भिका तंत्र में भी एक कुम्भर गुह स्तोत्र संश्लेषित है।<sup>२</sup> अब मन्त्र यह है कि तंत्र में गुह संमाननी गुह अ संकेत मिलता है या देवी गुह अ। आभिर्भय वशिष्ठी ने गुह से मगवान् शिब अ ही अर्थ लिया है। कुछ ग्रंथों में देवी<sup>३</sup> को ही गुहक्या कहा गया है। शिब और शक्ति के अतिरिक्त कहीं-कहीं हमें मानव गुहकों अ भी संकेत मिलता है। अन्वामत्त<sup>४</sup> तंत्र की निम्नलिखित पंक्ति से यह बात प्रकट होती है—

“आत्ममी ध्याननिष्ठश्च मंत्रतन्त्रविरारत्”।<sup>५</sup>

अर्थात् गुह को एकरस, ध्याननिष्ठ और मंत्र-तंत्र विचारक होना चाहिए। इसी प्रकार किन्वाचार तंत्र<sup>६</sup> में भी लिखा है कि उही गुह से रीखा कौनी चाहिए जो एकरस हो हो और अपने ही देश अ भी हो। इसी प्रकार अम्य तंत्रों<sup>७</sup> में भी मानव गुहकों अ संकेत किया गया है। वास्तव में गुस्वात् तंत्रों की प्रधान देव है। तंत्र साधना

<sup>१</sup> हेमिप् कल्याण का साधनांक पृ० ३३०

<sup>२</sup> बही

<sup>३</sup> तामिष्याविष्ठां देवीगुरुक्यां विमावयेत्—

मिथ्य इदं नामक तंत्र से अन्वामत्त के साधनांक पृ० ३० पर उद्धृत है।

<sup>४</sup> त्रिसिपिस्त आच तंत्र—अर्थर प्रथमेश पृ० ६९८

<sup>५</sup> बही पृ० ६९९ पर विरचचार तंत्र की निम्नलिखित पंक्ति उद्धृत की गई है।

आत्ममी देशरथाई अ गुहरेवै विपीयेत् ।

<sup>६</sup> हेमिप् कामत्त तंत्र में

आतामहं अ विररं वरि अ अन्वामत्तिसम् ।

बर्बेविष्ठा अ त्रिप्येष्ठा हीसाविधिमवाचत्त ।

अन्वामत्त त्रिप्येष्ठा अन्वामत्त अन्वामत्तम्

और हेमिप्—मन्त्र विमश तंत्र में

बनेहीसा त्रिप्येष्ठा रीसा अ अन्वामत्तिसम् ।

विभिन् अमियो रीसा अ सा कल्याण साधनी ।

मन्त्र मूढ में भी

गुह दारात्त अन्वामत्त गुह रागम मंगल ।

त्रिसिपिस्त आच तंत्र से उद्धृत पृ० ६९८

परक शास्त्र है। इसकी साधना भी अत्यन्त रहस्यपूर्वक होती है। अतएव उत्तरार्ध ज्ञान सिना गुरु के नहीं हो सकता।

रहस्यवाद—तंत्र में हमें रहस्यवाद की भी अष्टौ अभिव्यक्ति मिलती<sup>१</sup> है। तंत्रों में पाया जानेवाला रहस्यवाद भावात्मक रहस्यवाद नहीं बल्कि वाक्य या कथा के तंत्र मात्र साधना परकमत्र है उसमें साधनाओं की अभिव्यक्ति ही पारिभाषिक एवं रहस्यमयक शैली में की गई है<sup>२</sup>। यही कारण है कि तंत्रों में हमें या वाक्यात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते हैं या अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद की झोंकी मिलती है। तांत्रिक रहस्यवाद का कुछ विद्वानों ने क्रियात्मक रहस्यवाद का अभिधान दिया है। बाल्य में यह अभिधान साधनात्मक रहस्यवाद का पर्यायवाची ही प्रतीत होता है। इसको स्पष्ट करते हुए प्रो० महेन्द्रनाथ सरस्वती ने लिखा है कि क्रियात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हमें वैष्णव धर्म और तंत्र में मिलती है। दोनों में ही जीवन का सक्रिय स्वरूप पर ही विशेष बल दिया है। तंत्रमें आत्मा की अकारणिक समरसता की अंतर्दृष्टि भी आपस्यक मानी गई है<sup>३</sup>।

तर्क विरोध—तंत्रमत में मिथ्या तर्क की भी निंदा की गई है। आर्षर एवेनेन<sup>४</sup> ने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि तर्क और अनुमान का आशय दूसरे शास्त्र क्षेत्रों है। तंत्र शास्त्र का लक्ष्य अस्मिन् संशयों के लक्ष्ये दीक्षी और अति मान कीन विधि प्राप्त करना होता है। इसके अतिरिक्त संशयों के लक्ष्ये बहुत से मौखिक कार्य भी विद्वत् कर क्षेत्रों हैं। इससे स्पष्ट है कि तंत्रमत में साधना और अनुभव का ही विशेष महत्त्व दिया गया है। पुस्तकज्ञान एवं तर्कज्ञान की दृष्टिमें उपेक्षा की गई है। इसी बात को एक दूसरे रूप में आर्षर एवेनेन ने निम्नलिखित शब्दों में और सुन्दर ढंग से स्पष्ट कर दिया है—“पुस्तकज्ञान तांत्रिक विषयों का उन्नयन पर लक्ष्यता वर्द्धन नहीं से वाक्यता जब तर्क उसे तांत्रिक गुणधर्मों और आचार्यों से लक्ष्य हीदा न मिले। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान का उसे बनने अनुभव से पर्यधिक करना चाहिए”। इसी

<sup>१</sup> संज्ञान देवर किनासकी एवम देवर आकन्द सीकेद्वय

की० एन० वासू पृ० १०१

<sup>२</sup> तिसरिभ्य आह तंत्र—आर्षर एवेनेन पृ० ८

<sup>३</sup> लक्ष्य देवर किनासकी एवम देवर आकन्द सीकेद्वय—की० एन० वासू पृ० १०५ उद्धृत

<sup>४</sup> तिसरिभ्य आह तंत्र—आर्षर एवेनेन पृ० ११ (भूमिका)

<sup>५</sup> वही एवम पृ० ११

प्रकार आनन्द स्तोत्र<sup>१</sup> नामक तांत्रिक रचना में तर्क वितर्क करनेवालों का अण्णा मन्त्रक बनाया गया है।

**मंत्र चैतन्य**—तंत्रशास्त्र की सबसे प्रमुख विशेषता उक्तका मंत्र पद<sup>२</sup> है। आध्यात्मिक क्षेत्र में शक्ति का स्वस्व रूप माद के नाम से प्रसिद्ध है।<sup>३</sup> वैश्याव दर्शन का खगुल मंत्र क्षेत्र में नाद के रूप में ही व्यक्त होता है। समस्त तांत्रिक शाखना माद योग को लेकर ही खड़ी हुई है। उसके दर्शन का एक पक्ष पूर्वतया नाद योग पर ही आधारित है। यह बात तांत्रिकों के दर्शन और शाखना पक्षों के विवेचन से आगे स्पष्ट कर ही जायगी। यहाँ पर हम शतना ही कहना चाहते हैं कि तंत्रमत का मंत्र पद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह शुद्ध विज्ञान की पीठिका पर आधारित है। उसका इतिहास अत्यन्त बटिक और खट्खट<sup>४</sup> है। कुदरतनी शाखना भी उसके इती पक्ष से ही संबंधित है। कुदरतनी शाखना तांत्रिक शाखना की प्राथम्य विशेषता है। तांत्रिकों का कहना है कि शरीर के अन्दर पक्षों के मिश्र-मिश्र पक्ष, मिश्र मिश्र अक्षरों की प्पनि स्वस्व है। जब कुदरतनी आमत करके पदपक्षों के मन्दन में प्रवृत्त की जाती है तब क्रमशः ५० वर्षों की बानियों का आविर्भाव होता है।<sup>५</sup> जो इन प्पनिषों को मुनता है वह माया से मुक्त हो जाता है।

**दार्शनिक पक्ष**—यद्यपि तंत्रमत शाखना प्रधान मन्ना जाता है किन्तु इतमें एक स्वबन्धित दर्शन पक्षवि भी स्परेला भी दिखार् पकती है। यहाँ पर हम उनी करेला का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

तंत्र दर्शन के संबंध में विद्वानों का मतभेद है। कुछ लोग तो इसे वेद वाच्य<sup>६</sup> दर्शन मानते हैं। इसके विरुद्ध दूसरे विद्वान् वैदिक दर्शन का ही क्पान्तर मानते हैं।<sup>७</sup>

किन्तु यदि इस दर्शन का मनोयोग के साथ अध्ययन किया जाय तो हमें पता चलेगा कि वैदिक आधार पर भूमि बनाया हुआ यह महा महत्त्व है।

<sup>१</sup> शक्ति बचद दि शास्त्र—आपर पर्वलेन पृ० ३०

<sup>२</sup> (क) त्रिसपिस्त वाक तत्र—आपर पर्वलेन पृ० ५२४

(ग) शक्ति पर्वद दि शास्त्र— " " " ५६१

<sup>३</sup> त्रिसपिस्त वाक तत्र— " " " ५९४

<sup>४</sup> बही प्रथम पृ० ६००

<sup>५</sup> मंथन बेबर चिन्तासाक्षी पर्वद वाक्यत सीधे हस

टी० पृ० ५८ पर हम प्रकार के बहुत से ज्ञत दिये हैं

<sup>६</sup> अथ क्पेमावेतान वाक्यपु पृ० ६४ पर देवे कई मतों का उल्लेख किया है।

वैदिक दर्शन का तदर्थ ही तांत्रिक दर्शन भी अद्वैतमूर्ति है।<sup>१</sup> किन्तु मेदवादी और भद्रामदवादी विचारधाराएँ तंत्र साहित्य में सरलता से दूँदी या लक्ष्मी हैं। तांत्रिक दर्शन का विकास हमें २ धाराओं में दिखाई पड़ता है। १—बुद्धिचेत्र में और २—मंत्रचेत्र में। बुद्धिचेत्र में तांत्रिक लोग शिव और शक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। मंत्रचेत्र में अद्वैत तत्त्व की अभिव्यक्ति नाद और बिन्दु के रूप में मानी गई है। अमदवादी दार्शनिक शक्ति नाद और बिन्दु शिव में समवेत मानते हैं किन्तु मेदवादी तांत्रिक शिव, शक्ति और बिन्दु इन तीनों तत्त्वों का अलग मानते हैं।<sup>२</sup> बिन्दु महामाया का पञ्चावतारानी माना जाता है। बुद्धिचेत्र में बिसे महामाया कहते हैं, मंत्र चेत्र में उसी का बिन्दु कहते हैं।<sup>३</sup> पहले हम बुद्धिमूलक दार्शनिक पक्ष का विवेचन करेंगे, बाद में हम तांत्रिकों के शब्दवाद की व्याख्या करेंगे।

तांत्रिकों की बुद्धिमूलक विचारधारा—तांत्रिक कुछ तो शैव होते हैं और कुछ शाक्त। या शैव तांत्रिक हात हैं व मूल तत्त्व का निरूपण शिव के अभिधान से करत हैं और या शाक्त हैं वे शक्ति का मूल तत्त्व मानकर चलते हैं। यही कारण है कि तंत्रों में शिव और शक्ति का बड़े विस्तार से निरूपण किया गया है। दोनों ही परास्पर तत्त्व माने गये हैं।

शिव का निरूपण—तंत्र ग्रंथों में शिव तत्त्व का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। कुलार्थक तंत्र में शिव का वर्णन करने हुए लिखा गया है—

- (क) शिव अक्षर परास्पर ब्रह्म रूप है।
- (ग) वह समस्त सृष्टि का सन्धा है।
- (ग) वह निष्कल हात हुए भी लक्ष्मी पति है।
- (घ) वह अद्वैत रूप है।
- (च) वह प्रकाश रूप है।
- (ज) वह आदि अंत शक्ति अक्षय रूप है।
- (झ) वह निर्गुण होने हुए भी लम्बिरानन्द रूप है।

एही प्रकार अन्य तंत्र ग्रंथों में भी शिव का वर्णन ठीक उन्ही ढंग में किया गया है जिसमें वेदान्तों लाग करने परास्पर ब्रह्म का करत है।

<sup>१</sup> शक्ति ब्रह्म दि शाक्त—आधर प्रथम पृ० ६५

<sup>२</sup> शक्ति—तांत्रिक दृष्टि नामक गोपीनाथ अकितार किशोर कल्याण के साधनांक का अंक पृ० ५६०

<sup>३</sup> शरी पृ० ५८२

<sup>४</sup> शक्ति ब्रह्म दि शाक्त—आधर अद्वैत पृ० १३०



शक्ति तत्त्व—शिव तत्व के तटस्थ ही शक्ति की भी त्रयस्वरूपा ध्वनित किया गया गया है। किन्तु फिर भी शक्ति के निरुत्पन्न में शिव की अपेक्षा कुछ विरोध तार्क्य मिली है। शक्ति को तबों में द्वैताद्वैत बिलक्षण ध्वनित किया गया है। कुतार्थ्य तब में लिखा है—

अद्वैत केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ।  
मम तस्य बिजानन्तो द्वैताद्वैत बिचर्जिता ॥

अर्थात् कुछ लोग तो मुझे अद्वैतरूपा देखना चाहते हैं और कुछ लोग मुझे द्वैतरूप में देखना चाहते हैं। किन्तु जो मेरे रहस्य को समझने हैं वे द्वैताद्वैत के समझे में नहीं पड़ते।

शक्ति की भावना तब संघों में निर्गुण रूप बतलाई गई है। ब्रह्मिण्यर्णवी<sup>२</sup> के सर्वसाधारण मेरु स्तोत्र में लिखा है कि देवी की रूपना निर्गुण रूप से शुभ्य में चरनी चाहिए। शक्ति को तब संघों में शिव या ब्रह्म की रूपना कहा गया है। मद्य पामस तब में लिखा है—

“देवी शक्तिरियं ध्याया मद्यदेहादिनिर्गता” १”

शिव के तटस्थ ही शक्ति के भी निर्गुण और तदुत्पन्न ही रूप माने गये हैं। कुञ्जिका तब<sup>३</sup> में लिखा है कि शक्ति अपने निर्गुण रूप में चैतन्य रूपकी, अज्ञानरूपकी और अज्ञानन्द प्रकाशकी होती है। अपने तदुत्पन्नरूप के द्वारा सर्वभूत प्रकाशनी ब्रह्माली है। शक्ति के तदुत्पन्न रूप से ही सारी सृष्टि का विघटन हुआ है। वहाँ यह भी स्पष्ट रक्तना चाहिए कि शक्ति अपनी निर्गुणभावस्था में केवल विमर्श या विदरूपकी ही नहीं होती बल्कि प्रकाशस्वभावकी होती है<sup>४</sup>। यद्यपि शक्ति की रूपना प्रत्यक्ष रूप से धीररूपकी दिखाई पड़ती है, किन्तु तबों में उठते परास्तर रूप पर ही बौर दिया गया है। महाभक्त संदिता<sup>५</sup> में लिखा—“देवि ह्यम न ता कन्या हो, न कुमरी हो और न ब्रह्म रूप ही ह्यम इन तबसे परे हो।”

<sup>१</sup> त्रिसद्विस्तु ब्राह्म तंत्र—कार्यर एमेवेन पृ० १६२

<sup>२</sup> “ ” ”—” ” पृ० १९२

<sup>३</sup> “ ” ”—” ” पृ० १९२ ।

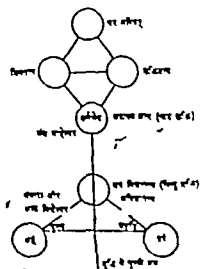
<sup>४</sup> कुञ्जिका तंत्र ब्रह्मवाच अध्याय

<sup>५</sup> शक्ति एवम दि शास्त्र—कार्यर एमेवेन—पृ० १९२

<sup>६</sup> “ ” ” ”—” ”—पृ० २६

शिव और शक्ति की अद्वैतता—शिव शक्ति के उपायुक्त बर्णनों से स्पष्ट है कि दोनों में घाटा-घा अन्तर है। किन्तु यह अन्तर विष प्रतिविम्ब मात्र का है। देवी को प्रसन्न या शिव की क्षाया कदा गया है। हमारी समझ में यह सम्भव भी शिव शक्ति मात्र का पृथक् अस्त नहीं कर पाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए तंत्रों में दिया गया अनेक उदाहरण अविच्छिन्न उपायुक्त लगता है।<sup>१</sup> जिस प्रकार से फले के छिन्नके के अन्तर दो दम निष्पन्नते हैं उसी प्रकार से परास्पर तत्त्व भी शिव और शक्ति रूप है। प्रत्यक्ष से दोनों एक ही हैं किन्तु सूक्ष्म बुद्धिवाद में एक भेद स्थापित कर लेती हैं। बिना शक्ति के शिव अपूर्ण होता है और बिना शिव के शक्ति अपूर्ण होती है।<sup>२</sup> तंत्र ग्रंथों में शिव देवी से बार-बार कहन हुए 'दिललाय गये हैं कि 'हे देवी तुझमें और तुझमें कुछ भी भेद नहीं है। जिस प्रकार अग्नि और अम्लित्व में कुछ भेद नहीं होता।'<sup>३</sup>

शिव प्रकृत्यरूप माना जाता है और शक्ति विमर्श या स्फूर्ति रूप। यन्त्रि से पूर्व शिव चिद्रूप और शक्ति विस्मरणी होती है। आगे चलकर इन्हीं शिव और शक्ति से विश्व का विकास होता है। शिव शक्ति और उनसे उद्भूत अणु का विकास क्रम इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है।<sup>४</sup>



<sup>१</sup> शक्ति सूत्र द्वि भाग—आचार्य अक्षरभक्त—पृ० १५७

<sup>२</sup> तंत्र देवता चिन्तामणी अथवा श्रीकृष्ण मंत्रोत्तर—श्री० अ० बोस पृ० १६

<sup>३</sup> यह वाक्यात्मक शक्ति सूत्र भाग भाग भाग में पृ० २८४ पर लिखा गया है।

वही वाक्यात्मक आर्षेय सूत्र भाग के आचार्य भाग भाग भाग में पृ० २५३ पर लिखा गया है।

ऊपर आध्यात्म में निर्दिष्ट परलंबित कृष्ण ही निष्कल शिवः या परात्पर ब्रह्म है। इस अक्षरमा में शक्ति अस्मक रहती है, शिव तत्त्व निष्किय शुद्ध और अमित रूप रहता है, परमेश्वर की यह लक्षणरूपा है।

लयावस्था के पश्चात् शिव में शक्ति का उन्मेष होता है। इस अक्षरमा में शक्ति ज्ञान और क्रिया का संघार करती है। यह शिव की भोगावस्था कहलाती है। इस अक्षरमा में शिव और शक्ति दो स्वक रूप विस्तार पकते हैं। हम दोनों से किन्तु अक्षरमा तत्त्व का बन्ध होता है। इसे माया शक्ति भी कहते हैं। यही मन्त्र महेश्वर का स्वस्म है। इनसे किन्तु मंत्रेश्वर उदय होते हैं। पत्नी ईश्वर तत्त्व है। इसी को विन्दु शक्ति भी कहते हैं। इस ईश्वर तत्त्व या मंत्रेश्वर से ८ विदेहार और अविद्या तत्त्व उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अक्षरमा अस्मक तत्त्वों का विक्षय होता है जैसा कि आध्यात्म में दिसलाया गया है। इस विषय का विस्तार अगत् विषय के प्रसंग में किया जायगा।

माया शक्ति—शक्ति-विभेदन के प्रसंग में हम चौकन्ता माया शक्ति पर भी विचार कर लेना चाहते हैं। जैसा कि हम अभी ऊपर दिसला चुके हैं कि तत्र मत्त में शिव प्रकृत रूप माने गए हैं और शक्ति जेतना रूप या किमर्श रूप और परात्पर तत्त्व प्रकार और किमर्श उभय प्रधाने होता है। शक्तिमान की शक्ति भी उभयरूपा होती है।<sup>१</sup> विद्वत्ता और मायाका दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध माना गया है।<sup>२</sup> शास्त्रेन्द्रानुसार मायावाद बस्तु नहीं<sup>३</sup> है। यह ब्रह्म की ही एक शक्ति है। ब्रह्म की शक्ति होने के कारण यह ब्रह्म के लक्षण ही अन्तवोगत्वा विद् रूप<sup>४</sup> है। यही इस विद्वत् का उपादान कारण भी है।<sup>५</sup> दूसरे शब्दों में हम माया को विद्वत्स्वकी शक्ति का अगुण रूप मान लयते हैं। माया इस विद्वत्स्वकी शक्ति में इस प्रकार प्रकटन रहती है कि तत्र प्रकृत अस्त में<sup>६</sup> अस्मि। माया विगुणरूपक मानी जाती है।<sup>७</sup> प्रकृति माया की ही एक शक्ति है। यह माया ही मेर बुद्धि कहलाती है।<sup>८</sup> तत्त्व संदेह नामक ग्रंथ में लिखा है कि माया कीर्तों की जो उलझ ही अंश होते हैं, मेर बुद्धि है। कि तत्त्व से तत्

<sup>१</sup> ग शक्ति पूवह दि साक—आर्षरं पृष्ठेत्तत्र पृ०

<sup>२</sup> बही पृ० १३६

<sup>३</sup> क बही पृ० २०६

<sup>४</sup> बही

<sup>५</sup> बही पृ० २०६

<sup>६</sup> तिसरिस्व आक तत्र—आर्षरं पृष्ठेत्तत्र पृ० ५८५

<sup>७</sup> शक्ति पूवह दि साक—आर्षरं पृष्ठेत्तत्र पृ० २००

<sup>८</sup> बही

सुन्दर का आन्दोलन किये रहता है, उसी तरह से माया आत्मा का आन्दोलन किये रहती है<sup>१</sup>। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा में भी यह बात कुछ हैर-फर के साथ दोहराई गई है। यहाँ पर हम मायाशक्ति और विद्याशक्ति के अंतर को भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। वा यदिर पयु मे ऐश्वर्यमयी शक्ति का प्रकाशन करती है उसे विद्याशक्ति कहते हैं<sup>२</sup>। और वा पयु भी आत्मशक्ति का विद्योपान करती है उस मायाशक्ति कहते हैं। उसी अर्थ में लिखा है कि शिव के पञ्चान दो क्रिया ध्यानार हान हैं<sup>३</sup>—

१—विद्योपान और २—अनुमह ।

१—विद्योपान ध्यानार के सहारे शिव ध्यान का ध्यान मस्तो उ क्षिपार एते हैं ।

२—अनुमह ध्यानार के सहारे यह शक्तिशाल के द्वारा अपने मस्तो का अपना हान कराते हैं । यह शक्तिशाल या शक्ति मयुमस्ती या मायारूपा होती है । एसीलिय माया मयुर और आकर्षक लगती है ।

गौरीनाथ कविराज ने कल्याण के शापनांक में “तांत्रिक दृष्टि” नामक शोध लिखा है। इसमें उन्होंने विभिन्न विभिन्न तांत्रिक सम्प्रदायों के दृष्टिकोण से माया का निवेदन किया है। उसी का आधार लेकर हम माया सम्बन्धी विविध मतमैदों का संक्षेप करना भी आशयक समझते हैं। संक्षेप में हमें प्रायः ३ शब्द दिना करत हैं—१—महामाया, २—माया, ३—मायालक्ष्म ।

महामाया—इस सम्बन्ध में तांत्रिकों में २ मत प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग शिव की शुद्ध परिमद् शक्ति या बिन्दु का ही महामाया का रूप कहते हैं<sup>४</sup> और अशुद्ध परिमद् शक्ति का माना कहते हैं ।

<sup>१</sup> दि गारमैवद काच सैटमं पृ० १४२

माया विभेदबुद्धि आननु निमित्तत्रयीवपु

निम्बे तन्त्र निरंजुगाविभावा बसव आरिथे दथे । तल्पसम्पदाह ५/५

<sup>२</sup> दि गारमैवद काच सैटमं पृ० १४३

भेदबुद्धिबुध भावतु करतरवापात्ममोद्वि का

माया कालवेद माविपावम्ब विभेदकर मया । ईश्वर प्रत्यभिज्ञा १/१/०

<sup>३</sup> दि गारमैवद काच सैटमं पृ० १४३

<sup>४</sup> ‘तांत्रिक दृष्टि’ गौरीनाथ कविराज साधनांक पृ० ४८१

“परिमद् शक्ति कवैतव कर परिणामगौरीनाथ शोनी है। इसका नाम बिन्दु है। बिन्दु के शुद्ध और अशुद्ध का रूप है। साधारणतया शुद्ध रूप का ही बिन्दु का महामाया कहा जाता है। अशुद्ध रूप का नाम माया है।”

कुछ पृष्ठों प्राचायों<sup>१</sup> का कहना है कि विन्दु की ३ अवस्थाएँ होती हैं। उनमें से परमस्था महामाया कहलाती है। वही परमकारण और नित्यरूप मानी जाती है। इस महामाया के विधुम्ब होने पर ही मुख्य भागों तथा उनमें निवास करनेवाले मंत्रों कायना मवेश्वरों का जन्म होता है।

माया—के संबंध में प्रसिद्ध मत<sup>२</sup> यही है कि यह विन्दु की सूक्ष्मावस्था होती है। उसकी ज्ञान शक्ति से शिव का जगत् संबंधी ज्ञान प्रकट होता है और उसकी क्रियाशक्ति से जगत् रचना होती है। इस माया के कुछ प्राचायों<sup>३</sup> ने २ भेद माने हैं। १—साधारण, २—असाधारण।

साधारण माया<sup>४</sup>—इच्छा विस्तार बहुत बड़ा है। समस्त आत्माओं की बोध रूपा सुवनावती का आधार रूप यही है। यह माया विन्दु की मिमिक्षितिक ३ कलाओं में स्थित रहती है। १—विद्या, २—प्रतिष्ठा और ३—निवृत्ति। विद्या कला में सात सुवनाधार माने गये हैं, वे क्रमशः इस प्रकार हैं। माया, कला, अस्त, निवृत्ति, विद्या, राग और मूर्ति। इन सुवनाधारों पर अंगुष्ठमात्र मुक्ता से लेकर चतुर्दश मुक्ता तक २८० मुक्ता स्थित हैं।

प्रतिष्ठा कला—इसमें गुणों से लेकर कला तक २१ तन्त्र रूप सुवनाधार माने गये हैं। इन सुवनाधारों पर शीर्षक मुक्ता से लेकर अमरेण मुक्ता तक ३३ मुक्ता माने गये हैं।

<sup>१</sup> वही पृ० ४८१

<sup>२</sup> "महामाया वा विन्दु की तीन अवस्थाएँ हैं—परा, सूक्ष्मा और रूपका।

परावस्था को महामाया, कुबडली जादि नामों से पुकारा जाता है। वही परम कारण और मूल है।"

<sup>३</sup> "महामाया की सूक्ष्म या दूसरी अवस्था का नाम माया है। कलाविराज समूह का अविभक्त रूप ही माया है।" "सांख्य दृष्टि" गरीबनाथ अचरित १० ४८१ कलाविराज का साधनादि।

<sup>४</sup> वही पृ० ४८०

<sup>५</sup> "कलाविराजों की समष्टिरूपा माया साधारण और कलाविराज भेद से दो प्रकार की होती है।"

<sup>६</sup> वही पृ० ४८०

<sup>७</sup> "साधारण माया जगत् विरगुण एवं समस्त आत्माओं की बोधरूपा सुवनावती की आधार है।"

निवृत्ति कला—इसमें जलन शून्यी तब ही मुक्ताधार रूप माना गया है। इस मुक्ताधार पर भद्राश्रमीपुर से लेकर अन्तर्नि मुक्ता तब १०८ मुक्ता हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारण माया केकड़ों मुक्ता का विस्तार करती है।<sup>१</sup>

असाधारण माया<sup>२</sup>—माया के इस विशाल साम्राज्य में रूढ़न देहमय प्रसंग तबों की समष्टि निरचली रहती है। यह रूढ़न देह संघेन और विघ्नवशील होती है। तन्मुख विभिन्न मुक्ता में जो रूढ़न देह उत्पन्न होते हैं वे इन्हीं रूढ़न देहों का रूढ़न रूप होते हैं।

इस प्रकार साधारण और असाधारण माया ने भिन्न-भिन्न विभिन्न मुक्ताओं और विभिन्न चीजों की सृष्टि की है। यह मुक्ता ही चीजों को बाँधते हैं। इन्हीं के पाशों से बन्द् होने के कारण चीज प्यु बन्द्माते हैं।

माया सृष्टि—विश साधारण और असाधारण माया का वर्णन ऊपर किया गया है वह करने मूल रूप में अद्वैतरूपा होती है। शक्तिमान की शक्ति होने के कारण वह विष्णु और निरवस्था मी होती है।<sup>३</sup> इस अवरुपा में माया को माया तब कहा जाता है। अनंत नामक विघ्नरुपर की शक्ति इस माया तब में वह विघ्नोम उत्पन्न करती है तभी साधारण और असाधारण माया के रूपों का विकास होता है। इस प्रकार संघेन में तंत्रमय में दिग् गये माया-तन्मयी मयों का विवेचन ही आता है। माया के विघ्नन प्रसंग में विष्णु शब्द कई बार आया है। इतना ही हम तब पर धोका विचार से विचार करेंगे। विष्णु का राष्ट्रीयरूप मही किता का उक्तता अब तब हम नाद क विद्योत का म समझें। माद और विष्णु की पत्नी तंत्र मय क मकरण से संबंधित है निगुणियाँ तंत्रों पर तंत्र दर्शन के मंत्र दर्शन का ही प्रभाव अधिक है, इतना ही अब हम तंत्र दर्शन में आये हुए माद विष्णु आदि पर धन्यः विचार करेंगे।

नाद—तंत्रमय में माद की बड़ी पत्नी निरुपी है, क्योंकि तब और शक्ति का मयन, विज्ञान नाद के रूप में ही माना गया है।<sup>४</sup> 'गार्योद आक सीरर्त' नामक ग्रंथ

<sup>१</sup> बरी—१० ४८०

<sup>२</sup> बरी—१० ४८०

<sup>३</sup> हेमिपु अन्त्या के माधनाक में दिने गये गोतीनाथ कविदात्र-विधिपत्र तान्त्रिक तदि नामक ग्रन्थ के विष्णुविधिपत्र तन्त्र १० ४८० पर—'माया तब निरु विष्णु और शक्ति है। शक्ति के कारण में वह ईश्वर शक्ति के द्वारा शून्य होकर बन्दा, काय और निरुति, तीन तबों का मयन देता है।'

<sup>४</sup> गणना देव विष्णुमयी शब्द कीकत तदि हन्—ही ४५० श्लोक १० ११६

में आर्चर एवेसेन ने लिखा है कि So it is said in the Shakta Tantra (शिव शक्ति संयोगात् संभावते सृष्टि कल्पना) (From the union of Shiva & Shakti arises creative ideation This union and mutual relation is called nad. As the relation is not some substantial thing apart from Shiva and Shakti passing from the state of mere potency into that of the first idealizing movement from which at length when finally perfected the whole universe is evolved

अर्थात् शक्ति तंत्रों में कहा गया है कि शिव और शक्ति के संयोग से सृष्टि कल्पना उत्पन्न हुई। शिव और शक्ति का यह संयोग और उन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध नाद कहलाता है। क्योंकि शब्द और शक्ति कोई ठोस वस्तु नहीं है उसमें शिव केवल शक्तिमात्र रहते हैं। जब शिव और शक्ति विपर शक्तिस्य से क्रियात्मक रूप में बदलने लगते हैं तभी नाद का उदय होता है। इसी नाद से विरह का विकास हुआ है। शिव और शक्ति में नाद का उदय उस समय होता है जब उनमें विकास की योजना साम्य होती है इसलिए नाद क्रियात्मक माना जाता है। ठासिक क्षेत्र में बिसे उदात्तप वल्ल कहा गया है<sup>१</sup>, मंत्रक्षेत्र में उसी को नाद कहा जाता है।<sup>२</sup> बिसे प्रकार से उदात्तप वल्ल शिव और शक्ति से विच्छिन्न होता है उसी प्रकार से यह नाद वल्ल भी क्रियाशक्ति रूपा परमात् रूपी ब्रह्म से उत्पन्न होता है। प्रयोगक्षार<sup>३</sup> नामक ग्रंथ में लिखा है 'हे देवि ! अंतर्हस्ता नाद के रूप में प्रस्तुति होती है वही वायु (अर्थात् जीवों में प्राणवायु) से प्रेरित होकर अक्षरों का रूप धारण करती है।' नाद के भी कई स्वरूप माने गये हैं—त्रैवे

महानाद वा नादांत ये शब्द ब्रह्म का प्रथम क्रियात्मक विकास कहा जा सकता है।

नाद-यह स्वरूप है जो वारे विरह को नादांत से मरे हुए है। दूसरे शब्दों में हम इसे नादांत की पूर्वावस्था कह सकते हैं।

निरोधनी नाद की यह अवस्था है जिसमें निन्दु को विच्छिन्न करने की क्षमता रहती है।<sup>४</sup>

<sup>१</sup> गार्लेबर्ग काफ सैटस—आर्चर एवेसेन पृ० १०८ (१९५१)

<sup>२</sup> " " " " " " पृ० ११९

<sup>३</sup> " " " " " " पृ० ११४

<sup>४</sup> आर्चर एवेसेन के गार्लेबर्ग काफ सैटस पृ० ११४

माद की कुछ सूक्ष्म अवस्थाएँ भी बतलाई गयी हैं। इन सूक्ष्म अवस्थाओं में निष्कल उन्मनी बहुत प्रसिद्ध है। धार्यर एबेनेन ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—  
 विन्दु से पर शक्तिवाँ सूक्ष्माविस्फुल्ल रूप धारण करती जाती हैं। अन्त में निष्कल उन्मनी अवस्था आ जाती है। ऐसे अनुत्पन्न निष्कलवाक्य कहा गया है। इस अवस्था में शून्य सन्धि और उन्मनीवाक्य उन्मनीवस्था सूक्ष्मा पर सामंभस्य रहता है। उन्मनी अवस्था कायकरुता शक्ति की अवस्था है। इस अवस्था में काल कला देवता आदि किसी का मान नहीं होता। यह 'स्व-निर्धारण पद' कहलाता है। यह निर्विकल निरन्तर शिव शक्ति है।<sup>१</sup> इस उन्मनी का और अधिक स्पष्ट करते हुए धार्यर एबेनेन ने एक दूसरे स्थल पर लिखा है—  
 उन्मनी is निष्कार and निष्कार soundless less and without utterance defined by any adjective, being beyond mind and speech and universe.

अर्थात् उन्मनी अवस्था निष्कार, निष्कार, निरूप तथा विशिष्ट रहित अवधारणा होती है। यह अवागम्यतावाचक अवस्था है।

कुछ वर्णिकों में शब्दों से भी उन्मनी अवस्था के नादों की उत्पत्ति बतलाई है—  
 १—सूक्ष्मनाद, २—अक्षरनाद, ३—वर्णनाद।

सूक्ष्मनाद—अविन्यत तब होता है, ऐसे अविन्यत बुद्धि का कारण एवं विन्दु का प्रथम प्रसार माना गया है।

अक्षरनाद—यह सूक्ष्मनाद का अर्थ रूप होता है। यह परमार्थ ज्ञान समन्वित माना जाता है।

वर्णनाद—इसको उत्पत्ति आकाश और वायु से मानी गई है। ये विविध प्रकार के माद निष्कार शक्ति का विकास करण हैं। तब प्रयोग में कुंठलनी शक्ति को भी नादरूपा माना गया है।<sup>२</sup> विन्दु वर्णिक विद्वानों ने नाद से विन्दु की उत्पत्ति मानी है और तब स्थान में विन्दु की टीका बही विधि मानी है जो बर्दात स्थान में ईश्वर की है।<sup>३</sup> शिव प्रसार नाद शक्ति का ही एक रूप माना जाता है, उन्मनी प्रकार विन्दु को भी शक्ति का एक स्वरूप माना जाता है।<sup>४</sup> शक्ति का इन दोनों स्वरूपों अर्थात् नाद और विन्दु में शिवा शक्ति निहित रहती है जो अन्तर्गत छन्द के विद्यमान

<sup>१</sup> गार्मैबह आक मैरमं पृ० ११७ ११५

<sup>२</sup> बरी पृ० ११५

<sup>३</sup> बरी पृ० ११०

<sup>४</sup> "रि गार्मैबह आक मैरमं"—धार्यर एबेनेन पृ० १११, ११६ १२२

<sup>५</sup> बरी पृ० ११७

<sup>६</sup> बरी पृ० ११५



में सहायक होती है। उपबन्ध में शारदात्मिक नामक ग्रंथ में इन दोनों का वर्णन करते हुए लिखा है कि नाद और विन्दु शक्ति की ये अवस्थाएँ हैं जो सृष्टि को जन्म देने के लिए उत्सुक रहती हैं। उक्त विन्दु को पनाबरया<sup>१</sup> कहा है। प्रपञ्चतार<sup>२</sup> तंत्र में इसी तंत्र का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि शक्ति में जब उत्पन्न करने की इच्छा बाधित होती है तब वह पनीमूल हो जाती है और उक्तसे उची प्रपञ्च सृष्टि का विघ्न हो जाता है जिस प्रपञ्च रूप के पनीमूल होने पर दही, मक्खन, मट्ठा आदि का जन्म होता है।

विन्दु के स्वस्म को स्पष्ट करते हुए तोडस तंत्र को उद्धृत करते हुए परब्रह्म नामक ग्रंथ की टीका में कालीचरण ने लिखा है कि विन्दु में शून्यता और गुण दोनों की एक साथ प्रतियोग्यता पायी जाती है।<sup>३</sup> इसी टीका में यह भी लिखा गया है कि विन्दु की तंत्र मन में बहो स्थिति होती है जो पुण्यात्म्य में महाविष्णु की मानी जाती है।<sup>४</sup> तन्त्रियों का विश्वास है कि विन्दु उत्पन्नोक्त की विभूति है और मानव शरीर में उच्चरी स्थिति का हृत्कार कमल में रहती है। इसमें शिव और शक्ति उची तरह से अपनी माया शक्ति से आच्छादित रहते हैं जिस तरह से धूल के कणों में उक्तके दोनों दल आच्छादित रहते हैं।<sup>५</sup>

तंत्रमूल में विन्दु के भी कई भेद किये गये हैं। इनमें सर्वप्रथम परविन्दु का उल्लेख किया गया है। यह परविन्दु सृष्टि विघ्न का आदि कारण माना गया है। चाही सृष्टि इसी का परिणाम मानी गई है।<sup>६</sup> प्रपञ्चतार नामक तंत्र में लिखा है कि परविन्दु के भी दो भाग रहते हैं। उत्तर दक्षिण भाग पुरुरस्म होता है उसे "हृ" और बायं भाग स्त्रीरूप है जिसे "ता" कहा गया है। दोनों मिलकर "हृता" बन गये। हृता प्रकृति और पुरुर की संवागावरया है।<sup>७</sup> कुछ तन्त्रियों में लिखा है कि परविन्दु अल के द्वारा तीन भागों में विभाजित कर दिया जाता है—विन्दु, नाद, बीज। शारदात्मिक नामक ग्रंथ तंत्र में लिखा है कि हृत्त का अर्थ एक प्रपञ्च का संज्ञक होता है। जिस परविन्दु नाद और बीज में विभाजित हो जाता है।<sup>८</sup> इस प्रपञ्च एक में हृत्त प्रपञ्च कहा गया है।<sup>९</sup> इसी बात को शारदात्मिक

१ बही पृ० १२५  
 २ " " १२५  
 ३ गारुडोक्त व्याक लेखक पृ० १२५  
 ४ " " " १२६  
 ५ " " " १२६  
 ६ " " " १२८  
 ७ " " " १२६  
 ८ " " " १२६

“विन्दु शिवात्मको श्रीजराकिनांश्च तयोर्मिथ  
सर्वांगम-विशारदै” समवायः समाख्यात

अर्थात् आत्म शक्ति के भी विद्वानों ने विन्दु को शिव और शक्ति को शक्ति तथा नाद को उन दोनों का समवाय स्वरूप माना है।<sup>१</sup> परविन्दु में विन्दु और शक्ति अर्थात् शिव और शक्ति की समवाय संबंध से अव्यतिष्ठ रहती है। यह समवाय संबंध ही नाद है। इसीलिए पर विन्दु से बहुत लोग नाद पर काम मानते हैं। वास्तव में नाद और विन्दु का संबंध इतना सूक्ष्म है पृष्ठतया राज्य नहीं किया जा सकता। शक्ति, विन्दु और नाद की सम्मिश्र अवस्था को त्रिविध कहा गया है। इसी का कुछ तंत्रों में काम-कला का भी अभिधान दिया गया है। काम कला से तंत्रों के सूक्ष्म रूप अर्थात् मायिककला पर बन्म होता है। इसी सूक्ष्म मायिककला से स्थूल वर्ण, उष्ण होते हैं। तंत्रों से मंत्र बनते हैं। इस प्रकार नाद से मंत्रों का परिष्कृत संबंध निर्धारित किया गया है।<sup>२</sup> ऊपर विद्य त्रिविन्दु का संज्ञक हमने किया है पर अमरुतः सूत्र, चन्द्र, अग्नि और इन्द्रा, हनु, क्रिया अथवा उग्र, रज और तम इन तीनों की सम्मिश्र भी माना जाता है।<sup>३</sup> इन त्रिविधों में एक का श्रेय, दूसरे का साल और तीसरे का मित्र भी माना गया है। यह अमरुत, और विमर्श, दोनों का सम्मिश्र रूप भी कहा जाता है।<sup>४</sup> इस त्रिविन्दु को उर्गाधि परविन्दु से ही मानी गई है। इस बात का राज्य कदापि हुए आर्षर एवेमेन ने लिखा है—“परविन्दु शिव और शक्ति की अभिधाता अथवा है। बिल्कोट होने पर ३ भाग हो जाना है—विन्दु, शक्ति और नाद। नाद, विन्दु और शक्ति धामाध्याया का परित्यक्त होता है। इस उन दोनों का आंतरिक संबंध भी बहुत है। धाम प्रकृति में विन्दु और शक्ति में से एक धामक का कार्य करता है और दूसरा धाम्य होगा है।

तंत्र तंत्रों में विन्दु की ४ सम्प्रतिष्ठा शक्तियों भी मानी गई हैं। शक्तिधाम में इन शक्तियों की उष्ण होती है। इन शक्तियों के भेद से ही इनके परस्पर बन्म से अंतर पड़ा है। इनको अतिशय अरुच ही तात्क शिवत्वं लाभ पर सकता है। विन्दु को सम्प्रतिष्ठा शक्तियाँ इन प्रकार हैं—

प्रेतरी—ये शब्द शब्द रूप होगी हैं। भौतिक जानों से यह प्रतीति का लक्ष्य है। इसके उद्गार में वायु और आकाश वद्वारक होते हैं

<sup>१</sup> आर्या तन्त्रक प्रथम अध्याय

<sup>२</sup> “श्री गारुड आठ सौत्त” का विवर्तनित्य संज्ञक सूत्रसे—पृ. ११३

<sup>३</sup> गारुड आठ सौत्त—आर्या सूत्रसे पृ. ११३

<sup>४</sup> “ ” “ ” “ ”



महानुसार तब मनु के अनुसार संसार शिव की इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति है। वह उद्योग के लक्षण स्वरूप है। संसार करने की लयावस्था में शिव की इच्छा शक्ति में ही लीन हो जाता है। इस इच्छा शक्ति को तंत्रों में स्वात्म्य शब्द से प्रकट किया गया है। वेदांगी ग्रन्थ में इस स्वात्म्य शक्ति पर अभाव मानते हैं। इसीलिए वे आमातवाद के सिद्धांत पर न मानकर विद्यार्थवाद के सिद्धांत की स्वीकार करते हैं। इस प्रकार तांत्रिक दृष्टि से शिव पर स्वात्म्य ही आमात का विधापक है। चित् शक्ति शुद्ध चित् स्वरूपी 'शिव' में आमातित हुआ ही दुर्ग विरव विकास की ओर उभरता है। इसी समय माया का बन्ध होता है और फिर विवर्तन का सिद्धांत लागू होता है। विद्यारथ की तीसरी अवस्था संसृति को बन्ध देती है। माया से स्थूल भूतों का बन्ध होता है। वे स्थूल भूत माया के परिक्रमण होते हैं। विद्यारथ की चौथी अवस्था में, वह कि भूतों से इस बगल का आरम्भ होता है तब आरम्भवाद का सिद्धांत लागू होता है। तब की दृष्टि से चाण्डि आमात रूप ही मानी जाती है। विवर्तन, परिक्रमण और आरम्भ रूप मही, क्योंकि सबसे आदि में आमात की प्रक्रिया ही बगल के विद्यारथ का कारण होती है।

इस पारख्य—अब हम तांत्रिकों के हंस पर जोड़ा-जा प्रकृत्य ज्ञान देना चाहते हैं क्योंकि तब कवियों ने इसका प्रयोग बहुत अधिक किया है। अभी हम ऊपर बताया चुके हैं कि 'हं' शिव का वाचक है और 'उ' प्रकृति का वाचक है। इसकी स्थिति खरीर में अनाहत चक्र में बननाई गई है। अनादितहरी में लिखा है कि हम अनादित अनाहत चक्र में निवास करनेवाले 'हं' और 'उ' का प्रयोग करते हैं। वे उस महात्मा या महात्मा के मस्तिका में बिलने करना मन जान के विद्यमिन्न ब्रह्म के मनु में लगा रहा है निवास करने हैं। तंत्रों में इस आत्मा का वाचक भी माना गया है। अनादित तंत्र में आमातों का प्रयोग भी बननाई गई है—आत्मा, आत्मा, आत्मा, आत्मा और परमात्मा। इस के शक्तियों का निरूपण इन्हीं विविध आत्माओं के आचार पर किया गया है। तंत्रों में आत्मा का प्रादुर्भाव माना गया है। इसी को हंस भी कहा गया है क्योंकि शक्ति के दूरक और रेचक से हंस की ही प्रति निष्पत्ती है। शक्ति प्राण का ही स्वरूप मानते हैं। आत्मा का तांत्रिक वाचक शिव रूपक मानते हैं। यह दृष्टि आदि में प्रतिबिम्बित रहने हुए उच्छ उच्छ, मगार अतम खड़ा है कि अहमा पाती में प्रतिबिम्बित रहने हुए भी पाती से अलग रहता है।

२१ —

<sup>१</sup> आत्मा पर तंत्र ११।२२—आत्मा पर आत्मा अहम पुस्तक के पृ० १२७ से उद्धृत।

<sup>२</sup> आत्मा पर आत्मा अहम पृ० १५०

<sup>३</sup> आत्मा पर आत्मा अहम की निम्न परिभाषा पृ० १५०

अतरात्मा<sup>१</sup>—इसे खस्य खस्य रूपक कहा गया है। आत्मा को यही रूप प्राचीनग्रन्थ में परिष्कृत कहा है। इसकी अनुभूति केवल बोधी होय कर पाते हैं इस लिए इसे वैश्विक इत भी करते हैं। इसका वर्णन करते हुए तन्त्रग्रन्थों में लिखा गया है कि तारा या प्रकाश इसकी शोभ है। निगम और आगम इसके दो पक्ष हैं। शिव और शक्ति इसके दो पक्ष हैं। त्रिभिन्नु इतकी तीन शक्तियाँ हैं। विद्वान् लोग इसी को परमार्थ कहते हैं। जब यह परमार्थ प्राप्त होता है तभी तमस्त पंचमूर्तों का विनाश होता है। इन शक्तियों की आवाजमूर्ति शिव है। यह ही अज्ञान की शक्ति में मोक्ष पंथ से उद्भूत विश्व कर्म में विनाश करता है। किन्तु जब यह इत निष्पन्न हो जाता है तब यह आत्मा का प्रदर्शित करता है। उक्त समय इसका पक्षित्व नष्ट हो जाता है और 'सोह' आत्मामात्र योग रह जाता है। इसी को परमात्मा कहा गया है। ब्रह्मार्थ-तंत्र में इसी का ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तन्त्री में इत आत्मा का वाचक माना गया है।

आत्मानीवादि—जब हम तांत्रिक दृष्टि से आत्मा और बीजादि पर विचार करेंगे। तन्त्रग्रन्थ में आत्मा शब्द का प्रयोग वेदान्तियों से भिन्न अर्थ में किया हुआ जान सकता है। यह बात आत्मज्ञानों के उपर्युक्त विचारों से ही प्रगट होती है। जैसे भी तांत्रिक आत्मा को शिव शक्ति का सम्मिश्रित रूप ही मानते हैं। किन्तु वेदान्ती उसे केवल ब्रह्म का अंशमान मानते हैं। तांत्रिकों और वेदान्तियों में यही तांत्रिक भेद है। जैसे बहुत दृष्टियों से दोनों के विचार मिलते-जुलते हैं। तांत्रिकों की दृष्टि में निराकार निरुत्पत्त आत्मा ही परमात्मा है नहीं जब माया शक्ति और कंचुकी आदि से परिच्छिन्न हो जाती है तब उसे बीजात्मा कहने सकते हैं।<sup>२</sup> तांत्रिकों के अनुसार शरीर और मन प्रकृति का व्यर्वस्तु होते हैं।<sup>३</sup> प्रकृति ही तन्मूर्त विश्व का उपादान पदार्थ है। इसीलिए इस महत्त्वोपनि का अभिप्राय दिया गया है। यह प्रकृति तन्त्रग्रन्थ में त्रिगुणात्मक मानी गई है।

शरीर—तन्त्रग्रन्थ में शरीर तीन प्रकार के माने गये हैं—कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर। आत्मा इन तीनों शरीरों से आच्छन्न रहती है।

<sup>१</sup> गारुड उपाख्यान—२० १३०

<sup>२</sup> हर्षोदय वाकर—आर्षोदय उपाख्यान २० ४६

<sup>३</sup> " " " " " २१

<sup>४</sup> " " " " " २४

ये तीनों शरीर प्रकृति विनिमित्त<sup>१</sup> होते हैं। ३ शरीर ही पाए हैं। इनसे बढ होकर जीव पशु बढसत्ता है। सदायित्व<sup>२</sup> इनसे विनिमुक्त रहना है। इसीलिए उसे पशुवति कहते हैं। तंत्रिधर्म के महाजुकार ईश्वरी मात्रा पर शायन अच्छी है और जीव माया पर अपना प्राथिस्त रखती है। इस दृष्टि से जीव ईश्वर के समकक्ष नहीं होता। जीवा का चरम शरीर<sup>३</sup> अधिया यक्ति से विनिमित्त होता है। बढ शरीर तब तक नष्ट नहीं होता जब तक पशु को मुक्ति नहीं मिल जाती। सुशुक्ति अधरमा में जीव इसी चरम शरीर में विपन्न रहता है। सूक्ष्म शरीर<sup>४</sup> को म्लिग शरीर भी कहते हैं। यह विविधियों से बना होता है। सूक्ष्म शरीर<sup>५</sup> पंचभूतों का बना रहता है। इस प्रकार तंत्रों में वेदान्त संसृष्ट आदि दर्शनों के ढंग पर जीव का विश्लेषण किया गया है।

**साधना पद्धति**—संपन्न एक साधना प्रणालि मत है। इसकी साधना दिगुणी मानी गयी है—बाह्य और आन्तरिक।

**बाह्य साधना**—इसके अंतर्गत साधना, उपाधना आदि का उल्लेख किया गया है।<sup>६</sup> आन्तरिक साधना भौतिक इच्छा है।<sup>७</sup> उसके अन्तर्गत पदचक्र मीदन तथा मुद्रा साधनाएँ आती हैं। अब हम पहले ता तंत्रिधर्म की बाह्य साधना के विविध बंधों का संकेत करेंगे और फिर आन्तरिक साधना का उल्लेख करेंगे।

**तंत्रिकों की बाह्यारम्भ साधना**—इसके अंतर्गत आधावों में संन्या और उपाधना का सबसे प्रमुख बतनाया है।

**संन्या**<sup>८</sup>—तंत्रिक साधना में संन्या का बड़ा महत्त्व माना गया है। इस संन्या के उद्देश्ये चार पद माने हैं—पान, पारथा, प्राद्यापान और चर। तंत्र बंधों में पान दो प्रकार का बतनाया गया है सूक्ष्म और सूक्ष्म। बामनवर्धन<sup>९</sup>

<sup>१</sup> बरी पृ० २४

<sup>२</sup> " " २२

<sup>३</sup> " " २२

<sup>४</sup> " " २१

<sup>५</sup> " " २१

<sup>६</sup> विनयिस्त आरु उपाध पृ० १११

<sup>७</sup> बरी पृ० १११

<sup>८</sup> " " १२३

<sup>९</sup> " " १२१

और महानिर्वास तत्र में हम दोनों का विचार से उल्लेख किया गया है। तत्र पान में देवता के अमल विग्रह का ही चिन्तन किया जाता है इसके विरुद्ध स्थूल ध्यान देवता के स्थूल विग्रह से सम्बन्धित होता है। तन्मत्त वाचना में तीन सम्पत्तों की संख्या का विधान मिलता है। प्राण, मन्माह और धार्य। प्राणः शक्त की संख्या में शक्ति का ध्यान मूलाधार की संज्ञा में किया जाता है। मन्माह में इन्द्र में गरुडबाहनी का ध्यान किया जाता है। धार्य में इक्ष्मवाहनी का ध्यान किया जाता है और ध्यान के साथ-साथ बीजमन्त्र का वाच भी किया जाता है। सूत शुद्धि तन्त्र में लिखा है—

“यस्य यस्य च मंत्रस्यठदिष्टा याच देवता।

चित्तयित्वा तदाकारं मनसा जपं चाचरेत् ॥”

अर्थात् मन्त्र के अनुक्रम देवता का ध्यान करते हुए जप करना चाहिए। जप तन्त्र ग्रंथों में तीन प्रकार का बतलाया गया है। वाचिक, मानसिक, उपासु। तन्त्र वाचना में अक्षयावाच को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। उक्त ऋषियों में भी इस अक्षया की बड़ी महिमा वर्णित की है।

तान्त्रिक उपासना—वाचिक इन्द्र से उपासना का अर्थ वाप्याशक्ति की सापक के रूप मन्त्रों की वाचक शक्ति से पूजा करना होता है। तन्त्र ग्रंथों में उपासना एक आंतरिक रूपी वाच। आंतरिक उपासना केवल संन्यासियों के लिए ही विवेक माली गई है और वाच का आचार्य शरय और संन्यासी होने पर उचित है। आंतरिक उपासना जनों के भेद से सम्बन्धित मानी गई है। इस आंतरिक उपासना में वाचक इक्ष्म को देवी का आत्म बनाया है। तद्वत्

१ प्रिसपिस्स आक तंत्र पृ० १४१

२ वही ” १४०

३ वही ” १४०

४ वही ” १४०

५ वही ” १४०

६ वही ” १४०

७ वही ” १४१

८ वही ” १४१

९ वही ” १४१

तन्त्र संहिता का निगमकथित उद्धरण हेमिप —

“त्रिकिर्य स्वाशकचक्रोबाह्यतारु वासवम् । न्यासिवा वास्तर् वास्तमन्त्रे वासुधर्मतथा प्रिसपिस्स आक तन्त्र पृ० १४१ से उद्धृत

से ज्योतिष इत्येवमेव अमृत से देवी के परस्य घोटा है और मन का तन्त्रय ही उभय का अर्थ होता है। आद्यय ही उसके पत्र हान है। गित शक्ति ही मूल है। प्राणों की मुक्ति ही मूल है, वेचन ही दीवक होता है। अमृत का तागर ही देवी का मोम का होता है। अनन्द नाद परात्मनि का कार्य करता है, प्राणायाम की प्रक्रिया ही देवी पर दुःखान की पंजर हानी है इत्यादि इत्यादि<sup>१</sup>—एक प्रकार हम देखते हैं कि तन्त्रों की आन्तरिक उदात्तना बहुत कुछ योगिक और मानसिक मानी गई है।

तब तन्त्रों में बाध उदात्तना<sup>२</sup> पर भी प्रकाश डाला गया है। उभय बाध उदात्तना के प्राक्प्रतिकृष्ट तत्त्व निम्नलिखित माने गये हैं—विनय, गुण्य, कर्मन, भूत शुद्धिग्राह, पंचतन्त्र साधना आदि<sup>३</sup>। इनमें इन मूल शुद्धि, श्यात और पंचतन्त्र साधना पर थोड़ा-सा विचार कर लेना चाहते हैं<sup>४</sup>। मूल शुद्धि तांत्रिकों की बहुत प्रसिद्ध साधना है। मूल शुद्धि तब से एकका बड़े विस्तार से उद्भूत किया गया है। संक्षेप में मूल शुद्धि का अर्थ होता है, मूल्य शरीर के तन्त्रों की शुद्धि करना। मूल शुद्धि के उद्देश्य ही श्यात साधना और पंचतन्त्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण समझी जाती है<sup>५</sup>। श्यात साधना में साधक को श्रीकर्मन्त्री और मातिका मादों की शरीर का भिन्न-भिन्न अंगों में प्रतिष्ठित करना पड़ता है। इस हम थोड़ा-सा विचार तांत्रिकों की पञ्चतन्त्र साधना पर कर लेना चाहते हैं। क्योंकि एतद् नभस्य में तानों में बड़ी आन्तरिकी पैली हुई है।

साधक में आ तत्र पंचतन्त्र का मान उ प्रसिद्ध है। पंचतन्त्र साधना का मूलाधार बरी है। वे क्रमशः मय, मंन, मन्त्र, मीधुन और मुद्रा हैं<sup>६</sup>। ये पाँचों तन्त्र प्रत्यक्ष रूपसे में पार सामाजिक प्रतीक होते हैं। तन्त्रमें इनका अर्थ प्रतीकात्मक लिखा गया है। साधकों का साधारण तब प्रतीक भी तीन प्रकार के माने गये हैं। तांत्रिक, सामाजिक, सामाजिक अर्थात् दिग्ग, बीर और पशु। पंचतन्त्रों का तांत्रिक प्रतीक तन्त्रों का तन्त्रीयतन्त्र आत्मनारा श्रीकर्मन्त्री तन्त्र, महानिर्वाण तन्त्र आदि तन्त्रों में लिखा गया है<sup>७</sup>। तन्त्रितन्त्र में पंचतन्त्रों के प्रतीकार्य इस प्रकार बतलाये गये हैं। मन्त्रिय योगिक ज्ञान का प्रतीक माना गया है, मन्त्र बह साधन कहा गया है तन्त्रिके महार साधक करने तन्त्रों का समस्त मी के प्रति कर देना है।

१	विमर्शित्तु काक तन्त्र	१०	१५५
२	" " " आर्षा उद्दिष्टान	१०	१५९
३	" " " " " "	१०	१५९
४	" " " " " "	१०	१५५
५	" " " " " "	१०	१५०
६	सन्धि पत्र दि साध	१०	१०५
७	" " " " " "	१०	१०७



मन्त्र उक्त सात्त्विक ज्ञान को कहते हैं जिसके सहारे सायक समस्त जीवों के दुःख मुक्तों में उनके प्रति लहानुभूति प्रकट करता है। मुरा उक्त साधना का प्रतीक है जिसके सहारे सायक दुःख शक्तियों का संघर्ष त्याग देता है। इसी प्रकार मैतुन का अर्थ मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलनी शक्ति का सहस्रार में स्थित शिव से मिलन करना होता है।<sup>१</sup> आगमकार<sup>२</sup> नामक तंत्र में पंच तत्त्वों के प्रतीकार्थ उपर्युक्त प्रतीकार्थों से कुछ भिन्न दिये गये हैं। उक्तमें मरिच<sup>३</sup> का सहस्रार से संकित होने वाले अमृत का वायक माना गया है।<sup>४</sup> माल का अर्थ उसमें बायीं तंम प्रकटाया गया है। इसी प्रकार मन्त्र का विगता रूपी नदियों में विपरीत करने वाली वायु के लिए प्रयुक्त हुआ है।<sup>५</sup> ज्ञान को सहस्रार में प्रकटित करना ही उक्तके अनुसार मुरा है। कुंडलनी शक्ति और सहस्रार को शिव का संयोग ही मैतुन कहा गया है। इस प्रकार अन्य तंत्र ग्रंथों में भी पंचतत्त्वों के सात्त्विक प्रतीकार्थ<sup>६</sup> दिये गये हैं। किन्तु दुर्गाम्बर साधारण बुद्धिवालों ने इन पंचतत्त्वों का अविधानमूलक अर्थ लगाना शुरू कर दिया जिससे कि तंत्र साधना अत्यधिक बरमान हो गई है।

**तंत्रों की कुंडलनी साधना**<sup>७</sup>—तंत्रों में कुंडलनी-मेरुम क्रिया का बड़ा महत्त्व है। यहाँ पर हम उक्त पर जोका का प्रकाश बतल देना चाहते हैं। ऊपर हम महामाया की चर्चा कर आये हैं। इसी का दूतय नाम महाकुंडलनी है। जिस तरह से महामाया सृष्टि के निष्पन्न का कारण समझी जाती है वही तरह कुंडलनी भी सृष्टि की कारणरूपा है। इस महाकुंडलनी का तंत्र ग्रंथों में बड़े विद्यार से वर्णन किया गया है। यह अमरमयी और त्रिरूपा मानी जाती है। इसे अमोर्तिमयी भी कहते हैं।<sup>८</sup> यही त्रिरूप की चेतना शक्ति है।<sup>९</sup> जो ईश और काश से अपरिच्छिन्न

<sup>१</sup> शक्ति ब्रह्म दि शास्त्र पृ० ६०६

<sup>२</sup> बही " ६०७

<sup>३</sup> " " ६०७

<sup>४</sup> " " ६०७

<sup>५</sup> " " ६०७

<sup>६</sup> हेमिच इनके विविध प्रतीकार्थ—शक्ति पत्र दि शास्त्र—पृ० ६०६ और हेमिच त्रिरूपिता का अर्थ पृ० ७२७-१६

<sup>७</sup> इस कुंडलनी योग साधना को तंत्र मत में भूतसृष्टि का काम भी दिया गया है। हेमिच त्रिरूपिता का अर्थ पृ० १ (इन्द्रोद्भवता)

<sup>८</sup> शक्ति ब्रह्म दि शास्त्र पृ० ६०६

<sup>९</sup> त्रिरूपिता का अर्थ " ६०६

<sup>१०</sup> शक्ति ब्रह्म दि शास्त्र " ६०६

होती है। जब सृष्टि के विकास का समय आता है तो यह शक्ति अपने को प्रकृति उदक होती है। इसीलिए इसे विश्व प्रकृति भी कहते हैं। यही आप्य शक्ति है। यह शिव शक्तिरूपा भी है। इससे विश्व का विकास शिव और शक्ति प्रभावों की और पुरुष के रूप में होता है। इसका शिव शक्ति रूप से रीढ़ी स्पेष्ठा और वाता शक्तिवा उत्पन्न होती है। इसके दूर शिव रूप से दूर ब्रह्म और शिव्य उत्पन्न होत हैं। इनके क्रमिक मुद्राग से अग्नि पत्र सूर्य, तमस, रजस और सत, मान, इच्छा और क्रिया आदि का जन्म होता है। इसे विद्यत के पहली प्रकथा कहा गया है। विकास का दूसरा क्रम अर्थमृष्टि क नाम से प्रसिद्ध है। यह दो भागों में विभाजित है—पहले भाग में अभिजाता आत हैं और दूसरे में तत्त्व। यही विविध लोका हैं। पर शिव इसके प्रधान देव हैं। इसका विवरण इस प्रकार है—

लाक	अभिजाता	अपिप्यश्री
राजम	पराशिव	आपाशक्ति
	महाशिव्यु	महाशामी
राजः	राभू	शिवकानी
जन	सदाशिव	महागोरी
मह	ईश	मुषनेरुषी
स	ईश	मद्रधामी
गुण	विष्णु	राधा
भू	ब्रह्मा	तापिश्री

महाकुंडली से विश्व का विद्यत क्रम भिन्न-भिन्न तंत्रों में भिन्न प्रकार से बताया गया है। उक्तका विकास क्रम बहुत प्रसिद्ध है अतएव हमने उगी का संकेत किया है।<sup>१</sup>

तंत्र का प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि वा पुत्र मर्त्या में है बही सिंह में है।<sup>२</sup> इस आपार पर ही तांत्रिक महाकुंडली का रूप संरक्षक की विधि सिंह में भी मान्य है। उगी का वा कुंडली शक्ति<sup>३</sup> कहते हैं। समूर्ण जगत् का ज्ञान अनेकानो महाकुंडली अतएव मानी जाती है। किन्तु अत्रि का

<sup>१</sup> भिन्न प्रकार महाकुंडली से उक्तका मूल भागों का विभाग बताया गया है उगी प्रकार शरीरक कुंडली का विकास भाग की भाग भागों में बताया गया है—  
गालकक काक अरम १० २०२

<sup>२</sup> अत्रि काका काका अनेकेन १० ५

<sup>३</sup> अत्रि काका दि काका आपार अनेकेन १० ११८

बीच की चलानेवाली कुंडलनी शक्ति एक कुपडलनी बनी गई है।<sup>१</sup> यह कुपडलनी शक्ति शरीर में मूलाधार में निवास करती है।<sup>२</sup> यह कुपडलनी में रहती है और उसके तीन बलय क्षेत्र त्रिकोण से लिपटी रहती है। इसके बाईं ओर इका नाडी रहती है और दायीं ओर विंगला नाडी रहती है। इन दोनों के बीच में कुपडलनी नाडी का प्रवाह रहता है। इका और विंगला कृषी कुपडलो से प्राप्त रहने के कारण इका नाम कुपडलनी पड़ गया है।<sup>३</sup> कुपडलनी मात्रिकामयी भी बनी गई है।<sup>४</sup> वाञ्छितो चर कहना है कि जब यह कुपडलनी शक्ति आपत कर सहसारेणुल मी वाली है तब कुपडलनी की मात्रिकार्थे व्यक्त होती चलती है। मूलाधार से लेकर सहसार तक की कुपडलनी मात्राओं का तन्त्र संबंधों में विविध प्रकार से बर्णन किया गया है। कुछ लोग इन मात्राओं के अंतर्गत में छः पत्रों की विधि मानते हैं। कुछ वाञ्छितो में ८ पत्रों का बर्णन किया है। कुछ ने इका और मी अधिक विस्तार रूकवा है। उन्होंने मूलाधार से लेकर सहसार तक के मार्ग को २५ मार्गों में विभाजित किया है। किन्तु एक बात से सभी लोग सहमत हैं वह यह कि कुंडलनी को सहसार तक पहुँचते-पहुँचते ५२ मात्रिकार्थे व्यक्त करनी पकती हैं। कुंडलनी शक्ति नाडियों के मार्ग से सहसार तक पहुँचती है इसीलिए तन्त्रों में नाडी वाचना का विशेष महत्व दिया गया है। शरीर में भूवृद्धि तन्त्र के अनुसार बहुर हकार और परंपरार तन्त्र के अनुसार तीन लाख और शिव संहिता के अनुसार तीन लाख पचास हकार नाडियाँ होती हैं।<sup>५</sup> इनमें छ बीस नाडियों की पचास अधिक भी गई है।<sup>६</sup> इन बीस में मी सबसे प्रमुख तीन हैं—इका, विंगला और कुपडलनी और इन तीन में मी सबसे अधिक महत्वशालिनी अंदर मी ब्रह्मा, विद्या और ब्रह्म नाडी को धरना भी गई है।<sup>७</sup> इनमें से प्रथम बहिष्करणी और बृषी स्वस्वरूप और तीसरी अस्वरूप मानी गई है।<sup>८</sup> विषयी नाडी

<sup>१</sup> योगांश (अनुवाद) पृ० १८८ पर कुंडलनी शक्ति का वर्णन देखना।  
<sup>२</sup> बदेवद संहिता में देखिय—

“मूलाधार कामाशक्ति कुपडलनी पर देवता।”  
<sup>३</sup> अन्वय का योगांश पृ० १८८  
<sup>४</sup> सर्वेभ्य पादर—आधर ” ८२  
<sup>५</sup> इन सब मतों के बिचे देखिय—सर्वेभ्य पादर—आधर पृ० ११०  
<sup>६</sup> बरी ” १११  
<sup>७</sup> बरी ” ११२  
<sup>८</sup> बरु चक्र विरूपय ” ११२  
<sup>९</sup> बरु चक्र विरूपय ” ११२

वा मूल मण्डल<sup>१</sup> ब्रह्मांडा है। सुष्मलनी शक्ति इसी ब्रह्मद्वार से ब्रह्मद्वार के शिव भी प्रारंभ होती है। इसी का कुलमार्ग भी पड़ते हैं। सुष्मला के दाहिनी ओर विगभा नाडी होती है।<sup>२</sup> इस शक्तिविद्यया भी कहते हैं। इसी का प्रतीकत्वक नाम यमुना भी है। इसे सर्व भी कहते हैं। सुष्मला के बाएँ ओर इका<sup>३</sup> नाडी है। यह अमृतगर्भा भी कहती है। इसे ब्रह्म शक्ति आदि के नामों से भी पुकारते हैं। प्रतीकत्वक भाग में इसी का गंगा कहते हैं। य दोनों नाडियों का ल (समय) स्वरूपा बड़ी गयी है। सुष्मला से प्रवाहित होने वाली सुष्मलनी शक्ति इनका आक्रान्त कर लेती है इसीलिए प्रसिद्ध है कि सुष्मला जल का मन्त्र कर लेती है। इका विगभा और सुष्मला नाडियों का मूल मूलाधार बना गया है। इस प्रतीकत्वक भाग में सुष्मल त्रिवेणी<sup>४</sup> भी कहते हैं। क्योंकि यह गंगा, यमुना और सरस्वती का मूल स्रोत है। ये तीनों नाडियाँ ब्रह्म का शक्ति हुए हैं। ब्रह्म के इका और विगभा आकाश ब्रह्म के पाठ पढ़नेवाली हैं तब य सुष्मला से फिर मिल जाती है। इसीलिए इन स्थान का मुक्त त्रिवेणी<sup>५</sup> कहा गया है। सुष्मला नाडी शिव शक्ति से हास्य जाती है, उसे मरहट्ट कहते हैं। नाडियों के इस मार्ग में कुल भाग ३ तथा कुल भाग ६<sup>६</sup>, कुल इससे भी अधिक चरों की शक्ति मानते हैं। तीव्र शक्तियों में इन चरों का ब्रह्म विस्तार से यज्ञ किया गया है। पहले हम पदचरों का यज्ञ करेंगे फिर ६ चरों का। अंत में हम अन्य शक्तियों द्वारा शिव गण सुष्मला मार्ग के भिन्न विभागों का वर्णन करेंगे।

पत्नी चर मूलाधार<sup>७</sup> है। यह सुष्मला नाडी का मूल ज्ञान के कारण

<sup>१</sup> बर्ही ११२

<sup>२</sup> बरेषु विगभा नाम भार्गो मूल विमदा ।

श्रीश्यामिन्द्र महादेवा शक्तिर्मा कर्मरममा ॥

सामोहन तत्र (ब्रह्मचर्यादि श्रवण का टीका म उद्धृत)

<sup>३</sup> कामगा या इका भार्गो सुष्मला चन्द्र स्वरूपणी ।

शक्ति कला हि सा यथा साक्षात्पुण्ड्र विमदा ॥

(सामोहन तत्र ब्रह्मचर्यादिश्रवण) ५ ३

<sup>४</sup> इका यमुना देवी विगभा सरस्वती ।

सुष्मला सरस्वती तथा साक्षात्पुण्ड्र भवेत् ॥

संगता चर मूल य विगभा श्रियागता ।

शिवेण काग म साक्ष्य तत्र स्वाम महात्मन । (ब्रह्मचर्यादिश्रवण ११४ १० ४)

<sup>५</sup> सर्वेष्ट चर । साक्षर चरते १० ११२

<sup>६</sup> शक्ति ०४२ दि शक्त्य नामक ग्रन्थ में १० ६०२ वा ५० पत्र चरों तक का उल्लेख है ।

<sup>७</sup> साक्षर विमदा ११ ९

मूलाधार कहा जाता है। कुडकनी शक्ति यही पर साढ़े तीन बक्ष्य लेकर इस धार की ओर मुख किये हुए विभाम करती है। यह एक उपरय और स्निग्ध के बीच में स्थित रहता है। इसका रंग काल पीला बताया जाता है। इसमें चार दंत होते हैं। इन दंतों की शक्तियाँ ४ प्रथम के ज्ञानम् के रूप में प्रस्तुत होती हैं। उनके नाम क्रमशः परमानन्द, सहजानन्द, योगानन्द और भीरुानन्द<sup>१</sup> हैं। इन चार दंतों पर चार स्वस्तिम अक्षरों का प्रथम होता है। ये चार अक्षर क्रमशः अं, अं, एं, एं हैं। अक्षर चारों अक्षरों के रूप में एक ही शब्द का स्थूल रूप होता है। ये चार अक्षर रूप होते हैं। मंत्र देवता के सूक्ष्म रूप माने जाते हैं। इसलिए ये चार अक्षर देवतामय होते हैं। इस एक का प्रेरक तत्त्व पृथ्वी है। इसका बीजमंत्र लं है। इस बीज का बाह्यत वैराग्यत हाथी माना गया है, इसका गुण गंध है। इसके अविच्छिन्नता ज्ञान है। इसकी अविच्छिन्नी देवी शक्तिनी है। इसका आचर्य अक्षरशतक है। इसकी कान्तिरूप नादिक्रम और अक्षरशतक गुण है। इसका ध्यान करनेवाला सर्व विधाविचार, पुष्पेश्वरकता, अक्षरशतक और अक्षरशतक होता है। अक्षर रचना में उठथी अक्षरशतक गति होने लगती है। इसी मूलाधार एक में ही त्रिपुर<sup>२</sup> की कल्पना की गई है। कहते हैं इसमें एक त्रिभुजाक्षरक योगिनी होती है, यही त्रिपुर का अक्षरशतक है। इसमें स्वयंमू नामक शिव शिवा को नवीन अक्षर के लक्षण कुन्दर होता है प्रतिष्ठित है। इस त्रिपुर का तंत्र प्रयोगों में बड़े विचार से वर्णन किया गया है। पद्वक निरूपण नामक ग्रन्थ में दिया हुआ इसका चर्चण इस प्रकार है—

ब्रह्माक्षरा बक्षत्रदेशे विद्यसति सततकणिकोमप्यमेत्य,  
कोणं तत्र त्रैपुणस्यं तद्विदिब विद्यसरकोमक्षं कामरूपम् ।  
कन्दर्पो नाम चागुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ता  
रजीवेशो बभ्रुवीरमकर्मिहसन् कोणिसूर्य प्रकारा ॥<sup>३</sup>

अर्थात् ब्रह्मानाडी के मुख के समीप मूलाधार एक की अक्षरशतक में तद्विदिब के लक्षण कोणिकोमक्षरक नामक एक त्रिभुजाक्षर होता है। इस त्रैपुण कहे हैं। इसमें स्वयंमू नामक चातुर्विध अक्षरशतक करती रहती है। यह त्रैपुण पुल की तरह रक्त वर्ण रहता है। बीजा का स्नानीभूत यह अक्षरशतक अक्षरशतक के लक्षण अक्षरशतक रहता है।

इसका एक स्थापितान<sup>४</sup> का नाम से प्रसिद्ध है। स्वयंमू अक्षरशतक परम शिवाम् ।

<sup>१</sup> सर्वोपदेव वाचर—आचार्य पृथ्वी ११६

<sup>२</sup> " " " " " ११६

<sup>३</sup> ब्रह्मचर्य निरूपण ११८

<sup>४</sup> स्थापितान एक का वर्णन सर्वोपदेव वाचर नामक ग्रन्थ के ११८ पृ० पर किया ।

इत पुरु में पाम भिगाम् प्रतिष्ठित रहना है, इसीलिए इस स्थापिष्ठान<sup>१</sup> चक्र कहते हैं। पान बिन्दु<sup>२</sup> उग्रविपद् में स्थापिष्ठान का अर्थ शक्ति का अचना ही स्थान लिया गया है। इसचक्र बिन्दु जैसा वर्ण माना गया है। शरीर में वेदू के पास इसकी स्थिति मानी गई है। इसमें ह्र, दल दाते हैं। दलों के बीजाक्षर क्रमशः वं, मं, मं, मं, रं, सं होते हैं। इसका तल जल माना गया है। इसीलिए इस चक्र को बदद्यालय भी कहते हैं। यह अर्द्धेन्दु रूपरत ललित कहा गया है। इसका तल बीज वं है। इसचक्र लोक मुष माना गया है। इसचक्र गुण रत बतलाया गया है। इसचक्र अग्निगुण रत बिन्दु और इसकी अग्निगुणी देवी राक्षिनी है। इसचक्र यंत्र चन्द्राकार बनता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय रचना मानी गई है और अर्धेन्द्रिय स्तिग होती है। इसके बीज का बाहन मकर होता है। इसका पान करने से योगी को गय, पय रचना की अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है और अहंकार आदि विचार नष्ट हो जाते हैं।

तीसरा चक्र मण्डिपूरक<sup>३</sup> नाम से प्रसिद्ध है। यह माभि में होता है। इसमें दश दल दाते हैं। इसका वर्ण नीला होता है। यह स्व लोक का प्रतीक समझा जाता है। इसका दश दलों के वर्ण क्रमशः इठ प्रकार बतलाय गये हैं—इं, टं, शं, ठं, धं, दं, पं, मं, वं, फं। यह चक्र वेद तल की स्थिति के कारण मणि के सदृश चमकता रहता है इसीलिए इसका नाम मण्डिपुटी चक्र रखा गया है। इसका आकार तल अग्नि, उग्रच बीज मन्त्र रं, बाहन मंश कहा गया है। इसचक्र गुण रत बतलाया गया है। बदरक इठके देवता माने गये हैं। राक्षिनी इसकी अग्निगुणी देवी हैं। इसचक्र यंत्र त्रिकोणमय होता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय बलु और अर्धेन्द्रिय परत है। इसचक्र त्रिधातु मन्त्र में तीन स्थितियाँ बने रहते हैं। इसचक्र पान करनेवाला यात्री संसार पावन में पन्न और पन्न रचना में बतुर हा जाता है। उग्रकी विद्या पर मण्डिपुटी निवास करने लगती है।

चतुर्थ चक्र का नाम अनादल<sup>४</sup> है। यह हृदय देव में स्थित रहता है। इसमें १२ दल दाते हैं। इसका प्रतीक वय अक्षय माना जाता है। यह महालाक पर प्रतीक होता है। इनके दलों के अक्षर क्रमशः—वं, मं, मं, वं, रं, मं, तं, वं, कं, रं, ठ हैं। इसका आकार तल वायु, उग्रच बीज मन्त्र वं

<sup>१</sup> सर्वेष्ट वापर—वापर एवंगेन पृ० ११८ पर इसका बलन हैमिपु।

<sup>२</sup> इसका अक्षर विकल्प भी सर्वेष्ट वापर नामक ग्रन्थ में पृ० ११८ पर हैमिपु।

<sup>३</sup> (क) सर्वेष्ट वापर—वापर एवंगेन पृ० ११८ पर हैमिपु।

(ग) सर्वेष्ट वापर—वापर एवंगेन द्वारा मण्डिपुटी पृ० १८

" " " " " " " " ११

धीर पद्मन मृग माना गया है। सर्यो नामक गुण की स्थिति भी इसमें रहती है। इसके अभिप्राय है ईशान पर और अभिप्राय है बी शक्तिनी कही गई है। इसका मंत्र पद्मोद्यात्मक होता है। स्वप्न इतनी ज्ञानेन्द्रिय और कर कर्मेन्द्रिय कहे गये हैं। इतना प्वाल करनेवाला योगी पर काया प्रवेश करने की शक्ति प्राप्त करता है। उसे ईशान नामक शक्ति भी प्राप्त होती है। इस ऋक के समीप अक्षय और मखिरोठ नामक दो और रचान कहे जाये गये हैं। इस ऋक में अनादित जनि उत्पन्न होती है। यही सदा शिव है। त्रिगुणम प्रथम इसी स्थान में प्रकृत होता है। बीज शक्ति के सदाशिवीयता इसी स्थान में रहती है। इस ऋक का इतिहास बका महान है।

पाँचवें ऋक का नाम विशुद्ध ऋक<sup>१</sup> है। इसका शिव रचान कहे माना गया है। इसमें १६ दल होते हैं। इसका वक्त्र धूम के रस्य होता है। यह अनन्तक का प्रतीक होता है। इसके दलों के पर्व क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, लृ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, आः हैं। इस ऋक के वक्त्र का नाम आधर्य है। बीजमंत्र ई माना गया है। बीज का वाहन हाथी माना गया है। इत्य गुण शब्द बतसाया गया है। पञ्चानन इसके देवता कहे गये हैं। इसकी अभिप्राय है बी शक्तिनी है, इत्य मंत्र श्रुत्याधर बनता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय ममरा कर्ष और वाक् है। इस ऋक का प्वाल करनेवाला त्रिलोकेशी और त्रिबीबी होता है।

आशापक<sup>२</sup> छठा ऋक माना गया है। यह मूमज में स्थित रहता है। इसमें दो दल होते हैं। इसका वर्ण श्वेत होता है। दलों के आधर 'ह' और 'ध' माने गये हैं। प्रथम इत्य वक्त्र बीज है। नाद इत्य वाहन है, शिव इसके देवता हैं। इसकी अभिप्राय है शक्तिनी देवी है। इसका मंत्र शिवाधर बनता है। इत्य लोक तपः माना गया है। इत्य प्वाल करनेवाले योगी का वाक् की शक्ति प्राप्त होती है। इस आशा ऋक के समीप आर्य शरीर का काय काय माने गये हैं। वे करणः इन्द्र, शक्तिनी, नाद, अर्ध, अन्दिज, महानाद तथा और उम्पनी हैं। उम्पनी काय में पदुं-वक्त्र बीज प्रकृत हो जाता है और उसकी पुनरावृत्ति नहीं रहती। इस आशापक के समीप ही एक मन्त्र-ऋक होता है। उसके ६ दल माने गये हैं। उनका नाम क्रमशः शब्द, सर्यो, रत्न, रूप, गंध पाँच तो वह होते हैं और अज्ञाननामा एक दल और होता है। पनापक के ऊपर शामपक होता है। इसमें १६ दल होते हैं। त्र्यम्बक ७ धर्मों और तद्वसार के बीच में एक १२ दल का अक्षोभ्य ऋक और होता है।

<sup>१</sup> शरी १ ३८

सर्वेष्ट वाचा—आधर श्वेतरेण अजाय १

<sup>२</sup> अक्षय विकृत—आधर श्वेतरेण अजाय अजायित १० ४१

इसी आशानक में धाराशामी नामक स्थान है। यहाँ पर इका को परम कहा गया है और विगला को अक्षी कहा गया है। ये दोनों भावियाँ यहाँ मिलती हैं। एनोसिए इय स्थान को बाराखी कहा गया है। इन दोनों के बीच शिव या विश्व नाम का स्थान माना गया है। कुछ तंत्र ग्रंथों में आशानक के ऊपर तीन पीठ स्थान मान गये हैं। उन तीनों के नाम क्रमशः शिष्ट, पीठ, नादपीठ, शक्तिपीठ हैं। ये तीनों पीठ स्थान काल में रहते हैं। शक्तिपीठ और शिव स्वरूपी है। इसके नीचे निगम मन्त्र गुरी भी बहना भी गई है। सोमचक्र ब्रिहदा संकट अमी ऊपर कर चुके हैं। यह इती निचलम्न गुरी पर नीचे है। इस सोमचक्र के नीचे भी एक गुप्त-पट्टल कमल माना गया है। इसके नीचे आशानक है। इस आशानक के भी नीचे एक गुप्त चक्र भी और बहना भी गई है। इसको द्वादश दल पुनव रक्त पर्ण का कमल कहा गया है।

यह सद्गुरु दल कमल मस्तक प्रदेश में स्थित माना गया है। इसका नाम शून्य धनभावा गया है। इसमें सद्गुरुदल दात है। यह सत्यलोक का प्रतीक कहा जाता है। यह चक्र सर्वात्म्यात्मिन होता है। निर्गम इसका बीजमन्त्र है। बीज का पारम सिन्दु पञ्जाया गया है। पारमम इसके देवता और महाशक्ति इसकी देवी बनी गई है। निगमार्णव पत्र पर उक्त इसका वंश दाता है।

इस सद्गुरु की चतुर कर्मिका के बीच में एक गोलाकार चतुर्भुज मन्त्रा माना गया है। जन्म है यह चतुर्भुज लक्षणरूप पर एक ऊर्ध्वगुणी द्वादश दल कमल का चक्र हुए हैं। इस चक्र की कर्मिका में त्रिगुण के सत्य दीक्षित अक्षय्यादि त्रिपाल स्थित हैं। यह दिक्षाण पागे और य अमृत य आकाश होने के कारण मण्डिरी के गण्य माने जाता है। इस मण्डिरी के मध्य में मण्डिरी के भी बहना भी गई है। इस मण्डिरी के भी मध्य में ताद बिन्दु के ऊपर एक हृदय नामक स्थान माना गया है। यही पर गुह्य के परम का ध्यान करना पड़ता है। ये गुह्य रूप परम शिव ही होता है। इस सद्गुरु के चतुर्भुज में एक पाठ्यी कथा भी बहना भी गई है। उन चक्र में भी एक निर्माण कथा मानी गई है। इस निर्माण कथा के बीच में भी मूल प्रकृति कथा बिन्दु और निर्गम शक्ति परम शिव का आनिगिा किता हुए पड़ी है। बहुत से भाग इस चक्र का चतुर्भुज को भी माना है। इस सद्गुरु में ही आशानक गुणना नादा सनात होती है। यहाँ पर यह सनात होती है बर्दा मन्त्रम है। कुछ तंत्र ग्रंथों में ६ परम का ध्यान किया गया है। शक्ति सम्पन्न

१ वाक्य विवरण—आशानक नाम द्वारा मन्त्राणि पृ. ६२

२ जो चक्रों के नाम और चक्रों के गणना में बड़े भग्न है—



तंत्र के अनुसार ८ चक्र क्रमशः इस प्रकार हैं—१ सर्वानन्दमय चक्र, यह चिर स्थान में माना गया है और इसकी अभिष्टायी ललिता माता कही गई है। २ सर्वसिद्धि चक्र—इसका स्थान शिवर में माना गया है, इसकी अभिष्टायी त्रिपुरासामी देवी है। ३ सर्वयोगहर चक्र—इसकी अभिष्टायी त्रिपुर सिद्धि नामक देवी मानी गई है। ४ सर्वरक्षाकर चक्र—इसकी अभिष्टायी त्रिपुर मासिनी कही गई है। ५ सर्वाय काचक चक्र—इसकी देवी भी त्रिपुरा भी ब्रह्मपीरणी है। ६ चक्र चक्र सर्वसोमय भीराचक है। त्रिपुरासिनी इसकी अभिष्टायी कही गई है। ७ सर्वसंशामयी चक्र—इसकी अभिष्टायी त्रिपुर सुन्दरी कही गई है। ८ सर्वायापरिपूर्वा चक्र—इसकी त्रिपुरेशि नामक देवी इसमें निवास करती है। ९ वैशोस्वमोहन चक्र—इसकी अभिष्टायी त्रिपुराम्बा कही गई है। अन्य तंत्र ग्रंथों में ये ८ चक्र नहीं दिये हुए हैं। भी चक्रों का वर्णन महानिर्वाण तंत्र में भी दिया गया है। किन्तु उनके आकार और शीव मिल्न मिल्न हैं।

कुछ लोगों ने पट्चक्रों में से कुछ चक्रों के आठपाठ कई छोटे-छोटे और चक्र भी कहिले हैं जैसे मनाः चक्र,<sup>१</sup> ललना चक्र,<sup>२</sup> सोमचक्र<sup>३</sup> आदि। मनाःचक्र की कल्पना अनाहत चक्र के पास की गई है। इसमें ८ दश माने गये हैं। इती प्रथम त्रिगुद्धि चक्र के पास अष्ट ऊपर की तरफ ललना चक्र<sup>४</sup> है। इसमें १२ दश माने गये हैं। मन्ना संतोष, अरराध, दम, मान, स्नेह, हृद्यता, आशुती, तन्मय और अर्मि उसके दशों की १२ वृत्तियाँ मानी गयी हैं। मनाः चक्र के ऊपर सोमचक्र होता है। इसमें १६ दश माने गये हैं। कुछ तांत्रिकों ने पट्चक्रों के अतिरिक्त किन्द, भीहाट, गास्ताट और बीठ और अमर गुह्य नाम के ५ चक्र और बतलाये हैं।<sup>५</sup> किन्द

(क) कुछ तांत्रिकों के अनुसार भी चक्रों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) आचार (२) स्वाधिष्ठान (३) मक्षिपुर (४) अनाहत (५) विशुद्ध (६) ककना (७) भूचक्र (८) अक्षरग्न (९) अक्षरचक्र—इस मत के सिद्ध कल्याण का साधनांक देखिये पृ० ७१४

(ग) विशुद्धों के दून्ने वागं के अनुसार ८ चक्रों के नाम पट्चक्रों में बाद, किन्द और सहस्रार के नाम जोड़ने से प्राप्त ही जाते हैं। शीर की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इनका विवरण मिस्रिप्लस आकतंत्र नामक ग्रन्थ में ६७२ पृ० पर देखिये —

१ शक्ति पदक द्वि शतक—पृ० ६८२

२ बही " ६८२

३ " " ६८९

४ सर्वस्य पावर , १९३

५ देखिये कल्याण के साधनांक में तांत्रिक दृष्टि नामक गार्गीनाथ कविराज का मंत्र

एक पीले वर्ण का होता है। अकार इच्छा वर्ण माना गया है। वृष्णी इच्छा स्थान है। ऋग्वेद इच्छा वेद कहा गया है। वैश्वी वाणी इच्छा में निवास करती है। इच्छा का धारणा करनेवाला वातावरण मुक्ति प्राप्त करता है। दूसरा एक भीदाट है। इच्छा रंग नये मुक्ता का उत्पन्न होता है। इच्छा देवता विष्णु है। इच्छा वाणी मत्पमा है। अक्षर इच्छा अक्षर माना गया है। अक्षर इच्छा वत्स कहा गया है। इच्छा पर मत्स्य और अक्षर स्थान माना गया है। इच्छा वाक् का सामीप्य मुक्ति मिलती है। वीरवा वाक् गङ्गाट है। इच्छा रंग रत्न है। गुण इच्छा तम माना गया है। इच्छा अक्षर म और वत्स तम होता है। इच्छा परवशी वाक् निवास करती है। सामवेद इच्छा वेद और सुसुप्ति इच्छा अक्षर माना गया है। शिव इच्छा अक्षरिष्ठाता होते हैं। इच्छा वाक् का धारणा मुक्ति मिलती है। पीय एक का नाम श्रीवृषीट है। विष्णु वेदा इच्छा रंग होता है। अकार इच्छा अक्षर, वाग् वत्स और ईश्वर देवता होता है। इच्छा वेद अक्षर और इच्छा वाक् का सायुज्य मुक्ति मिलता है। इच्छा अक्षर वाग् वत्स गयी है। पञ्चम वाक् अक्षर गुण का नाम स प्रसिद्ध है। सगुण इच्छा वर्ण, अक्षरमात्र अक्षर, आकाश स्थान, अक्षर इच्छा वेद और उन्मनी इच्छा अक्षर माना है। इच्छा पराक्षर वाक् निवास करती है। वदाशिव इच्छा देवता होते हैं। इच्छा वाक् वैश्व मुक्ति प्राप्त करता है।

**कुण्डलनी मार्ग**—कुण्डलनी ने माद का क्रमिक व्यक्तता के अनुसार और मात्रिकाओं के क्रमिक प्रकृत का अनुसार सहस्राक्षमुक्त कुण्डलनी के मार्ग का वर्णन किया है। इनका मानुष्य और भीमर स उद्भूत होनेवाली पंचाक्षर अक्षरमात्र मात्रिकाओं का मूल स्थान सहस्रार एक माना है। इस स्थान को वह लाग अक्षर पद है। पर अक्षरमात्र नक्षर का निवास स्थान कहा गया है। इस अक्षर स्थान स उत्पन्न होने वाली मात्रिकाएँ और इनका स्थान इस प्रकार हैं।<sup>१</sup>

ष		
अ	अक्षर	म
आ	महाविन्दु	द
इ	उन्मना	न
ई	रमना	प
उ	पानिवा	श
ऊ	रुक्मि	ध
ऋ	मान्ना	न

<sup>१</sup> द्विगुण—अक्षरमात्र का समीप्य १० ३४६ पर वह मात्रिका ही दूर है।

अ	नाद	र
ख	रोषिनी	ब
ग	अर्धचंद्रिका	म
घ	विन्दु	म
ङ	आकाश	
च	अंतराल	फ
छ	सम्बन्ध	प
ज	विद्युत्	न
झ	अंतराल	म
ञ	अनाहत	व
ट	अंतराल	म
ठ	अंतराल	त
ड	मणिपुर	ब
ढ	स्वाधिष्ठान	द
ण	आधार	ह
त	विषय	ठ
थ	कुलरद्मन	ट
द	कृपा	ब

वाक्य में इन सबका यह विस्तार से बखान किया है। इनमें हम उम्मी पर पाड़ा-सा प्रकाश देखेंगे। क्योंकि संत ऋषियों ने इसका बार-बार प्रयोग किया है। जेता कि हम पहले कह चुके हैं कि उम्मी अथवा अनुभव निरसंद बाहू भी अथवा होती है। अथित और सूय इन दोनों का उतमें सुन्दर सम्बन्ध देना जाता है। यह उम्मी कारणरूप शक्ति से परे मानी जाती है। इस स्थान में पहुँचकर जीव आरागमन कर्षण से कूट जाता है। संत संतों में उम्मी को भी कहा गया है और उम्मी अथवा भी होती है। जीव उम्मी अथ में पहुँचकर स्वयं ही उम्मी अथवा का प्राप्त हो जाता है।<sup>१</sup>

मुद्रा साधना—सुन्दरी साधना के अतिरिक्त वाक्यों में मुद्रा साधना<sup>२</sup>

<sup>१</sup> दि गाभेवह काक सेरम—आधर वीजेव १० ११४

<sup>२</sup> मिमविस्म काक तत्र १० ११३०

भी प्रयत्नित है। उनका कहना है कि कुंडलिनी का वायु<sup>१</sup> करने के लिए पहले सापक को १० मुद्राओं की साधना करनी पड़ती है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं— महामुद्रा, महाब्रह्म, मेचरी, मूलबंध, उड्डिपान, बालगम्भर बंध, विपरीत करनी, ब्रह्माली, शक्ति पालिनी और महाब्रह्म। संतप्रबंधों में इन सबका बड़े विस्तार से बर्णन किया गया है। किंतु हम यहाँ इस विषय का विचार नहीं करेंगे क्योंकि संत ऋषियों में हमें मुद्रासाधना बहुत कम मिलती है। केवल दो बार संतों ने कहीं एक-आध मुद्रा का नाम भर से लिया है।

**न्यास और शक्तिपात**—सम्प्रदाय में साधना-साधकभी दो विधियों की बहुत बर्ना मिलती है। इनमें से एक ठा न्यास का प्रयोग है और दूसरा शक्तिपात के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर इन दोनों का संक्षिप्त परिचय दे देना हम आवश्यक समझते हैं।

**न्यास का प्रयोग**<sup>२</sup>—न्यास का अर्थ होता है स्थापन। बाह्य और आंतरिक सभी अंगों में इस देवता और मंत्र का स्थापन करना ही न्यास है। शरीर को पवित्र करने का यह अत्यंत साधन माना जाता है। न्यास प्रयोग से शरीर के प्रत्येक अणु में होती हुई शक्ति तथा हृदयपरम भावना शक्ति स्वयमेव जग उठती है। तत्र प्रथम में न्यास कर प्रहार का बतलाया गया है। इनमें सबसे प्रसिद्ध मानुषान्यास, मंत्रान्यास, तत्त्वान्यास, देवान्यास आदि हैं।

**मानुषान्यास**—स्वयं और बसों का होता है।

**मंत्रान्यास**—पूरे मंत्र का, मंत्र का पदों का, मंत्र का एक-एक अक्षर का और साथ ही यह प्रहार का होता है।

**तत्त्वान्यास**—बहू है जिसमें संसार के अनेक अणु का रूप में परिणत और इनसे परे रहनेवाले तत्त्वों का शरीर में समावेशन न्यास किया जाता है।

**देवान्यास**—शरीर का बाह्य आन्तरिक अंगों में करने हृदयरेख अथवा अणु देवताओं का समावेशन स्थापन को न्यास कहते हैं।

**न्यास का प्रकार** य विद्वान् हैं—मन से, संन्यास से, मंत्र से, बसों से, मन से—शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों में देवता, मंत्रार्थ, तत्त्व आदि की विधि की मानना को बाती है। भिन्न भिन्न अंगों के अर्थ के लिए भिन्न अंगुणियों का प्रयोग किया जाता है।

<sup>१</sup> हरनाम प्रदीपिका ३।१२२ १२३

<sup>२</sup> हमके लिए देविन्दु कथावत् का साधनांक पृ० ३३२

**संन्यास से**—कुछ ग्रन्थों में इस बात पर जोर दिया गया है कि केवल संन्यास के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति और मंत्रसिद्धि हो जाती है। जब न्यास ठिक् हो जाता है तो भगवान् से एकद्वार हो जाता है।

**मन्त्र से**—प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक पद के और प्रत्येक अक्षर के अलग-अलग श्रुति, देवता, छन्द, बीज, शक्ति और कीलक होते हैं। भगवान् शंकर से बिल श्रुति ने जो मंत्र प्राप्त किया था वह मंत्र उठी श्रुति के नाम पर प्रसिद्ध हो गया। मंत्र का देवता जीवन का संवालाक होता है, वही समस्त मानसों का प्रेरक माना जाता है, उठी को हृदय का अभिधरणी मी कहते हैं और हृदय में ही उसके स्वास का स्थान है।

**बर्षों से**—बर्षों के स्वास से बर्षमयी सृष्टि का उत्थोप होकर परमात्मा के स्वस्व का ज्ञान और प्राप्ति हो जाती है। बर्षों के स्वास और इनकी बर्षात्मकता के पान से इनका बाह्यविक रूप दृष्टिगोचर होने लगता है।

इस प्रकार बितने मी स्वास हैं उनका एक विज्ञान है। जब स्वास किया जाता है तो वह शरीर और अंतःकरण को दिम्ब बनाकर स्वयं ही अपनी महिमा का अनुभव कर देता है। सृष्टि के गंभीर रहस्यों की दृष्टि से स्वास मी एक अतुलनीय साधन है। दिम्बता को खत्म करने के लिए बर्षास्वास अथवा मंत्रस्वास सर्वोत्तम साधनों में से एक है। पीठस्वास, योग पीठस्वास, तत्वस्वास आदि के द्वारा मी साधक साधना का अंतिम लक्ष्य पर पहुँच जाता है। बालविक उत्प का साक्षात्कार हो जाता है इस लिए साधक को विदित हो जाता है कि जब कुछ भगवान् ही है, उनके अतिरिक्त और कोई उपा नहीं है।

**शक्तिपात**—शक्तिपात<sup>१</sup> का अर्थ साधारणतया भगवत्<sup>२</sup> अनुग्रह लिखा जाता है। तंत्र ग्रन्थों में इस भगवदानुग्रह या शक्तिपात की साधनों के विविध प्रकार विवेक हुए हैं।

कुछ आचार्यों में ज्ञानोदय<sup>३</sup> को शक्तिपात का मूल कारण माना है। उनका कहना है कि ज्यों से जमी शक्तिशा नहीं है। उपाय क्योंकि कर्म और उनके फल में अन्तस्व दोर बना ही रहेगा। इसलिए ये लोग ज्ञान से ज्यों का धन स्वीकार करते हैं।

<sup>१</sup> कथसल के साधकों में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कबिराम लिखित 'शक्तिपात रहस्य' शीर्षक निबन्ध पृ. ८९

<sup>२</sup> वही—पृ. ८७

कुछ दूरे आचार्य शान का शक्तिराज का बालविक कारण मही मानते । उनका अनुसार कर्मशास्त्र<sup>१</sup> से ही शक्तिराज का उदय है । कर्मशास्त्र शास्त्र में शापक का ही समान बलवाले, विष्णु कर्मों के पारस्परिक प्रतिबंध की ओर ध्यान देना पड़ता है । एनी प्रथम कुछ द्वैतमतवाचक<sup>२</sup> तार्किक ज्ञान और कर्मशास्त्र में से किसी को भी शक्तिराज का कारण स्वीकार नहीं कर सकते । ये लोग मलनाक को शक्तिराज का कारण मानते हैं । इनका मत है कि शक्तिराज बिना मलनाक हुए किसी प्रथम ही ही नहीं उदय है । मंत्रागम को उद्धृत करते हुए वे लिखते हैं कि “मलनाक बिना नू दीया कर्मस्य के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का हेतु बनती है ।”

कुछ आचार्य<sup>३</sup> लोग शक्तिराज को निरपेक्ष और स्वतंत्र मानते हैं । इनका मत है कि शक्तिराज के लिए ज्ञान, कर्म शास्त्र, मलनाक आदि किसी ची भी आवश्यकता नहीं पड़ती । शेष दर्शन के प्रसंग उल्लेख देव<sup>४</sup> में भी शक्तिराज की निरपेक्षता पर बल देते हुए लिखा है—“हे मगवान् तुम शक्तिराज के समय अर्थात् शीघ्र पर नूतन कर्म के समय प्रायः प्रातः हमें पर भी कभी-कभी पात्र अपात्र का विचार नहीं करत” इत्यादि । मंत्रागम के टीकाकार<sup>५</sup> अनिरुद्ध में भी शक्तिराज के निरपेक्षता का कभी विचार का ही समर्थन किया है ।

### निर्गुण ब्राह्मणपारा पर शैवशासन तन्त्रों का प्रभाव

तंत्रों पर संक्रमण का बड़ा स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है । उक्त ही अभिप्रेत विशेषार्थ संत विचारबाध में किसी न किसी रूप में अंतर्निहित हुई हैं । संक्रमण की सबसे प्रमुख विशेषताएँ गुणों की अतीतमक अभिव्यक्ति, वादावादीविषय शास्त्रवाद, प्रकृत निवृत्ति मार्गों का समन्वय, गुणवाद, ज्ञानवाद, परमेश्वर, वैश्वानर, दिव्या शक्ति, विराट, खरन मानना, मंत्र पौरुष, कुपटलनी शास्त्र, मादरिदु शास्त्र, द्वैतार्थ निवृत्तशास्त्र, द्वैतार्थशास्त्र, माया मातृशक्तिवाद, इत्यदिना मातृशक्ति पूजा आदि हैं । तंत्रों में इन सबको किसी न किसी रूप में अंतर्निहित की देखा की है ।

संक्रमण के उदय संत लोग भी अपने मत को गुण और खलपूरुष बनाये रखना पारंगत है । संत दूतनदास ने लिखा है—“हमारा संक्रमण परम गुण है, उक्त मत परम मातृशक्ति का ही मही किया जाना चाहिए । उक्तों में से उक्त प्रचार दिव्य

<sup>१</sup> बही—पृ० ८०

<sup>२</sup> बही—पृ० ८०

<sup>३</sup> बही पृ० ८०

<sup>४</sup> " " ८०

<sup>५</sup> " " ८० का पुस्तक

रक्षना चाहिए जिस प्रकार विषया के पाप को छिदाया जाता है। अपने मत को गुप्त रखने के लिए तांत्रिकों के सदृश संतों को भी प्रतीक्ष्यमक माया का प्रयोग करना पड़ा है। उदाहरण के लिए हम गुलाब साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं :—

ससि औ सूर पवन भरि मेला ।  
 दृढ़ करि आसन बैठ अपेक्षा ॥  
 उलटै नाख गगन पर जाये ।  
 बिगसे क्यसु चंद हरसाये ॥

माया की प्रतीक्ष्यमकता के अन्वय<sup>१</sup> विविध कोटि के उदाहरण अभिप्रेक्ष्य के प्रसंग में दिने जायेंगे। संतों की वाद्याचारों के विरोध की प्रवृत्ति भी संतों में पाई जाती है। संत दादू<sup>२</sup> ने स्पष्ट लिखा है—“मेरा स्वामी मेरा डंढर से नहीं रीझता है।” संतों पर तांत्रिकों के साम्यवाद का पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। तांत्रिकों का साम्यवाद सामाजिक साम्यवाद है। वे बर्खामेद में विश्वास नहीं करते थे। सन्ही के अनुकरण पर संतों में भी बर्खामेद का विरोध किया है। संत परजदास<sup>३</sup> ने बर्खामेद का खंडन करते हुए लिखा है कि संत लोग बर्खामेद और कर्मकार दोनों में विश्वास नहीं करते हैं। संतों की प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों के समन्वय की प्रवृत्ति की अलक्ष्य भी संतों में दिखाई पड़ती है। संत लोग यह त्यागकर वापस आने में विश्वास नहीं करते थे। उनका प्रबोधन मन के विपर त्यागने मात्र से था। यह त्यागने से नहीं। कबीर<sup>४</sup> कहते हैं “मन में रहने से क्या काम यदि मन

<sup>१</sup> सन्तबानी संग्रह भाग २ पृ० १४६ पर निम्नलिखित पंक्तियाँ :—

दृक्म यह मत गुप्त है प्रगट न करी बखान ।

देते राहु विपाव करि कैसे विषया जीबाव ॥

<sup>२</sup> गुलाम साहब की बानी पृ० २७

<sup>३</sup> (दादू) के नू समझे ली कहीं, साया एक कर्मज ।

दाल पाँव तत्रि मूज गहि, बजा दिगनाये भेष ॥

दादू सनु बिन लार्ह ना मितै, भावै भेष बधाइ ।

भावे करवत डरब-भुगि, भावे तीरव जाइ ॥ दादूदास की बानी भाग २

पृ० १०

<sup>४</sup> बरनदास की बानी भाग २ पृ० ११ कारि बरन आग्रज बाँही बरी कर्म ना कारै ।

<sup>५</sup> क. भा० पृ० १ ८ बबत्रि बने बसों बाइए, जा ली मजहु न तत्रे विचार ॥

से विचार नहीं बुर हुए हैं।<sup>१</sup> उनका लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना या कोई बह धर में रहकर प्राप्त हो या बैरागी बनकर ।

×

×

×

तांत्रिकों के वर्य संतों को मिथ्या तर्क और माद विवाद से भ्रष्टा थी। दातू ने स्पष्ट किया है कि माद-विवाद और तर्क किसी से नहीं करना चाहिए। कबीर<sup>२</sup> तो तर्क करनेवालों की बुद्धि को स्थूल मानते थे।<sup>३</sup> संत लोग तांत्रिकों के रहस्यवाद से भी प्रभावित हुए थे। तांत्रिकों का रहस्यवाद साधनरूपक रहस्यवाद है। उन्हीं को कुछ ज्ञान क्रियात्मक रहस्यवाद भी कहते हैं रहस्यवाद के प्रसंग में साधनरूपक रहस्यवाद का विलुप्त विवेचन किया गया है।

संतों पर संतों का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव मंत्र चैतन्य सिद्धांत का है। संतों का मुक्तिरत उन्हीं सिद्धांत पर ही आश्रित है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं मंत्र मन के अनुकार आत्मा मंत्र या शब्दरूपणी है। जब से उन्हीं मंत्र रूपणी आत्मा को जगाने का प्रयत्न किया जाता है। संतों ने अक्षराज्ञान और मुक्तिरत पर जो इतना अधिक बल दिया है उक्तम रहस्य नहीं है। तांत्रिकों की माद बिंदु वाचना और कुछ कृत्रिमता साधना ने संतों के साधना पथ को प्रभावित किया है। दृढपणा साधना के प्रसंग में इनका विलुप्त उल्लेख किया गया है।

संभ्रम एक साधना प्रयत्न मांग है। साधना सिद्धांत का अनुगमन करती है हनीतिष्ठ एक मन में सिद्धांत और साधना को समान माह से महत्त्व दिया गया है। संभ्रम का इस विरोधता को संतों ने कर्मनी (सिद्धांत) और कर्मनी (साधना) को समान माह से महत्त्व देकर रचना किया है—संत परमदास लिखते हैं—'कर्मनी (साधना) के बिना कर्मनी (सिद्धांत) का थोड़ा उन्हीं प्रकार कोई महत्त्व नहीं होता बिल प्रचार शब्द के बिना रहनी<sup>४</sup> का।

द्वैतार्थ विमर्शसाद तो संतों को मांग है ही। दरिया साहब लिखते हैं<sup>५</sup>—

का निर्गुण का मर्गुण कहिये से तो दोऊ ने भ्रिना ।

एक सिद्धांत के प्रतिगारन में संतों का तांत्रिकों से वैरणा मिथी दागी ।

तीज ज्ञान नहीं नहीं पर तंत्रिक अज्ञेताद से भी प्रभावित दिगारि रहते हैं ।

<sup>१</sup> दर-विचार काटू लो नारी । मंत्र दातू की बाणी पृ० १६

<sup>२</sup> कर्म कबीर ताद है सापे निवही मति है मोटी ४०० पृ० १०५

<sup>३</sup> बाणी बिल कर्मनी हनी उन्हीं मति बिल कर्मनी—बराबरता की बाणी भाग २ पृ० ३८

<sup>४</sup> दरिया साहब के पुने हुए पद पृ० ४९



तांत्रिक अद्वैतवाद शंकर अद्वैतवाद से योका मित्र है। शंकर केवल ब्रह्म तत्त्व का अस्तित्व मानते हैं। उसके प्रतिरिक्त उनकी दृष्टि में सब कुछ मिथ्या है। इसीलिए उनका अद्वैतवाद केवल द्वैतवाद की कट्टासाया है। तांत्रिक लोग इसके विपरीत ब्रह्म या शिवतत्त्व को केवलसा रूप नहीं मानते। उनका विश्वास है कि परम शिव में शिव और शक्ति उही तरह से अंतर्निहित रहते हैं जिस प्रकार एक बीज में दो दालें। उनका यह भी विश्वास है कि शिव में ब्रह्म भी अंतर्निहित रहता है। इस बात का सप्लीकरव उन्होंने अग्नि और अमृतत्व तथा पूत और मुगम्ब के उदाहरणों से किया है। जिस प्रकार अग्नि का अमृतत्व भी पुष्प की मुगम्ब क्रमणः अग्नि और पुष्प के लक्षण स्वरूप होते हैं उही प्रकार शिव में अंतर्निहित रहनेवाली ब्रह्मत्त्वा तत् रूप ही मानी जायेगी। इस सिद्धांत को तांत्रिकों का स्वकार्यवाद कहते हैं। कुछ संत लोग तांत्रिकों के इन सिद्धांतों से प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं। संत सुंदरदास ने तांत्रिकों के अद्वैतवाद का अनुकरण करते हुए उनकी के द्वारा प्रकृत बीज के लक्षण से अद्वैतवाद की अभिव्यक्ति की है। वह लिखते हैं—जिस प्रकार अर्धनारी गटेरवर का रूप एक होते हुए भी उभयात्मक है तथा जिस प्रकार एक बीज में दो दालें होती हैं ठीक उही प्रकार ब्रह्मसत्त्व उभयात्मक दिखाई देने पर भी अद्वैतरूप है। इसी संत ने एक दूसरे स्थान पर ब्रह्म और ब्रह्म के संबंध पर संतदर्शनानुसृत विचार प्रकट किये हैं। वह लिखते हैं—“ब्रह्म में ब्रह्म ही एक अंतर्निहित रहता है जिस प्रकार पूत में मुगम्ब”।<sup>१</sup>

संतों की माया सम्बन्धी धारणा तांत्रिकों से मेल नहीं खाती है। दूँदने पर तांत्रिकों की माया की केवल एक ही विशेषता की भ्रमक संता पर मिलती है वह है उतथी मयुणा। संत लोग भी माया को अत्यधिक मयुर मानते थे। कबीर ने उसे भीती कहा है—

बह लिखते हैं<sup>२</sup>—

मीठी-मीठी माया लभी नहीं आई ।  
अज्ञानी पुरुष को भोसि भोसि ग्याई ॥

<sup>१</sup> जिस बीज में दो दालें नाम वाले हैं,  
एक बीज में दो दालें नाम वाले हैं ।

संते ही सुंदर वामु नू है तू ही ब्रह्म—सुंदरदास पृ० ११९

<sup>२</sup> ब्रह्म में ब्रह्म वह कैसी विधि हैमिपण ।

कैसी विधि हैमिपण क्यती मदीर में ॥

सुंदरदास पृ ११९

<sup>३</sup> क० प्र पृ० ११९

तांत्रिकों की इस सम्पत्ती कल्पना से भी संत साग प्रभावित प्रतीत हात हैं। तांत्रिकों के ऋग पर ही उन्होंने भी इस शब्द का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार संतों में तांत्रिकों के और भी बहुत से सामान्य सिद्धांतों की क्षया देखी जाती है। निरूपण ही उन्हें तांत्रिकों से पूरी-पूरी प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

## घोड़ तंत्र साधना और हिन्दी के निर्गुण यौकवि

बौद्धतांत्रिकों की विविध शाखाएँ और उनके प्रमुख सिद्धान्त—

मध्यकाल में उत्तरी भारत में बौद्ध तांत्रिकों का बड़ा प्रभुत्व था।<sup>१</sup> इस भूभाग के कोने कोने में बौद्ध तांत्रिकों की साधना पंजी हुई थी। इन बौद्ध तांत्रिकों ने सामान्य जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। संत साग इसी सामान्य जनता से सम्बन्धित थे। यही कारण है कि उनपर बौद्ध संतों का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इसलिए यहाँ पर हम बौद्ध तांत्रिकों के मत का स्वरूप विवेचन कर देना चाहते हैं।

मंत्रयान—बौद्ध तंत्र मंत्रों का उद्भव महायान उत्तरी शाखाओं में हुआ।

मंत्रयान में हुआ। यों तो तंत्र-मंत्र की हल्की भणक प्राचीन बौद्ध साहित्य में भी मिलती है किन्तु तंत्र मंत्र का उद्भव महायान की मंत्रयान शाखा से स्पष्ट दिखाई दिया। महायान के बाग्यार सम्प्रदाय में कुछ दिन तक साधारण जनता का ध्यान में उलझाये रखा, किन्तु अब उत्तरे योग्यार सम्प्रदाय के कठिन सिद्धांतों का प्रवेश होने लगा ता साधारण जनता की अभिरुचि तबसे होने लगी। त्रिचक परिणामस्वरूप मंत्रयान का उद्भव हुआ। इस मंत्रयान में तंत्र-मंत्र तथा मुद्रा मंडल आदि को विशेष महत्त्व दिया गया है। इस सम्प्रदाय का सबसे प्रथम ग्रंथ मंत्रु भीमूक कल्प माना जा सकता है। इसका रचना-काल प्रथम या दूसरी शताब्दी ई० माना जाता है।<sup>२</sup>

इससे स्पष्ट है कि मंत्रयान का उद्भव दूसरी शताब्दी के आठ-बारह वा पचास वा। किन्तु मंत्रों के गूढ़ रहस्यों का प्रचार साधारण जनता में न हो सका। परिणाम यह हुआ कि मंत्रयान को अपनी वेष्ट-भूत बदमनी पड़ी और उठे उन सामान्य जादू-टोना, तंत्र-मंत्र तथा यौनमूलक यौगिक साधना आनानों पड़ी, जिनकी प्रतियोग सामान्य जनता में रहने ही से थी। इन लोगों ने इतना कसरत किया कि इन दूर्ध्व प्रयत्नित तंत्र-मंत्र, जादू-टोने, यौन यौगिक प्रक्रियाओं आदि का बौद्धिक विचारधारा न अनुसंधान करके प्रभुता कल्पना का प्रभाव किया। मंत्रयान का यह नया रूप है ब्रह्मरान

<sup>१</sup> इण्डो-एशियाटिक सोसायटी (१९३२) पृ० २१९

<sup>२</sup> बौद्ध धर्म की मूलिका—बलदेव उपाध्याय पृ० ४२५

<sup>३</sup> इण्डो-एशियाटिक सोसायटी बुकिंग्स—द्वारा मुद्रा पृ० १९

<sup>४</sup> साधन शास्त्र—भाग १ (मूढिका)

कहलाया।<sup>१</sup> निर्गुणियों सतों पर ब्रह्मपान की बहुत-सी बातों का पूरा प्रमाण दिखाने पड़ता है अतएव हम ब्रह्मपान पर थोड़ा विचार से विचार करेंगे।

**ब्रह्मपान**—ब्रह्मपान मत का उद्भव किस प्रदेश में हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग दक्षिण के भीरुवंत को इसका उद्भवस्थान मानते हैं। उनका कहना है कि मंत्रवान का पृथिवी चक्र परिवर्तन श्रीबाल कंडक में हुआ था। भीरुवंत<sup>२</sup> इसी वाग्य कंडक के पाठ है। मंत्रवान ब्रह्मपान की ही एक शाखा है इसीलिए इसी स्थान पर उसका जन्म हुआ होगा। कुछ दूसरे विद्वानों की धारणा है कि ब्रह्मपान का जन्म हिमालय की तराइयों में हुआ था किंतु इस मत के समर्थक उपयुक्त तर्क नहीं दे पाते हैं। हमारी धारणा भी यही है कि ब्रह्मपान का उद्भव दक्षिण के भीरुवंत के ही आठ-गाठ हुआ था। क्योंकि वहाँ पर आज भी ब्रह्मपानी थापना प्रवृत्ति का प्रचार विन्हा उल्लस्य है और आज भी वहाँ बहुत से ब्रह्मपानी थापक थापना करते रहते हैं।

ब्रह्मपान का साहित्य संस्कृत व लोकात्याय वेदों में मिलता है। संस्कृत में लिखे हुए कुछ ब्रह्मपानी मंत्रों के नाम व पठे इस प्रकार हैं—

१—ईश्वर तम, (शैलक पद्मवज्र) २—गुण्य सिद्धि (शैलक पद्मवज्र) ३—प्रज्ञो पाप विनिरप सिद्धि (शैलक अर्नगवज्र) ४—कुलकुल्ला थापन (इंद्रमूर्ति) ५—बाल सिद्धि<sup>३</sup> (इंद्रबीठ) ६—अद्वयसिद्धि (लक्ष्मीकन्य) ७—अपठत मावातुगत तल सिद्धि (तद्वज्रवेगिनी) ८—तद्वज्रसिद्धि (दोबी) इत्यादि।

लाकृमाया में ब्रह्मपानी सिद्धांतों की प्रथिद्य करनेवाले आचार्य कवि ८४ सिद्धों के नाम से प्रथिद्य हैं। इन बीरुवंती सिद्धों में तद्वया, तद्वया, तुरिया, पद्मवज्र, ज्ञानधर वा, अर्नगवज्र, आदि विशेष प्रथिद्य हैं। इन बीरुवंती सिद्धों की कुछ रचनाएँ 'बीरु गान और दोहा नामक ग्रंथ में संग्रहित हैं। इनका स्वतंत्र प्रकाशन भी हो चुका है<sup>४</sup>।

<sup>१</sup> (क) बीरु-व्रतान मीमांसा बकरेश व्याख्या पृ० ७२८

(ख) एन इन्डोलोगिकल ट्रांसिक् बुद्धि जय - दाय पुत १९५० पृ०

<sup>२</sup> परातार्य निबन्धावली—शाहुल सांस्कृत्याचन पृ० १४०

<sup>३</sup> इंद्रमति निबिध २९ पन्नों की एक सूची डा० दिनवताय महाचार्य ने दो ब्रह्मपान नामक ग्रंथ की भूमिका पृ० १३ पुर दी है।

<sup>४</sup> (क) दोहाकोष—प्रबोधचन्द्र भाग्यी

(ख) मीरुसिद्धि का दि किटाकन पृथासत आदि दि अंकुड अवापदाय कनकता। सूचीबद्धिटी प्रेस।

(ग) हाकपादि—डी० एन० बीपरी

ब्रह्मज्ञान मठ भी कई उच्चतम शाखाओं में विभक्त है। काशीदया<sup>१</sup> सम्प्रदाय में अपने श्रीचक्रमंदार तंत्र की भूमिका में ब्रह्मज्ञान के ६ उपविभाग बताए हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—क्रियापान, उपासकब्रह्मज्ञान, योगतंत्रपान, फिर मोक्षतंत्रपान के भी ३ विभाग दिए हैं—महायोगतंत्रपान, अनुसूक्ततंत्रपान, अतिव्यन्त्रपान। कुछ दूसरे विशाल मंत्रज्ञान के ४ विभाग मानते हैं। वे क्रमशः क्रियातंत्र, पर्याप्ततंत्र, योगतंत्र और अनुसूक्त<sup>२</sup> तंत्र हैं। बीबेल साह्य<sup>३</sup> ने उक्त चार विभागों में से प्रथम दो को निम्नतम और अंतिम दो को उच्चतम कहा है। कुछ दूसरे विशाल<sup>४</sup> ब्रह्मज्ञान के तीन विभाग मानते हैं—१—मंत्रपान, २—सहजपान, ३—अलक्षणापान। हमारी समझ में बौद्ध तंत्रमंत्र का विशुद्ध स्थूल रूप से तीन धाराओं में हुआ। पहली धारा मंत्रपान के नाम से प्रसिद्ध हुई। दूसरी धारा ब्रह्मज्ञान के नाम से प्रचलित हुई। बाद को इसी ब्रह्मज्ञान से सहजपान का प्रवर्तन<sup>५</sup> हुआ। बौद्ध तांत्रिकों की एक बौद्ध धारा भी है। यह है अलक्षणापान की। इसका उदाहरण<sup>६</sup> ने ता नापरंत को भी बौद्ध तांत्रिकों की ही एक शाखा कहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नापरंत बौद्ध तांत्रिकों से बहुत अधिक प्रभावित है किन्तु उसे हम बौद्धतंत्र मंत्रों के अंतर्गत नहीं ले सकते। क्योंकि नापरंत में बौद्ध सिद्धांतों की अपेक्षा और और योगदर्शन की बातों की प्रतीति अधिक मिलती है। अब हम प्रथमः मंत्रपान, ब्रह्मज्ञान, सहजपान और अलक्षणापान आदि के प्रमुख तंत्रों पर विचार करेंगे।

मंत्रपान और उसके प्रमुख तंत्र—<sup>७</sup> तन्त्र रत्नावली<sup>८</sup> नामक ग्रंथ में महाज्ञान के ३१ विभाग दिए गए हैं—तंत्रविभिन्न और मंत्रपान। मंत्रपान के सिद्धांत पाठे कठिन समझे जाते हैं, क्योंकि इनमें मंत्रों के उद्देश्यों का बखान किया गया है। तन्त्र रत्नावली में उल्लिखित महाज्ञान का उच्चतम शाखा मंत्रपान साक्ष में मंत्रपान के रूप में विद्यमान हुआ। यह मंत्रपान बौद्ध तंत्रों का प्राथमिक रूप है। बाद में इसी से ब्रह्मज्ञान, अलक्षणापान और सहजपान का उदय हुआ। मंत्रपान के मंत्रों का

<sup>१</sup> दयाद्वारा तंत्र तांत्रिक बुद्धि—रास गुप्ता—पृ० ७१ का अनुवाद

<sup>२</sup> वही २०

<sup>३</sup> वही ११

<sup>४</sup> वही ११

<sup>५</sup> वही ११

<sup>६</sup> काशीद्वारा—पृ० ११

<sup>७</sup> तंत्र का मंत्रपान पृ० ११

<sup>८</sup> काशीद्वारा—पृ० ११

उपलब्ध होने विरोध रूप से भी मंत्रमूलकल्प गुण समाकृत्य तथा लघुफल अर्थात् उच्च की विमलाप्रभा टीका में मिलते हैं<sup>१</sup> ।

प्रारम्भिक बौद्ध धर्म अपने नैतिक नियमों के कारण सामान्य जनता को योका फ़ोरे प्रतीत होने लगा था । सामान्य जनता धर्म के बाह्य स्वस्वों में ही अपनी रक्षि रखती है । सामान्य जनता की रक्षि परिदृष्टि के रूप में ही महायान की मंत्रवान शाखा में मंत्र मुद्रा, मन्त्राल आदि का प्रचार बढ़ा । धीरे-धीरे इसमें बौद्ध धार्मिक प्रक्रियाएँ भी प्रवेश पाने लगीं । इन सबके समावेश से बौद्ध मूल में तंत्र मूल का रूप प्रारण कर लिया । यों तो कुछ विद्वानों की<sup>२</sup> धारणा है कि बौद्ध धर्म में मगवान् बुद्ध के समय में ही धार्मिक प्रक्रियाओं का समावेश हो चला था । कुछ दूसरे विद्वानों का<sup>३</sup> मत है कि बौद्ध धर्म में तांत्रिक तत्त्वों की सर्वप्रथम प्रविष्ट महाविद्वान्<sup>४</sup> अर्थात् के समय में हुई थी । कुछ दूसरे विद्वान् बौद्ध धर्म में धार्मिक प्रक्रियाओं के समावेश का उत्तरदायी नागार्जुन को उल्लेखते हैं । जो भी हो बीच के रूप में बिना तांत्रिक तत्त्वों का अस्तित्व बौद्ध धर्म में पहले ही से था वह समय पाश्च म्हावान की मंत्रवान शाखा के रूप में प्रकटित हुआ । मंत्रवान की सबसे प्रधान विशेषता उल्लेख मंत्रत्व है । इन मंत्रों का विचार इत सम्प्रदाय में विविध रूपों में हुआ । जैसे बरणी, बीजमंत्र, उपहरण, रक्षा आदि बीजमंत्र एक अक्षर के मंत्र होते हैं । ये किसी देवता विरोध के प्रतीक माने जाते हैं । जैसे 'घा' देवत्व का 'प' को अयोग्य का और 'ल' को अयोग्य शक्ति का प्रतीक रहते हैं । इसी प्रकार 'घ' स्वर को प्रकाश या शुभता का भी प्रतीक माना गया है । इत सम्प्रदाय वालों का मत है कि इन बीच मंत्रों की देवता की मानना धीरे-धीरे शुभता को देवता के रूप में परिणत कर देती है<sup>५</sup> । अर्थात् ब्रह्म के महागुण प्रकाश नामक मंत्र में लिखा है कि शुभता से बीजमंत्र निष्कृत हैं और बीजमंत्र से देवताओं का विकास होता है ।

‘शुभतो बोधितो बीजम् बीजान् बिम्बं प्रजायते’

कुछ विद्वान्<sup>६</sup> तो इन बीजमंत्रों के विकास के मूल में एक पूरा इतिहास मानते हैं । इसके विपरीत कुछ विद्वान् इन बीच मंत्रों की निरर्थकता को ही उनकी सार्थकता

<sup>१</sup> बरी—पृ०

<sup>२</sup> एन इरोकवासन इ बुद्धिम् इमोदरिम्—विचरताय महावार्त्त पृ० ४८

<sup>३</sup> एन इरोकवासन इ तांत्रिक बुद्धिम्—वास गुप्ता पृ० १२

<sup>४</sup> बरी पृ० ११

<sup>५</sup> एन ब्रह्म संमत् पृ० ५०

<sup>६</sup> एन इरोकवासन इ तांत्रिक बुद्धिम्—वास गुप्ता पृ० ११

मानते हैं।<sup>१</sup> बसों का मंत्र के रूप में ग्रहण करना ही मंत्रवान की विशेषता रही है। एत० एत० दास गुप्ता ने इसके मूल में मीमांसकों का शब्दवादी सिद्धांत माना है।<sup>२</sup> मीमांसकों का कहना है कि शब्द अनादि और अनंत तथा विरक्तन होता है। लोको में बसों के द्वारा इस चिरंतन शब्द की अभिव्यक्ति हुआ करती है। बीचमंत्र इन्हीं बसों के द्वारा प्रसंग शब्द बस का वीचक करते हैं इसलिए जेठे बर्य होते हैं वेता ही उनका महत्त्व होता है।

मंत्रवान का दूसरा प्रसिद्ध आक्षेपक तत्त्व मुद्रा है।<sup>३</sup> मुद्रा का सामान्य अर्थ शरीर, हाथ, पैर आदि की विशेष स्थितियों से लिया जाता है। जिस प्रकार मंत्रतत्त्व शब्द शक्ति के रहस्यों से अनुप्राणित रहता है, उन्हीं प्रकार मुद्रा तत्त्व का सम्बन्ध शरीर के रहस्यों से परिपूर्ण रहता है। मंत्रवान का तीसरा तत्त्व मंडल<sup>४</sup> माना जाता है। मंडल का अर्थ रहस्यपूर्ण गोलाकार रूप लिया जाता है। सायक लोग विविध प्रकार के मण्डलों के सहारे जो बानू-जोने मैथी खस्यारमक शक्ति रखते थे, विविध प्रकार की छिटिया प्राप्त करते थे। संघेरे में मंत्रवान के प्रमुग तत्त्व यही हैं। आगे चलकर इन तारों में कुछ नये तारों का और समानेश हुआ और आगे ये ब्रह्मवान के नाम से नये सम्प्रदाय का रूप में विकसित हुए।

ब्रह्मवान मंत्रवान का विकसित और परिवर्धित रूप कहा जा सकता है। मंत्रवान में जब ब्रह्म की पारलया का समानेश हुआ तब उगे ब्रह्मवान कहा जाने लगा। ब्रह्म का अर्थ है शून्यता। ब्रह्मवान में तब कुछ पूर्ण शून्य रूप माना जाता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए एत० बी० दास गुप्ता<sup>५</sup> ने अपने 'सांख्य बुद्धिम्' में लिखा है कि ब्रह्मवान की सबसे प्रमुग विशेषता जो कि उसके नाम की कार्यवशा को प्रकट करती है वह ब्रह्म की चारवा है। ब्रह्म का अर्थ शून्यता होता है।<sup>६</sup> ब्रह्मवान में तब कुछ पूर्ण शून्य रूप माना जाता है। देवता की पूजा करते समय उभय ब्रह्म स्वरूपी माना जाता है। उन्हीं मूर्तियों भी ब्रह्म स्वरूप मानी जाती है। उनका पुजारी भी ब्रह्म कहा जाता है। पूजा मंत्रों को भी ब्रह्म कहते हैं। साधना विधि भी ब्रह्म होती है। यहाँ तक कि तब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म होता है।

<sup>१</sup> वाचिसन्ध भूमि—इच्छारीवाचिसर ( ) द्वारा सम्पादित की भूमिका

<sup>२</sup> चिकित्सकिक एमेड—एत० एत० दास गुप्ता ने इंदोरेकान दू सांख्य चिकित्सकी नामक लघु किताब में।

<sup>३</sup> आध्यात्मिक विचारम अन्तः—दास गुप्ता पृ० २३

<sup>४</sup> बरी पृ० २३

<sup>५</sup> एत इंदोरेकान दू सांख्य बुद्धिम्—दास गुप्ता पृ० ८०, ८१

<sup>६</sup> अक्षरकाल समय पृ० ३०

१. ब्रह्मवान के प्रमुख देवता का नाम ब्रह्मरूप है। इन्हें विरहित मातृतात्मकरी माना गया है।<sup>१</sup> ब्रह्मवानी प्रथो में ब्रह्मरूप का वर्णन बहुत कुछ उसी ढंग पर किया गया है जैसा कि उपनिषदों में आत्मा या ब्रह्म का वर्णन मिलता है।<sup>२</sup> महावानीयो के बोधिविषय की धारणा ने भी ब्रह्मवान को प्रभावित किया। बोधिविषय शून्यता और कर्मका की मिश्रित अवस्था बनी गई है।<sup>३</sup> इसको पूर्व आनंद की अवस्था कहा गया है। बोधिविषय की अवस्था ने ब्रह्मवान के योगक्षेत्र में स्त्री और पुरुष के मिलन की आनंददावस्था का रूप धारण किया और प्रज्ञा तथा उपाय की स्थापना का प्रयत्न हुआ। महावानी शून्यता प्रज्ञा के रूप में परिणत हुई और कर्मका ने उपाय का रूप धारण किया।<sup>४</sup> इस प्रकार ब्रह्मवान में शिव और शक्ति की मुद्रागावस्था का प्रज्ञा और उपाय के रूप में वर्णन हुआ।<sup>५</sup> ब्रह्मवानीयो ने अपने बोधिविषय को बोधिविषय का पर्याय माना। उसे प्रज्ञा और उपाय का धुगनद रूप कहते हैं।<sup>६</sup> बोधिविषय में पाँच प्रकार के तान की अवस्थिति मानी गई है। इन पाँच प्रकार के तानों से ही पाँच प्रकार के प्यानों का प्राबुर्भाव माना गया। इन्हीं पाँच प्रकार के पाँच प्यानों के आधार पर पाँच प्यानी हुओं की कल्पना की गई।<sup>७</sup>

प्रज्ञा और उपाय का योग क्षेत्र में नाडीपरक कर्म लिया गया।<sup>८</sup> प्रज्ञा रक्षा का प्रतीक और उपाय सिंगला का वाचक माने गये हैं। इन दोनों के मध्य में स्थित सुमुग्ना नाडी सुगनद या महासुगन का प्रतीक बनी गई और योगिक स्थापना विभिन्न कलाकी गई। इसके फलस्वरूप ब्रह्मवान में एक ओर तो नाडी स्थापना का विप्रस हुआ और दूसरी ओर उसमें तीन योगिक स्थापनाओं का उदय हुआ। उपाय योगी का प्रतीक माना गया और प्रज्ञा (योग स्थापना में काम धाने वाली स्त्री) मुद्रा<sup>९</sup> का ब्रह्मवान स्थापना पर शिव शक्ति तंत्रियों की पंचमूख स्थापना का भी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार अत्यन्त संक्षेप में ब्रह्मवान की यही रूपरेखा है।

<sup>१</sup> इन हरोचक्राव दृ तांत्रिक बुद्धिम्—दास गुप्ता पृ० ८०

<sup>२</sup> वही पृ ८१

<sup>३</sup> वही—

<sup>४</sup> आध्यात्मिक और रिष्मिजस कर्मस—दास गुप्ता—पृ० १६

<sup>५</sup> वही—पृ० १०

<sup>६</sup> वही—पृ ११

<sup>७</sup> इन हरोचक्राव दृ तांत्रिक बुद्धिम्—दास गुप्ता—पृ० १२५

वही—पृ०—८४

<sup>८</sup> वही—पृ० ११८

<sup>९</sup> वही—पृ० ११३

सहजयान—ब्रिज प्रकार ब्रह्म की धारणा लेकर ब्रह्मज्ञान का उदय हुआ या उसी प्रकार सहज का सिद्धान्त लेकर सहजयान का प्रवर्तन हुआ। ब्रिज प्रकार ब्रह्मज्ञानी जब कुछ ब्रह्म रूप मानते थे उसी प्रकार सहजयानी लोग समस्त वस्तुओं को सहज रूप समझते थे। हे वर्णन में लिखा है—

“तराम्ना सहज जगत सद्य सहज स्वरूपमुच्यते  
स्वरूपमेव निवाणं विशुद्धाकारं चेतसः”

अर्थात् समस्त संसार सहज रूप है। सहज ही सबका स्वरूप है। शुद्ध विद्यमानों के लिए सहज ही निर्वाण रूप होता है। यह सहज तत्त्व शरीर में होने हुए भी शरीरम नहीं बना का भक्तता। शरीर में यह महासुख रूप में विद्यमान रहता है। योग क दास इनकी अनुभूति की जा सकती है किन्तु फिर भी यह शरीर से परे तत्त्व है। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो उतानिपदों पर आत्म दास ही सहजयानियों का सहज तत्त्व है। इनकी यह सहज धारणा जहाँ कुछ अर्थों में उतानिपदों से प्रभावित प्रतीत दम्भी है वहीं यह महायान क विठ्ठलवाद, योगाचार, शूद्रवाद और सिद्धांतों से भी पृथक्ता प्रभावित है। इन सहज तत्त्व का सहजयान में विविध प्रकार से निरूपण किया गया है। हे वर्णन में लिखा है —

“न अन्येन कस्यचन सहज न करिमान अभिसाम्यने  
आत्मना जायते पुण्यात् गुरुनादोपसेष या”

अर्थात् सहज का मत ही कोई ब्रह्मन पर लक्ष्य है और न किसी माय्या में उसकी अभिव्यक्ति की जा सकता है। गुण क परमों की मेरा के कथनस्वरूप ही कोई इनका अनुभव कर सकता है। गुणभित्ति मानक प्रप में भी सहज तत्त्व की अनुभवगमना पर हा रूप दिया गया है। उग्रमें लिखा है कि सहज तत्त्व की उतानिप केवल अनुभव मात्र से ही लक्ष्यी है। बाली क दास हम इनकी प्रकृत नहीं कर सकते हैं। ब्रह्मवाद

<sup>१</sup> हे वर्णन तत्र—(आर० प० पृ० बी० पृ० ११११७ पृ० ३९ बी) (दम्भ विनिवृत्त)

<sup>२</sup> निरुद्धाकार न भी करने कुछ बाद में लिखा है—

(सहजयानियों के सहजयानि ब्रह्मनि) दादा काव—बी० सी० बाण्डी पृ० ३

<sup>३</sup> हे वर्णन—(दम्भविनिवृत्त), पृ० ३ (घ)

<sup>४</sup> “ ” ” ” ” ११ (बी)

<sup>५</sup> आत्मनः विनिवृत्त ब्रह्मन्—दास गुप्ता पृ० ११

<sup>६</sup> बी० पृ० ११



ने अपने एक गीत में इसी बात को और अधिक सुन्दर ढंग से कहा है — “मन को कुछ कहा है, भाग्यों में जो कुछ बताया गया है, बार्मिक प्रयोगों में जो कुछ कहा गया है, माता पर जो कुछ बना बताया है वह सब प्रमात्मक है, क्योंकि उस तत्त्व की अभिव्यक्ति किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती जो उसे समझने की चेष्टा करते हैं वे तत्त्व को गलत रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस सहज तत्त्व के सम्बन्ध में गुद मूक होता है और शिष्य बहिर रहता है। अर्थात् जैसे मूक बहिर व्यक्ति को केवल संकेत के द्वारा अपने भाव समझ देता है उसी प्रकार गुद भी संकेतिक शैली में अपनी शिष्य को सहज का तात्पर्य रहस्य रहस्य कर देता है। जिना संग्रह पत्रिका<sup>१</sup> नामक ग्रंथ में दिये गये एक उद्धरण से प्रकट होता है कि सहज अमृत के सदृश है। बिल प्रकार अमृत के स्वाद को न कोई गुद क्या सकता है और न कोई शिष्य उसके रूप के अनु रूप समझ ही सकता है उसी प्रकार सहजवाद भी मूलों के लिए अज्ञात, विद्वानों के लिए अगम्य रहता है। केवल अपना शिष्य ही सर्वगुण की कृपा से इसे प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सहजवादीयों ने अपने सहज तत्त्व को वाप्या-वाप्य पर ही माना है। सहजवादीयों का सहज उपनिषदों के वेदान्त, बीदों के निर्वाणवाद और अर्थयोग की तपता, नागार्जुन की द्वैताद्वैत विलयकता और विज्ञानवादीयों की विवर्ति मात्रिता और ब्रह्मवादीयों की ब्रह्मवादादि आदि सभी की धारणाओं से प्रभावित माना गया है।<sup>२</sup>

सहजवादीयों ने सहजावरणा को महागुण की अवस्था<sup>३</sup> माना है। तिस्तोपाद<sup>४</sup> ने एक अग्र पर लिखा है कि जब सहजावरणा में शून्य और चित्त का मुद्रा स्थापित होता है तभी महागुण की अवस्था उत्पन्न होती है और उक्त समय अल्प लौकिक गुणों का नाम विरोहित हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदू तंत्रों की शिष्य शक्ति भावना, बीदों की शून्यता और चर्या, ब्रह्मवादीयों के प्रज्ञान और उपाय की एकता का विराम सहजवादीयों की सहज धारणा में भी प्रतिबिंबित है।

अपि सहजवादीयों का शून्य चित्त के मुद्रा की अवस्था का चोत्क माना गया है कि उक्त वह अर्थ नहीं लयाना चाहिए कि ब्रह्मवादी द्वैतवादी ने। बाल्य में वे पूर्ण अद्वैतवादी<sup>५</sup> थे उनका सहज तत्त्व चित्त और शून्य का समन्वित रूप होते हुए भी अन्तः और अद्वितीय तत्त्व है। उद्धरण में स्पष्ट लिखा है कि “सहज

<sup>१</sup> आम्पबाध तिसीवस अम्पस पृ० २४ से उद्धृत

<sup>२</sup> आम्पबाध तिसीवस अम्पस—दास गुण पृ० २४

<sup>३</sup> वही पृ० २५

<sup>४</sup> दोहा अर्थ—वाणी पृ० २, दोहा ६

<sup>५</sup> वही पृ० ११ दोहा १६, १०

में ईशता की भावना नहीं रहती। यह आत्मस्य की तरह अन्वष्ट रूप है।” फिर एक वृत्ते दाहे में उद्योग ने पुनः सिद्धा है कि उद्योग केवल भावनाओं की अन्वष्टता ही नहीं बल्कि वा सञ्जा अविद्युत इतने सम्पूर्ण तत्वों की अन्वष्टता प्रकट होती है।

उद्योग में उद्योग रूप की द्वैतार्थ विलक्षणता पर भी बड़ा बल दिया गया है। उद्योग ने अपने एक दोहे में सिद्धा है कि उद्योग न तो जाता हुआ बड़ा वा सञ्जा है न जाता हुआ बड़ा वा सञ्जा है। इती प्रथम न वह भीतर बड़ा वा सञ्जा है और न बाहर। उद्योग तत्र की यह द्वैतार्थ विलक्षणता उद्योगी स्वयं प्रमाण निरोधता है।

उद्योग में शून्य की भावना भी प्रकट की गई। इस दृष्टि से हम उद्योग में की नामार्थन वर के प्रभावित मान सञ्चर हैं। नामार्थनपार<sup>१</sup> के पंच वी नामक ग्रंथ में शून्यता के चार स्तर बताये गए हैं—शून्य, अविद्युत, महाशून्य और सर्वशून्य। वस्तु और कार्य की दृष्टि से चारों एक वृत्त में मिला रहे गये हैं। शून्य<sup>२</sup> की अन्वष्टता की आलापक बड़ा गया है। इस अन्वष्टता में प्रका और विद्युत क्रियाशील रहते हैं।<sup>३</sup> कुछ दृष्टियों से यह अन्वष्टता बड़ी वा सञ्जा है। इस अन्वष्टता में मन में ३३ दाह वर्तमान रहते हैं। दुःख, मय, भ्रम, ज्ञान, वेदना आदि दाह इनमें से बहुत प्रकट हैं। मन की यह अन्वष्टता की के प्रतीक<sup>४</sup> के दाह भी अन्वष्ट की गई है। इस वान भी बड़ा है। यह अन्वष्टता ‘आ’ स्वर का प्रतीक भी बड़ी गई है। वृत्त अन्वष्टता अविद्युतता की बड़ी गई<sup>५</sup> है। ये आलापक वर मानी जाती हैं। इस अन्वष्टता भी बड़े हैं। अन्वष्टता में यह परिष्कृत बड़ी गई है। इसी की दृष्टि भी बड़ा है। शून्य अन्वष्ट और वर भी इसी के मात है। ४ मानविक दाह इतने सम्भवित माने गए हैं।<sup>६</sup> तीव्र अन्वष्टता महाशून्य की दाह है। ये प्रका, उद्योग, आलापक, आलापक, शून्य वा अविद्युत के अन्वष्ट से अन्वष्ट दाह है।<sup>७</sup> इस परिष्कृत अन्वष्टता भी बड़ा गया है। यह अन्वष्टता

<sup>१</sup> नामार्थनपार रिजोडन अन्वष्ट—दाह गुता ५० १०

<sup>२</sup> बरी ५० ५१

<sup>३</sup> अन्वष्ट विचार—दा० अन्वष्टता द्वारा अन्वष्टित ५० ५१०, ५१८

<sup>४</sup> नामार्थनपार रिजोडन अन्वष्ट—दाह गुता—५ ५१-५४ (१६५६)

<sup>५</sup> अन्वष्ट इत्यन्वष्टन ग्रन्थ ५० १० वी०

<sup>६</sup> बरी ५० ५०

<sup>७</sup> नामार्थनपार रिजोडन अन्वष्ट ५ ५१

<sup>८</sup> बरी ५० ५०

<sup>९</sup> बरी ५० ५०

भी कटछाती है। इससे सम्बन्धित सात मानसिक दोष कृतज्ञाये जाते हैं। इस प्रकार विद्य की इन तीन अवस्थाओं से १६० दोष उत्पन्न होते हैं। मायकाय के रूपक और वृत्त के ताप-साय इनका विस्तार होता है।<sup>१</sup> चौथी अवस्था सर्वशून्यता कही गई है। इस अवस्था में उत्पुंक ३ अवस्थाओं के मानसिक दोष नहीं पाये जाते। यह स्वयं प्रकाश बन जाती है। यही परात्पर ज्ञान है, यही महान् स्वयं है, पार शून्यो का यह सिद्धांत सद्ब्रह्मपानियों को पुरातन मान्य था। इनकी अभिव्यक्ति उन्होंने प्रतीकात्मक और रूपरत्मक शैली में अगह-अगह पर की है। कृष्णाचार्य ने एक दोहे में महासुख का वर्णन करते हुए लिखा है कि महासुख के पार मृशाल और पार पचे होते हैं। प्र० श्री० दास गुप्ता ने 'ओम्कारो रितिवत् कश्चिद्' में पार पदियों को पार प्रकार के शून्यों का प्रतीक माना है। और पार मृशाल पार मूल स्थान कहे जा सकते हैं।<sup>२</sup>—सर्वशून्य महासुख स्व है और यही परात्पर स्वयं है। यही पर अप्रयुती अर्थात् पूर्णानन्द की प्रकृति निश्चय करनी है।<sup>३</sup> उत्पुंक पार शून्यों और प्रकृति दोनों के वर्णन सिद्धों में और भी विविध प्रकार से किये हैं। बेंदुङ्ग<sup>४</sup>—पाद का एक बोधा है वित्तम अर्थ है—“मय पोद्दा एक ऊँची अगह पर रिबड है, हमराय अर्थ पड़ोसी मी नहीं है, बडे में बाबल भी नहीं है किन्तु अतिवि हाग दिन प्रतिदिन आते रहते हैं, इत्यादि—इसी गीत के अंत में उल्लेखार्थी क हंय श्री पक्ति ही हुई है वित्तम अर्थ है पैल वा विपत्ता है और गाव बोध रहती है। रूप का अर्थ दिन में तीन बार मरणा है” इस गीत का अर्थ करने हुए टीकाकार ने लिखा है कि इसमें बर्णित ऊँचार्थ पुंर रित्तम मयन महासुख का क्य अर्थ है।<sup>५</sup> अन्त और मूर्त आदि पड़ोसी माने गये हैं। प्रकृति दासों के परिहार क ताप ही ताप कन्त और मूर्त के अगह भी समाप्त हो जाते हैं। अंतिम पंक्तियों का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि पैल आमातमय का प्रतीक है। यह आमातमय वाय संसार को जग्न देता है। गाव शून्यता की प्रतीक है। इसका ज्ञान से वाय ज्ञान विरहित है। इसी गीत की एक उक्ति दारिधराद<sup>६</sup> ने भी कही है। यह लिखते हैं कि “विशेष दारिध्र्य यग्नता परमात्मनः

<sup>१</sup> कायकाय रितिवत् कश्चिद् पु० ५९

<sup>२</sup> यही " " ५३

<sup>३</sup> यही " " ५४

<sup>४</sup> यही " " ५५

<sup>५</sup> द्वािपु अवापद—गीत ३३

<sup>६</sup> द्वािपु अवापद—गीत ३३ प ५१

<sup>७</sup> अवापद ३४ गीत



स्वयं ही नष्ट हो जावेगी। यह मृग-मयीचिह्न कम है। इसको हम गंधर्व मगर के लक्षण भी कह सकते हैं। ब्रह्मा के पुत्र के रूप में ये भी इसका स्वीकारवा हा लक्षा हैं। एक दूसरे स्वयं नरु सिखा हुआ है कि जिस तरह से स्वयं मन भी उभर होते हैं उन्ही तरह से मनुष्य भी मन की उभर है। इस प्रकार सहजवानी सिद्धों की जगत् सम्बन्धी पारसा हास्यवादी, मरुवादावादी एवं विप्लववादी सिद्धांतों से पूर्वतया प्रमा पित प्रतीय होती है।

सहजवान की एक लक्ष्ये मनुष्य विरोधना उसकी लक्षण- की प्रकृति है। सहज वाणी सिद्ध लोग भिन्ना विधि-विधानों और आचरणों के कष्ट विरोधी थे। उन्होंने विविध धर्मों के ब्रह्माचरणों और विधि-विधानों की भी खोजकर निम्न की है। ब्रह्मचर्य धर्म के प्रति उनमें विरोध भावना उत्कृष्ट रूप पारस्य चिन्ते हुए थी। लक्षणार की निम्नलिखित उक्तियों से उनकी लक्षणालोक प्रकृति की उभरा का प्रामास ही जावेगा :—

बान्धवो हि न जानन्त हि भेदः ।  
एवम् पश्चिम्ब ए क्वचि वेद ॥ १ ॥

मही पाली कुस सद् पद्मन्त ।  
धरहि बहसी अग्नि हुणन्त ॥  
कज्जे विरहिष्ण हुष्म बह होमे ।  
अकित्त एवा विष्वा कज्जुरे धूमे ॥ २ ॥

एक इहवी त्रिदुसवी मध्यबसेसे ।  
विष्णुभा होह अद् इंस चासे ॥  
मिच्छेहि जग बाहिष्म मुक्ते ।  
पम्पाधम्मण जाणिष्णु हुन्ते ॥ ३ ॥

अहरिपदि कद्दुत्ति मच्छारे ।  
सीससु बाहि अ ए जड मारे ॥  
धरही बहसी हीपा जाती ।  
कोण्णहि वड सी पम्पा पाली ॥ ४ ॥

यह वा दुर्ग ब्राह्मणों और उनके बाल विधानों की निन्दा। अब बाइस प्रकाश हम उनकी लक्ष्ये तर्कपूर्ण ऐसी वर शान देना चाहते हैं जिसका प्रचार लेख इन किन्हीं ने ब्राह्मण धर्म के विधि-विधानों आदि की शाखाबना की है। ये लोग अब किन्हीं ब्राह्मण विधान पर लक्ष्ये कृत्या चाहते थे ता उनका विरोध में कोई बुद्धिवादी तर्क

पानु करते ये बिसये उनके बंदन का मूल्य बढ़ जाता था। शक्य नगे रहकर तपस्या करते थे। विद्वानाचार्य<sup>१</sup> तरह ने देखिए कैसी तर्कमूलक आलाचना थी है :—

अइ एगगा विअ होइ मुक्ति ता सुणइ सिभालाइ,  
 सोमु पाइएँ अत्ति सिद्धि वो जुबई यिअम्नइ।  
 पिच्छी गइस्य बिठ्ठ मोक्ष्य वा मोछइ चमछइ,  
 उच्छे मोअर्यो हो जाएता करिइ सुरंगइ ॥८॥

इन विद्वानाचार्यों ने केवल अनात्म धर्म का ही बंदन नहीं किया था अपने समय की अन्य धर्म प्रवृत्तियों का भी यहाँ तक कि बौद्ध धर्म का भी इतकर विरोध किया था। तरह एक स्थल पर कहते हैं कि मूल्य तापकों में से कुछ को महापान की धोर दीजते हैं और कुछ आगम और तर्क-शास्त्रादि के सीधे माग्ते हैं। इती प्रकार कुछ तापक भ्रम से महबल पक की मापना करत हैं और इती प्रकार कुछ पशुर्प तप्य का उदय देत हैं। वास्तव में यह सब अठली धर्म को नहीं समझ पाते हैं।

अस्य तदि महजाण्डि वा (७३)  
 तदि सुतन्व तबकसरप होइ  
 कोइ मयदत्तपकक भाबई  
 अरस्य बइत्यचत्त दीसई

इन विद्वो में पुनक ज्ञान की भी धोर निदा की थी। पुस्तक ज्ञान के साथ साथ ये पुनक शत्राओं का भी विरायी थे। सिद्धानाद<sup>२</sup> ने लिखा है कि साथ ही अनुभूती सार हो की का सक्ती है। विद्वानो से उतकर ज्ञान प्राप्त नहीं हो सक्ता। क्योंकि परम्पर साथ मसिक्त की सीमा के अन्दर नहीं बाँपा जा सक्ता। अन्दाज<sup>३</sup> में भी एक स्थल पर लिगा है कि पंडित्य और तर्क में उनके हुए विद्वन् धर्म का सखे माग से पूर छन है। इती प्रकार इनकी रचनाओं में हमें धार भी बहुत से स्थानों पर तर्कमि मानो पंडितों की आलापना मिलती है।

उद्वेगान<sup>४</sup> में बंजन की उद्वेगारमा पर विरुध बार दिया गया है ऊगा लक्ष्य

<sup>१</sup> दोहा काव—बी० सी० बागची पृ० ७ (१६३८)

<sup>२</sup> दोहा काव पृ०

<sup>३</sup> दोहा काव पृ० १६ बागची

<sup>४</sup> दोहा काव बी० सी० बागची दोहा नं० ६

<sup>५</sup> अण्णपोर विरंजिम अण्णम पृ० ६१

<sup>६</sup> बरी

सहजस्वरूपी परमवृत्ता का अनुभव करना माना जाता है। यह परमवृत्ता जिस तरह से ब्रह्मांड में परिष्कृत है उसी तरह से इस विद्व में भी परिष्कृत है। सहजवानी साधक इस सहज की अनुभूति अपने शरीर में ही सहज साधना के सहारे कर सकता है। यह सहज साधना बागात्मक बतसारी गनी है। साधक बौद्धिक प्रक्रियाओं के सहारे अपने आन्तरिक सहज की अनुभूति कर सकता है। यही अर्थ है कि सहजपान में तांत्रिकों की योग साधना अपने दंग पर अवतरित हुई है। सहजपान में वैराग्य की अपेक्षा राग<sup>१</sup> की विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि जीवन का सहज रूप राग में ही दिखाई पड़ता है वैराग्य में नहीं<sup>२</sup>। यही अर्थ है कि सहजपान में त्याग और तपस्या के प्रति अपेक्षा प्रकट की गयी है। बर्षावर्ष विनिश्चय के क्षुरपादकृत प्रथम पाद की टीका में सहजपाद का निम्नलिखित बचन को राग मार्ग पर योग्य करत हुए प्रतीत होते हैं दृष्टव्य हैं।

“तनुतरचित्तां कुरको, विपरसैयादि न सिध्यते शुद्धैः।<sup>३</sup>

गगनव्यापी फलवः २ कल्पतरुत्वं कर्म समते ॥

अर्थात् देहरूपी वृक्ष के विचरूपी अहंकार को विशुद्ध विषय राग के द्वारा सिद्ध करने पर यह वृक्ष कल्पवृक्ष बन जाता है और आश्रय के समान निरंकुश फल फलता है प्रज्ञामुक्त की प्राप्ति साधक का लक्ष्य होगी। यह निश्चित मत था कि राग से ही साधक वैषता है और राग से ही उलची मुक्ति दानी है। अनंगप्रज्ञ ने इसी बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है :—

अनरूप-संक्षय तमोभिर्मुखैः प्रमंजनोन्मत्त-सद्विष्वक्क्षयः।

रागादि दुःखारपलावक्षिर्भः चित्तं विसंसार मुपापवसी ॥<sup>४</sup>

अर्थात् चित्त तमय चित्त विविध प्रकार के संक्षयों से आच्छन्न रहता है, एवं चित्त के सहज संवल क्षता है तथा रागादि दुःखनिवार्य विचारों से सित रहता है तभी यह संसार बदलाता है। यह ही हुई राग अनिवार्य बंधन की स्थिति। अब मुक्ति की स्थिति का बर्णन देखिए—

“प्रमास्वरं कल्पनया विमुक्तं प्रहीय रागदिमल प्रलपम् ॥<sup>५</sup>

प्राद्यं न च प्राहकमघसन्त्य, तदेव निबाण जगत् ॥

१ बौद्ध द्वात बर्षवैव उपाख्याय पृ० ३८५

२ इतीदमग्र्यं तु तांत्रिक बुद्धिम् ॥

३ बर्षवैव उपाख्याय इत्य बौद्ध द्वात पृ० ४१९ से उद्धरित

४ प्रज्ञासाध विनिरचय सिद्धि ४१२९

५ प्रज्ञासाध विनिरचय सिद्धि ४१२५

अर्थात् जब जिस कल्पना विमुक्त हो, प्रकटित हो उठता है तथा उसके रागादि मन कूट जान हैं तथा प्रायः प्रायः भाग से ऊपर उठ जाता है सभी यह जिस निर्मास कहलाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सहजपान में राग तत्त्व को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। अब हम सहजपान के साधना-मार्ग का स्पष्टीकरण करेंगे। जिस प्रकार हिन्दू संज्ञा का लक्ष्य परमवस्तु या शिवायुक्ति तत्त्व की प्राप्ति के हेतु सक्रिय साधना प्रयुक्त करमा या उगी प्रकार सहजपानी विद्वान् मी अपने सम्प्रदाय का लक्ष्य उद्देश्य तत्त्व की प्राप्ति के हेतु एक सहज साधना मार्ग का निर्देश करना समझा था।

जितने भी साधना प्रयत्न मत्त हैं उनमें गुह्याद को विशेष महत्व दिया जाता है। गुह्याद सहजपान की तो आध्यात्मिक ही है। किन्तु ने बार बार इस बात को दिला है कि गुह्यादों से सहज साधना नहीं समझी जा सकती। उलटता बात यह गुह्य ही क्या से ही हो सकता है।<sup>१</sup> इनकी गुह्य की धारणा हिन्दुनी मालूम पड़ती है—सांख्य और आध्यात्मिक।

आध्यात्म क्षेत्र में सहजिया लोग गुह्य का मियुनाधार मानते हैं। उनके अनुसार गुह्य कल्पना और शून्यता उपाय और प्रज्ञा का सम्मिलित साकार स्वरूप होता है। भौतिक क्षेत्र में इस समय विद्वान् गुह्य का यथार्थ ज्ञान और महती बख्शायुक्त होना बाराता है और आध्यात्मिक क्षेत्र में गुह्य सहज तत्त्व का यावक माना जा सकता है। इन लोगों की धारणा है कि सच्चा सहजपानी गुह्य साधक को राग मार्ग के द्वारा मगानुष की अनुभूति करता है।

सहजपानियों का साधना में शरीर के महत्त्व पर भी बहुत कम दिया है। वे ब्रह्म<sup>२</sup> के संप्रियत और भगवान् के बखोराजन से इस बात का स्पष्टीकरण हा जाता है। एक साधितर ने भगवान् का कृष्ण कि "हे भगवान् जब संसार में लक्ष कुल शून्य ही शून्य है फिर इस भौतिक संसार और पर्वित शरीर की क्या धारणा करता है।" इस पर भगवान् ने कहा कि शरीर का बिना महाशून्य की अनुभूति नहीं की जा सकती। इसी में शरीर का महत्त्व है। लक्ष्मण<sup>३</sup> ने भी एक जगह पर लिखा है कि इन शरीर में ही योग,

<sup>१</sup> एगोरेवाम् दु तांत्रिक बुद्धिम्—राम गुप्ता पृ० १०७ थीं हेनिद् प्रज्ञासाध विविक्तव मिद्धि का कृता कल्पित

<sup>२</sup> ब्रह्मसाध विविक्तव मिद्धि ३।२

<sup>३</sup> हेनिद्—हे ब्रह्मन्त्र एगनितिव प्रप्य पृ० ३९ (५)

<sup>४</sup> हेनिद्—रामा काक लक्ष्मणर रामा व० ४३, ४८



यमुना, गंगा सार, प्रभाव, बायबली, पूर्व, पन्द्र आदि सभी वर्तमान हैं। वही हमारा शरीर सुख का स्थान भी है। आगे वह फिर लिखते हैं कि वह पर के अन्दर है पर हम उसे पर के बाहर पृथक् करते हो, हमारा लक्ष्य हमारे हृदय में है किन्तु हम पञ्चोक्तियों से उसका पता पृथक् हो। मूलों हम अन्त को समझे। परमेश्वर न तो मन के योग्य है, शरीर में वह परब्रह्म या मंत्र के रूप में भी नहीं कहा जा सकता। विद्वान् लोग भर्म-भर्मों का विवेचन करते हैं किन्तु वे यह नहीं जानते कि मगवान् बुद्ध इस शरीर के अन्दर ही निवास करते हैं। हमारे शरीर के अन्दर कोई निराकारस्त्री किता हुआ है। शरीर में जो ठकरी लाव कर देता है वही मुक्त हो जाता है।<sup>१</sup>

शरीर के महत्त्व का प्रतिपादन सर्वां पदों में भी मिलता है। चन्द्रा पाद<sup>२</sup> अपने एक पद में करते हैं कि कुछ योगी जगत्सी हो गये हैं। और उन्होंने योग साधना प्रारम्भ कर दी है वह अपने शरीर स्त्री नगर में अर्द्धत स्म से हीना करता है। आगे वह फिर कहते हैं कि पाँच तपागणों की पाँच पतञ्जल बनाइये, और शरीर स्त्री नीच को खेचये तथा माया के अज्ञ को नष्ट कर दीजिए।<sup>३</sup> इस पञ्चर हम देखते हैं कि सहजबाल में शरीर को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। शरीर के इस महत्त्व के फलस्वरूप ही सहजबाल में योग साधना का विषय हुआ। शरीर में विविध पदों की कठनाई दिनु तांत्रिक और बोधी कर ही बुके के उली का आचार लेकर इन सहजबाली तांत्रिकों ने उन्हें बीड मा के अनुभूत अपने अनुभूत दातने की सख्या की। बीडमत्त में विद्यय<sup>४</sup> का सिद्धांत बहुत प्रसिद्ध है। सहजबालियों ने इस सिद्धांत को ही दृष्टि में रखकर शरीर में केवल तीन पदों की कठनाई की है। मामि अज्ञ को श्मन्ने पहला ब्रह्म माना है और उसे निर्मात्र काय का प्रतिरूप कहा है। दूसरा ब्रह्म हृदय में माना गया है, इसे धर्मज्ञान का वाचक कहा गया है। तृतीय के समीर एक तीव्र पद अस्थित किता गया है वह ब्रह्मधय या सहजधय का चेतक माना गया है।<sup>५</sup> इन तीनों पदों के ऊपर उन्नीस अज्ञ माना गया है, यह दिनु तांत्रिकों में सहजकार का नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसे महापुत्र अज्ञ भी कहते हैं। यह एक नीची अज्ञा का प्रतीक है किन्ते हम महापुत्र अज्ञ यह कहते हैं।<sup>६</sup>

<sup>१</sup> श्रीमद्भारत रिमीत्रल अष्टम पृ० १०५ से उद्धृत

<sup>२</sup> चर्चापद ११

<sup>३</sup> चर्चापद ११

<sup>४</sup> वैश्विक धर्मपराम धाक महाबाव बुद्धिहय पृ० २९ से १२०

<sup>५</sup> श्रीमद्भारत रिमीत्रल अष्टम पृ० १०९

<sup>६</sup> विद्वान् विद्वद्-विविधन विद्वेषर माग २ पृ० १००

सहस्रपानियों में नाड़ी<sup>१</sup> तापना पर भी बल दिया है। इनके अनुसार शरीर में ३२ नाड़ियाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।<sup>२</sup> इन ३२ में मी ३ नाड़ियों का हृदयने बहुत अधिक महत्त्व दिया है<sup>३</sup>। इनमें २ ता मेरुदंड के दोनों पक्षों में होती है और एक बीच में रहती है। मेरुदंड की चारों ओर स्थित इका, दारों और स्थित त्रिगुणा नाड़ियों को प्रजा और उदाय का प्रतीक माना गया है। तीसरी नाड़ी का सहस्र मार्ग अथवा मार्ग या केवल अथवा का कहा गया है<sup>४</sup>। प्रथम दो नाड़ियों का अर्थ प्रजा और उदाय का प्रतीक बड़ी गई हैं मिलकर बाधिविध अथवा का जन्म देती हैं। इनमें ये दक्षिण माड़ी हिन्दू तंत्रों में त्रिगुणा के नाम से प्रसिद्ध है और ताम नाड़ी इका के नाम से। इन नामों के अतिरिक्त इन नाड़ियों के और भी ऐक्य नाम तंत्र ग्रंथों में मिलते हैं।

सहस्रपानियों में अन्ती योगिक तापना में तदप्रथम वायु तापना का स्थान दिया है। वायु तापना के लिए उन्हें हृत्प्राग की तापना अथवा पकी थी। उनकी कारण थी कि जब तक हृत्प्राग की तापना से शरीर के स्तंभ हट नहीं गये तब तक महात्म्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

इस पीछे ब्रह्मण्ड के प्रसंग में इस बात का संकेत कर चुके हैं कि बौद्ध तान्त्रिक प्रजा<sup>५</sup> और उदाय<sup>६</sup> की अभिव्यक्ति श्री और पुद्गल के प्रतीक<sup>७</sup> से किया करने से। सभी सभी ता उन्होंने उनके वायु गुणों की ही इनका वायुार्थ लिया। प्रजा

<sup>१</sup> शोम्बरधोर रिर्वाजस कस्तस पृ० १०६ १०७

<sup>२</sup> मन्त्रविद्या इत्यतिगिन प्रथम पृ० ३ (बी) (शोम्बरधोररिर्वाजस कस्तस म उद्धृत पृ० १०६)

<sup>३</sup> शोम्बरधोर रिर्वाजस कस्तस पृ० १०६ १०७

<sup>४</sup> वही

<sup>५</sup> प्रजा—श्री कर्मका कर, उदाय की—इसका—संज्ञक की कहा जाता है इत्यादिवाक्य त्रु तान्त्रिक बुद्धिमत्ता इति गुणा—पृ० ११९ (१९५०)

<sup>६</sup> मेरुदंड की ओर में पाँच नाड़ियों को महत्त्व दिया गया है और पाँच तपानों को महत्त्व: उनका अर्थप्रथम माना गया है।

इति तपान त्रु तान्त्रिक बुद्धिमत्ता पृ० १०६

<sup>७</sup> शोम्बरधोर रिर्वाजस कस्तस पृ० ३ ४

इति तपान त्रु तान्त्रिक बुद्धिमत्ता पृ० ११४

प्रजा के विद् कीट तंत्रों में भगवती महात्म्या

ब्रह्मण्ड, बुद्धि, ज्ञानी, भगवती, रजनी, मन की, पुनिका, शारी, वासि।



मध्य माड़ी को बिछे बीर उत्रों ने अकृति का कहा है, सहजमार्ग कहा गया है और इसकी साधना आत्मरूपक उद्योग है। विद्या के गावों और दोहों में बगह बगह पर इस साधना की चर्चा की गई है। इस मध्य माड़ी की साधना से साधक बाधबिध का ऊर्ध्वोन्मुक्त करता है। इसके लिए वह प्राण वायु का संयम करता है। क्योंकि प्राण वायु ऊर्ध्वोन्मुक्ती होती है और वहीं उधे उन्वीय कमल में महासुख की प्राप्ति करती है। महासुख की इस साधना के सहजसाधनों में ४ विभाग माने हैं—इन्हें मुद्रा<sup>१</sup> कहा गया है। इनका नाम क्रमशः कममुद्रा, धर्ममुद्रा, महासुद्रा और समसमुद्रा हैं। इन मुद्राओं के अनुरूप ही मन के विभक्त की भी चार अंतर्याय कल्पित की गई हैं—विचित्र, विराट, विमल और विलास्य। इनके समकक्ष आनंद के भी चार स्वरूप माने गये हैं—आनंद, परमानंद, विरमानंद और सहजानंद।<sup>२</sup> आनंद की प्राप्ति उक्त समय होती है जब बोधचित्त निर्माण-व्यक्त में पहुँचना है। परमानंद की स्थिति धर्मव्यक्त में पहुँचकर अनुभूत होती है। विरमानंद संभोग व्यक्त में अनुभूत हानबासा आनंद है। सहजानंद महासुख व्यक्त में प्राप्त हानबासा अविनाशनीय आनंद कहा गया है।

सहजसाधनी साधना में कुछ बाधकों के प्रभाव से मुद्रा साधना का भी बड़ा प्रचार हुआ। मुद्रा का अर्थ ये लोग ली लेते थे।<sup>३</sup> इसके लिए वे चाँडाली, डांगी, शरपी पाँसिनी, सहज सुन्दरी आदि शब्दों का भी प्रयोग करते थे। ये शब्द पहले तो आध्यात्मिक शक्ति का वाचक रहे किन्तु बाद में ये सब पार्थिव शरीरपापी ली के लिए प्रयुक्त होने लगे। प्रहोराय विनिश्चय सिद्धि में मुद्रा के लौकिक और अधौकिक दोनों स्वरूपों के संकेत मिलते हैं। देखिए निम्नलिखित श्लोकों में मुद्रा के लौकिक रूप का ही बयान किया गया है।

“नवपीपन सन्नामा प्राप्य मुद्रां सज्जोषनाम् ।  
 शरूपेण मुहुर्यापी भूषदित्वा निवेदयेत् ॥  
 गणमाह्वयादिमन्त्रैः शीर पूजादि विन्देत् ।  
 मत्तवा सम्पूज्य दन्तन मुग्धा मह नापद्य ॥”<sup>४</sup>

अर्थात् शिपर को बहुर्यार के लक्ष्मी नवरीहन-शरूप मुग्धावना मुद्रा का का साधना पन्दन आदि से सिमूगि की या पुत्रो हा लाभ लेकर जाना चाहिए। शिपर को चाहिए

<sup>१</sup> हास्यमय दु सांख्यिक उद्योग—शास्त्र गुणा १० १९५ से १९२ तक

<sup>२</sup> वही

<sup>३</sup> मन्नासाय विनिश्चय पूर्णाय कल्पिते

<sup>४</sup> मन्नासाय विनिश्चय सिद्धि गापक्याद् बोधिव्यक्त विनाश ४२ बहीदा १० ११

कि वे नय-मातादि के साथ अकारपूर्वक मक्ति से ब्रह्मपूर्वक मुद्रा के साथ गुण की पूजा करे इत्यादि—महोपास विनिश्चय के तृतीय परिच्छेद में श्री-कपिबी मुद्रा वाचना का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। मुद्रा की लौकिक वाचना सब ब्रह्मवानी और लहबवानी वाक्यों को मान्य नहीं थी। बहुत से लोग उल्लेख प्रयोग लौकिक अर्थ में ही करते थे। ज्ञानसिद्धि के निम्नलिखित श्लोकों में देखिए, उल्लेख प्रयोग लौकिक अर्थ में ही किया गया है।

“मुद्रामयब्रह्ममंत्राद्यैश्चपमावन्तत्परैः।

सैव सिद्धिं परं गान्तिं कल्पान्तंभवे च कोटिभिः” ॥

अर्थात् बिना मुद्रा मंत्रक मंत्र वाच आदि की वाचना के वाचक अंतकन कोटि पद्यों में भी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार लहबवान में मुद्रा वाचना अपने लौकिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों में निश्चित हुई।

कालचक्रयान—अब हम कालचक्रयान के स्वल्प का विवेचन करेंगे। ब्रह्मवान लहबवान, मंत्रवान से मिलती-जुलती एक धारा और बहुत प्रसिद्ध है। यह है कालचक्रयान की। इस सम्प्रदाय की धारणाएँ शैव शास्त्रों से बहुत मिलती-जुलती हैं। यही कारण है उसके स्वल्प का निम्नलिखित श्लोक शास्त्रों ने तो किया ही है, शैव शास्त्रों में भी किया है।

इस सम्प्रदाय का शास्त्रिय अभी अनुपलब्ध है। प्रचलित ग्रंथों में कैलाश केन्दोदर टीका ही एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त कुछ विस्तार से वर्णित हैं। इस ग्रंथ के लेखक भास्कराचार्य या महोपा नामक सिद्धाचार्य थे। इनका समय १०वीं शताब्दी के आसपास निश्चित किया गया है।<sup>१</sup> इस ग्रंथ में इन्द्रमूर्ति नामक ब्रह्मवानी आचार्य के पठित ग्रंथ ज्ञानसिद्धि से ब्रह्मवान का लक्षण उद्धृत किया गया है। इसके दाह है कि यह सम्प्रदाय ब्रह्मवान के बाद प्रचलित किया गया होगा। केन्दोदर टीका के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का संकेत हमें मत्पत्रिका शैव ध्यान के प्रधान आचार्य अभिनव गुप्त के तंत्रश्लोक में भी मिलता है।<sup>२</sup>

जिस प्रकार ब्रह्मवान में ब्रह्मत्व और लहबवान में लहबत्व पारमार्थिक लक्षा के रूप में प्रतिष्ठित किये गये थे उसी प्रकार इस ग्रंथ में काल-चक्र भी पारमार्थिक लक्षण के स्वरूप में ही प्रतिपादित किया गया है। जिस प्रकार ब्रह्मत्व और लहबत्व

<sup>१</sup> ज्ञानसिद्धि—पाठकशास्त्र और विमलक सिरीत्र नं० ४४ बड़ीदा

<sup>२</sup> बौद्धदर्शन—बलदेव उपासपाठ पृ० ३३५

<sup>३</sup> इन्द्रोदरग्रन्थ दु शास्त्रिक बुद्धिम्—दास गुप्त पृ० ७७

प्रज्ञा और उपाय का सुभाग-स्वरूप माने गये हैं। उही प्रकार बालचक्र भी प्रज्ञा और उपाय का ही समस्त विग्रह कहा जा सकता है।<sup>१</sup> बालचक्र में काल प्रज्ञा का वाचक है और चक्र उपाय का। दोनों के समन्वित विग्रह को पारमार्थिक सत्ता के रूप में स्वीकार करनेवाला सम्प्रदाय बालचक्र पान के नाम प्रसिद्ध से हुआ।<sup>२</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी तान्त्रिक सम्प्रदायों और उक्तसम्प्रदायों में पारमार्थिक सत्ता की धारणा एक जैसी है। अपने अपने सम्प्रदायों को अलग करने के लिए इन लोगों ने उक्तका अभिधान मर बदल दिया है।

बालचक्र योगियों की धारणा है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही विग्रह में है। अतः तापक को चाहिए कि वह अपने विग्रहरूप बालचक्र का दर्शन करे। इसके लिए उस सबसे प्रथम ज्ञान की शुद्धि करनी चाहिए। अपाशुद्धि हो जाने पर निष्ठशुद्धि और प्रायशुद्धि सरल हो जायेगी। तपोमुक्ती शुद्धि हो जाने से तापक अपनी तापना में लक्षण हो सकता है।<sup>३</sup>

कात्त-भक्तान में 'आदि बुद्ध'<sup>४</sup> की धारणा भी मान्य है। बालचक्र का ही वृत्त नाम आदि बुद्ध है। आदि बुद्ध कल्याण और शून्यता की मूर्ति माने गये हैं।

आदि बुद्ध के बीह मंत्रों में चार वाच माने गये हैं। उनके नाम क्रमशः सहज, वाच, परमेश्वर, संभोगेश्वर और निर्मातृवाच हैं। यह विभाग वैदिक दर्शन से मिलता हुआ है। वैदिक दर्शन में अरण्याश्रमों के आचार पर मित्र-भिन नाओं से अभिधान किया जाता है जैसे—वाग्जानरणा की शिरः राज के वैश्व को वैश्व और मुक्ति के लक्ष्मी को प्राक कहते हैं। तृतीयारणा वही वैश्व आत्मा का अभिधान प्रदाय कर लेता है।<sup>५</sup> कात्त-भक्तान में आदि बुद्ध की चार वाचोत्तमी कल्याण इस वैदिक धारणा से बहुत मिलती-जुलती है। इनसे सम्बन्ध ब्रह्म तथा पला का निर्देश भी इस धारणा में किया गया है। निम्नलिखित तान्त्रिक<sup>६</sup> से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

<sup>१</sup> वही पृ० ७६

<sup>२</sup> बीहदर्शन—ब्रह्मदेव उपाख्याय पृ० ४१६

<sup>३</sup> वही पृ० ४६६

<sup>४</sup> वही पृ० ४१०

<sup>५</sup> वेदान्त सार शिखरवा पृ० १११

<sup>६</sup> बीहदर्शन—ब्रह्मदेव उपाख्याय पृ० ४१०

१	सहस्रकाम्य	कर्मशा	ज्ञान वज्र	विशुद्ध योग	द्वितीय
२	पद्मकाम्य	मैत्री	विद्युत वज्र	सर्मात्मक योग	स्रष्टृति
३	संयोगकाम्य	सुदिता	बाग वज्र	मैत्र योग	स्वप्न
४	निर्मासकाम्य	उपेक्षा	काम वज्र	संस्थान योग	बाधत

‘आदि शुद्ध (१) सहस्रकाम्य ही परमार्थतः सत्य है, वह शून्यता का ज्ञान होने से विशुद्ध है। वह द्वितीयावस्था के क्षय होने पर उदित होती है तथा महासुख रूप है। बाल्य में कर्मशा का उदय ही क्षय में है। अतः वह ज्ञान वज्र कहा गया है। यही विशुद्ध योग है। (२) पद्मकाम्य में बिना निमित्त ही ज्ञान का उदय होता है। स्रष्टृति का क्षय होने से यह बिल आदि देव से उदित और मैत्री रूप है। निम्नो दोनों क्षयों के द्वारा बाग वज्र का समग्र क्षय सम्पन्न होता है। यह निर्दिष्टरूपक विद्युत की भूमि होने से विद्युत वज्र तथा सर्मात्मक योग कहलाता है। (३) संयोगकाम्य स्वप्न की दशा का सूचक है। इसमें अक्षय अनादिव्यक्ति का उदय होता है। सब प्राणियों के नाश का होने से मंत्र सुदितारूप है। मंत्र के उदय का सम्बन्ध ही क्षय से है। इसे बागवज्र तथा मंत्रयोग कहते हैं। इसी क्षय के द्वारा आदि शुद्ध पद्म तन्त्रों की शिक्षा प्रदान करते हैं। निर्मास क्षय का संबंध बाधत दशा से है। मना निर्मास क्षयों को धारण कर शुद्ध स्वीय का नाश करते हैं। यही क्षय मार्ग तथा संस्थान योग कहलाता है।’ इन चारों क्षयों की क्षयना योगाचार को भी मान्य थी। इस क्षयना में अनेक नवीन चारों मनन करने योग्य हैं। इस प्रकार हम देखते हैं अज्ञान परमानन्द के विघ्नोत्थान के उपायों पर आधाति होते हुए भी मौखिक हैं।

### बौद्ध सांघिकों का नैतिक दृष्टिकोण

बौद्ध सांघिकों की धारणा थी कि जन्म कोई दुःख नहीं होता। जन्म का अस्वस्थ और अनौचित्य उठके श्रेष्ठ मूल मान का उदय और अक्षय पर आधाति रहता है। इसीलिए उन्होंने विद्युत और मन की शुद्धता पर सबसे अधिक ध्यान दिया है। आर्य देव के विद्युत विशुद्धि प्रकरण में इस विघ्नोत्थान का विस्तार से वर्णन किया गया है। मन के मूढत्व पर प्रकाश डालते हुए उसमें लिखा है कि—

१ सेकोरेय टीका—केटोकी द्वारा संपादित—बहीरा पृ० ५९





अर्थात् विद्य ही तब बातों का ही शीघ्र है। वह क्लृप्तप्रति रूप है। उन्नी के स्फुटि होने पर भीतरमा संसार से निमुक्त होती है। इस प्रकार विद्यों की वाचियों में हमें मम और विद्य की शुद्धता का विस्तार से प्रतिपादन मिलता है।

### निर्गुणियों कवियों पर बौद्ध तांत्रिकों का प्रभाव

बौद्ध तांत्रिकों से संतों का सीधा सम्बन्ध था। यही कारण है कि वे जौग उनके बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। उनकी तत्त्व की अनुभवगम्यता, अर्थार्थों की अमान्यता तत्त्व का वाच्यवाच्य परे होना, उद्भव तत्त्व की स्वस्व धारणा, सहजानुराग की धारणा, शून्यवाद, अस्मिन्मक्ति विहायता, माह विन्नु साधना, अस्मान्नाह, अस्मिन् मयदान की प्रकृति, साधना में काम या राग का महत्त्व, अस्माद्योचन, गुस्वाद एवं योग साधना आदि बातों ने संतों को पूरी-पूरी प्रेरणा प्रदान की थी। उनकी वाचियों पर इन सबका प्रभाव परिलक्षित होता है।

वेदान्त दर्शन की भाँति बौद्ध तांत्रिक लोग तत्त्व की अनुभवगम्यता में ही विशेष विश्वास करते थे। उन्हें आश्चर्य नहीं कि संतों का इस दिशा में भी प्रेरणा मिली हो। उन्नी से प्रेरित होकर उन्होंने कई का विशेष और अनुभव का महत्त्व प्रतिपादित किया है। यही नहीं, उन्होंने बौद्ध तांत्रिकों के अनुकरण पर पद-शास्त्रादि की भी निंदा की है। संत तुवरदास<sup>१</sup> कहते हैं—

सुन्दर कहत पदशास्त्र साही मयोबाद।

आके अनुभव ज्ञानबाद में न बड़ो है ...

संतों ने वेद शास्त्र की निंदा भी क्लृप्त कर की है। संत हरिया 'वेद क्लृप्त' को बचन रूप मानते थे।<sup>२</sup> मत्तुकरास<sup>३</sup> ने तो यहाँ तक लिखा है। कि वेद शास्त्र पढ़कर पंडित भी अज्ञ में पड़ गये हैं।

सहजब्रह्म की सहजतत्त्व धारणा ने भी संतों को प्रभावित किया है। उन्नी के उद्भव से भी तत्त्व को सहजतत्त्व में मानते हैं। बाबू शिखरे हैं<sup>४</sup>—'मैं उद्भव उक्त परमात्मा के अर्थवाचनी सहजब्रह्म में लौन पड़ा हूँ।' उन्होंने ही उद्भव का स्वस्व निरूपण करते हुए एक दूरे रूप पर लिखा है—'मैंने परमात्मा का सहजतत्त्व देखा

<sup>१</sup> संत वाच्य संग्रह पृ० १११

<sup>२</sup> वेद क्लृप्त शोध कर हरिया पंजी क्लृप्त संसार ३ हरिया विहार विहारवाजे के पुणे हुए कर पृ० ४५ ३

<sup>३</sup> वेद बह-बह बहिन मुक्त—मत्तुकरास की वाणी, पृ० ४

<sup>४</sup> सदा लीन आत्मन्य में सहजब्रह्म सब हीन—बाबू ११५४

है। वह परम क्षेत्रमय है। उसमें मेरा मन सरलता से रम जाना है।<sup>१</sup> ऐसे संतो मे देवार्थ विसर्पण भी बड़ा है।<sup>२</sup>

श्रीरुद्र तांत्रिकों के शक्त्यवाद का भी श्रेष्ठ संतो पर है। ब्रह्मवान में सष कुक्ष पूर्णरूप रूप ही माना गया है। ब्रह्मवान के इस सिद्धांत की अभ्यन्ता करते हुए दादू ने लिखा है कि चेतन जीव शून्य ए आया और शून्य में ही लय हागा। छत उधे उधी शून्य का प्यान करना चाहिए।<sup>३</sup> सहजवान क पार शून्यों की पारणा भी संतो को अपन टंग पर मान्य थी। उनका संकेत करते हुए संत दादू लिखते हैं—'धीन शून्य वो माम रूप से संरंधित हैं। बीया शून्य ही निर्गुण रूप होने से सहज ब्रह्मवादा है। वह सर्वस्वार्थी है।<sup>४</sup> तब के सहज और शून्य रूप होने के कारण ही संतो मे उधे अनिर्वचनीय और वाग्यावाप्य परे बड़ा है। संत दादू ब्रह्मते हैं 'बा कुक्ष नही है, अर्थात् सहजवादा रूप है वह अनिर्वचनीय है। उसका नाम रूप देख कर बापी के संसन में बापकर लाग भ्रमित हो रहे हैं।<sup>५</sup>

श्रीरुद्र तांत्रिकों का ब्रह्मनावाद का विज्ञानवाद का ही स्वरूप है, बहुत प्रसिद्ध है। संतो के ब्रह्मनावाद का इनके कर्मनावाद ए प्रेरणा निम्नी हागी। सम्भवतः उधी ए प्रेरित होकर संत दरिया ने मन को कर्ता विष्णु रूप ब्रह्म है। संत सुंदरदास ने ब्रह्मनावाद के सिद्धांत की अभिप्रायिकी और अधिक तरह शब्दों में की है। यह मिलने हैं 'मन के भ्रम से ही यह संसार उत्पन्न होता है और उक्त भ्रम के निरागत हो जाने पर उत्पन्न लय हो जाता है।<sup>६</sup>

<sup>१</sup> अविनाशी का क्षेत्र का, ऐसा तब अनुर।

सो इन देव्या क्षेत्र भरि सुगूर सहज स्वरूप ॥

शाम क्षेत्र परगत भवा तर्हि मन रछा समाह।

दादू ज्येष्ठ बापे संत नहि बापे नहि बाप ॥ दादू बापी भाग १ पृ० १५

<sup>२</sup> 'विष्णु सगुण बुद्धि से ब्यारा, सत स्वरूप चाहि विमल विचार। ६० शागर ७० ५४

<sup>३</sup> शून्यहि मागत आहवा शून्यहि मागत बाप।

केवल पैदा सुगति का दादू रहु को लय ॥ स सु० शागर लख ५१६

<sup>४</sup> ताम शून्य आकार का बीया निर्गुण नाम।

गदर शून्य में तमि रहा ब्रह्म तब सब राम ॥ दादू, भाग १, पृ० ५०

<sup>५</sup> बुद्धि बादी का लय कर भारमा लय संसार ॥ दादू बापी, भा० १, पृ० १४८

<sup>६</sup> वह मन कर्ता विष्णु रूप ब्रह्मार्थ—दरिया मागर ७० ११

<sup>७</sup> मन हो के भ्रम त जाग यह देगिबन

बन ही के भ्रम तबे जगत यह विगत है। सुंदरविजय, ७० १२२

बौद्ध धार्मिकों की खंडन मंडन की प्रवृत्ति में संतों की प्रतिस्निधात्मक प्रेरणा प्रदान की थी। सम्भवतः उन्हें से प्रेरित होकर उन्होंने समस्त मिथ्याचारों और आडंबरों का उदरक विरोध किया है। व्याहरण के लिए हम मूर्ति पूजा का खंडन ही सकते हैं। संत दानू लिखते हैं "बो लोग बंकर-परर की सेवा करते हैं, वे अपना मूल भी गँवा बैठते हैं।"<sup>१</sup> इती प्रकार संतों ने अस्य आडंबरों और आचारों का विरोध किया है।

अपना योग्य बौद्ध धार्मिकों की साधना पक्ष का प्राबल्य सिद्ध है। संत हरिया ने स्पष्ट शिक्षा है कि अविगत<sup>२</sup> क्योति के दर्शन लगी होते हैं, जब साधक अपना योग्य में लक्ष्य होता है। संत दानू ने इस सिद्धांत पर सबसे अधिक बल दिया है।<sup>३</sup> असाधक योग्य की कृपा के बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसीलिए बौद्ध धार्मिकों ने हिन्दू धार्मिकों, वैदिकधर्मियों और योगियों के लिये योग्य का महत्त्व दिया था। संतों के गुस्साद को बौद्ध धार्मिकों से भी प्रेरणा मिली होगी। संत दानू बौद्ध धार्मिकों के स्वर में स्वर मिलाकर लिखते हैं कि अद्गुह के मिलने से ही मुक्ति और शक्ति की प्राप्ति होती है।<sup>४</sup>

बौद्ध संतों में अम वा राम के सङ्गयोग पर विशेष बल दिया गया है। उनकी धारणा है कि अम को बहिः स्वरूप पर प्रेरित कर दिया जाय तो बही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अम साधना से मुक्ति और शक्ति दोनों की प्राप्ति होती है। संत लोग इस सिद्धांत से भी पूर्ववत्ता परिचित थे। संत महत्क ने एक स्थल पर उठी सिद्धांत की स्मरण करते हुए लिखा है—“अम राम से मिला सकता है, यदि इस पर विचार प्राप्त करके अस्तव्य स्वरूप पर निषेधन किया जाय।”<sup>५</sup>

बौद्ध धार्मिकों ने साधना क्षेत्र में माद विन्दु और योग साधनाओं को महत्त्व दिया है। संतों की साधना के भी ये प्रतिष्ठित तत्व थे। इससे प्रकट होता है कि ये लोग बौद्ध धार्मिकों से इस दृष्टि से भी प्रभावित हुए हैं।

बौद्ध धार्मिकों ने सिद्धांतों की शुद्धता पर हिन्दू धार्मिकों के लिये ही बल दिया है। अपने सिद्धांतों को शुद्ध बनाने की अयना से ही उन्हें अपनी अमिष्पति प्रतीकस्तक

<sup>१</sup> जिवि बंकर परर सेविया लीं अयना मूव गवाई—दानू, बानी, भाग १, पृ. १४०

<sup>२</sup> अयना पररै मूव बच पावै, अविगत क्योति लिये में पावै—द० सा० पृ० १४०

<sup>३</sup> देखिए—संत दानू बानी, भाग १, पृ० १५२ १५३ १५४

<sup>४</sup> अद्गुह मिसै लो पाइय,

शुगुति मुक्ति परर—दानू बानी, भाग १, पृ० १

<sup>५</sup> अम मिलावै राम से जो रावै बह बीत।

इस महत्त्व पों कई जो पावै प्रतीत ॥ महत्कनास की बानी, पृ० ४०

बनानी पड़ी है। उनकी अभिव्यक्ति शैली से संत लोग अनेकधा प्रभावित हुए थे। तब तो यह है कि संतों की अभिव्यक्ति में प्राण प्रदान करने का भेद बौद्ध तांत्रिकों को ही है। कहीं-कहीं तो उन्होंने उनके शब्दों, यहाँ तक कि पादों तक को दोहरा दिया है। कबीर की ही शाली<sup>१</sup> को ही बिय—

“जिहि बन सिंह न संबरै भील छड़े नहि जाय।  
रेन दिवसा का गम नहीं तहाँ कबीर रहा ल्यो लाय ॥”

छद्मनाद<sup>२</sup> की शाली इस प्रकार है—

“जहि मन पवन न संबरै रवि ससि माह-प्रवेश।  
तहि घट बिच बिसास करु सरहे कहिअ उबेस ॥”

अन्युक्त तांत्रिकों से एक बात और स्पष्ट प्रगट होती है, यह यह कि संत लोग सिद्धों की रहस्य साधना से भी बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। तब तो यह है कि संतों का रहस्यवाद सिद्धों के रहस्यवाद का ही अभिन्न रूपान्तर है, जिसके प्रधान सूत्रम उर निषद् और सूची मत हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों पर बौद्ध तांत्रिकों का भी बहुत बड़ा प्रभाव है।

**जैन तांत्रिक**—जैष्यत्र, रोष, शाक और बौद्ध तांत्रिकों के अतिरिक्त मध्ययुग में कुछ जैन तांत्रिक भी अनेक-अनेक स्वतंत्र सम्प्रदायों के प्रवर्तन में लगे हुए थे। इन सम्प्रदायों के अनुश्रवण की बड़ी आवश्यकता है। इसका अभी तक कोई भी ग्रामाधिक विवरण प्राप्त नहीं है। किंतु<sup>३</sup> नामक सिद्धान्त न एक जैन-तांत्रिक सम्प्रदाय का उद्भव किया है। इसके मतानुसार यह सम्प्रदाय निर्मोष जैनों का एक उन सम्प्रदाय था। इनकी साधना और सिद्धांतों का स्वरूप अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। हो सकता है संतों की कुछ महसियों का हमसे थोड़ी-बहुत प्रेरणा मिली हो।

### नाथ-सम्प्रदाय

**परिचय**—मध्यकालीन धर्म-साधनाओं में नाथवाद बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस धर्म के मूल प्रवर्तक आदि नाथ या मगवान् गिने माने जाते हैं।<sup>४</sup> मध्य युग में इस प्राण प्रदान करने का भेद गारुडनाथ और उनके पुत्र मरुदेवनाथ का है। मध्य

<sup>१</sup> हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० इज्जतीप्रसाद रिबेरी १० १६ स बट्टूग

<sup>२</sup> कबीर से बट्टूग

<sup>३</sup> बुद्धिग्य समाधिस्थान, १० १०१ १ २

<sup>४</sup> नाथ सम्प्रदाय १० १

युग में वह मूल विविध नामों से प्रसिद्ध था, जिनमें सिद्ध<sup>१</sup> मठ, योग मार्ग<sup>२</sup>, योग सम्प्रदाय<sup>३</sup>, अथर्वत सम्प्रदाय<sup>४</sup>, गोरक्षनाथी सम्प्रदाय, मत्स्येन्द्रनाथी सम्प्रदाय आदि नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। इस मूल के अनुयायी योगी, क्लृप्ता, दर्शनी आदि के नाम से पुकारे जाते हैं।<sup>५</sup> नाथ शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् इसका अर्थ मुक्ति देनेवाला करते हैं।<sup>६</sup> और कुछ लोग 'ना' का अर्थ अनादि रूप और 'थ' का अर्थ भुवनत्रय लेकर उसे अनादि धर्म का वाचक और भुवनत्रय की स्थिति का कारण मानते हैं।<sup>७</sup> इसी प्रकार इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी मतभेद नहीं है। कुछ लोग तो इसे स्वतंत्र दर्शन पद्धति मानते हैं, किन्तु विचार अपने समय की कई धाराओं के योग से हुआ था।<sup>८</sup> इसके विपरीत कुछ वृत्तरे विद्वान् उसे ब्रह्मपान और छद्मपान का ही विवक्षित और परिष्कृत रूप मानते हैं।<sup>९</sup> कुछ विद्वानों की धारणा है कि नाथपथ का मूल उद्गम सोप तांत्रिक बौद्ध धर्म है।<sup>१०</sup> कुछ वृत्तरे विद्वानों का कहना है कि यह एक ही शक्ति साधना पद्धति है। जिस पर बाद में बौद्ध तंत्रों का प्रभाव पड़ा है।<sup>११</sup> इस प्रकार इसके सम्बन्ध में विविध मतवाद प्रचलित हैं। हमारी अपनी धारणा है कि यह सम्प्रदाय स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ था। हिन्दू हीन शक्ति तंत्रों, बौद्ध तंत्रों, हीन दर्शन और योग साधना आदि विविध धर्म और साधना पद्धतियों ने मिलकर इसकी प्रायः प्रसिद्धि की थी। वृत्तरे शक्तियों में हम को तो यह उचित है कि नाथ सम्प्रदाय मत्स्येन्द्र की सामान्य जनता में प्रचलित सभी साधना और धर्म-पद्धतियों का एक अमिश्रित समन्वित स्वरूप है। अपने समय की समस्त विचारधाराओं और साधनाओं के सुन्दर तत्त्वों को स्वायत्त करने की प्रवृत्ति निर्गुण सम्प्रदाय में भी थी। यही कारण है कि निर्गुण सम्प्रदाय की प्रवृत्ति

<sup>१</sup> गो. सि. संस्कृत पृ० १२

<sup>२</sup> " " पृ० २१

<sup>३</sup> " " पृ० ५८

<sup>४</sup> " " पृ० २८

<sup>५</sup> गोरक्षनाथ पद्धति की कल्पना योगीश्वर—सिद्ध पृ० १ (१९२८)

<sup>६</sup> हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा रामकुमार वर्मा

<sup>७</sup> नाथ सम्प्रदाय पृ० ३

<sup>८</sup> नाथ सम्प्रदाय—द्वितीयसर्ग पृ० ३

<sup>९</sup> मंत्रपात्र, तन्त्रपात्र, ब्रह्मपात्र और लल्ल सिद्ध—राहुल सांकृत्यायन—योग पुरातत्त्वाङ्क

पृ० २२१-२२३

<sup>१०</sup> माहर्षि बुद्धिगम पद्धति इत्युक्त आलोचन इति श्रीरिसा—पृ० ३६

<sup>११</sup> नाथ सम्प्रदाय पृ० ४-५

राज्य के कारण नायपंथ के अत्यधिक समीप है। हमारी अपनी रूढ़ धारणा है कि नायपंथ और निर्गुण सम्प्रदाय में विता पुत्र का संबंध है। नाय सम्प्रदाय की अस्तित्व तक ये समझे बिना संतो का निर्गुण सम्प्रदाय किसी प्रकार भी समझ नहीं जा सकता।

**नायपंथी साहित्य**—नायपंथी सम्प्रदाय का साहित्य कम 'विकसित नहीं है। इसके अन्तर्गत नव नाथों की रचनाएँ एवं गीत आदि तो आते ही हैं, इतना ही से संबंधित एक विस्तृत साहित्य भी इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत पसोसा जाता है। शिव<sup>१</sup> ने नायपंथी साहित्य का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित ग्रंथों की विरोध चर्चा की है। गोरखोच, गोरखसंहिता, गोरखचरित्र, इतना ही मदीनिच, घेरबसंहिता, शिव संहिता, सिद्ध-सिद्धांत पद्धति, और गोरख पद्धति। इनके अतिरिक्त उसने इस सम्प्रदाय के साहित्य के अंतर्गत कुछ और ग्रंथों का उल्लेख भी किया है। इनमें कुछ तो तंत्र ग्रन्थ और कुछ सैन शास्त्र तंत्र ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में देवी भागवत्, योग चिन्मणि, योग मंत्रटी, शिरगीता शिवपुराण, निरंजन पुराण, शिव रहस्य तंत्र, श्रयामल तंत्र आदि विरोध उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कौलमागी नाथ मत का निरूपण मत्स्येन्द्र नाथ, रचित कौलवान निर्यय तथा अङ्गुली पीरतंत्र, कुलायन तंत्र, जानकारिका आदि ग्रन्थों में भी किया गया है।

### नाय सम्प्रदाय का ऐतिहासिक विकास

नायपंथ के कुछ मूल प्रवर्तक नव नाथ मान जाते हैं। किन्तु इन नव नाथों के नाम के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। महानिर्वाण तंत्र में नव नाथों के नाम १७ प्रकार दिये गये हैं।<sup>२</sup>

१—गोरखनाथ २—बाणपरनाथ, ३—जागाबुन, ४—उदरबुन,  
५—रुद्राचर, ६—देवदत्त, ७—बकमरुत, ८—आदिनाथ और ९—मत्स्येन्द्र  
नाथ।

'नाय सम्प्रदायविग्रह'<sup>३</sup> नामक ग्रन्थ में नव नाथों के नाम महानिर्वाण तंत्र के मानो १७ कुछ भिन्न प्रकृत हैं। इस ग्रन्थ में नव नाथों का मत माना जा रहा है। इसका अनुसार नव नाथों के नाम प्रत्यय —

<sup>१</sup> गोरखनाथ द्वारा रचित गोरखोच पृ० १५१

<sup>२</sup> नाथ सम्प्रदाय—डा० इन्दरजीप्रसाद त्रिवेदी—पृ०

<sup>३</sup> वही

१ मत्स्येन्द्रनाथ, २ गैनीनाथ, ३ बालम्बरनाथ, ४ कल्पिपानाथ, ५ परपटनाथ, ६ रेवानाथ, ७ भर्तृनाथ, ८ गौरीचन्द्रनाथ और ९. नागनाथ वा आदिनाथ ।

मुवाकर पत्रिका<sup>१</sup> नामक ग्रंथ में नव नाथों के नाम उपर्युक्त नामों से मेल नहीं खाते । इसी प्रकार मैपाल की परम्परा में बिन नव नाथों का नाम लिया जाता है वे विस्तृत नये प्रतीत होते हैं । बिनका उल्लेख किसी ग्रंथ में भी नहीं मिलता । इसी प्रकार अन्य बहुत से ग्रंथों में नव नाथों के नाम और उनकी परम्परा का उल्लेख विस्तृत स्वतंत्र रूप से पाया जाता है ।<sup>२</sup> उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाथपरंपरा का अमिक इतिहास लिखना वास्तव में कठिन है ।

नाथपरंपरा के इतिहास में मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ के नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं । इनका कारण यह है कि दोनों ही नाथपरंपरा दो निम्न-निम्न शाखाओं के प्रवर्तक थे । मत्स्येन्द्रकी मै योगिनी कौल मार्ग नामक नाथपरंपरी शाखा का प्रवर्तन किया था । यह मठ प्रोफेसर बाम्शी का है ।<sup>३</sup> डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस नामकरण की आलोचना की है ।<sup>४</sup> उनके कहना है कि मत्स्येन्द्रनाथ पहले सिद्धयान्त आश्रम सिद्धांतमार्ग के अनुयायी थे । बाद में वह बाममार्गी शाखा में प्रवृत्त हो गये । बाममार्गी शाखा को अपनाते के कारण ही उन्हें कौल कहा जाने लगा । बाद में इनके शिष्य गोरक्षनाथ ने इनको बाममार्गी शाखा से विमुक्त किया था । गोरक्षनाथ की ने नाथपरंपरा में हठयोग को विशेष महत्त्व दिया था । इसीलिए उनके शाखा मार्ग गोरक्षनाथी हठयोग के नाम से प्रसिद्ध है । आबच्छा गोरक्षनाथ के मठ को ही सामान्यतः नाथपरंपरा के नाम से अभिहित किया जाता है । हमारी धारणा है कि निर्मुक्तिप्राप्तियों संतों को नाथपरंपरा की उपर्युक्त दोनों ही शाखाओं ने प्रभावित किया था । संभव तो यह है कि इन दो शाखा शिखाओं पर ही संत मठ का भवन सका हुआ है । वहाँ पर हम नाथपरंपरा की इन दोनों शाखाओं के सिद्धांतों का विवेचन कर देना उपयुक्त समझते हैं । क्योंकि उनके सिद्धांतों को समझे बिना निर्गुण काम्यशास्त्र का खरस नहीं समझा जा सकता ।

### मत्स्येन्द्रनाथ का योगिनी कौल मार्ग

मत्स्येन्द्रनाथ के शाखा मार्ग में कौल शब्द का प्रयोग योग के अर्थ में किया गया है । इसके प्रमाण में हम कौल-ज्ञान निर्बंध की निम्नलिखित पंक्ति उद्धृत कर सकते हैं—

<sup>१</sup> नाथ संग्रहालय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २५ (१९५०)

<sup>२</sup> " " " " " २५, २७

<sup>३</sup> कौल ज्ञान निर्बंध—डा० प्रवीणचन्द्र बालकी सम्पादित मूलिका पृ० ३५

<sup>४</sup> नाथ संग्रहालय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ५७-५४

“वचनं चामिकादेवि मतम् ये योगलक्षणम्”<sup>१</sup>

अर्थात् हे देवि । योग मन पचन प्रकार का कहा गया है । इस पंक्ति के अन्तर्गत चार प्रकार के योगों का वर्णन किया गया है । उनमें सबसे प्रथम कौल योग का वर्णन किया गया है । इससे प्रकट है कि मत्स्येन्द्र नाथ ने कौल उद्योग योग शब्द के अर्थ में किया है । अब प्रश्न यह है कि इस योग स्थापना को योगिनी की लक्षणाओं में कहा गया है । इस सम्बन्ध में हमारी धारणा है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने मन का प्रकार काम रूप देव की स्त्रियों में किया था ।<sup>२</sup> याग मार्ग में दीक्षा किये जाने के कारण वे स्त्रियाँ योगिनीवाँ कहलाती थीं । उससे सम्बन्धित कौल याग को योगिनी कौल याग कहा जाने लगा होगा ।

योगिनी कौल याग की भी दो शाखाएँ बतलाई गई हैं । अक्षुण्ण वीरतंत्र में लिया है—

कौल मार्ग द्वयी सन्ति कृतका सहजा तथा ।

कुंडली कृतका दो या सहजा समरसे सिता ॥

अर्थात् कौल मार्ग का योग स्थापना दो प्रकार की होती है—एक तो कुंडलनी योग स्थापना और दूसरी सहजा योग स्थापना । मत्स्येन्द्र ने अक्षुण्ण वीर तंत्र नामक ग्रन्थ में सहजा योग को कुंडलनी योग की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया था ।<sup>३</sup>

मत्स्येन्द्रनाथ का दार्शनिक दृष्टिकोण ही शक्ति मंत्रों से बहुत अधिक प्रभावित प्रतीत होता है । मत्स्येन्द्रनाथी मन में त्रिगुण की उन्नतता शक्तियों के उदय ही मान्य है । हीन शक्ति शक्तियों के उदय वह शक्ति को शिव में समवेत मानते थे ।<sup>४</sup> शक्तियों का उत्कर्षाशब्द उन्हें शोका हेतु-कार के साथ स्वीकार था । हीन दर्शन क १९ तंत्रों के भी भी उन्हें धारणा थी । इस मत में शिव को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है । वे ही देवाधि देव और मक्ति मुक्ति दाता बने गये हैं । जब शिव मत्स्येन्द्रनाथ के मन में प्रकाश के मंत्रों से आह्वय हो जाते हैं तभी उनकी शक्ति हीन हो जाती है । मत्स्येन्द्रनाथ पूर्ण चरित्तारादी थे । वे समाधि विरत की शक्तिमय मानते थे । इस दर्शन में शिव के लिए अक्षुण्ण और शक्ति के लिए कुण्डल शब्द का प्रयोग किया है ।<sup>५</sup>

<sup>१</sup> बीजज्ञान विग्रह ३११२

<sup>२</sup> बीजज्ञान विग्रह—आ० प्रथम अध्याय द्वारा सम्पादित पृ० १५

<sup>३</sup> अक्षुण्ण वीर तंत्र की संख्या ५६ ९०

<sup>४</sup> बीजज्ञान विग्रह ३१९-७

<sup>५</sup> “वक्तुं शक्तिरिति प्रोक्तमक्षुण्ण शिव इत्येतत्”

आध्यात्मिकार्थ की दृष्टि में बीजज्ञान विग्रह में उद्धृत पृ० ७० (१९३७)

कुण्डलनाथ मन में भी बड़ी बात लिखी है

“अक्षुण्ण शिव अक्षुण्ण कुण्डल शक्ति प्रधीतः”

बीजज्ञान विग्रह सूचिका पृ० ४० (१९३४)



अब हम योगिनी-कौल-मार्ग के कुंडलानी साधना-मार्ग-वृक्ष पर विचार करना चाहते हैं। कुंडलानी-साधना-मार्ग को समझने के लिए हमें मत्स्येन्द्र नाथ द्वारा प्रयुक्त विन्दु, नाद और कला आदि कुछ पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण सबसे पहले करना होगा।

### मत्स्येन्द्रनाथी मत में विन्दु का स्वरूप

मगवान् शिव श्री शक्ति को विन्दु की संज्ञा ही गई है। वह विन्दु सब शक्तियों से अक्षोभ्य रहता है।<sup>१</sup> इस विन्दु को अमूल्य रूप भी कहा गया है। इसे तद्व्याकरण का अत्यान्तिक रूप मानते हैं। वह मुक्ताक्षर के सदृश स्वच्छ माना गया है। सृष्टि के विघ्न और विनाश दोनों का कारण भी नहीं माना गया है। वह कुल और अकुल दोनों से परे तत्त्व है। कुछ स्थलों पर विन्दु को पर शिव तथा सुवन शक्ति कहा गया है। इस विन्दु से ही सर्वप्रथम माह का उदय माना गया है। और नाद से ही सम्पूर्ण शक्ति विकसित हुई है। पुण्यानन्द के कल्प-कला-विक्रम में विन्दु के लिए महाविन्दु शब्द का प्रयोग किया गया है। विन्दु में जो शास्वत प्पनि उठती है उक्त प्पनि की शक्ति का नाम कला कहा गया है। इस कला को ही काम कहा कहते हैं।<sup>२</sup> विन्दु की कल्पना मत्स्येन्द्र नाम और नेत्र इन दोनों विशेषताओं से विविष्ट रूप में की गई है।<sup>३</sup>

अभी हम बतला चुके हैं कि विन्दु से नाद का उदय होता है। नाद मंत्र, वाणी और पद रूप होता है। इसीलिए इस मत में भी तंत्र मत की मूर्ति मातृक बर्णों की कल्पना की गई है। इस नाद विद्योत् के आचार पर ही इस मत में वह बतलाया गया है कि सर्वत्र चार तत्त्व-स्थान, प्यान, बर्ष और लक्षण है।<sup>४</sup>

स्थान विष्ट को कहते हैं। प्यान का अर्थ पद होता है। बर्ष रूप का वाक्पद है और लक्षण अक्षर का श्रेष्ठ माना जाता है। विष्ट नाद या मन्त्र शब्द का केन्द्र स्थल होता है। इसकी स्थिति ऊर्ध्वार में होती है। नाद के उदय होने पर बर्ष पद और वाक्पद का उदय होता है।<sup>५</sup> इन तत्त्वका प्रमाण विष्ट और बर्षोत् दोनों पर पकटा है। मत्स्येन्द्रनाथी कौल मार्ग का लक्षण शक्ति का शिव में लय करना है। शरीर में वह शक्ति का केन्द्र मूलाधार चक्र और शिव का केन्द्र स्वस्त मन्त्ररत्न माना जाता है। मन्त्ररत्न में स्थित शिव तत्त्व में स्थित कुंडलानी शक्ति का शिव में लय कर

१ "पुण्यानन्दः सर्वशक्तिपरा—कौलशास्त्र निर्याय पृ० ४४ १०।२० २१

२ वही पृ० ४४

३ वही पृ० ४५

४ वही पृ० ४५

५ कौलशास्त्र निर्याय—डा० वाणी, पृ० ४६

इना ही सामान्यतया कुंडलानी लय योग कहा जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ ने कुंडलानी लय योग के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अधिक बल दिया था। बीज ज्ञान निर्णय में लिखा है कि शक्ति का लय शिव में किया जाता है और शिव का लय क्रिया में तथा क्रिया का लय शान में और शान का लय इच्छा में। इही प्रकार इच्छा का लय शिव में किया जाना चाहिए। यहाँ पर अन्विम शिव, शिव का वाचक है।<sup>१</sup> गोरक्षनाथी योग में इठ पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। मनोवैज्ञानिक पक्ष पर कम। मत्स्येन्द्रनाथ कुंडलानी योग और गोरक्षनाथी कुंडलानी योग में यही अन्तर है।

मत्स्येन्द्रनाथी लय योग में और भी कई पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है; जैसे इत उन्मनि आदि। इत मत में कुल या कुंडलानी शक्ति के ऊर्ध्वगुणी करने को ही मास माना गया है। इत मोक्ष की प्राप्ति लिंग स्वामी शिव की साधना से बनारं गई है। यह शिव का साधना का ज्ञान इत के रहस्य ज्ञान पर ही अवलंबित बताया गया है।<sup>२</sup> इत विश्व में अमुष्मृत उत्क काल्य रूप परमात्मा का वाचक इच्छा है। इत के इत स्वरूप ज्ञान के प्राप्त होते ही साधक का एक प्रश्न की अती शिव और अमौदिक आरण्या की अनुभूति होती है। इही का उनके मत में अयना बताया कहा गया है।<sup>३</sup>

इत मत में शिव की मूर्ति की पूजा का विशेष प्रकार मानस लिंग की पूजा का उद्देश्य दिया गया है। इत मानस लिंग की पूजा का सबसे उच्चतर अर्द्धिषा रूपी पुन है। इतल इन्द्रियबन्ध है, शीघरा करण्य है और पीया आदरपाद, पाँचरा उदात्ता, लय क्रोधावय, लानाँ प्यान और आत्माँ ज्ञान दे। उनका बहना या टि का सामा साँकारिक मार्ग का अनुसरण करने हैं ऊँदे लिदि वस मही हो लक्ष्मी। इत मत में सर्वत्र बन्ध काय इम आदि के त्याग का उद्देश्य दिया गया<sup>४</sup> है। भौतिक शास्त्रों की भी निन्दा की गई है। क्योंकि यह सब शास्त्र मिथ्या उपाठना की आर प्रीति करने हैं।<sup>५</sup>

<sup>१</sup> बीजज्ञान निगम—२।१०

शिव मन्त्रगताना शक्ति विद्यामन्त्रविद्यत शिव ?  
 अन्वमन्त्रे विद्या लीला विद्या लीलादि इच्छया  
 इच्छासाँवन्त्रे वादि अन्वये वा साँ शिव ।

<sup>२</sup> बीजज्ञान निगम १०।१० ३३

<sup>३</sup> वाक्यान्व निगम—४। वाक्यी—भूमिका १० ४०

<sup>४</sup> बीजज्ञान निगम— " " १० ४८

<sup>५</sup> " " " " १० ४९

इस मंत्र में सबसे अधिक महत्त्व प्यान बोग को दिया है। उसकी रचनाओं में प्यान बोग का स्पष्ट स्वरूप निरूपण नहीं किया गया है। केवल एक श्लोक पर अनह्नमाह की अनुसृष्टि का संकेत मिलता है। उसमें लिखा है कि जब सावक सिद्धि के समीप पहुँचने लगता है तो नासोदय के प्रथम मूत्र कण्य की; पुनश्च तीव्र कान्य की अनुसृष्टि होती है। उस समय सावक के हाथ-पैर और धिर सब हिलने लगते हैं। विविध प्रकार की अनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं। सावक को समस्त देवताओं के दर्शन होने लगते हैं।<sup>१</sup>

प्यान बोग की साधना से ही सावक को उन्मत्तावस्था की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में ही मन जेबरी पक्ष में प्रवेश करके अमृत का पान करता है। इस अमृत को कामकृता कहा गया है।<sup>२</sup> इस उन्मत्तावस्था को उह्वावस्था भी कहा गया है। यह उह्वावस्था विद्यम और विनाश अनुसृष्टि कुल सबसे परे मानी गयी है। इस उह्वावस्था का कौल ज्ञान-निर्वाण में विद्यार से निकलना किना गया है।<sup>३</sup> वहीं पर वह एक शरीरस्थ पक्ष के रूप में अस्तित्व किना गया है। इसके लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग भी किया गया है।

जब सावक ब्रह्म तक पहुँच जाता है तब उसका शरीर ब्रह्म के समान स्थिर हो जाता है। फिर उसे मरण और मृत्यु नहीं तताते<sup>४</sup> अनुसृष्टि कीर तब में इस उह्वावस्था को उह्वावस्थानन्द की अवस्था कहा गया है।<sup>५</sup> यह सर्वज्ञता अर्थव्यक्तिमत्ता और सर्वमूर्ता की अवस्था बन्नी जाती है। सब प्रकार की आस्तिक संकल्पवादे और सिद्धिवाँ हठी अवस्था में प्राप्त होती हैं। इस अवस्था में पहुँचकर मन शान्त और स्थिर हो जाता है। उस समय रज, रूत, रस, गंध आदि की पेशिक अनुसृष्टियाँ सही में लीन लप हो जाती हैं। इस अवस्था को न ता अस्थि रूप कहा जाता है और न अस्थि रूप। यह एक पूर्ण शान्त अवस्था है जिसमें पहुँचकर मन पूर्ण प्रकृत होता है। यह पूर्ण अज्ञेतावस्था होती है। इसके प्राप्त होते ही सब प्रकार के दैतमत्त्व नष्ट हो जाती है। उस समय किसी भी प्रकार की साधना-संबन्धी क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह अवस्था पाप और पुण्य से अछूती है। इस अवस्था को योगी की आदर्श अवस्था माना गया है। इसी अवस्था के संबंध में बहुत से योगियों की धारणा है कि मन शून्य में लीन हो जाता है। इस उह्वावस्था का सर्वज्ञ मात्पर्यी प्रयोग में अनेक प्रकार

<sup>१</sup> कौकशात्र निर्वाण १५१६ १८

<sup>२</sup> कौकशात्र निर्वाण—डा० बाल्मी—भूमिभूष ५० ५१

<sup>३</sup> " " १५१०

<sup>४</sup> " " १५१५

<sup>५</sup> अनुसृष्टि कीर तीव्र की० ४०

से अनेक रूपों में किया गया है।<sup>१</sup> गोरक्ष संहिता में इस अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह अवस्था सर्व शुद्ध निराधार निर्बोध और परमार्थ रूपी होती है। इस अवस्था में दुःख और मुक्त तबद्ध सामरस्य हो जाता है। पूर्ण समत्वयोग, त्रिभुजे शत्रु और मित्र तब एक प्रतीत होते हैं, की भी यही अवस्था है। इसी प्रथम में एक वृद्धे रूप पर इसे महात्म्य रूप कहा गया है। इस अवस्था का वर्णन बहुत ही स्पष्टता पर अन्तर का प्रसन्न के रूप में भी किया गया है और उसे निरञ्जन की संज्ञा दी गयी है तथा उसमें मन को क्षीन करने का उद्देश्य दिया गया है।<sup>२</sup>

मन्वेन्द्रनाथ का बीज मार्ग पूर्ण सारिणक या। यह बात निम्नलिखित उदाहरण से प्रकट है<sup>३</sup> :—

बाह्यमेव रतो, यस्तु मैथुन मांसमसृष्टे  
ते सर्वं नरकं यान्ति इति सत्यं यथा मनः।

अर्थात् जो बाह्य मत् मांस मैथुन में लित रहता है वह नरक को जाता है, मरे वह बचन शर है।

इस मत में भावना को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। गोरक्ष संहिता नामक ग्रंथ में लिखा है जिसकी किसी भावना होती है उसे किसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।<sup>४</sup>

बीज-ज्ञान मत में विविध धर्मों के बाह्य मिथ्याचारों की निन्दा की गयी है। गोरक्ष संहिता में एक स्थल पर लिखा है कि अन्न तीर्थ और आचार आदि कर्म, छेप रीति का छेपन, ध्यान, होम, दान, जप, नैवेद्य और संप्ता आदि तब बाह्य-भाषना का भागो महागहिन होत है।<sup>५</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्वेन्द्रनाथ ने अंतः मन के लिए पूरी पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। यदि हम इनो मतों की तुलना करें तो हमें निश्चय हो जायगा कि निर्गुण वाग्म-बाह्य की अन्धी पृष्ठभूमि मन्वेन्द्रनाथ का पाणिनी बीज मार्ग ही है। उनकी वाग्मिक विचारधारा इसका साधना क्रम और उलूक वाग्मिक शब्द अंतः कर्मों में जो के त्यों उदन्म्य होत हैं। इसी धारणा से बारादा है कि निर्गुण वाग्म-बाह्य के अंतः मिथ्ये साधना की मन्वेन्द्रनाथी धारा से प्रमाणित हुए वे ठाने गैरत

<sup>१</sup> कृष्ण बीज संघ २० १११४

<sup>२</sup> बीजज्ञान विद्वान्—भूमिका ५०

<sup>३</sup> बीजज्ञान विद्वान्—भूमिका २३

<sup>४</sup> "बाह्यो भाषना बाह्य निश्चिर्मन्ति सादसी"—बीजज्ञान विद्वान्, भूमिका ५० ६७

<sup>५</sup> बीजज्ञान विद्वान्—भूमिका ५० ६५

नापी धारा से नहीं हुए थे। इसका प्रमुख कारण यह है कि मत्स्येन्द्रनाथी धारा में भावना और मानविक साधना पर ही विशेष बल दिया गया है। गोरक्षनाथ पर हमें दृष्टौगिक साधना का प्रमाण अधिक मिलता है पकता है।

### निर्गुण काव्यधारा पर मत्स्येन्द्रनाथी धारा के प्रभाव

संतों को नाथ पंथ की मत्स्येन्द्रनाथी धारा से पर्याप्त प्रेरणा मिली थी। मत्स्येन्द्रनाथी दर्शन की धारा अत्यन्त बड़े-बड़े दर्शन से मिलता-जुलता है। उन्हीं के तहत ये लोग भी धर्म में शक्ति को समवेत मानते हैं और धर्म में अन्त के पूर्ण अस्तित्व की अपेक्षा उनके उत्कर्षवाद के प्रति आस्था प्रकट करते हैं। कहीं-कहीं पर कुछ संत लोगों ने इनसे मिलते-जुलते भाष प्रकट किये हैं। पीछे हम संत कुम्हारदास<sup>१</sup> के दो उदाहरण उद्धृत कर चुके हैं, उनका विश्लेषण करना अनावश्यक है।

संतों का प्रभाव दिखाने समय हम संतों पर भावनावाद, अपेक्षावाद, नाथ विन्दु साधना और कुल कुंडलनी साधना के प्रभावों का निर्देश कर चुके हैं। बित्त प्रथम तंत्रिकी की कुल कुंडलनी और नाद विन्दु साधना और मत्स्येन्द्रनाथियों की इनो साधनाओं में अन्तर्बन्ध अंतर दिखाने पकता है, उही प्रकार संतों की कुल कुंडलनी एवं नाद विन्दु साधना मत्स्येन्द्रनाथियों से थोड़ा भिन्न है। इसका स्पष्टीकरण योग के प्रसंग में करेंगे। यहाँ पर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि संतों को इन साधनाओं की एक समझ परभवा प्राप्त हुई थी। मत्स्येन्द्रनाथियों के अनुकरण पर ही संतों ने उन्मत्ती अवस्था उद्बोधन आदि के दर्शन भी किये हैं। उन्मत्ती अवस्था का दर्शन करते हुए पादू लिखते हैं—

न धर मझा न बन मझा जाहूँ नहीं निज भौब ।

बादू चन्मनि मन रहै मझा न साई ठौब ॥

उन्मत्ती अवस्था ही उद्बोधन होती है। यह परमात्मा ही सर्व स्वरूप, सर्वभूमी और तेज स्त्री है। यह बात बादू के उद्धरण देकर हम बीच तंत्रिकी के प्रभावों के प्रसंग में रक्त कर चुके हैं। मत्स्येन्द्रनाथियों की मन साधना को संतों ने अपना प्रमुख चिह्न अग्रिम्यन्त किया है। संत हरिदा लिखते हैं—“मन के कारण ही संतार मम में पैदा हुआ है। जो मन के रहस्य को जान लेता है वह मुक्तिमान है।”<sup>२</sup>

<sup>१</sup> सुंदरबिजास पृ ११६, १८५ वंद

<sup>२</sup> बादूबाबी मला १, पृ० २४

<sup>३</sup> मम पीठे सब जागत मुझाया ।

मन बीदे सो चतुर मुझाया ॥

हरिदा सागर पृ० ३

साहू ने भी लिखा है—'मन का लक्षण को हन्य देनेवाला है और बड़ी का लक्षण का प्रकाशन कर सकता है अतः उसी की साधना करनी चाहिए ।'

अने पूर्ववर्ती सांख्य साधकों की भाँति मत्स्येन्द्रनाथी साधक लोग भी साधनाकारों के निर्वहक थे । तर्कों में उसी परम्परा का अनुसरण किया था । मत्स्येन्द्रनाथी योगियों से निरंजन योगियों की परम्परा मिली थी । उन्हीं के अनुसरण पर तर्कों ने निरंजन योगियों का बहान किया है । बिना प्रथम मत्स्येन्द्रनाथी साधक भारद्वाज्य पूजा और साधना को महत्त्व देते थे उसी प्रकार तर्क लोग में भी साधना क्षेत्र में सभी प्रकार के साधकों और साधनाओं का मानवीकरण किया है । निरंजन योगियों के स्वरूप निर्देश के उदात्त दोनो बातें स्पष्ट हो जायेंगी ।<sup>१</sup>

सोमिया वैरागी बाबा, रहै अचेष्टा जन्मनि लागी ।  
आत्मा जोगी धीरज बंधा, निद्वेषन आराधन आगम रंधा ॥  
सहजे मुखा अलग अपारी अनहृद् सींगी रूषि द्वापी ।  
काया बन गण्ड पायो चेला ज्ञान शुद्ध में रहै अचेष्टा ॥  
साहू दरसन करन जागे निरंजन नगधि मिच्छा मोगि ॥

इसमें उल्लेख नहीं कि तर्क मात्र मत्स्येन्द्रनाथी विचारधारा से प्रभावित है ।

### गारुडनाथी धारा

परिचय—नाथपरंपरा की इटयोगी धारा का प्रसक्त योग्यताप की मान जाने<sup>२</sup> है । मत्स्येन्द्रनाथी और योग्यतापी साधना प्रकृति में एक बड़ा मौखिक अंतर दिखलाई पड़ता है । ऐसा कि ऊपर लिखा जावे है, मत्स्येन्द्रनाथ ने अपनी साधना में मानविकता को बहुत अधिक महत्त्व दिया है और शारीरिक इटयोग का कम । उनके विरुद्ध गारुडनाथ ने साधना में मानविकता का कम महत्त्व दिया है इटयोग को अधिक । बड़ी एक लक्षणात्मक का अन्वय है, इस पर दोनों ने ही बल दिया था । मत्स्येन्द्रनाथ की लक्षणात्मिकता का संकेत ऊपर लिखा जा चुका है । गारुडनाथ की ने लक्षणात्मक दिव्यता दाह करने के लिए प्राण साधना-विशुद्धि मानव संघ से

<sup>१</sup> मन ही तो मन करतै मन हो मा मन कोई ।

साधुनाथी भाग १ पृ० ११४

<sup>२</sup> साधुनाथी भाग २ पृ० ६८

<sup>३</sup> साधुनाथ की ने गारुडनाथ का अनुसारी संन माना है—

संन—संननाथ, अज्ञान और अज्ञानता—पृ० १११

ही गई एक कला की ओर संकेत किया जा सकता है। क्यूंते हैं कि एक ही  
 पंथ के प्रधान आचार्य गोरक्षनाथजी जब बामनाथी शक्तों के केन्द्र स्थान बनाया—  
 पहुँचे तो वहाँ मगधती की प्रचलित प्रकृति के अनुसार उन्हें प्रवाद रूप में मन्त्र-  
 मालादि देना चाहते तो योगिदास ने उसे सविनय अस्वीकार कर दिया और  
 मगधती से धार्मिक प्रवाद की प्रतिष्ठा करवा ली।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि  
 सदाशरणाभिषेका की प्रतिष्ठा नाथपंथ की भक्त्येन्द्रनाथी और गोरक्षनाथी दोनों धाराओं  
 में समान रूप से थी।

**दार्शनिक सिद्धांत**—गोरक्षनाथी धारा के दार्शनिक सिद्धांतों के उद्भव  
 में विद्वानों में मतभेद है। डा० रामकुमार वर्मा उनके अग्रप्रथम को हीन दर्शन से  
 प्रभावित मानते हैं।<sup>२</sup> डा० मोहनसिंह ने उनके दर्शन पर उपनिषदों का प्रभाव  
 निर्दिष्ट किया है।<sup>३</sup> डा० इब्राहीमसाद ने उसे बौद्ध और शाक्त मतों से अनुप्राणित  
 सिद्ध करने की चेष्टा की है।<sup>४</sup> हमारी समझ में गोरक्षनाथी विचारधारा उपनिषद्, शैव,  
 शाक्त और बौद्ध सभी विचारधाराओं से प्रभावित थी।

गोरक्षनाथी लोग वेद शास्त्रों में आस्था नहीं रखते थे। उन्होंने वेद ही प्रकार  
 के बतलाने हैं—रघूज और सुक्म। उनके भ्रान्तुधार ब्राह्मण लोग अभिषेक रखल  
 वेदों के अनुयायी होते हैं। सुक्म वेद का प्रतीक अनधी दृष्टि में ओम्कार का प्रथम है।  
 ये लोम अपने को सुक्म वेद का ही उपासक मानते हैं।<sup>५</sup>

गोरक्षनाथ ब्रह्मलोक को द्वैताद्वैत विराट्प्रथम मानने के पक्ष में थे। इस दृष्टि से  
 वह नागार्जुन के अनुयायी कहे जा सकते हैं। उनके द्वारा बार्धित किया गया ब्रह्म  
 द्वैताद्वैत विराट्प्रथम रूप देखिए—

वसती न सून्यं सून्यं न वसति भ्रमण भ्रगोचर ऐसा ।  
 गगन सिन्धर में बालक बोले, ताकत नाँव भरौगे कैसा ॥<sup>६</sup>

उनका यह द्वैताद्वैत विराट्प्रथम ब्रह्म संभवतः रामरूपी था। उन्होंने सर्वत्र शब्द की

<sup>१</sup> योग सम्प्रदायविविधता—१८वाँ अध्याय

<sup>२</sup> हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ. १४३

<sup>३</sup> देखिए—डा० मोहनसिंह रचित 'गोरक्षनाथ और मैथिलक मिथिलीसिद्धांत'

<sup>४</sup> बालक संग्रहालय पृ० ५९

<sup>५</sup> बालक संग्रहालय पृ० १३५

<sup>६</sup> गोरक्षनाथी संस्कृत पृ० १०

{ किन्ता है। वह शब्द का ही सर्वत्र श्रीर अद्वैतरूप मानत है। उद्देश  
 १०१० है' —

सद्बुद्धि तासां सद्बुद्धिं कूर्वी, सद्बुद्धिं सद्बुद्धिं समाया  
 सद्बुद्धिं सद्बुद्धिं स परषा भया सद्बुद्धिं सद्बुद्धिं समाया ।

इतनी पुंस्य सभ्यो पारया भी अरुनी असंग है। नाथ स्वयं स लय इन का हो  
 पर अरुनी मुक्ति मानत है। इनका दृष्टि में नाथ ही एकमात्र मुक्त अस्त्वा है नाथ  
 कभी अस्त्वाएँ अथ रूप होने से बचन में हैं ।

साधना पद्धति—नाथपथ में दृष्टौगिक साधना का भी अधिक महत्त्व  
 दिया गया है। दृष्टौगिक साधना में काँ साधक तब तक रहना नही चाहता जब तक  
 वह वह उसे सुयोग गुरु न मिले। इसलिए इस पथ में गुरु का बहुत अधिक महत्त्व  
 दिया गया है।

गुरु साधक शिष्य का आसन प्राण सरोप प्र साह्य, पारणा ध्यान और  
 समाधि का उद्देश्य करता है। यह बात गार्ग्यनवक के इन श्लोक से प्रकट है—

‘आसनं प्राणसमाराधः प्रत्याहारश्च धारणा ।  
 ध्यानं समाधिरेतानि यागागानिषद्भिः पठ ॥’

उपर्युक्त श्लोक से प्रकट है कि गार्ग्यनाथ कृप्याग वाग क स्थान पर पहाड़ पथ क  
 अनुपातो प्रतीत है। व. निगम १ उद्देश्य विषय महत्त्व नहीं दया है। साधक  
 में यम नियम योग की आधिका भूतना मात्र है। अरुनी दृष्टौग क साधन  
 ध्यान, प्राणायाम और प्रत्याहार माने जाते हैं। ध्यान, पारणा ध्यान समाधि साधना  
 के संग हैं। इससे यह भी प्रकट होता है कि गार्ग्यनाथ में अरुनी साधना-गद्भि में  
 दृष्टौग धार साधन ग रानो का विधान की संज्ञा का था। वगैरे उद्देश्य यम और  
 नियम का उपाय नहीं किन्ता है, किन्तु व गद्धारण में विषय शिवाय कान व  
 आचार्य दशोपा-शा शिष्यो ने अरुने नाथ उद्देश्य में गार्ग्यनाथ क ध्यान उद्  
 देश्य का अन्वय समझ लिया है। अरुने अरुने दृष्टौग-नमः का साधना का अन्वय अंग  
 धारणा किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका योगिक साधना अरुन्तु। धी—  
 (१) दृष्टौग नियम, (२) प्राण-साधना, (३) मन साधना ।

१ गार्ग्यनाथी संग्रह पृ० ८

२ योगसूत्रक ३३ श्लोक

३ वैश्व—नाथ साधना—पृ० १८१ १८१



(१) इन्द्रिय-निग्रह—इन्द्रिय निग्रह का प्राथम्य पक्ष विन्दु-रक्षा है। विन्दु-रक्षा तभी हो सकती है, जब किनो-से विरक्त रखा जाये। इहीलिए गोरक्षनाथ ने किमों की निरा की है। क्योंकि ये ही साधक को विन्दु-रक्षा से विरक्त करती हैं। उन्होंने एक स्थल पर लिखा है<sup>१</sup>—

“मुगिया सुते अजहु न जागे, भोग महीं रे रोग अमागे।  
मुगिया को मत भोग इमाउ, मन इस नाउ किमा उन जारा ॥”

(२) प्राण-साधना—प्राण साधना के अन्तर्गत आत्म प्राणायाम और प्रत्याहार विचारणीय हैं। आत्म शरीर को योगिक स्थितियों को करते हैं। प्राचीन आचार्यों ने चौपटी शास्त्र आत्मों का अस्तित्व किया था। उनमें चौपटी सबसे प्रसिद्ध माने जाते हैं। उनमें ठिडकन और अमलासन सबसे महत्वपूर्ण हैं। इन प्राण कर देने पर साधक को पदच्छ, पोडस, आहार, धीन शास्त्र नाकिमों की साधना और पाँच ज्योमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और अपनी कर्मा का शोचन करना चाहिए। गोरक्षरायण में यही बात निम्नलिखित श्लोकों में व्यक्त की गयी है<sup>२</sup>—

(क) “पदच्छं पोडस आहारं त्रिलक्षं ज्योमं पञ्चकम्।  
स्वदेहे योन न जामाति कथं सिद्धन्ति योगिनः ॥”  
(ख) “एक स्तंभ मय ज्ञारं ग्रामं पञ्चमी वैवतम्।  
स्वदेहे योन जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः ॥”

इन सबका ज्ञान प्राप्त करने के बाद योगी को कुंडलनी शक्ति का स्थापन करना चाहिए। कुंडलनी शक्ति को वायु के द्वारा उत्पादित किया जाता है।<sup>३</sup> वायु इत परसारी गई है—प्राण, अपान, समान, उदान, ज्ञान, माय, कर्म, कृष्ण, देवदत्त और धर्मधर्म।<sup>४</sup> ये शरीर के विभिन्न अंगों में निवास करती हैं। इनकी साधना से कुंडलनी शक्ति परिचासित की जाती चाहिए। वायु साधना के लिए अक्षयावाप आत्मस्थक होता है। अक्षयावाप के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए गोरक्षरायण में लिखा है—<sup>५</sup>

<sup>१</sup> गोरक्षरायणी सप्रह, पृ० १३८

<sup>२</sup> गोरक्षरायणक १३, १४

<sup>३</sup> " " ७५

<sup>४</sup> " " ३३

<sup>५</sup> " " ४२, ४३, ४४

'हकारेण बर्हिष्यति सकारेण विशति पुन' ।  
 हंसं सेत्यमुना मंत्रं शीघ्रो जपति सप्तश ॥'  
 'शतशतानि ब्रह्मो यत्रै सद्ब्रह्म एकपिरातः ।  
 एतदसंख्यान्नितम् शीघ्रो जपति सप्तश ॥  
 अत्रसामाप गायत्री योगिनं मोक्षदायिनी ।  
 आत्मा सकल्पन मात्रेण सर्वप्रपेण प्रमुच्यते ॥

अर्थ—जब वायु 'ह' रानि करती हुई बाहर जाती है और 'स' जनि करत हुए अन्दर आती है तब उसे हंस मंत्र कहते हैं । एक दिन और रात्रि में एकत्रैठ हजार मंत्रों का वाप अत्रसा गायत्री के नाम से प्रसिद्ध है । इस अत्रसावाप में किसी प्रकार का सम्बन्धनाएँ नहीं होता है । स्वातः क आवागमन भी जनि ही इस मंत्र का उपासक मानी जाती है ।

कुडलनी तापना में गरलनाय ने मुद्राओं को भी बड़ा महत्त्व दिया था । प्रतिदिन मुद्राएँ महामुद्रा, नमामुद्रा, ठगुरिबाल, जालंपर और मूलबंध करी गई हैं ।<sup>१</sup> इन मुद्राओं की सापना करके तापक अनेक विद्विबों का प्राप्त कर अत्र और अत्र हा जाता है । नापबंध में प्राणायाम का भी बड़ा महत्त्व है । उनमें लिखा है कि जब तक वायु अनापमान रहती है तब तक विन्दु भी अनापमान रहता है । वायु के स्थिर हो जाने पर विन्दु भी स्थिर हा जाता है । जब प्राणवायु शरीर में स्थिर कर ली जाती है तब मूत्र का भय नहीं रहता है ।<sup>२</sup> प्राण बाएँ ओर दाहिने भयने से लुप्तोक्त अंगुण आगे जाता और आता है । स्थिति हके प्राण कहत हैं ।<sup>३</sup> प्राण सापना के लिये गोरलनाय ने नाडी शोचन को अत्र राक उपस्था है । नाडी-शोचन कर लेने पर तापक का परमाणु से वैदधर बाएँ भयने से लुप्त लीबकर तापनी चाहिए । ठगुर बाद तब दाहिने भयने से निगत देना चाहिए । (इतककरकी वापि का ध्यान करते हुए तापक को सापना कानी चाहिए । इसी प्रकार तापक का बाएँ भयने से लुप्त लीबकर उदर में भरनी चाहिए और बाद में उभे बाएँ भयने से निगत देना चाहिए । इस बार उभे नाभिरपन पर स्थित हुआ कर लुप्त का अत्राह वापि पर ध्यान करित करना चाहिए । इस प्रकार प्राणायाम का अत्राल करण-करने नाकिनी अत्राह हो जाती है ।<sup>४</sup> गरलनाय ने ध्यानयोग का

<sup>१</sup> गोरल तापक ५०  
 " " ११, ११  
 " " ६४  
 " " ६४-६६-६७

हिन्दी की निगुण धम्मपाय और उच्चरी दार्शनिक दृष्ट्युक्ति

भी बर्चान किया है। गोरक्षशतक में एक स्थल पर लिखा है कि साधक को परमपूज्य से बैठकर शरीर और गर्भन का शीघ्रा करके एकत्र स्थल में नागाय पर दृष्टि केन्द्रित करके क्रोम का वाप करना चाहिए।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरक्षनाथ ने प्रायः-छापना पर विशेष बल दिया है।

मन साधना—गोरक्षनाथ ने मन साधना का भी उल्लेख किया है। उधार की विविध मायिक प्रवृत्तियों से मन को नीचकर उधार के ध्यान में अंतःकरण की ओर मन को उन्मुक्त करना चाहिए। मन को उन्नत करने की इस प्रक्रिया को विपर्यय या उन्मत्ती प्राप्त कहा जाता है।<sup>२</sup> देखिए गोरक्षनाथ की निम्नलिखित पंक्तियों में मन साधना को रात्र रूप से संकेतित किया गया है।<sup>३</sup>

यह मन सकृती यह मन शीघ्र ।  
यह मन पौष तत्त्व का शीघ्र ॥  
यह मन ती उन्नमति रहै ।  
तो तीन लोक की जाता करै ॥

मन साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग 'उन्मत्ती प्राप्त' 'विपर्यय' मन के उन्नत करने की प्रक्रिया है। हो सक्ता है कि उन्नतवाधियों की परम्परा को अब उन्मत्ती प्राप्त से भी कुछ प्रेरणा मिली हो।

इतिवन् निग्रह से प्राप्त, प्रायः साधना से प्रायःनाम और मन साधना से प्रत्याहार सिद्ध होते हैं। इनके सिद्ध होने पर साधक नाड़ी शोभन और कुबडली की वागरथ के मार्ग पर अग्रसर होया है। कुंडली की वागरथ प्रक्रिया के अंतर्गत ही पदचक्र मेहन का प्रसंग आता है। इन लक्ष्मों मायपंथी साधना में विशेष बल दिया गया है। इनके अतिरिक्त उन्नत अन्नवावाय की भी बड़ी महत्त्वा है। मायपंथियों में शब्द सुपति योग के शीघ्राय भी मिलते हैं। उनका शब्द योग यह नाम कुबडली के वागरथ की पूर्वाचरणा में सुनार्ह पड़ता है। प्राथमिक अन्नवावायों और विविध प्रकार की ध्यानियों सुनार्ह पड़ती हैं। नायपंथियों की समस्त साधना पञ्चति का लक्ष्य गोरक्षनाथ ने शिष्य ब्रह्मरूप अमृत का पान करना होता है। उक्त अमृत सरोवर का बर्चान उन्नतार में शिष्य ब्रह्मरूप अमृत का पान करना होता है। उक्त शीघ्र के अमृत का पान शयुय ही कर सक्ता है।<sup>३</sup>

१ गोरक्षशतक ८३

२ " " सं० पृ० १८

३ नायपंथ में योग—डा० बडुवाक कम्नाथ भोपांक से उद्धृत

“गहन मयङ्गल में धीया कुर्मां तर्हं अमृत का पासा ।  
सगुरा होव सो म्हर म्हर पिया निगुरा जाय पियासा ॥”

इस अमृत का पान करने ही लौकिक माया-मोह काग से मुक्त हो जाता है । माय का बालविक्रम अर्थ भी यही है । इस अमृत का पान करने के लिए वैराग्य भी बड़ा आवश्यक होता है । इस वैराग्य की प्राप्ति गुणरूपा से ही होती है । नापनय की इस छापना पद्धति का विलुप्त बर्तन संतों की योग छापना के प्रथम में किया गया है इसीलिए हमने उन छक्का यहाँ संकेत मात्र किया है ।

नापनयियों की भावा और अभिप्राय की विशेष विचारणीय है । तब लोग उल्लेख भी बहुत अधिक प्रभावित हुए थे । नापनयों संतों की भावा की धार प्रकृत विशेषणों हैं—

- (१) उठमें याग के पारिभाषिक प्रतीकों की अभिप्राय ।
- (२) भावा में छापना पद्य की अभिप्राय करने का एक विशेष बन है ।
- (३) उठमें शब्दों के छोड़ने मरोड़ने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है, जैसे बिन्दगी के लिए “२२” शब्द प्रयुक्त किया गया है ।
- (४) किसी एक स्थान की भावा नहीं है । उठमें विविध स्थानों की भावा के विद्य मिलत हैं ।

नापनयों वाक्यों की बचनरूपा भी एक विशेष प्रकार की होती है । हमने काम पञ्चाक्षर कुंडल पहनने की प्रथा है । इसीलिए इसे ‘कुण्डला’ भी कहते हैं । इनके अतिरिक्त वे विंगरी, मेगना, छीमी, बनेब, पंपाठी, छारा, छापाठी, गूडकी, खनर और भ्रूणा आदि भी धारण करते हैं । ‘विंगरी’ एक प्रकार का बाबा हाता है । ‘मेगना’ मूँची की रत्नों का बहिष्कार बहलाता है । ‘छीमी’ हरिय की छीय से बना हुआ एक बाबा हाता है । यह लोग एक प्रकार का बनेब भी धारण करते हैं इसी को छेपी भी कहते हैं । यह बाजी मंड के ऊपर का बना होता है । मिथ का बचना है कि कुमार्त् के योगी एत का बनेब भी धारण करते हैं ।<sup>१</sup> इसी रूप में एक लिसी भी बंधी रहती है । यह हरिय के छीय, पञ्चम और ठांवा आदि की बनी रहती है । हममें एक छारा की मनिसा भी लख गी रहती है । ‘पंपाठी’ एक प्रकार का बक होता है । लकड़ी या लोहे की छालावाओं से बक के रूप में बना रहता है । उगक छीय में एक द्वि रहता है । इस पीर में एक बोड़ी हात ही बनी है । फिर मंत्र बद्धर उमे निराणा बाता है । यही पंपाठी गोगन बना है । ‘भ्रूणाठी’ बड के उदे य लला हुआ एक बाय का रंगा हाता है । लखे

<sup>१</sup> मोकनाथ और कुण्डला वाली विद्या पृ० ११

गैर-वक्र की गूदकी कहते हैं। मध्य-वृद्ध करने के लिए एक ढंढा होता है। जम्पर—  
मिट्टी के घड़े के आधे भाग को जम्पर कहते हैं। योगी लोग शरीर में मध्य लगाते हैं  
और बाह्य मूल पर विपुलक लगाया करते हैं।

### निर्गुण काव्यधारा पर गोरखनाथी धारा के प्रभाव

संत लोगो का नासर्पणियों से सीधा सम्बन्ध है। संतों की विचारधारा पर  
उनका अनुपस्थ प्रभाव पड़ा है। मेरी तो अपनी धाराया यहाँ तक है कि संतमय  
नासर्पण का ही बलिष्ठि विरहित और परिष्कृत रूप है। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति समकक्ष  
नासर्पणी प्रवृत्ति की अनुगामिनी है। अंतर केवल इतना है कि संतों की विचारधारा  
अन्य दर्शनों से भी प्रभावित है जिससे उक्त रूप स्वयं नासर्पण से विलक्षण लगने  
सया है।

नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत पद्य का पूरा-पूरा प्रभाव संतों पर दिखलाई पड़ता  
है। नासर्पणी ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण मानते थे। उन्हीं के अनुकरणा पर संतों ने  
भी बहुत से रूपों पर द्वैताद्वैत विलक्षण कहा है। संत हरिया साहब ने लिखा है—  
“बह परमात्मा सगुण निर्गुण दोनों से विलक्षण निर्मल छत स्वयं है।”<sup>१</sup> नासर्पणियों  
के शब्दबद्ध का भी पूरा-पूरा प्रभाव संतों पर परिलक्षित होता है। जिस प्रकार  
नासर्पणी लोग शब्द को ही सर्व्व मानते थे, वही प्रकार संतों ने भी वहीं शब्द को ही  
सर्व्वस्व मानित किया है।<sup>२</sup>

नासर्पणी मन को शून्य में लीन करने को ही मुक्ति मानते हैं। उन्हीं का  
अनुकरण करते हुए संतों ने भी शून्य में मन के लय को ही मुक्ति मानित किया है।  
संत बाबू लिखते हैं—“चेतन बीच शून्य से उत्पन्न होता है और अंत में मुक्ति  
प्राप्त करने पर उसी में लीन हो जाया है।”<sup>३</sup>

नासर्पणी साधना से तो संत लोग बहुत अधिक प्रभावित हुए ही थे। संतों  
की हठधोग साधना नासर्पणी साधना का ही कर्णधार है। नासर्पणियों की ही मति  
संत लोग गुरु को महत्त्व देते थे। गुरु के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए बुधवार

<sup>१</sup> निर्गुण सगुण बुधवार से श्वारा ।

छत स्वयं होहि विमल सुधारा ॥ हरिया सागर पृ० ५४

<sup>२</sup> हरिया सागर पृ० ८ पंक्ति ४ व ५

<sup>३</sup> मूल्यादि मारा भाइया मूल्यादि मारा ज्ञाय ।

चेतन पीड़ा मुरति कई बाबू रही की ज्ञाय । संत सुधासार पृ० ४६९

के लिये' है—'गुरु देवाधिदेव ब्रह्मरूप होता है। उसका गौरव और खरूप उरलता से नहीं समझा जा सकता।'

मोक्षनाथी साधना के तीनो तत्त्व—प्राणसाधना, इन्द्रियसाधना और मन साधना सन्तों के प्रमुख साधन थे। प्राणसाधना के अन्तर्गत कुंडलनी शोधन, नाडी शोधन, चक्र शोधन, नादासुखासन, अज्ञानयोग, इतराग, मातृसाधना, अमराबाण आदि षेडको विधियों का अन्वेषण माना जाता है। सन्तों की योगसाधना के अन्तर्गत इन सबका विस्तार य उपसेवा किया जायेगा यहाँ पर विस्तार करना अनुभवुक्त मायुत पकटा है।

इन्द्रियजनक विद्वान्त को सन्तों ने अत्यन्त प्रमुख प्रतिपाद्य बनाया था। विद्वान्त रूप में बड़ी दूर तक विज्ञान अक्षियाँ हैं, उनमें सदाचार एवं इन्द्रियजनक तथा मिथ्याचारों का लक्षण मिलता है। उदाहरण रूप में सन्त दासू की निम्नलिखित शक्ति से सन्तों हैं—'मेघ शानी मेघ से प्रकृत नहीं होता अतः उद्यम सदाय प्रेम से करना आदिपुत्र को दुष्टकारी विविध प्रकार के मेघ बनाकर रहते हैं तथा शीत और गरम का आचरण नहीं करते उनसे परमात्मा प्रकृत नहीं होता है।' इन प्रकार की षेडको शक्तियाँ सन्तों में पाई जाती हैं।

साधनविधियों की मनसाधना का विज्ञानसन्तों को बहुत विदुषा था। सन्तों के दृष्ट पर उन्मोक्त सर्वत्र मन के महत्त्व और उसके परिष्कार पर बल दिया है। सन्त हरिया ने लिखा है—'मन के पीछे सारा ब्रह्म अज्ञान है जो मन के रहस्य को समझ लेता है बड़ी बुद्धिमान् है।' एक दूसरे स्थान पर उन्मोक्त पुन लिखा है—'मन ही निवम और आचारों का पापन करता है और मन ही मन का पूजा करता है।' इस प्रकार सन्तों ने षेडको बार षेडको प्रकार से मन के महत्त्व और उसके परिष्कार का आदेश दिया है। विस्तारधर से सवसा उरलन नहीं किया जा रहा है।

<sup>१</sup> गुरु हैं देवम के देवा गुरु को काय बहि ज्ञानम धिया ।

मरुगुरु ब्रह्म ब्रह्म है मनुष्यमात्र मत्र मान ॥ दयाकारी की बानी प० २

<sup>२</sup> मेघ न लंके देता विरत भाग्य ।

सर्वे कीये प्राणि विचार ॥

दुःखाचारि सब धेव बनाये ।

गं र गाव बहि विर बसे दाये ॥ दासूबाबी भ्या २, पृ० २३

<sup>३</sup> मन के पीछे सब ब्रह्म हुआका ।

मन बंधे री बहुर गुनाका ॥ हरिया सा १ प० ५

<sup>४</sup> मन ही मेघ बनकर कार्य मन ही मन के पूजा करता है । हरिया भाग्य प ३०

कहीं-कहीं संतों ने नाश्वरियों की तीनों शायनाओं के प्रति एक साथ मान्यता प्रकट की है। संत दासू लिखते हैं<sup>१</sup>—

“तन मन मबना पंच गहि निरंजन ली क्षाय ।  
जहाँ आतम तहाँ परमात्मा दासू सहज समाय ॥”

संतों पर नाश्वर्यी भाषा और अभिव्यक्ति का भी बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। कबीर आदि संत तो सबसे इतना अधिक प्रभावित हुए थे कि कहीं-कहीं पर उन्होंने शब्द, वाक्यांश, वाक्य, वहाँ तक कि पूरे पद पुनरुद्ध कर दिये हैं। उदाहरण रूप में हम यहाँ पर निम्नलिखित पद दे रहे हैं। यह लाली गोरख और कबीर में समान रूप से पाई जाती है।<sup>२</sup>

“यहु मन सकती यहु मन सीव यहु मन पाँच तत्त्व को जीव ।  
यहु मन लै उन्मनि रहै तो तीन लोक की बाटा करै ॥”

संतों की पारिभाषिक शब्दावली लगभग पन्चीस प्रतिशत नाश्वरियों से ही ली गई है। संतों के किसी शब्द का अर्थ यदि समझ में न आये तो उसकी ज़ोब सबसे पहले नाश्वर्यी साहित्य में ढूँढनी चाहिए।

संत लोग नाश्वर्यी बोनी के स्वरूप से भी पूर्णतया परिचित थे। कबीर आदि संतों ने उनके उस स्वरूप का वर्णन वा तो विविध पंक्तों के साधुओं के बेशादमर की आलोचना के प्रसंग में किया है या फिर ब्रह्मा मानसीकरण करने का प्रयास किया है। नाश्वर्यी साधु के बेशादमर के प्रति उषेष्ठा मात्र प्रकट करते हुए कबीर लिखते हैं—<sup>३</sup>

बाबा जोगी एक अकंशा जाके तीरथ बरतन मेखा ।

मोक्षी पत्र विमूठिन बटुआ अनहद बेन बसायि ॥ इत्यादि

इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर गाव पंथी जोगी का मावातरमक स्वरूप चित्रित किया गया है।<sup>४</sup>

सो जोगी जाके मन मुद्रा रात दिबस न करई निद्रा ।

मन में आसन मन में रहना मन का अप रूप मन सूँ कइना ॥

मन में लपट मन में सींगी अनहद बेन बजाबि रंगी ।

पंच पर जारि ब्यसन कर भूका करै कबीर सो तइसे सूका ॥

<sup>१</sup> दासूबाणी भाग १ पृ० ८८

<sup>२</sup> गोरखबाणी सप्तम पृ० १८ तथा संत कबीर प० ८२

<sup>३</sup> कं० प्र पृ० १५८ (१९२८)

<sup>४</sup> कं० प्र० पृ० १५८ (१९२८)

यहाँ पर नाथ सम्प्रदाय के प्रमाथों का उल्लेख बहुत संघन में किया गया है। तब तो यह है कि दोनों के गुणनात्मक सम्पन्न के लिए एक नई शीघ्र लिखने की आवश्यकता है। नाथ सम्प्रदाय का पूरा ज्ञान हुए बिना निर्गुण विचारधारा को समझना यदि असम्भव नहीं तो अशुद्धि अवश्य ही है।

### संतों पर इस्लाम धर्म की छाया

**प्रभाव की सीमाएँ—**मध्य युग में हिन्दू और बौद्ध धर्म के बाद इस्लाम धर्म की ही मान्यता और प्रतिष्ठा थी। शासक वर्ग का धर्म होने के कारण उसका प्रचार व प्रसार और भी अधिक बढ़ा। शासक वर्ग का धर्म शासित वर्ग को किसी न किसी रूप में अपरानुमानित करता है। यद्यपि संत लोग सब प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संघर्षों से मुक्त थे। किन्तु फिर भी वे अपने युग की क्रियाशील और प्रतिक्रियाशील की उदेवा नहीं कर सके। यह अवश्य है कि उन पर इस्लाम का प्रत्यक्ष और गहरा प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता। इस्लाम एक आस्था प्रधान धर्म है उसमें बुद्धिवादिता का कोई स्थान नहीं है। इसका विरोध संत मज की आध्यात्मिक बुद्धिवादिता थी है। अतएव वे बायी आस्था में जो अंधविश्वास की सीमा तक पहुँच गयी थी, विश्वास नहीं करते थे। ईसाईयत उन्होंने बायी आस्था प्रधान इस्लाम धर्म का महत्त्व हृदय में नहीं स्वीकार किया। इस्लाम धर्म का बा बुद्ध प्रधान उन पर दिखाई पड़ता है वह अंधविश्वास परम्परागत, संस्कार बलित और बाधाबलित मूल्य है।

**सत्यनिष्ठता—**इस्लाम धर्म के संभव में बहुत से अन्य धर्म बाधों का विश्वास है कि वह अत्यन्त धर्म नहीं है। बाध्य में यह विश्वास अतिमूल्य है। विश्व का प्रत्येक धर्म की प्रतिष्ठा लक्ष्य और लक्ष्यकार को नीचे पर ही की गयी है। इस्लाम इसका अन्तर्गत नहीं है। उसमें बा प्रत्यक्ष होकर दिखलाई पड़ता है उनका उत्तरदायी लक्ष्य अमुपयोगी है वह धर्म नहीं। अतएव में जिज्ञा है कि अतएव मुसलमान नहीं है बा लक्ष्य मार्ग की लक्ष्य में रहता है।<sup>१</sup> अमीर अली शाह ने इस्लाम का धर्म हा अत्यन्त माना है।<sup>२</sup> इस्लाम धर्म की अत्यन्त में भी संत बलिष्ठों का कोई प्रेरण प्रदान की हा तो उन्हें आश्चर्य नहीं।

**दीन—**इस्लाम का अर्थ महत्त्वपूर्ण एक दीन ब्रह्माण्ड है। इसे हम इसका आकार एक ब्रह्माण्ड है। दीन का अर्थ मज का जो लक्ष्य अंधित महत्त्व

<sup>१</sup> इस्लाम अध्याय ११।१४

<sup>२</sup> ईसाई विचारिता का इस्लाम ४० १२१ (१८८१ संस्करण)



दिया गया है—रोबा,<sup>१</sup> नमाज<sup>२</sup>, अन्नपत्र<sup>३</sup> और हज्ज<sup>४</sup> । अपने मुसलमान को बारीक बड़ी मन्ना के साथ पालन करना पड़ता है । कुरान शरीफ में इनसे सम्बन्धित विरोध निबन्ध दिये गये हैं । विभिन्न बरों के आइम्नर पक्ष का विरोध करनेवाले निर्गुणियों संत इस्लाम धर्म के हीन-पक्ष के विरोध निबन्धों से विरोध सम्भव नहीं है । उन्होंने उनके मानसिक पक्ष पर ही बरत दिया है । बड़ी उनकी मौलिकता थी । नमाज के लिए वे किसी समस्त विरोध को आवश्यक नहीं मानते थे । किसी दिशा विरोध की अभिमुखता भी उनके लिए कोई विरोध महत्त्व नहीं रखती थी । इसलिए संत दादू ने मानसिक नमाज का कैसा सुन्दर बर्णन किया है ।<sup>५</sup>

(दादू) हीव हजूरी दिख ही भीतर, शुद्ध हमाय सार ।  
ऊजू साजि अखर के भागे, तहाँ निमाज गुवार ॥

(दादू) काया मसीत करि पंचखमाती, मन ही मुखा इमान ।  
आप अलेख इलाही भागे तहँ सिबदा करै सखाम ॥ इत्यादि

नमाज के लक्षण ही उन्होंने रोबा, अन्नपत्र और हज्ज के मानसिक पक्ष पर ही बरत दिया है । उनका विश्वास था कि जिसका मन और हृदय पवित्र है वही सच्चा बार्मिक है । अरमदास भी ने लिखा है<sup>६</sup> कि हे माम्ब तू अपने घट में ही तीर्थों की खोज क्यों नहीं करता है, तू भ्रम ही तीर्थों की खोज में हजर-उपर घूमकर अपना जीवन गँवा देता है । तुझे मुझसे कृपे गोमती को पहचानना चाहिए और उसमें स्नान करके अपने पापों को दूर करना चाहिए । इसी मन्थर शील के सरोवर में स्नान करके संत को अपनी कामाग्नि बुझानी चाहिए—इत्यादि-इत्यादि । तीर्थों के सम्बन्ध में कही गयी अरतदास की भी यह बात हज्ज के सम्बन्ध में लागू है । इस मन्थर हम कहते हैं कि संतों ने इस्लाम के हीन के मानसिक पक्ष का ही महत्त्व दिया है । उनके पास पक्ष का पालन वह आवश्यक नहीं मानते थे ।

<sup>१</sup> कुरान शरीफ २।१८३

<sup>२</sup> " २।१८, १०, ११, १५

<sup>३</sup> " २।११

<sup>४</sup> " १।१२६

<sup>५</sup> दादूदास की बानी पाना १ पृ

<sup>६</sup> घट में तीर्थ क्यों न गहाये ।

इत बत जानो पयिक बने ही, भरमि भरमि क्यों जम्म गवायो ॥

गोमती कर्म सुधारण कीके, अपरम मीत्र सुदायो ॥

श्रीक सरावर हितकरि बहैके, काम अग्नि की तपन हुकायो ॥

इमान—दीन व अतिरिक्त इस्लाम में ईमान को भी बहुत महत्त्व दिया गया है। ईमान के अंतर्गत दो बातें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती हैं—एक ईश्वर में आस्था और दूसरी पैगम्बर में विश्वास। इन दोनों का संकेत करते हुए कुरान शरीफ में लिखा है 'कि सच्चा आस्तिक यही है या एक अस्लाह' और उक्त पैगम्बर क अतिरिक्त और विश्वास में विश्वास नहीं करता।' इमान के इन दोनों प्रमुख तर्कों का महत्त्व प्रतियोगिता प्रत्यक्ष रूप से भी किया गया है। एक ईश्वर के सम्बन्ध में उल्लेख लिखा है, तुम्हारा ईश्वर एक है और उक्त अतिरिक्त और कोई दूसरा ईश्वर नहीं है।<sup>१</sup> वह बहुत ही बृहत् और दयालु है। इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि वास्तव में तुम्हारा ईश्वर एक है। बड़ी आकाश और पृथ्वी का रक्षायी है। कुरान शरीफ में इस एक ईश्वर का बहुत ही विशेषताएँ भी व्यक्त की गई हैं। उन विशेषताओं में 'सर्वशक्ति', 'ज्ञान विशिष्टता', 'शक्तिमत्ता', 'स्वच्छा चारित्र्य', 'अनपेक्षणीयता', 'दृष्टितममता' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कुरान शरीफ में उक्त शब्द रूप भी बड़ा गया है। उक्त इस मुरबाद का प्रमुख रूप उक्त कवियों पर भी दिखाई पड़ता है। कबीर<sup>२</sup>, दादू<sup>३</sup> आदि ने अनेक स्थानों पर इस मुर की मूर्तों का उल्लेख है। मुरबाद क अतिरिक्त संतो वर एकराद का भी उदाहरण भी दिखलाई पड़ती है। किन्तु उनका एकराद शब्द इस्लामी बहुत कम रह पाया है। भारतीय अद्वैतवाद क सम्बन्ध से वह वैदिक एकराद में परिणत हो गया है। संत कबीर<sup>४</sup> की निम्न लिखित वक्तियों में इसी अद्वैत विभिन्न एकराद को मूर्तों का उल्लेख है।

हम तो एक एक करि जानां

हाइ कई तिनहो कौं होअग, तिन नोहिन पहिचाना ॥टेका॥

एकै पपम एक ही पानी, एक ओति गमारा ।

<sup>१</sup> कुरान शरीफ २१।२५

<sup>२</sup> " २।१५८

<sup>३</sup> " २१।१२

<sup>४</sup> " २२।८

<sup>५</sup> " २७।४, ३२

<sup>६</sup> " ५

<sup>७</sup> " ६।१०५

<sup>८</sup> एक मुर त लख अग उरारा कीय मन को बरे क० प्र० पृ० ११८

<sup>९</sup> एक अर्थ का उल्लेख दादू का करते हैं। दादूवाणी अंग २ पृ० १३१

<sup>१०</sup> क० पृ० १५

एकही आकषण से सब मँडि, एक ही सिरजन द्वारा ॥  
निरमै मया कछू नहीं आपै, कहै कबीर दिखानी ॥

एकेरवरबाद के लक्ष्य ही संघों पर पैगवरबाद की भी कहीं-कहीं हल्की छूना दिखलाई पड़ जाती है। किन्तु विद्वान् रूप से उन्होंने उसके प्रति आस्था नहीं प्रकट की है।

**साम्यवाद**—इस्लाम धर्म की प्राथम्य विरोधता साम्यवाद है। उनके कहीं धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से सभी बराबर समझे जाते हैं। बर्खास्तस्था संबंधी प्रत्यक्ष भेद-भाव उनमें नहीं मिलता है। अपनी अन्तिम तीर्थयात्रा करते समय मोहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को उपदेश दिया था। 'सभी मुसलमान आपस में भाई-भाई होते हैं। तुम्हें क्रम्याय से अपनी रक्षा करना चाहिए। जो गुलाम भी बन्दा बनते हैं उनके प्रति भी भाई कैसा व्यवहार करना चाहिए। संघों पर इस साम के सामाजिक और धार्मिक साम्यवाद का पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। वे लोग मुसलमानों के लक्ष्य ही पारस्परिक मेरमान बर्खास्तस्था आदि में विश्वास नहीं करते थे। उनके सामाजिक विचारों का निरक्षेपण करते समय इस कथन की कल्पना प्रकट की जायेगी।

**विश्वासाद**—इस्लाम एक निपतिवादी धर्म है। मुसलमानों का विश्वास है कि संसार के समस्त कर्म, समस्त बन्दारों और समस्त फलाफल पूर्ण निश्चित रहते हैं। उनमें कोई भी किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकता। इस्लाम के इस मान्यवाद की कल्पना भी संघों पर पड़ी थी। एक स्थल पर संघ साहू<sup>१</sup> ने लिखा है—'हि मज्जुम ए कर्ष ही दुखी होखे है। होखी नहीं है जो कुछ ईश्वर ने निश्चित कर रखा है।' इसी प्रकार संघ कबीर<sup>२</sup> ने लिखा है। ईश्वर ने जिसके लिए जो कुछ कियेना बना दिया है उससे बड़ी कल्पना ही प्राप्त होता है। उसमें से न कुछ मर बर कल्पता है और न रही मर कद कल्पता है। संघ बरनदास<sup>३</sup> ने भी मान्यवाद का समर्पन

<sup>१</sup> सावर साहब का एक दृष्टान्तिक कथन—केवल १० (१०)

<sup>२</sup> साहू साहू-साहू होखत, से कुछ रचिना राम।

कबिरी कबिरी जी, दुखी होत केवज ॥ (संघ सुबाहार १० ४८८)

<sup>३</sup> कबीरी केवल निर्जन उनसे केवल होत।

एकी जी न किन जी को फिर बूते जीव ॥ सं० ४० का० काल १ पृ० १५७

<sup>४</sup> साहो होखत कय काल।

होत कोई को होखत है कबिरी केवल ॥ इत्यादि

कते हुए लिखा है—'साधुको, देखा वही है जो इन्ने के लिए निश्चित हो चुका है। उसमें कोई क्विती प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकता।'

**संतों की प्रतिष्ठा**—इस्लाम धर्म में साधु संतों की भी बड़ी प्रतिष्ठा रही है। अलगबादी के समय से सुन्नी मुठलमानों में संतवाद का प्रचार बहुत बढ़ गया था। वे लोग संतों को ईश्वर का समीपवर्ती समझते थे। इस्लाम के इस संवाद ने भी संतों को कुछ न कुछ प्रेरणा प्रदान की होगी। इस्लाम में त्याग और वैराग्य का भी बहुत महत्त्व है। कुरान शरीफ में लिखा है—“तुम्हें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि सांसारिक जीवन एक प्रबन्धना है। धन और संतान की दृष्टि ठीक उठी प्रकार है बिध प्रच्छन्न वर्षों के बाद बनस्यति उग जाती है और उसे देखकर कुछ प्रसन्न होते हैं किन्तु वह बनस्यति क्षणिक होती है। वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इसी बनस्यति की तरह सांसारिक वैभव को देखकर भीष प्रसन्न होता है किन्तु वह वैभव है क्षणिक ही।” इस्लाम के इस त्याग और वैराग्य प्रबन्धन नस्बखानादी दृष्टिकोण ने भी संतों की विचारधारा को बल प्रदान किया था। उनही ज्ञानियों में सर्वत्र त्याग और वैराग्य विशिष्ट नस्बखानादी की मन्त्रक दिखाई पड़ती है। संत कबीर का उद्देश्य है, 'यह संसार सेंबर के फूल के सदृश आकर्षक प्रतीत होता है पर मूल में उठी की मूर्ति निस्तार है। इस क्षणिक संसार के व्यवहार में भीष को प्रमित नहीं होना चाहिए।' इसी प्रकार दयाबार्द<sup>३</sup> ने लिखा है कि 'यह संसार तुहिन-बिंदु के सदृश है। बिध प्रच्छन्न तुहिन-बिंदु पत्त मर में मण्ड हो जाता है उठी प्रकार यह भी मरवर है। अतएव भीष को मगवान की दया में विश्वास करना चाहिए।'।

**कर्मवाद**—इस्लाम एक कर्मवादी धर्म है। इस धर्म के अनुयाइयों का दृढ़ विश्वास है कि जो बैठा करता है उसे बैठा छन योग्यता पड़ता है कुरान शरीफ में लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य के कर्मों का होता उनके गले से बँधा रहता है। आपस के दिन उन कर्मों के अनुसार उसे फलाफल मिलता है। इस्लाम के इस विश्वास की अभिव्यक्ति भी संतों में मिल जाती है। उदाहरण के रूप में संत सुन्दरदास की निम्नलिखित वक्तव्यों से सकते हैं।<sup>४</sup>

<sup>१</sup> कुरान १।२२

<sup>२</sup> बड़ देसा संसार है, ईसा सेंबर फूल ।

विध दस के व्यवहार की, इन्ने रंगिब भूमि ॥ कबीर प्रव्यावर्ती पृ० २१ ।

<sup>३</sup> शैवो मोती चोस को, तैसा यह संसार,

विध संसार विध एक में, दया समुंवर धार ( संत सुभासा पृ० २१ )

<sup>४</sup> सुन्दरवितास पृ० २१

एकही जाक फरे सब मंडि, एक ही सिरजन हारा ॥  
निरमे मया कछु नहीं ब्यापै, करै कबीर दिवानां ॥

एकेबरबाद के उद्योग ही संतों पर पैगम्बरवाद की भी खड़ी-खड़ी इस्वी क़ायम दिखलाई पड़ जाती है। किन्तु सिद्धान्त रूप से उन्होंने उठके प्रति आस्था नहीं प्रकट की है।

**साम्प्रदाय—**इस्लाम धर्म की प्रायःमूल विरोधता साम्प्रदाय है। उनके यहाँ धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से सभी बराबर समझे जाते हैं। बर्ख़ास्वतया संबंधी प्रत्यक्ष भेद-भाव उनमें नहीं मिलता है। अपनी अन्तिम तीर्थयात्रा करते समय मोहम्मद साहब ने अपने अनुचरों को उपदेश दिया था।<sup>१</sup> सभी मुसलमान आपस में भाई-भाई होते हैं। तुम्हें अन्वाम से अपनी रक्षा करनी चाहिए। जो गुलाम भी ममाब पड़ते हैं उनके प्रति भी भाई जैसा व्यवहार करना चाहिए। संतों पर इस साम्प्रदाय के सामाजिक और धार्मिक साम्प्रदाय का पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। वे लोग मुसलमानों के उद्योग ही पारस्परिक भेदभाव बर्ख़ास्वतया आदि में विश्वास नहीं करते थे। उनके सामाजिक विचारों का विश्लेषण करते समय इस कल्पन की उत्पत्ता प्रकट की जायेगी।

**नियतिवाद—**इस्लाम एक नियतिवादी धर्म है। मुसलमानों का विश्वास है कि संसार के समस्त कार्य, समस्त घटनाएँ और समस्त फलाफला पूर्ण निश्चित रहते हैं। उनमें कोई भी फिती भी प्रकट या परिवर्तन नहीं हो सकता। इस्लाम के इस मान्यवाद की क़ायम भी संतों पर पड़ी थी। एक स्थल पर संत बाबू<sup>२</sup> ने लिखा है—'हि मनुष्य दू ब्यर्थ ही बुझी होला है। होली नहीं है जो कुछ ईश्वर ने निश्चित कर रखा है।' इसी प्रकार संत कबीर<sup>३</sup> ने लिखा है। 'ईश्वर ने किसके लिए जो कुछ कियना बना दिया है उसको वही छतना ही प्राप्त होला है। उसमें से न किस मर पड़ सकता है और न रही मर नहू सकता है। संत बरनदास<sup>४</sup> ने भी मान्यवाद का समर्थन

<sup>१</sup> अजबत लाहुरस जाऊ इस्लामिक कस्बर—बोस्कुम प० २०१

<sup>२</sup> बाबू साहब-बाहबै होइगा, से कुछ रचिवा राम।

कहिबी कबपै मरि, हुकी होत बैअम ॥ (संत मुवाछार प० ४८८)

<sup>३</sup> बाकी जैता निमवा छाको जैता होव।

हरी घटे न ठिक बई जो सिर हूये कोव ॥ सं० स० सा० अजब १ पृ० १९७

<sup>४</sup> साधो होबहार की बात।

होत सीई जो होबहार है कार्य पैरी बात ॥ इत्यादि

भयते हुए लिला है—‘आपुत्रो, होठा नही है जो होने के लिए निरिन्व हो पुत्र है ।  
उसमें कोई किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकता ।’

**संतों की प्रतिष्ठा**—इस्लाम धर्म में साधु-संतों श्री मी नबी प्रतिष्ठा रही है । अल्लाहवादी के समय से सुन्नी मुसलमानों में संतवाद का प्रचार बहुत बढ़ गया था । वे लोग संतों श्री ईश्वर का समीपवर्ती समझने थे । इस्लाम के इस संवाद ने मी संतों को कुछ न कुछ प्रेरणा प्रदान श्री होगी । इस्लाम में त्याग और वैराग्य का मी बहुत महत्त्व है । कुतब शरीफ में लिखा है—“हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि सांसारिक जीवन एक प्रवचना है । धन और संतान श्री बुद्धि ठीक ठीक प्रकार है जिस प्रकार वर्षा के बाद वनस्पति उग जाती है और उसे देखकर कृत्क प्रसन्न होते हैं किन्तु वह वनस्पति क्षणिक होती है । वह शीम ही नष्ट हो जाती है । इसी वनस्पति श्री तरह सांसारिक जीवन को देखकर जीव प्रसन्न होता है किन्तु वह जीवन है क्षणिक ही ।” इस्लाम के इस त्याग और वैराग्य प्रधान नरन्यायावादी दृष्टिकोण ने मी संतों श्री विचारधारा को बल प्रदान किया था । उनकी बानियों में सर्वत्र त्याग और वैराग्य विशिष्ट नरन्यायावाद श्री मन्त्रक दिखाई पवती है । संत कबीर का उद्देश्य है,<sup>१</sup> ‘यह संसार संसार के फूल के तरह आकर्षक मयैव होता है पर मूल में उठी श्री मांति निस्तार है । इस क्षणिक संसार के व्यवहार में जीव को भ्रमित नहीं होना चाहिए ।’ इसी प्रकार दवाबार्द<sup>२</sup> ने लिखा है कि ‘यह संसार इहिन बिंदु के तरह है । जिस प्रकार इहिन बिंदु पल भर में मच्छ हो जाता है उठी प्रचर यह मी नरकर है । अतएव जीव को मगवान् श्री दमा में विरवास करना चाहिए ।’

**कर्मवाद**—इस्लाम एक कर्मवादी धर्म है । इस धर्म के अनुयायियों का उद् विरवास है कि जो बैठा करता है उसे बैठा फल मोगना पवता है कुतब शरीफ में लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य के कर्मों का सेला उनके गले से बैधा रहता है । आत्मरक्ष के दिन उन कर्मों के अनुसार उसे फलाफल मिलता है । इस्लाम के इस विरवास श्री अभिमुखि मी संतों में मिल जाती है । उदाहरण के रूप में संत मुन्दरदास श्री निम्नलिखित पंक्तियों से सज्जे हैं ।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> कुतब १।२१

<sup>२</sup> बहू देवा संसार है, जैसा संसार कृत्क ।

जिन इस के व्यवहार की, मठे रोगिन मूति ॥ कबीर प्रयागवासी पृ० २१ ।

<sup>३</sup> जैसी मांती जोस को, तैसा यह संसार,

जिन सजाव जिन नृक में, दया समुन्दर पार ( संत मुबासार पृ० २१ )

<sup>४</sup> मुन्दरदास पृ० २१

“होवेगा हिसाब अब तब न आवेगा जवाब कुछ ।  
सुन्दर कहत गुनहगार है सुशाय का ॥”

**स्वयंभवात्मक प्रवृत्ति**—उठों पर इस्लाम की कुछ स्वयंभवात्मक प्रवृत्तियों का भी प्रमाण पड़ा था। इनमें मूर्ति पूजा के विरोध की प्रवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है। इस्लाम धर्म में मूर्तिपूजा का खंडन बड़ी दृढ़ता से किया गया है। कुयन शरीफ में लिखा है कि मूर्तिपूजा एक अक्षय्य अपराध है। इसी प्रकार मूर्तिपूजकों के प्रति पुराना मदर्शित करते हुए लिखा है कि यह उस मक़्द्रे के सदृश होता है जो अपने बनाने हुए बाल में आप ही फँस जाता है। उठों ने मूर्तिपूजा का विरोध उठी कट्टना के साथ किया है बिना कट्टना के साथ मुसलमान लोग करते हैं। सामाजिक विचारों के प्रसंग में इस बात का पूर्ववर्था स्पष्टीकरण किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छारप्रही उठ लोगों ने हिंदू विचारपाप को ही अपनाते की चेष्टा नहीं की जो वरन् उन्होंने इस्लाम के कुछ तत्वों का श्रवण भी स्वीकार किया था।

### सूफीमत और सन्तकवि

**इस्लाम और सूफीमत में अन्तर**—सूफीमत का उद्भव आस्थाप्रधान इस्लाम धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इसीलिए दोनों में बड़ा अन्तर दिखलाई पड़ता है। सूफी लोग अन्त मुसलमानों की भाँति शराबपान में विरोध विश्वास नहीं करते वह बात वृथ्वी है कि बाइबल हम से वे उनके प्रति बोझी बहुत बड़ा प्रकट कर दें। किन्तु बाल्य में वे उन्हें शरब और सूखी छात्रगा मार्ग दोनों से ही एक समझते हैं<sup>१</sup>। सूखी लोग मुहम्मद साहब को पैगम्बर के रूप में स्वीकार नहीं करते। वे उन्हें ईश्वर की व्योम्ति का प्रकट मानते हैं। उनके मतानुसार शरी सृष्टि का निर्माण उठी प्रकाश की सीला क हेतु हुआ<sup>२</sup> है। इस्लाम धर्म में बाइबल आचारों पर विरोध बल दिया गया है किन्तु सूखी लोग आन्तरिक शुद्धता को ही धर्म का सर्वस्व मानते हैं। इस्लाम में आन्तरिकचिन्तन के लिए कोई स्थान नहीं है किन्तु इसके विपरीत सूखी मत में स्वयंभू चिन्तन और निरपेक्ष मनन को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। तब तो यह है कि एक इस्लाम की आध्यात्मिक धर्म आस्था है जो अन्तविश्वास को सीमा को दूने करती है। इसके विपरीत सूखे की प्रतिष्ठित भावनामूलक बुद्धि वादित्या की दृष्टभूमि पर कुर है। इस्लाम और सूफीमत में बड़ी मौलिक अन्तर है।

<sup>१</sup> नाउर अहमद साह इस्लामिक कल्चर भाग २ पृष्ठ १०५-१०६ ।

<sup>२</sup> इस्लामिक प्रोपीटीया काद रिखीजल पृष्ठ पब्लिकस- भाग १२ पृ० १५ ।

आध्यात्म चिंतन—सूची मत में स्वयंभू जितन के फलस्वरूप आध्यात्म

निरूपण श्री परमपठ प्रवर्धित हुई। प्रायः सभी सृष्टियों ने सत्य स्वरूपी आध्यात्मिक विषयों के सम्बन्ध में अपनी धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। इस धारणा वैमिन्न अथ अंतरा सत्य को स्वातन्त्र्य के सहारे अनुभव करना या। ये सत्य के अन्वेषक एवं सच्चे साधक सन्त थे। अपनी-अपनी व्यक्तिगत साधनाओं के अनुरूप ही ये सत्य के स्वरूप का अनुभव करते थे। उनकी वाणी में ठसी अथ रहस्यात्मक बर्णन मिलता है। बलाहरीन<sup>१</sup> कृष्ण ने मिश्र-मिश्र सृष्टियों द्वारा सत्य के भिन्न भिन्न पक्षों की अनुभूति की प्रक्रिया को समझाने के लिए बहुत से अर्थों के बीच में लड़े हुए हाथी का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार केकड़ों अन्वेषक ही हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों को छूकर उसके स्वरूप की व्याख्या ठसी अर्थ के अनुरूप करते हैं ठसी प्रकार सूची साधकों ने अपनी-अपनी साधना<sup>२</sup> के अनुरूप सत्य के एक विशेष का अनुभव कर ठसी का उद्घाटन किया है। उसका परिणाम हुआ कि आध्यात्मिक विषयों के सम्बन्ध में सूची साधना क्षेत्र में अनेक मतवादों का उदय हो गया।

आध्यात्म का विषय बड़ा ही जटिल है। बिना किसी सच्चे पथ-दर्शक के सत्य के स्वरूप का अनुभव करना बड़ा ही कठिन होता है। इसीलिए सूची लोगों में पीर की बड़ी प्रतिष्ठा है। पीर ही मुहिद को सत्य के मार्ग में प्रवृत्त करता है। शिया लोगों में बा हमाम का स्थान होता है, सृष्टियों में बड़ी पीर का स्थान होता है। सृष्टियों में पीर के महत्त्व का अनुभव प्रविद्ध सूची पूलनूल<sup>३</sup> के उन शब्दों से किया जा सकता है जिसमें उठने पीर को ईश्वर से भी अधिक महत्त्व दिया है। उठने सिखा है कच्चा मुहिद बहो है बा पीर की आवाज का गानन ईश्वर की आवाज से भी अधिक उत्तरदा से करता है। बलाहरीन कृष्ण ने अपने शमशये-वर्षीय के प्रति जो भद्रा प्रकृत की है उससे भी पीर के महत्त्व का आभास होता<sup>४</sup> है। सूत्रमत की सबसे पहली शिक्षा यही होती है कि मुहिद सदैव मुहिद के स्थान में ही मग्न रहे। जब उसका स्थान मुहिद में केन्द्रित हो जाता है तो मुहिद उसके उठ स्थान परमात्मा में केन्द्रित करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूत्रमत में मुहिदवाद का प्रचलन रूप में विद्यमान हुआ है। मुहिद ही मुहिद का सच्चे आध्यात्म को दीक्षा देता<sup>५</sup> है।

<sup>१</sup> हेमिपु निरूपण अनुवादिन बलाहरीन कृष्ण की मसमधी—पृ० संख्या

<sup>२</sup> इन्कमुम्स आच इन्तान—ताराचन्द्र—पृ० ८१

<sup>३</sup> हीबान-य-शमश-य तबरीज-इम्प्राकस्तान पृ० २२

<sup>४</sup> इन्कमुम्स आच इन्तान पृ० ८१

<sup>५</sup> दि इरविनोत्र-त्रे० पी० आडन पृ० १२५१६





मान्यता दी है। उनके मन्तानुसार परमात्मा का कारणमें अभाव हीमूर्त्य बहाल (ऐस्वी) अभाव (पूर्वका है)।<sup>१</sup>

**इन्सान**—सूक्ष्म लोग इन्सान को परमात्मा का प्रतिरूप मानते हैं। वह दर्पण स्वरूप है जिसमें परमात्मा के रूप और गुण प्रतिबिम्बित रहते हैं। वह इनके मन्तानुसार परमात्मा और प्रकृति दोनों के बीच की कड़ी है। उनके अन्तानुसार मनुष्य सबसे पहला रूप है जिसमें परमात्मा ने अपने को प्रतिबिम्बित किया था। सूक्ष्मों के एक वर्ग के अनुसार सृष्टि के दो भेद हैं—आत्मे अन्न और आत्मे अन्न। मनुष्य या इन्सान इन दोनों वर्गों की समष्टि माना गया है। उसे आत्मे शरीर कहते हैं। आत्मे अन्न के तत्व हैं—अन्न, रुद्र, सिर, अग्नि और अन्न। आत्मे अन्न के तत्व हैं—नस्त तत्व अनासिर अथवा पञ्चतन्त्र स्थिति बल पाक मग्न एवं समीर।<sup>२</sup> सूक्ष्मों के एक और समुदाय के अनुसार इन्सान के चार विभाग होते हैं—नस्त (इन्द्रिया) रुद्र (चित्त) अन्न (हरय) और अन्न (भुक्ति) रुद्र को वे लोग ईश्वर का अंग मानते हैं।<sup>३</sup> उनकी धारणा है कि वह अपने पूर्वांग से मिलने के लिए सदैव म्याकुल रहता है। उस रुद्र का पूर्वांग में मिलने के लिए अन्न-अन्नात्तर धारणा करनी पड़ती है। तभी वह तादात्म्य प्राप्त कर पाती है। इसी प्रसंग में सूक्ष्मों की एक वह विशेषता प्रगट हो जाती है जो इस्लाम धर्म के अनुयायियों को मान्य नहीं है। सूक्ष्म लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। इसके विपरीत मुसलमान लोग इस विश्वास में अविश्वास रखते हैं। मुसलमानों और सूक्ष्मों में वह एक बड़ा अंतर है। अन्न को भी सूक्ष्म लोग कोय भौतिक पदार्थ नहीं मानते। उनकी दृष्टि में वह भी एक मूलांगीय पदार्थ है। उनका विश्वास है कि अन्न ही ईश्वर का सिंहासन है। उसी आठ बुधियाँ ही उस सिंहासन के आठ पाये हैं। वे लोग अन्न को भी कोय भौतिक तत्व नहीं मानते वे निरु उसे अन्न की अथवा रूप अन्न समझते हैं। अन्न के तीन विभाग किये गये हैं—अन्ने अन्न, अन्ने अन्न और अन्न। सूक्ष्म धारणा का अन्न नस्त के प्रति बहाल करते हुए अन्न के सहारे ईश्वर के सिंहासन का अन्न को परिपूर्ण रक्षता तथा उस पर प्रतिष्ठित ईश्वर का आधिक्य प्रतिक्रम रुद्र में सम्भव होना होता है।

अनुसूत कर्म नामक सूक्ष्म ने अपने इन्सान पर अमिल नामक ग्रंथ में इन्सान

<sup>१</sup> आरट्य अन्नात्तर अन्न इन्सानिक अन्न अन्न भाग २—सूक्ष्मोंवाला अन्नात्तर अन्नात्तर

<sup>२</sup> सूक्ष्म अन्न सेटस् एव अन्नात्तर—पृ० ११२

<sup>३</sup> आरटी अन्नात्तर अन्नात्तर—पृ० ११२

<sup>४</sup> आरट्य अन्नात्तर अन्न इन्सानिक अन्न अन्न—आरट्य सेटस् एव

के सम्बन्ध में कुछ अधिक विस्तृत विचार किया है। उसने स्वान के चार प्रधान विभाग बतलाये हैं—शरीर, आन्तरिक अज्ञान, ज्ञान और देवी अर्थात् वास्तव में उसके ये चार विभाग ऊपर बताये गये इमान के चार विभागों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। आत्मा के सम्बन्ध में भी सूक्तियों में बहुत से मतवाद प्रकटित हैं। कुछ लोग अंधाधिकारी हैं। इनका कहना है कि आत्मा परमात्मा का ही एक अंग होता है। वे लोग उसे परमात्मा के सदृश ही धरम और प्रकाश रूप में मानते हैं। कुछ सूक्तियों का कहना है कि आत्माएँ दो प्रकार की होती हैं—एक देवी और दूसरी इंसानी। इसी प्रकार कुछ लोगों की धारणा है कि आत्माओं का निर्माण परमात्मा करता है और वे संस्था में अनेक होती हैं। इन सबमें पहला मत ही अधिक मान्य और प्रकृतित समझा जाता है। यह मत हमारे यहाँ के वैदिक के मत से बहुत मिलता-जुलता है।

सृष्टि वा सृष्टि के सम्बन्ध में भी सूक्तियों में बड़ा मतभेद है। ईशादिया वर्ग के सूक्तियों का कहना है कि परमात्मा ने अस्त से सृष्टि का निर्माण किया है। बह्दिया वर्ग प्रतिनिधकारी है। उसके अनुसार संसार एक दर्पण जिसमें अदृश्य परमात्मा ही दर्पणवाद हो रहा है। कुछ दूसरे सूक्तियों का कहना है कि सृष्टि परमात्मा का विकर्षन-मात्र है। वे लोग बगत् को अनित्य नहीं मानते केवल उसके रूप और नाम को ही अनित्य मानते हैं। इनका कहना है कि बगत् की उत्पत्ति पितृ की उत्पत्ति के सदृश होती है। उसी के सदृश हम अपने सत्य को उपलब्ध कर लेंगे<sup>१</sup> हैं। किसी धार्मिक ने सृष्टि का विचार बहुत कुछ माथीय दग पर निरूपित किया है। उनका कहना है कि सबसे पहले इन्द्रिय अज्ञान-इन्द्रिय मात्र था। अज्ञान और बगत् दोनों उसी में अन्तर्निहित थे। अज्ञान ने इच्छा होने पर अपनी अज्ञानपूर्ण इन्द्रिय से बल की सृष्टि की। फिर अज्ञानपूर्ण इन्द्रिय से बल में विकीर्षन उत्पन्न हुआ। उसके परिवर्तन-रूप से सृष्टि उत्पन्न की गई। सत्य संसारों, सत्य आत्मानों तथा सत्य समुद्रों की रचना उसी से हुई।

सूक्तियों में बगत् के भी कई रूप बलिष्ठ किये हैं। अज्ञानकारी ने दो प्रकार के बगत् बतलाये हैं। एक धरम बगत् जिसे वह आत्मे उच्च मुक्त कहता है और दूसरा आत्मे उल्लापक। यह दूसरों के रहने का स्थान बतलाता है। मंसू इत्यादि में इसी प्रकार के तीन संसारों की कल्पना की थी। उनके नाम अमरा, आत्मे मायत आत्मे अज्ञान, आत्मे अज्ञान और आत्मे अज्ञान है।<sup>२</sup> एक दूसरे मुत्समान दार्शनिक ने सत्य संसारों का उत्पत्ति किया है। मंसू इत्यादि के तीन संसारों

<sup>१</sup> बही भाग २ पृ ४९३।

<sup>२</sup> बही की विचारधारा—पृ० १७०।

<sup>३</sup> बही की विचारधारा—पृ० १७१।



विभिन्न प्रकार से प्रतिपादन किया है।<sup>१</sup> मंस्टर इतिहास ने लिखा है—ईश्वर की मूल सत्ता प्रेम ही है। प्रेम के सहारे ही उसने अपनी अभिव्यक्ति की है और प्रेम के सहारे ही वह अद्वैतरूप में प्रकटित होता<sup>२</sup> है। जामी ने प्रेम को सृष्टि का आध्यात्मिक अक्षर<sup>३</sup> माना है। बलाहुरीन रूपी प्रेम को समस्त बर्णों का धार मानते थे। कमी ने अपनी मठनयी में प्रेम को वाचना कमी मयंकर स्रष्टे का विनाशक कहा है। वह प्रेम ही तापक को ज्ञान के द्वार पर ले जाता<sup>४</sup> है। उसने एक वृत्ते स्पष्ट पर प्रेम की विरोधता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रेम कमी सन्ने प्रेमी को कल्पे नहीं देता। उसे वह नित्य मर्बोम शास्त्रत सीन्दर्भ की अनुभूति कराता रहता है। और पद-पद पर नित्य मर्बोम विभूति प्रदान करता है। एक वृत्ते स्पष्ट पर उसने प्रेम और विरह के सम्बन्ध की ओर संकेत किया है। उसने लिखा है कि प्रेम की ब्याधा ने ही मुझे प्रकटित किया है। उसी की मदिरा ने मुझे उन्मत्त बनाया है। प्रेम मरकुल की पास की तरह का होता है। बिध प्रकार नरकुल की पास को वही प्राप्त कर सकता है जो बल बहाने को तैयार हो। उसी प्रकार प्रेम का अभिधारी भी नहीं है जो बलिदान के लिए तैयार<sup>५</sup> हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टियों ने प्रेम ही ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र साधन स्वीकार किया है। तौन्दर्ब कल्प, विरह कल्प, मादम कल्प और आनन्द कल्प आदि सब प्रेम की ही शाखाएँ प्रशाखाएँ हैं।

प्रेम में बलिदान का बहुत बड़ा महत्त्व होता है—वह बात जमी हम ऊपर बता आये हैं। सृष्टियों ने साधना में स्वाग, वैराग्य और बलिदान का महत्त्व बार-बार की मृत्युओं की कल्पना करके<sup>६</sup> किया है।

- (१) स्वैत मृत्यु—अर्थात् उपवास और व्रत से शरीर का मारना।
- (२) काही मृत्यु—कर्मों को शक्तिपूर्वक धेरे के साथ छहन करना।
- (३) सास मृत्यु—समस्त वासनाओं को अपने अधीन करना।
- (४) हरी मृत्यु—मोटे और कर्मगत बर्णों का प्रयोग करना।

जब तापक नैतिक आचरणों के पाठन द्वारा तथा प्रेम-प्राप्ति के सहारे उपर्युक्त बार-बार की मृत्युओं को सहन कर लेता है तब बाल्य में उसकी वाधा का मारम्भ

<sup>१</sup> आडट काइन्स काक इतिहासिक अक्षर—भाग २ पृ० ४०८ ४८०

<sup>२</sup> कैक्य इन्साइक्लोपीडिया काक रिक्लीजस क्लव पविषस भाग १२ पृ २४१

<sup>३</sup> वृत्त ब्रह्मेका—ई० जी० आडट द्वारा अनुवादित—कैक्य रिक्लीजस सिस्टरप्स काक दि वर्स—पृ० ३२८

<sup>४</sup> कमी वार्ड निकत्रसस—पृ० २१

<sup>५</sup> " " " —पृ ४३ टिप्पणी नं० १

<sup>६</sup> आडट काइन्स काक इतिहासिक अक्षर भाग २ पृ० ४१४

समग्र जाता है। इस वाक्य मार्ग के बहुत से छुट्टियों ने चार विभाग किये हैं। उनके नाम क्रमशः शरीर, तरीर, हृदय और मारिफत हैं। बाशर छुट्टी इन चारों को मिला देत है किन्तु वेद्य छुट्टी जबल अन्तिम तीन को ही मान्य समझते हैं। साधना मार्ग के इन चार प्रकारों के अतिरिक्त बहुत से छुट्टियों ने छठ मुकामत और बहुत से हासत भी सम्पना की है। वे छठ मुकामत क्रमशः इस प्रकार हैं। १—प्राविषय, २—अकिषनता, ३—त्याग, ४—संतोष, ५—ईश्वरनिश्वास, ६—सर्व तथा ७—निरोध।<sup>१</sup> प्रसिद्ध हासत इस प्रकार हैं—प्यान या मनम (गुरफ्त), ईश्वर सामील (सु), प्रेम (सुहृद), मय (नीर), आया (रिबा), इफ्त (शौल), अतिपरिषय (डन्व) शक्ति (इतमिान), बिन्दन (सुरादा) और निश्चय पश्चिम।<sup>२</sup> ऊपर हमने बिन १४ आध्यात्मिक सम्बन्धी वैदिक विशिष्टताओं का उल्लेख किया है उनमें सातों का भी समावेश हो गया है।

यहाँ पर छुट्टियों की प्रसिद्ध चार अवस्थाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक है—पहले अवस्था शरीर<sup>३</sup> की है। इसके अंतर्गत धार्मिक ग्रंथों में वर्णित विधि-विधानों का बालन जाता है। बाशर छुट्टी सबसे पहले इसी अवस्था में विधि लागू करते हैं। किन्तु वेद्य छुट्टी इनको मिला नहीं देत; वृत्ती अवस्था तरीर कहलाती है। इस अवस्था में पहुँचकर साधक बाह्य विधि-विधानों का त्याग कर देता है और मानसिक एवं धार्मिक शुद्धि की ओर प्रवृत्त होता है। तीसरी अवस्था का नाम हृदय<sup>४</sup> है। इस अवस्था में पहुँचकर साधक को स्वयं का बोध होने लगता है।<sup>५</sup> दुबरी में हृदय का मन के तीन लक्षण माने हैं। वे क्रमशः ज्ञान की शक्ति का ज्ञान, उसके गुणों का ज्ञान और उच्यते हुए का ज्ञान हैं। चौथी अवस्था मारिफत नाम की है। इस हम उत्पानुमूर्ति-बनित सिद्धावस्था कह सकते हैं। दुबरी ने इसके दो भेद माने हैं—हासी और इस्मी। हासी उत्पानुमूर्तिबनित अवस्था की प्राप्ति, सुधी, मुरा और नूरु आदि से बतलाई जाती है। कुछ सुधी हासत की हासत तक पहुँचने तक इन नाम तर्कों का प्रयोग अनावश्यक मानते हैं। उन्हें हम आदर्शवादी सुधी कह सकते हैं। वे इतकी प्राप्ति का मूल कारण ज्ञान मानते हैं। दुबरी ने इसी को इस्मी मारिफत की अवस्था<sup>६</sup> कहा है। हासत वा ईश्वरोन्माद की अवस्था के भी कई पद अस्ति किये गए हैं। स्वल्प से त्याग पद और प्राप्ति पद विशेष उल्लेखनीय हैं। त्याग पद के अन्तर्गत चना

<sup>१</sup> आदर कार्डस आक इस्लामिक क्वाटर भाग २ पृ० ४८०

<sup>२</sup> दि मिस्त्रिस आक इस्लामिक क्वाटर प्रथम अध्याय

<sup>३</sup> आदर कार्डस आक इस्लामिक क्वाटर पृ० ४७०

<sup>४</sup> वही पृ० ४७१

<sup>५</sup> काफ बल मदन्व पृ० १७

<sup>६</sup> आदर कार्डस आक इस्लामिक क्वाटर भाग २ पृ० ४७१

अपनी सच्चा का विस्मयण फलतः अहंकार का मद, हुक प्रेम का मद, प्राप्ति पक्ष के अन्तर्गत (बन्धा), परमात्मा में स्थिति (बन्ध), परमात्मा की प्राप्ति और (राह) पूर्ण शक्ति गमन स्थितियाँ आती हैं। कुछ सूक्तों ने उपर्युक्त चार अवस्थाओं के स्थान पर चार यात्राओं की धम्मना की है। पहली यात्रा मारिका से पफना तक मानी जाती है। दूसरी यात्रा फना से बका तक की है। इस स्थान पर पहुँचकर सायक कुटुम्बपूर्व पुन्य हो जाता है। तीसरी यात्रा में सफल होकर सायक लोचसंमह बन जाता है। इसी अवस्था में उस शेष की पदवी दी जाती है। चौथी अवस्था मृत्यु की है जिसमें पहुँचकर सायक साय से मिलन जाता है।

असीम धर्म की उत्तीर्ण शक्तों में बाँधना बड़ा अठिन होता है। सूक्त सायक साय सम्बन्धी रहस्यानुभूतियों का अनुभव समय-समय पर करता है। वह उनकी उत्तीर्ण बड़ा अभिम्बजन के लोम का भी नहीं कर पाता इसीलिए वह उनकी अभिम्बक्ति करने के लिए प्रतीकों, रूपों, अभ्योक्तियों और समासोक्तियों आदि का संवरण आभय करता है। सूक्तों में तो इनका और भी अधिक प्रचार था। अत्रबली पवित्र ने हमारी इस बात का समर्थन करते हुए लिखा है कि सूक्तों के रक्षक उनके प्रतीक ही रहे हैं। मैं तो किसी भी मक्ति-भाषना में प्रतीकों की प्रसिद्धि रखती है पर वास्तव में सूक्ति में उनका पूरा प्रचार है। रहस्याद की अभिम्बक्ति में प्रतीक पद्धति कई प्रकार से उदाहरण होती है। अनिर्बन्धनीय को बन्धीय बनाने के अतिरिक्त प्रतीक विरोधी मतों के लड़न और समान मतों के मंडन में भी समर्थ होते हैं। सूक्ति आचार्य अरिष ने प्रतीकों के द्विधा महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है—उनके प्रयोगों से हो स्थान लाभ होते हैं। एक तो प्रतीकों की ओर लेने से धर्म बाधा दल जाती है दूसरे उनके प्रयोगों से उन बातों की अभिम्बन्धना भी स्पष्ट हो जाती है। बिनके निर्वर्तन में बन्धी मूक अवस्था अस्मर्थ होती है। सूक्तों का प्राक्मूल तत्त्व उचिततम है। उचिततम की परम अभिम्बक्ति धम्मस्थ प्रतीकों के उद्धार ही हो सकती है। इसीलिए सूक्ति लोगों में इन प्रतीकों की बड़ी मान्यता रही है।

### सन्तुमत पर सूक्तियों के प्रभाव

मध्ययुग में सूक्ति मत का भी बहुत अधिक प्रचार था। स्थान-स्थान पर सूक्ति स्थल रहते थे। निर्गुणियों अन्तः उनकी उत्संगति किया करते थे। उक्त उत्संगति के फलस्वरूप वे लोग कुछ बातों में उनके भी प्रभावित हुए थे।

सूक्ति मत के प्राक्मूल तत्त्व प्रेम और विरह हैं। यह दोनों तत्त्व कर्मों को बहुत

<sup>१</sup> बाबली प्रयाग की भूमिका—पृ० ११८।

<sup>२</sup> निरिच्छा का इच्छाम—पृ० ११४-११५।

दिये थे। "इसीलिए अपनी विचारबाधा में उन्होंने इन दोनों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। मन को वर्ध्मभूत करने के लिए यह दोनों तरह बहुत भेदस्वर हैं। दादू कहते हैं<sup>१</sup> कि विरह और प्रेम की सहारियों में मन पंगु अर्थात् शुद्ध हो जाता है। दादू पुनः कहते हैं—विरह मन के अङ्गुणों को दूर करता है। आध्यात्मिक प्रेम तबमें रस की प्रतिष्ठा करता है। आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप क्या है इसको स्पष्ट करते हुए दादू लिखते हैं<sup>२</sup>—सच्चा प्रेमी बड़ी होता है बिधमें प्रेमी और प्रियतम एक का हो जाते हैं। सच्चा प्रेम ईश्वरपरक होता है। आध्यात्मिक प्रेमी के स्वरूप का वर्णन करते हुए दादू ने लिखा है<sup>३</sup>—सच्चे मारिकुत वाले प्रेमी को जो संसार को त्याग कर सब प्रकार से संतुष्ट है तथा जो अपने प्रियतम के ध्यान में निरन्तर निरत रहते हैं और प्रेम विरह की मधुर पुष्कर से मुत्तारित रहते हैं<sup>४</sup>।

प्रेम और विरह के साथ ही साथ सन्तों ने मृत्यु को भी महत्त्व दिया है। किन्तु उनकी मृत्यु मानवत्मक है नैतिक नहीं। उस मदिरा को पीने का उपदेश देते हुए सन्त चरमदास<sup>५</sup> लिखते हैं—

अवधू पेसी मदिरा पीजे ।

वैठि गुफ्त में यह जग विसरै बंद सूर सम की से ॥

जहाँ कुलास चढ़ाई माठी ब्रह्म ज्वाला पर जारी ।

भरि-भरि प्यासा वेत कुलासी वाढे भक्ति सुमायी ॥

माता हूँ करि ज्ञान अज्ञा लै काम क्रोध कू मारै ।

धूमत रहै गई मन चंचल दुविधा सकल बिचारै ॥

जो बस्ती यह प्रेम सुधारस निज पुर पहुँचे सोई ।

अमर होय अमरा पद पावै आवागमन न होई ॥

एक ही लोग साधक को कालिक या यात्री कहते हैं और साधना को एक यात्रा मानते हैं। उस यात्रा में चार पड़ाव और सात मुकामात चिह्नित किये गये हैं। सन्तों ने चिह्नों की साधना संबंधी इस धारणा का प्रति अमली स्वीकृति प्रकट की है।\*

<sup>१</sup> विरह प्रेम की कहरी में बह मय पगुल होय । दादू भाग १ पृ० ४१

<sup>२</sup> विरह अगिनि में बस गए मत के मीस बिझर । दादू भाग १ पृ० ४३

<sup>३</sup> आसिक मामूक होइ गया इसक कहावै साई

<sup>४</sup> दादू उस मामूक का अन्वय आसिक होई । दादू भाग १ पृ० ४४

<sup>५</sup> दादू बानी भाग १ पृ० ६० । साली ३६

<sup>६</sup> सन्त चरमदास की बानी भाग १ पृ० ३८

\* दादूबानी भाग १ पृ० ३८-४६ तक यात्रा के चार साधना मार्गों का वर्णन किया गया है



सूफी धारणा मार्ग के चार पहरों के नाम क्रमशः शरीफत, तरीफत, इस्वीफत और मारिफत हैं। उन्त लोग अभिष्टार वेद्यत सूफी के अर्थ के छोड़े मारिफत एक पहुँचने में विश्वास करते थे। प्रथम तीन को प्रेममार्ग का अनुसरण करनेवाले छात्र के लिए अर्थ समझते थे। शत्रु खिन्ते हैं<sup>१</sup> शरीफत के छात्र की मुर मंजिल उनकी देह ही है। वे मन के बरीमूल रखते हैं। अहंकार, बोध, अज्ञानो शारीरिक इतमाज, मूँठ लोमबाद विबाद आदि विकारों से उनकी आत्मा कलंकित रखी है। उनके मन में परोपकार का भाव नाममात्र को नहीं रहता है।

एक दूसरे स्तर पर शरीफत के प्रति उपेक्षा भाव प्रकट करते हुए उन्होंने फिर लिखा है<sup>२</sup>—शरीफत के छात्र का तो अज्ञान से प्रमित रखते हैं या इलाज, हराम, नैसी, बदी आदि के बाल में जो विषा बुद्धिवालों ने फैला रक्ते हैं, कँठे रखते हैं। इन उम्तरकों से प्रकट है कि उन्त लोग वेद्यत छक्तिों से प्रभावित थे। इसीलिए उन्होंने शरीफतवाले की निंदा की है। अन्त तीन अवस्थाओं के प्रति उन्हें आस्था थी। इस्वीफतवालों के प्रति सबमात्र रखते हुए उन्होंने लिखा है<sup>३</sup>—उनका हथ उनका परमेस्वर है जो भेद्यों में भेद्य और तेजों में तेज पुत्र है। उसके दर्शन करके आँसू भस जाती हैं। वे प्रेम की मयुर मदिश में मस्त रखते हैं। इसी प्रकार तरीफत का दर्शन किया गया है। शत्रु खिन्ते हैं<sup>४</sup>—तरीफतवालों की मुर मंजिल उनकी आत्मा है और उनका मार्ग प्रेममार्ग है। भजन, सुमिरन, दया, परोपकार, सद्दानुभूति आदि उनके प्रधान गुण हैं। मारिफत की अवस्था के प्रति विश्वास उम्तरण हम उम्तर प्रेम के स्वरूप निर्देश के प्रसंग में है चुके हैं सर्वाधिक आस्था थी, इसी प्रकार छठ सूफ्यमात्र की चर्चा भी उन्तों की बानियों में देहने से मिल जाती है। उन सबका निर्देश विश्वात्म्य से नहीं कर रहे हैं।<sup>५</sup>

छक्तिों के अद्वैत विद्वान्त की ब्रह्मा भी उन्तों में दिखाई पकती है। उन्त शत्रु मे लिखा है<sup>६</sup>—मर्द उली को कदना चाहिए बिछने इत का परित्याग कर दिवा है।

<sup>१</sup> शत्रुस गात्रिब किज काबिज गुस्त मकी ऐस  
शरीफ खिस हुनकत नामे बेबी कैस्त ।

ईबाज काबिम गुमराह गाफिल फज्जल शरीफत मंज  
इलाज हराम बेबी-बदी हर्से दानिम मंज ॥ शत्रु छाहब की बानी भाग १ पृ० ५३

<sup>२</sup> शत्रु दयाज की बानी भाग १ पृ० ५३

<sup>३</sup> मके बूर बूबे खर्षी बीदती हैरा ।

अजब बीज सुर्दबी फाज । मस्त ॥ शत्रु बानी भाग १ पृ० ५३

<sup>४</sup> इक हथादत कदगी बगानगोब हककास ।

मिहर सुहब्बन और खूबी काम मैजी पास ॥ भाग १ पृ० ५३

<sup>५</sup> देखिय शत्रु बानी भाग १ पृ ३ और १८० देखिय

<sup>६</sup> बाबा मरदे मरदा गोई प विस करद बाई ॥ शत्रु भाग १ पृ० ३०

एकत्र स्वलों पर तो सर्वानुवाद तक की भक्तक दिलाई पकती है। इसमें कोई तन्त्र नहीं कि ये दोनों सिद्धान्त लुक्तियों को अश्रुतवादियों से मिलाये। विद्यु मेर्या लुक्तियों से भी मिली थी।

तन्त्रों में लोच करने पर एकत्र स्वलों पर लुक्तियों के विविध आलमों की पक्षा भी मिल सकती है। किन्तु वे उनमें विशेष विश्वास नहीं करते थे।

लुक्तियों की प्रतीकत्पक शैली ने भी तन्त्रों को प्रभावित किया है। लुक्ती लोग अपने प्रत्येक भाष की अभिव्यक्ति दाम्पत्य शीको से करते हैं। वे ईश्वर को प्रेमी और अपने का प्रेमिन्ध मानकर अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं। तन्त्रों में लुक्तियों के प्रेम और विष्णु तन्त्र के साय-साय इन दाम्पत्य प्रतीकों को अपनाते की चेष्टा की थी। उदाहरण रूप में हम सन्त कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ से सकते हैं—

हरि मेरा पीव हरि मेरा पीव भाई हरि पीव ।  
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥  
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया ।  
राम बड़े में हृदक बहुरिया प्र  
काई न मिलो रामा राम गुसाई ।  
अबकी पेर मिलन को पाऊँ ॥  
कई कबीर मौजक नाई जाऊँ प्र

लुक्तियों के इन बड़े-बड़े प्रभावों के प्रतिरिक्त तन्त्र लोग उनकी बहुत ही छोटी बातों से अनुप्रेरित थे। ऐसी बातों में स्वतन्त्रता, भावना मूलक लुक्तिवादिता, चार्मिक विधि विधानों के प्रति उन्मुखता प्रकट करने की प्रवृत्ति, उदाहरणविष्णुता, मुक्ति प्रयत्न और की प्रवृत्ति, आत्मा, परमात्मा का अंशानुभाष ईश्वर-उन्माद की अनुभूति आत्मबलिदान और त्याग की भावना आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। तन्त्रों की चार्मिकों में इन सबसे संबंधित उदाहरण मिलते हैं। इन सब बातों ने उन्हें चाहे प्रत्येक रूप से प्रभावित न किया हो किन्तु मेर्या को अन्तर ही प्रदान की होगी।

<sup>१</sup> देविन्द बाबू बागी भाग २—पृ० १८०

<sup>२</sup> कबीर प्रभावली—पृ० १२५

# चौथा अध्याय

## साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि

निर्गुणिया सन्तों के पूर्व की साधु परम्पराएँ,  
प्राचीन साधु परम्पराएँ

ब्राह्मण साधुओं की परम्पराएँ,

श्रद्धा—महर्षि और राजर्षि

मुनि—महर्षि, वैद्वानस अथवा मिथु

कपली—रत्नोत्थिन, अरवकुंड, कुलभारी, भूमरानी, पञ्चाग्निशास्त्रक, रोवसाभोगी,  
आदि,

हृत्त्रिम साधु—महर्षि बीर और केत

पश्चिमिभारतीय कुल अथवा ब्राह्मण साधु परंपरा

उच्च वृत्तिसाधु—शार्वर्य, मीमांसिक साधु, कौटिलिक साधु

ब्राह्मणेश्वर साधु परम्पराएँ

आस्तिक प्रतिक्रियाकारी, वास्य, अनास्तिक, अस्तुतुल्य, वास्तुतुल्य, अस्तुतुल्य,

माधवम्बी, अशोरी, इतिहास के सामिल शैव सन्त, ब्राह्मणेश्वर

नास्तिक साधु परम्पराएँ, धर्मियाकारी, अश्वेतकारी, अश्वेतकारी,

अनिश्चितकारी, अश्वेतकारी, अश्वेतकारी, अश्वेतकारी, अश्वेतकारी,

साधु सन्तदाय, सैन सन्तों की परम्पराएँ—

उत्पुंख साधु परम्पराओं के निर्गुण अथवा अथवा पर क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ

मध्ययुगीय साधु और परम्पराएँ

रुद्रिवादी साधु —

केराडगरी साधु—महर्षि शोभ

सुधारकारी साधु

संनन मंदन की प्रवृत्ति सेकर बलनेवाले शैव, शाक्त तथा सिद्ध धार्मिक साधु ।

संनन मंदन की प्रवृत्ति सेकर चलनेवाले माधवम्बी साधु ।

संनन मंदन की प्रवृत्ति सेकर चलनेवाले ब्रह्मा साधु ।

प्रतिक्रियाकारी धार्मिक आचार्य सन्त सुधारक वर्ग

संननकारी शैव—रामानुजाचार्य वैष्णव, मन्नाचार्य वैष्णव,

मिथुनकारी वैष्णव—रामानन्द वैष्णव, निष्कृत्यामी वैष्णव

दुःखवादी साधु वर्ग

अनभूत साधु—बैरागी, अपोरी  
दक्षिण का प्रतिस्त्रियावादी शैव शिवायत सम्प्रदाय  
साम्बन्धवादी मक्त सुधारक

माध्यम—दक्षिण के आलवर मक्त सन्त, दक्षिण के साम्बन्धवादी शैव मक्त सन्त—  
महाराष्ट्रीय खल्लवादी मक्त सन्त—(बाईरी सम्प्रदाय) निरंजनस्य और  
निरंजनी साधु—बंगाल के लक्ष्मिना वैश्याय सम्प्रदाय और उसके सन्त,  
वैद्यनाथामी, आशम के गोठार्य और महापुरुषिया सम्प्रदाय, मानंभाय  
वैश्याय सम्प्रदाय, दत्तात्रय का अनभूत सम्प्रदाय, अरमीरी सन्त परंपराएँ  
लालदे लालवेगी अथवा अलखभाती वास्मीकि और पञ्च विरिया  
सम्प्रदाय

अमाध्यम—कभी सन्त सम्प्रदाय—इसके अन्य सम्प्रदाय

मिश्रित—बाठक सन्त, बर्मस के साधु

मध्यकालीन सन्त परंपराओं की निर्गुण अन्वेषण के प्रति प्रेरणाएँ ।

## निर्गुणियाँ सतों के पूर्व की साधु परम्पराएँ प्राचीन साधु परम्पराएँ

मायतर्क आदि बल से ही विभिन्न साधु परम्पराओं से महीयन रहा है। आर्य सभ्यता में ही नहीं, किन्तु प्राचीन सभ्यता में भी साधुओं की प्रतिष्ठा थी। पुरातन विभाग के अनुसंधानों ने यह बल प्रमाणित कर दी है। उस सभ्यता के अन्तर्गत विन्धों में एक योगी साधु की दृश्य फुटो मूर्ति भी मिली है।<sup>१</sup> इसी से मिलती-जुलती एक दूसरी मूर्ति भी अस्तित्व में है। इस मूर्ति में अग्रिम अर्थात् कुम्भा एक साधु निहित किया गया है।<sup>२</sup> विद्वानों की धारणा है कि यह मूर्ति किसी देवता की है किसे साधु प्रणाम कर रहा है। मेरा अनुमान है कि यह मूर्ति किसी सिद्ध साधु की है जिसका ईश्वर उल्लेख शिवाय साधु प्रणाम कर रहा है।<sup>३</sup> जो भी हो यह तो निश्चित ही है कि विद्युत् सभ्यता युग में भी साधु लोग वर्तमान से। सम्भवतः समाज में उनकी अष्टी प्रतिष्ठा भी थी। आर्य सभ्यता में साधु जीवन पर प्रारम्भ से ही बल दिया गया था किन्तु पूर्व कालीन वैदिक युग और वेदोत्तर कालीन साधु जीवन में एक बहुत

<sup>१</sup> हिन्दू सिविलीजेशन—राधाकृष्ण मुकुर्जी १९५० बाम्बे पृ० १२-

<sup>२</sup> के० एम० मुकुर्जी द्वारा संपादित वैदिक पत्र पृ० १८० देखिए।

<sup>३</sup> हिन्दू सिविलीजेशन—राधाकृष्ण मुकुर्जी पृ० २०

मौलिक अंतर विस्तार पड़ता है। पूर्वकालीन वैदिक छात्र परम्पराएँ प्रायः प्रकृति मार्गशी थी। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर दोनों छात्र-परम्पराओं में भी सेवन निषिद्ध नहीं माना जाता था। वैदिक ऋषि और दृष्टा लोग अभिन्न रहते थे। ब्राह्मणेतर ब्राह्मण छात्र को वेदना सेवन तक<sup>१</sup> को निषिद्ध नहीं मानते थे। इस युग की प्रायः सभी छात्र परम्पराओं में आराधना का सम्बन्ध संसार था।

वैदिक छात्रों की रीति में शनैः शनैः परिवर्तन होने लगा। वह प्रकृति मार्ग से निष्कृति मार्ग की ओर जाने लगी। अतिसूक्ष्म युग में आकर अभिन्न ऋषि निष्कृति मार्ग हो गये थे।<sup>२</sup> इसके आगे बितनी भी छात्र-परम्पराएँ बहते हुए उनमें अभिन्न ऋषि निष्कृति मार्गशी थी।

पूर्व वैदिक युग में हमें छात्रों की केवल दो स्थूल परम्पराएँ मिलती हैं। १—ब्राह्मण छात्रों की परम्पराएँ। २—ब्राह्मणेतर छात्रों की परम्पराएँ। १—ब्राह्मण छात्रों की परम्पराएँ—वैदिक संहिताओं में हमें २ प्रकार के छात्रों का वर्णन मिलता है। एक ऋषि<sup>३</sup> और दूसरे मुनि। ऋषियों<sup>४</sup> के भी दो वर्ग थे।—एक ब्रह्मर्षियों<sup>५</sup> का दूसरा राजर्षियों<sup>६</sup> का।

ऋषि छात्रों का उद्देश्य ऋग्वेद में अनेक ऋषियों पर मिलता है<sup>७</sup> वे लोग सीधा ज्ञान जीवन व्यतीत करते थे। तपस्या उनके जीवन का प्रधान अंग था<sup>८</sup>। इनमें से कुछ संन्यासी<sup>९</sup> और कुछ पण्डित होते थे। तमाक<sup>१०</sup> में उन्हें विशेष सम्मान था। उद्योग-तन्त्रात्मक पद्धति से वे लाभ भी उठाते थे। परन्तु नामक ऋषि ने अग्नि और लौकिक होते हुए भी कई कथाओं से विवाह किया था।<sup>११</sup> इन ऋषियों में तपस्या का एक विशेष

<sup>१</sup> इसके अन्तर्गत में वैदिक—ऋग्वेद में ऋषि का उपाख्यान प्रथम अष्टक २१ सूक्त

<sup>२</sup> इन्द्रिया—पृ० एत० वाक्य पृ० २१ वा २४

<sup>३</sup> कल्पवृक्ष अर्थात् आकाशविष्णु का पितासमी

<sup>४</sup> ऋषियों का वर्णन वैदिक ऋग्वेद में १।४।१५

<sup>५</sup> ऋग्वेद अष्टम अष्टक का १३ वां सूक्त

<sup>६</sup> बिरवाभिन्न राजर्षि थे

<sup>७</sup> बसिष्ठ आदि ऋषि ऋषि थे

ऋग्वेद संहिता प्रथम अष्टक—रामगोविन्द त्रिवेदी की टीका पृ० १

<sup>८</sup> इन्द्राह्नतोपीकिया आकाशविष्णु का पवित्र भाग २ पृ० ८८

<sup>९</sup> संन्यासी का उदाहरण ऋग्वेद २।४।१३ भाग २ पृ० ८८

<sup>१०</sup> ऋग्वेद

<sup>११</sup> " संहिता—रामगोविन्द त्रिवेदी द्वितीय अष्टक १३वां सूक्त मंत्र ५

तेषु पात्रा वाता वा । यह वात पठरवा श्रुति के बर्णन से प्रतीत होती है । उनका शरीर अग्निशिखा सदृश तेषु से वास्वस्वमन्त रहता था ।<sup>१</sup>

श्रुतेद में एक स्थल पर मुनिवर्गों के साधु का उल्लेख भी किया गया है ।<sup>२</sup> वरुमें लिखा है कि मुनि बह होता है बिचक्री मेकला वासु श्री होती है अपने मौन में कृषि का अनुभव करता है । पक्षी और गंधकों के सदृश वह आकाशगामी भी होता है ।

इस प्रकार के मुनि साधुओं के संबंध में विद्वानों में मतभेद है । कुछ लोग तो उन्हें ब्राह्मणोत्तर परम्परा के साधु मानने के पक्ष में हैं और कुछ के अनुसार वे ब्राह्मण साधु-परम्परा से संबंधित थे । पहली मत क समर्पने में प्रोफेसर श्रीर<sup>३</sup> और प्रोफेसर हार<sup>४</sup> विशेष उल्लेखनीय हैं । भारतीय विज्ञान द्वितीय मत के समर्थक हैं । मैं स्वयं दूसरे मत के पक्ष में हूँ मेरी दृष्टि प्रारंभ है कि मुनि लोग ब्राह्मण साधु ही थे । अपने मत के समर्थन में हम कई तर्क<sup>५</sup> द सकते हैं । पहली बात तो यह है कि बृहदारण्यकोपनिषद् में वहाँ पर इन साधुओं का वर्णन किया गया है तब बर्णन से रत्नी-भर भी इस बात का संकेत नहीं मिलता कि वे लोग ब्राह्मण साधुओं से संबंधित नहीं थे । अन्य उपनिषदों में भी वहाँ वही इनका उल्लेख मिलता है, वहाँ वे ब्राह्मण साधु के रूप में ही चित्रित किये गये हैं । दूसरी बात यह है कि मुनि लोगों का वर्णन सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य अर्थात् अपिषाण भुक्तियों और स्मृतियों में किया गया है । यदि वे ब्राह्मणोत्तर साधु होते तो भुक्तियाँ व स्मृतियों और पुराणों में उनका इतना उल्लेख नहीं किया गया होता भित्ना हमें आश्चर्यजनक है । हमारी समझ में मुनि लोग उन ठीक श्रुतियों को करते थे जो संसार से उदासीन होकर जीवन मुख और परम इत हो जाते थे । शासन<sup>६</sup> शास्त्र में श्रुति और मुनि के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मुनि इत श्रुति को करते थे जो आध्यात्मिक सम्पत्तता श्री रिपति को पहुँच जाता था श्रुति साधारण परिभाषक थे । शासनकृत इस भेदीकरण से यह भी स्पष्टता मिलती है कि श्रुतियों के सदृश मुनि भी ब्राह्मण साधु ही होते थे ।

<sup>१</sup> वही—प्रथम अक्षर ११२ सूक्त १०वाँ मंत्र

<sup>२</sup> रितीकन आक श्री रिन्वेर प्रिंसिपलज आरसकोर १९२१ पृ० ११८

प्रथम मन्त्रक का ११वाँ सूक्त अक्षरक ५० २११

<sup>३</sup> रितीकन प्रवृत्त प्रिन्सिपल आक वेद कीय कैम्ब्रिज १९२५—माम २ पृ० ४०२

<sup>४</sup> हर योग पक्ष—हीकनग स्ट्रटमार्ट १९१२ पृ० १२ हारकृत

<sup>५</sup> दिवू सिधितिकेनन मुकर्मि मायक १९५० पृ० २११

<sup>६</sup> दिवू सिधितिकेनन आक दिवू मायोपोत्री—शासन पृ० ११२ (१९५०)

शुद्ध के पर्याय श्रुति-मुनियों का उल्लेख हमें अथर्ववेद में मिलता है। अथर्ववेद में बर्णित साधुओं के जीवन में तपस्या और वैराग्य का विशेष महत्त्व व्यक्त किया गया है। अथर्ववेद में बहुत से ऐसे श्रुतियों का उल्लेख मिलता है जो पौर तपस्या करके पंचतन्त्रों पर अधिकार कर लेते थे और विविध प्रकार की मृत छिद्रियाँ प्राप्त कर लेते<sup>१</sup> थे।

तपस्विन् और आरक्षक आत्म में श्रुति-साधुओं की परंपराएँ अपने विद्यत की परमशक्त पर पहुँच गई थीं। उनकी प्रकृति पूर्वतया निकृष्टोन्मुखी हो गई। इन और वैराग्य उनके जीवन के प्रधान अंग बन गये। इतना होते हुए भी अविच्छिन्न श्रुति लोग पारम्य जीवन ही व्यतीत करते थे।<sup>२</sup> महर्षि याज्ञवल्क्य के तो दो जिवन<sup>३</sup> थीं फिर भी वह अपने युग के सबसे महान् सन्त दार्शनिक समझे जाते थे। इन पारम्य श्रुतियों का जीवन सरल सांख्यिक और आदर्शवादी होना था।<sup>४</sup> वे अद्वैत<sup>५</sup> ब्रह्म और तत्त्व<sup>६</sup> की खोज में अपना सर्वस्व लगा देते थे। इस युग को हम ब्राह्मण साधुओं का स्वर्णयुग कह सकते हैं। उनमें ब्राह्मण साधुओं के अपने आदर्श गुण पाये जाते थे। उच्च तपस्विन् यज्ञ<sup>७</sup> में एक नई प्रकृति उदित होती हुई दिखाई दी थी। वह यी साधुवा को मानव जीवन का प्रधान अंग बनाने की। आत्मन<sup>८</sup> प्रकाश का विकसित इसी प्रकृति की प्रेरणा से हुआ था। आत्म स्वकथा का संकेत हमें सर्वप्रथम उच्चरत्नगीत उपनिषदों में मिलता है। उक्त पूर्व और परम विकसित सूत्र और स्मृति युग में हुआ। सूत्रों में आत्म हमें ब्राह्मण साधु के लिए एक नया मन्त्र<sup>९</sup> शब्द भी मिलता है। हमारी समझ में वह शब्द भी ब्राह्मण साधुओं के एक वर्ग का चोख है। सम्भवतः यह शब्द बौद्धों ने सूत्र ग्रंथों से ही प्राप्त किया था। स्मृति युग में आत्म दिव्य जाति के लिए साधु जीवन अनिवार्य बन गया। जीवन के चार भाग कर दिये गये। ब्रह्मचर्य, पारम्य, वास्यस्य और संन्यास। जीवन के प्रथम, द्वितीय और तृतीय आत्म साधु जीवन के ही तीन पक्ष कहे जा सकते हैं। वास्यस्य और संन्यास आत्म में रहकर साधुजीवन

<sup>१</sup> इतिवचन किष्कासपी शाखाकृष्णक कृत प्रथम भाग पृ० १२१

<sup>२</sup> ज्योतिष्य ३।१३।३

<sup>३</sup> अस्तित्व सर्वे आत्मा उपनिषदिक किष्कासपी पृ० ३१-४।३

<sup>४</sup> वैश्वीय उपनिषद् २।८

<sup>५</sup> अस्तित्व सर्वे आत्मा उपनिषदिक किष्कासपी पृ० ३११

<sup>६</sup> अथर्वशास्त्र आत्मा रिश्रीमत्त आत्मा आत्मा इतिवचन श्रुत्यात् १५-११ पृ० ५३

<sup>७</sup> वैश्वीय अस्तित्वसोपीविद्या आत्मा रिश्रीमत्त पृष्ठ अथर्वस्य भाग २ श्रुत्यात् १५-११

<sup>८</sup> पृ० १२९

<sup>९</sup> बौद्धाचार्य कीर्तन सूत्र १५।१० पृ० पृष्ठ० बी० पृष्ठीयत पृ० २०९

व्यतीत करनेवालों को वैशानस<sup>१</sup> या मित्रु श्री संज्ञा दी गई है। स्मृति<sup>२</sup> ग्रन्थों में इन्हीं को यति या संन्यासी कहा गया है। पाणिनी<sup>३</sup> श्री अष्टाध्यायी से हमें पता चलता है कि वैशानसों के कर्तव्य शास्त्र श्री भी रचना हुई थी। यह ग्रंथ वैशानस सून खड़ाते थे। पाणिनी ने दो वैशानस सूत्रकारों<sup>४</sup> का उल्लेख किया है एक पराशर्य और दूसरे अमरहर्ष। इन वैशानस सूत्रों के अतिरिक्त मित्रुओं और संन्यासियों<sup>५</sup> के कर्तव्यों और आचरणों श्री स्वयंस्वा सून और स्मृति ग्रंथों में भी श्री गई है। यहाँ पर उनका थोड़ा सा दिग्दर्शन कर देना अनुक्ति न होगा। विष्णु स्मृति में लिखा है कि संन्यासी को सर्वप्रथम पाशरस्य आश्रम में रहकर तपस्या के द्वारा अपने शरीर को पवित्र और दृढ़ करना चाहिए।<sup>६</sup> शरीर के दृढ़ होने पर ही प्रवृत्त्याश्रम में प्रवेश करना चाहिए। उठी स्मृति में यह भी लिखा है कि उसे केवल सात वर्षों में ही मिथा मांगनी चाहिए। मिथा न मिलने पर दुःखी नहीं होना चाहिए। उसे मित्रु से मिथा भी नहीं लेनी चाहिए। मिथी या लक्ष्मी के वर्तन में ही उसे मोक्षन करना चाहिए। उसे शम्भ यह में या वृक्षमूल में निवास करना चाहिए। दो रात्रि से अधिक किसी एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए। उसे अपनी दृष्टि मन और वाणी पवित्र रखनी चाहिए। उसे जीवन, मरण, आशा और निराशा से उदासीन भी होना चाहिए।<sup>७</sup> इसी प्रकार के बहुत से यति नियमों का उल्लेख स्मृति ग्रंथों में किया गया है। विस्तार मय से यहाँ पर उन सब का उल्लेख नहीं कर सकते। स्मृतियों श्री इस आश्रम व्यवस्था का परिचय यह हुआ कि आशी से अधिक हिन्दू वाशि तापु-जीवन व्यतीत करने लगी<sup>८</sup>। विविध प्रकार श्री धोर तपस्याओं का प्रचार बढ़ गया। पुराणों में हमें वैष्णवों प्रभर श्री योगतियोर तपस्याओं श्री पक्षा मिलती है। सिंग पुराण<sup>९</sup> में केवल बस पीकर अथवा केवल बाहु मन्थन कर तपस्या करनेवाले तापुओं का उल्लेख किया गया

<sup>१</sup> मीलन धर्मशास्त्र भाग ३ पृ० २६

<sup>२</sup> स्मृति संदर्भ भाग १ पृ० ४४० कलकत्ता १९५२ और देविएप बही पृ० ४५६-६०

<sup>३</sup> इन्द्रिया ऐन नीम दू पाणिनी—श्री० पृ० ४४० अथवात कृत कलकत्ता १९५३ पृ० ३८०

<sup>४</sup> पाणिनी अष्टाध्यायी ४।३।११० पाराशर्य । ३।३।१२२ कामरुण्य

<sup>५</sup> अर्जुन सारथ का मत है कि स्मृतियों में जिन यतियों का संन्यासियों का उल्लेख किया गया है उन दर जिनों और बीहों का प्रभाव नहीं। यह दोनों सप्त वैश और बीह यमों के उद्भव के पूर्व के हैं। देविएप ही काहीटा पतिरिक्त काक इन्द्रिया सुषेदिक आश्र ही आनीसैयव अइवेटी भाग ९ न० २ सतगई १९२५

<sup>६</sup> स्मृति संदर्भ भाग १ कलकत्ता १९५२ पृ० ५२६

<sup>७</sup> बही पृ० ५३६

<sup>८</sup> दिवू विरिधीसैयव-मुकर्मि मन्थनक १९५० पृ० ९३०

<sup>९</sup> सिंग पुराण अष्टाध्याय ३९ तथा १०७।१०



है। 'बाहु' पान कर साधना करनेवाले कुछ साधुओं का उल्लेख वायु और वायु पुराणों में भी मिलता है। बहुत से ऐसे साधु होते थे जो केवल वृष का दूध पिया हुआ पत्रा काकर ही खाते करते थे। वायु<sup>१</sup> और स्कंद<sup>२</sup> पुराणों में इस श्रेणी के उपस्थितों के कई बर्णन मिलते हैं। इसी प्रकार की उनमें इन्दोस्तान भरमकुन्द,<sup>३</sup> पुण्डरी, घूमरानी,<sup>४</sup> पंचामिवाचक, शैवासयोगी, अम्बरशैल्यमा<sup>५</sup> आदि न माह्यम किन्तु प्रकृत के बर्णन आते हैं। इन सब प्रमाणों से प्रकृत है कि पौराणिक युग में जनता एतदर्थमम से भी अधिक वायुप्रस्य और संव्यास को महत्त्व देती थी। समाज में अपने साधुओं का बहुत आदर था। ३२६ ई० पू० में जब शिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था उस समय वहाँ सेकड़ों अपने और आदर्त साधु वर्तमान थे। कर्त्तवीर इतिहासकारों ने कुछ साधुओं का उल्लेख भी किया है।<sup>६</sup> साधु जीवन का आदर्त अधिक दिन स्थिर न रह सक्य। उसमें यतैः-यतैः स्वार्थ मानना आ सुधी। उमानय और महाभाष्य में बहुत से ऐसे लोगों का उल्लेख मिलता है किन्तु साधु जीवन केवल किसी स्वार्थवत् ही स्वीकार किया था। उस स्वार्थ के सिद्ध हो जाने पर पुनः एतस्य क्त गये थे। रामानन्द के उक्त्य और विरूप ऐसे ही पात्र हैं। महाभाष्य के आदि पर्व में इसी प्रकार के दो दैवों का उल्लेख किया गया है।<sup>७</sup> विव पुराण के त्रिक राक्षस में भी स्वार्थवत् ही साधु-जीवन स्वीकार किया था।<sup>८</sup> इस प्रकार के साधुओं को हम एक स्वार्थी साधुओं की परम्परा का प्रवर्तक मान सकते हैं। स्वार्थी साधुओं ने ही बीरे-बीरे आडम्बरी साधुओं को जन्म दिया होगा। आडम्बरी और धूर्त साधुओं की परम्परा भी जन्म प्राचीन नहीं है। एक प्राचीन जैन ग्रन्थ में एक आडम्बरी और धूर्त साधु का बर्णन निम्नलिखित प्रकार से दिया हुआ है।

‘ ये साधु हमारे भोलेने में बहुत ही’ वरें हैं। हाँ, क्योंकि मैं उनमें मङ्गलियाँ किया करता हूँ। तो क्या हम मङ्गली भी सारे हो? हाँ, मैं मदिरा के साथ

<sup>१</sup> वायु पुराण ५७।९ तथा वायु पुराण ६०।८

<sup>२</sup> वायु पुराण ७५।९

<sup>३</sup> स्कंद पुराण २।२२।२५३

<sup>४</sup> किम्य पुराण ६२।७६

<sup>५</sup> वायु पुराण २७।११७

<sup>६</sup> शिवा पुराण ३२।२३-२६

<sup>७</sup> श्री वैश्वानर हिन्दी काक इतिहास भाग १ पृ० ३५८

<sup>८</sup> आदि पर्व अष्टाव

<sup>९</sup> हिन्दू वैश्वानर—पूर—अंश १८२० पृ० ५१ से ५३ तक

<sup>१०</sup> हिन्दी काक इतिहास सिद्धांत—भाग २—द्वितीयः पृ० ४८५

उन्हें भी साक्षात् हैं। तो इस मंदिर में भी होते हैं। हाँ, अपनी देखा के साथ। तो इस देखागामी भी हो। जब मैं अपने शत्रुओं का हृदय कर चुक्या हूँ। तो इसद्वारे शत्रु भी हैं। हाँ केवल वे ही लोग मेरे शत्रु हैं जिनके घर मैंने लूटे हैं। तो इस चोरी भी करते हो। हाँ, केवल शत्रु के लिए। तो इस शत्रुगामी भी हो। हाँ, क्योंकि मैं एक दाधी पुत्र ही तो हूँ। इस प्रकार के आह्वानों का शत्रुओं के कुछ सम्प्रदायों का संकेत पाणिनि ने भी किया है। ऐश्वर्यादि अथर्ववेद और मत्स्यी ऐसे ही आह्वानों का सम्प्रदाय वे।<sup>१</sup>

आह्वान के साथ-साथ शत्रु-समाह में साम्प्रदायिकता भी प्रविष्ट हो गई। शनैः-शनैः शत्रुओं के विविध सम्प्रदाय उदय होने लगे। शत्रु शत्रु की इस साम्प्रदायिकता का संकेत हमें प्राचीन जैन<sup>२</sup> और बौद्धग्रंथों<sup>३</sup> में मिलता है। किन्तु इन ग्रंथों में जिन शत्रु सम्प्रदायों का संकेत किया गया है वे प्रायः नास्तिक और प्रतिक्रियावादी हैं। हमारा अनुमान है कि ब्राह्मण शत्रुओं में अन्व बर्ग के शत्रुओं की अपेक्षा साम्प्रदायिकता कम थी। पाणिनि ने अपने समय के ब्राह्मण शत्रुओं के सम्प्रदायों का उल्लेख किया<sup>४</sup> है। उसने एक सम्प्रदाय उल्लेखित<sup>५</sup> नामक शत्रुओं का संकेतित किया है। वे लोग पुरुष पर मविष्य के लिए घोड़ा-सा अन्न बोनकर एकत्रित कर लिया करते थे। शत्रुओं का शत्रु बर्ग शत्रुगामी<sup>६</sup> का था। वे लोग मित्रा में भोजन सभी प्रकार के लोगों से बिना किसी शर्त के मेदमात्र के स्वीकार कर लेते थे। शत्रु सम्प्रदाय मैथिलिक<sup>७</sup> शत्रुओं का था। इन्हें नैस्तिक इसलिए कहते थे क्योंकि वे निकेत बनाकर रहते थे। शत्रु बर्ग शत्रुगामी<sup>८</sup> शत्रुओं का था। वे अपनी दृष्टि सर्वत्र घुम्नी की ओर रखते थे कि कहीं उनसे हिंसा न हो जाय। वे शत्रु बर्ग ब्राह्मण शत्रुओं के ही थे। वे लोग अतिशय पायशर्ब वा अमैत्र्य नामक आपातों के मित्रु शत्रुओं के नियमों का पालन करते थे। इनके अतिरिक्त पाणिनी में हमें मासरोदर<sup>९</sup> शत्रुओं का भी उल्लेख मिलता है।

<sup>१</sup> इतिहास पत्र बोन दू पाणिनी—बी० एच० अथर्वाल पृ० ३८१

<sup>२</sup> ऐश्वर्य सूत्र कृत्यांग २।६

<sup>३</sup> शीघ्र निष्कर्ष—हिंदी अनुवाद पृ० ११०

<sup>४</sup> इतिहास पत्र बोन दू पाणिनी—बी० एच० अथर्वाल पृ० २८० ८२

<sup>५</sup> पाणिनी ४।४।३२।

<sup>६</sup> वही ५।२।९।

<sup>७</sup> वही ४।४।३२।

<sup>८</sup> वही ४।४।२६।

<sup>९</sup> इतिहास पत्र बोन दू पाणिनी पृ० ३८२

किन्तु उनके सम्प्रदायों का निर्देश कहीं पर भी नहीं किया गया है।

बीज और ध्वज ग्रंथों में बिन ऐक्यों साधु संप्रदायों का उल्लेख किया गया है वे सब ब्राह्मणेतर साधुओं के ही थे। उनका विवेचन ब्राह्मणेतर साधु सम्प्रदायों की परम्पराओं का निर्देश करते समय किया जायेगा।

योगबशिष्ठ ब्राह्मण धर्म और दर्शन का बड़ा प्रतिष्ठित ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ में हमें ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर दोनों श्रेणियों के साधुओं के संकेत मिलते हैं। वे ऋषि<sup>१</sup> मुनि<sup>२</sup> योगी<sup>३</sup> और तपस्वी<sup>४</sup> आदि विभिन्न वर्ग के थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण साधुओं की परम्परा वैदिक काल से ही अस्तित्व रूप से कही जा रही है। मध्ययुग में यह अपने आदर्शों से झुका हो गई थी। इनमें सिन्धु पारस्य का प्रसार हो गया था। मध्ययुग के विवेचन से ब्रह्म और अधिकांश तब हो जायगी।

**ब्राह्मणेतर साधु-परम्पराएँ**—भारत में ब्राह्मण साधु सम्प्रदायों की अपेक्षा ब्राह्मणेतर साधु सम्प्रदाय कहीं अधिक रहे हैं। वे सम्प्रदाय अधिकांश प्रतिक्रियावादी थे। स्कन्दपुराण से वे सब दो भागों में बँटि जा सकते हैं—

१—आस्तिक प्रतिक्रियावादी ब्राह्मणेतर साधु।

२—नास्तिक प्रतिक्रियावादी ब्राह्मणेतर साधु।

**आस्तिक प्रतिक्रियावादी ब्राह्मणेतर साधु-परम्पराएँ**—हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि वैदिकयुग में ऋषि साधुओं के साथ ब्राह्मणेतर ऋषि साधु भी वर्तमान थे। वे लोग प्रतिक्रियावादी थे इनका लक्ष्य वैदिक विधि-विधानों और पुरोहितवाद का विरोध करना था। वे सदा ही मानव धर्म में विश्वास करते थे। इनका स्वभाव धर्मकण्ठ और क्रमकण्ठ होता था। साधना की दृष्टि से उन्हें योगी कहा जा सकता है। उनकी वेद्यमूला ब्राह्मण ऋषियों से भिन्न होती थी। उनके एक हाथ में एक भीलमार्गने का पात्र होता था और दूसरे में विरगल। वे सोम्य प्रभावित और अतः देवता की उपासना करते थे। इन ब्राह्मणों को हम सौम्य मानने के पक्ष में हैं। सौम्य साधु परम्परा के मूल प्रवर्तक थे ही थे।

<sup>१</sup> की किष्कसकी काक योगबशिष्ठ—बी० पृ० आशेष पृ० ८५ पर अत्रि ऋषि का वर्णन और पृ० ८९ पर शीतलरथ ऋषि।

<sup>२</sup> उसी ग्रंथ में पृ० ८८ पर उदात्त मुनि का उल्लेख देखिए।

<sup>३</sup> देखिए वही ग्रंथ पृ० ८५

<sup>४</sup> वही ग्रंथ सातवीं अध्याय

<sup>५</sup> ब्राह्मणों का उल्लेख विन्ध्यकित्त म पों में किया गया है—

(क) दशमोदक-बीजवर्ग हर पृ० ८। (ख) मिदिकत, मिदिकित्त—पृ० १११

धीय और हर श्रोत्र<sup>१</sup> वैदिक मुनि साधुओं को भी शैव मानने के पक्ष में है। उनके मत का निराकरण हम पहले ही कर चुके हैं। हमारी समझ में वे ब्राह्मण साधु ही थे। अतएव उन्हीं के प्रसंग में इनका उल्लेख कर दिया गया है।

वैदिक ब्राह्मणों से क्रमशः शैव साधु परंपरा का विकास होता गया। हेमचंद्र ने अपनी यात्रा के प्रसंग में बहुत प्रकार के शैव साधुओं का उल्लेख किया है। उनमें से कुछ नंगे रहते थे, कुछ मभूत लगाते थे, कुछ हड्डियों की माला पहनते थे और कुछ नर-कपालों की माला पहननेवालों का नाम उसमें नर कपालधारी दिया है। हेमचंद्र<sup>२</sup> से भी पूर्व हमें शैव साधुओं का उल्लेख दंडी के दशकुमारचरित<sup>३</sup> नामक ग्रंथ में मिलता है। वायमह<sup>४</sup> के हर्षचरित्र से भी हमें कई प्रकार के साधुओं का संकेत मिलता है। उनमें कापालिक और भस्मी विशेष उल्लेखनीय हैं।<sup>५</sup> हर्षचरित का मेरवाचार्य संभवतः याक कापालिक ही था। शैव साधुओं का उल्लेख आर्गदगिरि में अपने शंकर विषय नामक ग्रंथ में किया है।<sup>६</sup> मधमूर्ति के माकलीमाधव में अयोर पंच नाम के कापालिक साधु का ही उल्लेख किया गया है।

कुछ अरब यात्रियों ने अपनी यात्रा के प्रसंग में कुछ ऐसे साधुओं की बातें भी की हैं जो सम्भवतः शैव ही थे। सुजुर्गकिनशाहरवार ने बेकोर नामक साधुओं को देखा था<sup>७</sup>। वे लोग यमी में केवल चार अंगुल की लँगोथी पहनते थे और बाहों में पट्टाई छोड़ते थे। उधने कुछ ऐसे भी साधु देते थे जो अपने बदन बहुत से टुकड़ों को छोड़कर बनते थे और शरीर में बली हुई हड्डियों की राख मलते थे तथा गले में आदमी की लोपड़ी लटकाने रहते थे। २३७ हिजरी में बाबा करनेवाले एक अरब अरब यात्री<sup>८</sup> ने भी शैव साधुओं का उल्लेख किया है। नबी शताब्दी में

<sup>१</sup> (क) रिबीजन एवम कितासुओ भाग वेद भाग २ पृ० ४०२। (ख) हविष्या पृ० ५५० भाग ११५४ सप्तम पृ० २६ २४ (ग) दरबोग एवम—हिमचंद्र—हीपर सद्गुरु—११३२ पृ० १२

<sup>२</sup> (क) नील सी वृ की—बुद्धिस्त रिवाजसू भाग ही विचरन बर्ष ५० ५५

(ख) सुमान प्यांग—देवदत्त व्याक हविष्या पृ० १२३

<sup>३</sup> आनक व्याक ही अमेरिकन जोरिगदक सोसायटी भाग ४४ पृ० २१२

<sup>४</sup> हर्षचरितसार-वायमह-शैव—पृ० ११ २४ तक

<sup>५</sup> अरबत व्याक ही अमेरिकन जोरिगदक सोसायटी भाग ४४ पृ० २०६ २०७

<sup>६</sup> माकलीमाधव-देवदर और मूरु—पृ० १२ १५ ११३५

<sup>७</sup> अरब और भारत के संबंध पृ० ८६

आनेवासे मुझेमान<sup>१</sup> लौरागर ने भी रीब साधुओं को अपनी भाषा में देखा था। उनका वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि माय में ऐसे लोग भी हैं जो पहाड़ों और बंगलों में बसा करते हैं और लोगों से नहीं मिलते हैं। जब भूख लपटी है तो वे लोग बरस के फल वा पाठ खा लेते हैं। उनमें से कुछ लोग बिलकुल नंग-बड़ंग रहते हैं। हाँ केवल एक जीते की सास का टुकड़ा अपरन उन पर पड़ा रहता है। मैंने इसी प्रकार के एक आरामी को भूप में बैठे हुए देखा था। सोसाइ बर्ष बाद जब मैं उसी ओर से गया तब भी मैंने उसको उसी प्रकार और उसी दशा में बैठे पाया। मुझे आश्चर्य होता था कि भूप की यमी से ठसभी झल्लें क्यों न बह गईं।

परवर्ती संस्कृत साहित्य में रीब साधुओं के अलौकिक वरपर मिलते रहे हैं। प्रबोध-चन्द्रोदय<sup>२</sup> नामक नाटक में रीब शास्त्र ज्ञापसिद्धों का संक्षेप किया गया है। रीब सम्प्रदायो का अलौकिक हयें सबसे पहले स्वामी रामानुजाचार्य<sup>३</sup> के भी मान्य में मिलता है। उनमें उन्होंने अक्षरमुखा और आपासिक नामक २ सम्प्रदायो का अलौकिक किया है। अक्षरमुखा<sup>४</sup> साधुओं का अलौकिक करते हुए उन्होंने लिखा है कि वे सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के लिए कई प्रकार के आचरण कतशाते हैं। उनका मतानुसार आसामुख साधु को लम्पर में बस पीना चाहिए। मुँह की रज्जु शरीर में लगानी चाहिए। मुँह का माँठ खाना चाहिए तथा अपने एक हाथ में डंढा और दूसरे में मदिण का पात्र भी रखना चाहिए। उन्हें हाथ में श्राद्ध की मासा भी पहननी चाहिए। रामानुजाचार्य ने बिल घुसरे रीब सम्प्रदाय का अलौकिक किया है उसका नाम आपासिक है।<sup>५</sup> यह सम्प्रदाय अक्षरमुखा सम्प्रदाय से अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। क्योंकि इतका अलौकिक ज्यो सतानी के प्रम दशकुमारचरित<sup>६</sup> तक में मिलता है। इतिहास<sup>७</sup> ने तो इन्हें स्वतः देखा था। आपासिक सम्प्रदाय का अक्षरमुखा सम्प्रदाय से केवल साधना

<sup>१</sup> देखिये—बराही मुस्लिम जज्जबट अथक हिंदू रिर्वाजत-आपक काक ही बाम्बे म्यांज नार्क हापक ऐतिहासिक सोसाइटी पृ० १३६

अब और भारत के सर्वत्र हिंदी अनुवाद रामचंद्र वर्मा—१३३० इकाहावा पृ० ६६

<sup>२</sup> प्रबोध चन्द्रोदय—देकर साहब का दाम्पलेसन पृ० ३९ बी० पी

<sup>३</sup> वेदान्त सूत्र विद् रामानुजक कामेन्दी-वर्दन १६०४—विद्यम्य कृत पृ० ५२०-५२१

<sup>४</sup> विद्यम्य हांसलेसन इन एस० बी० ई० सम्बन्ध १६०४ पृ० ५२१

<sup>५</sup> वही पृ० ५२० व २१

<sup>६</sup> बरकत अथक अमेरिकन औरियम्यल सोसाइटी—भाग ४४ पृ० ३१९

<sup>७</sup> वाटर्स जुबालप्यार्ग—रेवडस इन इविडवा १—१९६

संघर्षी भेद ही नहीं था, वरन् उन दोनों के बीच वैशम्य में भी अन्तर होता है। अस्तमुक्त सम्प्रदाय के अनुयायी हिन्दू में अन्ना अंश भी रखते थे पर अनासिद्धों का हिन्दू केवल शास्त्र ही होता था। वे अनासिद्धों की माला अक्षर्य ही पहनते थे। मन्व युग में इनका सम्प्रदाय बहुत अधिक प्रमुखतावाही था। गोरक्ष<sup>१</sup> सिद्धांत संग्रह में तो वहाँ तक लिखा है कि शक्यवर्ष<sup>२</sup> की पराभव एक अनासिद्ध के द्वारा ही हुई थी। आगे चलकर अरक्षिक सम्प्रदाय से ही गोरक्ष का नायकत्व निकला। अनासिद्धों में किन्तु बाद आत्माओं की मान्यता है उनमें एक गोरक्षनाथ भी भी है। श्रीपद् और अश्वीरी पंथ भी अनासिद्ध सम्प्रदाय से ही निकले हैं।

अस्तमुक्त और अनासिद्ध सम्प्रदाय के अतिरिक्त तीनों के पाशुपत<sup>३</sup> और लज्जुलीय<sup>४</sup> मानक सम्प्रदाय और प्रसिद्ध हैं। इन दोनों का संबंध सर्वप्रथम माधव के सर्वदर्शन संग्रह में मिलता<sup>५</sup> है। इनमें पाशुपत सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है। इसका उल्लेख हमें महाभाष्य में मिलता<sup>६</sup> है। आठवीं शताब्दी में यात्रा करनेवाले अरब यात्री अकबरुद्दौलतानी ने भी पाशुपतों को वर्णन किया है।<sup>७</sup> लज्जुलीय पाशुपतों की ही एक शाखा थी। सर्वदर्शन संग्रह में इनके दार्शनिक पक्ष का विवेचन किया गया है।

मन्वयुग में हीच साधुओं के और भी कई सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये थे। इनमें नाथ, अनापी और श्रीवत् विरोच उल्लेखनीय हैं। इनके भी अलग-अलग बहुत से उपाध्याय बताये जाते<sup>८</sup> हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं मन्वयुग में हीच साधुओं के सम्प्रदाय थे। इसी प्रथम में हम दक्षिण के सामिल हीच संतों का भी उल्लेख कर देना चाहते हैं। इन संतों की परम्परा का उदय तो पाँचवीं शताब्दी में ही हो गया था। किन्तु सम्प्रदाय विकास ११वीं शताब्दी के बाद ही हुआ। ये संत सामन्तव्यवस्था के सुधारक थे इसी लिए वेद और आगम दोनों में ही अपने विश्वास रखते थे। वे द्वा-दशविम्व और प्रेमप्रधान मन्वान् शिष्य की उपासना करते थे। इनके विद्वान् वैश्वक आचार्य ब्रह्मनाथार्य से बहुत मिलते-जुलते प्रतीय होते हैं। इनमें से केवल इतना ही संतर है

<sup>१</sup> नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद १९५० पृ० ४

<sup>२</sup> वैश्विक वैश्वविम्व शिष्य—अकारक पृ०

<sup>३</sup> भारतीय इराक बमदेव उपाध्याय पृ०

<sup>४</sup> अक्षरसंग्रह संग्रह—ई० बी० ओबस—सम्पृ १८२५ पृ० १०३ पृ०

<sup>५</sup> ही प्रद दक्षिण हीरक्षिप्त पृ ११८

<sup>६</sup> अरबी मुस्लिम अकादमिक नाथ ही हिन्दू रिवाजक जगत्स नाथ नाथ श्रीसहरी भाग १४ पृ० ९६

<sup>७</sup> नाथपंथ—डा० हजारीप्रसाद पृ० ७८

कि ब्रह्ममाचार्य प्रेम में मर्नादा को विषय नहीं मानते थे जब कि ये मर्नादापूर्व मति में विश्वास करते थे ।

**ब्राह्मण्येतर नास्तिक साधु परम्पराएँ—**साधारणतया लोगों की धारणा है कि बौद्ध और शैवमत ही नास्तिक हैं। इनसे संबंधित साधु ही नास्तिक साधु होते होंगे। किन्तु यह धारणा बहुत धारपूर्व नहीं है। वहाँ तक बौद्ध और शैव साधुओं का संबंध है वे ठीकठा सम से पाई नास्तिक ही कहे जाते हैं। किन्तु उनमें आस्तिकता किसी ने किसी प्रकृत रूप में अवश्य मिलती है। हाँ, लोककथन मत अवश्य पूर्व निर्धारणकारी है। इस मत के साधुओं को हम नास्तिक ब्राह्मण्येतर साधुओं की श्रेणी में ले सकते हैं। नास्तिक साधुओं के और भी बहुत से सम्प्रदाय भाग्य में थे। इनका प्रवर्तन शैव और बौद्ध मतों के अवन से पहले ही हो चुका था। प्राचीन शैव और बौद्ध ग्रंथों में हमें इनका संकेत मिलता है। वे नास्तिक मत धारकों की संस्था में थे। शैव उच्छ्रयकाल<sup>१</sup> एक और एककाल नामक ग्रंथों में तीन ही शीतल प्रतिक्रियाकारी नास्तिक मतों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार हीपनिष्ठा नामक बौद्ध ग्रंथ के ब्रह्मवाक्य सूत्र में भी शीतल<sup>२</sup> कुछ उन्मत्तनामक नास्तिक मतों की चर्चा की गई<sup>३</sup> है। कुछ प्राचीन नास्तिक मतों का उल्लेख हमें उपनिषद् ग्रंथों में भी मिलता है। केवल रवेदारवत<sup>४</sup> उपनिषद् में ही अस्तनादी स्वयम्भवादी, निवर्तिनादी और मूढनादी नास्तिक मतों का संकेत किया गया है। उपनिषद् ग्रंथों में बिन अनेकनामक नास्तिक संत-सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है उनमें उन्मत्त बार के अतिरिक्त शारवतवाद, मित्य अनिरुपवाद, अंतान्तवाद, अमरुदित्येन वाद, क्रियावाद, अक्रियावाद, ईशवाद, अनिश्चिततावाद, अत्युपनिषदधरवाद आदि विशेष प्रसिद्ध<sup>५</sup> हैं। इनमें बिनअ शोका विलुप्त विवेकन किया गया है वे केवल ६ ही हैं। रोप तो केवल नामावरोध ही रह गये हैं। वहाँ पर हम उन्हें ६ का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

**पूर्णाकार्य का अक्रियवाद<sup>६</sup>—**इस मत का विवेकन आचार्य पूर्व अवस्था ने मगध नरेश अजातशत्रु के प्रति किया था। हीपनिष्ठा नामक ग्रंथ में

<sup>१</sup> उत्तराखण्ड सूत्र १८२१ और सूत्र कृतांग १।१।०९ बौद्ध दर्शन मीमांसा पृ० २३  
<sup>२</sup> हीपनिष्ठा हिंदी अनुवाद पृ० ६ १४ भी बहुरूप अवाप्याय सिद्धित बौद्ध दर्शन मीमांसा पृ० २३ बभारस सम्मत १००३  
<sup>३</sup> हिंदी पत्रक कारिद्रुन भाग दि आशीर्वाक्य पृ० १३  
<sup>४</sup> रवेदारवत उपनिषद् १।२  
<sup>५</sup> हम सब का संक्षिप्त परिचय बहुरूप अवाप्याय सिद्धित बौद्ध दर्शन मीमांसा पृ० २४ से ३३ तक देखिए बभारस स १००३ का संस्करण।  
<sup>६</sup> बही पृ० २८ और भी देखिए हिंदी पत्रक कारिद्रुन भाग दि आशीर्वाक्य पृ १३

इसका उल्लेख मिलता है। इसका बोझ सा संकेत हम ऊपर भी कर चुके हैं। वहाँ पर हम इसे बोझ और श्राव्य कर देना चाहते हैं। आचार्य अक्षय कर्म और अक्षय के मेद को स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि अक्षय कर्म करने से म तो पुण्य मिलता है और म तुरे कर्म करने से पाप। हीन निष्पत्ति के अनुसार इस म का प्रतिपादन इस प्रकार है—कठे-कठे खेदन करते, खेदन करते, पछाते-पछाते, शोक करते, परेशान होते, परेशान करते, बलते-बलाते, प्राण मारते, बिना दिया सते, संप मारते, गौंन स्यूते, बोरी करते, बटमारी करते, परकीर्णन करते, मूठ बोलते भी पाप नहीं किना जाता। पुरे के तेब बरु द्वारा जो पृथ्वी के मनुष्यों का मांस का अलिहान बना दे, मांस का पुंज दे तो इसके कारण उसे पाप नहीं, पाप का प्रागम नहीं। यदि मांस करते-करते, काठे-कठते, पकते पछाते गंगा के दक्षिण तीर पर भी जाय तो भी इस कारण उसे पाप नहीं, पाप का प्रागम नहीं होगा। दान देते दान दिलाते बरु करते, बरु करते यदि गंगा के उत्तर तीर भी जाय तो इसके कारण उसे पुण्य का प्रागमन नहीं होगा। दान हम तबम क्षय के आकार से न पुण्य है न पुण्य का प्रागम है।

**आचार्य अनित फेश कम्बल प्रवर्तित लच्छेदवाद**—आचार्य अक्षय के मतानुसार छटि बरु भूतो का संघात है। मानव शरीर भी पृथ्वी, बल, तेब और वायु इन्हीं चार महाभूतों से बना है। मृत्यु के पश्चात् ये चारों महाभूत क्रमशः अपने-अपने मूल तत्वों में विभक्त हो जाते हैं। ये लोग आत्मतत्त्व या ब्रह्मत्व कैसी कोई नहीं मानते। परलोकवाद में भी इन्हें विश्वास नहीं था। इनकी छटि में स्वर्ग और नर्क मानव मन की कल्पना मात्र थे।

**अकृततावाद**—आचार्य प्रकृष अस्वापन ने इस बाद का प्रवर्तन किया था। इनका कहना था कि संसार में केवल छठ पदार्थों की सत्ता है। चार महाभूत मूल-द्रव्य तथा जीवन। इन्हीं छठ तत्वों को इन लोगों ने छठ अर्थों की संज्ञा दी है। हीननिष्पत्ति में इस मत का बर्णन इस प्रकार किया गया है— यह छठ अर्थ (धर्म) अक्षय के समान, अनिर्मित के समान, अव्यय कृतरम स्वम्भवत् अक्षय हैं। यह बल नहीं होते, विघ्न को प्राप्त नहीं होते, न एक दूसरे को हानि पहुँचाते

१ हीननिष्पत्ति की ही कृतवाद पृ० १६२०  
 २ अक्षयदान पृ० १२ प्रथम संस्करण और भी देखिए—हिस्ट्री पब्लिशिंग हाऊस दि  
 धार्मिकशास्त्र पृ० १५ से० ५० पस० व्यास संस्करण १९५१  
 ३ हीननिष्पत्ति पृ० ११ प्रथम संस्करण  
 ४ हीननिष्पत्ति की ही कृतवाद पृ० ११



हैं। एक घूरे के मुक्त दुःख या मुक्त दुःख के लिए पर्याप्त हैं। जीवन से सात (दृष्टीवश), आपन्न, उदकाव, वासुधव, मुक्त, दुःख और जीवन यह सात। यह सात अर्थ अलग-अलग मुक्त दुःख के योग नहीं है। यहाँ न इन्ता है न पातकिता (मर शास्त्रेवासा) न मुननेवासा न कुननेवासा न जाननेवासा न अठकानेवासा जो तीर्थ शब्द से शीतली काटे तो भी किसी को कोई प्राण से नहीं मारता। सात अर्थों के अलग-अलग विवर में (सातों बगह में) शब्द लिखा है।

**अनिश्चिततावाद<sup>१</sup>**—इत मत् के प्रमाण आचार्य संभव वेत्तव्य<sup>२</sup> पुत्र हैं। किसी भी तत्त्व के संभव में इन्होंने कोई निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं किया था। इसीलिए इनके मत को अनिश्चिततावाद के अर्थानुसार से अभिहित करते हैं। दीर्घनिष्ठा<sup>३</sup> में इनके मत का विवरण इस प्रकार दिया गया है।

यदि आप पूछें क्या परलोक है और यदि मैं जानूँ कि परलोक है तो आपको अठकाने कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं करता और मैं बैसा भी नहीं करता। मैं वृत्तरी तख से भी नहीं करता। मैं वह भी नहीं करता कि यह नहीं है। मैं यह भी नहीं करता कि वह नहीं नहीं है, परलोक नहीं है। परलोक है भी और नहीं भी। परलोक न है और न नहीं है। देवता अयोनिपमावी हैं नहीं हैं भी और नहीं भी न हैं और न नहीं हैं। अण्डे तुरे अम के अण्ड हैं, नहीं हैं भी और नहीं भी न है और न नहीं है। कृतपाप्य मुक्त पुण्य मरने के बाद होते हैं नहीं होते हैं। यदि तुम्हें देता पूछे और मैं ऐसा समझूँ कि मरने के बाद तप्यग्य रहते हैं और न नहीं रहते हैं तो मैं ऐसा भी नहीं करता और मैं बैसा भी नहीं करता। उपर्युक्त अवतरण में संभव में प्रमाण तत्त्वों की विवेचना करते समय अस्ति नास्ति अस्ति नास्ति न अस्ति न नास्ति इन पाँचों कोटियों का विवेक किया है। अण्डे कोई निश्चित मत ही स्पष्ट नहीं होता।

**चतुरयाम सुमर नामक<sup>४</sup> मठशास्त्र**—इत मत् के प्रमाण आचार्य निर्गन्ताप्युत वे। वे मरगन्ताप्युत<sup>५</sup> जैनियों के अस्ति तीर्थंकर महावीर स्वामी के नाम से भी प्रसिद्ध थे। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम विरासा था। इनकी पत्नी का नाम बरोरा देवी था। १० वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास

<sup>१</sup> बीहड़ दर्शन पृ० १९ प्रथम संस्करण

<sup>२</sup> हिन्दी पृष्ठ वासुधव आक अजीविष्ठा पृ० १६ खे० पृष्ठ० वाचम १९५१ संस्करण।

<sup>३</sup> दीर्घनिष्ठा हिन्दी अनुवाद पृ० २२

<sup>४</sup> बीहड़ दर्शन पृ० ३०

<sup>५</sup> हिन्दी पृष्ठ वासुधव आक दि अजीविष्ठा पृ० २६

खे० पृ० पृष्ठ० वाचम संस्करण १९५१।

प्रत्यक्ष कर सिखाया। इनके सिद्धांतों का विवेचन जैन ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्ध निष्कर्षों में भी मिलता है। इन्होंने चार प्रकार के संयम को ही धारणा का प्राय माना था। वे चार प्रकार के संयम क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—बीबड़िया के मय से निग्रम्य बल के उपहार का संयम करता है।

२—बहु धनी पापों से बचता रहता है।

३—बहु लव पापों को दूर करने का प्रयत्न करता है।

४—लव पापों को दूर करके उनसे मुक्त रहता है। इत मत्<sup>१</sup> के प्रवर्तकों ने शारीरिक कर्मों पर विशेष बल दिया है। इस मत् के प्रवर्तक माधुसूत ने लपसा के लिये सर्वज्ञता प्राप्त कर ली थी। बौद्धाचार्यों ने लक्ष्मी सर्वज्ञता का उपहास किया है।

**मत्स्वर्णिगोशाल का दैववाद अथवा आजीवक<sup>२</sup> सम्प्रदाय—**

बुद्ध के समय अश्वीन मन्वादी में लक्ष्मी अर्थात् इती सम्प्रदाय की<sup>३</sup> थी। इसके प्रधान प्रवर्तक आचार्य मत्स्वर्णिगोशाल माने जाते हैं। यह मत् आजीवक सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। इत मत्<sup>४</sup> के अनुव्रतानी धानु मत्स्वरी कहलाते हैं। हमारी समझ में मत्स्वरी मत्स्वर्णि का ही पाली रूप है।

मत्स्वर्णिगोशाल का मृत्युफल विद्वानों—ने ५०० बी० सी० के पास निश्चित किया<sup>५</sup> है। यदि हम इनकी आयु १०० वर्ष की भी माने तो हम इस सम्प्रदाय का उदयफल सन् १०० पू० के आसपास निश्चित कर सकते हैं। इन आचार्य का निश्चित जीवनकाल बहुत कुछ अज्ञात ही है। जैन<sup>६</sup> और बौद्ध ग्रन्थ<sup>७</sup> में इनके सम्बन्ध में किंवदन्तियाँ दी हैं वे परस्पर विरोधी हैं। कहते हैं कि वे गोबहुल नामक ब्राह्मण की गोशाला में एक मत्स्वरी अर्थात् मिथुन स्तिता से उत्पन्न हुए थे। इसी लिए इन्हें मत्स्वरी गोशाल वा मत्स्वर्णिगोशाल कहा जाने लगा था। जैन ग्रंथों में लिखा है वे जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी के समकालीन और कुछ दिन उनके शिष्य भी रहे थे। बाद में इनका उनसे मतभेद हो गया। यह मतभेद इतना बढ़ गया कि एक बार दोनों

<sup>१</sup> बौद्ध इतिहास पृ० ४१

<sup>२</sup> हिस्ती पृष्ठ काकिन्स आरु आजीविका अंश २६५१ एक वाक्य।

<sup>३</sup> बौद्ध इतिहास मीमांसा—पृ० ३० अंश २००३

<sup>४</sup> देखिये इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिजिजन बुड पब्लिश वाशिंग्टन १५० २६६ पृष्ठ १६५१

<sup>५</sup> वही—पृ० २६१

<sup>६</sup> भागवती सूत्र—१५११ चिचिकित्सा इतिहास में हार्नेल द्वारा सम्मरित।

<sup>७</sup> बौद्धिकाय पर बुद्ध पोप की टीका में इसका विवरण दिया हुआ है।

है। एक घूरे के मुक्त दुःख या मुक्त दुःख के लिए पर्याप्त है। कैन से वात (वृष्णीअम (वृष्णीअम) आरअम, वेमअम, बाधुअम, मुक्त, दुःख और भीमन यह वात। यह वात अम अहुत मुक्त दुःख के बोध नहीं है। यहाँ न इत्या है न पत्तपिता (नार वास्तनेवासा) न मुननेवासा न मुननेवासा न जाननेवासा न अतज्ञानेवासा जो तीक्ष्ण शब्द से शीघ्र भी अठे तो भी "किछी को अठे" प्राय से नहीं माया। वात अमों से अज्ञय विवर में (आली अगाह में) शब्द मिरका है।

**अनिश्चिततावाद<sup>१</sup>**—इत मत् के प्रथम आचार्य संभव वैलठ्य<sup>२</sup> पुत्र है। किछी भी वात के संभव में इन्होंने कोई निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं किया वा इरीक्षण इनके मत् को अनिश्चिततावाद क अभिधान से अभिहित करते हैं। शीघ्रनिष्ठा<sup>३</sup> में इनके मत् को विवरण इस प्रकार दिया गया है।

यदि आप वृत्तें क्या पल्लोक है और यदि मैं जानूँ कि परलोक है तो आपको कल्लोक कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं करता और मैं वैसा भी नहीं करता। मैं वृत्तों वात से भी नहीं करता। मैं यह भी नहीं करता कि यह नहीं है। मैं यह भी नहीं करता कि यह नहीं है, परलोक नहीं है। परलोक है भी और नहीं भी। परलोक न है और न नहीं है। वैसा अनोनिषपायी हैं नहीं हैं हैं भी और नहीं भी न है और न नहीं है। अण्डे हरे अम के फल हैं, नहीं हैं हैं भी और नहीं भी न है और न नहीं है। अण्डागत मुक्त पुरुष मरने के बाद होते हैं नहीं होते हैं। यदि मुझे ऐसा वृत्तें और मैं ऐसा समझूँ कि मरने के बाद अण्डागत रहते हैं और न नहीं रहते हैं तो मैं ऐसा भी नहीं करता और मैं वैसा भी नहीं करता। उपर्युक्त अक्षरवाच में संभव में प्रथम वातों की विवेचना करते समय अति नाति अति नाति न अति न नाति न नाति कोटिबों का निषेध किया है। अतएव कोई निश्चित मत् ही स्पष्ट नहीं होता।

**चतुरयाम समथर नामक<sup>४</sup> मतवाद**—इत मत् के प्रथम आचार्य निर्गठनाचपुत्र है। ये निर्गठनाचपुत्र<sup>५</sup> कैनिषों के अतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के नाम से भी प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम विद्यासा था। इनकी पत्नी का नाम पयोदा देवी था। ३० वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास

<sup>१</sup> बीहड़ श्रौत पृ० ३६ प्रथम संस्करण

<sup>२</sup> हिन्दी एचड वाकिद्वन काफ़ दि आजीविका पृ० १६ से० पृ० वाचन १९५१ अक्षर ।

<sup>३</sup> शीघ्रनिष्ठाप हिन्दी अनुवाद पृ० २२

<sup>४</sup> बीहड़ श्रौत पृ० ३०

<sup>५</sup> हिन्दी एचड वाकिद्वन काफ़ दि आजीविका पृ० १६

से० पृ० पृ० वाचन अक्षर १९५१ ।

प्रश्न कर लिया था। इनके विद्यार्थी अ विवेचन केन प्रश्नों के अतिरिक्त बौद्ध निष्कर्षों में भी मिलता है। इन्होंने पार प्रश्नर के संयम को ही छाटना अ प्राय माना था। वे पार प्रश्नर के संयम क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—बीबहिवा के मय से निम्नच बल के व्यवहार अ संयम कया है।

२—बह लमी पापों से बचता रहता है।

३—बह लव पापों को दूर करने का प्रयत्न करता है।

४—लव पापों को दूर करके उनसे मुक्त रहता है। इस मत<sup>१</sup> के प्रवर्तकों ने शारीरिक कर्मों पर विशेष बल दिया है। इस मत के प्रवर्तक नागपुत्र ने तपस्या के लिये सर्वज्ञता प्राप्त कर ली थी। बौद्धाचार्यों ने उनको सर्वज्ञता अ तपहास किया है।

**मस्सलिगोशाल का दैववाद अथवा आजीविक<sup>२</sup> सम्प्रदाय—**  
इसके समकालीन मतवादों में सबसे अधिक स्पष्टि इसी सम्प्रदाय की<sup>३</sup> थी। इसके प्रधान प्रवर्तक आचार्य मस्सलिगोशाल माने जाते हैं। यह मत आजीविक सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस मत<sup>४</sup> के अनुयायी साधु मस्सली कहलाते हैं। हमारी समझ में मस्सली मस्सलि अ ही वाली कस है।

मस्सलिगोशाल अ म्मुयुकास विद्वानों—ने ५०० बी० सी० के पास निरिचत किया<sup>५</sup> है। यदि हम इनकी आयु १०० वर्ष की भी माने तो हम इस सम्प्रदाय अ उदयप्रसन्न क्षत्री शताब्दी ई० पू० के आसपास निरिचत यह सकते हैं। इन आचार्य अ निरिचत जीवनवृत्त बहुत कुछ अज्ञात ही है। केन<sup>६</sup> और बौद्ध मत्त<sup>७</sup> में इनके सम्प्रदाय में किंचित्निर्वा<sup>८</sup> ही है वे परस्पर विरोधी हैं।<sup>९</sup> कहते हैं कि वे गोवहुल नामक ग्रामण की गोशाला में एक मस्सली अर्थात् मिद्ध पिता से उत्पन्न हुए थे। इसी स्थित<sup>१०</sup> इन्हें मस्सली गोशाल वा मस्सलिगोशाल कहा जाने लगा था। केन प्रश्नों में लिखा है वे केन तीर्थंकर महावीर स्वामी के समकालीन और कुछ दिन उनके शिष्य भी रहे थे। अन्त में इनका उनसे मतभेद हो गया। यह मतभेद इतना बढ़ गया कि एक बार दोनों

<sup>१</sup> बौद्ध दर्शन पृ० ४१

<sup>२</sup> हिन्दी एवम आरिम्भ आक आजीविक संयम १९५१ एक वाक्यम।

<sup>३</sup> बौद्ध दर्शन मीमांसा—पृ० १० अकारण २००३

<sup>४</sup> देखिये इन्स्टाइनकोपीकिया आक रिडीजन एवम एरिचस वास्पूम १ पृ० २६६ म्मुवाक १९५१

<sup>५</sup> बही—पृ० २६१

<sup>६</sup> भगवती सूत्र—१५।१ विचक्रियोचिक इम्बिच में हार्नेल द्वारा सम्प्रारित।

<sup>७</sup> बीबहिवा पर इह घोष की टीका में इहका विवरण दिया हुआ है।

में इन्द्रपुत्र हुआ<sup>१</sup> था। महावीर स्वामी से संबंध तोड़कर उन्होंने अपना आजीवक सम्प्रदाय चलाया होगा। इनके प्रति ६ शिष्य थे जिनके नाम कमला बाल, कलम्ब, कर्षिकार, अश्विन्ना अग्नि वैश्यावन गोसायुपुत्र अर्जुन हैं। ये लोग चारों ओर घूम घूमकर अपने आचार्य के मत का प्रतिपादन करते थे।<sup>२</sup>

इनके विद्वान्तों का संकेत प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रंथों में किया गया है। हीर्वात्म्य में इनके विद्वान्तों का संकेत स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार मिलता है—  
 छत्तों के क्लेश का हेतु नहीं है, प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु के और बिना प्रत्यय के छत्त क्लेशरूपि हैं। छत्तों की श्रुति का कोई हेतु नहीं है बिना हेतु के और बिना प्रत्यय के छत्त श्रुत होते हैं। अपने भी क्लृप्त नहीं कर सकते हैं परपरे भी क्लृप्त नहीं कर सकते। कोई पुंस भी क्लृप्त नहीं कर सकता। बल नहीं है, बीज नहीं है। पुंस का कोई प्रारम्भ नहीं है। सभी छत्त सभी प्राणी सभी भूत और सभी जीव अपने में नहीं हैं। निर्बल निर्बीज माय और संयोग के फेर से ज्ञः जातियों में उत्पन्न होकर कुल और कुल मोग्ये हैं। कुल और कुल प्रोस माप से श्रेष्ठ हुए हैं। संसार में परमा-कामा अकार्य-अपत्त्ये नहीं होता। जैसे छत्त की गोली फेंकने पर उड़ती हुई गिळी है वैसे ही पवित्र और मूर्ख बौद्धकर आत्ममत्त में पककर कुल का अन्त करेंगे।<sup>३</sup>

उपर्युक्त सबतरक से स्पष्ट है कि आजीवक सम्प्रदाय का निवृत्तिवादी था। आजीवकों के निवृत्तिवाद की जावा भारत के अधिकांश संत सम्प्रदायों पर दिखाई पकती है। यह बात आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायगी।

### बौद्ध साधु सम्प्रदाय

भारतभेतर मासिक साधु सम्प्रदायों पर विचार करते हुए हम अभी छत्त मय्यान् कुल के समकालीन अनेक साधु सम्प्रदायों का उल्लेख कर आते हैं। उनमें से प्रमुख ६ के विद्वान्त पक्ष का भी स्पर्धीकरण हो चुका है। जन्ही ६ के अन्तर्गत जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की संत परम्परा की धर्या भी कर चुके हैं। अब वहाँ पर हम योका-का संकेत बौद्ध साधु सम्प्रदायों का करेंगे।

बौद्ध-जर्म में प्रारम्भ से ही साधु जीवन को विशेष महत्त्व दिया गया था। भगवान् कुल स्वयं एक उच्छेदि के तपस्वी साधु नेता थे। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म की व्यवस्था भी कुल देती थी कि कोई भी व्यक्ति साधु हुए उतक्य सन्ना अनुवासी नहीं ही सकता था। इस धर्म में निर्वास की प्राप्ति केवल ही प्रकार से बदलाई गई

<sup>१</sup> इन्द्राह्नकीर्षिकिया काक रिक्तीज्व एंड द्दिकसत बा० पू० २१३ १० न्यूयार्क १९५१

<sup>२</sup> बौद्ध दर्शन मीमांसा बजरेव उवाच्यार—पृ० ३३।

<sup>३</sup> इन्द्राह्नकीर्षिकिया काक रिक्तीज्व एण्ड द्दिकसत—भाग १ पृ० २११ न्यूयार्क १९५१।

है—संघ में प्रवेश करके या शरीर त्याग करके<sup>१</sup>। इतका प्रमाण यह हुआ कि बौद्ध धर्म दीक्षित होनेवाली अविच्छेद्य बनवा भिक्षु या साधु जीवन व्यतीत करना ही उपयुक्त समझने लगी। बौद्ध धर्म में दीक्षित होना साधु जीवन में दीक्षित होने के समान हो गया। अतः मारतवर्ष में साधुओं और भिक्षुओं की बढ़ ही आ गई। बौद्ध धर्म<sup>२</sup> में संघ की बड़ी महत्ता प्रतिपादित की गई है। उसके महात्म्यों में एक वाक्य संघ शरण्य गन्तव्य भी है।

संघ प्रथा का जन्म भगवान् बुद्ध के समय में ही हो गया था। बौद्ध संघ के सर्वप्रथम अविच्छेद्यता और अविनायक यह स्वयं ही थे<sup>३</sup>। वे कुछ दिन तक तो संघ की एकता अद्वैतता और अविच्छेद्यता सिद्ध करने में समर्थ रहे। किन्तु शनैः शनैः उसमें भेद मानना प्रवेश पाने लगी और संघ विविध श्रंखों में बँट गए। संघ भेद के कई कारण थे। सबसे प्रमुख कारण भगवान् बुद्ध के प्रतिद्वन्द्वियों का ह्येपमाण था। उनका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी देवदत्त था। बौद्ध ग्रन्थों में देवदत्त और भगवान् बुद्ध के पारस्परिक विरोध की व्याख्या करनेवाली बहुत ही कथाएँ और पद्यार्थ बरहित हैं। संघ<sup>४</sup> भेद का दूसरा कारण भगवान् बुद्ध का अपने कुछ शिष्यों के प्रति पक्षपात प्रदर्शन भी था। उन्होंने अपने अनेक शिष्यों में से केवल १० शिष्य चुन लिये थे। उन्हें उन्होंने पूषक पूषक साधु वर्गों का मुखिया नियुक्त कर दिया था। उनका विवरण अग्रे इतक पर है —

१—शारिपुत्र—यह बुद्धिमानों का मुखिया था।

२—अनुसुय—यह वैश्वरि तन्त्र संघों का मुखिया था।

३—महाच्यवन—यह वृत्त महाबलन्वी संघों का मुखिया था।

४—पुत्रमन्वानी पुत्र—यह धर्मोद्देशक साधुओं का मुखिया था।

५—महाकण्वापन—यह बुद्धवचनों की व्याख्या करनेवाली भिक्षुओं का मुखिया था।

६—राहुत—यह विषापी भिक्षुओं का मुखिया था।

७—पुत्रमन्वानी पुत्र—यह बनवाली भिक्षुओं का नेता था।

<sup>१</sup> बुद्धिमान—सं० बृहत्संह बी० ५० १४—वासस कीर्त्त १६१३।

<sup>२</sup> संघ का धर्म भिक्षु समुदाय होता है। देखिए बही ग्रन्थ—पृ० ३३।

<sup>३</sup> यह बात भगवान् बुद्ध के प्रति क्ये तपे देवदत्त के निम्नलिखित शब्दों से की विषय निरक में दिये हुए हैं प्राग् है भगवान् अब आप बुद्ध हो गये हैं। अब संघ की वागडोर मुझे ही दीजिए—देवियं बुद्धियं देवदत्तम् पृ० ३० डा० बी० ५

<sup>४</sup> बही ग्रन्थ—पृ० ३० ३१ पर एक कथा देखिए।

८—ज्ञानम्—बह विद्वान् मिथुषो अ नेता वा ।

९—उपधि—बह विनय प्रदान मिथुषो अ नायक वा ।

१०—महात्मोगाहावन—महाशरणादी मिथु के नायक मे ।

संयुक्तनिकाय<sup>१</sup> नायक ग्रंथ में उपर्युक्त १० श्लोकों के भी शिष्य ग्रंथिण मिलाने गये हैं। इन सबने मिलकर पुष्य-पुष्य मिथुषो श्लोकों को जन्म दिया हुआ है। शिष्य शीघ्र ही अनेक मिथु सम्प्रदाय पाये जाते हैं।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि बौद्ध मिथु श्लोकों का निर्माण मौखिक आचार पर किया गया था। प्रोफेसर बिह्लरुथी ने मौखिक दृष्टि से बौद्ध मिथु श्लोकों के तीन भेद परिगणित किये हैं—

१—वैशाली के मिथु ।

२—कौरावमी के मिथु ।

३—मधुरा के मिथु ।

वैशाली पूर्व के महा शंखि नामक मिथुषो का केन्द्र था। कौरावमी दक्षिण-पश्चिम के बेरवादिपों का केन्द्र था।<sup>२</sup> मधुरा में उर्वाक्षिवादिपों की प्रधानता थी।<sup>३</sup>

बौद्ध धर्म में मिथु श्लोकों का उदय विनय के १० विद्वानों के आचरित के कारण भी हुआ होगा। कहने का आशय यह है कि विविध शक्तियों ने बौद्ध शंख को विविध सम्प्रदायों में विभक्त कर दिया। बौद्ध ग्रंथों में हठ प्रकर के १८ सम्प्रदायों का उल्लेख पाया जाता है। आचार्य विनीत्यादेव<sup>४</sup> ने इन सम्प्रदायों को भी ३ वर्गों में बाँट दिया है वे हठ प्रकर हैं—

प्रथम और द्वितीय—महाशंखि—पुष्यशैल आशरशैल हैमावत, शोभेचरवाद महातिचार ।

तृतीय—उर्वाक्षिवादी—मूलरवरवादी, शरयपीय, महीशरक, बम्भयुव बहुरुचीय, वामरुचीय विमम्भवादिपों का एक वर्ग ।

चतुर्थ—उमितीय, कौरुकुलक, अकन्ठक, वस्त्वपुत्रीय ।

पंचम—शयविर—केतवनीय, आममगिदि, काशी, और महाभिहारवादी ।

इनके अतिरिक्त और भी कई सम्प्रदाय थे किन्तु उल्लेख कुछ दूररे बौद्ध शिष्यों ने किया है।<sup>५</sup> वे सम्प्रदाय मित्त्वप्रति बढ़ते ही गये। नवो-नवों सम्प्रदाय बढ़ते गये, त्यों-त्यों

<sup>१</sup> देखिए अरबी मीनासिक बुद्धिज्ञान—पृ० १६

<sup>२</sup> संयुक्तनिकाय—१।१५७ ।

<sup>३</sup> अरबी मीनासिक बुद्धिज्ञान भाग्यम १—पृ० ५१० दृष्ट कककता १६५५

पृ० २३ ३० ।

<sup>४</sup> देखिए अरबी मीनासिक बुद्धिज्ञान २—पृ० ५०-५८ कककता १६५५ ।

<sup>५</sup> इनके विचार के लिए उपर्युक्त ग्रन्थ का जन्म जन्माय देखिए ।

बौद्ध भिक्षुओं का नैतिक पतन होना गया। संकटाचार्य ने इन्हीं बौद्ध भिक्षुओं का मूलोपदेन किया था।

### जैन सन्तों की परम्परार्य और उनका प्रभाव

निर्गुण-काम्यभारा की कई महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों को प्रस्था प्रदान करने का भेष जैन सन्तों को मी है। जैन<sup>१</sup> मत बहुत प्राचीन है। श्वरमदेव नामक कोई पौराणिक पुस्तक इसके प्रथम प्रवर्तक माने जाते हैं। इत मत का क्रमबद्ध इतिहास महावीर स्वामी से किनकर स्थिति करल ५२१ ४६६ वि० पू० माना जाता है मिलता है। वह अस्मिन् तीर्थपुर ये। इनसे पहले २३ तीर्थंकर और हा बुके ये। इतसे स्पष्ट है यह मत बौद्ध मत से मी अधिक प्राचीन है।

जैन मत के प्रमुख संप्रदाय दो हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। इनमें श्वेताम्बर लोग श्वेत वस्त्र धारण की हुई मूर्तियों की पूजा करते हैं। किन्तु दिगम्बर लोग नग्न मूर्तियों में मग्ना रहते हैं। मूर्ति-पूजा सम्बन्धी वह भेद उनके साधुओं क रहन रहन में मी दिखाई पड़ता है। श्वेताम्बरी साधु संकेद वस्त्र पहनते हैं जब कि दिगम्बर साधु नग्न रहना पसन्द करते हैं।

इन जैन संप्रदायों का उदय कुषारवादी भावना सेकर हुआ था किन्तु पौराणिक धर्म इतना बलवान निकला कि उठने इनको मी प्रभावित कर अपने अनुरूप बना लिया। इनमें मी विविध आचारों और अनुष्ठानों का प्राधान्य हो गया। इसी प्रकार तंत्र मत के बलवान पड़ने पर जैन मत उससे मी दब गया और उठने बहुत सी शक्तें उससे मी ले ली। आठवीं-नवीं शताब्दी क जैन मरमी सन्तों पर हीन शाक्त मतों की अत्यन्त छाप दिखाने पड़ती है। आचार्य इशाउप्रसाद ने इन सन्तों का खोब पूर्ण अध्ययन किया है।<sup>२</sup> उन्होंने प्रमाहित कर दिया है कि निर्गुण धर्मियों का इन मरमी सन्तों से सीधा संबंध है। नायनियों के लक्ष्य इन मरमी सन्तों में मी अलल निरंजन शिव का बर्णन किया है।<sup>३</sup> उन्हीं के लक्ष्य से सामरस्य<sup>४</sup> के सिद्धांत में निर्यास करते ये। जो पियर में है वही ब्रह्माण्ड में वाग का यह सिद्धांत इन्हीं मी मान्य है।<sup>५</sup> मध्य युग के अल्प कुषारवादी धर्म प्रचारकों की मांति वेद शास्त्रों तथा

<sup>१</sup> इसके विपु पं० परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'सत साहित्य भार जैन हिन्दी कवि' शीर्षक संग्र 'भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रोपार्य' नामक संग्र में द्रविण।

<sup>२</sup> इतिव 'सम्प्रदायिक धर्म साधना' में जैन मरमी नामक संग्र पृ० २१ का० द्वारा प्रसार दिवेरी

<sup>३</sup> वही पृ० २२

<sup>४</sup> वही पृ० २३

<sup>५</sup> वही पृ० २३



आत्म धार्मिक ग्रंथों की निरवकाश का प्रतिपादन ये भी किया करते थे। पंचबाद की विरोध भावना हममें भी पाई जाती है।

आये पञ्चकर सागम्य १०वीं ११वीं शताब्दी में सुधारवादी शक्तों की परम्परा प्रकटित हुई। इस परम्परा के शक्तों का लक्ष्य मिथ्यावादी और पाखण्डों का खण्डन करना था। पवित्रों और वेद शास्त्रों के यह खण्डन विरोधी थे। इस सुधारवादी परम्परा के सबसे प्रमुख कवि मुनि उमरिह हैं। 'पाण्डु बोधा' में इनकी रचनाएँ संकलित हैं। पं० परशुराम बटुवेंदी ने इनकी कुछ सुधारवादी उक्तिों अपनी संत-परम्परा में उदाहरणों के रूप में उद्धृत की हैं। उनसे इस परम्परा के कवियों की सुधारवादी प्रवृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है। यहाँ पर हममें से कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं। "छह ईश्वरपंचक पवित्र मन्त्रहस्त विहित याति एककु देठ छमेठ किठ तेषण मोक्कं भन्ति"।<sup>१</sup>

अर्थात् पञ्चदर्शनों के बखर में पञ्चकर मन प्रमित हो जाता है। एक मन्त्राम के छः वेद करके छोड़ उसे प्राप्त नहीं कर सकता। मोक्ष उसके दूर हो जाता है।

मुंडिय मुंडिय मुंडिया सिव मुंडिय पिठरा मुंडिय पिठई मुंडिया किमठ संसारह संदशुति किमठ।<sup>२</sup>

अर्थात् हे मूक मुझने वाले संसारवादी तूने मूक तो मुझा लिया है किंतु पित्त बिना मुझा ही रह गया है। बालकिक आचरणकटा निरत मूकने की है। संसार का खण्डन नहीं कर सकता है जितने अपने निरत को मुझा लिया है।

संतुण संतुण्य वेडण रावि लच्छासह किमईकारवा।

पमइ परम मुक्खु मुण्णि मुक्खइ रहिगलगळ कासुपरुक्खई ॥

अर्थात् मंत्र-तंत्र श्रेय धारणा उच्छ्वास का कारण बनाया जाता है तभी मुनि परम मुक्त से होता है।

इस प्रकार की उक्तियों उक्तिों उपलब्ध हैं जो शक्तों की सुधारवादी उक्तियों से बहुत मिलती-जुलती हैं। कहीं-कहीं तो दोनों की भाषा और अभिव्यक्ति में एक विभिन्न साम्य दिखाई पड़ता है। जैन शक्तों की इन प्रवृत्तियों में निर्गुणिकी कवियों को बहुत अधिक प्रभावित किया था। यह सभी प्रवृत्तियाँ हममें कहीं कहीं पाई जाती हैं।

<sup>१</sup> शरी ५० २८

<sup>२</sup> पाण्डु बोधा चरित्रो जैन सिरीज ३ बोधा ८० ५० २० उन्नी भारत की संत परम्परा ५० २२ से उद्धृत

<sup>३</sup> पाण्डु बोधा चरित्रो जैन सिरीज ३ बोधा ११९ ५० १२ उन्नी भारत की संत परम्परा ५० २२ से उद्धृत।

## उपर्युक्त साधु परम्पराओं की निर्गुण काव्यधारा पर क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ

उपर्युक्त साधु परम्पराओं ने निर्गुण काव्यधारा के लिए दृष्ट्युक्ति का कार्य किया। निर्गुणियों साधु सन्तों पर इन साधु परम्पराओं के क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। वैदिक साधुओं की परम्परा होते हुए भी साधना करने की प्रवृत्ति निर्गुण सन्तों में भी थी जो परिलक्षित होती है। वैदिकोत्तर कालीन साधुओं की परंपरानुसंधा, ज्ञान, वैराग्य, तपस्या आदि का भी पूरा-पूरा प्रभाव इन सन्तों पर पड़ा था। सामिल होकर साधुओं की सदाचारविषयक प्रेम-निष्ठ और आसक्ति आदि विशेषताएँ भी इन निर्गुण सन्तों को प्रभावित किये बिना न रह सकतीं। इन क्रियात्मक प्रेरणाओं के अतिरिक्त कुछ प्रतिक्रियात्मक प्रेरणाओं ने भी निर्गुण काव्यधारा के स्वरूप को संभालने की चेष्टा की थी। वैदिकोत्तरकाल में कुछ दृष्टिम साधुओं का उदय भी हो चला था। यह लोग आत्मनिष्ठ साधना में अपनी स्वार्थ-सिद्धि के हेतु ही प्रवृत्त होते थे। इनमें पालक और आत्मव्यपिपता का माधम्य था। इनमें साधुदायिष्ठा की बुद्धि भी बलवती होती जा रही थी। निर्गुणियों सन्तों में इन सब के प्रति प्रतिक्रिया की भावना जागृत हुई। उन्होंने साधु जीवन की इच्छिता का अग्ररोप किया और सदाचारपूर्वक पवित्र जीवन का उद्देश्य दिया।

निर्गुणियों सन्तों को आत्मोत्तर साधु परम्पराओं ने भी प्रभावित किया था। ऊपर हम दिखाया चुके हैं कि यह आत्मोत्तर साधु परम्पराएँ वैदिक काल में ही अस्तित्व हो चली थीं। आगे चलकर इनका और भी प्रभुत्व बढ़ गया। यह आत्मोत्तर साधु परम्पराएँ भी दो प्रकार की थीं—आसक्ति और नासक्ति। इन दोनों प्रकार की परम्पराओं में हमें कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

- (क) अन्ति और विरोध की प्रवृत्ति।
- (ख) बुद्धिवादिता का अतिरेक।
- (ग) मरने सम्बन्धी प्रवृत्ति की प्रवर्तन की प्रवृत्ति।
- (घ) आत्म और उनके प्राणादिक प्रणवों तथा उनकी आरणाओं और निष्ठियों के प्रति अतिरिक्त।

आत्मोत्तर साधु परम्पराओं की इन प्रवृत्तियों का निर्गुण काव्यधारा पर पूरा-पूरा प्रभाव दिसलाई जा सकता है। उनमें यह प्रवृत्तियाँ किसी न किसी रूप में मूर्तिमान मिलती हैं।

हिन्दी की निर्गुण सम्प्रदाय और उर्दू की शार्ङ्गिक पृष्ठभूमि

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण सम्प्रदाय के सन्तों के लिए साधना मार्ग बहुत प्राचीन काल से ही विनियत किया जाने लगा था। मात्र भूमि में इनका उर्दू आधुनिक और अप्रत्याशित न था।

मध्य-युग में संतों, साधु सम्प्रदायों और मठों की प्रेरणाएँ

निर्गुण सम्प्रदायेतर मध्य-युगीय साधु सन्त-परम्पराएँ और मठ

मध्य युग प्राचीन काल से पत्नी आती हुई सैकड़ों साधु परम्पराओं का मिलन विन्दु था। इस युग में आकर साधु बाग़ में कई विद्वत् प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं। वे इस प्रकार हैं—

१—ईश्वर-सम्पदाओं के सम्बन्ध से एक नवीन सम्प्रदाय के उत्पन्न होने की प्रवृत्ति।

२—स्त्री-वादिता और आडम्बर की पूजा।

३—मर्त्य-परम्परा सम्प्रदायिकता का उद्भव।

इन सब दोषों की प्रतिक्रिया के रूप में नये स्वतंत्रतावादी एवं तुषारवादी सन्तों एवं आचार्यों के सम्प्रदाय उठ लगे हुए। कुछ ऐसे ही सम्प्रदाय थे जो दोनों के बीच का मार्ग प्रशस्त करते हुए थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य-युग में साधु सम्प्रदायों की तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ थीं :—

१—स्त्रीवादी बाध।

२—तुषारवादी बाध।

३—सम्बन्ध-वादी बाध।

(१) स्त्रीवादी बाध—स्त्रीवादी बाध के अन्तर्गत प्राचीन ढंग के ब्राह्मण और ब्राह्मणोत्तर सभी साधु परम्पराएँ आयेगी। मध्य-युगीय ब्राह्मण साधु परम्परा बहुत विद्वत् हो चली थी। श्रुति-स्मृति वैज्ञानिक और संन्यासी आदि सभी अपने आदर्शों से पठित हो गये थे। इन सबमें आडम्बर और पालक दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। ब्राह्मणों में कहीं एक ही लम्बा साधु दिखाने पड़ता था। अविद्यमान ब्राह्मण साधु मठ बन गये थे। वे शायद अविद्यमान मठों में रहते थे। वहाँ साधु जीवन व्यतीत करने के साध-साध के पुरोहित और पुजारी का भी काम करते थे। बनवा में इनका बड़ा सम्मान था। वे लोग धर्म के अविद्यमान लम्बे बाते थे। वे बाँधे जो कुछ भी करते उन्हें सब कुछ सम्यक था। वे लोग अविद्यमान पढ़े-लिखे भी नहीं रहते थे। इसी कारण उनमें विज्ञान

और विवेक बहुत कम होता था। मध्य-युग की देवदासी प्रथा ने इन लोगों को पौर-व्यभिचारी बना दिया था। धर्म के नाम पर ये पौर अपरम फैलाने हुए थे।

इन रुढ़िवादी महन्तों के अतिरिक्त रुढ़िवादी बौद्ध सिद्धु भी समाज में बौर-आडम्बर फैलाये हुए थे। इनमें मूर्ति-पूजा, स्तूप-पूजा, चैत्य पूजा का प्रचलन प्रचार था। बौद्धों के सदृश कौनों संत लोग भी अपने धर्म को स्वागच्छ बर्माभात की पूजा करने लगे थे। हममें दिगम्बर सम्प्रदाय में सिद्धुधर्मों के संयोग से व्यभिचार फैल रहा था। इनके और सिद्धुधर्मों के मंदिर और बौद्धों के विहार व्यभिचार के केन्द्र बन गये थे। यदि हम इन रुढ़िवादी संतों और महन्तों और साधुओं की गाथा करें तो इनके पालकों और पापों की कथाओं से पोषा भर जायेगा। इनको देखकर निर्गुणियों संतों में प्रतिक्रिया सुधार और अति की भावना बग उठी। निर्गुण संप्रदाय उठी का फल है।

(२) सुधारवादी सम्प्रदाय—मध्ययुग में सुधारवादी संतों के भी विविध संप्रदाय थे। उन सब को हम सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्गों में बाँट सकते हैं—

प्रतिक्रियावादी सुधारक संप्रदाय । धार्मिकसुधारवादी सुधारक संप्रदाय ।

प्रतिक्रियावादी सुधारक संप्रदायों के भी हमें ४ वर्ग दिखाई पड़ते हैं—

(क) खंडन-मंडन की प्रवृत्ति लेकर चलनेवाले प्रतिक्रियावादी योगी संप्रदाय ।

(ख) ध्यानात्मक सुधारकों के संप्रदाय ।

(ग) कुल सुधारवादी साधु ।

(घ) प्रतिक्रियावादी समाज-सुधारक सिमापत ।

(ङ) इनमें भी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति लेकर चलनेवालों के दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं—

१—तांत्रिक साधुओं का वर्ग । २—नाचरपिणों का वर्ग ।

१ इतिहास दि प्रिंस भाठ विस अरस्तुती मदन स्त्रीज भाग ८ में देवदासी प्रथा पर मध्ययुग का लोचन रखे निबन्ध पृ० १११ से १२१ तक उनके अनुसार देवदासी प्रथा का पौरों को प्राणियों से प्राप्त हुई थी। सातवीं शताब्दी तक यह बड़ी ही पवित्र थी बाद में यह विकृत हो गई और धर्म में व्यभिचार का कारण बन गई। इस बात का पता अनुवर अक्षरम ४१० पृ० ६० के उद्धरणों से लगता है। उससे किन्ना है धार्मिक प्रवृत्ति के बीच धर्म पर अहित में उत्पन्न होनेवाली वास्तविक संतान को सम्पूर्ण करने की मान्यता बन देने से। कथा का जन्म होते ही यह मंदिर को साथ ही जाती थी। मुदा होने पर यह धरणावृत्ति से धन कमाकर मंदिर के महन्त को देती थी।

तार्किक साधु भी २ प्रकार के थे—एक हिंदु, दूसरे बौद्ध। दैव और शान्त तर्किक हिंदु कहलाते थे और ब्रह्मवानी सहजवादी सिद्ध लोग बौद्ध तार्किक कहलाते थे। इन संप्रदायों के दर्शन का विस्तृत विवेचन दार्शनिक दृष्टमूर्ति के प्रसंग में किया गया है। वहाँ पर हम गोरखनाथ और उनके चतुष्टय साधुओं का योका-सा परिचय देकर उनसे विशेषताओं का विवेचन करेंगे। इनका उद्देश्य इतिहासी साधु संप्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में ही हुआ था और उनमें सुधार-भावना का भी प्राबल्य था किन्तु विविध कारणों से वे अपने उच्च आदर्शों को स्थिर न रख सके। निर्गुण संप्रदाय के उद्देश्य और विचारों को इनसे प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा मिली होगी।

सबइन-मयडन की प्रवृत्ति को लेकर चलनेवाले योगी साधुओं का दृष्टय वर्ग माध-संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इस संप्रदाय के साधु योगी, अक्षयूत, चतुष्टय, दर्रांनी, गोरखनाथी आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।

### नाथ सम्प्रदाय और उसके दो प्रमुख संत

मध्यकालीन धार्मिक साधनाओं में नाथसंप्रदाय बहुत प्रसिद्ध है। हिंदी के निरुद्धियाँ कवियों का इस संप्रदाय से सीधा संबंध है। यदि इन दोनों पाठकों का ठल मात्रक एक अक्षयन किंवा नाथ तो निर्निवाद रूप से वह स्वीकार करना पड़ेगा कि निर्गुण संतों का संप्रदाय माधसंप्रदाय का ही एक परिसंस्कृत वैधान रूपान्तर है।

मध्ययुग में वह मत विविध नामों से प्रसिद्ध था किन्तु विक्रम, योगमार्ग, योगसंप्रदाय, अक्षयूत संप्रदाय, गोरखसंप्रदाय, मस्तेन्द्रनाथी संप्रदाय आदि नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।<sup>१</sup> इस मत के अनुयायी भी योगी, चतुष्टय, दर्रांनी, गोरखसंप्रदायी आदि विविध नामों से प्रसिद्ध हैं।<sup>२</sup>

नाथ शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों का बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् इत्यत्र अर्थ मुक्ति देनेवाला करते हैं। और कुछ लोग 'ना' का अर्थ अनादिरूप और थ का अर्थ भुवनत्रय लेकर उसे अनादि धर्म का घटक और भुवनत्रय की रीति का वाचक मानते हैं। इसी प्रकार इत्यत्र उत्पत्ति के संबंध में भी मतभेद नहीं है कुछ लोग तो इसे स्वतंत्र दर्शन प्रकृति मानते हैं किन्तु उच्च मध्ययुग की कई धार्मिक वाद्यों के योग से हुआ था। इसके विपरीत कुछ दूसरे विद्वान् उसे ब्रह्मज्ञ और

<sup>१</sup> नाथ सम्प्रदाय डा० हजारीप्रसाद, इलाहाबाद १९२०, पृ० १

<sup>२</sup> गोरखनाथ पृष्ठ दि चतुष्टय योगी जिनका पृ० १

<sup>३</sup> हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० १२८

<sup>४</sup> नाथसंप्रदाय—डा० हजारीप्रसाद शिबेरी पृ० ३, १९२०

<sup>५</sup> वही

सहस्रनाम अथ ही विस्तृत और परिष्कृत रूप मानते हैं। कुछ लोग इसे ही साधना पद्धति मानने के पक्ष में हैं। इस प्रकार इसकी उत्पत्ति के संबंध में विविध मतवाप प्रचलित हैं। हमारी अपनी धारणा है कि यह संप्रदाय रश्मिकरूप से अपने समय की समस्त प्रसिद्ध धर्म पद्धतियों के योग से उत्पन्न हुआ था।

इस संप्रदाय के उदयकाल क संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् गोरक्षनाथ को इसका प्रमुख प्रवर्तक मानकर इसका उदयकाल १०वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में स्थित करते हैं<sup>१</sup>। कुछ पहले विद्वान् इसका उदयकाल ईसा की दूसरी शताब्दी मानने के पक्ष में हैं<sup>२</sup>। हमारी अपनी धारणा यह है कि इसका उदय लगभग आठवीं शताब्दी के आठ-नाथ हुआ था। मत्स्येन्द्रनाथ इसके मूल प्रवर्तक थे। उनके बाद उनके शिष्य गोरक्षनाथ ने इसको व्यवस्थित और परिष्कृत करके लोक में प्रचारित किया। गोरक्षनाथ के बाद इस संप्रदाय के प्रमुख संतों में बालगङ्गनाथ, गङ्गनीनाथ, करबीरा नाथ, चरपटनाथ, मयूहरि नाथ, गोपीबन्ध नाथ विशेष प्रसिद्ध हैं। ये सब संत संख्या में १ माने गये हैं और नवनाथों के नाम से प्रसिद्ध हैं। नवनाथों के अष्टगौत कौन-कौन से संत होते हैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में नवनाथों की भिन्न-भिन्न प्रकार की शिष्टों दी हुई हैं<sup>३</sup>। जो भी हो मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ को सभी विद्वान् माध्वपंथ का आचार्य मानते हैं। मयूहरिनाथ, गोपीनाथ, बालगङ्गनाथ, और करबीरनाथ ये चार नाथपंथी संत और बहुत प्रसिद्ध हैं। मगवान् आदिनाथ इस मत के मूल प्रवर्तक थे

<sup>१</sup> संप्रदाय, संप्रदाय, सहस्रनाम और ८८ प्रिद्ध—साहस्र सांख्यशास्त्र गंगा पुराणशांख्य पृ० २११

<sup>२</sup> हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकृष्ण शर्मा पृ०

<sup>३</sup> भिन्नभिन्न संतानि—श्रीमती कायाजी मलिक, भूमिका पृ० ७, पृ० ११५

<sup>४</sup> ऐक्य नाथ सम्प्रदाय—आरीप्रसाद त्रिवेदी।

<sup>५</sup> महा विद्यालय संत में नवनाथों के नाम इस प्रकार दिये हैं। १—गोरक्ष, २—बालगङ्ग, ३—नागाजु, ४—अरुणाजु, ५—रुद्राज, ६—रुद्रा ७—अथ भरत, ८—आदि नाथ, ९—मत्स्येन्द्रनाथ।

१०—योग सम्प्रदाय विद्वानों में नवनाथों की शिष्ट इस प्रकार दी है। १—मत्स्येन्द्र नाथ, २—गङ्गनीनाथ ३—बालगङ्गनाथ ४—करबीरा नाथ ५—रामानाथ, ६—अपरनाथ, ७—मयूहरिनाथ ८—गोपीबन्ध नाथ ९—आदिनाथ।

१०—सुभाकर चन्द्रिका में दिये गये नवनाथ की संख्या दी है। नेपाली परम्परा में विष्णुका इन्से ही नाथों के नाम पर है। ऐक्य—नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद पृ० १४-१५।

तांत्रिक धाम्मी १ प्रकार के थे—एक हिंदू, दूसरे बौद्ध। रीति और शास्त्र तांत्रिक हिंदू कहलाते थे और ब्रह्मपानी छात्रपानी सिद्ध लोग बौद्ध तांत्रिक कहलाते थे। इन सम्प्रदायों के दशन का विस्तृत विवेचन दार्शनिक दृष्टमूर्ति के प्रथम में किया गया है। वहाँ पर हम गोरक्षनाथ और उनके अनूठा धाम्मीयों का योजना-सा परिचय देकर उनका विशेषताओं का विवेचन करेंगे। इनका उद्देश्य कृत्रिम धाम्मी सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में ही हुआ था और उनमें सुधार-भावना का भी प्राधान्य था किन्तु विविध कारणों से वे अपने उच्च आदर्शों को स्थिर न रख सके। निगुण सम्प्रदाय के उदय और विकास को इनसे प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा मिली होगी।

साम्प्रदाय-मरदान की प्रकृति को लेकर चलनेवाले योगी धाम्मीयों का उद्देश्य वर्तमान सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय के धाम्मी, अक्षय, अनूठा, बरौनी, गोरक्षनाथी आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।

### नाथ सम्प्रदाय और उसके दो प्रमुख संत

मध्यकालीन धार्मिक साधनाओं में नाथपर्य बहुत प्रसिद्ध है। हिंदी के निगुणियों कवियों का इस सम्प्रदाय से हीना संबंध है। यदि इन लोगों का दृष्ट-नात्मक ध्यान अभ्यास किया जाय तो निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि निगुण संतों का सम्प्रदाय नाथपर्य का ही एक परिवर्तित रूपान्तर है।

मध्यकाल में वह मठ विभिन्न नामों से प्रसिद्ध था जिनमें लिङ्गमठ, योगमार्ग, योगसंप्रदाय, अक्षय सम्प्रदाय, गोरक्षपर्य, मत्स्येन्द्रनाथी सम्प्रदाय आदि नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।<sup>१</sup> इस मठ के अनुयायी भी योगी, अनूठा, बरौनी, गोरक्षपर्यी आदि विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं।<sup>२</sup>

नाथ शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों का बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् इसका अर्थ श्रुति देनेवाला करते हैं। और कुछ लोग 'ना' का अर्थ अनादिकर और थ का अर्थ मुषनत्रय लेकर उसे अनादि धर्म का चोटक और मुषनत्रय की स्थिति का वाचक मानते हैं।<sup>३</sup> इसी प्रकार इसकी उत्पत्ति के संबंध में भी मतभेद नहीं है कुछ लोग तो इसे स्वतंत्र बरौनी पदसि मानते हैं किन्तु कुछ मध्यकाल की कई धार्मिक धारणाओं के योग से हुआ था।<sup>४</sup> इसके विपरीत कुछ दूसरे विद्वान् उसे ब्रह्मपान और

<sup>१</sup> नाथ सम्प्रदाय का इजारीस्ताद, इजारीस्ताद १९२०, पृ० १

<sup>२</sup> गोरक्षनाथ पर्य दि अनूठा योगी विष्णु पृ० १

<sup>३</sup> हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० १२८

<sup>४</sup> नाथपर्य—डा० इजारीस्ताद हिन्दो २० ३, १९२०

<sup>५</sup> यदी

एकवचन का ही विकसित और परिष्कृत रूप मानते<sup>१</sup> हैं। कुछ लोग इसे ही साधना पद्धति मानने के पक्ष में हैं। इस प्रकार इसकी उत्पत्ति के संबंध में विविध मतवाद प्रचलित हैं। हमारी अपनी धारणा है कि यह संप्रदाय रसत्रयरूप से अपने समय की समस्त प्रसिद्ध धर्म पद्धतियों के बाग से उद्भूत हुआ था।

इस संप्रदाय के उदयकाल के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् गोरक्षनाथ को इसका प्रमुख प्रवर्तक मानकर इसका उदयकाल १०वीं शताब्दी के पश्चात् निर्दिष्ट करते हैं<sup>२</sup>। कुछ दूसरे विद्वान् इसका उदयकाल ईसा की दूसरी शताब्दी मानने के पक्ष में हैं<sup>३</sup>। हमारी अपनी धारणा यह है कि इसका उदय लगभग आठवीं शताब्दी के आठ-नाल हुआ था। मत्स्येन्द्रनाथ इसके मूल प्रवर्तक थे। उनके बाद उनके शिष्य गोरक्षनाथ ने इसको व्यवस्थित और परिष्कृत करके लोक में प्रचारित किया। गोरक्षनाथ के बाद इस संप्रदाय के योग्य संतों में बालम्बरनाथ, गङ्गनीनाथ, करसींग नाथ, चरपडनाथ, भर्तृहरि नाथ, गोपीचंद्र नाथ विशेष प्रसिद्ध<sup>४</sup> हैं। वे सब कलकत्ता में ही माने गये हैं और नवनाथों के नाम से प्रसिद्ध हैं। नवनाथों के अन्तर्गत कौन-कौन से संत आते हैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि मिश्र-मिश्र ग्रन्थों में नवनाथों की मिश्र-मिश्र प्रकार की लिस्टें दी हुई हैं<sup>५</sup>। जो भी हो मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ को सभी विद्वान् मातृवचन का आचार्य मानते हैं। भर्तृहरिनाथ, गोपीनाथ, बालम्बरनाथ, और कर्षिरामनाथ ये चार नामवचनी संत और बहुरूप प्रसिद्ध हैं। भगवान् आदिनाथ इस मत के मूल प्रवर्तक थे

<sup>१</sup> मंत्रनाथ, लंकाबाबू, बसबाबू और दश सिद्ध—माहस सांख्यशास्त्र गंगा पुरातत्त्वांक पृ० २२१

<sup>२</sup> हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ०

<sup>३</sup> सिद्धसिद्धांत पत्रिका—श्रीमती कान्हाणी मलिक, भूमिका पृ० ७, पृ० १३२४

<sup>४</sup> हरिश्च नाथ सम्प्रदाय—द्वारीप्रसाद द्विवेदी।

<sup>५</sup> मद्रा विद्यालय संघ में नवनाथों के नाम इस प्रकार दिये हैं। क—१—गोरक्ष, २—बालम्बर, ३—नागार्जुन, ४—सद्वर्जार्जुन, ५—दवाधेय, ६—देवार्ज, ७—अप भाल, ८—आदि नाथ ९—मत्स्येन्द्रनाथ।

ख—योग सम्प्रदाय विनूति में नवनाथों की लिस्ट इस प्रकार दी है। १—मत्स्येन्द्र नाथ २—गङ्गनीनाथ ३—बालम्बरनाथ ४—करक्षिपा नाथ ५—देवानाथ, ६—चरपडनाथ, ७—भर्तृ हरिनाथ, ८—गोरीचन्द्र नाथ ९—आदिनाथ।

ग—मुंबाईर कश्मिरा में दिये गये नवनाथ की अलग ही हैं। मीपासी परम्परा में विष्णुत्रय मुनो ही नाथों के नाम पर हैं। हरिश्च—नाथ सम्प्रदाय—डा० द्वारीप्रसाद पृ० १४-२२।



इस सम्बन्ध में भी एक मठ नहीं है। आदिनाथ मगवान् शिव का ही नाम है। इससे प्रकृत होता है कि नाथपरम मूलतः एक हीच सम्प्रदाय है। यहाँ पर हम सोझा सा परिषद मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, मत्स्यहरि, गोपीचन्द्र और वासुदेवनाथ का ही नाम आचर्यक समझते हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ की के लिये हुए बहुत से ग्रन्थ कथलाए जाते हैं इनमें कौलज्ञाननिर्णय, अक्रुतबीरवंश, कुशाभवंश और बालकारिका विशेष प्रसिद्ध हैं।<sup>१</sup>

मत्स्येन्द्रनाथ के साधना मार्ग का नाम डा० बागची ने योगिनीकौल मार्ग कथलाया है।<sup>२</sup> डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस नामकरण की आलोचना की है।<sup>३</sup> उनका कहना है कि मत्स्येन्द्रनाथ पहले सिद्ध या सिद्धामृत मार्ग के अनुयायी थे। बाद में कामरूप में जाकर वह बाममार्गी साधना में हीरहित हो गये थे। उसी समय से वह कौल की जाने लगे थे। किंतु अपने शिष्य गोरक्षनाथ के द्वारा प्रकृत किने जाने पर पुनः सिद्ध मठ के समर्थक हो गये थे। हमारी अपनी धारणा यह है कि हजारी-प्रसादजी ने अपना मठ कौल शब्द के आधार पर निर्धारित किया है। वह कौल का अर्थ बाममार्ग समझे हैं। किंतु कौल का अर्थ बाममार्ग नहीं है। कौलज्ञान निर्णय में उद्ये योग का एक प्रकार बतलित किया गया है। उसमें सिद्धा है कि योगमत्स्य प्रकार का होता है उनमें सर्वप्रथम कौल नामक योग है। हमारी अपनी धारणा है कि मत्स्येन्द्रनाथ शैवशाक्त तंत्र के दार्शनिक योगी थे बाममार्गी शाक्त नहीं। नाथपरम और शैवशाक्त तंत्र साधना के बीच की लड़ी मत्स्येन्द्रनाथ का कौल योग ही है।

अक्रुतबीर तथा कामरूप में कौल साधना के दो स्वरूप कथलाए गये हैं—एक अक्रुतबीरयोग और दूसरा कथलयोग। इन दोनों में कथलयोग श्रेष्ठ कथलाया गया है। गोरक्षनाथजी का अनुयाय कथलयोग की ओर अधिक था किंतु मत्स्येन्द्रनाथ दोनों के ही समर्थक थे।

मत्स्येन्द्रनाथ का दार्शनिक विद्वान्त शैव शाक्त तंत्रों से मिलता-जुलता है। वह शाक्तों के दृष्ट ही शिष्य की साधना में विरहात् करते थे।

मत्स्येन्द्रनाथ—इनके तंत्र में एकको जनभुक्तिवाँ प्रसिद्ध हैं।<sup>४</sup> बहुत से प्राचीन ग्रंथों में भी इनका उल्लेख मिलता है किंतु जनभुक्तियों के और प्राचीन ग्रंथों

<sup>१</sup> डा० बागची ने इन ग्रंथों को कौलशास्त्र विरचन में संश्लेषित किया है।

<sup>२</sup> कौलशास्त्र विरचन—डा० बागची पृ० २५ काव्यकला १९३४

<sup>३</sup> नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

<sup>४</sup> कृत जनभुक्तियों का संग्रह डा० बागची ने अपने कौलज्ञान विरचन नामक ग्रंथ में किया है—देखिए पृ० ९ से १८ तक।

के विवरण अत्युक्तिपूर्ण, अस्कारपूर्ण और अधूरे हैं। प्रायः उनमें पारस्परिक विरोध भी दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि न तो उनकी निरिच्छत जीवन स्थिति निर्धारित की जा सकी है और न सामाजिक जीवन दृष्ट का ही निर्माण हो सका है।<sup>१</sup> कुछ लोग तो उनकी इस परस्पर विरोधी जीवनसामर्थी के वैल्यत्व को देखकर यह सोचने लगे हैं कि यह अत्यन्तिक अर्थिक का नाम है।<sup>२</sup> तन्त्रालोक की टीका में इनका उल्लेख किया गया है।<sup>३</sup> अभिनवगुप्त ने स्वयं भी तन्त्रालोक में इनका वर्णन किया है।<sup>४</sup> वे वास्तविके वास्तव्ये।<sup>५</sup> उही प्रथम में इन्हें धीवर भी अर्पित किया गया है।<sup>६</sup> गारुडविजय नामक प्रथम म मस्त्वैन्द्र को मीनानाम कहा गया है और उन्हें ब्रह्मा का पुत्र बतलाया गया है।<sup>७</sup> नेपाल के कुछ जनभूतियों में अबलोकितेश्वर का ही दूषण नाम मस्त्वैन्द्र कहा गया है। पञ्जाब की जनभूतियों में इन सबसे भिन्न चर्तों पाई जाती हैं।<sup>८</sup> आठवीं अनुमान है कि यह वातिभ्रन्त्र वास्तव्य ही वे। वास्तव्य धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में ही इन्होंने अपने धर्म का प्रचार किया था। इनका उदय और विकासकाल १०वीं शताब्दी से है। तन्त्रालोक के रचयिता अभिनवगुप्त का समय ८५० से लेकर ९०० हजार ई० तक माना गया है। अभिनवगुप्त के समय तक मस्त्वैन्द्रनाय अष्टौ शताब्दि प्राप्त कर चुके होंगे तभी अभिनवगुप्त ने उनका उल्लेख किया होगा। अतएव आठवीं शताब्दी के आसपास इनका समय निर्धारित करना अनुपयुक्त नहीं है। मस्त्वैन्द्र उपासना में विश्वास करते थे। तांत्रिकों का सतकार्यवाद<sup>९</sup> भी उन्हें पार्श्वकथित परिवर्तन के साथ स्वीकार था। शैवशास्त्र तंत्रों के ३३ तत्त्वों के प्रति भी इनकी आस्था थी।<sup>१०</sup> दर्शन पद्धति की दृष्टि से यह अद्वैतवादी कहे जा सकते हैं।<sup>११</sup> हा सकता है उनमें मस्त्वैन्द्रादर्शन के बीज भी रहे हों। मस्त्वैन्द्रनाय के उर्वरुक्त

<sup>१</sup> श्रीरामानन्द निरख—हा० बाल्मी १० ७-८

<sup>२</sup> वही १०

<sup>३</sup> वही १० ९

<sup>४</sup> तन्त्रालोक १ प्रथम १० २२

<sup>५</sup> श्रीरामानन्द निरख—हा० बाल्मी द्वारा संपादित १० ९०

<sup>६</sup> वही १० ९० इतिवृत्त

<sup>७</sup> श्रीरामानन्द निरख—हा० बाल्मी द्वारा संपादित १० १०

<sup>८</sup> वही १० ११

<sup>९</sup> वही १० १३

<sup>१०</sup> हा० इजारीमपार सिन्धेरी—नाथ सम्प्रदाय—१० ९२

<sup>११</sup> वही १० ९२ ९३ इलाहाबाद १९२०

<sup>१२</sup> वही १० ९२ ९३

विशेष्य के आचार पर हमें यह बहने में संकोच नहीं है कि हिन्दी की निर्गुण काव्य-  
पाठ के संघों पर मत्स्येन्द्रनाथी विचारपाठ का भी पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा था। हमारा  
तो विश्वास यह भी है कि सैवयान्त पंथों के अतिरिक्त सिद्धांत निर्गुण पाठ के कवियों  
को मत्स्येन्द्रनाथी संघों से ही मिले थे।

गोरखनाथ—मत्स्युग के सबसे महान् व्यक्तिवशास्त्री व्यक्तियों में से गोरख-  
नाथजी भी एक हैं। मत्स्युग की संपूर्ण विचारपाठ पर इनकी अमिट छाप दिखाई  
पड़ती है। निर्गुण काव्यपाठ तो उसकी सबसे अधिक श्रुती प्रतीत होती है। मैं तो  
उसको नाथपंथी विचारपाठ का वैभवात् स्वरूप मानता हूँ। अतएव यहाँ पर गोरख-  
पंथी विचारपाठ और धारणा की रूपरेखा स्पष्ट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

गोरखनाथजी का अभी तक कोई प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रकाश में नहीं आया  
है। इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि उनके संबंध में विभिन्न प्रान्तों  
में विभिन्न प्रकार की ऐसी-किसी प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं। वे अतिरिक्त अलौकिकदृष्टिपूर्ण  
धर्मकारणपूर्ण और अतिरिक्त हैं। उनके संबंध में प्रामाणिक ऐतिहासिक उल्लेख भी  
नहीं मिलते हैं। नही कारण है कि अभी तक लोग इनका समय भी निर्दिष्ट नहीं कर  
पाये हैं। उनके समय के संबंध में विद्वत्समाज में विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं।  
आचार्य रामकाश्र सुकल ने इनका समय १००० ई० से लेकर १३०० ई० के मध्य  
में माना है। डा० शहीदुल्ला ने इनका उदयकाल सं० ७२२<sup>२</sup> निर्धारित किया है।  
फर्ग्यूसन साहब इनका जन्म १२५७ वि० मानने के पक्ष में हैं।<sup>३</sup> उद्दलजी ने इनका  
समय सं० १०२ के आसपास माना है<sup>४</sup> डा० बकशाह<sup>५</sup> ने इनका जन्मकाल १०५०  
सं० माना है और आचार्य इब्राहिमशाह इन्हीं म्याण्डली शवास्ती की विमूर्ति मानते  
हैं।<sup>६</sup> मेरी अपनी धारणा है कि इनका उदय म्याण्डली शवास्ती में हुआ था। १०वीं  
शवास्ती के सबसे बड़े आचार्य और दार्शनिक अमिनबगुप्त<sup>७</sup> ने यहाँ पर भी इनका  
उल्लेख नहीं किया है। हाँ इनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का नामोल्लेख संशालोक में एक

<sup>१</sup> आचार्य रामकाश्र सुकल पृष्ठ १२

<sup>२</sup> हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृ० १२१ (१९४८)

<sup>३</sup> यही पृ० १२१

<sup>४</sup> यही पृ० १२१ (१९४८)

<sup>५</sup> यही पृ० १२१

<sup>६</sup> बाप काव्यपाठ पृ० १०३

<sup>७</sup> बकशाह उपाध्याय के भारतीय दर्शन में इनका समय १२०-१०० ई० दिया हुआ है  
देविपु पृष्ठ २२४-२२५

रसक पर अन्वय मिलता है। उससे ऐसा प्रकट होता है कि अग्निबहुल मत्स्येन्द्रनाथ के प्रति अटूट भ्रमा रखते थे। मेरा अनुमान है कि अग्निबहुल के समय में मत्स्येन्द्रनाथजी एक बयोद्विदिद महात्मा के रूप में प्रसिद्ध थे। गोरखनाथजी मत्स्येन्द्रनाथजी के शिष्य थे। वह वा तो अग्निबहुल के समकालीन होंगे वा परवर्ती होंगे। यदि समकालीन भी मान लिया जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि १०वीं शताब्दी के अन्तिम अथवा एक विद्व महात्मा के रूप में वह प्रसिद्ध नहीं हो पाये थे। देवी दशा में उनका प्रसिद्धि-काल ११वीं शताब्दी ही मानना पड़ेगा अतएव हमारा यह मत कि गोरखनाथ ११वीं शताब्दी की विभूति थे, परास तर्कसंगत है।

इनकी जन्मभूमि के संबंध में भी बहुत विवाद है। बोग सम्प्रदायविभूति नामक ग्रंथ में इनका जन्मस्थान गोदावरी तट पर स्थित चन्द्रगिरि नामक ग्राम बताया गया है।<sup>१</sup> कुछ लोग उनकी जन्मभूमि दक्षिण का बड़ब नामक स्थान सिद्ध करते हैं। बंगाली लोग उन्हें बंगाल का निवासी सिद्ध करने के प्रयत्न में रहते हैं। नेपाली जनश्रुतियों में उन्हें नेपाल का निवासी कहा गया है। मेरा अनुमान है कि गोरखनाथजी नेपाल में ही किसी ग्राम में उत्पन्न हुए थे। इस अनुमान के कई आधार भी हैं। प्रथम बात यह है कि नाम के आगे माय बाइने की प्रथा पूर्वमध्ययुग में नेपाल में ही अधिक थी क्योंकि पहाड़ पर बहुत से स्थान शिवजी का स्थान माने जाते हैं उन सब शिवस्थानों के नाम के अंत में माया नाथ ही जोड़ा जाता रहा है। इनका नाम भी ऊन्ही मायों के अनुकरण पर रखा हुआ जान सकता है। इसके अतिरिक्त उनका सबसे अधिक प्रभाव अब भी नेपाल प्रदेश में ही दिखाई पड़ता है। इसका प्रमुख कारण संभवतः उनका नेपाली होना ही है।

इनकी जति के संबंध में भी मतभेद है। डा० हजारीप्रसाद का अनुमान है कि वह ब्राह्मण<sup>२</sup> थे। मेरी समझ में वह किसी बर्हभ्यवरणा से संबंध न रखनेवाले सहजिया बौद्ध थे। नेपाल के निवासी होने के कारण वह यज्ञ-यज्ञी शैव हो गये थे। वाचना क्षेत्र में वह मत्स्येन्द्रनाथजी के शिष्य थे। मत्स्येन्द्रनाथजी पर शैव शाक्त दोनों का बहुत अधिक प्रभाव था। तांत्रिक लाग भी बर्हभ्यवरणा विशेषी थे। अतएव बर्हभ्यवरणा विहीन गोरखनाथ को कीलमनी तांत्रिक मत्स्येन्द्रनाथ अधिक प्रभाव वाली प्रतीत हुए होंगे इसी लिए उन्होंने उन्हें गुरु बनाया होगा।

गोरखनाथ के नाम से आशयतः सेकड़ों ग्रंथ उत्पन्न हैं। हजारीप्रसादजी ने ही उनके संकलन और ४० हिन्दी के ग्रंथों का उपलब्ध किया है।<sup>३</sup> यह निश्चित

<sup>१</sup> बोग सम्प्रदायविभूति पृ० २३ २४

<sup>२</sup> माय सम्प्रदाय डा० हजारीप्रसाद पृ० ३७

<sup>३</sup> माय सम्प्रदाय पृ० ३३ से ३०९

करना बहुत कठिन है कि इनमें कौन से प्रामाणिक हैं और कौन से अप्रामाणिक हैं। विद्वानों में उनके कुछ प्रयोगों की विशेष प्रतिक्रिया है। उनके नाम क्रमशः सिद्ध सिद्धांत पद्धति, अमरीषप्रबोध, योग मार्त्यपद, गोरसरावक, गोरसनाथी, गोरसगोरसगुप्ती, शागरीप-बोध, महादेवगोरगोष्टी हैं।

गोरसनाथी साधु अक्षय योगी कहलाते हैं। अक्षय योगियों का यह सम्प्रदाय प्राचीन ही योगियों के ब्राह्मण्य के प्रतिक्रिया के रूप में उदित हुआ था। योगियों का यह सम्प्रदाय सुधारवादी था। गोरसनाथी ने सिद्ध सिद्धांत पद्धति में अक्षय योगी के बिन लक्ष्यों का उल्लेख किया है वे सब ब्राह्मण्य के विरोधी हैं।<sup>१</sup> उन्होंने अक्षय के स्वरूप में नैतिक विरोधवादी की प्रतिक्रिया करके उसे नया स्वरूप दे दिया है। अक्षय शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए उन्होंने लिखा है—

या सर्वान् प्रकृतिविकारान् अक्षयनोतीत्यक्षयः।<sup>२</sup>

अर्थात् जो प्रकृति के विकारों से दूर रहता है उसी को अक्षय कहते हैं। गोरसनाथी अक्षय के लिए सिर मुँहाने के स्नान पर क्लेश समूह को नष्ट करना चाहिए। जो समस्त अक्षयवादी से उदासीन होता है वही अक्षय अक्षय कहलाता है। अक्षय योगी अक्षय को चाहिए कि वह अपने काम को दृढ़ करके उसकी रास से अपने शरीर को निभूषित करे। ऐसे अक्षय योगी की मेसला निश्चिन्ता बर्दाई स्वस्म ही होते हैं। निश्चिन्ता का अर्थ है प्रकृतिविकारों से दूर रहना। जो इन प्रकृतिविकारों से दूर रहता है वही अक्षय पद का अधिकारी कहा जा सकता है। किन्तु प्रकृति और परमेश ही इस अक्षय के कुछ होते हैं। विभाति ही इसके लिए ब्रह्माला के सदा सुखदात्री होती है। धर्म इत्यत्र दंड होता है और पराक्रम ही इत्यत्र सत्पर है। इसी प्रकार और भी बहुत से आध्यात्मिक और नैतिक लक्ष्यों का योगी स्वस्म में समावेश किया गया है। बिस्वामय से उन लक्ष्य निर्देश नहीं कर रहे हैं। उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट प्रकृत है कि गोरसनाथ पारमार्थिक योगियों और ब्राह्मण्य के विरोधी थे। साधु सम्प्रदाय में नैतिक सुधार करना उनका लक्ष्य था। अक्षय गोरसनाथ की यह प्रकृति निर्णय काव्य-बाण के कवियों में कौन की त्यों पाई जाती है।

भूटान का झूका सम्प्रदाय—भूटान में बौद्ध-धर्म का जो विद्युत रूप प्रकृत है उसका नाम झूका सम्प्रदाय है और उसके अनुयायी झूका कहलाते हैं। यह झूका सम्प्रदाय संभवतः सामा धर्म के वैदगी साधुओं की आरभ्य शाखा से संबंधित है। इन शाखा में भित्तरत्ना नामक एक दिग्गती संत की बड़ी ही प्रतिक्रिया है। इनका

<sup>१</sup> सिद्ध सिद्धांत पद्धति—अध्यायी मखिन्दा पृष्ठा ११२७ पृ० ३२ देखें

<sup>२</sup> वही पृ० ३२

उपरोक्त बड़ा झुंडा 'शाहीपो' में है यही पर बर्तमान रहते हैं। इसमें अब भी ५०० से ऊपर संत बर्तमान हैं। इन संतों में बानू-उमो का प्रचार है। शाब-शाब प्रतिक्रिया की मायना भी पाई जाती है। इन संतों की बानियों के संनह की आवश्यकता है।<sup>१</sup>

### (ख) प्रतिक्रियावादी दार्शनिक आचार्य सप्त सुधारक

सामंभत्ववादी सुधारक आचार्यों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं :—

- १—शंकराचार्य-शैव
- २—रामानुजाचार्य—वैष्णव
- ३—माधवाचार्य—वैष्णव
- ४—निम्बार्कचार्य—वैष्णव
- ५—रामानन्द—वैष्णव
- ६—विष्णु स्वामी—वैष्णव

**शंकराचार्य**—शरीरवाद के प्रधान प्रतिपादक विभिन्न शैव शास्त्र सम्प्रदायों के मूल प्रवर्तक स्वामी शंकराचार्य का जन्म सन् ७०८ ई० और निर्वाण ८२० ई० में हुआ था।<sup>१</sup> इनका जीवनवृत्त बड़ा विवादप्रसक्त है। उक्तका कारण यह है कि बिन<sup>२</sup> प्राचीन बहियों ने इनके जीवन की सामग्री प्रस्तुत की है उनमें परस्पर मूल्यन नहीं दिखाई पड़ता। वृत्ते उनके संबंध में जो किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं वे इतने अतिरिक्त और अतिरामोक्तिपूर्ण रूप प्रस्तुत करते हैं किनपर सहवा विरवात नहीं होता है उनका जीवनवृत्त सिलनेवालों में माधवाचार्य और आनंदगिरि बहुत प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्य ने लिखा है कि इनका जन्म मगधन् शिव के शाहीशद के कल-रूप शिवगुप्त नामक ब्राह्मण के घर में कैलदेश्वरय कलाती नामक ग्राम में हुआ था। आनंदगिरि ने इनका जन्म क संबंध में एक बृहती विविध बात कही है। उन्होंने लिखा है कि विदम्बरपुर नामक स्थान में कई विरामित नामक ब्राह्मण रहते थे। बिनकी पत्नी का नाम विशिष्या था। शंकराचार्यकी हमी के पुत्र थे। कहे हैं जब कि एक बार विरामितकी जंगल में वपसा करने गये हुए थे तभी बीच में विशिष्या के सम्पर्क से विशिष्या के गर्भ २६ मया। गर्भ का समय पूरा होने पर शंकराचार्यकी का

<sup>१</sup> हेमिन्ट इम्प्राइसो कीरिया काक दिल्लीजन एरड एडिटर भाग २ पृ० २६२

<sup>२</sup> जीवन् और मत्प विविधों का अिदुन विवेचन इतिवदन ज्योत्सोरी भाग ३११ पृ० १०४ में दृश्य।

<sup>३</sup> इम्प्राइसो कीरिया काक दिल्लीजन एरड एडिटर भाग ११ पृ० १८२ पर शंकराचार्य की जीवनी लिखने वाले दो आचार्यों का उल्लेख किया गया है—एक शंकर इतिवदन के लेखक माधवाचार्य और दूसरे शंकर विराम के लेखक आनन्द गिरि।

अवतार हुआ। शंकराचार्यजी ने अपने शैशवकाल से ही अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न थे। उन्होंने आठ वर्ष की अवस्था में ही चारों वेद कंठस्थ कर लिये थे। द्वादश वर्ष की अवस्था में वह सर्वज्ञान पारंगत विद्वान हो गये थे। १६ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने ब्रह्मसूत्र का माध्यम लिख डाला था। १९ वर्ष की अवस्था में ही वह समाधिस्थ भी हो गये थे। इनके लिये हुए बहुत से प्रसंग पठनाए जाते हैं। जिनमें से प्रस्थानत्रयी भाष्य, मांडूक्य अरिष्य भाष्य, विष्णु सहस्रनाम भाष्य, जनसु-जातीय भाष्य, सौन्दर्य लहरी, उपदेश साहसी आदि हैं।

मध्ययुग में शंकराचार्य का महत्त्व दो दृष्टियों से है एक तो दार्शनिक दृष्टि से और दूसरे शैव साधु परम्पराओं के प्रवर्तक की दृष्टि से। दर्शन क्षेत्र में उन्होंने अद्वैतवाद की स्थापना की थी और साधु वर्ग में वह चार प्रमुख सम्प्रदायों के प्रवर्तक बने जाते हैं। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं<sup>१</sup>—

१—दंडी।

२—सम्पाठी।

३—परमहंस।

४—ब्रह्मचारी।

१—दंडी—शंकराचार्य के अनुयायी साधुओं में दंडी साधु के छोड़े तीन भाग हैं। वे दंडी साधु अपने को शंकराचार्य का सच्चा अनुयायी मानते हैं। ज्ञान में यह एक बड़ा लिये रहते हैं। दंड चारण करने के अर्थ ही उन्हें दंडी कहा जाता है। दंडी लोग भी अपने गुरु को बलाते हैं। द्वायनामियों के प्रथम तीन भेद दंडी साधुओं के भेद माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय में केवल ब्राह्मणों को ही स्वीकार किया जाता है<sup>२</sup> वे लोग भिन्न भी ब्राह्मणों से ही मानते हैं।

२ सम्पाठी—सम्पाठी<sup>३</sup> दो प्रकार के होते हैं। एक तो प्राचीन ब्राह्मण सम्पाठी आश्रम का पालन करनेवाले सम्पाठी, दूसरे शंकराचार्य के अनुयायी शैव सम्पाठी। प्रथम कोटि के सम्पाथियों का संकेत रुद्रिवाही संतों के प्रसंग में किया गया है। दूसरी कोटि के शंकराचार्यानुयायी सम्पाथियों की चर्चा यहाँ पर की जानेगी। कुछ लोगों की चारणा है कि द्वायनामी भेद से इस कोटि के सम्पाठी इस प्रकार के होते हैं। वे दत्त इस प्रकार हैं। १—गिरी, २—पुरी, ३—मालवी, ४—बाब, ५—आरण्य, ६—पारवत, ७—तापर, ८—तीर्थ, ९—आश्रम, १—सरस्वती।

<sup>१</sup> दक्षिण दि मिद्विक्कल एमेदिल्ल एवह सेव्य्य जाक इत्यियव-वे० सी० योगव पृ० १२९

<sup>२</sup> इन्द्राद्वैतकीर्तिकां चाक रितीजन बृहद एविल्ल म्बुवाचं ११२१ भाग २ पृ० १३

<sup>३</sup> वही पृ० १२३

हमारी समझ में प्रथम ३ दही साधुओं के मेह हैं क्योंकि ये लोग प्रायः एक दूध धारण किये रहते हैं। इस सम्प्रदाय की सबसे प्रमुख विशेषता चाति पति के बंधन का परिहाय है। ये लोग हिंदू धर्म के बाह्य विन्दु शिखा और बनेछ को भी धारण नहीं करते हैं। जब कोई शिष्य किसी संन्यासी साधु से दीक्षा लेना चाहता है तो उसे अपने गुरु को शिष्य और छात्र की मंड देना है। उसको धार अन्व्य संन्यासियों के समझ यह भी प्रतिष्ठा करनी पड़ती है कि वह आजीवन समस्त कर्मों को छोड़ करके हुए संन्यासी के कर्षणों का आचरण करेगा। इस प्रकार शिष्य के प्रतिष्ठा कर लेने पर गुरु तथा अन्व्य साक्षीभूत धार संन्यासी उसे अपने सम्प्रदाय का गुरुमंत्र देते हैं। इन संन्यासियों में बहुत से धार गृहरण जीवन भी म्प्रीय करने लगे हैं।

३—परमहंस—परमहंसों का सम्प्रदाय दण्डियों और संन्यासियों के सम्प्रदाय से ऊँचा समझा जाता है। इसमें बड़ी लोभ प्रवेश पाते हैं जो धर्म से धर्म दत्त या बाह्य बर्ष बदरी या संन्यासी का जीवन म्प्रीय कर चुके हैं। इस सम्प्रदाय के लोग भीष्म के बाह्य उपारानों से बिल्कुल उदासीन रहते हैं। उन्हें करना शरीर टकने का भी ध्यान नहीं होता। बहुतों को तो भोजन तक की चिन्ता नहीं रहती। ये लोग अपने सम्प्रदाय के शत्रुओं को बलाते नहीं हैं गाढ़ देते हैं या नदी में बहा देते हैं।

४—ब्रह्मचारी—वे ब्रह्मचारी धर्म ब्रह्मचारियों से मिले होते हैं। ये शिष्य की पूजा करते हैं। और ब्रह्मचर्य संन्य म्प्रीय करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शङ्कराचार्यजी ने बहुत-सी शिष्य साधु परम्पराओं को जन्म दिया था। जैसे तो उत्सुक नामों की साधु परम्पराएँ पहले से यती का रही थीं किन्तु वे बहुत अधिक विकृत हो गई थीं। शङ्कराचार्य ने उन्हें परिष्कृत करके अग्नि मय रूप दिया था। इसी लिए हम उन्हें एक धार्मिक सुधारक मानते हैं। वह धार्मिक सुधारक ही नहीं दार्शनिक सुधारक भी थे। इनके दार्शनिक सुधारवाद और सिद्धांतों की चर्चा हम अगले प्रकरण में विस्तार से करेंगे। क्योंकि उक्त कविओं पर हमके इस सिद्धांत का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा था।

१ हेन्रि रि मिस्त्रिस एपेडिक्स परद सेंटर आक इतिहास के० सी० सोमन पृ० २२२ अध्याय १२०३।

२ बदी पृ० १२३—और भी हेन्रि—रि मिस्त्रिस एपेडिक्स सेंटर आक इतिहास के० अध० सोमन पृ० १२३ अध्याय १२०३



## रामानुजाचार्य १०१७-११३७ और उनका श्री सम्प्रदाय

शंकराचार्य के लगभग दार्ष्टी ही वर्ष पश्चात् प्रसिद्ध वैष्णव सुधारक स्वामी रामानुजाचार्य का उदय हुआ। वर्तमान श्री वेङ्कटपुरम नामक स्थान इनका जन्मस्थान माना जाता है। इनके पिता का नाम केराय रामनाथी और माता का नाम अतिम्बरी था इनके महापत्नी इन्होंने श्री शंकराचार्य का अवतार मानते हैं। पहले वह कंचीपुर नामक नगर के परम प्रसिद्ध विद्वान् पादक प्रकाश के पास वेदान्त का अध्ययन करते थे। किंतु एक दिन गुरु और शिष्यों में झगड़न हो गई। शिष्य गुरु को छोड़ कर विदेश भ्रमण के लिए चले गए। बेश-विदेश से विद्वानों के शास्त्रार्थ करते हुए उन्होंने अपने एक नवीन मत का स्थापन और प्रचार किया। वह मत मक्ति क्षेत्र में श्री सम्प्रदाय और दर्शन क्षेत्र में विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

यह एक सुधारवादी आचार्य थे। कहते हैं उन्हें अपनी इस प्रवृत्ति के लिए बड़े कष्ट भी उठाने पड़े थे। राजेन्द्रपोल नामक राजा<sup>१</sup> ने इन्हें विविध प्रकार से छताने की चेष्टा की थी किंतु वह पहुँचे हुए संत थे अतएव वह इनका कुछ भी अहित न कर सके।

शंकराचार्य के श्वर रामानुजाचार्य की ने श्री दर्शन और धर्म दोनों ही क्षेत्रों में सुधार करने की चेष्टा की थी। दर्शन क्षेत्र में तो उन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रस्थापन किया था। धर्म क्षेत्र में उनकी सुधार भावना दो चाराओं में प्रवर्धित हुई थी—एक का लक्ष्य तापुब्रह्म का सुधार करना था और दूसरे का सामान्य लोक क्षेत्र। तापु ब्रह्म में इन्होंने वैरागी सम्प्रदाय की प्रवृत्ति की थी और सामान्य जनता को उन्होंने वैष्णव मक्ति का बरदान दिया था। स्वामी रामानुज ने इन सुधारों को आगे बढ़ाकर और भी व्यापक रूप दिया। स्वामी रामानुजाचार्य ने वैष्णव धर्म में बर्तमान बरपा के बंधन टोके करने का सर्वप्रथम प्रयास किया था।<sup>२</sup> इस दृष्टि से वे मध्यकालीन वैष्णव सुधारकों में सर्वोत्कृष्ट स्थान के अधिकारी कहे जा सकते

<sup>१</sup> इनके जीवन और सिद्धांतों का विवेचन निम्नलिखित ग्रंथों में देखिए :—

१—वैष्णवाद्वैत सिद्धांतसूत्रात्क इतिहास। २—श्री रामानुज—एक श्रीकृष्ण स्वामी आचार्य ३—टीपिंग—आफ वेस्ट इंडीज्स इ रामानुज—सुबुताकर। ४—आर्यक आफ रामानुज—एस० बी० ई०। पृ० २३०

<sup>२</sup> हिन्दुधर्म पृष्ठ बुद्धिमत् चार्स इतिहास भाग २ पृ० २३३

<sup>३</sup> इत्याइत्योरीतिवा आफ रिबीजल पृष्ठ एथिक्ल भाग २ पृ २४

<sup>४</sup> इत्याइत्योरीतिवा आफ रिबीजल पृष्ठ एथिक्ल भाग २ पृ० २३६-२३८

<sup>५</sup> वही भाग २ पृ० २४२ अन्तिम अध्याय।

हैं। इतना होत हुए भी वह कट्टिवादिता का परिचाय नहीं कर सके थे। इस बात का पता इनके सम्प्रदाय के साधुओं को देखने से लगता है। ये लोग गेबन्ना बख पाख करने के साथ ही साथ पञ्चोत्पीठ भी खाने खाते हैं मसक पर शिलक लगाते हैं और हाथ में गुलाबी की माझा लिये खाते हैं।<sup>१</sup>

शक्त्यार्थ और रामानुजाचार्य दोनों ही भृति प्रामाण्यवादी हैं किन्तु दोनों की व्याख्याओं और प्रतिक्रियाओं में अंतर है। रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे उन्होंने ब्रह्म शब्द तक की व्याख्या करने सिद्धांत के इतिहास से की है। उनका कहना है कि ब्रह्म शब्द ब्रह्म पाठ में मनिन् प्रत्यय जोड़ने से बनता है। मनिन् प्रत्यय के लगने से उद्यमे तीन के मास का समावेश हो जाता है। बात उन्होंने भृति और स्मृति दोनों से प्रमाणित भी की है। वे ब्रह्म<sup>२</sup> को चिद, अचिद और विशिष्ट मानते थे। इन तीन वस्तु की मान्यता ही उनके दर्शन की सबसे प्रमुख विशेषता है। उन्होंने चिद् का अर्थ मोक्ष की शक्ति और अचिद् ब्रह्म को वह मोक्ष ब्रह्म का पर्यायवाची मानते हैं।<sup>३</sup> उनके मतानुसार तत्त्व ब्रह्म ही उपनिषद् प्रतिपाद्य है। वह ईश्वर को सजातीय और विवासीय मेव से शून्य मानत हुए भी स्वगत मेव सम्मत् मानते हैं। अब प्रश्न यह है कि ईश्वर और चिद् अचिद् में पारस्परिक संबंध कैसा है। आचार्यजी ने दोनों में अप्रत्यक्ष विद्य नामक संबंध स्वीकार किया है। वह न्याय वैशेषिक के समान संबंध से मिल रहे हुए भी बहुत मिलता-जुलता है। इसमें हम विरोध्य विरोध संबंध भी मान सकते हैं परमानन्तरी पर लिले मये भी मान्य में उन्होंने ईश्वर को विशेष और चिद् अचिद् को विरोध कहा है। इतीतिह इसका नाम विशिष्टाद्वैत पकर है। इस मत के अनुसार ईश्वर ही इस ब्रह्म का अविद्यनिमित्ताज्ञान कारण है। वह कारण<sup>४</sup> विशिष्टाद्वैत के अनुसार लक्ष्यप्रकृत है। ईश्वर लीला के लिए ही इसका लुप्त करता है और लीला में ही उद्यम लहर भी कर चलता है। प्रलयकाल में भी चिद् और ब्रह्म लक्ष्यरूप में विलीन हो जाते हैं। इसी कारण में लक्ष्य चिद् अचिद् ब्रह्म कारण ब्रह्म कहलाता है। इसके विरुद्ध सृष्टि के विकास की अवस्था में वही अव्ययत्व ब्रह्म कह जाता है।<sup>५</sup> वही कार्य कारण मात्र परिणामवाद का मूल है। विशिष्टाद्वैतवाद में परिणामवाद का प्रतिपादन किया गया है। चिद् का निरुत्पन्न करते हुए आचार्य ने लीला

<sup>१</sup> इकताइससौरीतिहा का एक रिखोजन एण्ड एपिस्त वाक्यसू २ पृ० ६४

<sup>२</sup> इसके सिद्धांतों के लिए अन्वयस हेरिटेज का एक इतिहास भाग ३ पृ० ३०० पर १६६३ बी० एन० की निराशाचारी का लेख।

<sup>३</sup> सर्व दर्शन संग्रह चामुदेव शास्त्री—पृष्ठा १६२१ पृ० ११०

<sup>४</sup> सर्वदर्शन संग्रह पृ० ११६

<sup>५</sup> सर्वदर्शन संग्रह चामुदेव शास्त्री पृष्ठा १६२१ पृ० १०६

है कि वह वैदिकीय मन प्राण और बुद्धि से मिलकर, अन्न, आनंद रूप, नित्य, असु  
 प्राम्पद, अचिन्त, निर्विकार तथा अनात्म है।<sup>१</sup> वह ईश्वर के द्वारा निश्चित रहता है  
 और अपने समस्त व्यर्थों के लिए उसी पर आश्रित भी रहता है। वह ईश्वर के बहुत से  
 गुण रखते हुए भी ईश्वर से भिन्न है।

अखिन् को आचार्य ज्ञानराज्य विश्वराज्य वस्तु मानते थे। उसके अन्तर्गत तीन रूप  
 बताते हैं<sup>२</sup>—

१—शुद्ध सत्व, २—मिश्रसत्व, ३—असत्त्व।

१—शुद्ध सत्व ही नित्य विमूर्ति है। २—मिश्रसत्व का अन्तर्गत ही अविद्या का  
 माया है। ३—असत्त्व सत्व ही काश के नाम से प्रसिद्ध है। अगर्ह इस सम्प्रदाय के  
 अनुष्ठान सत्य रूप है।

धीरे अविद्या के बंधनों में बँधकर विमोहित हो जाता है। उससे मुक्ति प्राप्त  
 करना ही इनका लक्ष्य रहता है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए धीरे का मक्ति की साधना  
 करना परमापेक्षित है।

रामानुज ने मक्ति क्षेत्र में तीन बातों को बहुत आवश्यक ठहराया था १—१—  
 सदाशरत्त्वमिक्त्वा, २—प्रपत्ति, ३—बैधी उपासना विधि। इसकी सदाशरत्त्वमिक्त्वा तथा  
 प्रपत्ति का सिद्धांत लोक में बहुत सम्मानित हुए। यही कारण है कि प्रायः सभी पर  
 बली<sup>३</sup> संत सम्प्रदायों ने अपने अपने मठों में इन दोनों को सम्मानित स्थान दिया है।  
 इन्होंने बैरागी नाम<sup>४</sup> का एक शास्त्र सम्प्रदाय भी प्रवर्तित किया था। इनके शिष्य रामा-  
 नंद ने इसको पूर्णतया प्रचारित किया था अतएव बाद में वह उनके नाम से प्रसिद्ध  
 हो गया। बैरागी शास्त्रियों के प्रसंग में और रामानंद के संबंध में हम इस सम्प्रदाय को  
 और अधिक बतल कर देंगे।

### निम्बकाचार्य और उनका सनकादि सम्प्रदाय

ईशादेवमठ के प्रवर्तक स्वामी निम्बकाचार्य भी एक वैष्णव सुधारक थे।  
 इनका जन्म दक्षिण में लगभग सन् १६१९ में हुआ था। यह ईशंग ब्रह्मचर्य थे।  
 इनके पिता का नाम जगन्नाथ था। इनका बाह्यभक्त नाम विजयलाल था। निम्ब के

<sup>१</sup> सर्वज्ञान संप्रदाय पृ० ११३

<sup>२</sup> सर्वज्ञान संप्रदाय बासुदेव शास्त्री पृ० ११४ पर इन्हें भोग्य भोग्येवमस्य भोग्यवत्त्व  
 कहा है।

<sup>३</sup> अश्वरौह वर्मा आका भंडारकर याग ४ पृ० १६२६ पृ० ७१ से ८

<sup>४</sup> इत्यादिभ्यो पीठिका आका रिधीजन पृ० ६४ पृ० ८४

सब पर यदि मैं धर्म (सर्व) के दर्शन करने का कार्य इनका नाम निम्बार्क पढ़ गया था<sup>१</sup>। बर्म क्षेत्र में इनका संप्रदाय हंस भा संन्यासि के नाम से प्रसिद्ध है<sup>२</sup>। दर्शन क्षेत्र में इन्होंने हौताहोतबाद का प्रतिपादन किया था। यह पहले आचार्य से जिन्होंने कर्म की उपासना के साथ-साथ राधा की उपासना विशेष उद्घोष की थी। मक्ति-क्षेत्र में इन्होंने सख्यमास को विशेष महत्त्व दिया था। यह उनका, सनासन, सनदन और सनत-कुमार का अपने संप्रदाय के देवी आचार्य मानते थे। इन्होंने रामु बगल में भी पुजार करने की चेष्टा की थी। इन्होंने रामायण के बैरागी संप्रदाय को अपने दृष्ट पर टाकने की चेष्टा की थी। बैरागियों के दो<sup>३</sup> संप्रदाय बहुत प्रसिद्ध हैं, एक रामानंदी वृत्त निम्बार्की। रामानंदी संप्रदाय के प्रवर्तक रामानंद भी माने जाते हैं और निंबादी संप्रदाय के निंबाचार्य। इस संप्रदाय के रामु बहुत कम मिलते हैं।

इस संप्रदाय के रामु अधिकतर मयुरा और बंगाल में मिलते हैं। प्राउब<sup>४</sup> ताहन में मयुरा के प्रसंग में इनका विशेष रूप से उल्लेख किया है। ये लोग माये पर एक विशेष दृष्टि का विश्वास लगाते हैं। उक्त विश्वास में दो लक्ष्मी रेखाएँ गोपीचंदन की होती हैं उनके बीच में एक काला बिंदु भी रखा है। ये लोग तुलसी की माला भी धारण करते हैं।

निम्बार्क का दार्शनिक सिद्धांत<sup>५</sup> हौताहोतबाद के नाम से प्रसिद्ध है। उनके अनुचार असद्वैत और अद्वैत दोनों ही हैं। ये लोग जीव को स्रष्टा का अंश मानते हैं। और दोनों में अंशाधारी मान का संबंध स्वीकार करते हैं। जहाँ तक ब्रह्मत्व का संबंध है वहाँ तक जीव स्वतंत्र है किन्तु भोग प्राप्ति के लिए वह ईश्वरपरिभ्रष्ट है। अतः ईश्वर निरन्तर-मुग्धा और जीव निरन्तर। जीव हरि का अंश होते हुए भी एक न होकर अनेक होता है। ये लोग अहित के तीन रूप मानते हैं। १—महति महात्त्व से लेकर

<sup>१</sup> देविण् वैश्वविष्णु वीरदत्त एवमाह्वारिणीजस सिद्धिम् कपेन्डेड बर्न आक सर भंडारकर वाङ्मय ७ पृ० ८७-८८ पृथा १३२३

<sup>२</sup> मैटिकस मिस्टीसिम पृ० ७३।

<sup>३</sup> इन्साहम्बोपीडिबा आक रिनीजस एवम एभिस्त माग २ पृ० ३३०

<sup>४</sup> प्राउब में अपने मयुरा नामक ग्रंथ में इनका विस्तृत वर्णन किया है। देविण् पृ० १८१

<sup>५</sup> वही।

<sup>६</sup> कपेन्डेड बर्न आक भंडारकर माग ७ पृ० ४३ पृथा १३२३

<sup>७</sup> देविण् कपेन्डेड देरिटेज आक इन्डिबा माग ३ में रोमा चौबरी का निम्बार्क दृष्ट आक बैराग नामक क्षेत्र पृ० ३३३।

महाभूत तक प्रकृति से उत्पन्न बगत् । २—अप्रकृत—प्रकृति के राज्य से बहिर्भूत बगत् । १—अज्ञ—वे अज्ञान स्व कार्य-स्व से अनित्य होता है । इन्होंने निर्गुण की अपेक्षा सद्युक्त ईश्वर को विशेष महत्त्व दिया है । धामना के क्षेत्र में वे प्रपञ्चिभूतक मक्ति को ही सबसे अधिक भेष्ट समझते थे । संक्षेप में निम्नार्क का दार्शनिक सिद्धांत इतना ही है<sup>१</sup> ।

### माधवाचार्य<sup>२</sup> और उनका ब्रह्म सम्प्रदाय<sup>३</sup>

स्वामी माधवाचार्य की मध्ययुग के एक प्रसिद्ध वैष्णव सुधारक थे । इनका जन्म सं० ११११ इस्वी में श्री उच्चरी नामक गाँव में हुआ था<sup>४</sup> । इनके पिता का नाम मन्निबीमह और माता का वेदवती था । इन्होंने बाल्य वर्ष की अपेक्षा<sup>५</sup> में ही संन्यास ले लिया था । शंकर और रामानुजजी के सद्युक्त बर्म और दर्शन दोनों ही क्षेत्रों में सुधार करने की चेष्टा की थी । श्री-क्षेत्र में इन्होंने ब्रह्म सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था और दर्शन क्षेत्र में यह इतना ही के समर्थक थे ।<sup>६</sup> मक्ति-क्षेत्र में इन्होंने माधुर्य भाव के महत्त्व का विवर्तन किया था । निम्नार्क के बाद यह ही दूसरे आचार्य थे जिन्होंने कृष्ण के साथ-साथ रामा को भी, किन्तु श्री चर्चा प्राचीन साहित्य में बहुत कम मिलती है, महत्त्व दिया था । स्वतन्त्रता और जीव गोस्वामी इस सम्प्रदाय के प्रतिमाशाही पोषक थे । वैठन्व स्वामी को भी इस सम्प्रदाय से पूरी प्रेरणा मिली थी । स्वामी माधवाचार्य की ने सद्युक्त बगत् में भी सुधार करने की चेष्टा की थी ऐसे अनुयायी सद्युक्त लोगों की शेषभूया दूसरे साधुओं से मिल जाती है । इस सम्प्रदाय के साधु अधिकतर दक्षिण में ही मिलते हैं वे ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं । बर्षा-समय में वे चारपा नहीं रखते हैं वे लोग बाहुओं में और बच्चस्य पर विष्णु के चिह्न बनाये रखते हैं<sup>७</sup> । वे लोग वैठ-गियो के सद्युक्त सिर मुँहाने रहते हैं । इनमें में अंतर इतना ही है कि वैठगी लोग अपनी शिखा बनाये रखते हैं और वे लोग शिखा भी मुँहना देते हैं । वे लोग जोसने के सद्युक्त एक वेदवा बक भी पढ़ते हैं । मस्तक<sup>८</sup> पर वे एक तिलक भी लगाते हैं । इनका

<sup>१</sup> श्री पृ० ३१ से ३४ तक ।

<sup>२</sup> आइए एए टीचिंग आर माधवाचार्य—पुस्तकामाचार्य जिक्रित ग्रंथ पठनीय है ।

<sup>३</sup> इस सम्प्रदाय का किस्तुत विवेचन इच्छिचर ने अपने हिन्दीम और बुद्धिम नामक ग्रंथ मध्य १ पृ० २३३ पर किया है । १३२४ का संस्करण देखिए ।

<sup>४</sup> इन्की जन्मतिथि विवादमस्त है । संद्वारकर ने इन पर अच्छा विचार किया है । इच्छिचर कोसरेड बर्ष आर संद्वारकर भाग ४ १३२३ का संस्करण

<sup>५</sup> मैडिकल मिडिंसिम—आ० जितिमोद्व सेव पृ० ४८ (१३२३)

<sup>६</sup> इन्की इच्छोपीडिया आर रिबीजव एरव एपिल भाग २ पृ० ३४

<sup>७</sup> इन्की इच्छोपीडिया आर रिबीजव एरव एपिल भाग २ । पृ० ३४

विरक्त अन्य सम्प्रदायवालों के विरक्त से भिन्न होता है। श्रीर लोग तो विरक्त मस्तक पर ही लमाते हैं किन्तु इनका विरक्त भाविका तक रहता है। इनके विरक्त में तीन रेलार्ये होती हैं। दो लम्बी रेलार्ये गोरीबन्दन की बनाते हैं श्रीर उरके बीच में एक काली रेलार्ये विप्रित करते हैं।<sup>१</sup>

ये हेतुवाङ् के प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। इनके मतानुसार विष्णु ही ब्रह्म हैं वह अनन्य गुण परिपूर्ण हैं। वह बीच श्रीर बाग्व से विरक्तव्य हैं। एक होकर भी नामा प्रथम के रूप बाराय करते हैं। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति हैं। वह परमात्मा के आधीन होते हुए भी उरसे भिन्न हैं। बीच<sup>२</sup> को ये लोग विष्णु का अंश नहीं मानते। उनके मतानुसार वह अज्ञानादि दुर्गों से मुक्त होने के कारण अंतारिक होता है। भक्ति ही इसे इन दुर्गों से मुक्ति दिला पाती है। इन्होंने भक्ति के वाच-वाच ज्ञान की भी महत्त्व दिया है। ज्ञान के लिए वे बैराग्य राम दम शरणावधि गुरु श्रीर भगवत् सेवा, भगवत् प्रेम, मासीमात्र से उद्धानुसृष्टि आदि का आचरण आचरयक्त मानते हैं।<sup>३</sup>

### विष्णु स्वामी का रुद्र सम्प्रदाय

विष्णु स्वामी भी दक्षिण के एक वैश्वव सुधारक थे। इन्होंने रुद्र सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की थी। दर्शन क्षेत्र में इन्होंने शुद्धाद्वैतवाद लम्बने रक्ता था। इन्होंने अद्वैतवाद से माया बहिष्कृत पर ही थी। भक्ति क्षेत्र में इन्होंने बालभक्त्य माय को सबसे अधिक महत्त्व दिया था। स्वामी ब्रह्मनाथार्य ने इन्हीं के विद्वान्त को लेकर अपने पुष्टि मार्ग का प्रवर्तन किया था।<sup>४</sup> इन्होंने भी किसी वायु सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया होगा किन्तु आचरयक्त उरके सर्वप्र में इसे कुछ विरोध जस्त नहीं है। अरुणी भारत में इनका प्रभाव कम था। इन्होंने अपने मत का प्रचार दक्षिण में ही अधिक किया था। उनकी विचारधारा को उरर भारत में लाने का श्रेय इनके लक्ष्मण्य मामक विष्णु को है। इन्हीं लक्ष्मण्य भट्ट के ब्रह्मनाथार्य हुए। इनका पुष्टि मार्ग लाङ्कनिक है।

### (ग) सुधारवादी वायु-वर्ग

मध्ययुग में कुछ ऐसे भी वायु सम्प्रदाय वर्तमान थे जिनका दायनिक दृष्टि

<sup>१</sup> वैश्ववद्वैत्य वीरद्वैत्य कर्मभट्ट बर्मर्ष आचर्य अंताररर माय ४ ५० ८९

<sup>२</sup> हिन्दुद्वैत्य लुद्र वुद्धिद्वैत्य माय २ ५० ३४ पर पौंच भेद वृत्ति—१—परमात्मा आत्मा। २—परमात्मा-वृत्ति। ३—आत्मा-वृत्ति। ४—आत्मा-आत्मा। ५—अनु वायु।

<sup>३</sup> क्यरररर हेरिटर आचर्य इरिडवा माय ३ में का० रामवेग्राचार का मापय वृत्तीर्जासा

<sup>४</sup> वैश्ववद्वैत्य वीरद्वैत्य इन कर्मभट्ट बर्मर्ष आचर्य अंताररर माय ४ ५० ८९ से ८९ तक।

<sup>५</sup> अडिबल वृत्तीर्जासा—मैय ५० ४१

से कोई विशेष महत्त्व नहीं है किन्तु संप्रदाय दृष्टि से वे उपेक्षणीय नहीं हैं। अतएव यहाँ पर हम कुछ इस श्रेष्ठि के प्रसिद्ध वाचु बगों का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं।

(१) अन्नधृत<sup>१</sup>—अन्नधृत या अतीत उन वाचुओं को कहते थे जो जीवन दुःख हो जाते थे। शैव और वैष्णव दोनों ही संप्रदायों के जीवनदुःख वाचु अन्नधृत कहे जाते हैं। शैव अन्नधृत प्रायः वक्र बहूत कम पहनते हैं। प्रायः कीचड़ लपेटे रहते हैं और बड़ा रकते हैं वे अधिकतर मौन रहकर ही मित्रा माँगते हैं। बाहों के दिनों में वे झूठी रमाते हैं। अन्नधृत बोली संप्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथजी के अनुयायी शैव अन्नधृत माने जाते हैं।

वैष्णव वाचुओं को यह अभिधान स्वामी रामानन्धी ने दिया था। जो लोग वर्षाभारवा का परिस्थान करके उनके सम्प्रदाय में दीक्षित होते वे उन्हें वह अन्नधृत कहते थे। इस दृष्टि से हम अन्नधृतों को तुषारवादी शक्तों की श्रेष्ठि में रख सकते हैं।

(२) वैरागी<sup>२</sup>—तापारण्यतया वैरागी उन वाचुओं को कहा जाता है जो संसार से उदासीन रहकर पवित्र जीवनवाचन करते हैं। वैरागियों के संबंध में रोम ताहाक का अनुमान है कि वे किसी प्राचीन नरसिंह पूर्वक प्राचीन संप्रदाय के अन्वेषण कर रहे हैं। उनका कहना है कि वैरागी लोग संभवतः इसीलिए सिंह की आत्मा का आठन करते हैं। कुछ ताहाक का अनुमान है कि इस संप्रदाय का उदय रामानुजानाथ के उपदेश के फलस्वरूप हुआ था।<sup>३</sup> पहले यह दक्षिण में प्रचलित हुआ, बाद में यह उत्तर भारत में आया और रामानन्ध के अनुयायी शिष्यों के लिए इसका प्रयोग किया जाने लगा। यद्यपि वैरागियों का उदय भी तुषारवादी भावना को लेकर हुआ था किन्तु यह भावना उनमें अधिक दिन तक जीवित न रह सकी और वे स्वर्दवादी बन गये। ये लोग अधिकतर वैष्णव होते हैं। पंजाब में राम के उपासक वैरागी रामानन्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं और कृष्ण के उपासक निर्माही कहलाते थे। ये लोग राम और कृष्ण को तो मानते हैं किन्तु वैरागी होने के कारण सीता और रामा को महत्त्व नहीं देते। ये लोग कमी-कमी बठोर तपस्या भी करते हैं।

<sup>१</sup> इन्द्राहलो पीठिया याक रिषीजन पृथ पृथिस्य भाग २ पृ० ११७ इनका विवरण देखिये स्पृचारक १०१२

<sup>२</sup> पंजाब संसद रिपोर्ट रोज भाग १ पृ० १२१

<sup>३</sup> इन्द्राहलो पीठिया याक रिषीजन पृथ पृथिस्य भाग १ पृ० २१०

(३) अयोरी<sup>१</sup>—यह शैव शास्त्रों का एक सम्प्रदाय है। यह प्राचीन शैव श्वास्तिक्य का ही नवीन रूपान्तर कहा जा सकता है। इस सम्प्रदाय के प्रधान केन्द्र काबू, गिरनाह, बोप गवा, बनारस और दिल्ली नामक स्थान माने जाते हैं। ब्रह्म<sup>२</sup> काहाय का अनुमान है कि यह पंच अधिक प्राचीन है क्योंकि ब्रह्मेनर्गा ने बिन शास्त्रों को देखा या ने संभवतः अयोरी ही थे। किन्तु<sup>३</sup> में इनके मत से सहमत नहीं हूँ। मेरी समझ में यह प्राचीन शैव सम्प्रदायों का एक मिश्रित सम्प्रदायिक रूपान्तर या क्योंकि इसे प्राचीन संस्कृत का पाली साहित्य में नहीं पर भी अयोरी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। ये लोग अधिष्ठाता मैत्र और कालिका माता की पूजा करते हैं। इनमें प्रायः कोई न कोई देवी या देवता सिद्ध करते हैं। प्रत्यक्ष होने पर वे मनुष्य को समुक्तिगामी बना सकते हैं और अप्रत्यक्ष होने पर विविध प्रकार के शस्त्राकारिक प्रयोगों से मानव को उन्नत भी सकते हैं। खानपान<sup>४</sup> में वे निकृष्ट वस्तु को ही नहीं मानते। मही अरथ है कि वे मर्यादा का व्यवहार के अतिरिक्त नर विद्या तक लाते हैं। लोगों का व्यावहारिक जीवन परमार्थों के लक्ष्य होता है। इनके भी कई उपसंप्रदाय हैं। उन सम्प्रदायों में औपक वंशी किनायसी लरमंगी आदि प्रमुख हैं। वे<sup>५</sup> लोम विद्या की रत्न शरीर में मत्ते करते हैं और अज्ञान की माला पहनते हैं। इसके किसी उपसंप्रदाय के शास्त्र मनुष्यों के हार्ति की माला भी पहनते हैं।<sup>६</sup> हमारी समझ में अयोरी सम्प्रदाय भी जाति पंक्ति का विरोध करनेवाला सम्प्रदायिक प्रतिक्रियावादी सम्प्रदाय था।

### दक्षिण का प्रतिक्रियावादी शैव लिंगायत सम्प्रदाय

दक्षिण के सुबारवादी शैव सम्प्रदायों में लिंगायतमत बहुत प्रसिद्ध है। इस मत का प्रचार राम्मे, बेलगाँव, बीजापुर, भार्वाह, मैल्ल, हैदराबाद, मद्रास आदि प्रांतों में है। भारत<sup>७</sup> में पूर्व स्थानों पर इन्होंने अपने विश्वाहन स्थापित किये थे। उनके नाम क्रमशः गणेश, उमेशी, बनारस, भीठेलम और केदारनाथ हैं। अन्य स्थानों में जा मठ

<sup>१</sup> रि क्रिस्टियन एन्सेक्लोपिडिया सेंट आक इन्डिया सोमन पृ० १२०-१०२ (१९०३ का संस्करण।)

<sup>२</sup> इन्डियाइन्डोलीडिया आक रिबीजन ब्रह्म एशिया भाग २ पृ० ३३६

<sup>३</sup> वही।

<sup>४</sup> वही पृ० २११-२१२

<sup>५</sup> वही " "

<sup>६</sup> वही " "

<sup>७</sup> वही भाग ८ पृ० ६८ म्युपाक १९२१



पाये जाते हैं वे इन्हीं ५ महामठों में से किसी एक के अधीन रहते हैं। इन ५ मठों का महत्त्व भी प्रायः बंगला कहलाता है वही इनका पुरोहित होता है। यह धार्मिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों का मायका समग्र भाग है। उसके निर्वाण और आदेश सम्प्रदायवालों के लिए मान्य होते हैं।

इस मठ का उद्भव संभवतः १०वीं शताब्दी में ही हो सका था।<sup>१</sup> किन्तु इसके अन्वेषित सम्प्रदाय के रूप में प्रवर्धित करने का भेद बाधक नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण को दिया जाता है। इस मठ के प्रस्थापन प्रकार और प्रकार में उसके मूर्तबन्धु वंश वाक्य में उल्लेख बहुत सहायता करेगी।

इस सम्प्रदाय के लोग वेद के अतिरिक्त हिंदुओं के और किसी भी ग्रन्थ को नहीं मानते। वाक्य और अक्षरात्मक लिखित हो पुराण ग्रन्थ इस सम्प्रदाय के सम्यक् माने जाते हैं। यह मध्य युग के साय-साय सामाजिक सुधार को भी महत्त्व दिया गया था।

इस धर्म का उद्भव मध्यकालीन कृषिवादी ब्राह्मण धर्म और समाज की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। वे लोभ बर्ष अन्वेषण के विरोधी थे और ब्राह्मणों का प्रमुख नहीं स्वीकार करते थे। मठ<sup>२</sup> बलि आदि में रहते विस्थापन न था। वैदिक और स्मृति विधि विधानों का पालन वे अनावश्यक समझते थे। हिंदुओं के गोरक्ष संस्कारों के रक्षण पर इन्होंने अपने नये आठ संस्कारों की कल्पना की थी<sup>३</sup> जिन्हें वे अष्टावर्ष कहते थे। इन्होंने अपना समाज तीन वर्गों में बाँट रखा है—अर्धमराठी और अर्धमराठी। अर्धमराठी भी दो प्रकार के होते हैं—अष्टावर्ष में विस्थापन करने वाले और अष्टावर्ष में न विस्थापन करनेवाले।<sup>४</sup> अर्धम वर्ग के अंतर्गत अंगम लोभ आते हैं। वे अंगम ही इनके धार्मिक पुरोहित होते हैं। इनका ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं होता है। ये अंगम अक्षर और साधु दोनों ही होते हैं। किन्तु<sup>५</sup> अधिकांश संख्या साधुओं की ही है। इस सम्प्रदाय के साधु वेदरस कहलाते हैं। वे विविध परिधियों से अलंकृत एक लंबा सा पालना पहनते हैं और परिधियों को बचाते चलते हैं।<sup>६</sup> ये लोग

<sup>१</sup> हिन्दूधर्म एक बुद्धिमान अर्द्धावधिपद भाग २ पृ० २२०

<sup>२</sup> इन्साइक्लोपीडिया आफ रिजीजन प्रसन्न अधिकांश भाग ८ पृ० ७२ म्यूचार्क

<sup>३</sup> हिन्दूधर्म प्रसन्न बुद्धिमान भाग २ पृ० २२६ अर्द्धम १६२०

<sup>४</sup> वही पृ० २२२

<sup>५</sup> इन्साइक्लोपीडिया आफ रिजीजन प्रसन्न अधिकांश भाग ८ पृ० ७० म्यूचार्क १६२१

<sup>६</sup> वही पृ० ७२

<sup>७</sup> वही भाग २ पृ० ६३

<sup>८</sup> नि मिस्त्रिस्त असेमिस्त सेमिस्त आफ इरिडवा सोमन अर्द्धम १६०३ पृ० १६३

शिव और गणेश के अतिरिक्त और किसी देवता की पूजा ही नहीं करते हैं। दूसरे वर्ग के अंतर्गत समाज के साधारण धार्मिक दृष्टि के लोग आते हैं। जैसे किशन, यदुरिवा, यवाई, यदूर आदि। तीसरी श्रेणी के वे लोग आते हैं जिनका धार्मिक स्तर बहुत नीचा होता है। जैसे बोधी, जमार, मंगी आदि। इनके धार्मिक विस्वास और पूजा-विधिवादी भी हिंदुओं से बिल्कुल भिन्न होती हैं।

इस सम्प्रदाय में हमें समाज का एक बिल्कुल परिवर्तित रूप ही दिखाने पड़ता है। मध्यकालीन हिन्दू समाज जिन कुरीतियों का शिकार था इन्होंने उस समाज को अपने समाज में प्रविष्ट नहीं होने दिया। सर्व-व्यवस्था संबंधी ऊँच-नीच के भाव को वे स्वीकार नहीं करते थे।<sup>१</sup> इन्होंने अपने समाज में बाल-विवाह की प्रथा भी नहीं रखी थी। विधवा विवाह और पुनर्विवाह के ये पक्षपाती थे। इनके यहाँ उत्साह विधेय समझी जाती थी। इनका मानवान्तर और तात्त्विक होता है। मोक्ष मंदिर के मूर्ते भी नहीं हैं। इनके यहाँ कुशा-सूत्र<sup>२</sup> भी नहीं मानी जाती है। सड़ने-जड़कियों का विवाह दानों की सम्पत्ति से हुआ करता है। इन लोगों में बैल की चराही की भी प्रथा है। वे लोग अपने मुँहों को बलाते नहीं हैं।<sup>३</sup> भिक्षा मुँह में घुँसी में गड़ डेते हैं। वे लोग जन्मांतरवाद में भी आस्था नहीं रखते हैं। इनका कहना है कि मृत्यु के बाद भीव हीमा शिव के पाठ बला जाता है यहाँ से उतरी पुनर्दृष्टि नहीं होती है। इस<sup>४</sup> प्रकार हम देखते हैं कि त्रिगायत सम्प्रदाय की स्थापना धार्मिक और सामाजिक दृष्टियों

<sup>१</sup> इन्द्राहस्यो पीठिका आक रिबीजम पृष्ठ पृथिव्य भाग १ पृ० २२२

<sup>२</sup> इन्द्राहस्योपीठिका आक रिबीजम पृष्ठ पृथिव्य भाग ८ पृ० ७९-८३

<sup>३</sup> हिन्दूधर्म इतिहास—व्यास जी इतिहास बन्दन १६२७ पृ० २२-२७

<sup>४</sup> इन्द्राहस्योपीठिका आक रिबीजम पृष्ठ पृथिव्य भाग ८ पृ० ७७

<sup>५</sup> वही

<sup>६</sup> इस संतों के विवरण के लिए निम्नलिखित ग्रंथ बचने चाहिए—

(क) गोविन्दाचार्य लिखित बेचिह संन्यस ।

(ख) गोविन्दाचार्य लिखित विवाहम विवाहम आक रि बेचिह संन्यस ।

(ग) श्रुत्या त्वासी आर्ययत वैश्याहृत रिचर्मस आक इतिहास ।

(घ) टी० व० गोपीनाथ राव-आरबी हिंदी आक वैश्याहृतम् इन साहब इतिहास ।

(च) वे० बस० पद० हृषीकेश—द्विपत्र आक श्री आर्ययत संन्यस ।

(छ) बहुरूप उवाचवाच—आंगरग सम्प्रदाय ।

(ज) चन्दर—रिबीजम लिटरेचर आक इतिहास ।

(झ) वेदवैतन आन रि हिंदी आक श्री वैश्याहृतम् बस० आर्ययत ।

की भावना होकर हुई थी। हमारा हृदय विस्मित है कि इस सम्प्रदाय के बंगम छात्रों की संघति ने निर्गुणियों छात्रों को धर्म और समाज की ओर प्रेरित किया होगा।

### सामंजस्यवादी भक्त सुधारक

उपर्युक्त प्रतिक्रियावादी आचार्यों और छात्र-संत सम्प्रदायों के अतिरिक्त मध्य युग में भक्त सुधारकों के कुछ ऐसे भी सम्प्रदाय उदित हुए थे जिनमें प्रतिक्रिया की भावना प्रधान न होकर सामंजस्य की भावना प्रमत्ती थी। उनके भी हम तीन वर्ग कर सकते हैं—

१—भारतीय भक्त और संत सम्प्रदाय।

२—विदेशी संत सम्प्रदाय।

३—दोनों के मिश्रण से बने हुए छात्र सम्प्रदाय।

(१) भारतीय भक्त और संत सम्प्रदाय—इस वर्ग के अंतर्गत निम्न-लिखित सम्प्रदाय और परंपराएँ विशेष विचारणीय हैं।

(क) दक्षिण के आस्तबार भक्त। (ख) दक्षिण के वैव भक्त। (ग) म्भाराष्ट्रीय खस्ववादी संत। (घ) उद्विया वैष्णव संत। (च) पुरुषिया वैष्णव भक्त। (छ) कुछ अन्य सम्प्रदाय।

### (क) दक्षिण के आस्तबार भक्त संत

वैष्णव धर्म के विश्वस्त में दक्षिण के आस्तबार संतों ने बहुत योग दिया था। लोग अविच्छन्न तामिल प्रांत के निवासी थे। इनका उदय और विकास युग वृत्ती शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक माना जाता है। ये संत संख्या में बाह्य कवियों जाते हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१—योगे आस्तबार। २—भूतचारास्तबार। ३—वैवास्तबार। ४—तिरुमन्दिसे आस्तबार। ५—नम्मास्तबार। ६—मधुरकवि। ७—कुलरीचर आस्तबार। ८—विष्णुकिपरि आस्तबार। ९—गोराभाय्यदास। १०—विप्र नारायणचोराडरिणोत्ति। ११—मुनिवाहन या तिरुमन्न। १२—तिरुमंगेत्तमास्तबार।

इन संतों ने अपनी रचनाएँ तामिल भाषा में लिखी थीं। इनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनका तामिल में प्रबन्धम् नाम से संग्रह किया गया है। तामिल भाषा-भाषी प्रांत में इस ग्रन्थ का वैवा ही आदर किया जाता है जैसा कि हम हांग केर का करते हैं।

४ आस्तबार संत मिथ्या वर्तुष्मन्तरथा में विश्वस्त नहीं करते थे। वे स्वयं भी

विभिन्न सामाजिक स्तरों से सम्बन्धित थे। नम्मालवार तो जाति से शुद्ध थे किन्तु फिर भी ब्राह्मणों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

ब्राह्मण संतों की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी भक्ति-भावना है। उनकी भक्ति में माधो की एक विचित्र तीव्रता, समर्पण की एक अनोखी शक्तियाँ पाई जाती हैं। गोविंदाचार्य ने अपनी विवाहन विग्रहम आठ ही द्रैविड सेम्बत नामक रचना में ब्राह्मणों की भक्ति संबंधी इस विशेषता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि द्राविड संत-भक्ति-भावना के उन्माद में चित्ला उठता है कि दौड़ो, कूड़ो, बोलो, हँसो, गाओ ताकि सब लोग तुम्हारी इस भक्ति-भावना के उन्माद की छाड़ी बन सकें। विष्णु<sup>१</sup> सहस्रनाम कीर्तन इनकी भक्ति-भावना का प्रथम अंग है।<sup>२</sup> यह बात एक संत की निम्नलिखित उक्ति से प्रकट है—मैं माधो-उन्माद में पय की ओर झूलें निष्पत्तकर प्रतीक्षा करता हूँ। और जब तक हमें हाथ खटा है तब तक मैं यिनतम विष्णु के सहस्र नामों का कीर्तन करता खटा हूँ। उस समय भ्रमर भी माधो-उन्माद में पड़ी पड़ते हुए प्रतीत होते हैं कि हम भी विष्णु की पूजा करेंगे<sup>३</sup>।

इन संतों में अरनी रचनाओं में हैतमूलक मेदमावो की पाहे ने शत्रु मिष संबंधी हो या ऊँच-नीच संबंधी हो उनकी निंदा की है। यह बात विष्णुमूर्ति की निम्न-लिखित पंक्तियों से स्पष्ट है—हे भगवान् हम इतने मझान् हो कि मरबुदि को भी मरबुदि नहीं पढ़ते, शत्रु को शत्रु नहीं करते, नीच का नीच नहीं पढ़ते बरन् उनसे सहानुभूति ही रखते हो। उन्हें अरनी दया से अनुपहीन करते हो। इस<sup>४</sup> प्रश्न की उक्तिवाँ रात कम से उनके मेदमाव विहीन दृष्टिभ्रम को राह करती हैं।

ब्राह्मणों ने अपनी भक्ति में सेवक मात्र को ही महत्त्व दिया था। प्रपत्ति भावना का उदय भी संभवतः सर्वप्रथम इनकी मस्तों में हुआ था। ये लोग ईश्वर की कृपा में दृढ़ विश्वास रखते थे। आत्मबैभ्य की भावना भी इनमें कम शक्तिशाली नहीं है। यह बात एक ब्राह्मण संत को निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट है—हे भगवान् आपका सेवक मैं आपके बरखों की शरण में आया हूँ और आपके बरखों को बारबार पकड़ रहा हूँ ताकि आप अपनी बहुमुखी कृपा से इस रीति का उद्धार कर दें<sup>५</sup>।

इन संतों की दृष्टि में पुस्तक ज्ञान से मत्तयाचारण कहीं अधिक उत्तम एवं श्रेष्ठतर है। एक संत भगवान् को संबोधित करते हुए करता है—हे भगवान् एक

<sup>१</sup> द्रैविड इन्दीयान पृ० ३ हिम्य आठ आठवार सेठम्—द्वार

<sup>२</sup> से० दय० कम० द्वार—हिम्य आठ आठवारस इन्दीयान पृ० ३१।

<sup>३</sup> कही प्रप पृ० ३३।

<sup>४</sup> कही प्रप पृ० ३३।

<sup>५</sup> कही प्रप पृ० ३३।

शुद्धि का लक्ष्य बचपि चारों वेद में पारंगत या किन्तु फिर वह सदैव कम से उखा  
 खड़ा था। कम से बचने का वह ठके कोई उपाय नहीं सुझा वह वह आपकी गरव  
 में आया था।<sup>१</sup> इस अवतरण में मऊ ने यह अनिष्ट किया है मृत्यु मय ज्ञान से नहीं  
 भक्ति से दूर होता है।<sup>२</sup>

ये संत लोग उच्च कोटि के रहस्यवादी भी थे। इनका रहस्यवाद सुन्नों के  
 रहस्यवाद से बहुत भिन्नता-बुलगा है।<sup>३</sup> सुन्नों के उदर ही हममें भी प्रेम और विश्वास  
 की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। रहस्यमायना की अभिव्यक्ति के लिए इन लोगों ने  
 सुन्नों के ढंग की प्रत्यक्ष प्रतीक पद्धति का उपयोग भी किया था। यह बात एक मऊ  
 की निम्नलिखित रहस्याभिव्यक्ति से स्पष्ट है—प्रियतमाप्रियतम को संबोधित करके खड़ी  
 है कि प्रेम की क्योति पीली पड़ रही है ठरके स्थान पर सुबलापन फैल रहा है। यधि  
 कुय के उदर प्रतीत हो रही है। वह बिरहरूपी लम्बि जो मेरे प्रियतम कृष्ण ने मुझे  
 दी है, वह अग्रजनीय है और दुलही के उदर रतिल है। इन<sup>४</sup> संतों की इस रहस्य  
 भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण निर्गुणियों संतों पर दिखाई पड़ता है।

### दक्षिण के सार्वजनस्यवादी शैव मक्त सन्त

तामिल देश के शैव मक्तों का अभ्ययन अभी तक बड़ा उपेक्षित रहा है। किन्तु  
 हिन्दी की निर्गुण ब्रह्मवाद की प्रकृतियों का अभ्ययन करने से पूर्व इन मक्तों की सामान्य  
 विशेषताओं को समझ लेना आवश्यक है। इनका उदय और विकासकाल विद्वानों  
 ने पाँचवीं शताब्दी से लेकर ११वीं शताब्दी तक निश्चित किया है। ये मक्त संख्या में  
 ३३-बचाने जाते हैं। इनमें<sup>५</sup> सबसे अधिक प्रतापि ठिकाना नामक लम्ब की है। यह  
 महात्मा लम्ब से जाकर ये। इनमें बालकाल से ही मक्ति-भावना और कल्प-रक्ति  
 का स्वरूप हो पला था। इन संतों के गीत दक्षिण के २७४ मंदिरों में गाये जाते  
 थे। दक्षिण शैवों के ब्राह्म धर्म ग्रंथों में प्रथम तीन इन्हीं संतों के शिव-मक्ति परक  
 गीतों का संग्रह है। ये गीत बालेगम नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रत्येक में प्रायः १२ पर  
 होते हैं। अन्तिम पर में ये अन्तै नाम आदि का परिचय देते हैं।

ये संत लोग मगवान् शिव की कख्या में अद्भुत विश्वास करते थे। इनके गीतों  
 में प्रेम और आनंद की मधुमयी वाय प्रबहमान है। इनके गीतों में प्रायः ऐसी अग्नि  
 निकलती है कि इन्होंने अपने ज्ञान-कस्तुरियों से मगवान् शिव के दर्शन किये थे। उनकी

<sup>१</sup> वही प्रंय पृ० ७३।

<sup>२</sup> वही प्रंय देखिये भूमिका।

<sup>३</sup> वही प्रंय पृ० ७३।

<sup>४</sup> देखिये इन्द्राङ्गोतीरिका आक रिचीजय पृष्ठ पृथिव्य भाग १२ पृ० ३९।

इस मानना से उनमें मधुर रहस्यवाद का समावेश हो गया। महापंथीय दृष्ट्या उनको नै रहस्यमिथ्या कि प्रेरणा इन्हीं संतों से प्राप्त की थी। उनकी रहस्यमानना का स्वरूप प्रभाव निर्गुणियों संतों पर दिखाई पड़ता है। कोई आश्चर्य नहीं कि इनकी परंपरा से दूसरे साधुओं का स्वयं प्रभाव निर्गुणियों संतों पर पड़ा हो। संत लोग प्रायः प्रमत्तचित्त हुआ करते थे। दूसरे संसारा के साधुओं में बैठकर उनकी बातों को सीखने की प्रवृत्ति भी इनमें थी। इस प्रवृत्ति के कारण पर हम दोनों में बहुत बड़ा मौखिक अंतर होने हुए भी पारस्परिक प्रभाव का अंतम नही मान सकते।

### महाराष्ट्रीय रहस्यवादी मन्त्र संत

आलवार संतों के प्रभाव के फलस्वरूप दक्षिण में महापंथीय संतों का मातृभाव हुआ। हिंदी के निर्गुणियों संतों का इन महापंथीय मन्त्रों से सीधा संबंध दिखाई पड़ता है। इसी कारण तो यह भी है कि आलवार संतों का प्रभाव हिंदी संत कवियों पर महाराष्ट्रीय संतों के माध्यम से ही पड़ा था। इसका कारण यह है कि आलवार संतों में अन्ती रत्नार्थ अविष्कार तामिल सेलू आदि भाषाओं में लिखी थीं। निर्गुणियों कवि इन भाषाओं से प्रायः अपरिचित थे। इसके विपरीत महाराष्ट्रीय संतों की रत्नार्थ ऐसी सरल महाराष्ट्रीय भाषा में लिखी गई थी जिन्हें निर्गुणियों संत सरलता से समझ सकते थे। दूसरे आलवार मन्त्रों की अपेक्षा महाराष्ट्रीय संतों की विचारधारा निर्गुणियों संतों को अपने विचार के अधिक अनुकूल लगती होगी संभवतः इन्हीं कारणों से निर्गुणियों संतों में महाराष्ट्रीय संतों के प्रभावितों पर चलने की प्रवृत्ति की थी।

वैष्णव धारद्वारी सम्प्रदाय—महाराष्ट्रीय संतों की परंपरा का उद्भव संत ज्ञानेश से माना जाता है। धारद्वारी वैष्णव सम्प्रदाय के प्रधान प्रवर्तक यह ही माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय में धारपुर के मगवान् विठ्ठलेश की उपासना पर ही सबसे अधिक बल दिया गया है। मगवान् विठ्ठलेश विष्णु का ही प्रतिरूप समझे जाते थे।<sup>१</sup> इसीलिए यह सम्प्रदाय वैष्णव संसारा कहा जाता है। संत ज्ञानेश्वर के अतिरिक्त इस

<sup>१</sup> महाराष्ट्रीय में धारद्वारी का अर्थ अतिरिक्त करने वाला होता है जो संत भगवान् विठ्ठल की अतिरिक्त करते थे उन्हें धारद्वारी कहा जाने लगा किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में परंपरा १०२० १०२१ १०२२ ।

<sup>२</sup> महारा ने विठ्ठल को विष्णु का अवतार रूप माना है। उनका मत है कि विष्णु का कनाही भाग में विठ्ठल हुआ और बाद में विगठकर विठ्ठल हो गया। अनेकत्वार्थ का अंतर्भाव भाग ११० १११ । कुछ लोगों ने विवेका का विष्णु का अवतार कहा है—  
एकैव सर्वत्र प्राक रि रावण अतिपादिक अतिरिक्त ११०० ११० १०२१

सप्रदाय का पेषण नामदेव, एकनाथ कुकाराम आदि अन्य महात्मायुक्त संतों में भी किया था।

संत ज्ञानेश्वर का कर्म संत् २१७२ ई० के आसपास आसंही नामक ग्राम में महात्मापुत्री के प्रसिद्ध पं० विठ्ठलपंत के घर में हुआ था। यह<sup>१</sup> बचपन से ही परम विरक्त और प्रतिमायाही थे। कहते हैं कि इन्होंने आत्मार्थ संबंधी कई ग्रंथ लिखे थे। इन ग्रंथों में ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव भाव भी उपलब्ध हैं। ज्ञानेश्वरी इनके आत्मसाक्षात्कार और मक्तिररक्त सिद्धांतों का रसमय दर्पण है। यहाँ पर हम उच्चरी के आचार पर उनकी विचारधारा का संक्षिप्त व्यंशक करेंगे।

संत ज्ञानेश्वर की विचारधारा भगवद्गीता की विचारधारा से बहुत कुछ भिन्न-भिन्न है। ब्रह्म प्रथम गीता में मक्ति ज्ञान और कर्म के सामंभस्व पर बल दिया गया है उच्चरी प्रथम इनकी वाणी में उच्चरी संतों का उच्चरी की विवेकी से आत्मसाक्षित है। इन्होंने प्रकृति और पुरुष के संबंध में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। यह प्रकृति को कर्ता और पुरुष को ह्य्या मात्र मानते थे।<sup>२</sup> अपने इस सिद्धांत का स्पष्टीकरण उन्होंने एक रागा के ह्य्यात्त से किया है। ब्रह्म प्रथम रागा के रागमहल को बनाने वाले तो और ही होते हैं। किंतु उक्तका ह्य्या रागा होता है। उच्चरी प्रथम इस सृष्टिस्त्री मूल्य की निर्मात्री प्रकृति है और पुरुष उक्तका ह्य्या मात्र है।<sup>३</sup> ज्ञानेश्वरी में संस्य-दर्शन के लक्ष्य प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि माने गये हैं। इनमें पुरुष पुरात्मन कहा गया है और प्रकृति फिर नवीन उनके इस प्रकृति और पुरुष संबंधी सिद्धांत से पूर्वतया स्पष्ट है कि वह संस्यवाही थे। उन्हें ईश्वरसाक्षेत्वात् से प्रप्राप्ति मानना हमारी समझ में ठीक नहीं है।<sup>४</sup> यहाँ तक शांकराचार्य के संस्य की बात है उसके मूल में उनकी संस्यवाहुकूल दैतवाही द्यि है। उन्होंने अपने को एक स्वत पर संस्यवाही ही अर्णित भी किया है।<sup>५</sup>

<sup>१</sup> देखिए श्री आर० बी० रामटे लिखित मिस्त्रीसिद्धि ह्य महात्मापुत्री पृ० २०-२४ तक हिस्ती आक इन्डियन सिद्धांतकी रागटे भाग ०।

<sup>२</sup> यही पृ० २२

<sup>३</sup> हिस्ती आक इन्डियन सिद्धांतकी भाग ० रामटे वेकवेकर में रामटे लिखित मिस्त्री सिद्धि ह्य महात्मापुत्री पृ० २२२ पृ० १७२ ७७ ७२

<sup>४</sup> श्री पराशराम कुरुक्षेत्री ने उच्चरी भारत की संत परम्परा का नामक ग्रंथ में उन्हें ईश्वर ह्यवात् से ही ममाक्षित माना है—देखिए पृ० ८५ संस्यवाहु २००८

<sup>५</sup> यही पृ० ८५

<sup>६</sup> रामटे लिखित मिस्त्रीसिद्धि ह्य महात्मापुत्री हिस्ती आक इन्डियन सिद्धांतकी भाग ० पृ० १२२२ में संस्यवाहु पृ० २२।

संत ज्ञानेश्वर ने अपनी रचनाओं में आध्यात्मिक विषयों के प्रतिपादन के साथ-साथ भक्ति का निरूपण भी किया है। वह छोटे ज्ञान के पक्षगती न थे उनका विषय था कि ज्ञान अपनी पूर्णता पर भक्ति से विशिष्ट होने पर ही प्राप्त होता है। वह बात उनके निम्नलिखित कथन से स्पष्ट है—'जो हमसे अहंता स्थापित करके भी हमारे प्रति अपनी भक्ति मानना शिघ्र रहता है वही लक्ष्य जानती है।'<sup>१</sup>

संत ज्ञानेश्वर में हमें रहस्यवाद के भी वर्णन होते हैं। उन्होंने उक्त विषयम तक पहुँचने के चार मार्गों का उल्लेख किया है। ध्यानयोग, भक्तियोग, क्रमेण और सांख्ययोग<sup>२</sup>। जैसे तो वह चाये का ही महत्त्व स्वीकार करते थे पर उनकी स्वयं की आस्था भक्तियोग में ही सबसे अधिक थी।<sup>३</sup> भक्तिसेव में वह बर्णनकरणा के मंद मात को भी अनुचित मानते थे।<sup>४</sup> इनका भक्ति मार्ग कोष निष्कष एवं अल्पव्यवहारिक साधना मार्ग न था। बिना प्रकार वह भक्ति के बिना ज्ञान को अपूर्ण समझते थे। उसी प्रकार भक्ति को योग के बिना निष्कष मानते थे। उनकी रचनाओं में हमें सबैत्र हठयोग, राजयोग, लययोग आदि भी वर्ण मिलती है।<sup>५</sup>

इस प्रकार हमें संत ज्ञानेश्वर में काम भक्ति और योग का सुन्दर समन्वय मिलता है। उन्होंने अपनी इस अमिनक विवेची से सारे महासुन्द को तो प्रभावित किया ही था। उक्तउपय उतके पावन प्रवाह से पवित्र हुए बिना न रह सथा। आर० जी० रंजित साहा ने उनकी विचारधारा को आध्यात्मिक रहस्यवाद कहा है। मैं उनके इस मानकरणा से पूर्णतया सहमत हूँ। मेरी अपनी धारणा है कि निर्गुणियों संतों को आध्यात्मिक रहस्यवाद का बरदान इन्हीं महापुत्रीय संतों से मिला था।

**नामदेव**—आरक्षी संप्राय के उल्लेखनीय बृहते संत नामदेव हैं। कबीर आदि पर इनका प्रत्यक्ष और स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है अतः इनका विवेचन निर्गुण आराधना के प्रवियों के प्रसंग में किया जायगा।

**एकनाथ**—नामदेवकी के बाद महापुत्रीय संतों में एकनाथकी का नाम

<sup>१</sup> वही पृ० १११।

<sup>२</sup> रामदे के छिन्न मिस्त्रीसिद्धि हक महाराष्ट्र पृ १०८।

<sup>३</sup> वही पृ० १०१

<sup>४</sup> वही पृ० ११०

<sup>५</sup> वही पृ० ११२



आता है। इनका जन्म सन् १८१६ ई०<sup>१</sup> में एक उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके प्रपितामह भी अपने समय के एक महान् संत थे। उनका हमके जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना माय मायकत है। इनके सिद्धे हुए स्वप्नकी स्वप्नर और माध्याम्य रामायण नामक ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध हैं।<sup>२</sup>

यह शुद्ध सगुणवादी संत थे।<sup>३</sup> सगुणवादी होते हुए भी वह अद्वैतवादी विचारों के थे। यह बात उनकी भक्ति की परिभाषा से प्रकट है। उनके मतानुसार सारे विश्व में ईश्वर के दर्शन करना ही लक्ष्यी भक्ति है।<sup>४</sup> नामरूप के सत्त्व नाम जप को उन्होंने भी बहुत महत्त्व दिया था।<sup>५</sup> उनकी ब्रह्मानुमूर्ति बहुत ही तीव्र और पूर्ण थी। इस बात का प्रमाण यह है कि वहाँ भी उन्होंने ब्रह्मानुमूर्ति की अवस्था का वर्णन किया है वहाँ सर्वत्र धास्विकी की उत्पत्ति भी दिखलाई है।<sup>६</sup> अद्वैतवादियों के सत्त्व यह बात को सत्य और वास्तव्य को सिद्धा मानते थे।<sup>७</sup> नैतिक क्षेत्र में उन्होंने सदाचर्य पर बहुत अधिक महत्त्व दिया था।<sup>८</sup> इनकी रहस्यानुमूर्ति विश्व व्यापिनी थी। इसी विशेषता के आधार पर रविन्द्र धाह्य ने इनकी रहस्यानुमूर्ति को सिमर्यैक मिठवीठिबम अर्थात् समन्वयात्मक रहस्याव कहा है।<sup>९</sup>

संत तुकाराम<sup>१</sup> —महाराष्ट्रीय संतों में संत तुकाराम अग्रगण्यमाने जाते हैं।

<sup>१</sup> इनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में मतभेद है सबसे पहले और भागे नामक विद्वानों ने १२४८ ई० उनकी जन्मतिथि निश्चित की है फारकर १३२ ई० मन्वरे के मत में हैं। बाद में उन्होंने १२३३ ई० को ही जन्मतिथि मानी है। रावडे साहब ने इस मत का समर्थन किया है। देखिए हिन्दी भाषा इतिहास किताबकी भाग ७ अंतर्गत छे० रावडे पृ० २१७ पृथा १२३३।

<sup>२</sup> यही ग्रंथ पृ० ११२-११७

<sup>३</sup> यही पृ० २४७

<sup>४</sup> यही ग्रंथ पृ० २२२

<sup>५</sup> यही पृ० २२२

<sup>६</sup> यही ग्रंथ पृ० २२२

<sup>७</sup> यही पृ० २३७

<sup>८</sup> यही ग्रंथ पृ० २११

<sup>९</sup> यही पृ० २३८-२६

<sup>१०</sup> देखिए—हिन्दी भाषा इतिहास किताबकी—भाग ७ मिस्त्रिसिम्स इन महाराष्ट्र छे० रावडे—पृ० २६२ से २६३ तक पर इसके जन्म माता-पिता और जीवन की 'जन्म घटनाओं के सम्बन्ध में विविध मता दिये हैं। महारकर ने १६०७ ई० उनकी जन्म तिथि और १६४३ इनकी निर्गुण तिथि दी है—क्रेन्स्टेड वर्सर्न भाषा घर धार० जी महारकर भाग ७ पृ० १३२

इसके पिता का नाम जालो भी और माता का नाम अज्ञात था। बालोमी स्वयं ही एक प्रसिद्ध संत थे अतएव पुत्र का संत होना स्वाभाविक ही था।<sup>१</sup> संत तुम्हारा नाम मे अग्नी साधना के बल पर मगध राज्य प्राप्त कर दिया था।<sup>२</sup> अग्नी बायीं उर साक्षात्कार जलित आर्त से परिपूर्य है।

तुम्हारा नाम भी साधना के प्राणमूर्त रूप हो वे। मेम और प्रार्थना। तनका विरवास था। साधक इन्हीं दो तन्त्रों का सहाय लेकर अपने प्रियतम से साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है। इन दोनों के अतिरिक्त उन्होंने कल्याण सस्त्रीय और साक्षात्कार को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया था। संत तुम्हारा एक मातृक रहस्यवादी थे। कहते हैं मायोभाइ की अवस्था में उन्हें प्रियतम के साक्षात्कार के साध-साध प्रियतम की बायीं भी तुम्हारे पक्षी थी।<sup>३</sup> उनमें रहस्य मानना की अनुभूति के साध-साध अभिव्यक्ति कर्मकार भी दिखाई पड़ता था।<sup>४</sup> यह अभिव्यक्ति कर्मकार उनके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य था। सम्भवतः इती सिद्धांतों से साक्षात्कार के व्यक्तित्व प्रधान रहस्यवाद कहा है।<sup>५</sup> हमारी समझ में उनका रहस्यवाद केवल व्यक्तित्ववादी ही नहीं था बल्कि समष्टिमूलक भी था। क्योंकि समस्त विश्व को ईश्वर रूप समझना उनका साधना की सबसे प्रधान विशेषता थी। तुम्हारा नाम भी ऐसे रहस्यवादी संत का ध्यान प्रभाव यदि परवर्ती संतों पर पड़ा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

संत रामदास—संत रामदास उन इने-गिने संतों में से हैं जो समय-समय पर भारत को कर्मपथ का संदेश देते आये हैं। यह महात्मा केसरी शिवाजी के गुरु थे। शिवाजी का साधन और प्रशासन इन्हीं के आशीर्वाद का फल था। स्वामी रामदास की का जन्म संवत् १६६३ चैत्र शुक्ल नवमी के दिन हुआ था। इसके पिता का नाम जालो भी और माता का नाम रेणुकाबाई था।<sup>६</sup> यह भारती साधना के बाहर के संत थे। इन्होंने अपना एक श्रुत्युक्त पंथ बनाया था। यह रामदासी पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्धतम रचना शतशोध है।<sup>७</sup> इनके आध्यात्मिक और

<sup>१</sup> मागधत दर्शन—बोधदेव उपाध्याय पृ० २८२

<sup>२</sup> अग्नी ११६०-१६२ पक्ष वही बात स्पष्ट होती है।

<sup>३</sup> हिंदी का इतिहास विद्यासायी भाग ० सात खण्ड रागादे पृ० १०२ १०३

<sup>४</sup> वही

<sup>५</sup> वैशिष्ट्य हिंदी का इतिहास विद्यासायी भाग ० में सिद्धिचिन्म इन महाराष्ट्र में पृ० १६१-६४

<sup>६</sup> पक्षी पृ० १६१-१६२ तक

<sup>७</sup> वही पृ० १७२

मछियरक विचार इसी ग्रंथ में उल्लिखित हैं। इनका सत्य समाज को लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के उन्नति पथ पर ले जाना था। इनकी साधना और उपदेश का मूल चार तीन प्रकारों में विहित है। वे प्रकार क्रमशः प्रयत्न, प्रवच और प्रबोध के चोत्रक हैं।

यह संत महात्मा में निर्गुणवादी संत के रूप में बहुत प्रसिद्ध हैं। हमारी समझ में उनकी साधना निर्गुण और सगुण दोनों के बीच में खोई हुई थी। इतना होते हुए भी वह भावना और विश्वास उचित मूर्तिपूजा के विरोधी थे।<sup>१</sup> महात्मा कृष्ण के साथ वह पहले महात्मा थे जिन्होंने भक्ति और ज्ञान से कर्मयोग को अर्थिक महत्त्व दिया था। उनका विश्वास था कि भक्ति और ज्ञान के बिना कर्म योग के पूर्व नहीं। संसार में उनकी विचारवादा और सिद्धान्तों का बड़ी छार है।<sup>२</sup>

### निरंजन मत और निरंजनी साधु

आचार्य द्विप्रियोदन सेन ने लिखा है कि मध्यदेशीय धार्मिक सुधारकों पर निरंजन मत का प्रभाव भी पड़ा था<sup>३</sup>। उनका यह कथन बहुत अंशों में सार्थक है। यदि इन सुधारकों की विचारवादा की तुलना निरंजनी साधुओं की विचारवादा से की जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि दोनों में बहुत साम्य है। इस साम्य का कारण संभवतः पारस्परिक प्रभाव ही है। अब प्रश्न यह है कि किसने किसको प्रभावित किया था। इस सम्बन्ध में अभी ही आचार्य सेन के मत का संकेत कर चुके हैं। उनके मत से मैं भी सहमत हूँ। मेरा अनुमान है कि इस मत का सत्य १२वीं शताब्दी के आठ-पाठ हुआ होगा। इस अनुमान के कई आधार भी हैं। उपरोक्त दानुपन्थी ने अपने मन्त्रालय में लिखा है कि 'कबीर दानु नामक और जगन इन चार महंत गुरुजी की पद्धति निरंजन से मिली।'<sup>४</sup> अर्थात् कबीर<sup>५</sup> दानु नामक और जगन को निर्गुण मत के प्रवर्तक की प्रेरणा निरंजन मत से मिली थी। इससे पूर्ववत् स्पष्ट है कि यह सम्प्रदाय भी नाथ सम्प्रदाय के सदस्य ही निर्गुण सम्प्रदाय का पूर्ववर्ती था। कुछ लोगों की धारणा है कि यह नाथपन्थ की ही शाखा थी<sup>६</sup>। जो अन्ततः में निर्गुण सम्प्रदाय में अन्तर्निहित हो गई। मेरी अपनी धारणा यह है कि यह नाथपन्थ की शाखा न होकर लहकिया पीढ़

<sup>१</sup> श्रीमद्भगवद्गीता का १८वाँ अध्याय इतिम्।

<sup>२</sup> मेडिकल मिस्ट्रीसिम्स आचार्य सेन पृ० ६६—अनुद १९२६।

<sup>३</sup> उत्तरी भारत की संत परम्परा से उद्धृत पृ० ७६२ परशुराम अनुवंशी इलाहाबाद पृ० २००८

<sup>४</sup> वही पृ० ७६०।

<sup>५</sup> विरह भारती पत्रिका अंक ३ भाग २ पृ० ७२६।

सिद्धों की एक शाखा थी। इसका उद्भव भी नाकल्प के उद्भव के कुछ दिन पश्चात् ही हुआ होगा। हमारी समझ में इस मत का प्रवर्तन निरंजन नामक सिद्ध ने किया था। उन्हीं के नाम पर यह निरंजन मत कहा जाने लगा और बाद में यह वैष्णव और शैव शास्त्रियों के प्रभाव से अनुप्राणित हो गया।

यहाँ पर हम डा० हजारीमठाह का मत भी उद्धृत कर देना चाहते हैं उन्होंने निरंजन मत को परमेश से मिलाने की चेष्टा की है किन्तु यह केवल अल्प अनुमान भर है उन्होंने अपने मत की पुष्टि में अनेक तर्क और पुष्ट प्रमाण नहीं दिये हैं।<sup>१</sup>

हमारी समझ में निरंजन मत का प्रवर्तन निरंजन<sup>२</sup> नामक सिद्ध ने किया था। बाद में यह मत शैव और वैष्णव विचारवाहियों से प्रभावित होकर अभिन्न रूप में विभक्त हुआ। इस मत का उद्भव स्थान सम्भवतः झीला या क्योंकि अब भी केवल उसी प्रांत में उसके दो-चार अनुयायी मिलते हैं।<sup>३</sup> किन्हीं भौगोलिक और ऐतिहासिक कारणों से प्राथमिक अन्तों की रचनाएँ हुए हो गई हैं। उन रचनाओं की शोष करने की बड़ी आवश्यकता है। आवश्यक दिन निरंजनी सप्तुओं की रचनाएँ और विवरण उपलब्ध हैं उनमें लक्ष्मण हरीदास की हैं<sup>४</sup>। इनके सम्बन्ध में हरीनाथराय शर्मा ने लिखा है कि यह हरीदास की प्रथम तो प्रायदास की के शिष्य हुए फिर दादू की के। उसके बाद कबीर और गोरखनाथ के पुत्र में हो गये<sup>५</sup>। इस रूप के आधार पर हरीदास की का समय सरलता से निर्दिष्ट किया जा सकता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि हरीदास की से प्रायदास की ने १६५५ में दीक्षा ली थी<sup>६</sup>। इस घटना के आधार पर हरीदास की का समय १७वीं शताब्दी का प्रथम या द्वितीय अर्ध माना जा सकता है। हरीदास की के संक्षेप में बाबा राधोदास ने लिखा है कि हरीदास की निरंजन संप्रदाय के १२ प्रचारकों में से अंतिम थे<sup>७</sup>। यदि दो प्रचारकों के बीच में तीस वर्ष का अन्तर मान भी मान लिया जाय तो इसका उद्भव सरलता से १२वीं शताब्दी के अन्त तक निर्दिष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में हमें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं हो सकता कि निरंजन मत ने ही निर्गुण मत को प्रभावित किया था। संत राधादास ने इस

<sup>१</sup> इंग्लिश भाषा सम्प्रदाय पृ० ३४।

<sup>२</sup> मेडिकल मिस्ट्रीमिस्त्र—द्विप्रियोदन खेव पृ० ७० अन्वय १६२६।

<sup>३</sup> उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ० ४६४ अन्वय अन्त २००८

<sup>४</sup> लोकी पृ० ४२४।

<sup>५</sup> बरी पृ० ४२२ २४।

<sup>६</sup> बरी पृ० ४६२।

<sup>७</sup> बरी पृ० ४६५।

मृत के महत्त्वों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं लक्ष्मो ब्रह्मवाच्यदास, रत्नामदास, कन्ददास, पुरनदास, मोहनदास और हरिदास। हमारी धारणा यह है कि महत्त्वों की ये तिस्र आनुमानिक हैं। इन्होंने इनके केवल दो नाम मानीय लगते हैं एक तो ब्रह्मवाच्यदास दूसरे कन्ददास। हमारी समझ में कोई ब्रह्मवाच्यदास ही इसके प्रमुख प्रचारक थे और यह ब्रह्मवाच्य की के छपीय के रहने वाले थे। ब्रह्मवाच्यदास के बाद वृत्त नाम कन्ददास विचारनीय है। गोरक्षनाथ के पंथों में से कन्ददास पंथ भी एक है<sup>१</sup>। इनाउ अनुमान है कि निरंजनी कन्ददास में ही आगे ब्रह्मवाच्य अपना स्वतंत्र पंथ पलाया होगा जो नाथपंथों के १२ पंथों में गिनाया जाता है। संभवतः इसी आधार पर कुछ लोग इसे नाथपंथ की एक शाखा मानते हैं<sup>२</sup>। कुछ उधे निर्गुण और नाथ के बीच की एक लकी<sup>३</sup> करते हैं। हमारी धारणा है कि कन्ददास के बाद कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं हुआ जो इस मृत को शक्तिशाली करने में सहायक होता। इसी लिए यह अधिक प्रकाश में नहीं आ सका। १७वीं शताब्दी में आकर इरीदास की ने इतनी पुनः प्राणप्रतिष्ठा की जिसके फलस्वरूप इस संप्रदाय में कई उच्चकोटि के महात्मा उत्पन्न हुए। इनमें हरिदास की के अतिरिक्त निपठ निरंजन, दुर्गाही साहब, सेनादास, रामदास आदि कई प्रचारक विशेष उल्लेखनीय हैं। हरिदासकी ने बहुत से पद लिखे थे। उनका संग्रह हरिपुराण की बाणी के नाम से किया गया है। निपठनिरंजनकी की भी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं एक का नाम शक्तिरथी और दूसरे का नाम निरंजन संग्रह है। निरंजनी मगधानदास ने भी कई ग्रंथ लिखे थे जिनमें मनु हरिशतक, प्रेमदास, अमृतवाच्य, सीता, महाव्रत आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इसी संप्रदाय के दूसरी मानक संत ने दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन किया था। इन्होंने बहुत ही रचनाएँ लिखी थी जिनमें से अधिकांश उपलब्ध नहीं हैं।<sup>४</sup> इस सम्प्रदाय के उपर्युक्त तथा अन्य संतों की रचनाओं की कोश करने की आवश्यकता है। उपलब्ध रचनाओं के आधार पर डा० ब्रह्मचारी ने अपने एक निबंध में और अपनी निर्गुण स्कूल छोड़ हिंदी पोद्दी नामक पुस्तक में तथा पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी उर्ध्वी भारत की संत परम्परा में हमकी विचारवाच्य का संक्षिप्त संकेत किया है। निरंजनी वाच्य दृष्टीगिक साधना को विशेष महत्त्व देते थे। उनका विश्वास था कि निरंजन के दर्शन अक्षरप्र में ही हो सकते हैं। इसके लिए साधक को अपनी इच्छाओं अवसुंती करनी होती है। कुंडलनी शक्ति प्राप्त करके सुपुत्रा मार्ग में प्रवृत्त की जाती है। इस सुपुत्रा मार्ग विशेष से बचनाक करते हैं, में प्रवेश

<sup>१</sup> नाथ सम्प्रदाय—डा० हमारीमनाद त्रिवेदी पृ० १०-११ इलाहाबाद १९२०

<sup>२</sup> परशुराम चतुर्वेदी—उर्ध्वी भारत की संत परम्परा पृ० ७६०

<sup>३</sup> विगुण स्कूल का हिन्दी पोद्दी—डा० ब्रह्मचारी प्रीतेश पृ० २-३

<sup>४</sup> इन सब के लिए इच्छित उर्ध्वी भारत की संत परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी पृ० ७६२

करके ही साधक की साधना सफल हो सकती है। वह सभी शून्य मंडल में समृत रह कर पान कर सकता है। इस मत में नाम स्मरण को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। वह नाम स्मरण को आत्मा और परमात्मा से मिलाने वाली डोरी मानते हैं। निरंजन पंथ में नाथपंथ के साथ ही त्रिकुटी साधना की मर्यादा प्रतिपादित की गई है। इसमें सुषुप्ति मन तथा श्वास-निरश्वास को एक साथ नियोजित करना पड़ता है। साधना के इस पक्ष में सफलता प्राप्त करने के लिए साधक को अकपावास करना चाहिए।<sup>१</sup>

निरंजन मत में नाथ पंथी योग साधना के साथ ही साथ सूषुप्ति तथा मूक संतों के अनुकरण पर प्रेम और विश्वास को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। मक्ति की दृष्टि से हम इन्हें वैश्वर मूक कह सकते हैं। इन्होंने अपने निरंजन परमात्मा की मक्ति का निर्कोश, नबबा मक्ति के ढंग पर किया है—स्मरण, पादसेवन ज्ञान अर्पण आदि इन्हें भी मान्य थे। ॐ के महत्त्व को ये भी स्वीकार करते थे। दार्शनिक दृष्टि से ये अद्वैत-वादी वेदवादी कहे जा सकते हैं। इनकी ये सभी विशेषताएँ हमें निर्गुणियों संतों में क्यों की क्यों मिलती हैं। अतएव हमारा यह निष्कर्ष है कि निर्गुणियों कवि निरंजन मत से बहुत अधिक प्रभावित थे अनौचित्यपूर्ण नहीं है।<sup>२</sup>

### बंगाल का सहजिया वैष्णव संप्रदाय और उसके संत

बंगाल का वैश्वर सहजिया संप्रदाय बहुत प्रसिद्ध है। हिंदी साहित्य पर विशेष कर कृष्णोपासक कवियों पर ठोका अमिट प्रभाव पड़ा था। हिंदी की निर्गुण धम्म-पाठ से भी इसका अस्त्वय संबंध दृढ़ता से लक्ष्य है। यह संप्रदाय सहजिया बौद्ध संप्रदाय का वैश्वर रूपान्तर कहा जा सकता है। बित्त प्रचार बौद्ध सहजिया संप्रदाय में प्रकाश और उगाव के मिलन को ही महाशुद्ध की अचरया कहा गया था ठीक प्रकार इस संप्रदाय में राधा और कृष्ण के मिलन को आमन्द की पृथ्वरया माना गया है।<sup>३</sup> इस संप्रदाय के अनुनामी संत कीर्तन को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। वे सोमा राधा और कृष्ण की मिथन लीलाका की मधुरकथनाओं में निमग्न रहते थे। भावना और कथना की अतिरेकता और प्रत्यय भाव की मधुरता एवं साधना की शुद्धता के कारण इन संतों की वाणी में मधुर रहस्य भावना स्वयं ही प्रसिद्ध हो गई। वे कृष्णोपासक मूक होठे हुए भी श्रवणवादी थे। रहस्यवाद के समावेश से उनकी कृष्णोपासना अनिर्वचनीय निर्गुण भावना में कुछ लोरे लोरे ली प्रकीर्ण होती है। इस संप्रदाय के

<sup>१</sup> इस सब के लिए रंगिण्ट डा० कव्यवास सिगिण्ट निर्गुणी संत सम्बन्धी विवरण है— यह योग प्रसाद नामक ग्रंथ में संश्लेषित है।

<sup>२</sup> इसके लिए रंगिण्ट संत परम्परा बरहुराम कनुबंदी पृ० १००-१०२।

<sup>३</sup> आध्वरबोर रिबीज्म कथन—बामन्यु पृ० १२३ वर कथकथा १२७६

मृत के महत्त्वों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं कन्द्यो जगन्नाथदास रवीन्द्रदास, कच्छदास, पूरनदास, मोहनदास और हरिदास। हमारी बारम्बा यह है कि महत्त्वों की ये किरण आनुमानिक है। इसमें हमें केवल दो नाम माननीय लगते हैं एक तो जगन्नाथदास दूसरे कच्छदास। हमारी समझ में कोई जगन्नाथदास ही इसके प्रमुख प्रचारक थे और वह जगन्नाथ भी के समीप के रहने वाले थे। जगन्नाथदास के बाद दूसरा नाम कच्छदास विचारनीय है। गोरखनाथ के पंनों में से कच्छदास पंथ भी एक है<sup>१</sup>। हमारा अनुमान है कि निरंजनी कच्छदास ने ही आगे चलकर अपनी स्वतंत्र पंथ बलाया होगा जो मायम्बों के १२ पंथों में गिनाया जाता है। संभवतः इसी आधार पर कुछ लोग इसे मायम्ब की एक शाखा मानते हैं<sup>२</sup>। कुछ उठे निगुण और नाथ के बीच की एक लड़ी<sup>३</sup> करते हैं। हमारी बारम्बा है कि कच्छदास के बाद कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं हुआ जो इस मठ को शक्तिशाली बनाने में सहायक होता। इसी लिए यह अधिक प्रकाश में नहीं आ सका। १७वीं शताब्दी में आकर हरिदास भी ने इसकी पुनः प्राक्प्रतिष्ठ की इसके कर्तृत्व इतने संभव में कई उल्लेखों के महात्मा अरब हुए। इनमें हरिदास भी के अतिरिक्त निपट निरंजन, दुर्गा लाल, सेनादास, रामदास आदि कई प्रचारक विशेष उल्लेखनीय हैं। हरिदासकी ने बहुत से पद लिखे थे। उनका संग्रह हरिपुरबी की बाड़ी के नाम से किया गया है। निपटनिरंजनकी की भी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं एक का नाम शंकरकी और दूसरे का नाम निरंजन संग्रह है। निरंजनी मगवानदास ने भी कई ग्रंथ लिखे थे जिनमें मठहरिदासक, प्रेमदासक, अमृतदास, गीता, महत्त्व आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इसी संभवतः के दुर्गा नामक संग्रह में दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था। उन्होंने बहुत ही रचनाएँ लिखी थी जिनमें से अधिकांश उपलब्ध नहीं हैं।<sup>४</sup> इस सम्प्रदाय के उपर्युक्त तथा अन्य सतों की रचनाओं की खोज करने की आवश्यकता है। उपलब्ध रचनाओं के आधार पर डा० ब्रह्मदास ने अपने एक निबंध में और अपनी निर्गुण स्कूल प्रोफेसर् हिंदी पोस्ट्री नामक पुस्तक में तथा पं० परशुराम अहिरजी ने अपनी उर्ध्वी भारत की संग्रह परम्परा में इनकी विचारधारा का संक्षिप्त संकेत किया है। निरंजनी वाहु इतनीगिक साधना को विशेष महत्त्व देते थे। उनका विश्वास था कि निरंजन के दर्शन अक्षरम में ही हो सकते हैं। इसके लिए तापक को अपनी शक्ति अर्पण करनी होती है। कुंडलानी शक्ति प्राप्त करके सुमुखा मार्ग में प्रवृत्त की जाती है। इस सुमुखा मार्ग विधि से ब्रह्मज्ञान करते हैं, ये प्रवेश

<sup>१</sup> नाथ सम्प्रदाय—डा० इन्दरीमप्रसाद शिबेरी पृ० १०-११ इलाहाबाद १९२०

<sup>२</sup> परशुराम अहिरजी—उर्ध्वी भारत की संग्रह परम्परा पृ० ३९०

<sup>३</sup> निगुण स्कूल का हिन्दी पोस्ट्री—डा० ब्रह्मदास प्रोफेसर् पृ० २-३।

<sup>४</sup> इन सब के लिए देखिए उर्ध्वी भारत की संग्रह परम्परा—परशुराम अहिरजी पृ० ३९२

करके ही साधक की साधना सफल हो सकती है। वह तभी शून्य मंडल में अमृत रस का पान कर सकता है। इस मत में नाम स्मरण को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। वह नाम स्मरण को आत्मा और परमात्मा से मिलाने वाली होती मानते हैं। निरंजन पंथ में नामपंथ के साथ ही त्रिकुटी साधना की मूठ प्रतियोगिता की गई है। इसमें सृष्टि मन तथा स्वास-निश्वास को एक साथ निबोधित करना पड़ता है। साधना के इस पंथ में सफ़लता प्राप्त करने के लिए साधक को अन्नपानाद्य करना चाहिए।<sup>१</sup>

निरंजन मत में माध पंथी योग साधना के साथ ही साथ सूत्री तथा मन्त्र संतों के अनुकरण पर प्रेम और विरह को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। मक्ति की दृष्टि से हम हमें वैष्णव मन्त्र यह कहते हैं। इन्होंने अपने निरंजन परमात्मा की मक्ति का निकर्षण नववा मक्ति के ढंग पर किया है—स्मरण, पादसेवन ध्यान अर्पण आदि शब्दों भी मान्य थे। ॐ के महत्त्व को वे भी स्वीकार करते थे। दार्शनिक दृष्टि से वे अद्वैतवादी वेदवादी रहे जा सकते हैं। इनकी ये सभी विशेषताएँ हमें निर्गुणियों संतों में क्यों की क्यों मिलती हैं। अतएव हमारा यह निष्कर्ष है कि निर्गुणियों कवि निरंजन मत से बहुत अधिक प्रभावित थे अनौचित्यपूर्ण नहीं है।<sup>२</sup>

### बंगाल का सहजिया वैष्णव संघदाय और उसके संत

बंगाल का वैष्णव सहजिया संघदाय बहुत प्रसिद्ध है। हिंदी साहित्य पर विशेष कर कृष्णोपासक कवियों पर इसका अमिट प्रभाव पड़ा था। हिंदी की निर्गुण कल्पनाय से भी इसका अपत्यय संबंध हुआ जा सकता है। यह संघदाय सहजिया बौद्ध संघदाय का वैष्णव रूपान्तर कहा जा सकता है। भिन्न प्रकार बौद्ध सहजिया संघदाय में प्रसा और उपाय के मिलन को ही महात्म्य की अवस्था कहा गया था उही प्रकार इस संघदाय में राधा और कृष्ण के मिलन को आनन्द की पूर्णवस्था माना गया है।<sup>३</sup> इस संघदाय के अनुयायी संत कीर्तन को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। वे लोग राधा और कृष्ण की मिलन लीलाओं की मधुरकल्पनाओं में निमग्न रहते थे। भावना और कल्पना की अतिरेकता और प्रणव भाव की मधुरता एवं साधना की गुस्ता के कारण इन संतों की बाबी में मधुर रहस्य भावना स्वतः ही प्रविष्ट हो गई। वे कृष्णोपासक मन्त्र होते हुए भी रहस्यवादी थे। रहस्यवाद के समावेश से उनकी कृष्णोपासना अतिरिक्तगीर्ण निर्गुण भावना में कुछ नोई नोई सी प्रतीत होती है। इस संघदाय के

<sup>१</sup> इन सब के लिए रेगिन्ट डा० बहन्नाथ त्रिनिगि निरंजनी संत मधुवन्दी निरन्व है— यह योग प्रसाद नामक ग्रंथ में संश्लेषित है।

<sup>२</sup> इनके लिए रेगिन्ट मल परम्परा वास्तवाम अनुबंसी पृ० ३००-३०२।

<sup>३</sup> साधुचोर रिधीमत्र कल्पम—शामपुत्र पृ० १२६ पर अक्षरगत १२७६



प्रमुख प्रचारक जयदेव विद्यापति पंजीदास जैसे महाकवि और स्व सनातन स्वरूप दामोदर तथा श्री गोस्वामी जैसे वैष्णवचार्य थे।<sup>१</sup> महाप्रभु चैतन्य<sup>२</sup> की भी लोग इसी संप्रदाय का उच्च मानते हैं। कुछ लोग इस मत के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार महाप्रभु चैतन्य ने अपना असम संप्रदाय प्रवर्तित किया था। जो भी वह निर्दिष्ट है कि चैतन्य पर इस संप्रदाय का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। मैं तो उन्हें इसी संप्रदाय का परम गुरु मानने के पक्ष में हूँ। अतएव यहाँ पर उनका भी थोड़ा सा परिचय दे देना आवश्यक समझता हूँ।

### चैतन्य स्वामी<sup>३</sup>

१५वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बंगाल महाप्रभु चैतन्य की सुभामयी वाग्-वाय में अवगाहन कर रहा था। वह अपने पुत्र के बहुत बड़े वैष्णव सुपारक थे। इनका उदय सन् १४८४ में बंगाल की विहृष्ट शाक और बौद्ध धर्म पर्यन्तों की प्रति-क्रिया के रूप में हुआ था। १५२० में वह कृष्ण कृष्ण रहते हुए समुद्र में बाहर समा-विरम्य भी हो गये थे। वरिष्ठ यह जाति के ब्राह्मण थे किन्तु फिर भी बर्द्ध-अवस्था के पक्ष विरोधी थे। यहाँ तक कि यवनों तक को शिष्य बनाने में उन्हें संकोच नहीं होता था।<sup>४</sup>

इन्होंने मक्ति और धर्म दोनों क्षेत्रों में सुधार करने की चेष्टा की थी<sup>५</sup>। मक्ति में इन्होंने सर्वप्रथम संकीर्ण की महिमा का विचार से प्रतिपादन किया था। धर्म क्षेत्र में यह अखिल मेदाभेदवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं।

इनके अनुसार ब्रह्म सगुण और लवियेय है। वह सेवाकैव्य मात्र से प्रकृत रहते हैं। अतएव श्री को भगवान् को सेवा करनी चाहिए। इन्होंने मक्ति क्षेत्र में

<sup>१</sup> ब्राह्मण्योर रिहीअन कस्त्य—उत्तिमूय्य शासुत में 'वैष्णव सङ्गिना कस्त यावा अरवाय'

<sup>२</sup> चैतन्य चरितासुत मत्तबीडा—१२वीं अध्याय और धी रेक्षि—बंग साहित्य परिषद वास्तुम २ पृ० १६२०।

<sup>३</sup> इवकी श्रीवकी धीर सिद्धान्तों के क्षिप किम्पक्षिचित प्रप देखिए—

१—वे० यम० महाचार्य—हिन्दूकस्त्य पृष्ठ सेष्ठ्य—१८६६ पृ० ४२३।

२—अहारक वैष्णवइम दीवइम क्लैस्टेड बर्द्ध थाक अहारक भाग ४ पृम १६२३ पृ० ११०।

<sup>४</sup> बुद्धिइम और हिन्दुइम भाग २ पृ० २६१ और सैस्य रिसेट १६०१ गेदह्य ६ १८२।

<sup>५</sup> इण्डइवकीपीडिना थाक रिहीअन पृष्ठ पृबिस्त भाग २ पृ० ४२२ ३३-३४

संघर्ष के साथ-साथ प्रेम को सबसे अधिक महत्त्व दिया था। इनके अनुयायी मक लोग तीन सत्रियों की कुलवीमाता धारण करते हैं और सफेद चंदन का विशेष रंग का विलक<sup>१</sup> लगाते हैं। वे अधिकतर बंगाल में ही पाये जाते हैं।

### आसाम के वैष्णव सम्प्रदाय और उसके प्रमुख सन्त

मध्ययुग में आसाम बीमल शैवशाक्त साधनाओं का केंद्र था। नरनाथपंथ राधा के सम्बन्ध में साकम्पु और भी अधिक प्रभावशाली हो गया। कहते हैं आसाम में बर कामेश्वर देवी के मन्दिर की प्रतिष्ठा की गई थी उस समय लगभग १४० मनुष्यों की बलि दी गई थी। पशु बलि को तो कुछ बर्चन ही नहीं किया जा सकता<sup>२</sup>। इन शैव-शाक्त शक्ति साधनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में आसाम में दा सुधारवादी संप्रदायों का उदय हुआ। एक का नाम महापुरिपिवा संप्रदाय था और दूसरे का बभ्रुनिवा गोठार<sup>३</sup>। ये दोनों ही संप्रदाय वैष्णव थे।

महापुरिपिवा संप्रदाय का प्रवर्तन शंकरदेव नामक वैष्णव महात्मा ने किया था। इनका मृत्युकाल १५३६ ई० माना जाता है।<sup>४</sup> इस संप्रदाय के दूसरे प्रमुख संत माधव थे जो आदि के अवस्थ थे। इस संप्रदाय के सभी अन्य प्रतिक्रियावादी और कष्ट सुधारवादी थे। इन लोगों ने एक बार ता कटिवादी शास्त्र धर्म की बर्च-व्यवस्था, मूर्तिपूजा बलि आदि पर कुत्रापत्त किया और<sup>५</sup> दूसरी ओर शैव शाक्त साधनाओं के प्रति विरोध भी किया। उनके इस प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया के रूप में शास्त्रों ने एक अलग वैष्णव संप्रदाय की प्रतिक्रिया की। इसका नाम बभ्रुनिवा गोठार<sup>६</sup> संप्रदाय था। इसके मूल प्रवर्तक हरिदेव, गानात्तरेव, दामोदर देव नामक महात्मा थे।<sup>७</sup>

आसाम में एक तीसरा सुधारवादी संप्रदाय भी था इसका नाम मोठारिया था। इसके संबंध में कुछ अपिक नहीं बात है। इसका उदय भी शास्त्र धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इसे हम हिन्दू धर्म और शक्ति धर्म का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इस संप्रदाय के लोग भी बर्च-व्यवस्था में विरोध नहीं करते।<sup>८</sup> हिन्दी की निर्गुण

<sup>१</sup> मंडारकर—कलेक्ट्रेट बर्न आर मंडारकर भाग ४ में वैश्वरूपा और शैवरूपा ६० १२१ १२२।

<sup>२</sup> इन्दाइन्तोनीपिवा आर रिबीजन एन्ड एबिस्य भाग २ पृ० १३६।

<sup>३</sup> बदी भाग २ पृ० १३६।

<sup>४</sup> हिन्दूधर्म एन्ड बुद्धिभा भाग २ अध्याय आठवाँ दृष्टिकट—अनुसू १६२४ पृ० २६०।

<sup>५</sup> इन्दाइन्तोनीपिवा आर रिबीजन एन्ड एबिस्य भाग २ पृ० १३६।

<sup>६</sup> हिन्दूधर्म एन्ड बुद्धिभा भाग २ अध्याय दृष्टिकट अनुसू १६२४

अम्यभार के संतों को आशाम के इन वैभव सम्प्रदायों से अत्यन्त मोड़ी बहुत प्रेरणा मिली होगी।

### मानमाव अर्थात् महानुभाव वैष्णव सम्प्रदाय

यह भी एक सुभारवादी वैष्णव सम्प्रदाय है। इसका प्रचार अखिलेश्वर उशीवा तथा बरार आदि संतों में है।<sup>१</sup> इसका प्रवर्तन किसी कन्नड नामक ब्राह्मण ने १२वीं शताब्दी के आस-पास किया था। उसके स्ववर्षित कर्मचारिण और प्रचारित करने का भेष नागमह नामक आचार्य को दिया जाता है।<sup>२</sup> इनका स्थिति काल १२२६ से लेकर १३०२ ई० तक माना जाता है। इस सम्प्रदाय के अनुपासिकों की दो शाखा हैं एक बैरागी और दूसरे परवाठी, बर्दान्तम धर्म तथा बाह्यबाधों के यह विरोधी थे।<sup>३</sup> ये लोग दत्तात्रेय को ही अपना प्रमुख उपास्य मानते हैं। यनों को बलाने की प्रथा भी इनमें नहीं है। वह लोग अखिलेश्वर अपने यनों को गाढ़ते हैं और समाधि बनाते हैं। इस सम्प्रदाय के बैरागी लोग अकेले अपने पहनते हैं। गले में तुलसी की माला धारण किये रहते हैं और कामों में कृच्छ्र पहनते हैं। अपनी इत वेष्ट-मूषा के अरख में अम्य वायु संतों में अलग पहचान लिये जाते हैं। इन संतों की बहुत सी बानिषाँ मौखिक रूप में भी प्रचलित हैं। उन बानिषों को यदि स्थान से हुना जाय तो उनमें निर्गुण विचारभार के बीज दृश्य मिलेंगे।

### दत्तात्रेय का अवधूत सम्प्रदाय

मध्ययुग में दत्तात्रेय की अवधूत सम्प्रदाय का भी अच्छा प्रचार था। जनप्रति है कि चौदहवीं शताब्दी में किसी नर शिव नामक ब्राह्मण संन्यासी ने इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था। नर शिव के शिष्य गंगाधर तरहली ने 'शुभ धरित' नामक एक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में दत्तात्रेय के जीवनवृत्त और सिद्धान्तों का उत्कृष्ट किता मया है। दत्तात्रेय के संबंध में जोड़ी-बहुत बातों का पता हमें पुण्यों से लगता है। ब्रह्मपुराण<sup>४</sup> में लिखा है कि वैदिक धर्म के हाथ होने पर मगन्नात् विष्णु ने दत्तात्रेय का अकारण कारण करके उतकी पुनर्प्रतिष्ठा की थी। हरिबंश पुराण<sup>५</sup> और अहिर्बुध्न्य उदिता में उन्हें विष्णु के अवस्थितवर्षे विष्णु में से एक कहा गया है। भागवत में उन्हें

<sup>१</sup> हेल्सिङ्ग इन साइन्सकोपीरिया काक रिचीजन एरद एमित्त भाग २ पृ० २०७

<sup>२</sup> गार्डेनर काक ही हैरतानाद एरद एकाइड डिप्रिन्सिपल कामन्सों काक बरार सन् १८००

<sup>३</sup> सेनप्रत रिबोर्टस काई ६० जे० डिप्ट १८८२ और एरद हेस्रिन्स १८२१ पृ० ६०

<sup>४</sup> ब्रह्मपुराण २११ १०९ ११०

<sup>५</sup> हरिबंश पुराण १ २८

बेदीनाप कहा गया है। मार्क्सवैय पुराण में भी<sup>१</sup> इनकी महिमा का बर्णन किया गया है। उसमें उन्हें निर्दिष्टार, निर्दिशन, अक्षयूत और परमहंस कहाया गया है। नैराक्षर ने इनके अद्वैतवादी संत कहा है। इनके लिये हुए दो ग्रंथ कहाये जाते हैं— बीबनसुक्ति गीता और अक्षयूत गीता। एक अक्षयूत नामक अन्य ग्रंथ भी इनका लिखा हुआ कहाया गया है। इस सम्प्रदाय में एक ग्रंथ की और बहुत अधिक साम्यता है अथवा नाम है 'अद्वैत भुविचार।' इसके लेखक के संबंध में कोई निश्चित मत नहीं है। कुछ लोगों की धारणा है कि इसके लेखक भी वसुदेव ही थे। इस ग्रंथ में इस सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। इनके इस दार्शनिक मत में अद्वैतवाद के सिद्धांत को विशेष साम्यता दी गई है। साधना क्षेत्र में यह लोग योग को महत्त्व देते हैं। हमारी अरनी दृष्ट धारणा है कि इस सम्प्रदाय में भी हिंदी की निर्गुण अभ्युत्थान को प्रेरणा प्रदान की थी। योग साधना और अद्वैतवाद इसके ये दोनों ही प्रमुख तत्त्व संतों की विचारधारा में प्राबल्य से प्रतिष्ठित मिलते हैं।

### काश्मीरी सुन्तों की परम्परा

११वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी के बीच में काश्मीर में अनेक यहाँ के संतों की बानियों से गूँझा रहा है। मध्यकालीन काश्मीरी संतों में सबसे अधिक उपाधि प्राप्तदेव की है। यह जाति की मंगिन थी किंतु इसके आचार-विचार बहुत ऊँचे थे। उनका बहुत ही बानियाँ अभी तक उल्लेख हैं। उनका एक संग्रह काश्मीर से प्रकटित हो चुका है। प्राप्तदेव का सियनिकात् संवत् १५३० के लेकर १५४४ तक के आठपाठ माना जाता है। प्राप्तदेव की बानियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट पता लगता है कि वे भी किसी प्रतिष्ठापारी संत सम्प्रदाय की ही अभिनेत्री थी। साधना क्षेत्र में योग के महत्त्व को वह भी स्वीकार करती थी। मध्यकालीन योगियों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। डा०<sup>२</sup> प्रियर्सन के इस मत में कि प्राप्तदेव की बानियों का स्पष्ट प्रभाव कबीर पर दिखाई देता है बहुत, कुछ गार है। कई आश्चर्य नहीं कि कबीर आदि निर्गुणियों संतों को उनसे प्रेरणा मिली हो वह उनकी पूर्ववर्ती थी ही।

### नालबेगी अथवा अलखपारी सम्प्रदाय।

१ इस सम्प्रदाय के लोग अधिकतर भारत के परिष्कार भाग में ही पाये जाते हैं इतना प्रचार अधिकतर मंगी और पनारों में ही मिलता है। इस सम्प्रदाय के कुछ

<sup>१</sup> मार्क्सवैय पुराण १८ अध्याय

<sup>२</sup> नैराक्षर अरि १११४

<sup>३</sup> वही

अनुपायी अपने को साक्षेगी करते हैं और कुछ अज्ञानवादी। वे सम्प्रदाय भी सुधारवादी और प्रतिक्रियावादी ही हैं। बर्तमान व्यवस्था और राजकारणों के प्रति इन्होंने सर्वत्र उपेक्षाभाव प्रकट किया है। इस सम्प्रदाय के सतों की बानियाँ अधिकतर मौखिक रूप में ही प्रचलित हैं। इनका एक संग्रह तैयार करने की बड़ी आवश्यकता है।

### बाल्मीकि सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का प्रचार भारत के अहिंसियों और भेदसिद्धों में है। यह लोग रामायण के रचयिता बाल्मीकि को ही अपना उपास्यमानते हैं और सदाचार्य को अपनी साधना में विशेष महत्त्व देते हैं। इस सम्प्रदाय के भी बहुत से संत इपर-उपर मिलते हैं। इनमें भी निर्गुणवादिनी के ढंग की बातियाँ का प्रचार है।

### पंचपरिया सम्प्रदाय

माछ के बीच बालि के हिंदू और मुसलमानों में इसका प्रचारण रूप से प्रचार है। कुछ लोग इससे संबंध साक्षेगी सम्प्रदाय से भी स्थापित करते हैं। किंतु इस सम्प्रदाय वालों से पूछने पर ऐसा पता चलता है कि साक्षेगी सम्प्रदायोंसे इसका कोई विशेष संबंध नहीं है। इसमें पीर बहोर और कबी मियाँ की बड़ी प्रतिष्ठा है।

### विदेशी संत सम्प्रदाय

#### सूफ़ी संत सम्प्रदाय

विदेशी संत सम्प्रदाय में सूफ़ी संतों का प्रभाव माना जाता है। सूफ़ी संतों का उदय पहली शताब्दी हिजरी के आरंभ से ही हो चला था। बहुत से लोग तो उन्हीं माचीनता सिद्ध करने के लिए मोहम्मद छाहल तक को सूफ़ी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।<sup>१</sup> दूसरे लोग इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके मतानुसार सबसे पहला सूफ़ी कृष्ण का आचर्यादिम था।<sup>२</sup> जो भी हो यह स्वीकार किये बिना नहीं रहा कि संतों का उदय इस्लाम के उदय के बोड़े दिनों बाद ही उसकी वैधानिक कल्पना की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। सूफ़ी संतों का इतिहास प्रायः चार भाग में बाँटा जाता है।

१—आदि युग। २—पूर्व मध्ययुग। ३—उत्तर मध्ययुग। ४—आधुनिकयुग।

१—आदि युग—इस युग के सूफ़ी अधिकतर उपास्यवैरी, तरल स्वरूप आह्वानविहीन कबीर थे। लोग वैधव्य और संन्यास को विशेष महत्त्व देते थे और

<sup>१</sup> देखिये सिद्ध ध्याक इस्लाम कबीर पत्री पृ० ३२० ११००

<sup>२</sup> इन्क़ुसत ध्याक इस्लाम ध्यान इतिहास कर्त्तार सूफ़ी इम्म बाबा अन्वय।

साय ही साय भार्मिक कृषि के पालन में भी विश्वास करते थे। इस युग के कृषि में इस्लामी अथवा कुदयाल उबिवा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

२—पूर्व मध्ययुग—नवीं शताब्दी के प्रारंभ होते ही पूर्व मध्ययुग का उदय हुआ। कृषि में कुछ नये परिवर्तन दिखाई दिये। उनमें भाषात्मक पित्त का उभावैद्य हुआ। कुल्लेमान उदयनी भूत भूत आदि इस युग के प्रसिद्ध कृषि कहे गये हैं। इस युग के अन्तिम परग में विश्वप्रसिद्ध कृषि मंथर इस्लाम हुए थे जिन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों के लिए कृषि पर चढ़ा दिया गया था। प्रसिद्ध दार्शनिक अलगाववाली को भी इस युग का रक्त माना जाता है। यह पहले दार्शनिक थे जिन्होंने इस्लाम का कृषि मंत्र से सामंभस्य स्थापित करने की चेष्टा की थी।

३—उत्तर मध्ययुग—यह युग अपनी मधुर रक्तमयी कृषि काव्य भाग के लिए प्रसिद्ध है। अरब के प्रसिद्ध कृषि महाकवि शेखतादी, अरब और बलाशुदीन कमी इसी युग में हुए थे। इनकी कोमल कल्पना और मधुर भावना से इमाम हिंदी साहित्य अत्यधिक प्रभावित है। जायसी आदि कवियों ने इनका पूरा-पूरा अनुपमन किया था।

४—आधुनिक युग—वर्तमान युग कृषि विचार भाग के पतन का युग है। आधुनिक यह शब्द स्वर्ग के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। बहुत से कवि लोग अपनी गृह्यारी कविता का श्रेय कृषि कवियों के शिर पर ही मढ़ दिया करते हैं।

हिंदी की निर्गुण काव्यभाषा पर अपिच्छर प्रथम हो युगों में कृषियों का प्रभाव पड़ा था। प्रथम हो युग के कृषि भी कई सम्प्रदाय में विभक्त थे। उनमें से चार सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध हैं—चिस्त्रिया, मुहम्मदिया, अदिरिया और मस्खदिया। इन चारों सम्प्रदायों का उदय तो भारत के बाहर ही हुआ था। किन्तु इनका प्रचाररमण भारत ही था।

### चिस्त्रिया सम्प्रदाय<sup>१</sup>

मालखर्प में इस सम्प्रदाय का प्रचार मुघलाबादुरनशरीन चिल्ली में किया था। ये चिस्त्रान के निवासी थे और माल में मोहम्मदगोरी की सेना के साथ चले आये थे। माल में उन्होंने अकमेर को अपना मन्त्रालय बनाया था। अकमेर में इनकी समाधि अब भी बनी हुई है। जो कुल्लेमानों का अब भी तीर्थस्थल है। इस सम्प्रदाय के काव्य शैली में कुतुबअलदीन बलत्पार, शेख अलगाववाली, शेखअलीउशीर और

<sup>१</sup> इन सम्प्रदायों का अन्वेषण अन्वेषित प्रलेखों में है।

१—इन आधुनिकीयों का एक रिकॉर्डम पृष्ठ कृषि भाग १२ पृ० १२

निवासीय शैलीका विशेष उल्लेखनीय है। वे सभी संत गिरिह निलम्ब और उपस्वीये। पहले हैं जब अस्तमश ने ख्याता कुतुबुद्दीन बख्तियार को शैलअल्लाहस्ताम की पदवी देनी चाही तो उसने उसे अस्वीकार कर दिया। इन संतों का शिष्टुओं पर बहुत बड़ा प्रभाव था। समाज में इनकी प्रतिष्ठा थी।

**सुहरावर्दिया सम्प्रदाय<sup>१</sup>**—इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सर्वप्रथम प्रचार शिवालयअलदीन घोहरावर्दी ने जो इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे स्वयं ही किया था। उन्होंने विश्व प्रदेश को अपना केन्द्र बनाया था। इसी सम्प्रदाय के एक वृत्त संत ने बिरका नाम बलाल अलदीन तथैबी था, बंगाल में इत मठ का प्रचार किया। इसी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत अहाउद्दीन अकबरिया मुल्तान में जाकर बसे थे। उन्होंने यही पर अपने मठ का प्रचार किया था। इस सम्प्रदाय के प्रचार में बलालुद्दीन मुल्तानीय बलालाह अहमद कबीर आदि संतों ने भी पूर-पूर योग दिया था।

**कादिरिया सम्प्रदाय<sup>२</sup>**—युक्तियों के इस सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्तक कब-बाब निवासी शेख अम्मुल-कदिर बिलानी माने जाते हैं। यह उम्बेदे के विद्वान और उफ्त बन्दा थे। शाहबादा दारुल-उलूम की युक्तियों के इसी सम्प्रदाय का अनुयायी था। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रचार सैयद मोहम्मद नामक संत ने किया था। अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि कदिर बिलानी भारत में स्वयं नहीं आये थे। भारत में उनकी समाधि उनके शिष्य को दफना कर बनाई गई थी। इस सम्प्रदाय का प्रचार बंगाल और बिहार में भी हुआ था।

**मकसुबर्दिया सम्प्रदाय<sup>३</sup>**—इस सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्तक अनाबवाहारीन मकसुबर्द माने जाते हैं। यह अफ़्ग़ानिस्तान के निवासी थे। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के वृत्त सबसे प्रसिद्ध संत अहमद फारुकी सहीदी थे। मुसलमानों में यह बहुत बड़े बर्ग-मुबारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस सम्प्रदाय के प्रचार केन्द्र विशेषरूप से अरबी और पंजाब ही थे। इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त महारिया, अरमिया आदि कुछ छोटे-छोटे इसी सम्प्रदाय की प्रवर्तित किये गये थे। इन सम्प्रदायों में केवल दार्शनिक दृष्टि से-मात्र था। शेष बातों में वे एक वृत्त से बहुत साम्य रखते थे। इन सभी का लक्ष्य मात्र में इस्लाम और इसी मठ का प्रचार प्रमा था। इसके लिए वे विविध प्रकार के समुदायों का प्रयोग करते थे। यथाथा मुस्लिम विस्ती के संबंध में प्रसिद्ध है

<sup>१</sup> इन्साईक्लोपीडिया आफ़ रिबोअन एण्ड एथिअल भाग १२ पृ० १० १२

<sup>२</sup> यही उपरोक्त।

<sup>३</sup> इन अफ़्ग़ानोपीडिया आफ़ एण्ड एथिअल भाग १२ पृ० १० १२

कि मदीना की तीर्थयात्रा के अन्तर पर पैगंबर ने उन्हें स्थान में मारत में इस्लाम के स्वर की आवाज दी थी। उसने इस आवाज का अन्तरण पालन किया था। कहते हैं उसने दिल्ली से अजमेर जाते हुए रात ही हिंदुओं को मुसलमान बना लिया था। एक बृहत् संत के संबंध में बिनअर नाम मल्लभूषणहानियाँ था, कहा जाता है कि उन्होंने पंजाब की बहुत-सी हिंदू जातियों को इस्लाम में परिवर्तित कर लिया था। कुछ सूफी लोग अपने धर्म के प्रचार के लिए अम्प्यरों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार के संतों में बलाशुदीन तबरीजी, हसनबीर अलदीन हमामशाह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कहते हैं तबरीजी<sup>१</sup> ने एक लाले को बेवला उसकी ओर दृष्टिपात करने ही अपने धर्म में परिवर्तित कर लिया था और अलदीन<sup>२</sup> के संबंध में एक बड़ी विचित्र कथा प्रकथित है। कहते हैं एक बार जब वह बीमार पड़ा तो उपचार के लिए उसने एक हिंदू वैद्य को बुलाने की चेष्टा की। हिंदू वैद्य ने इस दर से कि कहीं उसके दृष्टि विक्षेपणमात्र से वह मुसलमान न बन जाय, उसके घर जाना अस्वीकार कर दिया उसके उसने मूत्र और पुण्य देखकर उपचार करने का निश्चय कहा दिया। उसके दिग्ग वैद्य के पाठ उत्तर मूत्र और पुण्य से था। ब्योड़ी वैद्य ने परीक्षा करनी प्रारम्भ की तब ही उसके हृदय में मुसलमान होने की इच्छा जागृत हो गई और उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इसी तरह से गुजरात में एक संत ने बिनअर नाम हमामशाह या अनादृष्टिकता में दृष्टि करके संतों को मुसलमान बना लिया था।<sup>३</sup>

इन सूफी संतों में पूर्व में बड़ी प्रगति पाई जाती थी। संमत् के निवाँ इलीम के सम्बन्ध में कहते हैं। कि वह लगभग १० वर्ष तक अमराहा और संमत् के उजाड़ लयक में मूमेते रहे थे। सब होते हुए भी वे लोग तास्वी साधक थे। विविध प्रकार के यम नियमों का पालन करते थे। पराउनी ने<sup>४</sup> रोम बुद्धान के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने लगभग ५० वर्ष तक मांठ आदि का खाना छोड़कर बड़ा तालिक जीवन शरीर किया था। इन संतों में भावना की इतनी अतिरेकता पाई जाती थी कि हाल की हालत में वे सोम दुःख से दुर्बल होने पर भी वे उमत् होकर मुनषों के लच्छ मानने-जाने लागत थे। अकरगंज नामक सूफी संत के विषय में अब्दुल कदुम<sup>५</sup> ने लिखा है कि अपनी गृहवस्था में जबकि वह अठ-बीठ भी नहीं उठता था, माबावेर में जाने पर मुनषों के लच्छ मानने-करने लगता था।

<sup>१</sup> इल्गाहूकोतोहिया आक रिमोत्रक पच्छ जयिस्व भाग ११ पृ० ११

<sup>२</sup> बदी

<sup>३</sup> बदी

<sup>४</sup> बदी पृ० ७०

<sup>५</sup> आहने अकबरी जेदेर का अंगरेजी अनुवाद—भाग ३ पृ० ३१८



अब हम इन सूखी की विशेषताओं के प्रकाश में निर्माथिर्वा सन्तों का अध्ययन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इस मर में परिवर्तित इत मध्यवर्गीय विदेशी सन्त-परम्परा के उन पर क्रियत्प्रक और प्रतिक्रियत्प्रक बहुत से प्रभाव पड़े थे। सुकियों के सन्त कवियों पर पड़े हुए दार्शनिक प्रभावों का विश्लेषण हमें दार्शनिक साध्य केवल इतना ही दिखाएगा या कि सूखी सन्तों ने भी निर्गुणिर्वा सन्तों की योड़ी बहुत प्रेरणाएँ प्रदान की थी।

## इसाई सन्त

कुछ इसाई विद्वानों की धारणा है कि मध्यकालीन निर्गुणिर्वा सन्तों के प्रसर्तक आचार्य रामानन्द<sup>१</sup> इसाई सन्तों से भी प्रभावित हुए थे। अपने मत की पुष्टि में वे भाष्य में इसाईयों के आगमन के इतिहास का विश्लेषण करते हैं। इनका कहना है कि इसाई धर्म-प्रचारक सन्तों का सबसे पहला कार्य पृथ्वी राज्यादी ई० में मालबार तट पर आया था<sup>२</sup>। छठी शताब्दी में भी इरिण्ड के कल्पान नामक स्थान पर इसाई पुरोहित के होने का प्रमाण मिलता है। सातवीं शताब्दी के प्रथम अर्ध में कर्नाटक के प्रसिद्ध महाशय शक्तिवित्त के दरबार में कुछ इसाई धर्म-प्रचारकों के बिनके नेता एलोपेन नामक कोई महाशय वे आने के विवरण मिले हैं। दक्षिण<sup>३</sup> १४५५ के लेखक ने अपने इतिहास ग्रन्थ में लिखा है कि उसे अपनी भाषा में स्थान-स्थान पर हिन्दू कृषि निवासीजनसमुसलमान आदि विविध धर्मों के लोग मिलते थे<sup>४</sup>। १५८० में अहमद के दरबार में भी कुछ इसाई धर्म-प्रचारक आये हुए थे। उसके समय में आगरा, दिल्ली और लाहौर आदि नगरों में इन लोगों ने गिराफर भी बना लिये थे<sup>५</sup>। दिल्ली का गिराफर मस्जिद-आह का अहमद<sup>६</sup>, के समय तक वर्तमान था। इन आचार्यों पर वे कहते हैं कि इसाई धर्म के प्रचारक सन्त भाष्य में निर्गुणिर्वा सन्तों से पहले भी वर्तमान थे और उन्होंने हिन्दू सन्तों को प्रभावित भी किया था। हो सकता है कि कुछ सन्तों को इनसे भी धार्मिक और सामाजिक सुधार की प्रेरणा मिली हो, किन्तु वह प्रेरणा मात्र भर की ही का सफ़्टी है। हम यह स्वीकार करने को प्रसन्न नहीं हैं कि निर्गुणिर्वा सन्तों पर इसाई मत के सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा था।

<sup>१</sup> इत्याहसोनाहिया धाक रिबीज्व पृष्ठ पृथिव्य भाग १ पृ० २४८

<sup>२</sup> यही

<sup>३</sup> बनेकत—दक्षिणत—ठुपार्ई २ १८८० ई०

<sup>४</sup> इतिहास—होपर शी—२० २१२।

<sup>५</sup> इ हिम इकाही—राम चौधरी—पृ० १०० २१२, १४४१।

## देशी और विदेशी धर्म सम्प्रदायों के मिश्रण से बने हुए मध्यकालीन संत सम्प्रदाय

### बाठल संत और उनकी विचारधारा

मध्यकालीन संत सम्प्रदायों में बाठल<sup>१</sup> सम्प्रदाय एक विशेष महत्त्व रखता है। इस संत के संतों ने कुछ उत्तरकालीन निर्गुणियों संतों को क्रियात्मक प्रेरणार्थक अक्षर्य प्रदान की होमी क्योंकि दोनों की विचारधाराओं में बहुत साम्य दिखाई पड़ता है।

बाठल शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से बताई जाती है। कुछ लोग इसे संस्कृत शब्द 'बाठल' का अपभ्रंश रूप मानते हैं। कुछ दूसरे विद्वानों के अनुसार यह श्वाकृत शब्द का रूपान्तर है। कुछ अरबी और फारसी के विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति अरबी के शौल शब्द से ठिक करने की चेष्टा की है<sup>२</sup>। जो भी हो चाहे यह संस्कृत से निकला हो वा अरबी से किन्तु इसके मूलिक अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। दोनों ही दृष्टि से इसका अर्थ हम ईश्वरोन्मत्त के सन्तों हैं। बाठल में ईश्वरोन्मत्तता इस सम्प्रदाय की प्राथम्य विशेषता है।

बाठल संत शर्मबलवादी गुणारक संतों के वा सन्तों हैं। क्योंकि इनका संत दाय बीर और वैश्वय सहबिषा एही वेदांत और कुछ अन्य विचारधाराओं के मिश्रण से बना हुआ प्रतीत होता है। ये लोग मूलतः प्रेमवादी संत थे। भगवद्गोप में भाव विमोह होकर अरमत्त मूल बाना उनकी सामान्य विशेषता थी<sup>३</sup>। उक्त भावविमोह अक्षर्य में वे एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति करते थे। आनन्द ही उनका सर्वस्व था। उनकी वाचना का लक्ष्य भी यही होता था। वे किसी भी प्रकार के विधि विधानों में विश्वास नहीं करते थे। वह बात बाठल<sup>४</sup> संत नरहरि कवि के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट है—<sup>५</sup> "हे माई यही कारण है कि मैं प्रेमोन्मत्त बाठल बन गया। मैं किसी भी स्वामी का शासन स्वीकार नहीं करता। किसी की आज्ञा मुझे मान्य नहीं है। धार्मिक नियम और प्रथाएँ मुझे बाँध नहीं पाती। मानव द्वारा प्रबोधित मनुष्यों में मुझे विश्वास नहीं है। मैं हृदय से उद्भूत होनेवाले प्रेम में ही तन्मग्न रहता हूँ। उषी में ही मुझे रस मिलता है। इस प्रेम में कभी विभोग नहीं होता। वह विगुहाग-

<sup>१</sup> प्रथम कुमार सेन ने बिरिज बर्म संगीत में कुछ बाठलों के गीत भी दिये हैं।

<sup>२</sup> आचमलपुर रितीकृत कस्तुरी—संघिमूर्त्यशास पुस्तक १० १८४ कडकण्य ११४६।

<sup>३</sup> मेदिनी मिथ्याविम्व—मन—१० २०८ अक्षर्य ११२१।

<sup>४</sup> आचमल रितीकृत सेन ने धरने महरिप मिथ्याविम्व नामक ग्रंथ में १० ३०२ पर इस गीत का संश्लेषी अनुवाद दिया है। हमने उषी को अनुवादित किया है।

मय है। इस मिलन की प्रवस्था में मैं गाता और नाचता हुआ आनन्द-विमल रहता हूँ।”

बाठल संत बाबाबम्बर और धार्मिक पारखों के विरोधी थे। मंदिर और मठबिद् में उन्हें आस्था न थी। उनकी दृष्टि में मानव-शरीर ही सबसे बड़ा मंदिर और उसमें स्थित पुरुष ही सबसे बड़ा उपास्य<sup>१</sup> देवता है।

। वाचना की दृष्टि से बाठल संत एक प्रकार के योगी कहे जा सकते हैं। उनका लक्ष्य अपने हृदयस्थ पुरुष से अपनी आत्मा का मुदाय स्थापित करना था। इसके लिए वे अन्तर्मुक्ती वाचना बिसे वे अट्टी पाल करते थे ठही का आनय छेते थे।<sup>२</sup> इन संतों को हम रावयोगी ही मानने के पक्ष में हैं क्योंकि उन्होंने भाव या प्रेम की ही हृदयस्थ परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र साधन बतलाया है।<sup>३</sup>

सुक्तिों के सद्य बाठल संत भी धार्मिक प्रेम का ईश्वरीय प्रेम का सोपान मानते थे।<sup>४</sup> इहीलिए वे धार्मिक प्रेम का प्रतीक रूप की ओर आदर् और महा की दृष्टि से देखते थे। उनका कहना था कि की का महत्त्व अग्निशिक्षा के सद्य प्रत्यक्ष जीवन को सुखमय बनाती है और वृषी और ठही के सद्य वह ज्ञानस्फोर्ति मी विस्फूर्त्त करती है। फही स्वरूप को वे विग्रह करते थे और वृत्ते को आम्ह।<sup>५</sup>

सिद्धों के सद्य बाठल संत भी शय्यवादी होते थे। किन्तु उनका शय्य सर्वथ दृष्टिकोष निषेधात्मक नहीं था। उनका शय्य सहसार में स्थित स्फोर्तिप्रसन्न का वाचक होता था। सहबिषा बीद्धों के सहज शय्य का प्रयोग मी इन संतों ने अही के टंग पर प्रस के धर्म में किया है। इस दृष्टि से हमें उन्हें सहबिषा बीद्धों से प्रभावित मी कह सकते हैं। बाठल में बाठल मठ वह प्रमाण बिलको सहबिषा बीद्ध सहबिषा कै-यव तथा सुद्धी विचारधारद्धों की विवेकी ने पालन किया था। बाठल विचारधार इन तीनों के सिद्धांतों को लेकर विच्छिन्न हुई प्रतीत होती है।<sup>६</sup>

<sup>१</sup> मेदिनीक मिस्त्रीसिम्ह सेन पृ २१० अंश १।

<sup>२</sup> बाठलों को अट्टी पाल का धर्म वास्तुस्थ ने योगिक न खेकर सहजासुख की ओर ज्ञान किया है। मैं उससे सहमत नहीं हूँ क्योंकि संतों में यह प्रायः योगिक धर्म में ही प्रयुक्त हुआ।

<sup>३</sup> मेदिनीक मिस्त्रीसिम्ह सेन पृ० २०६।

<sup>४</sup> वही पृ २२२

<sup>५</sup> वही पृ० २२०।

<sup>६</sup> धार्मिक विधिमोहन सेन ने कबीर, बाद् धार्मि पर हमका बहुत बड़ा प्रभाव लिखा है मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ क्योंकि मेरी धारणा है कि इस मत का उदय होने की ओर के बाद हुआ था। हमका उक्त(मठवाक्य के किरी भी प्रप में नहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

धर्म मत—इस्लाम, हिन्दू तथा बौद्ध धर्मों के पारस्परिक सम्बन्ध<sup>१</sup> से बने हुए मतों में परिष्करी बहला का धर्म मत विशेष उल्लेखनीय है। इस मत का उदय कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसके मूल प्रवर्तक के विषय में भी हमें कुछ बात नहीं है। हमारा अनुमान है कि इस मत का उदय १४वीं शताब्दी में हुआ था। इस अनुमान का आधार हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्मों के सम्बन्ध की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति का उदय १२वीं शताब्दी में ही हो चला<sup>२</sup> या अथवा इस प्रवृत्ति के पापक परमेश्वर का जन्मफल हम सरलता से १४वीं शताब्दी निश्चित कर सकते हैं।

इस मत के प्रवर्तक उन्हें परिचित माने जाते हैं। उनके द्वारा लिखा गया ग्रन्थ पुराण नामक ग्रन्थ इस मत का धर्म ग्रन्थ माना जाता है।

इस धर्म के सबसे अधिक उपास्य देवता धर्मठाकुर माने जाते हैं। इन धर्मठाकुर की कुछ अपनी अलग विशेषताएँ हैं जो इस प्रश्न निर्देशित की जा सकती हैं—  
१—वह शून्य रूप है।<sup>३</sup> २—निर्बन्ध है।<sup>४</sup> ३—देवादिदेव है।<sup>५</sup> ४—उपास्य ऐसे पुरुषों से विशिष्ट है जिनके आधार पर कुछ सात दण्ड हैं, कुछ विष्णु तथा उनके अवतार राम और कुछ उन्हें पानी बुझ और एकरर इस्लाम का प्रतिरूप मानते हैं। यह एक विधि-विधान प्रधान पौराणिक ढंग का मत है। इस मतवालों का हिन्दू धर्म से विशेष सा संबंध है। इस्लाम के ये प्रवर्तक हैं। इनके धर्म ग्रंथों में किसी उलूक नामक महापुरुष की बड़ी महिमा वर्णित की गई है। इस आधार पर हमारी धारणा है कि इसका प्रवर्तन किसी उलूक दर्रा के परिचित ने किया होगा। उलूक दर्रा लोचन दर्रा का दूसरा नाम है। हाँ उलूक है इसकी प्रतिष्ठा लोचन दर्रा के प्रतिष्ठा और पुरुष के बौद्ध प्रतिरूप महा और उपास्य के आधार पर की गई हो। धारणा यह है कि धर्म ग्रंथ उलूक है उनमें पौराणिक अधिष्ठान हैं और दार्शनिक रूप।

<sup>१</sup> आचार्य चित्तमोहन सन ने कबीर शत्रु धारि पर इनका बहुत बड़ा प्रभाव दिखाया है मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ क्योंकि मरी धारणा है कि इस मत का उदय इन लोगों के बाद हुआ था। इनका उलूक मन्त्राद्य के किसी भी ग्रंथ में नहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

<sup>२</sup> आचार्य चित्तमोहन सन—पृष्ठ ३०० बी० राम गुप्त इतिवृत्त २३८ ३३८।

<sup>३</sup> श्री श्रीन इत्यादि धार चित्तमोहन आचार्य अथवा १३४१ कलकत्ता इतिवृत्त प्रथम अथवा १।

<sup>४</sup> आचार्य चित्तमोहन सन—पृष्ठ ३०० बी० राम गुप्त २० ३२६, ३०३२ कलकत्ता।

<sup>५</sup> बंदी पृ० ३२१

<sup>६</sup> बंदी पृ० ३२२

<sup>७</sup> बंदी पृ० ३२६, ३३८

इनके दार्शनिक विचारों से संबंधित ग्रन्थ की लोक होने पर ही यह कल्पना प्रामाणिक नहीं हो सकती।

इस मत में इस्लाम की पैगम्बरबाही मानना का भी समावेश मिलता है। इन लोगों ने धर्म महायज्ञ के पाँच पैगम्बरों रूपों की कल्पना की है। एक-एक पंडित एक-एक युग का प्रतिनिधि माना गया है। सप्तयुग के प्रतिनिधि केतई, वेदा युग के नितई, ह्यपर के कर्मई, ऋतयुग के रमई और आगन्वा युग के गुम्-ई माने गये हैं। वे लोग उपनिषदों की विराट् भावना में भी विश्वास करते थे। इनके महाशुद्धा प्रस्थापक बहू मंदिर हैं। बितमें धर्म देवता प्रतिष्ठित हैं। उक्त मंदिर में पाँच द्वार हैं वे तार्पक पाँचों पंडित पाँचों द्वारों के द्वारपाल माने गये हैं। इसी प्रकार उन्होंने बहुत ही पौराणिक ढंग की कल्पनाएँ अपने मत में प्रचलित की हैं।<sup>१</sup> इस मत का प्रचार बंगाल के मीन बादि के लोगों में अधिक है।<sup>२</sup> ये लोग उच्च जाति के हिंदुओं के प्रति दोषभाव भी रखते हैं।<sup>३</sup> इनके आचार-विचार संबंधी विधि-नियम सात्विक नहीं हैं। वे लोग समय-समय पर बहरे की बलि भी देते हैं। इनका बलि देने का प्रचार सुठकमानों के हवाला करने के प्रकार से दिशा-सुलभ है।<sup>४</sup> निर्गुणियों संतों को इस मत से भी कई बातों की मेरवा मिली होगी।

मध्यकालीन संत परम्पराओं की निर्गुण काव्यधारा के प्रति मेरखाएँ

मध्य युग के उत्पुंक संतों और संप्रदायों का निर्देश हमने केवल इतक किया है कि निर्गुण काव्यधारा की दृष्टभूमि कुछ अधिक स्पष्ट हो जाये। उपपुंक संतों और संप्रदायों ने निर्गुण काव्यधारा के स्वरूप को संवाले में अथवा भोग दिया था।

मध्यकालीन कुधरबाही संतों के प्रतिक्रियाकारी वर्ग ने निर्गुणियों संतों को बहुत अधिक प्रभावित किया था। उन्होंने उन ही निम्नलिखित प्रवृत्तियों का धरो की लो प्रहस्य कर लिया था।

क—अपह्न मन्त्रम की प्रवृत्ति।

ख—उमात्र सुधार की भावना।

ग—योग साधना।

घ—अपह्न की दूरवर्षता।

<sup>१</sup> आध्यात्मविद रिश्वीन्द्र कश्यप शास्त्रिय (कश्चकण) १९७६ पृ० ३७३-३९८

<sup>२</sup> यही पृ० ३९८।

<sup>३</sup> यही पृ० ३०२।

<sup>४</sup> यही पृ० ३०६।

- ४—बर्खास्त-विरोध ।
- ५—साम्प्रदाय की प्रतिष्ठा ।
- ६—बाध्याहम्बर-विरोध ।
- ७—बाध्याहम्बर और वेद आदि की अपेक्षा ।

निर्गुणियों उक्त लोग आचार्य सांख्यिक सुधारकों से भी बहुत अधिक प्रभावित हुए थे । उन प्रभावों का संघेन में इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है—

- क—धर्म और दर्शन के सुधार और संस्कार की प्रवृत्ति ।
- ख—सांख्यिकता की विरोध अभिवृत्ति ।
- ग—हिन्दुओं के शिक्षा और यशस्वीयता का त्याग ।
- घ—उषों को दाह देने के स्थान पर उनकी समाधि बनाने की प्रवृत्ति ।
- ङ—बर्खास्त के प्रति अधिक कट्टर न होना ।
- च—मक्ति और वैराग्य की प्रवृत्ति ।

इनमें से प्रथम दो प्रवृत्तियाँ सभी आचार्यों में पाई जाती थीं । द्वितीय प्रवृत्ति का प्रवर्तन सांख्यिक सुधारकों के अनुयायी साधु संन्यासियों ने किया था । चौथी विरोधता का उद्गम सांख्यिक सुधारकों के अनुयायी ही परम्पराओं में हुआ था । पाँचवीं प्रवृत्ति के तर्क प्रथम दर्शन रामानुजाचार्य की पद्धति में होते हैं । छठी मक्ति और वैराग्य की प्रवृत्ति का प्रवर्तक स्वामी रामानुजाचार्य ही थे । आचार्य सुधारकों की इन सभी प्रवृत्तियों का उक्त कक्ष पर अल्प प्रभाव पड़ा था ।

मध्य युग में छोर भी बहुत से सुधारवादी वर्ग वर्तमान थे । अगर इनका निर्देश कर लिये । इनमें अकथित, वैराग्य सिंघातव नामक साधुओं के वर्ग विशेष प्रसिद्ध थे । अकथितों की बन्धन-व्यवस्था विरोध वाली प्रवृत्ति को उक्त कक्षियों ने तर्क बनाने की चेष्टा की थी । अकथितों से वह इतना अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने उक्त शब्द का बार-बार प्रयोग किया है । वहीं वहीं तो वह शब्द निर्गुण तत्त्वों के पदार्थ वाली के रूप में दिखाई पड़ता है । वहीं पर उनके विपक्षी तत्त्व के रूप का वाचक प्रतीत होता है । अपीरियों की कथितता निर्गुणियों में प्रसङ्ग सिंघातव पड़ती है । सिंघातव साधुओं के तो वह लोग कुछ अधिक श्रेणी कहे जा सकते हैं । बन्धन-व्यवस्था विरोध वैशेषिक धर्म-व्यवस्था में अविशेष आदि का हम सिंघातवों के प्रति सिंघातव प्रभाव ही मानते हैं । निर्गुण तत्त्वों पर इनके कुछ निम्नलिखित सिंघातव प्रभाव पड़े हैं—

- क—धीरन की सरलता और स्वभाविकता की अभिवृत्ति ।
- ख—समाज सुधार की प्रवृत्ति ।
- ग—हरे शरीरों को सिंघातव एक मर्द धर्म-व्यवस्था को बन्धन देने की प्रवृत्ति ।

हमारा तो यहाँ तक विस्तार है कि निर्गुणियों अन्तों में समाज-सुधार की मानना को कम देने का भेज लियापत साजुओं को ही था ।

निर्गुणियों अन्तों पर इच्छित के अलवार मकों का भी अक्षय प्रभाव हूँडा का सफ़टा है । हमारी समझ में अलवार अन्तों की निम्नलिखित विशेषताओं में निर्गुणियों अन्तों की विचारधारा को प्रभावित किया था—

- क—बर्बा-अवस्था के प्रति उषेसा ।
- ख—मक्ति मानना की अतिरेकता ।
- ग—विष्णु के विविध नामों के प्रति आस्था ।
- घ—कीर्तन के प्रति आकर्षण ।
- ङ—मक्तिधेन में सेम्प-सेवक भाव का महत्व ।
- च—पुस्तक ज्ञान की उषेसा और अनुभव ज्ञान के प्रति आस्था ।
- छ—रहस्य मानना का आरोप ।
- ज—प्रेम और विरह की कोमल और मार्मिक अभिव्यक्ति ।
- झ—प्रत्यय प्रतीकों के प्रयोग ।

उपर्युक्त प्रवृत्तियों क देखने से ऐसा लगता है कि इन अन्तों पर अक्षियों का भी योडा-बहुत प्रभाव था । हमारा विस्तार है कि निर्गुणियों अन्तों में उपर्युक्त प्रवृत्तियों का प्रवेश अलवार मकों के माध्यम से अधिक हुआ था अक्षी अन्तों के माध्यम से कम । हाँ पर अवतरण हो सफ़टा है कि अलवार मकों ने प्रत्यक्ष रूप से न प्रभावित किया हो । अलवार मकों ने पहले महाकन्द्री अन्तों को प्रभावित किया हो और उनसे फिर निर्गुणियों अन्त प्रभावित हो अलवार अन्तों में उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ और भी विशेषताएँ थी ।

महाकन्द्री अन्तों में हमें निर्गुणियों प्रवृत्तियों का उदक कुछ अधिक विचार से दिखाई पड़ता है । उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ अन्त अक्षियों में अ्यों की त्यों उप लम्प होती हैं—

- क—मक्ति ज्ञान और योग के अर्पणस्य की प्रवृत्ति ।
- ख—उदात्तारपिपता ।
- ग—निर्गुण उदात्त के प्रति आस्था ।
- घ—समाज-सुधार की मानना ।
- ङ—माम का ।
- च—प्रेम और प्रार्थना की महत्व स्वीकृति ।
- छ—रहस्यवाद के विविध स्वरूपों और विशेषताओं का विचार ।

दक्षिण के साम्प्रदायिक शैव तन्त्रों में भी निर्गुण सम्प्रदाय के ऋषियों को प्रभावित किया था। उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ अन्य ऋषियों में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती हैं—

- १ क—मगवान् की कल्पना में अद्वैत विस्थापन।
- ख—मुक्त काम्य रूप की प्रवृत्ति।
- ग—प्रेम और ज्ञानरूप की आद्य अभिव्यक्ति।
- घ—गर्वजन्यता।
- ङ—रहस्याभिव्यक्ति।

यहाँ तक निरम्बनी साधुओं का सम्बन्ध है हमका उक्त ऋषियों से सीधा संबंध था। निरम्बनी साधुओं की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ निर्गुण में स्पष्ट रूप से टँदी जा सकती हैं—

- क—हठ योगिक साधना।
- ख—बुद्धसूत्री शक्ति साधना।
- ग—हठयोग के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग।
- घ—नाम स्मरण।
- ङ—वैष्णवी मक्ति और उसके मन्त्र मन्त्र।
- च—काम्य के निरम्बनीय विविध नाम।
- छ—अद्वैतवादी दृष्टिकोण।
- ज—निर्गुण की उपासना।
- झ—रहस्य भावना।

निर्गुणियाँ तन्त्रों ने बंगाल के सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय के कुछ तन्त्रों को भी आत्मगत किया था। निर्गुणियाँ तन्त्रों में अर्चन की मांगना सम्प्रदाय सहजिया वैष्णवों के प्रभाव से ही बढ़ी थी। प्रेम और विद्या की मधुमयी पशुपतिनी ने निर्गुण तन्त्रों को उत्तमोत्तम कर दिया था। हमारी धारणा है कि निर्गुण तन्त्रों के प्रेम और विद्या की मधुरतम और मार्मिक अभिव्यक्ति का समावेश सहजिया वैष्णव तन्त्रों के प्रभाव से ही हुआ था। मक्ति क्षेत्र में खेच खेचकार की प्रवृत्ति को सहजिया वैष्णवों ने ही बल दिया था।

आजकल के वैष्णव तन्त्र सम्प्रदायों में भी निर्गुण सम्प्रदाय को अपनी विशेषताएँ प्रदान की थीं। उनकी अद्वैतवादी प्रवृत्ति को निर्गुण तन्त्रों ने पूर्णतया बल मन्ने की देखा की थी। उनकी द्वारवादी प्रवृत्ति ने भी निर्गुण तन्त्रों में द्वार माधना की प्रवृत्ति की होगी।



निर्गुणियों अन्तों के विकास के युग में लुप्त अन्तों का भी अन्वय प्रसार था। साक्षात् निर्गुणियों अन्तों ने निश्चय ही निम्नलिखित तब युक्तियों से उपलब्ध किये होने—

- क—पूर्वतन की प्रकृति । ख—सांख्यिक बीजम व्यतीत करने की प्रकृति ।  
 ग—प्रेमोन्माद की प्रकृति । घ—प्रलय सम्बन्धी प्रतीकों का प्रयोग ।  
 ङ—वेदान्तिक विचारवाच । च—प्रेम और विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति ।

बादल अन्तों का उदय और विघटन अथ पक्षि निर्गुणियों अन्तों के उदय और विकासकाल से मेल नहीं खाता किन्तु हमारी अपनी धारणा है कि परबती निर्गुणियों अन्त बादली अन्तों से भी प्रभावित हुए थे। हो सकता है कि बादलों का उदय कुछ और पहले हो गया हो जिसके प्रभाव हमें उपलब्ध नहीं है। यदि यह बात हम स्वीकार करते हैं तो सम्पूर्ण काव्यवाच पर बादलों का प्रभाव प्रतिबिम्बित देखा जा सकता है। बादलों की निम्नलिखित विशेषताएँ निर्गुणियों अन्तों पर परिलक्षित होती हैं—

- क—प्रेमवाद । ख—भक्ति का माधोन्माद ।  
 ग—बार्मिक विधि विधानों में आस्था । घ—बाह्यद्वन्द्व और पातलों का विरोध । ङ—योग साधना । च—शून्यवाद । छ—सांसारिक प्रेम को ही ईश्वरीय प्रेम तोषान मानना । ज—पैगम्बरी याचना का समावेश । झ—अनिष्टों को विपद मानना में विश्वास ।

इस प्रश्न हम देखते हैं कि युग के उग्र और लालु संघर्षों ने निर्गुण अमर्याद वाच के स्वरूप को सँभालने में अन्वय काग दिया था। निर्गुण अन्त साक्षात्सिद्ध हैं। उन्में आने समय की समस्त परम्पराओं की तारबुर्ख बाधों को आने ढंग पर आत्मसात कर लिया था। इन अन्तों ने बहूँ वृत्तरे अन्त संघर्षों की अन्वयि बाधों स्थापन की थी बहूँ लुप्त बाधों का विरोध भी किया था। मन्त्रयुग से लम्बी अन्वयि लालु अन्तों में वैराग्या अन्त आह्वार पावा जाता था। निर्गुण वाच के अन्तों ने इतकर अन्वयि विरोध किया। वे किसी भी प्रश्न के निम्न आह्वार को छोड़ नहीं कर पाते थे। जो भी हो इतना तो निर्विवाद ही है कि निर्गुण अमर्याद के अन्त अथि मन्त्र युग के उच्चैः उग्र संघर्षों के किसी न किसी रूप में श्रुती थे।

# पाँचवाँ अध्याय

## अध्यात्म निरूपण

धर्मों के आध्यात्मिक विचारों का मूल सार—विचारका और अनुभूति—  
अनुभूति का स्वरूप—धर्मों द्वारा प्रकृत ब्रह्म के अभिधान  
ब्रह्म का स्वरूप निरूपण  
ज्ञानमार्गियों के ढंग पर ब्रह्म निरूपण

अनिर्बन्धीयता कायक शैली—प्रवृत्तक शैली—विरोधात्मक शैली—अस  
मर्थतापोषक शैली—सुदृढ के पूर्व का वर्णन करके ब्रह्म निरूपण की शैली—  
विनाशनात्मक शैली—निवेदनक शैली—प्रत्यक्षवाचक शैली—नेति  
वाद शैली—साधारण बखनात्मक शैली—नानात्मक शैली—अनिर्बन्धीय  
को बखनीय बनाने की चेष्टा—ब्रह्म का उल्लेख में वर्णन—ब्रह्म पर  
अस्मृति रूप में वर्णन—ब्रह्म का तुल्य रूप में वर्णन—ब्रह्म का ईहावीय  
रूप में वर्णन—ब्रह्म का विचार रूप में वर्णन ।

निर्गुण में गुणों की प्रविष्टि—

एकता—निरवका—अद्वैतता और सर्व व्यापकता—तन्त्रिकदर्शनकरता  
निर्गुणताकाशी विशेषणों का आधार—निर्गुणब्रह्म पर पूजना का आधेन—  
अनृत्य शक्ति का आरोप प्रविष्टिमार्गियों के ढंग पर ब्रह्म निरूपण—

माहता विनिर्मित स्वरूप बखन—बुद्धि विनिर्मितक स्वरूप बखन प्रतीक रूप  
में वर्णन ।

योगमार्गियों के ढंग पर ब्रह्म निरूपण—

शोभन रूप में—शुद्ध रूप में—ईश्वरके विलक्षण तत्त्व के रूप में ।  
शून्य के रूप में बहुदेववाद की निंदा—धर्मों का आसनविचार ।

वेदान्त प्रणाली में ब्रह्म निरूपण—

आत्मा को रूप प्रकाशकरता—आत्मा की शुद्ध-बुद्ध निरूपण और रूप  
स्वरूपता—आत्मन की वैश्वरूप्यता—आत्मा का रूपता—आत्मा की शक्ति  
-माय-मन आदि से विभक्तता—आत्मा और मन की एकता—जीव  
और उल्लेख स्वरूप—जीव और ब्रह्म का संबंध—जीव की एकता और  
अद्वैतता—ब्रह्मस्वरूप—आय और शक्ति—मुक्ति और जीव ।

कवियों का भाषा संबंधी दृष्टिकोण—

मर्यादा का ऐतिहासिक विचारक्रम  
 कवियों का भाषा संबंधी दृष्टिकोण  
 भाषा का विकास  
 भाषा की मोहन शैलियाँ  
 भाषा की विषय प्रधानता  
 भाषा की शक्तिशाली  
 भाषा और मन  
 भाषा और मूल का संबंध

कवियों की अंगत संबंधी धारणाएँ—

अंगत कला का स्वरूप  
 कवि विचारक्रम

कवियों की मौखिक संबंधी धारणाएँ

विभिन्न दर्शनों के अनुकूल मुक्ति का स्वरूप  
 कवियों की मुक्ति संबंधी धारणा

कवियों की दार्शनिक पद्धति

दार्शनिक बाधों और संभ्रमों की उपेक्षा  
 अद्वैतवाद के प्रति समझन

## कवियों के आध्यात्मिक विचारों का मूल स्रोत

माछीय आध्यात्मक्षेत्र में कर्क की अप्रतिष्ठा मानी गई है। कठोरनिष्ठ में नैयामतिः कर्कशास्त्रीया<sup>१</sup> तथा ब्रह्मसूत्र में कर्कप्रतिष्ठायात्<sup>२</sup> और महाभारत में अश्विन्या लक्ष्मणे माया न तस्मिन्नेव तावदेव<sup>३</sup> कितकर कर्क की अप्रतिष्ठा की और ही संकेत किया गया है। वैदिक के इस मत से संत लोग पूर्णतया सहमत थे। आध्यात्म क्षेत्र में कर्क को वे हीय समझते थे। संत कबीर ने कर्क को खून मुक्ति से उपरिष्ठ कहा है। उन्होंने लिखा है कि जो लोग कर्क से अद्वैतवाद की दृष्टि ठिक करना चाहते हैं उनकी बुद्धि बड़ी खून है। दादू ने संत मत में वादविवाद का कर्क

<sup>१</sup> कठोरनिष्ठ १।२२३ । मुक्त्युपनिषद् ३।११३ ।

<sup>२</sup> वैदिक सूत्र १।१।१ ।

<sup>३</sup> महाभारत भीष्मपर्व २।१२२

को बहुत ही हेय और आश्चर्यक कहा है ।<sup>१</sup> उन्होंने लिखा है कि सन्ना संव<sup>२</sup> किसी भी प्रश्नर के बादविवाद में नहीं पड़ता । वह पचापदी के म्लादे में भी नहीं रहता । उदैव वह आत्मानुभव का ही रस होता रहता है । वादविवाद के सूत्र जाने पर ही साधक का मन भगवान् में केन्द्रित हो पाता है । इसके लिए संतगुरु की कृपा बड़ी आवश्यक होती है । ज्ञानयोगोपनिषद् के<sup>३</sup> अनुसार आत्मानुभव गुरु ही कर सकता है । बिना संतगुरु की कृपा के मनुष्य की बुद्धि तर्क बाल से ऊन्मुक्त नहीं हो पाती । और जब तर्क बुद्धि तर्क बाल से मुक्त नहीं होती तब तक मन फकीर नहीं हो पाता । जब तक मन फकीर नहीं होता तब तक उसकी भगवान् से ली नहीं लग पाती । इसी प्रकार सुन्दरदास ने तर्क और विवाद की सर्वप्र निंदा की है ।<sup>४</sup>

संतों ने तर्क और वादविवाद क प्रति का उपेक्षा भाव प्रकट किया है उसके कई कारण हैं । तर्क का संबंध भौतिक बुद्धि से होता है । भौतिक बुद्धि अमौक्तिक बुद्धि तत्त्व का निरूपण नहीं कर सकती क्योंकि वह अम्पाभित होती है । अम्पाभित होने के कारण वह अपने आभयभूत पदार्थों को ही शरम सत्य मान बैठती है । उसके आभयभूत पदार्थ इन्द्रिय या इन्द्रियार्थ होते हैं । परमार्थ तत्त्व से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार भौतिक मन के द्वारा भी अमौक्तिक तत्त्व की अनुभूति नहीं की जा सकती<sup>५</sup> ।

अप्यात्म तत्त्व का अनुभव आत्मा ही कर सकती<sup>६</sup> है । बर्म चतुष्टो से उसका ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता । बायी भी उस तक नहीं पहुँच पाती है । वेदांत<sup>७</sup>

<sup>१</sup> मार्ड रे देसा पंच हमारा

है पर रहित पंच यदि पूरा अवरण एक अप्यारा ।

वादविवाद काहू सौ बाही मार्दि जगल बे म्यारा ॥

समस्तदि सुमाह सहज में आपदि भाव विचारा ॥ शब्दुदपास को बापी माग २ पृ० २१

<sup>२</sup> शब्दु मन फकीर ऐमें भवा सगुरु के परसाह ।

क्यों कल आगा तर्को लूटे वाद-विवाद ॥ सत सुपासार पृ० ७२० ।

<sup>३</sup> ज्ञानयोगोपनिषद् ३।१।३ ।

<sup>४</sup> तो राम नाम इन पाहवा छुई बार विचार लें ।

अब सुन्दरदास मुनी भव गुरुशब्दु परमाह लें ॥ मनसुपासार पृ० २१२

भेदन पच विहंतर सच तु फार बही अनु वादविवाद ।

वे सब सचम ई जिन मीदि सो धुंदर के उरई गुरुशब्दु ॥ मनसुपासार पृ० २११

<sup>५</sup> मनो बाबो विद्वत्सो अत्राप्य मन्मया सह निष्ठस्योपनिषद् २।१

<sup>६</sup> इसी निजान्त का मंडेन ज्ञानां १।२१ में किया गया है । उम्पका विस्तार वेदात्मिकों में किया है ।

<sup>७</sup> न चतुष्ठा गुरुपते नाद्वि बाबा—गुरुशब्दुपनिषद् २।१।८



होता है। इसका उद्देश्य होना ही अज्ञान नष्ट हो जाता है। सुन्दरदास ने इसे प्रलय की अग्नि कहा है। इस अग्नि में समस्त ईश्वर और सर्वस्य सर्वत्र विषय का प्राय हो जाते हैं। वास्तव में अन्तों के महानुसार ब्रह्म के वास्तविकता का साधन केवल एक मात्र अनुभव ही है। जिस प्रकार उत्तर-विवाद की मूल प्रेरिका बुद्धि होती है वही प्रकार आत्मानुभूति की आधारभूत भद्रा होती है। इस प्रसंग में हम अज्ञानोन्मूलन<sup>१</sup> की क्रिया का उल्लेख कर सकते हैं। उक्तमें लिखा है कि एक बार जब श्वेतकेतु ने अपने पिता से पूछा कि महत्तमन् ब्रह्म के अस्तित्व के सम्बन्ध में आप मुझे उपदेश दीजिए। मेरी बुद्धि अस्ति और नास्ति के बीच में लगी रही है। समस्त श्रुति समाप्त ब्रह्म की अस्तित्वता का उद्देश्य ज्ञाता है किन्तु मुझे यह बिलगई नहीं देता और उसके अस्तित्व सम्बन्ध में जो तर्क दिये जाते हैं वे सर्वथा अमार्थक हैं। कृपया मुझे बताइये कि ब्रह्म है या नहीं। इस पर श्रुति ने समीरत्य बह के पत्र को लेकर शिष्य के हाथ में रख दिया और बोले कि ब्रह्माज्ञो इव पत्र के अन्दर क्या है? शिष्य ने पत्र को तोड़कर उत्तर दिया कि इसके अन्दर गुठली है। गुरु ने फिर पूछा कि गुठली के अन्दर क्या है? गुठली को तोड़कर शिष्य ने कहा कि महाराज इसके अन्दर कुछ नहीं है। इस पर श्रुति ने उद्देश्य दिया कि गुण बिसे कुछ नहीं करते हो वास्तव में वह कुछ प्रसरण है। यदि उक्तमें कुछ भी न होगा तो इतना बड़ा बटवृक्ष कैसे उत्पन्न होता किन्तु वह कुछ इतना हल्लन है कि मन बुद्धि और इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। उक्तकी अनुभूति के लिए हमें ब्रह्म का आभय लेना पड़ेगा। टीका उक्तकी प्रकार आत्मा या ब्रह्म की अस्पष्ट रूपम तत्त्व है। उक्तकी उत्पत्ति किसी भी भौतिक प्रमाण के सहारे नहीं की जा सकती। उक्तके लिए हमें पहले भद्रा और विश्वास करना होगा। अन्य लोग भी भद्रा और विश्वास के महत्त्व से पूर्य परिचित थे। सुन्दरदास ने लिखा है बिना भद्रा और विश्वास के सांसारिक जीव कुत्तों से मुक्त नहीं हो सकते<sup>२</sup>। इसी प्रकार सुन्दरदास<sup>३</sup> की ने भी लिखा है कि जो लोग मगवान् में भद्रा और विश्वास नहीं करते वे स्वर्ग के बाद विवाद में पड़कर अपनी सर्वस्व लौ डैठते हैं

<sup>१</sup> अनुभव प्राप्त ज्ञान प्रत्यय की अग्नि सम ।

सुन्दर अर्थन हीन प्रसंग विज्ञान है व सुन्दर विज्ञान—पृ० १६७ ।

<sup>२</sup> अनुभव बिना यदि ज्ञान सके निरसम्भ विरगतर कर है रे ।

अप्यम् अमरी अत्र अत्रि अत्रि सुन्दर अर्थन सू है रे ॥ सम्य सुधामार पृ० ५५६ ।

<sup>३</sup> आत्मोन्मूलन १।१२।२—क० प्र०—पृ० २७१ ।

<sup>४</sup> भावमगति विरगत्र विन अत्रि व संसप मूल ।—क० प्र० पृ० २७२ ।

<sup>५</sup> सुन्दर अर्थन एक प्रसंग के विश्वास विनु ।

बाह्यि कृ ह्या अत्र पत्रि के मरु है ॥ अ० बा० अ० अ० २५ १०८ ।

आत्मान् में पूर्ण आस्था होने पर ही जीव परमात्मा का अनुभव कर सकता है। उपनिषदों में आत्मा को ही आत्मानुभव करते संबन्धित किया जाता है। उपनिषदों<sup>१</sup> के इस सिद्धांत का समर्थन आचार्य गौडपाद ने भी किया था। निर्गुणिये<sup>२</sup> संत भी आत्मानुभव के इस सिद्धांत के अनुयायी थे। संत कबीर ने 'आप विष्णुने आपै आप'<sup>३</sup> और दादू ने 'माय परीये माय'<sup>४</sup> तथा सुन्दरदास<sup>५</sup> ने 'आपहुँ आपहि जाने'<sup>६</sup> लिखाकर इस बात का समर्थन किया है। यह आत्मार्थवि चर्मदृष्टि से विशद्वय होती है। दादू कहते हैं—'चरम दृष्टि देखे बहुत आरम दृष्टि एक'<sup>७</sup> अर्थात् यह उठता है कि आत्मा ही आत्मा का अनुभव कैसे कर सकती है। क्योंकि उपनिषदों में आत्मा को अर्थात् और अति मरुत लक्ष्य कहा गया है। संभवतः इहीलिए शक्यजानने ने दो आत्मार्थों की अन्वयता को अनात्म्य ठहराया है।<sup>८</sup> किन्तु अर्थात् आत्मा का अर्थ ही माया विशिष्ट होकर जब जीव का अविद्या प्राप्त करता है तो उसमें मोक्षत्व एवं कर्तृत्व आदि शक्तियों का अभाव हो जाता है। जीव रूप से ही आत्मा को ज्ञाता कहा जाता है। उपनिषदों के अनुसार हमारे पिंड में जीव तथा शुद्ध बुद्ध मुक्त नित्य प्रसन्न दोनों की अवस्थित रहती है। मृत्युवर्षी उपनिषद् में<sup>९</sup> एक वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों के अन्तर्गत से तथा क्तोपनिषद् में छाया और आर्य के अन्तर्गत से ज्ञाता और ज्ञेय आत्मार्थों का ही वर्णन किया गया है। उपनिषदों का यह सिद्धांत संतों को भी मान्य था। संत सुन्दरदास ने इस दो आत्मार्थों का वर्णन विज और अमृत के प्रतीक से किया है। शरीर के लिए उन्होंने मृगज का प्रतीक विवोधित किया है। इही प्रकार

<sup>१</sup> आत्मोम्बोपनिषद् ३।८।१

<sup>२</sup> कबीर संवाचकी पृ० ३१८ (१६२८)

<sup>३</sup> दादू भा० १ पृ० ६२

<sup>४</sup> सुन्दर विलास—पृ० १२६

<sup>५</sup> दादू दवाक की बानी भाग १ पृ० ६२

<sup>६</sup> देखिदू—तृतीय उपनिषद् के अन्तर्गत अन्तर्गत मरुत का शंकर मान्य।

<sup>७</sup> हा सुपर्वा सप्तम्य सत्याया

समानं वृषं परिप्सव्राते।

उपोरन्वः पिप्सव स्वाहृत्य

वरकन्धयो मिवाच्छीति ॥ सुबहक ३।१ २

<sup>८</sup> अतः विवन्तौ सुकृतस्व बोके

गृहो मन्विषी परमे परार्थे।

छाया तसौ मरुतविरो वदन्ति

पंचागमो वे च विद्याचिन्ताः। क्तोपनिषद् १।३।१

मलवागिरी के प्रतीक से संसार की म्बन्ना की गई है। उन्होंने लिखा है कि मलवागिरी की संसार में विरूपी एका भुवङ्ग रक्ता है जिसमें विष और अमृत एक साथ पतं मान रहत हैं।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि संतो ने इस दिशा में शब्दाचार्य का अनुमान न करके उपनिषदों की धारणा का ही विस्तार किया है।

उपनिषदों में ब्रह्मानुभव के लिए जीव वृत्ति को अन्तर्मुखी करने का उद्देश्य दिया है। अत्रेवनिर्द्<sup>२</sup> में लिखा है कि परमात्मा ने इन्द्रियों का बहिर्मुखी करके द्विहित कर दिया है। इसी से जीव बाह्य विषयों को देखता है अपराधता को नहीं। जिसने अमृतत्व की इच्छा करते हुए अपनी इन्द्रियों को रोक लिया है वही प्रत्यक्ष आत्मा के दर्शन करता है। उपनिषदों के इस सिद्धांत का संभव संतो में उसी ज्ञान की ताजना के रूप में मिलना है। कबीर साहब संग<sup>३</sup> सुन्दरदास<sup>४</sup> गुलाल साहब<sup>५</sup> आदि संतो में हमें वृत्ति को अन्तर्मुखी करने का उद्देश्य विविध प्रकार से बारबार मिलता है। जब जीव की समस्त वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं तभी आत्मानुभव का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। वृत्तियों के अन्तर्मुखी होने पर इन्द्रिय, बुद्धि, मन आदि अम्याभिव न हास्य स्थाभिन होने लगते हैं। इस दशा में वे जीव के आत्मानुभव में बाधक होने के स्थान पर साधक हो जाते हैं। संत लोगो ने आत्मानुभव के इस रहस्य को प्लुतवा समझ लिया था इसीलिए उन्होंने बहिर्वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने का

<sup>१</sup> मलवागिरी में बरत भुवङ्ग । विर अमृत रह एकै सदा ।

तितुभ्य सोप दिवा परबाध । तब हम वाकी पर विचाना ॥ सं० वा० सं० भाग २ पृ० ४२  
सुंदर कदम एक प्रभु के विश्वास विभु ।

बादधि कं हुआ सत पचि के मरु ई ॥ सं० वा० सं०—भाग २ पृ० १०८

<sup>२</sup> अत्रेवनिर्द् १।१।१

<sup>३</sup> उस्ती ज्ञान सिद्धे परमेश सो अर गुह हमारा । कबीर प्रेषावली पृ० १३८

<sup>४</sup> दिख में दिखदार सदी अंतियी उस्ती करिनादि किये ॥ सुंदर विद्याय पृ० १२६

उलदि रंगो बड में जाति प्यार—मन्मथानी संशेद भाग २ पृ० १०८

ई दिखदार सदी अंतियी उस्ती करि तादि किरूप ॥ अमृत सुखामार पृ० ६३१

<sup>५</sup> जो है कोइ उलति किये भाग ।

निगि निगि संतर सा जाये विम भाग को अर ॥ गुलाल साहब की वाणी पृ० २१

लिने ही सुंदर बुद्धि मग को विचार करि ।

अन अन यह बुद्धि हू विद्या है ॥

बेये हो विचारन विद्याहू जीव दोर ।

सुंदर ही सुंदर रदन रंगिगनु है ॥ सुंदर विद्याय पृ० १०६



उपदेश दिया है। संत दादू ने लिखा है कि वह परमेश्वर आत्मबन्धु में लगी परिकल्प होते हैं जब उनको अन्तर्मुखी कर लिया जाता है।<sup>१</sup> संतो में इत माय की ध्वंशना और भी कई स्थानों पर की गई है।<sup>२</sup> संत मुन्दरदास ने विचार के महार का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—जो साधक आत्मतत्वात्कार करना चाहता है उसे दैव बुद्धि अन्वयित बुद्धि का परिपाग करके स्वाभिव बुद्धि-बनित विचार में लक्ष्मी रखना चाहिए। उसे अपने समस्त ऐन्द्रिक क्रियाएँ जैसे देखना सुनना बोलना खाना सोना बगना आदि सभी से मन्थन उन पर स्वाभिव बुद्धि से विचार कर लेना चाहिए।<sup>३</sup> एक दूसरे स्थान पर उन्होंने पुनः लिखा है कि लक्ष्मी साधक नहीं बड़ा का लच्छा है जो अपने और पराये में भेद नहीं रखता और निर्मल आत्मज्ञान को धारण करके लक्ष्मी का आन्तरिक कर्मी हुए सबविचारों में लक्ष्मी रहता है।<sup>४</sup> एक दूसरे स्थान पर उन्होंने निरालं या स्वाभिव विचार पद्धति को अर्धरूप के निरालंसा का प्रमुख साधन कहा है।<sup>५</sup> संत बलद्वारा विचार को ज्ञान का मूल कारण मानते थे। उन्होंने लिखा है कि संतो ने विचार से उन्मूल ज्ञानकी दीपक धारण कर रखा है। पलद्वारा<sup>६</sup> का निश्चाय या कि संतार कपी कोसू में वे ही लोग पेरें जाते हैं विमल क्रिया-प्रकार विचार और विवेक पुस्तक नहीं होते। महारमा<sup>७</sup> कपीरदास विचारण में एक अती-किन्तु आनन्द का अनुभव करते थे। उन्होंने कहा है—

<sup>१</sup> अमरपति के बहूत आत्म उचि पत्र।

अमरपति परिचय मया तब दादू बीछ वृत्ति ३ दादू बानी भाग १ पृ० ८७  
वेई बीचा देह के वेई धावन होइ।

वेई बीचा अह के दादू पकटे होइ ३ दादू बानी भाग १ पृ० १२

<sup>२</sup> हेरिय कबीर प्रयागवासी पृ० ३०६ पर 'दक्षी गंगा समुदा मित्रापी' इत्यादि।

<sup>३</sup> साक्षात्कार पाही साधन अपने होई।

सुंदर कहत दैव बुद्धि क निवारिजे ॥

देखै तो विचार करि सुखै तो विचार करि।

बोले तो विचार करि करै तो विचार है ॥

खाय तो विचार करि पीबै तो विचार करि।

छोडै तो विचार करि जायै तो न डर है इत्यादि। सुंदर विज्ञान पृ० १०१

<sup>४</sup> धापा पर संतर नहीं निर्मल विज्ञान मारा।

सतवादी साधा कई धीरान विचारा ॥ संतबानी मध्य भाग २ पृ० २१

<sup>५</sup> निःसंग विचार में अपनरी करिय ॥ सुंदरविज्ञान पृ० १०१

<sup>६</sup> संतब क्रिया विचार ज्ञान का दीपक कोन्दा। पृ० २०८ संतबानी भाग २ ॥

<sup>७</sup> लीन कोत्र पेर गया विमल विचार विवेक।

विधा विचार विवेक गद् सच बुकै बानी ॥ पलद्वारादव की बानी पदवा भाग पृ० २१

आत्मविचार विचारिये तब क्या होव आनन्द रे<sup>१</sup>

यहाँ पर एक प्रश्न उठ सकता है, यह यह कि जब तब प्रीति विचारण क  
इतना अधिक महत्त्व देते थे तो फिर आत्मनिरूपण की प्रक्रिया में बुद्धि का क्या स्थान होगा  
क्योंकि वे आत्मा का बुद्धि से विचार करने मानते थे। इस प्रश्न का उत्तर का  
उत्तर सुन्दरदास<sup>२</sup> ने किया है। उन्होंने लिखा है कि आत्मा का विचार करने का  
बुद्धि इतना अधिक महत्त्व हो जाती है कि उसके अलावा कोई अन्य ही नहीं है।  
उसका अपना अस्तित्व विचार हो जाता है। बुद्धि<sup>३</sup> का उत्तर ही ही का उत्तर है।  
बाकी भाषा से सम्बन्धित सभी बुद्धियाँ चाहे ऐश्वर्य ही चाहे मन आदि ही ही का  
अन्य किसी प्रकार की ही तब तब हो जाती हैं। केवल प्रत्यक्ष आत्मनिरूपण ही ही का  
जाती हैं। इसे हम पूरा आश्चर्यकरा कह सकते हैं। इसी लिए ही ही का उत्तर ही ही  
की अर्थता को पूरा आश्चर्यकरा माना है। यदि साहब<sup>४</sup> यह है — ही ही का  
को आन देते और ही ही न विचार जाये। इस अर्थता का अर्थ ही ही का ही ही का  
अनुभव<sup>५</sup> पर आदि के अभिप्रायों से बचन दिया है। ही ही का ही ही का ही ही का  
यह अर्थता ही ही ही ही है। इस अर्थता में ही ही का ही ही का ही ही का ही ही का

<sup>१</sup> कबीर प्रबंधनी ५० ८६ ।

<sup>२</sup> बुद्धि विचार की निरूपण व्याख्यान ।

चित्त चित्त सुखद अभिमाने ॥

सर्व को प्रेरक सब को साधि ॥

सुंदर आप ही स्वरोदि जाने ॥ सुंदर विचारण ही ही का

<sup>३</sup> जैसे ही सुंदर बुद्धि प्रकाश को विचार करे ।

अतः ज्ञान वह बुद्धि ही विज्ञान ही ॥ सुंदर विचारण ही ही का

<sup>४</sup> १—ही ही उपाधि संयोग से आत्म ही ही का ही ही का ही ही का

आदि विषये सु चिन्तित विचार ही सुंदर सुख ही ही का ही ही का ही ही का  
२ ५० १०६ ।

<sup>५</sup> २—आत्म विचार चित्त आत्मा ही ही का ही ही का ।

सुंदर अर्थ को ही ही का ही ही का ही ही का ही ही का ही ही का ही ही का

<sup>६</sup> श्री साहब की राजावली ५० २० ।

<sup>७</sup> क० प्र० ५० १२४ ।

<sup>८</sup> क—सुन्दराम की बानी ५० २१ ।

न—गुनाह साहब की बानी ५० १२८ ।

<sup>९</sup> सुन्दराम की बानी ५० २३ ।

सैयदा और जाने क्या-क्या हो जाता है। यहाँ पर त्रिगुणों का कोई इन्द्रबाल अभ्यन्तार नहीं रहता केवल एक अनिर्वचनीय आनन्द मात्र की अनुमति होती है। वेदान्त में इस अभ्यन्तार का दर्शन द्वैतमा के मान से किया गया है। शैव शाक्त तंत्रों में इसी को सामन्त की अभ्यन्तार कहा गया है। इस अनुभव पर एक पहुँचने की शक्ति प्रत्येक साधक में नहीं होती। इस पद पर कोई सुपात्र शिष्य अधिकारी गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलकर ही पहुँच सकता है। कठोपनिषद् में गुरु के अधिकार का संकेत करते हुए लिखा है—**ऊँ पञ्चर से अशिरु किया यह आभा नीच पुस्य कहे जाने पर अन्धी तब नहीं जाना या सकता। अमेददर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किये गये इस आत्मा में अस्ति नास्ति कम कोई गीत नहीं है। क्योंकि एक परिमाखवासी से भी एक और बुद्धिज्ञेय है इसी प्रकार उस उपनिषद् में शिष्य के पाक पर भी प्रकाश डाला गया है—**जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ, मित्रकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हुईं, विषय विच समाहित नहीं है और जो अशान्त मनवाले हैं वे आत्मा का ज्ञान नहीं कर सकते।**<sup>१</sup> संत साग भी इस तन्त्र से अरिचित नहीं थे। उन्होंने भी शिष्य के सुपात्र और गुरु के अधिकारिक की अनिर्वायता की ओर बार-बार संकेत किया है।**

वेदान्त के अनुसार सुपात्र शिष्य ही अस ज्ञान का अधिकारी होता है। वेदान्त का यह सिद्धांत भी संतों को मान्य था। परमहंस ने लिखा है कि शिष्य बनाने से पहले साधक की सुपात्रता पर विचार कर लेना चाहिए। बिना समझे-बूझे शिष्य बना देने पर सारा उत्तरदायित्व गुरु पर आ जाता है। वेदान्त में साधक भी सुपात्रों पर विचार करते हुए साधन चतुष्टय का संकेत किया गया है। संन्याचार्य ने भी ब्रह्म विज्ञान का अधिकारी साधन चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति को ही कहा है। साधन चतुष्टय का संकेत उपनिषदों में भी मिलता है। बात परमहंसकोपनिषद् के निम्नलिखित उद्देश्य से प्रकट है—

<sup>१</sup> क—गूँया हुआ बाबका, बहरा हुआ काल।

पाक से पंगुल भवा सद्गुरु मारा बाध ॥ कबीर मयाकही पृ० २

और भी बुद्धि मिस्त्रिक्त आप इस्ताम पृ० ७१

<sup>२</sup> न नरेबाबरेब प्रोक एप।

सुबिज्ञेयो बहुबा विस्वमानः ॥

अकल्पप्रोक्ते गतिरस नास्ति।

अपीबान्दवतर्षमद्युम्माबाव ॥ कठोपनिषद् १।२।८

<sup>३</sup> नाबिरती बुद्धीरताबाभास्तो नास्माहित।

अशान्तमाक्योरापि प्रहाने मजमाप्युपात् ॥ कठोपनिषद् १।२।२७

<sup>४</sup> पड्ड शिष्य को कीकिय कीक्री बूझ विचार।

बिब बूरी सिप करोमे परिही तुम पर मार। परमहंस साहब भाग ३ पृ० ३०

तस्मादेवाविष्कान्तो हान्य उरत्कलितिष्ठः समाहिता भूत्वात्मन्ये वात्मान  
भवति ।<sup>१</sup>

साधन चतुष्टय इस प्रकार है— १—विवेक २—वैराग्य ३—साधन समस्त  
४—मुमुक्षुत्व । विवेक नित्य तथा अनित्य वस्तु के ज्ञान को कहते हैं । लोक तथा पर  
लोक के फलों से उदासीन होने को वैराग्य कहते हैं । साधन समस्त के अन्तर्गत राम,  
राम, विविधा उपरति समाधान और भद्रा का उल्लेख किया गया है । ऐंद्रिक विषयों  
से उदासीन होकर आत्मध्यान में मन को केन्द्रित करना ही राम है । इन्द्रिय निग्रह  
दम कहलाता है । मुक्त-मुक्तों को समभाव सहन करने की शक्ति को विविधा कहते  
हैं । कष्टोष्णा शून्य होकर लोक-व्यवहार पर पातन करना उरत्कलिति है । सदा पर  
ब्रह्म में मुक्ति को लीन रहना समाधान कहलाता है । महाबाहू और युध में पूर्ण  
निरास्य रहना ही भद्रा है । आत्मस्वरूप का बोध होने पर ज्ञान कश्चित् बंधनों  
से मुक्त होने की इच्छा को मुमुक्षुत्व<sup>२</sup> कहते हैं ।

संतों ने उपर्युक्त साधन चतुष्टय का उल्लेख प्रसङ्ग रूप से पारिभाषिक शैली में  
मही किया है किंतु साधक के आवश्यक गुणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने साधन  
चतुष्टय के सभी अंगों का संकेत किया है । विवेक के उदाहरण के रूप में हम उद्धृत-  
बार्ह का यह कथन से सज्जे हैं—'आत्मा नित्य है और संसार अनित्य है ।' इस उदाहरण  
को वा समझ लेता है उसे ज्ञान नहीं ला सकता ।<sup>३</sup> इस प्रकार वैराग्य की स्वभना  
कहते हुए उद्धृतबार्ह ने लिखा है कि कल्याण साधक लौकिक भागों से उदासीन रहता  
है ।<sup>४</sup> राम और दम का संकेत भी ऊर्ही को निम्नलिखित श्लोक में मिल जाता है ।  
पंच इन्द्रियों पर विषय प्राप्त करके मन का निग्रह करना चाहिए ।<sup>५</sup> विविधा पर ब्रह्म  
हैवे हुए भी उन्होंने लिखा है कि सन्त में सब प्रकार की परिधिधियों को सहन करने  
की शक्ति होती चाहिए । श्रुति और निरा जैव ब्रह्म से उसे उदासीन इतना चाहिए ।

<sup>१</sup> बृहदारण्यकपुराण ३।४।२३

<sup>२</sup> इन्द्रिय हम सबके इन्द्रिय 'वेदान्तसार' पृष्ठान्त -द्वितीयका संस्कृत्य पृष्ठा ११२३ इन्द्रिय  
पृ० १ से अक्षर २ तक ।

<sup>३</sup> वेमें ही क्या कूट है आत्म कृं नित्य ज्ञान ।  
सदमा वासति ग्ना चक्रे पद्मा रूप विज्ञान ॥ मंग मुपासार सद्मजार्ह पृ० १६१

<sup>४</sup> साक भोग में सदा उदासा तन जग में मन हरि के पाया—दम मुपासार सद्मजार्ह  
पृ० १८२

<sup>५</sup> सर्वो बलि करि मन को मार—दम मुपासार सद्मजार्ह पृ० १८४  
४८



रहा जा सकता है। आप्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति भी बिना गुरु के नहीं हो सकती। शिष्य संयोग आदि सदाचारों के प्रति भी बिना गुरु के प्रवृत्ति नहीं होती। गुरु के प्रवाद से ही बुद्धि पवित्र होती है और उनकी कृपा से ही साधारण वायु नष्ट होता है। इसी लिए कुछ उन्तगुरु को ब्रह्मरूप धम्मन्ते<sup>१</sup> ये द्वार कुछ भगवान् से भी अधिक मानते<sup>२</sup> थे। सद्बोर्बाई ने वेद पुराणों की तुझाई देते हुए सिला है कि गुरु परमेश्वर से बड़ा होता है क्योंकि भगवान् के घर फल मुक्ति मिलती है और गुरु के घर पर स्वयं भगवान् मिल पाठ हैं। इसी लिए सुन्दरदास ने गुरु का संसार में सबसे अधिक उदार<sup>३</sup> बड़ा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्तों ने ब्रह्मात्मभूति के लिए शिष्य के सुपात्र्य और गुरु के अपिस्तरित्व को बहुत आवश्यक माना है। यदि गुरु और शिष्य दोनों ही सुशोभ्य न होंगे तो कबीर के शब्दों में बनधी बही अबरमा होगी वा हो अर्धों की दृष्टी है। जिस प्रकार वे दोनों दृष्टि के अभाव में एक दूसरे को कुर्से में टकेल देते हैं उसी प्रकार गुरु और शिष्य भी संसाररूपी कृम में डूब जाते हैं<sup>४</sup>। गुरु के सुपात्र्य होने पर भी यदि शिष्य सुपात्र्य नहीं इच्छा तो विषाद्य गुरु क्या कर सकता है<sup>५</sup>। वा सावक लोग बिना गुरु के ही आप्यात्म मार्ग में प्रवृत्त होते हैं उनसे शिष्या अभीष्ट होती है। वे आप्यात्म की अनुभूति नहीं कर सकते हैं केवल परापर मीलन माँगने फिरते हैं। अतः उन्तमत्र के अनुसार आप्यात्म ज्ञान के मिशाम्र को पहले अपने को सुपात्र बनाना चाहिए और फिर तद्गुरु की शोभ करनी चाहिए क्योंकि तद्गुरु की कृपा से ही वह आप्यात्मना प्रभूति कर सकता है और उन्तों के द्वारा निर्दिष्ट आप्यात्मिक साधनों से प्रवृत्त होकर उन्नतता भी प्राप्त करता है। 'मानिष से देवता' बनाने की शक्ति उन्तों में होती है।\*

### सन्तों द्वारा मयुक्त ब्रह्म के अभिधान

उन्त लोगों ने अपने निर्गुण ब्रह्म को कोई विशेष अभिधान नहीं दिया या क्योंकि उनका विश्वास था कि भगवान् के अमन्त नाम हैं। वायु आनी इत्यादि के कृष्ण

<sup>१</sup> सतगुरु ब्रह्म सत्य है मनुष्य भाष्य मन् मान । द्वापराई की बानी पृ० २

<sup>२</sup> परमेश्वर से गुरु बड़े पावन वेद पुराण ।

सद्बोर्बाई हरि के मुक्ति है गुरु के घर भगवान् ॥ मन्त्र सुपात्र्यार पृ० १८२ सद्बोर्बाई ।

<sup>३</sup> गुरु सौ उदार कीद दन्तो ने मूर्खों है । सुन्दर विज्ञान पृ० ८

<sup>४</sup> जाय गुरु भी अर्धवत्ता चेजा रात विज्ञान ।

दन्ते उन्त देविता मूर्खी कृम पर्यंत ॥ कबीर प्रसाधनी २

<sup>५</sup> मरगुल बपुरा क्या करे जा मिय ही मादी कृम । कबीर प्रसाधनी पृ० २

<sup>६</sup> कबीर गुरु का अमन्त विभावय द्वार मिता है—कबीर प्रसाधनी पृ० १२

\* क० प्र० पृ० १

गुरु से बढ़कर कोई नहीं है।<sup>१</sup> गुरु के इस रहस्य से सन्त जोगी भी परिचित थे। उन्हें संन्यासियों से भी प्रेरणा मिली होगी क्योंकि शैव शाक्त और बौद्ध सभी संतों तथा योगियों में गुरु की सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है।<sup>२</sup> संतों ने गुरु का महत्त्व विभिन्न प्रकार से प्रतिपादित किया है। कबीर ने लिखा है कि गुरु मनुष्य को पल भर में ही देवता बना देता है<sup>३</sup> वह साधक के नेत्रों को उलाहकर साक्षात्कार में उभर्य करता है। अपने संबंध<sup>४</sup> में उन्होंने लिखा है कि मैं लोक और वेद के साथ बसा जा रहा था किन्तु सद्गुरु ने मुझे ज्ञान का दीपक दिया जिसके प्रकाश में मैंने ज्ञान की खोज की।<sup>५</sup> गुरु ही शिष्य को मगवान् का मार्ग दिखाकर काँसे से बंधन बना देता है।<sup>६</sup> इसी प्रकार सहजोबाई ने भी लिखा है गुरु ज्ञान की दीपक दे देता है जिससे अज्ञान का विमिर हट जाता है और ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है।<sup>७</sup> उस प्रकार में आत्मा स्वी ज्ञान के दर्शन होते हैं। कर्म<sup>८</sup> सुन्दरदास ने वाक्यान्वय में ठीक ही लिखा है कि गुरु के बिना न तो ज्ञान ही हो सकता है और न ध्यान ही किया जा सकता है और न आत्मा विचार में ही लीन

<sup>१</sup> गुरुजना गुरु विप्लु गुरु एवो महेश्वरः

न गुरोरधिकः करिष्यन् किन्तु कोशेप विद्यते ॥ योगशिक्षोपनिषद् २।२६

<sup>२</sup> देखिए अष्टावक्र का योगाङ्क—पृ० २३७ से २२९ तक।

<sup>३</sup> जिन मानिय ते बुद्धता करत न छागी बार। कबीर प्रभावली पृ० १

<sup>४</sup> सद्गुरु की महिमा अर्जत किया उफार।

कोचल अमलत उषाविषया अमलत दिस्तावक्य हार ॥ कबीर प्रभावली पृ० १

<sup>५</sup> पीछे जागा जाहूँ या कोक वेद के साथ

आगे थे सद्गुरु मित्रा दीपक दीपा हाय ॥ कबीर प्रभावली पृ० २

<sup>६</sup> सद्गुरु साँचा सूरचाँ ताते जोहि सुदार

कंसपी वे कचन किया ताहूँ खिचा तत्सार ॥ कबीर प्रभावली पृ० ७

<sup>७</sup> सहजो गुरु दीपक दिपो देवकी ध्यातम क्य।

विमिर गयो चौदन मनो पायो परघट मूप ॥ संत सुभासार दूसरा पंख पृ०

१८९ सहजोबाई

गुरु जिन ज्ञान नहि गुरु जिन ध्यान नहि।

गुरु जिन ध्यातम विचार न सहजु है।

गुरु जिन प्रेम नहि गुरु जिन भेद नहि।

गुरु जिन सीझहि संतोप न गहजु है ॥

गुरु के प्रणाह बुद्धि उच्चम क्या को गई।

गुरु के प्रसाह अह तुम विचारिय ॥ सुन्दर विद्यास—६।

खा वा सञ्चया है। आध्यात्मिक प्रेम की वापसि भी बिना गुरु के नहीं हो सकती। शील संयोग आदि सहायारों के प्रति भी बिना गुरु के प्रवृत्ति नहीं होती। गुरु के प्रसाद से ही मुक्ति पवित्र होती है और उनकी कृपा से ही सांसारिक तान नष्ट होता है। इसी लिए कुछ सन्तगुरु को ब्रह्मरूप समझते<sup>१</sup> थे और कुछ भगवान् से भी अधिक मानते<sup>२</sup> थे। सहजोबाई ने वेद पुराणों की बुझाई देते हुए लिखा है कि गुरु परमेश्वर से बड़ा होता है क्योंकि भगवान् के पर केवल मुक्ति मिलती है और गुरु के पर पर स्वयं भगवान् मिल जाते हैं। इसी लिए सुन्दरदास ने गुरु का संसार में सबसे अधिक उदार<sup>३</sup> कहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों में ब्रह्मानुभूति के लिए शिष्य के सुपात्रत्व और गुरु के अधिष्ठात्य को बहुत आवश्यक माना है। यदि गुरु और शिष्य दोनों ही सुयोग्य न होंगे तो करीर के शरीरों में उनकी बड़ी आवश्यकता होगी या हो संभो की होती है। शिष्य प्रकार के दोनो दृष्टि के अभाव में एक दूसरे को कुर्से में टकेल देते हैं उठी प्रकार गुरु और शिष्य भी संसाररूपी कूप में डूब जाते हैं<sup>४</sup>। गुरु के सुपात्र होने पर भी यदि शिष्य सुपात्र नहीं होता या विचार गुरु क्या कर सकता है<sup>५</sup>। जो साधक सांग बिना गुरु के ही आध्यात्म मार्ग में प्रवृत्त होते हैं उनकी शिष्या अधूरी रहती है। वे आध्यात्म की अनुभूति नहीं कर सकते हैं केवल परापर पील मांगने फिरते हैं। अतः अग्रिम के अनुसार आध्यात्म तान के विनाश को पहले अपने को सुपात्र बनाना चाहिए और फिर तद्गुरु की शोच करनी चाहिए क्योंकि तद्गुरु की कृपा से ही वह आध्यात्म अनुभूति कर सकता है और उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट आध्यात्मिक साधनों को प्रवृत्त होकर सफलता भी प्राप्त करता है। 'मानिष स देवता' बनाने की शक्ति उन्हीं में होती है।<sup>६</sup>

### सन्तों द्वारा प्रयुक्त ब्रह्म के अधिधान

सन्त लोगों ने अपने निर्गुण ब्रह्म को कई विशेष अधिधान नहीं दिया था क्योंकि उनका विश्वास था कि भगवान् के अनन्त नाम हैं। तबु अपनी इच्छा के अनुसार

१ सतगुरु ब्रह्म सत्य है अनुभूत भाव मन मात्र। दयादाई की शानी पृ० ९  
 २ परमेश्वर ने गुरु बड़े साधक वेद पुराण।  
 सहजो हरि के मुक्ति है गुरु के पर भगवान् ॥ सन्त सुपात्र पृ० १८२ सहजोबाई।  
 ३ गुरु ही उदार बड़े दानों के सन्तों हैं। सुन्दर विभास पृ० ८  
 ४ जादा गुरु भी अधिष्ठा चेहा करा बिलम्ब।  
 अपने अध्या देखिवा सुपात्र हूँ परबन ॥ करीर प्रपात्रपी २  
 ५ नारायण बपुरा कहा करे जा मिल ही मादी गुरु। करीर प्रपात्रपी पृ० ३  
 ६ करीर गुरु को अध्या विपात्रण द्वार निगा है—करीर प्रपात्रपी पृ० १२  
 ७ प० प्र० पृ० १



कृष्ण उसका कोई भी नाम स्मरण कर सकता है।<sup>१</sup> सम्भवतः यही अर्थ है कि उन्होंने अपने समय के सभी बड़े सम्प्रदायों में प्रमुख होनेवाले ईश्वरवाचक शब्दों से अपने निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किया है। यदि उनकी बानियों में प्रमुख ईश्वरवाचक शब्दों का संग्रह किया जाए तो स्पष्ट प्रकट हो जायेगा कि उन्होंने अपने ब्रह्म को केन्द्र नामों से सबसे अधिक व्यक्त किया है। इन केन्द्र नामों की एक लम्बी शिष्ट व्याख्या ने अपनी विनयमालिका में की है<sup>२</sup>। इस शिष्ट को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि सन्त लोगों ने जैसे विष्णु महत्सनाओं की पुनरुत्थरणी की है। किन्तु विष्णु के सबसे नामों में उन्हें राम-नाम सबसे अधिक पिय था। हमारी सम्प्रदाय में सबसे प्रमुख अर्थ शैविक है। राम शब्द में र अग्नि, अर्ध सूर्य अथवा स चन्द्र का प्रतीक माना जा सकता है। महात्मा कृष्णदास ने सम्भवतः इसी प्रतीक मानना से प्रेरित होकर लिखा था कि राम अथवा नाम अग्नि सूर्य और चन्द्र अथवा चंद्र या प्रतिनिधि है। बोग<sup>३</sup> में चन्द्र और सूर्य प्राण और अपान के प्रतीक भी माने जाते हैं। कुछ लोग उन्हें पुरुष और रेवक के प्रतीक भी समझते हैं। चन्द्र सूर्य आपना या प्राणायाम प्रक्रिया से शरीर में ब्योतिस्वरूपी या अग्निस्वरूपी ब्रह्म की उपलब्धि होती है। रामचन्द्र सूर्य-आपना से उपलब्ध होनेवाले ब्योतिस्वरूपी ब्रह्म का प्रतीक है। इस अर्थ<sup>४</sup> की स्मृति सन्त दादू जी<sup>५</sup> गुलाम साहब ने भी की है। सन्त दादू ने लिखा है—

चन्द्र सूर मधिमाई तहाँ वसे राम राई।<sup>६</sup>

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने इसी भाव की स्मृति की है—

राम तहाँ परगट रहे आत्मा कमल जहाँ। शिखर की<sup>७</sup> है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट होता है कि सन्त लोग राम से अपने शैविक ब्रह्म का बोध करते थे। और उन्होंने इसके बोध के लिए केवल इसी लिए चुना था कि इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ जैसा कि ऊपर दिखाया आये है योग के ब्योतिस्वरूपी ब्रह्म की

<sup>१</sup> दादू सिरकलहार के जैसे नाम अकल।

किताब आये सो जीविये यी साधु सुमिरि सन्त ॥ दादू साहब की बानी भाग १

पृ० १३

<sup>२</sup> व्याख्या की बानी—पृ० १३

<sup>३</sup> बगरी राम-नाम रसुवर को हेतु कृष्ण भाव हिम कर के ॥ तुलसीदास रामायण बाण काव्य पृ० ३१ व्याख्यान अर्थात् द्वारा अनुवादित।

<sup>४</sup> प्रियेस आकाश वेस्त—अरस्तगी भवन स्त्रीय भाग ८ पृ० ६२।

<sup>५</sup> दादू साहब की बानी भाग २ पृ० १८०।

<sup>६</sup> यही।

अभिष्मक्ति अधिक करता है। वैष्णव नामों में इठीलिये उन्होंने राम को ही सबसे अधिक अम्नाया है।

संतों ने वैष्णव नामों के अतिरिक्त अस्ताह<sup>१</sup>, कपीम<sup>२</sup>, रहिम<sup>३</sup> आदि नामों से भी अपने निर्गुण ब्रह्म की अभिष्मक्ति की है। किन्तु ये नाम हिंदू नामों की अपेक्षा बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। मुसलमानी नामों का प्रयोग हमारी समझ में उन्होंने केवल इतलिये किया था कि वे अपनी विचारधारा को केवल हिंदुओं तक ही पहुँचाना नहीं चाहते थे। उनका लक्ष्य हिंदू और मुसलमान दोनों को धर्म के मिश्रण सद्रूपों से बिरक्त करके लवधर्म की ओर बिचे में संत मत कहते थे समान मात्र से आकर्षित करना चाहते थे।

संतों ने वैष्णव और इस्लामी नामों के अतिरिक्त अपने निर्गुण ब्रह्म को व्यक्त करने के लिए अस्तमा<sup>४</sup> ब्रह्म<sup>५</sup>, परब्रह्म<sup>६</sup>, सिधे ज्ञानमार्गीय नाम और चोति<sup>७</sup> नाद<sup>८</sup> शब्द<sup>९</sup>, अललनिरंजन<sup>१०</sup>, निराश्रय<sup>११</sup>, लक्ष्म<sup>१२</sup>, लक्ष्मी<sup>१३</sup>, ईश आदि योगमार्गीय नामों का प्रयोग भी किया था। निर्गुण ब्रह्म को उन्होंने दो अभिधान अपनी तरफ से दिये थे वे हैं—सतगुरु<sup>१४</sup> और साहब<sup>१५</sup>। बाद में उनके संप्रदायों में इन्हीं दो नामों की महत्ता अधिक बढ़ी। कहीं-कहीं पर उन्होंने अपने ब्रह्म का बोध गुरु शब्द से भी किया है। सिक्ख मत में आगे चलकर इस नाम की बहुत महिमा मानी जाने लगी।

<sup>१</sup> दारुबानी भाग १ पृ० ३२ पंक्ति ७

<sup>२</sup> दारुबानी भाग १ पृ० ७० पंक्ति २

<sup>३</sup> कबीर प्रभावती पृ० २३० पंक्ति २४

<sup>४</sup> दारुबानी भाग १ पृ० ६२ पंक्ति ८

<sup>५</sup> दारुबानी भाग १ पृ० २१ पंक्ति ११

<sup>६</sup> कबीर प्रभावती पृ० ३८ पंक्ति ८

<sup>७</sup> कबीर प्रभावती पृ० ३०४ पंक्ति १२

<sup>८</sup> भीष्म साहब की बानी पृ० ४० पंक्ति १३-१४

<sup>९</sup> कबीर प्रभावती कबीर शब्दावली भाग ४ पृ० ३९

<sup>१०</sup> दारुबानी भाग १ पृ० २१ पंक्ति १२

<sup>११</sup> कबीर प्रभावती पृ० २३०

<sup>१२</sup> दारुबानी भाग १ पृ० ६२ पंक्ति ७

<sup>१३</sup> दारुबानी भाग १ पृ० २१ पंक्ति १६

<sup>१४</sup> कबीर प्रभावती पृ०

<sup>१५</sup> दारुबानी भाग १ पृ० ३८ पंक्ति १०

### ब्रह्म का स्वरूप निरूपण

अर्वांग मनसागोचर स्वयं ब्रह्मस्वरूप चेतन सत्ता का नाम ब्रह्म है। बृहदारण्यकोपनिषद्<sup>१</sup> में इस निर्दिष्टरूप निरूपाधि और निर्दिष्टार सत्ता के दो स्वरूपों का संकेत किया गया है। एक सत्त्वं और वृथा त्वत्त्वं। निर्गुण और सगुण ब्रह्म के इन दो रूपों की कल्पना इसी भुक्ति के आचार पर की गई है। भारत की दार्शनिक पद्धतियों में ये कुछ ने केवल निर्गुण सत्ता को ही अपना प्रतिपाद्य बनाया था। ऐसी दार्शनिक पद्धतियों में शंकराचार्य का मायावाद विशेष उल्लेखनीय है। आचार्य<sup>२</sup> शंकर की सम्मति में उपनिषदों का प्रतिपाद्य निर्गुण ब्रह्म ही है। आचार्य शंकर की प्रतिक्रिया के रूप में उदय होनेवाली दर्शन पद्धतियों में अधिकतर ब्रह्म का सगुण स्वरूप के प्रति ही आस्था प्रकट की है। ये पद्धतियाँ अधिकतर मक्ति-प्रधान ही थीं। योग और उनही शास्त्राग्रो तथा प्रशास्त्राग्रो में ब्रह्म का निर्गुण-सगुण रूप को ही महत्त्व दिया गया है। संत लोग साध्याही महात्मा थे। वे भारत की जनमार्गीय, मक्ति मार्गीय और योगमार्गीय इन तीनों धाराओं से प्रभावित हुए थे। उनके ब्रह्मनिरूपण पर जैसे तो इन तीनों का प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु उन्होंने मायवता सबसे अधिक निर्गुण रूप का ही दी है। इतने करे धरत्य थे। पहला कारण कल्पातीन परिधि तियाँ थीं। यह युग सगुण की प्रतिष्ठा का युग था। पृष्ठभूमि में हम यह बात धर्यी तरह स्पष्ट कर चुके हैं। वृथा कारण भारत के आरात्म, क्षेत्र में ब्रह्म विद्या और उनका प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदों की प्रतिष्ठा थी। संतों के उदय होने से कुछ दिन पहले ही आचार्य शंकर ब्रह्म वेदान्त की अल्प समस्त दर्शनों को परास्त करके प्रस्थापना कर चुके थे। वेदान्त की वैज्ञानिकता, बीजिकता और धार्मिकता सभी विचार शक्ति व्यक्तियों को प्रभावित कर लक्ष्यी हैं। संत लोग उच्च श्रेष्ठि के विचारक थे अत एव उनका वेदान्त से प्रभावित होना स्वाभाविक था। वेदान्त का प्रमुख प्रतिपाद्य निर्गुण ब्रह्म ही रहा है। उनही प्रेरणा से ही संतों ने भी निर्गुण ब्रह्म का ही सबसे अधिक मायवता की है। ऐसा कि हम पृष्ठभूमि में दिखला आते हैं संतों को योग और उच्चरी विविध शास्त्राग्रो की धार बीज दर्शन तथा उच्चरी विविध पद्धतियों की सम्पी-चीकी परम्परा प्राप्त हुई थी। संत लोग इस परम्परा से भी प्रभावित हुए थे। योग की सभी शास्त्राग्रो में ब्रह्म के श्रोतिस्वरूप तथा माद-स्वरूप की प्रतिष्ठा रही है। संत लोग भी उच्च श्रेष्ठि के योगी थे अतएव उन्होंने जनमार्गीय निर्गुण ब्रह्म का योगमार्गीय सगुण-निर्गुण ब्रह्म से समानरूप स्थापित करके उन्हें भी निर्गुण बना दिया है। इस नाहरररकी और श्रोतिस्वरूपी ब्रह्म की ही उन्होंने जनमार्गीय ढंग से विवेचना की

<sup>१</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् २० २।३।१

<sup>२</sup> इतिहास-भारतीय दर्शन—बङ्गाल उपान्यास ५ ४२०

है। किन्तु इसके पवित्र रूप की प्राप्ति नहीं होती। उन्होंने उस योगिक पुरुष की प्रतिष्ठा मानना चाहें हैं। उसे उन्होंने अपनी मक्ति का आरूप बनाया। वह निर्गुण हाथे हुए भी सगुण बना किन्तु उसकी सगुणता शुद्ध मानविक ही रही। वह बाहिरजामी न होकर अंतर्जामी ही रहा। इस प्रकार संतो ने ज्ञान-मक्ति और योग तीनों दृष्टियों से अपने मस्त का निरूपण करते हुए भी उसे निर्गुण ही रखा है। उनके ब्रह्मनिरूपण की इसी प्रकाश में समझना चाहिए। वहाँ पर हम उनके ब्रह्मनिरूपण संबंधी विचारों का विरलैपस्य मुविषा की दृष्टि से तीन बड़े शीपकों से करेंगे। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—ज्ञानमार्गियों के ढंग पर ब्रह्मनिरूपण।

२—मक्तिमार्गियों के ढंग पर ब्रह्मनिरूपण।

३—योगमार्गांतुरूप ब्रह्मनिरूपण।

### ज्ञानमार्गियों के ढंग पर ब्रह्मनिरूपण

वेदान्त ग्रन्थों में निर्गुण ब्रह्म का निरूपण विविध प्रकार से अनेक शैलियों में किया गया है। इन शैलियों के अंतराल में हमें तीन पेट्टयें बागमक-दिशार्द पड़ती हैं—

१—अनिर्बचनीयतावाचक विविध शैलियों की वाचना की चेष्टा।

२—अनिर्बचनीय की बचनीय बनाने की चेष्टा।

३—ब्रह्मक और निर्गुण पर गुणों के आरोप करने की चेष्टा।

१—अनिर्बचनीयतावाचक शैलियाँ—उपरिष्ठ ग्रन्थों में ब्रह्म की अनिर्बचनीयता अभिव्यक्ति विविध शैलियों में की गई है। संक्षेप में उन शैलियों का उल्लेख निम्नलिखित शीर्षक स किया जा सकता है :—(१) परनात्मक शैली (२) विरोधात्मक शैली (३) अतमर्षतावाचक शैली (४) तद्वि के पूर्व का बचन करके ब्रह्मनिरूपण करने की शैली (५) विभावनात्मक शैली (६) निषेधात्मक शैली (७) अनन्यारमाणात्मक शैली (८) नैविषादी शैली (९) आराध्य बचनरत्नक शैली (१०) मोनात्मक शैली।

संतों ने अपने मस्त की अनिर्बचनीयता इन सभी प्रकार की शैलियों के सहारे व्यक्त की है। संक्षेप में वहाँ पर उनका उल्लेख किया जाता है।

१—परनात्मक शैली—एक शैली में ब्रह्म का निरूपण एक मिश्राता के रूप में किया जाता है। उक्त मिश्राता की अभिव्यक्ति मस्त के रूप में हुआ करती है। 'शुभेद' की कमी देवान् दक्षिण विदेन् वाली श्रुता इसी शैली का उदाहरण है।



३—असमर्थतापोषक शैली—एक लोगों ने ब्रह्म बचन में अपनी असमर्थता व्यक्त करके भी उसको अनिर्वचनीयता प्रकट की है। कबीर कहते हैं—

भाषि कहूँ तो बहुत बहूँ हसका कहूँ तो मूँड ।  
मेँ का जानौ राम कू नैनो कमी न बीठ ॥

४—सृष्टि के पूर्व का वर्णन करके ब्रह्म का निरूपण करने की शैली—अग्नेर<sup>१</sup> और शतपथ<sup>२</sup> ब्राह्मण में इस शैली के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। सग्यों के भी यह शैली बहिष्कर प्रतीत हुई थी। कबीर ने इस शैली के उदाहरे ब्रह्म का वर्णन करते हुए लिखा है—

अब नहीं होते पषन नहीं पानी ।  
अब नहीं होती सृष्टि जपानी ॥  
तब नहीं होते प्यरइ न बासा ।  
तब नहीं होते परनि आकारा ॥  
अब नहीं होते गरम न मूखा ।  
तब नहीं होते कली न फूला ॥  
अब नहीं होते सवइ न स्वार ।  
तब नहीं होते विद्या न बाइ ॥  
अब नहीं होते गुरू न चेला ।  
नम अगमे पंथ अकेला ॥

५—विभाषनात्मक शैली—निर्गुण ब्रह्म का वर्णन उपनिषदों में विभाषनात्मक<sup>३</sup> शैली में भी किया गया है। संत उपनिषदों से बहुत अधिक प्रभावित थे। संभवतः इतीहित उद्धोने भी ब्रह्मनिरूपण में विभाषनात्मक शैली का प्रयोग किया है। संत कबीर ने इस शैली का प्रयोग करते हुए लिखा है।<sup>४</sup> वह परमात्मा बिना गुण

<sup>१</sup> कबीर प्रयागजी पर्व का अंग २० १० (१३२८)

<sup>२</sup> अग्नेर का नामशेष सूक्त देविय ।

<sup>३</sup> देविय शतपथ ब्राह्मण में १०।४।१ पैर का इरमनेऽपरासीर पैर अशमीत आसीरिष इरमने शीशमीत । तस्मदेतइ । अस्मिदाऽथ बुध्न नामाशमीषी सरासीतशमीम् इति ।

<sup>४</sup> कबीर प्रयागजी—२० २३८ ।

<sup>५</sup> श्वेताश्वतर ६।१४

<sup>६</sup> कबीर प्रयागजी २० १४०

विन मुग ताइ अरन विन जाई विन सिद्धा मुग गाई ।

के लाया है, बिना चरकों के चलता है और बिना बिम्बा के गुणगान करता है। इसी प्रकार संत चरनदास<sup>१</sup> ने भी लिखा है—रथमत्मा बिना भवस के ही सब कुछ गुनवा है और बिना बिम्बा के संगीत सहृदय का उच्चारण करता है आदि। इस प्रकार के ब्रह्म की अनुभूति 'श्रीपटवाट वाट' में होती है यह 'श्रीपटवाट वाट' शरीर कृपी नगर में है।

६—निषेधात्मक शैली—निर्गुण ब्रह्म के वर्णन में संतों ने मकारयत्नक शैली का भी आश्रय लिया है। संत कबीर<sup>२</sup> लिखते हैं—उठ परमात्मा में न तो कोई शब्द होता है न कोई लबाह है न कोई रूप है न ठठके माटा है न पिया है माया, मोह आदि भी उधे नहीं खतते हैं। ठठके लाल सुगर लाले आदि सर्वत्र भी नहीं हैं। उठधे न तो कोई बुल होता है और न कोई उधध बुल मनावा है। तुंदरदास<sup>३</sup> भी ने इस शैली में ब्रह्म का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है—बह ब्रह्म न तो पापरूप है न पुषपरूप है, न रूप है और न शब्द है बह बोलवा भी नहीं है, मीन भी नहीं खटा और न सोठा ही है और न बागवा है बह न एक है और न दो उधे न तो की बह उधे है और न पुष्य उठके न कोई आगे है और न कोई पीछे बह बुद नहीं है बाल भी नहीं है कर्म भी नहीं है काल भी नहीं है ठका हरत्र और विशाल भी नहीं है बह मुद भी नहीं करता है और मुद से मागता भी नहीं है बह न तो बंधन रूप है और न मोक्षरूप ही उधे सुन्दर और अमुन्दर भी नहीं ब्रदा बा लकटा।

७—अनन्योपमावाचक शैली—संतों ने इस शैली को भी ब्रह्म के स्वरूप निकारण में आनाया है। इसलिए दादू ने इस शैली में मूरखनी ब्रह्म का शैला सुन्दर वर्णन किया है।<sup>४</sup>

मूर सरीला नूर है तेज सरीला तेज ।  
जाति सरीनी जोति है दादू लेजे सेज ॥

<sup>१</sup> छापी अत्रत्र नगर धविधर ।

श्रीपट वाट धरु बंधी उल्लारग हम धरु ।

<sup>२</sup> कबीर प्रियावली पृ ३३३ पंक्ति ७ से ३ तक

<sup>३</sup> पाप न पुष न रूप न शब्द न बोले न मीन न छोरे न जागरे ।

एक न दो हम पुर्नम जोइ केदे बर्दा नोई न पीये न भागे ॥

बुद न बाल न कर्मन बध न हरत्र न विशाल न कर्मे न मारे ।

बंध न मोह कमोह न मोह न सुन्दर हूँ न अमुन्दर जागी ॥

सुन्दर विज्ञान पृ० १६८ ।

<sup>४</sup> दादू भाग १ पृ २३

८—नेतिवादी शैली—उपनिषदों का नेतिवाद बहुत प्रसिद्ध है। इस निरूपण करते करते जब वे अपनी असफलता का अनुभव करने लगते हैं तब नेति-नेति चिह्नाने लगते हैं। संत मानक<sup>३</sup> ने इस तथ्य का संकेत निम्नलिखित पंक्ति में किया है—

ओड़क ओड़क मसि थके वेद कहनि इक बात ।

अर्थात् इसका अर्थ खाबते खोबते वेद पक गये। उन्होंने केवल एक ही बात कही है। वह एक बात नेति ही है। इसी प्रकार मुन्दरदास<sup>४</sup> ने भी नेतिवाद का उल्लेख किया है।

९—साधारण वर्णनात्मक शैली—संतों ने इस शैली का प्रयोग बहुत अधिक किया है। इसमें सीधे सीधे ढंग से इस को अनिर्वचनीय कहा जाता है। संत परमदास<sup>५</sup> ने इसी शैली में लिखा है। हे आत्माकरी सभी वह परमात्मा असल और अपार है। उसकी गति अनिर्वचनीय है। इस शैली का उदाहरण कुछ अन्य संतों ने भी किया है।

१०—मैनात्मक शैली—जब भी अनिर्वचनीयता का चोखन संतों ने भी कही कही शीशों के ढंग पर भी किया है। बौद्ध लोग आत्मा और परमात्मा के संबंध में मौन खना ही उचित समझते थे। बौद्धों के अनुश्रवण पर संत धर्मियों ने भी कहीं-कहीं उक्त अनिर्वचनीय परमात्मा की अनिर्वचनीयता के द्वारा न करके मौन के सहारे की है। मुन्दरदास<sup>४</sup> ने लिखा है—

सुन्दर मौनगही सिध साबक भीन कहे इसको मुग्य बातें ।

अनिर्वचनीय को वचनीय बनाने की चेष्टाएँ—मानव अनिर्वचनीय को भी वचनीय बनाप बिना नहीं रह सकता। यह उसकी स्वभाविक प्रवृत्ति है। मानव की इसी प्रवृत्ति ने संतों के उक्त अनिर्वचनीय निर्गुण को वचनीय निर्गुण बनाया है। उनका यह प्रयत्न विविधमुनी है—

<sup>१</sup> संत मुखाधार संत पृ० २२३

<sup>२</sup> सुखाविज्ञान पृ० १६२

<sup>३</sup> अप्यत्म अज्ञान अपार होखी बाकी गति नहीं पाइए। आनन्दस की बाकी भाग २ पृ० २२ ।

<sup>४</sup> सुखाविज्ञान पृ० १६३



- १—ब्रह्म का तत्त्व रूप में वर्णन ।
- २—ब्रह्म का अक्षुद्र रूप में वर्णन ।
- ३—ब्रह्म का स्थीर रूप में वर्णन ।
- ४—ब्रह्म का इ हातीय रूप में वर्णन ।
- ५—ब्रह्म का विचार रूप में वर्णन ।

१—ब्रह्म का तत्त्व रूप में वर्णन—उक्तों ने ब्रह्म का वर्णन तत्त्व रूप में भी किया है । यह तत्त्व रूप अनुपम और अनिर्दिश्यनीय है । उक्तका वर्णन कठे हुए कबीर ने किया है ।<sup>१</sup>

आके मुँह माथा नहीं न हीं रूप अरूप ॥  
पुहुप बास से पातरा पेसा तत्त्व अमूर ।

इस तत्त्व रूप परमात्मा को ही उक्तों ने निर्गुण रूप कहा है । इस निर्गुण का वर्णन उक्त हरिया राइय ने भी सुन्दर ढंग से किया है ।<sup>२</sup>

सो निर्गुन कधि कहै समाधा ।  
निराकार आकार विहूना । रूपरत्न नहिं आई मधूना ॥

यह तत्त्व रूप ब्रह्म तत्त्व और अद्वैतरूप कहा गया है । उक्त हरिया राइय सिद्धते हैं ।<sup>३</sup>

तथा ब्रह्म जीव मह लेखा ।  
अक्षुद्र ब्रह्म आपुही पेखा ।

२—ब्रह्म का अक्षुद्र रूप में वर्णन—उक्तों ने अपने निर्गुण ब्रह्म को अक्षुद्र भी कहा है । उक्त कबीर ने किया है ।<sup>४</sup>

पेसा अक्षुद्र मेरे गुण कहा में रहा समेख ।

दयावारी ने भी अपने ब्रह्म को अक्षुद्र रूप कहा है । उन्होंने किया है हे परमात्मा तु वैशान्यरूप और आनंद का होते हुए भी अक्षुद्र है ।<sup>५</sup>

<sup>१</sup> कबीर प्रभाषणी पृ० ६४

<sup>२</sup> हरिया राइय पृ० २०, २१

<sup>३</sup> " " २१

<sup>४</sup> कबीर प्रभाषणी पृ० १३१

<sup>५</sup> दयावारी की वाणी पृ० १२ पर उक्ति—

तु केतन स्वकय है अक्षुद्र काकन्द ।

३—**ब्रह्म का तुरीय रूप में वर्णन**—ब्रह्म के तुरीय रूप का संकेत उग्नियदो में बराबर किया गया है। उग्नियदो के आचार पर ही गौडपादाचार्य<sup>१</sup> ने माहृह्य कारिका में ब्रह्म के इस स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन किया है। उग्निये उन्होंने ब्रह्म को ज्ञान स्वन और इन तीनों अक्षरपात्रों से विशद्वय तुरीय रूप विशद्व किया है। यह तीनों अक्षरपात्रों विन्मय सत्ता की अक्षरपात्रों नहीं हैं। विन्मय सत्ता की अक्षरपात्र तुरीय ही मानी जाती है। हमारे अंदर जो साक्षिण्य है जो निर्मल रूप स्वरूप है वह इन अक्षरपात्रों के उग्निय होने से या मष्ट होने से किसी विकार को प्राप्त नहीं होता इसी को सत्तुर्य कहा गया है 'सत्तुर्यम् मन्वते स आत्मा।'

उग्नियदो और गौडपादाचार्य के इस तुरीय संबंधी सिद्धांत से संश्लेषार्थ में उहमत य। उन्होंने माहृह्योपनिषद मान्य के मंगलाचरण में अपने इस दृष्टि कथ का प्रगटीकरण किया है। वह मंगलाचरण्य इस प्रकार है—'वा बराबर' प्राणी सत्तुर्यो को ध्यानधीस प्रज्ञानधिरण्य प्रदानों द्वारा समस्त लोभों को परिष्कार किये हुए हैं स्थूल बगड के सुन-दुल आदि स्थूल विषयों का भोगना है तथा कर्म बन्ध स्तोत्रमार्ति मागों का मोक्षना भी है वा इन सब विषयों को ध्यानगत करके माधुर्यनाम से लोका उद्वारा है वा तीन जाण्डि स्वन सुदृष्टि इन तीन मायिक अक्षरपात्रों की अक्षरपा तुरीय है मैं उठ परम अक्षर अक्षर और ब्रह्म को। प्रथम करता है। वेदान्त के इस तुरीय सिद्धांत से संव साग पुर्यांगना परिचित थे। लगभग सभी संतों में बोधे पद अमय पद, परम पद, अनुभव पद आदि के अमिषान से तुरीय का ही बयान किया है। संत<sup>२</sup> कबीर ने शश्ट भिन्ना है कि संता का परमात्मा चाये पद में रहता है। संत<sup>३</sup> मज्जुव्वाकशों ने इस पद का अक्षरम्पार कहा है—'वीरेद में सब बग बंधा बोधा अक्षरम्पार इस प्रकार अन्न संता ने भी ब्रह्म का तुरीय रूप में बयान किया है।

(४) **ब्रह्म का इन्द्रावीर रूप में वर्णन**—प्रतिबंधनीय ब्रह्म का वर्णन

<sup>१</sup> माहृह्य कारिका का पाठम प्रथम्य दृष्टि

<sup>२</sup> दृष्टि माहृह्योपनिषद् संकरामान्य मंगलाचरण्य का श्लोक अज्ञानं सुदृष्टान्तः स्थिर

बराबर अज्ञानिभिराण्य लाङ्कान् सुख्या भागामय विन्मयतुभतवि विन्मयोर्भागिनाम्ब्राम

अन्त्या पीरवा सार्वभियेपात्रक—पिनिस्युर सुप्रमाचवा भोजवग्ना मयास कया तुरीय

परमबुधमर्ष ब्रह्म पालम्भनामि ॥

करी कबीर हमारा गारिप ॥

चाये पर कदि जय का जिप ॥

<sup>३</sup> कबीर प्रपात्रकौ—पृ० २३४

<sup>४</sup> अन्न मज्जुव्वाक की शानी—पृ० २३१।

उसे इन्द्रादीत ब्रह्मज्ञान भी किया है। संत बरनदास ने लिखा<sup>१</sup> है—जब मन आत्मानुभव में लग जाता है तो उग्र ही इन्द्र मिर जाता है। उस समय म कोई मित्र है और म है कोई वैरी रहता है। छात्र ही यह इन्द्रादीत ब्रह्मज्ञान ही ब्रह्मानुभूति की ब्रह्मज्ञान है। इस ब्रह्मज्ञान का बर्णन करके संतो ने ब्रह्म को इन्द्रादीत स्मरित किया है। त्रिगुणादीत रूप में इन्द्रादीत की अभिव्यक्ति संतो ने उग्र त्रिगुणादीत ब्रह्मज्ञान भी की है। संत सुन्दरदास ने उग्र ही रूप में संकेत किया है।<sup>२</sup>

(५) ब्रह्म का विचार रूप में वर्णन—निर्गुणियों संतो ने अपने ब्रह्म की अनिर्वचनीयता और सूक्ष्मता का संकेत नहीं-कहीं उग्र विचार रूप ब्रह्मज्ञान किया है। संत सुन्दरदास ने ब्रह्म विचार की ईश्वरों का महाईश्वर कहा है।

ब्रह्म को विचार कष्ट और न सुहाव है।

सुन्दर कष्ट सो ईश्वर को महाईश्वर ॥ सुन्दर विलास पृ० ५

संतों ने ब्रह्म का बर्णन परमेश्वर रूप में भी किया है। संत दानू<sup>३</sup> ने उग्र बर्णन करते हुए लिखा है हमने ऐसा परमात्मा प्राप्त हो जिसका कोई बार पार म हो तथा उग्र ही कोई खरम भी न जानता हो। कुछ संतो ने परमेश्वर ब्रह्म का बर्णन उग्र ब्रह्म विष्णु महेश्वर से परे ब्रह्मज्ञान किया है। दानू<sup>४</sup> लिखते हैं—ब्रह्म ही ईश्वर ही किया और विष्णु देवा ब्रह्मज्ञान ब्रह्मज्ञान उग्र परम ब्रह्म ने ही ब्रह्म और ईश्वर की रचना की है तथा उग्र ही में विष्णु को ब्रह्मज्ञान किया है। इसी प्रकार गुणात्<sup>५</sup> ब्रह्म ने भी लिखा है कि वह परमात्मा इतना महान् है कि शिव और ब्रह्म उग्र ही सोच भी नहीं कर सकते। संतो ने कहीं-कहीं परमेश्वर ब्रह्म का बर्णन उग्र ही पर से म्याय कष्ट भी किया है गुणात्<sup>६</sup> साहब ने लिखा है—

ब्रह्म स्वरूप अज्ञानित पूरन चौध पर सो निवासा ।

<sup>१</sup> बरनदास की बानी भाग २ पृ० ८ सप्त १२

<sup>२</sup> सुन्दरब्रह्मज्ञान पृ० १२४ पर देखिये—

त्रिगुण अदीत जैसे अतिविश्व मित्रिगत ।

सुन्दर कष्ट एक पूरन ही होत ।

<sup>३</sup> सुन्दर ब्रह्मज्ञान पृ० २

<sup>४</sup> दानू बानी भाग २ पृ० २३ पर देखिये ।

ऐसा राम हमारे आगे बारबार कोई भंग न पाये ।

<sup>५</sup> दानू भाग २ पृ० १२२

<sup>६</sup> गुणात् पृ० २१

निर्गुण में गुणों की प्रतिष्ठा—सर्वों को निर्गुण ब्रह्म ही मान्य था। चिह्न नियुक्त ब्रह्म केवल मनन विनत और अनुभूति का विषय हो सकता है। वह मनुष्य का आराध्य नहीं बन सकता है। सर्व लोग जानी होने के साथ ही साथ मनुष्य भी थे। यही कारण है कि उन्हें मनुष्य की सुविधा के लिए निर्गुण ब्रह्म में गुणों का आरोप करना पड़ा है। निर्गुण में गुणों का आरोप करते हुए भी उनका ब्रह्म उस धर्म में समुक्त नहीं हो पाया है। बिना मूर्तिरूप और अवतारवादी मनुष्यों का भयवान् होता है। वह गुणों से विशिष्ट होते हुए भी निर्गुण ही है और उपनिषदों के ब्रह्म निरूपण का मंत्र में है। इस मन्त्र के निर्गुण के गुणगान ही सर्वों का लक्ष्य था। सर्व मनुष्यदाय<sup>१</sup> में कहा है—एतद् ब्रह्म निर्गुण के गुण कार्य ब्रह्माणी गाये इती प्रकार दातृ<sup>२</sup> भी निरूपण होने के लिए तैयार हैं।

दातृ निर्गुण गुण करे जाऊँगी हीं पार

इस निर्गुण के गुण अनन्य का अर्थपर हैं। उन सब का वचन करना मानव शक्ति के परे है। इन गुणों का मन्त्र अक्षरी क बर्णनों में नहीं बाँधा जा सकता। फिर भी उसका अर्थन करने के लिए अक्षर ही हमारे पास साधन हैं। निर्गुण के अन्तर्गत गुणों में कुछ गुण-विशेष अस्पष्टनीय हैं। संदेह में वे इस प्रकार हैं—

निर्गुण ब्रह्म की एकता, निरुपता, अद्वैतता और सर्वव्यापकता<sup>३</sup> सर्वों ने कुछ वेदों के एकेश्वरवाद व इस्लात के एकेश्वरवाद से प्रभावित होकर ब्रह्म की एकता पर विशेष बल दिया है। सर्व भीष्मा साहय में लिखा है—

आदिहि एक अंत पुनि एकै मद्दि एक विचारै ।

इसी प्रकार सर्व<sup>४</sup> दातृ ने भी एक समय पर एक ही भङ्गी निम्नलिखित उक्ति में कहा ही है—

एकहि एकै मया अनन्त एकहि एकै मागे बंद ।

एकहि एकै एक समान एकहि एकै पर निबान ॥

<sup>१</sup> मनुष्यदाय की वाणी पृ० १०

<sup>२</sup> दातृवाणी भाग २ पृ० १८२

<sup>३</sup> क—सर्वोक्तान्मेवमत्र आसीद्ब्रह्मसोऽग्निमीयम् । पृ० ६।१।१

ख—न तु तद्दग्निमीयमस्ति ततो न्वर विमर्शं बतस्येत् । पृ० ७।१।२३

ग—स एवापस्तात स उपरिधान् स परवान् स पुरस्तात् स इविद्यतः स उत्तरतः स परत् सर्वमिति । पृ० ७।२।११

<sup>४</sup> भीष्मासाहय की वाणी पृ० ७

<sup>५</sup> दातृवाणी भाग २ पृ० १२१

एकहि एकै त्रिमुबन सार एकहि एकै अगम अपार ।

एकहि एकै निर्मे होइ एकहि एकै आसन कोइ ॥ इत्यादि ।

संत कबीर<sup>१</sup> ने तो एकेश्वरवाद की स्वीकृति अनेक स्थानों पर की है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है तब्य तब्य ऊहीं को प्राप्त होता है जो उस एक परमात्मा को एक ही करके मानत हैं। इसी प्रकार एक वृक्ष के रूप पर उन्होंने लिखा है<sup>२</sup>—

कई कबीर एक राम अपहु रे हिवू तरक न कोई ।

संत लोग ठक्की एकता में ही नहीं अद्वैतता में भी विश्वास करते थे। सुंदर दास<sup>३</sup> ने लिखा है—

ब्रह्म निरन्तर व्यापक अग्नि अरूप अलक्षित है सब माही ।

पल्लव अक्षर<sup>४</sup> है कि तबमें कर्म-अरथ सब भी नहीं है—

आपुहि कारन अपुहि कारज बिरबरूप दरसाया ।

इसी प्रसंग में हम बहुदेववाद की कथा भी कर देना चाहते हैं। संत लोग बहुदेववाद के विरोधी थे। उन्होंने सर्वत्र बहुदेववाद की निंदा की है। प्रथम यह उल्लास है कि ऐसा उन्होंने किसी द्वेषभावना से किया था या किसी तार्किक कारणों से। संत लोगों में कभी भी किसी भी प्रकार की द्वेषभावना नहीं थी। यदि उनमें द्वेषभावना होती तो वे संत ही क्यों कहे जाते। निर्गुण संतों की धारणा बड़ी विशेषता रही थी कि वे किसी प्रकार के भेद-भाव या पक्षपात से प्रेरित नहीं हुए थे। उनका विचार था<sup>५</sup> ।

मेयन पक्ष निरन्तर लक्ष्य और नहीं कछु बाद बिबाद् ।

ये सब लक्षण है जिन मंहि सो सुन्दर के तर है गुठ दादु ॥

ऐसी अवस्था में उन्हें द्वेषभावना से प्रेरित करना उनके साथ अन्याय करना है। बहुदेववाद का लक्षण उन्होंने कई कारणों से किया था। उनकी कानियों में इनमें से कुछ कारणों की अभिव्यक्ति भी हुई है।

जो लोग बहुदेववाद के अनुयायी हैं उनमें एकनिष्ठता नहीं आ जाती। एक निष्ठता के अभाव में बहुदेववादना से उनकी अवरुध बेरहा के पुत्र पैठी हो जाती है। जिस प्रकार बेरहा के पुत्र के पिता का पता नहीं रहता उसी प्रकार बहुदेववादियों

<sup>१</sup> कबीर प्रियवक्त्री पृ० १२२

<sup>२</sup> कबीर प्रियवक्त्री पृ० १०९

<sup>३</sup> स० दा० संग्रह भाग २ पृ० १०२

<sup>४</sup> पल्लव साहच भाग २ पृ० ५

<sup>५</sup> सत्य सुभाषार पृ० ६११

अ कोई एक दृष्ट नहीं होता। एक दृष्टदेव के अभाव में उपासकों का उद्धार नहीं हो सकता। क्योंकि उनकी भावना बहुमुखी रहती है इसलिए उनका मन एक बगल केन्द्रित नहीं हो पाता। संत<sup>१</sup> वादू ने यह ठीक-ठीक छोटी-छोटी दबाइयों के रूप में प्रस्तुत किया है। मनुष्य मुक्ति की कामना से अनेक देवी-देवताओं की उपासना करता है किन्तु वे उसकी मूल है क्योंकि संतार रूपी पहान की याद में ये छोटी-छोटी दबाइयाँ किसी भी उपयोग की नहीं हो सकती। इसके लिए तो एक परब्रह्म परमात्मा रूपी दबा ही चाहिए। संतों ने बहुदेववाद की निंदा इसलिए भी की थी कि वह उनकी अन्तर्मुखी साधना के विरोध में भी पड़ता था। मूर्तिपूजा और बहुदेव केवल बहिर्मुखी वृत्तिवालों के लिए ही उपयोगी हो सकता है। अन्तर्मुखी साधनावाले बटवारी आत्मराम को ही माया नवाते हैं। पण्ड ने लिखा है<sup>२</sup>—

ब्रह्म बिष्णु महेश न पति ही न मूरत चित्त लहीं ।  
 जो पशय मोरे पटमा बसत है बाही को माय नमईहीं ॥

कुछ लोगों की धारणा है कि संतों ने बहुदेववाद और मूर्तिवाद का खंडन इस्लाम की श्रेया से किया था किन्तु यह मत अतिपूर्ण है। भारत के अन्तर्मुखी आध्यात्मिक साधना में संलग्न संत सदा से ही इन दोनों का विरोध करते रहे हैं प्रमाण रूप में हम भविष्यपुराण की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं—

अज्ञानेन मयादेव यत्कृतं मूर्तिकल्पनम् ।  
 तत्सर्वं कृत्वा शिव समरथ भधुसूदन<sup>३</sup> ॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संत लोगों ने बहुदेववाद का निराकरण करके एकत्ववाद की प्रतिष्ठा की थी। किन्तु उनका एकत्ववाद इस्लामिक एकत्ववाद से भिन्न है। एकेश्वरवादी भावना पूर्ण निर्गुण नहीं रही या सकती। क्योंकि इस्लाम में अल्लाह के साक्षर रूप की स्मरणता भी की गई है। वह साक्षर रूप भौतिक और मानवी प्रकीर्त होता है। किन्तु संतों ने कहीं भी भौतिक मानवीय रूप के प्रति भ्रम नहीं प्रकट की है। भौतिक मानवीय रूपों में वह सचीव प्रत्यक्ष संत को ही ईश्वर रूप समझते थे।

<sup>१</sup> जीवन शैली से गीता का यह अर्थ भी देखा जा सकता है।

बादू हुए के पाद में गेनी शरू शार ॥

सोह अनमै सोह अपकी सोह सभद तनमार ।

सुबार्ता ही सादिव मित्रे मन के अर्द्धि चिन्तार ॥ बाहुबानी भाग १ पृ० १३३

<sup>२</sup> पण्डू साहब की बाबी भाग ३ पृ० ९

<sup>३</sup> भविष्यपुराण ३।०

पद्यों<sup>१</sup> आदि कर्मों ने कव्य को ही ताकार ब्रह्म के रूप में पूजने का उपदेश दिया है। कर्मों की बानी में ऐसे बहुत कम स्थान मिलते हैं जहाँ निर्गुण ब्रह्म के आधिदैविक बर्चन किये गये हों। केवल कबीर आदि कुछ संतों ने ही भक्ति के मानोम्येष में कहीं कहीं पर समुच्च ब्रह्म का बर्चन वैष्णव भक्तों के अनुरूप किया है। इस प्रकार के बर्चनों पर हम आगे विचार करेंगे। जहाँ पर हम इतना ही स्पष्ट करना चाहते हैं कि कर्मों का एकलबाद निती प्रकार की आधिदैविक भावना से प्रभावित नहीं था। उनका एकलबाद पूर्ण आत्मनिष्ठ है। यही कारण है कि ब्रह्म को उन्होंने जहाँ पर एक कहा है वही वसे वे नित्य निर्दिष्ट निरामय निर्गुण निरंजन ब्रह्मवद आदेव तस्य भो मानते थे<sup>२</sup>। उधे उन्होंने 'अथ' 'उरबवासी बाहर-भीतर ज्ञात भो कहा है। वह लिखते हैं—'आत्म-स्थित' करते करते आदेवज्ञान की उत्पत्ति होती है। आदेव-ज्ञान की उठ अनुभूति की अवस्था में एक ब्रह्म की अवधारणा का पूर्ण अनुभव होने लगता है। उस समय एकलबाद पूर्ण ब्रह्मवाद और लक्ष्मणवाद में परिवर्तन हो जाता है। कर्मों ने इस लक्ष्मणवाद और ब्रह्मवाद का बर्चन अनेक प्रकार से किया है। इनमें तीन प्रकार विशेष उल्लेखनीय हैं—१—ब्रह्म बर्चन के रूप से, २—ब्रह्मणीय और ब्रह्म का लक्षण प्रदर्शित करने के ब्याप से। ३—ब्रह्म और माया के मेद को स्पष्ट करने के ब्याप से।

प्रथम प्रकार के उपलक्षण के रूप में हम कर्म उपलक्षण<sup>३</sup> की निम्नलिखित वक्ति से लक्षते हैं—

ब्रह्म अलंकित है अथ उरब बाहिर भीतर ब्रह्म मकासी ।  
 ब्रह्महि सृष्ट्यम स्युज अहाँ जगि ब्रह्महि साहिन ब्रह्महि बीसे ॥  
 सुन्दर और कछू मत भानहु ब्रह्महि देखत ब्रह्म तमासी ।  
 ब्रह्महि माहि विरा बत ब्रह्महि ब्रह्म बिना जिनि धीरहि जानी ॥

दूसरे प्रकार के उपलक्षण भी कर्म उपलक्षण<sup>४</sup> में लक्षता से मिल जाते हैं। एक ब्रह्म का अनेक बीबों के लक्षण प्रकट करते हुए वह लिखते हैं—

<sup>१</sup> अलंकरण अक्षरार चाप हरि बरि के भाप । पद्य साधन की बानी जग १ पृ० १३

<sup>२</sup> ब्रह्म निर्दिष्ट निरामय निर्गुण नित्य निरंजन और न माने ।

ब्रह्म अलंकित है अथ उरब बाहिर भीतर ब्रह्म मकासी ३ सु० वि० पृ० १२६ ।

<sup>३</sup> सुन्दर विचारत यू अने आदेवज्ञान चाप हूँ अरि ब्रह्म एक पदचामी है । सु० वि० पृ० १२६

<sup>४</sup> सुन्दर विचार—पृ० १२६, १२७ ।

<sup>५</sup> " " पृ० १२६, १२७ ।

एक समुद्र तरंग अनेकदु कैसे के कीजिये मित्र विषेका ।  
 व्रत कछु नहिं देखिये सुन्दर ब्रह्म अखंडित एक को एक ॥

सुवीर प्रभर का उदाहरण भी सन्त सुन्दरदास<sup>१</sup> श्री श्री बानियों से लिया जा  
 सकता है—

ब्रह्म ही है सब ठौर वृसरो न कोऊ और  
 मस्तु को विचार किये मस्तु पहिचानिये ।  
 पंच तत्व तीन गुण विस्तरे विविध भौति  
 नाम रूप अहाँ लागि मिथ्या माया मानिये ॥

निर्गुण ब्रह्म की सच्चिदानन्दस्वरूपता—वेदांत ग्रन्थों में निर्गुण  
 ब्रह्म श्री सच्चिदानन्दस्वरूपता पर विशेष प्रकाश डाला गया है। ब्रह्म श्री सच्चिदानन्द  
 स्वरूपता संत ऋषियों को भी मान्य थी। सन्त दरिया साहब<sup>२</sup> ने 'संत स्वरूप ओई विमल  
 मुषाय' "शिलक उरुषी सतस्वरूपता श्री ओर संकेत किया है। संत सुन्दरदास<sup>३</sup> ने  
 सुन्दर चैतन्य रूप सुन्दर विषयात् है" शिलक ब्रह्म के चैतन्य स्वरूप पर प्रकाश डाला  
 है। ब्रह्म का चैतन्यस्वरूप ज्ञानमय भी है। उपनिषदों में चैतन्य ब्रह्म श्री ज्ञानरूपता  
 का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। संत सुन्दरदास ने भी ब्रह्म को केवल ज्ञानरूप  
 कहा है। ब्रह्म श्री ज्ञानन्दरूपता से भी उन्नत होना पूर्णतया परिचित थे। दरिया साहब<sup>४</sup>  
 ने उसे मुक्त सर्वस्वरूप कहकर ब्रह्म श्री ज्ञानरूपता श्री ओर ही संकेत किया है। संत  
 सोम भी ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप से परिचित थे।

निर्गुणतावाचक विशेषणों का आरोप—संत ऋषियों ने अपने निर्गुण  
 को बहुत से निर्गुणतावाचक विशेषणों से भी विधिष्ठ किया है। ऐसे विशेषणों में  
 निर्द्वै<sup>५</sup> निरामय<sup>६</sup> निरगुण<sup>७</sup> निरंजन<sup>८</sup> आदि विशेष प्रमुख हैं।

निर्गुण ब्रह्म पर पूर्णता का आरोप—बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म के

<sup>१</sup> सुन्दर विद्याम ५० १२६ ।

<sup>२</sup> दरिया सागर—५० २४ पंक्ति १२

<sup>३</sup> सुन्दर विद्याम—५० १६ ।

<sup>४</sup> दरिया सागर—५० २४ ।

<sup>५</sup> सुन्दर विद्याम—५० १२६—पंक्ति—१०वीं

<sup>६</sup> " " " "

<sup>७</sup> " " " "

<sup>८</sup> " " " "



पूर्व मास का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। उसमें लिखा है<sup>१</sup>—बह पूर्ण है और पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति हुई है।

ब्रह्म की इस पूर्वात्म्य की उपासना में संत लोग भी आस्था रखते थे। संत सुन्दरदास<sup>२</sup> ने लिखा है कि जो व्यक्ति निरंतर पूर्ण ब्रह्म के विचार में निमग्न रहता है। उसे क्रम-क्रोध-लोभ नहीं सताते हैं। कबीर<sup>३</sup> ने तो 'पूरे की परचा' ही प्राप्त कर लिया था। दादू<sup>४</sup> ने उसे पूर्ण परमानन्द कहा है।

**कर्तृत्व शक्ति का आरोप**—संतों ने अपने निर्गुण ब्रह्म पर कर्तृत्व शक्ति का आरोप भी किया है। संत कबीर<sup>५</sup> ने एक स्थल पर परमात्मा को कुलाल कहा है। बिच प्रखर कुलाल अनेक सिंघोने बनाया है उसी प्रखर परमात्मा अनेक जीवों की रचना करता है। संत दादू<sup>६</sup> ने उसे इस प्रपञ्च का विधाता कहा है।

संतों ने अपने निर्गुण ब्रह्म पर कुछ कोमल मासप्रधान एवं सद्भावमूर्तिमूलक विशेष्यों का आरोप भी किया है। संत कबीर<sup>७</sup> ने उन्हें गरीबनिवाह कहा है। संत मीसा<sup>८</sup> ने कन्हामय कहा है। इस प्रकार के विशेष्यों का आरोप अविच्छेद मक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से हुआ है। इन विशेष्यों के आरोप से उनका निर्गुण ब्रह्म हरब हीन और वंचित होने से बच गया है।

### भक्तिमार्गियों के दृष्ट पर ब्रह्म-निरूपण

ऊपर हम कह चुके हैं कि संतों की विचारधारा ज्ञान मक्ति और योग का मिलन बिन्दु है। सूखी मन ने उसे प्रेरणा दी थी इसीलिए उनका ब्रह्म निरूपण चारों के ब्रह्म स्वरूपों से प्रभावित और अनुभावित है। संत कबीर<sup>९</sup> ने भक्ति के महत्त्व का संकेत

<sup>१</sup> पूर्वमहा पूर्वमिदं पूर्वात्पर्यं पुरन्धते ।

पूर्वस्य पूर्वम्यदाय पूर्वमेवावस्थितते ॥ १।१।११ बृहदारण्यकोपनिषद्

<sup>२</sup> पुरुष ब्रह्म विचार निरन्तर काम च क्रोध च लोभ न मोह । सुन्दर किदास पृ० १

<sup>३</sup> कबीर प्रभावशी—पृ० ३२ साक्षी ।

<sup>४</sup> दादू काशी भाग १ पृ० २७ साक्षी ८२

<sup>५</sup> कबीर प्रभावशी—पृ० ७१

<sup>६</sup> दादू काशी भाग २—पृ० १८३ पदका पत्र

<sup>७</sup> कबीर प्रभावशी—पृ० २६६

<sup>८</sup> संत मीसा साहब—पृ० २६

<sup>९</sup> ब्रह्म जग मास भक्ति नहीं करिहो तब जगि भक्त्यागत क्यों करिहो । कबीर प्रभावशी

करते हुए लिखा है कि बिना भगवान् की भक्ति के कोई भवसागर से पार नहीं हो सकता। इसी प्रकार दरिया<sup>१</sup> साहब ने भी लिखा है—भक्ति मात्र ही कल्याण में लक्ष्य विपत्तियों को दूर करनेवाला है। तथा भक्ति की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। संतो की भक्ति के प्रति इसी निष्ठा ने उनके सामगामीय ब्रह्म को वहीं वहीं भक्तिमार्गीय भगवान् के रूप में बदल दिया है। संत दरिया<sup>२</sup> साहब ने स्पष्ट लिखा है—भगवान् बड़े ही मकरलक्ष और संतो को मुक्त देनेवाले हैं—अपनी प्रभुता से वह मत्को के कष्ट दूर कर देते हैं। तथा उन्हीं के हेतु ध्यान करने पर वह अभ्यक्त से व्यक्त हो जाते हैं। संता में भक्तिमात्र की कमी नहीं थी यह हम अभी ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं। इसीलिए उनका अभ्यक्त निर्गुण ब्रह्म उनकी भक्ति भावना के प्रभाव से व्यक्त लक्ष्य हो गया है। उसमें उन्होंने भक्तिभावना के अगुरूप सहृदयता पूर्ण गुणों का आरोप किया है। भगवान् को इवित करने के लिए मत्क अपनी छुद्रता और भगवान् की महानता का प्रदर्शन करना चाहता है इसीलिए वह अपने भगवान् में विश्वास के सहृदयता प्रदान सभी गुणों का आरोप करता है। आत्मबल की महत्ता के वर्णन की भावना से प्रेरित होकर मत्क भगवान् को व्यक्तिगत प्रदान कर अनंतकल्याणमय, मत्क-बन्धन, लभदशी आदि रूपों में चित्रित करता है। उनका भगवान् इतना संवेदनशील है, इतना कल्याणमय है कि वह तीन लोक को पीर जानता है और गरीब निवाज है।<sup>३</sup> दयाबाई<sup>४</sup> के शब्दों में पार बंद और शाब्द उभी की कृपा का परिचय है। उसकी कृपा से ब्रह्म<sup>५</sup> तिनका हा जाता है और तिनका ब्रह्म हो जाता है। परंतु सागर में तैरने लगते हैं।<sup>६</sup> संत दरिया के शब्दों में वह दयानिधि और भक्तस्वत है<sup>७</sup> उनका भगवान् केवल दयालु कल्याणमय और गरीबनिवाज ही नहीं

<sup>१</sup> भक्तिमात्र ब्रह्म बिना सब हरना। तथा भक्ति महात्म गुण नहीं गई ॥ दरिया सागर ५० २३

<sup>२</sup> दरिया सागर—५० २०

मुझह शक्त सबद बिह सारा। दयानिधि भव क्षिप्तु बचारा ॥

मत्क बपुख सल्लह मुपराई। जन के हुर मते प्रमुताई ॥

<sup>३</sup> तीन लोक की जाने पीर—अबीर प्रपायत्री ५० १२४—अबीर को स्वामी गरीब निवाज ५० प्र० ५० १११

<sup>४</sup> वेद ब्रह्माण प्रमु तुम चिरपा की धार। सल्ल मुपाधारा भाग २ ५० १००

<sup>५</sup> बड़ी तिनका बरन दो निमके ब्रह्म बनाप। दयाबाई की बानी ५० ११।

<sup>६</sup> मिश्र तुम्हारी हे प्रमु सागर गिरि बगराई। दयाबाई की बानी ५० ११।

<sup>७</sup> दरियासागर—५० २०। 'भक्तबपुख संनल मुपराई।

शीलामय भी है। सहजोपाई<sup>१</sup> के शब्दों में उच्चैः शैलीय बड़ी मुहाबती है। उच्चैः शैलीय को वैश्वर्य सन्तों का मन प्रकट होता है। वह शीलामय परम शौर्यमय भी है। दयावादी ने उसके रूप को अज्ञान कहा है। उसके रूप में अनेकों सुखों की ही ब्योति<sup>२</sup> विस्तार देती है। उच्चैः शैलीय का बर्णन सन्तों ने बड़े खूबसूरत शब्दों में किया है। खूबसूरत के प्रयोग में उच्चैः शैलीय का विशेषरूप से उद्घाटन किया जाएगा। दयावादी तो उच्चैः शैलीय अद्भुत छवि पर स्वीकार<sup>३</sup> की। मगवान् का इतना मायमय बर्णन करते हुए भी उच्चैः शैलीय शोक-मय्य होवेबासे मगवान् को मानने के लिए तैयार न थे। उन्होंने बार-बार पाश्चात्त्य की है कि आत्मा ही राम है<sup>४</sup> हमें उच्चैः शैलीय की पूजा करनी चाहिए और यदि कोई मन्त्र मगवान् की पूजा करना ही चाहता है तो उसे वास्तु सन्तों की पूजा करनी चाहिए<sup>५</sup> क्योंकि उच्चैः शैलीय के मन में उच्च और प्रभु एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं<sup>६</sup>।

कुछ ऐसे भी निर्गुणियों उच्चैः शैलीय की कद्रता पर ही नहीं बने रहते थे। ऐसे लोगों ने कभी-कभी अकटापि मगवानों के प्रति भी आस्था प्रकट कर दी है। सहजोपाई<sup>७</sup> ने स्पष्ट शिखा है कि भक्तों का अन्तर्गत करने के लिए निर्गुण मन्त्र ही उच्चैः शैलीय हो जाता है। ऐसे मन्त्र को वह प्रकट करती हैं। वह वास्तव में

<sup>१</sup> तेरी शीला अपि क सोहाबनी।

इति-शैलीय मन ब्रह्मसत्त है सन्तान के मन मावनी।

उच्च गुण करि ब्रह्म बनावो अरु बन्वो अरु अरु भयो व इत्यादि सहजोपाई की बानी पृ० ३१।

<sup>२</sup> सीय को रूप अनूप छवि कोटि मात्र उच्चैः शैलीय।

इति सकल मुख मित गयो प्रकट भयो सुखकर व दयावादी की बानी पृ० १२।

<sup>३</sup> अद्भुत छवि जिनकी बानी।

इति अरु मन बान व दयावादी की बानी पृ० १।

<sup>४</sup> क—इति के ब्रह्म नहीं पकै अतम राम। इति बानी भाग १ पृ० १७।

ख—उच्चैः शैलीय उच्चैः शैलीय है। इति पृ० ७३।

ग—अतम राम सकल अरु इति। गुणात्त अरु अरु की बानी पृ० १२२।

<sup>५</sup> कबीर प्रकटकी—पृ० १३१ पंक्ति १३२वाँ पद

<sup>६</sup> प्रभु में सत्त सत्त में प्रभु है। मीठा साहब की बानी पृ० ३।

<sup>७</sup> निर्गुण से सगुन भय मक अन्तर्गत द्वार।

सहजो की ब्रह्मसत्त साहब अरु अरु व सहजोपाई ख० सु० सा० अ० १ पृ० १३९

सगुण और निगुण में कोई अंतर नहीं मानती थी।<sup>१</sup> संभवतः इसीलिए उन्होंने ब्रह्म मंडल और बरोहिनन्दन के प्रति आत्मा प्रकट की है—

घन्य असोहा मृन्द घन घन ब्रह्म संबल वंस ।

आदि निरंजन सहस्रिषा मयो ग्याल के मेप ॥<sup>२</sup>

इन पंक्तियों में सहस्रोहार ने अक्षतारवाद के प्रति स्पष्ट रूप से आस्था प्रकट की है। किंतु यह उनका वास्तविक पक्ष न था। व्यवहार पक्ष में ही वह सगुणवादिनी थी। वास्तविक दृष्टि से वह निर्गुणवादिनी ही थी। इसीलिए उन्होंने अपने ब्रह्म को 'ई माही' ही 'यद्वैत' कहा है। अभिन्नं च तस्य कट्टर निर्गुणवादी ही थे। यदि मक्ति के आवेश में एक आश रक्ता कर उनमें से किसी एक आप ने यदि अक्षतारी सगुण ब्रह्म के प्रति आस्था प्रकट कर दी है तो उस आधार पर हम उन्हें सगुणवादी नहीं कह सकते। वे मूलतः नियोगवादी ही थे। उन्होंने अपने निर्गुण की अक्षतारवादा सगुण रूप में बहुत कुछ व्यक्ति के दृष्ट पर की है। एही लोप मानसिक सगुणवाद में विश्वास करते हैं। वास्तविक दृष्टि से वे निर्गुण ब्रह्म को मानते हैं और साधना की सुगमता के लिए उनका गुह निर्गुण को सगुण रूप देकर उस रूप से शिष्य को परिचित कर देता है। शिष्य उसी रूप में अपनी समस्त माधनार्थे ली असाधना केन्द्रित कर देता है। इस तरह से अक्षत ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी साधक के मनःक्षेत्र में सगुण हो जाता है। मक्ति-वादियों से उनकी सगुणता विस्तृत भिन्न है। मक्तों का मतवान् लारे विरह कर बमान भाव से उदास होता है। किंतु एही का उपास्य केवल व्यक्ति का उदास होना है। उदास रूप व्यक्तियत होता है किंतु उसके गुण अक्षर्य लार्थीम होत हैं। सक्तों की सगुण साधना मक्तों और व्यक्ति की सगुण साधना के सम्य की रेश है। वह दोनों से ही समाहित होते हुए भी दोनों से ही विलक्षण है। व्यक्ति के अक्षरूप से निर्गुण आत्मतार के मानसिक सगुणरूप में विरक्त करते हैं। किंतु अक्षत सगुण उदास केवल वैयक्तिक नहीं होता। वह मक्तों के सगुण मतवान् के लक्ष लारे मानसमात्र का होता है। किंतु एही सदैव मानसिक ही है। इस संसार के बीच उक्तरी अक्षतारवादा नहीं ही लारी उक्तरी रूप मति-अ केवल हृदय की माधनाओं के कन्द्रीधर्य के लिए मनः मंदिर में की जाती है। संव दान् में एही बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है मन मंदिर में निरंजन देव की मति-अ कर आत्मा पन्ने और मेम पुन से पूजा करनी चाहिए। एही प्रकार उन्होंने एक दूसरे रूप पर लिखा है—

<sup>१</sup> निगुण-सगुण भेद व कार्य —सप्त सुभाषार भा० २ वृ० ११२

<sup>२</sup> सप्त सुभाषार भा० १ वृ० ११२

<sup>३</sup> " " " " १११

<sup>४</sup> सगुणवादी भाग १ वृ० ०२ ।

<sup>५</sup> " " " " १ वृ० ०२ ।

राजू निरखन पूजिय पाटी पंच चढ़ाई । १७७ १० १

मन मंदिर में प्रतिष्ठित अगम अगोचर का वह रूप केवल मनु देख पाता है<sup>१</sup> ।

अगम अगोचर रूप है कोठ पावै हरि को दास ।

मावनाझी के केन्त्रीअरथ के अरथ भक्ति के आर्षेय<sup>२</sup> में किये गये उनके उगुण बर्णन अवतारवादी मन्त्रों के मगवान् संबंधी बर्णनों से होकर 'संत' दिखलाई पड़ते हैं । संत कबीर<sup>३</sup> का एक उद्धरण देखिए—

भक्ति नारदादि मुकादि बहिव जवन पंकज मामिनी ।

भक्ति भंजसि मूपन पिया मनोहर देव-देव सिरोबनी ॥

मुधि नाभि चन्दन चरजिता वन रिवा मन्दिर भीतर ।

राम राबसि नैन बानी मुखान सुन्दर सुन्दरा ॥

बहु पाप परबत छेदना मौ ताप दुरित निवारणा ।

कई कबीर गोविन्दु भज परमानन्द बन्वित कारणा ॥ १

दास, देवता परलदास, बरिया साहब, लहरोबाई आदि संतों में भी इस प्रकार के बहुत से बर्णन मिलते हैं । संतों का इस प्रकार के बर्णनों को देख करके ऐसा विश्वास होने लगता है कि वे संत लोग अवतारवादी सगुणता में भी विश्वास करते थे किंतु बात ऐसी नहीं है । संत कबीर ने स्पष्ट लिखा है कि उनके राम ने ब्रह्मण्य के बर अवतार नहीं लिया था । संत मल्लूदास ने भी अवतारवाद का खंडन करते हुए लिखा है—इस अवतारों के भ्रमभक्त में किसी को नहीं पढ़ना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के संतार में सैकड़ों रूप दिखलाई पड़ते हैं<sup>४</sup> । मल्लूदास<sup>५</sup> ने अवतारवाद को स्वीकार न करने का अरथ भी दिया है । वह लिखते हैं कि २४ अवतारों में हमें इसलिए आस्था नहीं होनी क्योंकि वे सब काल के प्राप्त बने थे । प्राप्त भी ठीक है यदि वे ब्रह्म रूप होते तो फिर वे ब्रह्म के प्राप्त नहीं बन सकते थे । ब्रह्मभक्त की सीमा से परे है ।

मक्ति मगवान् के प्रति समर्पित की गई लालिक अनन्यातकि का नाम है । ये आतकि सगुण और ताकार के प्रति ही हो सकती है क्योंकि मक्ति में भक्त को मगवान् में अपनी समस्त वृत्तियों का अर्पण करना पड़ता है । यह अर्पणभाव वह कर सकता है जब मगवान् के प्रति ठठे स्वतः प्रेम और आर्पण हो । प्रेम और आर्पण की उत्पत्ति प्रायः तीन कारणों से हुआ करती है—१—पूर्व जन्म के संस्कारों के फल

<sup>१</sup> पारी साहब की रत्नावली पृ २२ ।

<sup>२</sup> कबीर प्रियावली पृ० २१८ ।

<sup>३</sup> इस अवतार देखि मत भूखे वेने रूप पड़े । मल्लूदास की बानी पृ० १९ ।

<sup>४</sup> इस कबीर अवतार कवि के बस में पारै । पल्लू साहब की बानी भाग १ पृ० ४६ ।

रूप २—सौंदर्य रत्न बान् की कामना से १—स्वार्थ-माषना से । शक्तिों में प्रेम का आकर्षण मात्र प्रथम दो कारणों से दिसलाया जाता है । मनुज लोग अधिष्ठाता शक्ति को शक्तों से आकर्षण बुझा करते हैं । अन्य लोग भक्तिमार्ग और सखी मठ दोनों से प्रभावित थे । अतएव उनमें हमें आकर्षण के हीनों हेतुओं के प्रति आस्था दिखाई जाती है । इस विषय का विस्तार रहस्यवाद के प्रसंग में किया जायेगा । यहाँ पर हम रहना ही करना चाहते हैं कि आत्मिक के केन्द्रोपरण के लिए किसी आशय की कड़ी आवश्यकता होती है । ये आशय कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे—

- १—मगवान् की मूर्तियाँ अथवा मानव रूपवाले मगवान् क
- २—मानव रूपवाले मगवान् के सभी आशय अथवा देवता अवतार आदि ।
- ३—बुद्धि विनिर्मित आशय अथवा मगवान् के विराट् स्वरूप का वर्तन ।
- ४—माषना विनिर्मित आशय अथवा मगवान् के मानसिक साधन समुच्चय रूप ।
- ५—मठीवत्सलक आशय अथवा प्रतीच्ये के रूप में मगवान् का बचन ।

अन्य लोगों ने प्रथम तीन प्रकार के आशयों की उपस्था की है । प्रथम हीनों प्रकारों के आशयों की विशेष सम्पत्ता माखीय मन्त्र भागों में रखी है । चौथे प्रकार के आशयों की प्रतिष्ठा शक्तिों में मिलती है । संत लोगों ने कुछ शक्तिों के अनुकरण पर और कुछ माखीय भक्तिमार्गियों के अनुकरण पर तीसरे प्रकार के आशयों की करना ही अधिक की है । वे निर्गुण और निरञ्जन आत्मतत्त्व पर भक्तिमार्गियों के गुणों का आशय करते ठके मन क्षेत्र में समुच्चय बना लेते हैं और फिर तबभी पूजा का उद्देश्य देते हैं । उन्होंने अपनी माषना विनिर्मित आत्म के मानसिक समुच्चय रूप के प्रति अपनी माषनाओं का समर्पण कई प्रकार के भावों से किया है । उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

- क—सेव्य-सेवकभाव से ।
- ख—व्यक्तिय भाव से ।
- ग—मातृपुत्र भाव से ।

सेव्य सेवक भाव से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी मगवान् की करतना स्वामी के रूप में की है और उत्तर श्रेष्ठ प्रभु में पाये जानेवाले समस्त गुणों का आशय किया है । उनका स्वामी बैठा कि ऊपर संस्थित कर चुक है परम कर्मधाम पर मन्त्रवत्सल गर्व निवास है । इस सेव्य सेवक सम्बन्ध को प्रगट करते हुए दास कहते हैं—

दास<sup>१</sup> सेवक धम का पूजा हारा न शक—संत दरिवा<sup>२</sup> ने<sup>३</sup> इस सम्बन्ध की अभिव्यक्ति और भी शब्द शब्दों में की है—गुम मेरो कारे मैं तोर दास ।

<sup>१</sup> दास नामी भाग १—पृ० ११

<sup>२</sup> दरिवा साहब के पुत्रे हुए वर—पृ० १३

संतों का वास्तव्य मान बहुत बन्दित था । उससे प्रेरित होकर उन्होंने अपने भगवान् की रूपमा कमी माता रूप में कमी पिता रूप में की है । उसमें उन्होंने माता-पिता के श्रेष्ठतम गुणों का आरोप भी किया है । संत कबीर<sup>१</sup> ने हरि ब्रजनी में बालक तोय—छूकर तथा सइबोवाई<sup>२</sup> ने—हम बालक तुम मान हमारी पलपल माँ के रोखबारी—लिखकर भगवान् के प्रति अपनी मक्ति माननाएँ प्रदर्शित की हैं । साधुर्विभाष के उदाहरण संत कबीरों में बहुत अधिक मिलते हैं । इसके लिए हम उन्हें कुछ संत में सृष्टियों का श्रेणी मान सकते हैं । उन्हीं का अनुकरण करते हुए उन्होंने अपने को पिपत्ता और भगवान् को पिपत्त के रूप में कल्पित किया है । संत कबीर<sup>३</sup> ने स्पष्ट लिखा है कि—

हरि मेरा पीछे मैं हरि की बहुरिया

भगवान् के विषयम रूप की रूपमा दगू, सइबोवाई, चरन दास, मीसासाहब, गुस्तास साहब आदि अन्य संतों ने भी की हैं । संतों ने किस प्रकार भगवान् की रस कस्ता की प्रतिष्ठा की है उन्हें किस प्रकार विष्णु चौम्बैविशिष्ट दिखलाया है इसकी सुन्दर झँकी खस्ववाद के प्रसंग में दिखाई जायेगी ।

संतों ने भगवान् के तृप्ति विभिन्नित साकार विग्रह का भी वर्णन किया है । उनका यह विग्रह विघट्ट रूपमा बदलावा है । वैदिककाल के सामनार्थियों ने जब शुष्क निर्गुण ब्रह्म से अपना अभ्यस करते नहीं देखा तो उन्होंने परमात्मा के तृप्तिमूलक विघट्ट रूप की रूपमा की झँकी खस्व<sup>४</sup> पठुर्बे<sup>५</sup> महामाख<sup>६</sup> उपनिषद्<sup>७</sup> गीता<sup>८</sup> में प्रकृत की

- <sup>१</sup> कबीर प्रभावली—पृ० १२३
- <sup>२</sup> सइबोवाई सन्त सुबाहार—पृ० १२६
- <sup>३</sup> कबीर प्रभावली—पृ० १२२
- <sup>४</sup> खग्नेह बराम मरदह पुदर सूक्त ।
- <sup>५</sup> पठुर्बे पुदर सूक्त इण्डिय ।
- <sup>६</sup> महाभारत में वेदिक—शान्ति पर्व—२७।२०
- <sup>७</sup> उपनिषद् में वेदिक—

अग्नि मूर्धा बहुरी बग्दसूरी  
 दिश ओने बाग किहूतारखवेकः  
 बापुज्जयो हृदय विरकम्पवपदम्पा  
 पूष्पी होच सर्व भूतान्तरात्मा । सुपद्वेपनिषद् २।





दिव्यी श्री निर्गुण कामधारा और उच्चरी दारानिक वृत्तमि  
इस अर्थन तेज न्य बर्चन नहीं किया जा उचना । इसमे विवने देला है वही  
बानवा है—

पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।<sup>१</sup>

कहिये कूँ रोमा नहीं देला ही परवान ॥

॥ संतो ने अपने निर्गुण ब्रह्म का उगुयी धरम प्रतीको द्राय भी किया है । प्रतीक  
प्रकृति भी अरकण्य प्राचीन है । इन्द्रारपकोनिक्र और तैत्तरीय<sup>१</sup> अपनिपदो में इनका  
संबंध मिलता है । ये प्रतीक भी दो प्रकार के दिलाई देते हैं । एक मूर्त और दूसरा  
अमूर्त । मूर्त प्रतीको का बर्चन हमें इन्द्रारपकोनिक्र में मिलता है । वहाँ परमात्मा  
का उपाठना आदित्य पत्र विद्युत् आकाश वायु आदि प्रतीको के माध्यम से बतलाई  
गई है । तैत्तरीयोनिक् में ब्रह्म की उपाठना अथः अथ मास मन ज्ञान और अज्ञान<sup>२</sup>  
रूप में बतलाई गई है । इन्द्रारपकोनिक्र के प्रतीक मूर्तरूप हैं और तैत्तरीय के प्रतीक  
अमूर्त । संतो में हमें परमात्मा के प्रतीकमय साक्षर स्वरूप के बर्चन अधिक मिलते हैं ।  
ही उचना है वे वेदमन्त्र<sup>३</sup> एव के 'न प्रवीयेन यः से प्रमावित होकर मगवान् के  
प्रतीकालय बर्चनों से किरण हो गये हो उनही बानियो में हमें केवल दो-बार स्वतो  
पर ही कुछ प्रतीको श्री मोचना मिलती है । कबीर<sup>४</sup> ने मन के प्रतीक से परमात्मा को  
बर्चन करते हुए लिखा है—

कहु कबीर को जाने भेज मन मधुसूदन त्रिसुवन देव

इसी प्रकार संत बाबू<sup>५</sup> ने भी मन को ही ब्रह्म कहा है । मगवान् के कुछ उगुण  
बर्चन ऐसे हैं किनकी मान्यता बोग क्षेत्र में अधिक है । उनका संबंध हम आगे करेंगे ।

योगमार्गियों के दृष्ट पर ब्रह्म निरूपण

संत लोग बिना मक्ति और ज्ञानमार्ग से प्रमावित ये उचना ही योगमार्ग  
के श्रुती थे । बोग दर्शन माय का प्राचीनतम दर्शन है । श्रुतेद तक में इसके बर्चन  
उल्लेख होते हैं । इस दर्शन में ब्रह्म के उगुण-निर्गुण-रूप का ईश्वर के नाम से  
निरूपण किया गया है । इसे बोग दर्शन में ईश्वर की संज्ञा भी गई है । बोग क्षेत्र में

<sup>१</sup> तैत्तरीय—२।१।२।२।२ ६ इन्द्रारपकोनिक्र २।१

<sup>२</sup> वेदान्त सूत्र—४।१।४

<sup>३</sup> मन्त्र कबीर—पृ० ३०

<sup>४</sup> परम संत बह मज रहे परमनूर विज देले ।

ब्रह्म ज्योति बह आवत सीधे हाटु कीवन छोरे ॥ हाटुवासी भाव १'पृ० २६

लिखा है कि जो पुरुष विशेष स्तेय, कर्म विपाक तथा आराधन से शून्य रहता है वह ईश्वर कहलाता है।<sup>१</sup> योग एवं माधन में लिखा है कि ये ईश्वर प्रकृति तीन तथा भ्रुक पुरुषों से-निताम्ब मित्र होता है। वह भूत मर्षिय और सर्वमान इन तीनों-अर्णों से अभिचिन्तन होने के कारण निर्य कहलाता है। वह गुरुओं का भी गुरु है।<sup>२</sup> पार्व<sup>३</sup> यह योग के-इव ईश्वर की अर्थना का विस्तार अन्य परवर्तीयोग-प्राप्तियों में मिलता है। परवर्ती योग प्रायः में सबसे अधिक मत्स्येग्रनाथी और गोरकनाथी प्रायः हैं। इन सब प्रायः का विद्वत् और परवर्ती रूप बौद्ध तान्त्रियों में विस्तार पकटा है। इन सब प्रायः में ईश्वर की अभिव्यक्ति विविध प्रकार से हुई है। स्वयं योग सूत्र में ही 'तस्यः प्राप्तकल्पयः'<sup>४</sup> लिखकर ईश्वर की शब्दरूपता प्रकट की है। शब्द ब्रह्म की पारखा बहुत प्राचीन है। श्रुत<sup>५</sup> में इसका वर्णन आया है। ऋग्वेद<sup>६</sup> में इव शब्द ब्रह्म का वर्णन करते हुए लिखा है ओम ही अक्षर कपी नाथ न होनेवाला ब्रह्म है वही परब्रह्म है इसके ज्ञान से मनुष्य विद्य परार्थ की इच्छा करता है उसको प्राप्त कर लेता है। माण्डूक्योपनिषद्<sup>७</sup> में भी ओम्कार की महिमा का बार-बार विस्तार से वर्णन किया गया है। योगमार्ग की शब्द (ब्रह्मवाली) पारखा सर्वों को भी मान्य थी। इव शब्द ब्रह्म का वर्णन उन्होंने उपनिषदों के ढंग पर प्रथम के सहारे किया है। वह प्रथम या ओम्कार के महत्त्व से पूण्यवता परिचित थे उन्होंने प्रथम साधना का और प्रथम के व्याख्यात्मक पक्ष का अण्डा विवेचन किया है। गौरी साहब<sup>८</sup> ने ओम्कार से सृष्टि की उत्पत्ति बताकर उसका महत्त्व संकेतित किया है। किन्तु प्रथमवाद उन्हें मक्ति-मान के चरम मान्य न था दाहू<sup>९</sup> करते हैं—

ओम्कार से ऊपक्षे तिनसे बहुत विकार  
मात्र भगति ले धिर रदै दाहू आत्म सार

आगे चलकर प्रथमवाद की प्रतिष्ठा कुछ कम हो पत्नी और अनहद माद को कुछ अपिक महत्त्व दिया जाने लगा। तन्त्र ग्रंथों में प्रथमवाद की व्याख्या माद और विन्दु के नाम से मिलती है। उसमें ब्रह्म को नादस्वरूपी माना गया है।<sup>१०</sup>

१ योगसूत्र आमाभिराद सूत्र २०  
२ योगसूत्र—१।२०  
३ अरवेद—१।१६।१।१०  
४ ऋग्वेदोपनिषद्—१।१।१।२  
५ माण्डूक्योपनिषद् २  
६ गौरी साहब—२० १० प्रथम पर की अन्तिम दो संदिर्भों  
७ दाहू धानी—भाग १ पृ० १६२  
८ तापस्त्रोद—१

वीथि पृष्ठभूमि का निर्माण करते समय हम इस विषय का विचार से विवेचन कर चुके हैं। यहाँ पर इतना कहना ही पर्याप्त है कि प्राचीन शब्दवाद शैव शास्त्रियों में नाद विन्दुवाद के अभिधान से प्रचलित हुआ। इस नाद विन्दुवाद का अर्थ पर गद्य प्रमाण पड़ा था। इस नाद विन्दुवाद के अनुकरण पर ही अर्थों ने अपने निर्गुण शब्द सुखिताद की प्रतिष्ठा की है। दूसरे अर्थों में हम यहाँ कह सकते हैं कि अर्थों का शब्द सुखिताद वाक्यों के नाद विन्दु का नवीन संस्करण है। नाद की महिमा का वर्णन उन्होंने अधिकतर शब्द के नाम से ही किया था 'दादु' लिखते हैं—

सबद ही सुविम मया सबदै सहज समान ।  
सबदै ही निर्गुण मिले सबदै निर्मल ज्ञान ॥

शब्द का वर्णन उन्होंने वही-वही नाद के अभिधान से भी किया है। 'चरनदादु' ने लिखा है—

अनददु, सवद अपार पूर सुदर है ।  
चेतन निर्मल सुदु वेद भरपूर है ॥ ।  
निहृच्छर है वाहि और निहृकम है ।  
परमात्म वेदि मान परम्य है ॥

इस शब्द का नाद मय का वाक्यिक लोग द्वैताद्वैत विमलदास मानते थे द्वैताद्वैत विमलदासवाद के वर्णन हमें बीद पवित्र मागाधन में भी मिले हैं। इसे संख्या है कि शैवशास्त्र वाक्यिक आचार्य उनसे प्रभावित हुए हों। बीद आचार्य 'समस्त' उपनिषदों से प्रभावित हुए थे क्योंकि उपनिषदों में वही-वही पर हमें मय का वर्णन द्वैताद्वैत विमलदास के रूप में भी मिलता है। वाक्यों के द्वारा प्रतिपादित द्वैताद्वैत विमलदासवाद मत्स्यत्रयी की और गारुडनायी वाक्यों से होता हुआ अर्थों में पहुँचा। इन्हीं में से किन्हीं वाक्यों से यह वाक्य अर्थों को मिली थी उन्होंने अपने निर्गुण मय को द्वैताद्वैत विमलदास भी कहा है। अर्थ लोगों के द्वैताद्वैत विमलदासवादी एक विमलदासवादी विमलदास की नहीं मूचना चाहिए वह आधिकार्य और अर्थ की आपारभूमि पर टिका हुआ है। बीद के द्वैताद्वैत विमलदासवाद के अर्थ शब्द और अर्थ के अर्थ में नहीं। इस दृष्टि से वे शैवशास्त्र वाक्यों के अधिक समीन हैं और बीद वाक्यों के अर्थ। अर्थ दरिया ने इस बात का स्वीकरण बहुत वाक्य अर्थों में कर दिया है—

<sup>1</sup> संतदासी संग्रह—भाग २ पृ १२२ ।

<sup>2</sup> दादुवाणी भाग १ पृ० १२६ ।

<sup>3</sup> दरियाघामर—पृ० २४ ।

निरगुनि<sup>१</sup> ; सर्गुन दुनइ ते न्याय ।  
 सब स्वरूप ओहि निमल सुधाय ॥

उक्त दरिया वाह्य के अतिरिक्त हमें द्वैवाद्देव विलास्यवाद की भाँपी अप्य  
 ल्यों में भी मिलती है ।

मत्स्वेन्द्रनाथी योगधारा में ब्रह्म का निरूपण वाह्य के अतिमान से  
 मिलता है । उक्त योग उक्त वाह्य सम्बन्धी धारणा से भी प्रभावित हुए थे । उनके  
 प्रभावित हीकर ही उन्होंने ब्रह्म का निरूपण वाह्य के अतिमान से किया है । वाह्य के  
 अतिरिक्त उक्तमें ब्रह्म के लिए निरंजन की<sup>२</sup> संज्ञा मिलती है । इस संज्ञा का प्रयोग हमें  
 गोरलनाथी धारा में मिलता है । वहाँ पर ब्रह्म की अतिमपिकि अलख निरंजन तथा<sup>३</sup>  
 इव के नाम से की गई है । ल्यों ने नामरूप की इन दोनों शालाओं के ब्रह्मवाची  
 शब्दों से अपने निर्गुण ब्रह्म को अतिद्विष्ट किया है ।

आगे बलकर बीह वाकियों में वाह्य एवं शून्यवाद का प्रवर्धन हुआ । यह  
 योग ब्रह्म को कभी वाह्य रूप कहते थे कभी शून्यरूप कहते थे और कभी वाह्य और  
 शून्य दोनों विशेषों का प्रयोग करते थे<sup>४</sup> । उक्त लोगों पर इनका भी अष्टा प्रभाव  
 पड़ा था । इनके अनुकरण पर उन्होंने अपने वैगिक धाराओं को कभी वाह्य<sup>५</sup> कभी  
 शून्य<sup>६</sup> और कभी वाह्यशून्य<sup>७</sup> दोनों कहा है । वहाँ पर एक बात स्मरण रखने की है  
 कि बीह वाकियों का शून्यवाद अति नास्तिकों का शून्यवाद नहीं था किन्तु इतना  
 अवरुध है कि वह पूर्ण आस्तिक भी नहीं था । कुछ वाकिक उक्त द्वैवाद्देव विलास्य  
 मानते थे और कुछ उक्त आस्तिक और नास्तिक के मध्य की बख्त समझते थे । किन्तु उक्तों  
 का शून्यवाद पूर्ण आस्तिक है । उन्होंने शून्य शब्द का प्रयोग तत्परुपी परमात्मा के  
 लिए किया है; अतएव और अस्तिक के लिए नहीं । दाहू<sup>८</sup> लिखते हैं—

१ वाह्यरपाह की बानी भाग १ पृ० १—ओ ममरेव निरंजन

क—वही पृ० १ वाह्य निरंजन आदि शब्दों पर हरि और

क—वही पृ० ११ निरंजन निरंजन जे रहे कौं न बताये ताह

ग—वही पृ० २१

१ इस को परम हस खेले—दाहू भाग १ पृ० ७१

२ वाह्यरपाह की बानी भाग १ पृ० ८८ ११वाँ पंक्ति

३ अरा बीह धारणा में अरुमरूप अथ और—दाहूबानी भाग १ पृ० २७ ।

४ वाह्यरपाह की बानी भाग १ पृ० २८

५ शून्य मुक्ति अथ और है अथ पर अथ ही माहि—दाहू—११२१

दाहू भाग १—पृ० २८

ब्रह्म सूत्र उन्हें ब्रह्म है निरंजन नियकार ।

इसी प्रकार गुणात्ता साहब<sup>१</sup> ने लिखा है—

सद्य सरूप समाईवा हो निर्गुन रूप अपार ।

उसकी तरह और निरंजन संबंधी बातयाँ भी पूरी आस्तिक ही थीं । उन शम्भो का प्रयोग उन्होंने अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए किया है । हवा में उड़नेवाले आल्पनिक तन्त्र के लिए नहीं । हमारी समझ में उन्होंने बौद्ध-जोषिन्ने और माध्वकी योगियों में प्रयुक्त होनेवाले ईश्वरवाचक सभी शब्दों का प्रयोग स्वोदितस्वरूपी और नादस्वरूपी ब्रह्म के लिए किया है । माध्वपंथियों और सिद्धों में ब्रह्म के लिए लक्ष्म शब्द का प्रयोग भी किया गया । उही अनुकरण कर संतों ने भी परमात्मा को लक्ष्म कहा है । पण्डू साहब<sup>२</sup> लिखते हैं—

“जोई लक्ष्म को नाम से परिचै नाहीं”—

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों ने अपने निर्गुण ब्रह्म का निरूपण ज्ञान मक्ति और योग मार्गियों के अनुकरण पर करते हुए भी उन सबके यहाँ संबंधी बातयाँ भी से बोझ बिलक्षण रक्ता है । इस बिलक्षणता का कारण उपर्युक्त तीनों मार्गों की विविध पद्धतियों और धारणाओं से प्रभावित होना है । इनके ब्रह्म निरूपण को केवल ज्ञानमार्गी इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि उसमें धनुष और निर्गुण दोनों रूपों की प्रविष्टि भी गई है फिर भी उन्होंने देववाद का जिसके प्रति भुक्ति<sup>३</sup> प्रश्नों तक में धारणा प्रकृत भी गई है । लंघन किया है उसे हम केवल मक्तिमार्गी इसलिए नहीं कह सकते कि उसमें सर्वत्र निर्गुण का आग्रह बहुत अधिक मिलता है । इस निर्गुण के आग्रह के कारण ही वे देववाद और अवतारवाद को नहीं अपना सके हैं । मक्तिमार्गीय मगवान् की आचारमूमि यही दो हैं । इसे हम शुद्ध बीगिक ब्रह्म निरूपण भी नहीं कह सकते । क्योंकि योग में अभिष्टत रगुण निर्गुण ब्रह्म के रूप का बर्णन किया गया है । किन्तु संतों में हमें शुद्ध निर्गुण का आग्रह ही प्रमुख दिसलाई पड़ता है । वास्तव में इनका ब्रह्म निरूपण अपनी मौलिक पद्धति पर विभक्तित हुआ है । वह शुद्ध ज्ञान

<sup>१</sup> गुणात्ता साहब की वाणी—१० १८

<sup>२</sup> पण्डू साहब भाग १ पृ० १२

<sup>३</sup> मुद्राच्योपनिषद्—३१११

ब्रह्म द्वात्ता प्रथमः सं बभूव विरचत्स कर्ता —

और

ब्रह्म सूत्र के ३११२ स भी द्वात्ता की पंक्ति निरुद्धती है । अन्ते का देववाद को प्रसिद्ध ही है ।

मार्गीय होते हुए भी मछिमार्गीय और भोगमार्गीय ब्रह्म स्वरूपों से प्रभावित होने के कारण बहुत बिलक्षण है। अपनी इस बिलक्षणता और मौलिकता के कारण ही इतना प्रभावशाली मतीय होता है।

1

### बहुदेववाद की निन्दा

सन्त लोग बहुदेववाद के कष्ट बिरासी से यह हम ऊपर दिखा चाये हैं। इसी-लिए उन्होंने बिल प्रथम मूर्तिवाद का खंडन किया है उसी प्रकार बहुदेववाद पर भी कुत्तरपात किया है। बहुदेववाद बाध्य में उनकी अमृतमुक्ती वाचना के विरोध में भी था। हृदयस्य ब्रह्म के उपासक 'वाहिरामामी' मगवान् और देवताओं की पूजा को विषेव मन्त्र भी कैसे उचते थे। उक्त पल्लद् ने लिखा है—

ब्रह्म बिलु महेश न पुत्रिहीं ना भूषत चित्त सेही।

जो प्यारा मोरे घट मों बसतु है बाही को माय नयेही ॥

1 उक्त कबीर ने बहुदेववाद के खंडन में एक बहुत बड़ा व्यवहारिक तर्क सामने रखा है। वह लिखते हैं—वा यम को छोड़कर अन्य देवी देवताओं में लगे रहते हैं उनकी इया बेरमा के पुत्र के उदर रहती है। बिल प्रथम बेरमा का पुत्र नहीं कह सकते कि उतत्र पिता कीन है उसी प्रथम बहुदेवोपासक भी नहीं कह सकते कि उतत्र आरापरदेव कीन है।

बहुदेवोपासना के विरोध में उक्त दादू ने बही तर्क दिया है जो उक्त मल्लभ्रात के अक्षतारवाद के विरोध में दिया है। वह लिखते हैं पीर पैगम्बर सेख मसाल्ल तथा टिब विरंथि आदि सब देवता मरुबर हैं। उनका अन्त अक्षर्यम्माबी रहता है। कबल एक अक्षल ब्रह्म ही शाश्वत और चिरंतन है।<sup>१</sup> उक्त सुन्दरदास ने बहुदेवोपासक अक्षला की गुणना ध्यमिचारिणी से की है—

जो हरि कैं तजि भान उपासत सो मतिमन्द फकीरहव होई।

क्यूँ बनने भरवारहि झाडि भई विमिचारिण्य कामिनी कोई ॥

<sup>१</sup> पञ्चद साहिबा—भाग ३—पृ० २

<sup>२</sup> यम पिपारा झाडि करि करि भान का काय।

बेल्लां केरा एत क्यूँ करि कीन क्यूँ बाय ॥ कबीर प्रयागवासी—पृ० ९

<sup>३</sup> पीर पैगम्बर सेख मसाल्ल टिब विरंथ सब देवा रे।

कजि थाया जो कोइ न रहसी रहसी अक्षल अमेध रे ॥ सुन्दरदास की वाणी भाग ३

<sup>४</sup> सुन्दर विज्ञान—पृ० ८०

इसी प्रकार अन्य सन्तों ने भी बहुबोधोपासना का उदता से संबन्ध किया है।

### सन्तों का आत्म विचार

सन्तों के जीवन का लक्ष्य अप्पात्म कितन था।<sup>१</sup> आत्मविचार अप्पात्म का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। वास्तव में यह एक कठिन साधना है कठोरनिष्क में उस साधना की आर संकेत करते हुए लिखा है—

पराधि स्थानि व्यतृष्यस्त्वयंमूतस्मात्परा परमधि नान्तरमा।

करिषद्दीरः प्रस्यगात्मानमेकदावृत्तसुखसुखत्वमिच्छेत् ॥

अर्थात् परमात्मा में इन्द्रियों को बहिर्मुखो बनाया है इसीलिए वे केवल बाहरी वस्तुओं को देख पाती हैं स्वरूपआत्मा को नहीं। कोई विरक्ता महात्मा ही अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखो करते आत्मदर्शन अर्थात् आत्मविचन में मग्न होता है। आत्म-निरूपण का इतिहास ब्रह्मिमुक्ती इन्द्रियों की अन्तर्मुखी यात्रा का ही इतिहास है। मनुष्य पूर्व-वर्ष रूप से स्वप्न की ओर उन्मुख होगा है उसकी आत्मा संबंधी आरणा भी अपनी ही चक्षुसर होनी चाही है। अप्पात्म रोष में आत्मा के संबंध में जो विविध मन्त्र-मिथतों हैं उनका प्रमुख कारण यही है। आचार्य गौडपाद ने अपनी करिषद्दीरों में और आत्म गिरि ने अपनी टीका में आत्मा संबंधी लगभग पैंतीस आरणाओं का संश्लेष किया है।<sup>२</sup> कुछ प्रमुख मंत्रों का उल्लेख बेदान्तसार<sup>३</sup> में भी किया गया है। आत्म के संबंध में बेदान्तसार में जो विविध मंत्र दिये गये हैं उन मंत्रों के प्रवर्तकों में अपने-अपने मंत्र के पोष्य में भुक्तियों से प्रभाव भी दिये हैं। इन प्रभावों के आचार पर ही कुछ लोगों ने पुनः को आत्मा कहा है।<sup>४</sup> कुछ लोग शरीर को आत्मा<sup>५</sup> मानते थे कुछ इन्द्रियों को आत्मा<sup>६</sup> कहते थे<sup>७</sup> कुछ प्राण को आत्मा<sup>८</sup> लिख करते थे। कुछ एक ने प्रज्ञा को ही आत्मा के रूप में देखा<sup>९</sup> था, कुछ मन को ही आत्मा का स्वरूप समझते<sup>१०</sup> थे। बहुतां

<sup>१</sup> आत्म विद्या परै पढ़ाई परमात्म का ज्ञान लगवै। सं० ५०-स० आस १,५० १०१

<sup>२</sup> कठोरनिष्क—३११

<sup>३</sup> देखिए गौडपाद शेषक टी० पृ० ५० पी० महादेवक। पृ० १२४-१२५

<sup>४</sup> देखिए बेदान्तसार हीरपञ्चा द्वारा सम्पादित पृ० ७

<sup>५</sup> बेदान्तसार पृ० ७

<sup>६</sup> केचर आरु कांठमनेस इन दिन्कू किजासकी पृ० १५-१६

<sup>७</sup> बेदान्तसार पृ० ७

<sup>८</sup> " " "

<sup>९</sup> केचर आरु कांठमनेस इन दिन्कू किजासकी पृ० १६

<sup>१०</sup> बेदान्तसार पृ० ६-७

ने आत्मान को ही आत्मा सिद्ध करने की चेष्टा की<sup>१</sup> थी। बहुत से अज्ञानोन्मत्त वैतन्य को अहम् अभिव्यक्त करते<sup>२</sup> थे। कुछ शून्यवादी थे, वे शून्य को ही आत्मा समझते<sup>३</sup> थे। हिन्दु भूतियों में उपर्युक्त मतों के पोरक प्रभावों के अज्ञान धाम खंडक प्रभाव भी सिद्धते हैं।<sup>४</sup> यहाँ पर प्रथम उक्त सच्यता है कि भूतियों ने एक बात को मंजूर करके लंडन नहीं किया। इसके उपर में यही सच्यता वा सच्यता है कि भूतियों में अप्यहम् चिंतन का प्रतिक विचार दिखाया गया है। टीचरीपोमनिष्क के अज्ञानवादी संवाद में आत्मा के प्रतिक विचार का इतिहास अत्यन्त संक्षेप में व्यक्त किया गया है। बिना प्रकार उक्त प्रथम में साचक का आत्मा को अक्षय आनन्द रूप की अनुभूति सच्यते ज्ञत में हुई थी। सच्यता के प्रारम्भ में आत्मा का अनुभव उक्त अज्ञान धाम मन और विज्ञान आदि के रूप में हुआ था।<sup>५</sup>

हिन्दु वे-स्य आत्मा के वास्तविक रूप नहीं थे। आत्मा का वास्तविक रूप आनन्द था। उक्त ही उक्तसिद्ध साचक को सच्यते ज्ञत में हुई थी। उक्त प्रथम अज्ञान उपनिषदों में यही आत्मा के प्रथम और अंतिम स्वरूप का निरूपण मिलता है यही उक्तके प्रारम्भिक स्वरूपों का संक्षेप भी किया गया है। आत्मा के लक्षण में किन विभिन्न मतों का संक्षेप यौहवादी की अतिरिक्त आनन्द विरि की अतिरिक्त और वेदान्तधार आदि प्रयोगों में किया गया है वे सब उक्तके प्रारम्भिक स्वरूपों से ही संबंधित हैं। आत्मा का वास्तविक स्वरूप इन सच्यते भिन्न माना जाता है।

१. अति और वेदान्त प्रयोगों का मंजूर करके सच्यता में वेदान्त सम्प्रदाय आत्मा के स्वरूप का निरूपण निम्नलिखित रूप सच्यता वाच्य में किया है<sup>६</sup>।

“अतस्तद्मासक्तं निरुपममुक्तं सत्यस्वमात्रं प्रत्यक  
वैतन्यमेवात्ममवस्थितिं ब्रह्मन्तविदुर्भवाः।”

अर्थात् आत्मा स्वयं प्रकाश रूप है यही सबको प्रकाशित करती है। यह निरुपम मुक्त और मुक्त तथा सत्य समाजवादी भी होती है। उक्तके प्रत्यक वैतन्यरूप मानते हैं। भूतियों में उक्त अज्ञान प्रत्यक, सत्य, अप्यहम्, अज्ञान, अक्षय, वैतन्य, अज्ञान और वैतन्य अज्ञान आत्मा सर्वज्ञी उपर्युक्त अज्ञान मतों से उक्तकी विधिप्रथा

१ वेदान्तधार ५० ७

२ " " ५० ७

३ यही

४ यही ५० ८

५ देखिए टीचरीपोमनिष्क अज्ञानवादी—वेदान्तधार ५० १५१ १५५

६ वेदान्तधार की इतिहास द्वारा अप्यहम् ५० ८



प्रतिपादित की गई है<sup>१</sup>। सत्त्व की आत्मा संबंधी भावना बेदान्त से बहुत अधिक प्रभावित है। भुक्ति<sup>२</sup> और बेदान्त प्रबंधों में इच्छा को विशेषताएँ प्रकृत की गई हैं अतः ही सन्त लोगों ने भी प्रतिपादन किया है।

**आत्मा की स्वर्ण प्रकाशरूपता**—उपनिषदों<sup>३</sup> में तथा आत्मा का निरुपम्य करनेवाली प्रत्येक तरह प्रदीपिष्य<sup>४</sup> पंचशती<sup>५</sup> आदि बेदान्त प्रबंधों में आत्मा की स्वर्ण प्रकाशरूपता पर विशेष बल दिया गया है। आत्मा की स्वर्ण प्रकाशरूपता से सन्त लोग पूर्वतया परिचित थे। सन्त सुन्दरदास ने उसकी इस विशेषता का बड़े विचार से उल्लेख किया है। वह लिखते हैं कि जिस प्रकार सूर्य अपनी ही प्रकाश से प्रकाशित होता है, वीर्य अपने तेज से उद्भासित होता है उसी प्रकार आत्मा भी अपने प्रकाश से ही प्रकाशित होती है<sup>६</sup>।

**आत्मा की नित्य शुद्ध बुद्ध और सत्यस्वरूपता**—बेदान्त के सत्य ही सत्व लोग भी आत्मा को नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त और सत्यस्वरूप मानते थे। उदाहरण के लिए हम सन्त सुन्दरदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं<sup>७</sup>।

आत्मा कहत गुरु शुद्ध निर्वच निव ।

सत्य करि माने सो ही शब्द की प्रमान है ॥

**आत्मा की चैतन्यरूपता**—आत्मा की चैतन्यता के संबंध में दार्शनिकों में बड़ा मतभेद<sup>८</sup> है। यहाँ पर सत्यनामाच के अर्थ उन मतभेदों का विवेचन नहीं

<sup>१</sup> बेदान्त धार पृ० ८

<sup>२</sup> इन्द्रावतक ३।१।१७ कौपनिषद् २।१२ ब्रह्मसूत्रोपनिषद् २।१।१२

<sup>३</sup> कौपनिषद् २।२।१२।

<sup>४</sup> विष्णुवाच्यर्ष की प्रत्यक्षताव प्रदीपिष्य में देखिए

<sup>५</sup> अपरोक्ष स्वच्छते योग्यत्वा चीपदस्व न।

सम्भवं स्व प्रकाशस्व अथवा सम्भवः कुत । १ । १

विष्णुवाच्य कर्मत्वास्वर्ष ज्योतिरिति कु तिः

धामनः स्व प्रकाशाय को विचार विष्णुसपमः । १-२

<sup>६</sup> सैन्दरासत्त संरिचदाभासः कदाचन्

स्वर्ष प्रकाश कृत्यर्ष स्ताचरेव वेत्यवद् । पंचशती ३।२३

<sup>७</sup> हीर के तेज से हीरक हीरक हीरे के तेज हीरे कि सत्ते ।

तैर्ष सुन्दर आत्म जानहु आप के ज्ञान आप प्रकाश ॥ सुन्दरविद्याय पृ० १७३ ।

<sup>८</sup> सुन्दरविद्याय—पृ० १७३ ।

<sup>९</sup> दार्शनिकों के मतभेदों के लिए देखिए—

वेचर आक कांशप्रमेय इव हिन्दू विद्याधरी प्रे० हा० सत्येन्द्र आन्याय ३ ।

कर रहे हैं। इस क्षेत्र में सर्व लोग ब्रह्मात्मियों के ही अनुयायी थे। वह आत्मा के वैयर्थ्यरूपता में पूर्ण निरवास करते थे। वेदांत के अनुकूल वे उसे साक्षी रूप में मानते थे। सर्व सुन्दरदास ने लिखा है—

आत्मा वैयर्थ्यरूप व्यापक साक्षी अनूप।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वों ने आत्मा का निरूपण विस्तृत वेदांत के अनुकूल ही किया है।

आत्मा की सूक्ष्मता—सर्व लोगो ने आत्मा को सूक्ष्मातिव्युत्सम और अरुण भी माना है। सर्व सुन्दरदास ने ठेक भर वर्णन करते हुए लिखा है—

आत्मा अरुण अति सूक्ष्म से सूक्ष्म है।

आत्मा की जीव प्राण मन आदि से विन्नता—अभी हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि भुक्ति और वेदांत दोनों में आत्मा को जीव, प्राण, मन, बुद्धि और देह आदि से भिन्न माना गया है। सर्व लोग भी आत्मा को जीव, प्राण, मन, बुद्धि और देह से विलक्षण मानते थे। उनके मतानुसार आत्मा 'बस शरीर के संयोग से इन्द्रियों के अर्थात् होकर अपने को मूल जाता है तभी जीव कहलाता' है। इस बात को सर्व सुन्दरदास ने एक दूसरे स्थल पर और अधिक स्पष्ट कर दिया है। वह कहते हैं—देह का संयोग पाकर आत्मा जीव नाम को प्राप्त करती है। तब समस्त आत्मा से उठकर वही संयोग रह जाता है जिस प्रकार आकाश और ब्रह्माकाश का संबंध होता है। और आत्मा शुद्ध आकाश की भाँति वही दोनों में अंतर है।

सर्वों ने आत्मा से प्राण, मन, देह आदि की भिन्नता की और भी संकेत किया है। सर्व सुन्दरदास ने लिखा है—सौम भ्रम से प्राण मन और देह के बुद्ध-बुद्धियों को छीन डली तरह से आत्मा का मूल समझ बैठते हैं जिस प्रकार बाहु के प्रयोग से काँधों को हट कर ही तब ही लोग समझने लगते हैं कि प्रतिविम्ब काँध पर है।

<sup>१</sup> सुन्दरदास—पृ० ११९।

<sup>२</sup> अर्थात् पृ० १००।

<sup>३</sup> देह की संयोग पाह इन्द्रिय के रूप परबो।

प्राण ही काँध प्राण भुक्ति गरी सुख जाह से ॥ सुन्दरदास—पृ०।

<sup>४</sup> देह को संयोग पाह जीव ऐसी नाम अर्थात् ॥ सुन्दरदास—पृ० १०६।

बाहु के संयोग अकाश ही कहावो है ॥ सुन्दरदास पृ० १०६।

<sup>५</sup> अर्थात् अत्र दाहक है अग्नि जीव।

वही भ्रम से प्रतिविम्बदि काँध है ॥

देह के प्राण के और मन के हूत।

मान्य है अत्र मोहि को अर्थात् ॥ सुन्दरदास पृ० १२८।

१। आत्मों और ब्रह्म की एकता—आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन श्रुति और अन्य वेदान्त ग्रंथों में बराबर किया गया है—

अथमात्मा ब्रह्म आत्मेवेद् सर्वं आदि ।

इस तत्त्व की ओर संकेत करते दिखाई पड़ते हैं। वेदान्त के इस उल्लेख में संत लोग पूर्ण विश्वास करते हैं। प्रमाणरूप में हम भीष्मा की निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करते हैं।<sup>१</sup>

आत्म राम अखण्डित पूरन ब्रह्म स्वरूप अकार ।

इसी प्रकार कबीर<sup>२</sup>, बाण<sup>३</sup>, गुणाक्ष<sup>४</sup> आदि सन्तों ने आत्मा को राम कहा है। इसीलिए ब्रह्म के ब्रह्म से अभिधान आत्मा के भी अभिधान कम गये हैं। योग के क्षेत्र में वह वाच्य और भी स्पष्ट रूप से सातु होती है। इसीलिए सन्तों द्वारा प्रमुख निरंजन उद्योग आदि शब्द ब्रह्म के वाचक होने के साथ ही ताय आत्मों के वाचक भी हैं।

धीर्य और संसंका स्वरूप—अभी हम ऊपर स्पष्ट कर आये हैं कि आत्म ब्रह्म ही शरीर से परिच्छिन्न होकर जीव जन्माने लगता है। इसीलिए धीर्य का बर्णन भी ब्रह्म से सन्तों में ब्रह्म के अनुरूप ही किया है। कबीर की निम्नलिखित पंक्तियों में धीर्य का बर्णन ब्रह्म निरूप्य की नकारात्मक शैली में कर्ण सुन्दर रंग से हुआ है।<sup>५</sup>

ना इहु मानुष ना इहु देवा ना इहु जठी करायें सेवा ।  
 ना इहु मानुष ना इहु अवधूता ना इस माइ न काहु पूवा ॥  
 ना मन्दिर महे कीन बसाइ वा का धीर कोउ न पाई ।  
 ना इहु गिराहीं ना भोवासी ना इहु राजा न भीख भंगासी ।  
 ना इहु पिपड मा रक्तू राठी ना इहु ब्रह्मन ना बहु आठी ॥  
 ना इहु तपा कहावै सेल्य ना इहु जीबै मरवा देख ।  
 इहु मरते को जे कोउ रोवै । जो रोवै सोई पति कोबै ॥ इत्यादि

<sup>१</sup> भीष्मा साहच पृ० ३६

<sup>२</sup> आत्म राम अखण्डित पूरन ब्रह्म अकार प्रयोगवाची पृ० १३

<sup>३</sup> बाण आत्म राम जो सत रहै क्यौ छारै । शब्द १।६३

<sup>४</sup> आत्म राम अखण्डित पूरन ब्रह्म अकार । गुणाक्ष साहच पृ० १३६

<sup>५</sup> निरंजन का आत्मा रूप में कबीर ने उल्लेख किया है—

निज हरक्य निरंजना विताकार अपग्यार अकार । कबीर प्र० पृ० २२०

इसी प्रकार अहम को भी आत्म रूप कहा गया है। देखिए शब्द वाणी भाग १ पृ० २१

<sup>६</sup> कबीर प्रयोगवाची पृ० २०१

इसी प्रकार जीव दर्शन में ब्रह्म निरूपण की अन्य शैलियों का उपयोग भी सन्तों ने किया है।

**जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध**—सन्तों के मतानुसार जीव में आत्म और अनात्म दोनों तत्त्व मिली रहते हैं। किन्तु ब्रह्म शुद्ध आत्म मात्र होता है। जीव और आत्मा का यह अन्तर ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है। सन्त लोग आत्मा को ब्रह्म क्यों मानते थे। यह विचारणीय है सभी सन्त लोग वेदान्त मत का अनुयायी थे। आगे हम इस कथन की पुष्टि समझायें करेंगे। यहाँ पर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि वे लोग वेदान्त के अनुयायी थे और इसी के अनुसरण पर उन्होंने आत्मा को ब्रह्म रूप माना है। पीछे हम इस बात का स्पष्टीकरण कर मी चुके हैं। ब्रह्मरूपी आत्मा जब अहंकार से विमोहित हो जाता है तब उसे जीव कहने लगते हैं। सन्त<sup>१</sup> मुन्दरदास ने इसी बात का समर्पण करते हुए लिखा है—अहंकार ही ब्रह्म को ब्रह्म जीव बना देता है—आगे वह पुनः लिखत हैं—जीव को कर्म बंधन संसार में बाँध लेते हैं—इसीलिए वह स्वतंत्र से परतन्त्र हो जाता है।<sup>२</sup>

सन्त लोग ब्रह्म और जीव में अंशान्ति मात्र सम्बन्ध भी मानते थे। कबीर<sup>३</sup> ने 'कहु कबीर यहु राम को अंस बस कागद पर मिटे न मंसु'—मीरा साहब<sup>४</sup> ने—'जीव बनामो ब्रह्म अंश' और मुन्दरदास<sup>५</sup> ने—'मुक्तनिधान परमात्म अंशम अंश' लिखकर इसी तत्त्व का समर्पण किया है। अब प्रश्न यह है कि सन्तों का अंशान्ति मात्र किस दर्शन के अनुकूल है क्योंकि उत्तरी प्रतिष्ठा अद्वैतवाद द्वैताद्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद हम तीनों दर्शनों में मिलती है। इस विषय का विस्तृत विवेचन सन्तों की दर्शन पद्धति के अन्तर्गत किया जायेगा। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पार्सत है कि सन्तों का अंशान्ति मात्र पूर्ण अद्वैती है। इसका पुष्ट प्रमाण यही है कि उत्तरी अभिम्पत्ति अद्वैत वेदान्त के ही विभिन्न हस्तान्तों और विद्याओं द्वारा ही की गई है। अद्वैतवाद का सबसे अधिक विद्वान्त प्रतिविम्बवाद का है। बादपयण के 'आमास<sup>६</sup> एव अ'<sup>७</sup> और 'अतएव<sup>८</sup>

<sup>१</sup> सन्त मुन्दरदास की १ और वैशिष्टी मुन्दर विद्यालय पृ० १६

<sup>२</sup> गोविन्द के विषे जीव ब्रह्म करमणि के। सन्त मुपासार पृ० ६१२

<sup>३</sup> कबीर प्रयागजी—पृ० ३०१

<sup>४</sup> मीरा साहब की बानी—पृ० ३०

<sup>५</sup> सन्त मुपासार पृ० १ पृ० ६१०

<sup>६</sup> ब्रह्मसूत्र—२/३/२०

<sup>७</sup> ब्रह्मसूत्र—३/१/१८

बोधमा सर्व कादिबत्' इतके प्रमाण हैं। सन्त सुन्दरदास<sup>३</sup> की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिबिम्बवाद का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है—

सुन्दर महत्त्व सत्कारिके रास्यी कौच लागतइ ।

द्वैत योग मुनहा गयो पङ्क अनेक बिक्राम ॥

वेदान्त का दूसरा सबसे प्रसिद्ध सिद्धान्त विचर्तवादा या अज्ञानरोपवाद का है। इतकी अभिव्यक्ति इस दृष्टान्त से सर्व और रज्जु रजत और मुक्ति आदि के दृष्टान्त से की गई है। संत सुन्दरदास ने उन दृष्टान्तों को क्यों का ल्यो दोहरा दिया है उन्होंने लिखा है<sup>४</sup>—असि प्रफर आदि में रज्जु और मुक्ता में रजत का भ्रम हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म बीज बगत् आदि भिन्न रूपों में भावित होने लागता है। यह ठीक मृग-मपीचित्र के सदृश होता है। इन उदाहरणों से प्रकट है कि सन्तों का दृष्टिकोण पूर्ण अद्वैती है। ऐसी आवस्था में उनका अंशान्ति भाव अद्वैती ही माना जायेगा। द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैती नहीं।

कुछ लोगों की धारणा है कि सन्तों ने कुछ ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं विनाश प्रयोग द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैतवादियों ने किया है। उनका उपाधान क्या होगा इसके उत्तर में मैं यही कहूँगा कि इस प्रकार के दृष्टान्त होने-गिने हैं। उनको हम अनर्बक दर्शन पद्धतियों का प्रमाण मानमान सकते हैं। ऐसी अवस्था में उनका प्रत्यक्ष अर्थवाद के रूप में ही किया जाना चाहिए। सिद्धान्त के रूप में नहीं। सन्तों की दर्शन पद्धति के प्रकरणा में यह बात और अधिक स्पष्ट कर दी जायेगी।

बीज की एकता और अद्वैतता—सन्तों के अंशान्ति भाव के विवेचन के प्रसंग में बीज की एकता और अनेकता का प्रसंग भी सामने आ जाता है। सन्तों ने बीज का एक माना है या अनेक इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हैं। सभी सन्त बीज को एक और अद्वैत मानते थे। सन्तों का विश्वास था कि बीज एक और अद्वैत होता है देह भेद से उठमें भेद दिखाई पड़ता है। सन्त<sup>५</sup> सुन्दरदास ने अज्ञान की एकता और अद्वैतता प्रतिपादित करते हुए लिखा है—यह अद्वैत और एक आत्म तत्त्व ही उपाधि भेद से अनेक दिखाई पड़ता है। कबीर<sup>६</sup> ने भी लिखा है—

या करीम बसि दिक्कमति तेरी ।

लाक एक सूरति बहु तेरी ॥

<sup>१</sup> अन्त सुभाषार—७० १४६

<sup>२</sup> भासत है कुछ और जो औरहि जूँ रह में अदि बीज में क्या ।

देश मरीच उन्को बिधि विभ्रम ज्यजन नारी करि रवि पूषा ॥ सु० वि० पृ० १४०

<sup>३</sup> सु० वि० पृ० ११६ २० वाँ पद

<sup>४</sup> कबीर प्रियावली—७० १ ८

इसी प्रकार संत मुन्दरदास<sup>१</sup> ने एक बूढ़े रथल पर लिखा है कि जिस प्रकार मित्र मित्र पदार्थों से मरे हुए विविध घटों में एक ही स्वर्ण का प्रतिबिम्ब अनेक और विविध रूपों में दिखाई पड़ता है उसी प्रकार एक ही आत्मा उपाधिकर शरीर के भेद से मित्र-मित्र दिखाई पड़ता है। भीष्मासाहब<sup>२</sup> इस बात का रसतीकरस्य बल और स्वर्ण के दृष्टान्त से इस प्रकार करते हैं—जिस प्रकार समुद्र दरिया बल कूप लहर बूँद इन सब में बलवत्त्व ही रहता है किन्तु फिर भी ये मित्र-मित्र भासित होते हैं। जिस प्रकार एक ही स्वर्ण अनेक प्रकार के आभूषणों में परित्यक्त हो जाता है तथा जिस प्रकार एक ही मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बनते हैं उसी प्रकार एक आत्म तत्त्व ही उपाधिभेद से अनेक और मित्र मित्र नाम रूपवाला दिखाई पड़ता है।

यदि विभिन्न दर्शनों के बीच निरूपणों के प्रकाश में उग्रदुक्त उद्धरणों का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि संतों का दृष्टिकोण पूर्ण ब्रह्मैती ही था। सांख्यवादी और विशिष्टाद्वैतवादी दोनों ही अनेकता में विश्वास करते हैं। संत लोगों का बीच एकत्ववाद सांख्यवादियों और विशिष्टाद्वैतवादियों से किसी भी प्रकार मेल नहीं ला सकता। अद्वैतवाद में बीच को एक और अनेक दोनों ही कहा गया है। अनेकता उपाधिमूलक बताई गई है<sup>३</sup>। इससे स्पष्ट है कि वे ब्रह्मैत वेदांत के अनुयायी थे।

**ज मान्तरवाद**—यहाँ पर बीच के अन्तान्तरवाद का प्रश्न सामने आ जाता है। संत लोग अन्तान्तरवाद में आस्था रखते थे। उनका विश्वास है कि बीच अपने रूपों के अनुक्रम बन्ध धारण करता है। उसका मन माया में लित रहता है। जब तक इस मायाबन्धित अज्ञान के आवरण का निराकरण नहीं होता तब तक बीच की मुक्ति नहीं होती। और जब तक मुक्ति नहीं होती तब तक बीच बीरघी छाल योनिषों में मग्न रहता है और कष्ट उठाता रहता है। इससे स्पष्ट है कि संतों में बुलबुल का कारण अज्ञान ही है। संत लोगों ने यह बात अनुभव कर ली थी। संत मुन्दरदास<sup>४</sup> ने लिखा है—

<sup>१</sup> मुन्दरविज्ञान—पृ० ११२।

<sup>२</sup> भीष्मासाहब—पृ० ३६ आठवाँ उद्धरण।

<sup>३</sup> आकाशमेक शिवा यथा यदादि दृष्यते भवेत्।

तत्त्वमीशो ह्यनेकस्मिन् ब्रह्माकारेणवाशुमान् ॥

एकैव हि सूतारमा नृते भूते स्ववस्तिना।

एकता बहुधा चैव धरपते चन्द्र चन्द्रवत् ॥ प्रकृतिम्—१११२।

<sup>४</sup> मुन्दरविज्ञान—पृ० १००।

जाय अज्ञान न रहो अमि अंतर जानि सकै नहिं आत्म मूला ।  
सुन्दर यूँ उपजे मन के मझ ज्ञान विना निम्र रूपहिं मूला ॥

इस अज्ञान का निराकरण मगवान् श्री कृष्ण से हो सकता है। मगवान् श्री कृष्ण पूर्ण आत्मसमर्पण से ही संभव है। मीठा<sup>१</sup> उच्चर ने निम्नलिखित पद में लगभग इसी भाव श्री अभिष्मक्ति श्री है—

कृष्ण कटाक्ष्य मेहि तैं प्रमु छूटि जाय मन माया ।  
सोबल मोह निरा निरासासर तुमही मोहिं अगमा ॥  
जनमत मरत अनेकवार तुम्ह सतगुरु होय हाकाया ।  
मीला केवल एक रूप हरि व्यापक त्रिभुवन राया ॥

किर इसी के आगे वृत्त पद प्रपठिमाय अ<sup>२</sup> है।

रारनागत हीन इयाला की प्रमुकर आयुस प्रतिपाळा की ।

यहाँ पर यह विचारणीय है कि संतों के अन्तर्वाद श्री बारखा बीमदरशन के अनुस्र है वा भीतदर्शन के अन्तर्वाद श्री मान्यता दोनों ही दर्शनों में है किन्तु दोनों श्री बारखाओं में अंतर है। बीज लोग आत्मवादी होते हैं। आत्मा या बीज में विश्वास नहीं करते अतः वे केवल सत्त्वयों का-वा विज्ञानमात्र श्री ही अन्तर्गत मानते हैं। किन्तु भीतदर्शन में अज्ञानोपहित अस्मि आत्मा जिसे बीज कहते हैं उसका पुनर्बन्ध माना गया है संतों श्री पुनर्बन्धवाद श्री बारखा भीतदर्शन के अनुस्र थी। वे बीज का ही अन्तर्गत मानते थे। संत कबीर ने शिला<sup>३</sup> है—

कस भीरासी भीम जोनि महि अमठ नंदु बहु बाको रे ।

प्राण और जीव—यहाँ पर हम शोक-का विचार संतों श्री प्राण संवनी बारखा पर भी कर लेना चाहते हैं। वैदिक साहित्य में प्राण शब्द का अनेक बार और अनेक अर्थों में प्रयोग मिलता है। प्राण श्री दर्शन अन्वेष में भी कई स्थलों पर आया है। प्रथम मण्डल में शिवा हुआ एक दर्शन इस प्रकार<sup>४</sup> है—इस शरीर में प्राण श्री शक्ति अन्य के द्वारा रहती है। यह मस-भूजादि के निकालने के शिप अयो-

<sup>१</sup> भीष्म साहब की कानी—१० २४ ।

<sup>२</sup> कबीर २४ ।

<sup>३</sup> कबीर प्रबंधक—१ ३२२ ।

<sup>४</sup> अन्वेष—११२४।२८ ।

अपाहप्रच्छेति हरषया शुभीतो मयाम्मापोन अयोनिः ।

तन्मस्वतो विरूपीय विवन्ताम्यन्मं चित्रबुने निचिकनुरम्यय ॥

भाग में आया करता है तथा स्वप्न के लिए मुक्त आदि ऊर्ध्वभाग में संवरण करता है। वह मृत्युरहित है परंतु वह मरणशील शरीर के साथ रहता है। शरीर और प्राण विविध व्यापार सम्पन्न है तथा आरत में विरक्त है क्योंकि मृत्यु हो जाने पर शरीर नष्ट हो जाता है। प्राण किसी लोभान्तर में पला जाता है। इस वर्णन का यदि मनोयोग पूरा अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट अनुभव होगा कि प्राण आत्मा और जीव के सहाय होते हुए भी उनसे भिन्न है<sup>१</sup>। छान्दोग्य<sup>२</sup> कौषीतकि<sup>३</sup> मनोवनिषद् में प्राण का इन्द्रियों में श्रेष्ठ स्थिति किया गया है। जो फिर प्राण भी एक इन्द्रिय ही है। यह भी नहीं कह सकते क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है। वह इस विश्व का चारक है उठी भी शक्ति से आभरण अपने स्थान पर स्थित है। उठी तरह छोटे से छोटे जीव से लेकर बड़े से बड़े जीव को बड़ी धारण किये हुए है।<sup>४</sup> आगे बलाकर बादरायण<sup>५</sup> ने प्राणस्थानुगमात् सूत्र से प्राण की ब्रह्मरूपता की ओर संकेत किया है। उन्मुक्त उदरियों से ऐसा प्रतीत हुआ है कि प्राण शरीर और आत्मा के संयोग से उत्पन्न होने वाला कोई तत्त्व है किंतु उसे जीव भी नहीं कह सकते क्योंकि जीव के सहाय मूल में आत्म वरसस्वरूपी नहीं होता है। हमारी समझ में प्राण जीव से भी भिन्नतत्त्व तत्त्व है।

संतों की प्राण संबंधी विचारधारा का विश्लेषण करने पर ऐसा अनुभव होता है कि वे प्राण के संबंध में बहुत स्पष्ट नहीं हैं। संत कबीर ने एक स्थल पर उक्तप्रयोग जीव क अर्थ में किया है।<sup>६</sup>

प्राण प्ययड को तजि जले ।

मुझा कहे सब कोई ॥

बाबू ने भी प्राण का अर्थ ही अर्थ में किया है। वह लिखते हैं।<sup>७</sup>

घट परिचै सब घट कार्य प्राण परीचै प्राण ।

महा परिष पाइए बाबू है हीराय ॥

<sup>१</sup> श्रुतिप्रयोगों में इनका भेद अनेक स्थानों पर व्यक्त किया गया है। पीछे इन इनका संकेत कर दिया है।

<sup>२</sup> छान्दोग्य २।१

<sup>३</sup> कौषीतकि २।१३

<sup>४</sup> मनोवनिषद् २।१।१६

<sup>५</sup> वेनोयभारतपक २।१।६

<sup>६</sup> वेदमय सूत्र १।२८

<sup>७</sup> कबीर प्रियावली १० ३२

<sup>८</sup> बाबूपात्र की बाबी भाग १ पृ० ८०



वहाँ पर उन्होंने प्राण को आत्मा से भिन्न जीव के अर्थ में प्रयुक्त किया है। दार्जु ने एक स्थल पर प्राण सुरति और ब्रह्म के संबंध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—ब्रह्म भूमि है, प्राण हृदय है और सुरति ब्रह्म है। यहाँ पर उन्होंने स्पष्ट प्रकृत किया है कि ब्रह्म तो आत्मा का चोख है, सुरति जीव है और प्राण इन दोनों में विलक्षण वस्तु है। हमारी समझ में वह जीव का बाहुमूलक रूपान्तर है। मन्धि अज्ञानोपहित चेतन जीव कहलाता है। ब्रह्म बाहुमूलक रूप प्राण कहलाता है। संतो में इसे पद्म की संज्ञा दी है। संतो ने पद्म साधना के अधिष्ठान से उस प्राण साधना का वर्णन किया है जिसका विस्तृत विवेचन ऐतरेयारवक में किया गया है। साधना प्रक्रिय में उस पर विचार किया जावेगा। यहाँ पर इतना ही कहना अभीष्ट है कि संत लोग जीव के बाहुमूल रूपान्तर की महिमा से भी परिचित थे।

**सुरति और जीव**—यहाँ पर हम सुरति के ऊपर भी थोड़ा सा विचार करना चाहते हैं। हिंदी जगत् में संतो के किन बहुत से पारिभाषिक शब्दों के संबंध में भ्रंति फैली हुई है उनमें सुरति भी एक है। इस पर विस्तृत विचार तो योग के प्रकरण में करेंगे। यहाँ पर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार प्राण शब्द अज्ञानोपहित आत्मा का बाहुमूल रूपान्तर है, ठीक प्रकार सुरति भी जीव का ही रूपान्तर है। सुरति को संत लोग आत्मा से भिन्न मानते थे। संत दार्जु ने लिखा है—जिसकी सुरति नहीं रहती है वही उसे विभक्त मिश्रता है। यदि किसी ने अपनी सुरति माया में लगा रक्की है तो उसे उची में आनन्द मिश्रता है और जिसने आत्मरूपी राम में केन्द्रित कर रक्की है उतको वही शक्ति मिलती है। यहाँ पर सुरति को स्पष्ट ही आत्मा से भिन्न माना गया है। संत लोग उसे जीव से भी भिन्न मानते थे। संत दार्जु ने लिखा है—

विरह जगायै इह को इह जगायै जीव ।  
जीव जगायै सुरति को पंच पुकारै पीव ॥

इन पंक्तियों में सुरति को जीव से भिन्न माना गया है। इन पंक्तियों में वह व्यक्त किया गया है कि सुरति तभी प्रयुक्त हो सकती है जब जीव स्वयं प्रयुक्त होकर उसे जगावे। इससे प्रगट है कि वह जीव से भी पृथक् वस्तु है। वह मन चित्त से भी भिन्न है। रत्नवती ने लिखा है<sup>१</sup>—

<sup>१</sup> दार्जुणाच की बानी भाग १ पृ० २८

<sup>२</sup> अज्ञानी सुरति जहाँ रह तिथ का तह विद्याम ।

भाई माया माह में भाई आत्म राम ॥ दार्जुणाच की बानी भाग १ पृ० ११२

<sup>३</sup> दार्जुणाच की बानी भाग १ पृ० ४९

<sup>४</sup> सप्त सुबाहार संघ १ पृ० २२३

मन विषय सुरति शब्द सब सेरा

इस प्रकार प्रगट है कि सुरति मन विषय बीब इन सबसे बिलक्षण कोई वस्तु है किन्तु वह आत्मा भी नहीं है। यह हम अभी दिखा चुके हैं। यह मन विषय और बीब से अक्षर और आत्मा से स्थूल कोई वस्तु है।

उसे मैं बीब का शब्दगत रूप मानने के पक्ष में हूँ। यह ध्यान देने की बात है कि संतों ने इस शब्द का प्रयोग शब्द योग के प्रयोग में ही किया है। सुरति शब्द वाचना संतों की प्रिय वाचना थी। इतिहास उनमें सुरति का बार-बार प्रयोग मिलता है।

सन्तों का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण

माया का सिद्धांत भारतीय अध्यात्म क्षेत्र, की सबसे प्रमुख विशेषता है। श्रुत्येदिक काल से लेकर संतयुग के अंतिम पर्यन्त तक किसी न किसी रूप में इसकी बराबर प्रतिष्ठा रही है वरन् शब्द से पहले भी यह सिद्धांत लगभग उसी रूप में प्रचलित या विद्यमान रूप में आचार्य शब्द ने उसकी प्रतिष्ठा की थी। अंतर केवल इतना था कि शब्द के पूर्व उसकी सम्प्रदाय किसी साम्प्रदायिक सिद्धांत के रूप में न थी। साम्प्रदायिक सिद्धांत के रूप में उसका बीजारोपण आचार्य गीङ्गाद ने किया था। उसे विस्तृत बहद्द के रूप में परिष्कृत करने का भेष आचार्य शब्द का ही है। कोलहक का सिद्धांत साक्षात् और निरर्थक है। यह आदि पारनास्य आचार्य इसका विस्तार से संकेत भी कर चुके हैं।

मायावी दर्शन में माया के संबंध में दो दृष्टिकोण मिलते हैं—एक शब्दवाच्य और उनके पूर्ववर्ती आचार्य का इतरा मफिवादी तथा वास्तविक आचार्यों का। संत लोगों पर वास्तव में भीत और वेदांत दर्शन का भी उद्यम ही प्रभाव पड़ा था जिससे मफिवादी संत तथा उनसे निरुद्यतनाय आदि सम्प्रदायों से प्रभावित थे। माया सम्बन्धी दोनों दृष्टिकोणों की पूर्णतः प्रगट में हम विस्तृत विवेकन कर चुके हैं। अतः उनका बहुत संक्षेप में संकेत करेंगे।

मायावाद का प्रथम बीजारोपण श्रुत्येद में हो गया था। इन्द्रोभावाभि-पुत्रपरिपते—में माया शब्द का प्रयोग बहुत स्पष्ट है। वहाँ पर इसका अर्थ करत वैश रत्ना किया जाता है। श्रुत्येद के बाद इस शब्द का विभक्त उपनिषद् साहित्य में हुआ। प्रो० यणा के ने १५ मनाए देकर यह सिद्ध कर दिया है कि माया-

१ वाग्दृष्टिक संतों काक उपनिषदिक सिद्धांतवादी—वाग्दृष्ट ५० २२०।

२ इतिवृ—सिद्धांतवादी काक उपनिषद—५० २२०-२२२-२२३।

३ श्रुत्येद—१।४०।१५।

४ देवियु बोन्सदृष्टिक संतों काक उपनिषदिक सिद्धांतवादी—वाग्दृष्ट ५० २२२।

बाद की भावना का उद्बन्ध उपनिषदों में ही हो गया<sup>१</sup> था। डा० रामानन्द<sup>२</sup> तिवारी ने उनके मूल के निराकरण करने का प्रयत्न भी किया है किन्तु उनके तर्कों में विशेष बल नहीं है। मैं उनसे प्रभावित नहीं हो सका। उपनिषदों के बाद बौद्ध युग में मायावाद, शून्यवाद<sup>३</sup>, क्षयिकवाद<sup>४</sup>, स्वप्नवाद<sup>५</sup>, कल्पनावाद<sup>६</sup>, वैशम्पवाद<sup>७</sup> आदि रूपान्तरित होता रहा। शंकर का मायावाद इन्हीं सब की आभारभूमि पर लका हुआ है। शंकराचार्य ने माया शब्द का प्रयोग अपने पूर्ववर्ती ग्रंथों में करते हुए भी सिद्धान्त रूप में उसका अस्तित्व प्राथमिक ही माना है तात्त्विक नहीं।

माया की प्राथमिक सत्ता का स्वप्नीकरण अज्ञान के द्वारा किया जाता है। अज्ञान की कल्पना की आभारकृता इतीसिए पक्षी कि शंकराचार्य अद्वैतसत्ता में कार्य कारण भेद स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इतीसिए अज्ञान के सिद्धांत के सहारे उन्होंने करण ब्रह्म की अविकल्पिता की रक्षा के साथ परियामवाद के धर्मबन्ध विज्ञान की खोज की है। प्रश्न उठता है कि क्या शंकराचार्य कारणवाद का कोई सिद्धांत नहीं मानते थे। कारणवाद में तालिह दृष्टि से विश्वास न करते हुए भी उन्हें उत्तरार्थवाद में विश्वास करना ही पड़ा था किन्तु उनका उत्तरार्थवाद परियामवादी नहीं निवर्तवादी था। वे कारण के साथ कारणोद्बन्ध के पूर्व भी कार्य का अग्रक अस्तित्व मानते थे।<sup>८</sup> अब नहीं पर चोड़ी ही व्याख्या अज्ञान की कर देना चाहते हैं।

अज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए ब्रह्मण्य सूत्र में लिखा है कि अज्ञान का अर्थ तद में अतद बुद्धि का जाना।<sup>९</sup> इसको स्पष्ट करते हुए आचार्य ने स्पष्ट किया है—स्मृति के रूप कैसा रूपकाला लक्षणकालाभिन्नरूप से निश्चिन्तन में पूर्व दृष्ट पदार्थ का अवगत को मात प्रतीति है वही अज्ञान है। इस अज्ञान के ही अर्थ अज्ञान ज्ञानाभ्यास आदि कई भेद निरूपित किये गये हैं। अज्ञान के इस सिद्धांत को

<sup>१</sup> वही

<sup>२</sup> शंकराचार्य का आचार इत्येव रामानन्द तिवारी पृ० २१ स० २००६

<sup>३</sup> इसके लिए देखिए इतीसिए ग्रन्थ का दूसरा अध्याय बौद्धमत और निर्गुण काव्यभारा शीर्षक अध्याय।

<sup>४</sup> वही

<sup>५</sup> इतीसिए ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में गौडपाद् का अज्ञानवाद और सन्त कवि शीर्षक अध्याय।

<sup>६</sup> इतीसिए ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में देखिए योगबलिष्ठ और निर्गुणिकों कवि।

<sup>७</sup> देखिए गौडपाद् का अज्ञानवाद और सन्तकवि शीर्षक अध्याय।

<sup>८</sup> व० स० भाग २।१।२०

<sup>९</sup> ब्रह्मसूत्रभाष्य—भाग १।२।१

<sup>१०</sup> ब्रह्मसूत्रभाष्य—भाग १।१।१

भी मद्मगबत्गीता में बहुत सुन्दर ढंग से समझाया गया है। उसमें लिखा है—'जो बल्य न होने पर भी प्रतीव होता है जैसे शुक्ति में रक्त और जो आत्मा को प्रतीव नहीं होती तबको आत्मा की माया' जानना चाहिए।

यहाँ पर प्रश्न यह उठ सकता है कि इस प्रकार के अप्यास का उदय क्यों किये होता है इसका कारण आचार्य में अविद्या माना है। केनोपनिषद् माध्य में वे लिखते हैं कि माया रूप संसार का बीज अविद्या है एतदिति उक्तानि अप्यास को अविद्या भी कहा है 'तमेव' लक्ष्यसम्प्राप्त्यै परिहृत अविद्येति मग्यते अप्यास तदैव कल्पते।' यह अविद्या ही अहंकार के सहारे बीज को संसारसूत्र में आबद्ध करती है।

माया का प्रयोग शंकर ने ईश्वर की सृजन शक्ति के लिए भी किया है।<sup>१</sup> उक्त सृजन शक्ति का उदय अप्यास के द्वारा संपन्न किया गया है।

यहाँ पर एक प्रश्न और उठ सकता होगा है। अप्यास उद्भूत माया या भावि का स्वरूप क्या है इस सम्बन्ध में शंकर ने अनिर्वचनीयतावाद का प्रतिपादन किया है। यह माया को अनिर्वचनीय मानते थे। उनके अनिर्वचनीयतावाद को समझने के लिए बृहत्सूक्ति के रूप में स्यादितियों के विविध विद्वानों का संक्षिप्त संश्लेष करना बड़ा आवश्यक है।

भारतीय दर्शन क्षेत्र में अनिर्वचनीय स्यादितिवाद के अतिरिक्त सत् स्यादितिवाद, अवयव स्यादितिवाद, आत्म स्यादितिवाद और अप्यासा स्यादितिवाद की प्रतिष्ठा मिलती है। सत् स्यादितिवाद सत्त्वों का है। वे शुक्ति और रक्त वाले दृष्टान्त को देख कर करते हैं कि शुक्ति भी रक्त के समान ही सत्य है क्योंकि दोनों में साहचर्यभाव है। इस विद्वान्त के विस्तृत विपरीत शून्यवादी नास्तिकों का अर्थ स्यादितिवाद है। वे स्वप्न के समान धीरी और रक्त दोनों को भ्रम मानते हैं। विज्ञानवादी बीज आत्मस्यादितिवादी कहलाते हैं। उनका मत है कि सत्य पदार्थों के अनुरूप ही हमारे ऊपर कुछ संस्कार दृढ़ होते हैं। उन संस्कारों के सहारे हम पूर्व स्मृति के अनुरूप क्विं वृत्तों को महि कर लेते हैं। अप्यास की भावना के निकट होते हुए भी वेदान्त को यह विद्वान्त भी मान्य नहीं है। उनसे अनिर्वचनीय स्यादितिवाद का प्रवर्तन किया है। अद्वैतवादी आचार्य शंकर के सर्व सत्त्विन्द ब्रह्म वाले विद्वान्त में विशेष आस्था रखते थे। इससे ब्रह्म की उदादान कस्ता प्रगत होती है। उदादान, में उद्ये उदादान और निमित्त रूप कारण उदय कहा भी गया है। ब्रह्म को अद्वैत मान लेने पर उद्ये अद्वैतकी बगल को भी ब्रह्म रूप मानना पड़ेगा।

<sup>१</sup> मग्यत् गीता—२।१।३३

<sup>२</sup> केनोपनिषद् माध्य ३।३

<sup>३</sup> बृहत्सूक्त माध्य—२।१।१६, १।१।१७, २।१।२१, २।१।२८।

मग्न स्वरूप है अतः बगल भी स्वरूप होना चाहिए। किन्तु वह स्वरूप नहीं है। अतः उसका उपादान कारण कोई तद् विलक्षण रूप है। यदि कोई कि वह अस्त है तो भी ठीक नहीं। क्योंकि यदि अस्त संसार का कारण होता तो प्रत्येक पदार्थ की तब सत्ता न दिखाई पड़ती। अतः संसार का कारण न तद् ही है और न अस्त ही। वह सदास्त होते हुए भी तबसे विलक्षण है।

अब एक समस्या और रह जाती है—वह यह कि शंकर की माया विषय प्रधान है या विषयी प्रधान। शंकर विषय प्रधान ही मानते थे। इस पर हम दृष्टमूर्ति में शंकर के अद्वैत के प्रथम में विस्तार से विचार कर चुके हैं और सिद्ध कर चुके हैं कि वह तबसे विषय प्रधान मानते थे। यहाँ पर उसका फिजियेपथ नहीं करना चाहते।

शंकर के मायावाद के विस्तृत विपरीत तांत्रिकों का मायावाद है। तांत्रिक और उनके अनुचरों पर विकसित हुए सम्प्रदायों में माया को दिव्या न मानकर स्वरूप माना गया है। उनका सिद्धांत है कि त्रिषु प्रकार शक्तिमान स्वरूप होता है तभी प्रकृत शक्ति भी स्वरूप है। माया शक्ति का ही एक मेघ है अतः वह स्वरूप है।

संतों का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण जैसे तो शंकर मत से ही अधिक प्रभावित है किन्तु मोड़ी बहुत माया तांत्रिक मतों की बिलार्थ पड़ चकती है। उन्होंने माया को कहीं पर अनिर्वचनीय और कहीं स्वरूप ध्वनित करने के लिए तबसे सगुण भी कहा है। तब तो यह है कि उन्होंने दोनों धारणाओं को सम्मत्ता ही है। माया का प्रत्यक्ष रूप बगल है। संत मीरा ने लिखा है।<sup>१</sup> हे मन तू आरमास्सी राम का भजन कर ले ताकि माया विषय प्रत्यक्ष रूप यह प्रत्यक्ष बगल है तुझे न सदा सके। आगे यह भी लिखा है।<sup>२</sup> जब मग्न रज में माद विंदु की धारणा सम्पन्न होती है तभी मन कनी माया नष्ट होती है। तभी के आभय से उन्होंने माया के स्वरूप का निरूपण किया है। श्रीरदास भी करते हैं—

जो काटों तो बहकही सीधों तो कुम्हलाय<sup>३</sup>।

इस गुणवन्ती मेल का कुम्ह गुण कहा न जाय ॥

इन वक्तियों में माया का गुणवती अर्थ भी तबसे अनिर्वचनीय ध्वनित किया गया है। संत मुन्दरदास ने माया का एक रूप पर केवल गुणमयी कहा है। जो बस्तु<sup>४</sup> उत्पन्न होती है नष्ट होती है और त्रिगुणात्मक है नहीं मरकर माया कहलाती है।

<sup>१</sup> वह माया बिलार कहा है

जग पर बंध हरामे। मीरा १०० १

<sup>२</sup> माद विन्दु को जोहु गगन में मन माया तब मरी। मीरा १०० ७

<sup>३</sup> कबीर प्रकृतकी १० ८९

<sup>४</sup> ये उपदे विनये गुण भारत से यह जानहु अर्जुनमाया। सु० दि० ७३

माया को गुण रूपी ब्रह्मर तसे मात्ररूप ध्वनित किया गया है किन्तु उनका उक्त दृष्टिकोण अध्यात्मवादी है।

निम्नलिखित पंक्तियों में उची श्री ध्याना दिल्साई पक्की हैं<sup>१</sup>—

पादुख केरा पूतला करि पजे करवार ।  
इही भरोसे जे रहै तो बूझे भाखीघार ॥

पापाय में ब्रह्म का आमास एक प्रकार का अध्यात्म वा भ्रम ही है। जो इस भ्रम को ही सत्य समझ बैठते हैं उनको भवसागर में डूबना है। वे भ्रमरूप माया को अनिर्वचनीय एवं कालनिक अध्यात्म मात्र ही समझते थे। इसकी ध्वनना सत्य धरन दास ने निम्नलिखित शब्दों में सुन्दर ढंग से की<sup>२</sup> है—हे साधो यह संसार उची प्रकार सत नहीं है किन्तु प्रकार पहाड़ में मछली, समुद्र में मृग, आकाश में खेत का अस्तित्व सत नहीं होता। वह जगत् उची प्रकार अस्तित्वहीन है किन्तु प्रकार जल की पोटा, पुष्पा की कोठ तथा अलख ब्रह्म की सीमा अस्तित्वहीन होती है। यह जगत् शय्या चींग, बौद्ध के पुत्र और मृग मरीचिक के सद्य ही कालनिक है। कबीर<sup>३</sup> आदि में भी इस प्रकार की बहुत सी उक्तियाँ मिलती हैं।

— माया का विस्तार—माया अपना विस्तार पंचतत्त्व और तीन गुणों के सहारे करती है। जहाँ तक नाम रूप का विस्तार है वह सब माया मात्र है। यही वाच सुन्दरदास ने निम्नलिखित शब्दों में ध्वनित की है—पंचतत्त्व और तीन गुणों का किन्चित् प्रकार से विस्तार इत्यादि—जहाँ तक नामरूप दिल्साई पक्का है वह सब माया<sup>४</sup>

<sup>१</sup> कबीर प्रभावली पृ० ४३

<sup>२</sup> धार् साधो यह जग सो सत् माहों ।  
मौन पदार समुद्र किन्तु मिरगा पेट अफासे मारी ॥  
जग की कोठ कोट पूजा को अजिह मय को तोर ।  
बाम को पूर धोंग सधा को धगपूष्या को नीर व  
स्वप्न को मृग ब्रह्म स्वप्ने को और जंगल को डार ।  
मनिहा धीरु नाच भूतन को नारि सो ज्वाहन नार ॥

<sup>३</sup> कबीर प्रभावली पृ० २६

<sup>४</sup> क—पंच तत्व गुण विस्तरे किन्चित् भौति  
नाम रूप जहाँ जागि निम्ना माया मानिद । सुंदर विलास पृ० १२६

क—सीसे ही सुन्दर वह चेतन्य चाहि  
पवने अज्ञान करि और सब पावो है । सु० वि० १९३

ही है। माया के विद्यार का बर्णन मेरे सेरे स भी किया जा सकता है। उक्त दानू<sup>१</sup> ने इसी माय की अभिव्यक्ति निम्नलिखित शब्दों में की है—

क—मैं मैं मेरी इन सा लागी स्वाद पतंग न एले अग्नी<sup>२</sup>

ख—माया बंधन अंध न सेते मेरे माहि लपटाया—

इसी माय की अभिव्यक्ति दानू ने एक दूसरे स्थल पर भी की है।<sup>३</sup> वह कहते हैं—बीज मन्त्र और अक्षर से विमूढित होकर इसी प्रकार प्रकृत होता है जिस प्रकार मोर मोरनी को देखकर आह्लादित होता है।

यह माया अज्ञान और अक्षररूपसी मानी गई है। उक्त दानू ने लिखा है कि जिस पद में राम कृपी दीपक प्रकाशित होता है वहाँ अज्ञान कभी तिमिर नहीं रह जाता<sup>४</sup>। यह अक्षररूपसी माया अज्ञान कृपी माया ही बंधनेवाली है वही अविद्या है, वही अंध रूप है।<sup>५</sup>

यह अविद्या रूपसी माया वास्तव में बड़ी बंधन कृता है। इसके पाठ अनेक हैं। उक्त मन्त्रशास्त्र के शब्दों में त्रिरिया, अम, आचार आदि इसके ही मूलक बंधन हैं।<sup>६</sup> उक्त दानू ने लिखा है—माया हाथ में पाठ लेकर क्षिप्र बैठ जाती है और अक्षर पढ़ने पर बीज को बाँध देती<sup>७</sup> है। श्रीला साहज ने माया को त्रिगुण होर की चर्ची कहा है।<sup>८</sup> उक्त कबीर भी उसे त्रिगुण रूप ही मानते थे। उन्होंने लिखा है—  
रजगुण वमगुण सत गुण कहिने यह सष तेरी माया।<sup>९</sup>

इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की एक विशेषता मूर्धन्यता और परिवर्तनशीलता है। उक्तही इस विशेषता का संकेत उक्तों ने बार-बार किया है। उक्त<sup>१०</sup> दानू ने उक्तही इस

<sup>१</sup> दानूदयाल की बानी। भाग २ पृ० १९

दानू दयाल की बानी। भाग २ पृ० ७३

<sup>२</sup> मोर मोरी देख के बाँधे पंख पसारि। दानूदयाल की बानी भाग १ पृ० १९०

<sup>३</sup> त्रिष पर दीपक राम का त्रिष पर तिमिर न होय। दानूदयाल की बानी—भाग १ पृ० १२०

<sup>४</sup> अष्ट अविद्या मरम द्यत।

<sup>५</sup> त्रिरिया अम अचार मरम है परी अमर का अज्ञ—मन्त्रशास्त्र की बानी पृ० ११

<sup>६</sup> मदा अदिन यह हरि की माया—मन्त्रशास्त्र की बानी—पृ० १९

<sup>७</sup> माया बाधी हाथि से बँधी गोन विनाह—दानूदयाल की बानी भाग १ पृ० १२९

<sup>८</sup> श्रीला साहज ने माया को त्रिगुण होर की चर्ची कहा है। श्रीला साहज की बानी पृ० ६

<sup>९</sup> कबीर प्रभावनी—पृ० २०९

<sup>१०</sup> बरी पर परवाह नूँ मया धारि जाह—दानू बानी भाग १ पृ० १२६

संज्ञकत्वशीलता को मही के प्रवाह के सदृश कहा है। उन्त रज्जव ने भी माया की परिभाषा ऐसे हुए नहीं लिखा है—जो जाने-बानेवाली विशेषता है। वही माया है।<sup>१</sup>

माया बहुत ही भास्वत शीला है। उसकी मोहित करने की प्रक्रियाएँ और माध्यम भी कई हैं। बीच को वह इन्द्रियों और इन्द्रियाओं के माध्यम से मोहित करती है।<sup>२</sup> कबीर के शब्दों में वह बहुत मीठी होती है। इसी मिठास के कारण वह अज्ञानी पुरुष को बीरे बीरे कासी खाती है। वह बाबीगर की पुतली के सदृश है। जिसे देखकर मरकट सभी बीच भ्रम में पड़ जाता है।<sup>३</sup> इसीलिए दादू ने उसे बीच की बैरिन कहा है।<sup>४</sup> वह केवल बीच को ही नहीं मोहती बल्कि सुर नर मुनि सबों को मोहती है।<sup>५</sup>

विषयभ्रमण होने के कारण माया विष स्मृती भी होती है। सन्तों ने उसे सर्पन्धी कहा है। दादू लिखते हैं—माया कृपी सर्पन्धी कनक और कामनी के माध्यम से सभी मानसों का बढती है। उसके पंगुल से मानव ही नहीं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ईशता भी नहीं बचें हैं। इसीलिए सन्तों ने कनक और कामनी की बड़ी निन्दा की है। कामनी की निन्दा करने के कारण कुछ लोग सन्तों को पुरुषों के प्रति पक्षपात का दोषी ठहराते हैं। किन्तु ऐसा ठीक नहीं। सन्त लोगों ने मारी को विषय-बाधना का भ्रमण केन्द्र मानकर ही कही कही उसकी निन्दा की है किसी दुर्भावना से नहीं। यदि दुर्भावना और पक्षपात की बात होती तो फिर उन्त दादू कियो के साथ पुरुषों को माया का भय म मानते।<sup>६</sup> वह लिखते हैं—मारी पुरुष के लिए माया रूप होती है और पुरुष मारी के लिए माया रूप होता है। अन्त में दोनों का ही विनाश होता है। दादू कहते हैं—“हे मानव विचार कर देह ले। तन्हेने की पुरुषों को माया रूप केवल इसलिये कहा या कि वह विषय बाधना का भ्रमण हो भवन में बाधक बनते हैं। कबीर कहते हैं—

कबीर माया बापड़ी हरि सूँ करे हराम<sup>७</sup>

<sup>१</sup> सन्तों का यह वाप सु म्बदा।

छादि न अन्त मरि न जीपै सो किन्तु यहि जाणा—संत सुपाचार पृ० २१७

<sup>२</sup> मीठी मीठी म्बदा लजी यहि जाई

अज्ञानी पुरुष को भोखि भोखि धाई। कबीर प्रयागवासी—पृ० १९६

<sup>३</sup> बही—पृ०

<sup>४</sup> माया कीरिनि जीव की—दादू बानी भाग १ पृ० १२६

<sup>५</sup> दादू मोझे सबन के सुरगर छब ही रीव—दादूबख्त की बानी भाग १ पृ० १२८

<sup>६</sup> माया सर्पिनी रूप ह्यै कबळ कामनी होय।

महा किन्तु महेश को दादू कबी न कोह ॥ दादूबख्त की बानी भाग १ पृ० १२१

<sup>७</sup> दादूबानी भाग १—पृ० १२२—१४वीं पंक्ति

<sup>८</sup> कबीर प्रयागवासी पृ० ३२ प्यारी ४



माया की शक्तियाँ—माया की दो शक्तियाँ मानी जाती हैं—आकर्षण और विक्षेप। माया की इन्हीं शक्तियों से माया का विस्तार होता है। तन्तो में माया के इन दो स्वरूपों का उल्लेख नहीं मिला है। किंतु इनके स्थान पर इसके स्वरूप और सूक्ष्म वेद आचरण निर्दिष्ट किये हैं। किंतु इन्हें मैं आकर्षण और विक्षेप का मयीक नहीं मान सकता। स्वरूप माया से अन्ध अविद्या सम्प्रदाय अन्ध-अमनी आदि से था। सूक्ष्म माया का रूप सम्प्रदाय मन्त्र है। दत्तू लिखते हैं स्वरूप माया से चाहे मुक्ति मिल भी पाय किंतु एतन्मयी नहीं छूटती है।

मन और माया—एक लोग योगवशिष्य 'गौड़पाद' तथा वेद तंत्रों की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। इन सभी विचारधाराओं में मन की बहुत बड़ा महत्त्व दिया गया है। गौड़पाद में माया उसे कहा है अविद्या वास्तविक अस्तित्व नहीं होता। ये माया को मिथ्या का पर्यायवाची मानते<sup>१</sup> थे। अब प्रश्न है कि फिर माया से परापूर्व की उत्पत्ति कैसे होती है उसके ऊपर में ये मन को लाते हैं। उनका कहना है कि जो उद्भूत परम शक्ति है वह तब मन का विकार है। वास्तव में कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं<sup>२</sup> होती। मनोद्वयविरहम्, द्वैतम्—अर्थात् यह उदार मन का परम मात्र है—गौड़पाद का सिद्धि सिद्ध है। मन और पाप के इस अन्वेषणात्मक साक्ष्य से एक ही पुरुषत्व पर विहित है। एक ही मन में मन और माया के इसी सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

इहं ज्ञान मेरे मन में बसे<sup>३</sup> ।

नित उठ मेरे जिय को इसे ॥

एक ही मन और माया का अन्वेषणात्मक साक्ष्य ही नहीं अविच्छिन्न सम्बन्ध ही मानते थे। एक ही मन करते हैं शरीर तो बार-बार नष्ट हो जाता है किंतु मन और माया कभी नष्ट नहीं होती<sup>४</sup>। मन और माया के अविच्छिन्न का अर्थ एक ही मन ही माया है—

दादू मन ही माया उपरि मन ही माया जाय ।

<sup>१</sup> मोक्ष माया तत्रि तत् स्वयं जीवै जाई ।

दादू को एत कही माया कही बजाई है—दादूवाणी भाग १ पृ० १८१ ।

<sup>२</sup> अविद्याविरह—११२८

<sup>३</sup> कही ११२१ ।

<sup>४</sup> शरीर अविद्यावही—१० ११८

<sup>५</sup> कही १० ११७

<sup>६</sup> दादूवाणी भाग १ पृ० ११७ ।

संभ्र संसार को माया अथवा मानते हैं और गौडपाद तथा पशुपति अथवा श्री कृष्ण मन को उपद्रव मानते हैं। गौडपाद और पशुपति के इसी सिद्धांत को सप्त लोग भी मानते थे, दाहू की उल्लेख पंक्ति से यह सिद्धांत 'पूर्ववर्त' स्पष्ट है।

**माया और ब्रह्म का सम्बन्ध**—सप्त लोग माया को ब्रह्मात्मक मानते थे। सप्त सुन्दरवाच ने लिखा है—

प्रथम ही आपने मूल माया कही।

बहुतरि मह कुर्विकार त्रिगुण विस्तीर्य ॥

प्रश्न यह उठता है कि चेतन ब्रह्म में अचेतन माया कैसे उत्पन्न हुई। वेदान्त यह मानने से इत प्रश्न का उत्तर जगन्नी और मल के उद्घाटन से किया गया है। बिना प्रकार चेतन सैकली से अचेतन मल की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार चेतन ब्रह्म से अचेतन-माया की उत्पत्ति हुई है। वेदान्त में माया को ब्रह्म के अतीत कहा गया है। भगवान् मायिन है और माया उसकी चेरी है। श्वेताश्वतार उपनिषद् में यही बात 'प्रकृति' माया विद्यात् मायिन महेश्वरम्<sup>१</sup> लिखकर स्पष्ट की गई है। सप्त लोग वेदान्त के इस मत से भी सहमत थे। सप्त दाहू<sup>२</sup> ने—'माया अ उत्कुर किना माया की महिमा' कहकर श्वेताश्वतार उपनिषद् के सिद्धांत की स्वीकारा ही की है। गुणाक साहब ने प्रश्न 'तेरी माया अगम' अथवा लिखकर इसी बात का समर्थन किया है। वास्तव में माया मायिन के वल पर ही रहनी महान् है। गुणाक साहब इसी बात की स्वीकार करते हुए लिखते हैं—माया परब्रह्म महत्<sup>३</sup> जान।

माया के भी ब्रह्म के सदृश दो रूप हो सकते हैं—अमल और अमलक। अमल रूप ही नाम स्वरूपक अथवा है और उसका अमलक रूप मन है। सप्त माया के इन दोनों रवकों से परिचित थे। इसीलिए एक ओर तो उन्होंने संसार को मायात्मक कहा है और दूसरी ओर बीड़ी कुंभारि में रखी समार<sup>४</sup> कहकर उसके अमलक रूप की ओर संकेत किया है। माया के सत्त्व में सख्त और मोठी जो दो भेद माने हैं वे सम्भवत यही<sup>५</sup> हैं।

<sup>१</sup> सुंदरबिद्या—पृ० १६७।  
<sup>२</sup> श्वेताश्वतार उपनिषद् ३।१०।  
<sup>३</sup> दाहूपाद की वाली भाग १ पृ० १२६।  
<sup>४</sup> गुणाक साहब की वाली—पृ० ३६।  
<sup>५</sup> यही पृ० ६१।  
<sup>६</sup> दाहूपाद की वाली भाग १ पृ० १०१।  
 क—मोटी माया सखि सत्त्व सूर्यम सित्त्व जाय।  
 अ—अमीर ने इन्हीं को बीड़ी और मोटी कहा है। संक्षिप्त-कथार साची संग्रह पृ० १६३ साची २२

## सन्तों की जगत सम्बन्धी धारणाएँ

जगत सत्ता का स्वरूप—जगत सत्ता के सम्बन्ध में दार्शनिकों में बड़ा मतभेद रहा है। उठथी धोर ही संकेत करते हुए दुलही ने विनयपत्रिका में लिखा है 'कोठ बह सत्य भूठ बह कोठ पुगल प्रकल कोठ मानै'। सर्व लोग संसार को मूर्ख बहनेवालों की भेषी में आते हैं। सभी ने एक स्वर से संसार की नरबराता का संकेत किया है। कबीर जीव को समझते हुए कहते हैं 'ये जीव समझ-बुझकर देख लो यह संसार स्वप्न के सदृश है'। एक<sup>१</sup> दूसरे स्वप्न पर उन्होंने उठथी बूँद से समझा देते हुए उठी के उठथ नरवर कहा है—

ज्यों जल बूँद सैसा संसार उपजत विनसत जगत<sup>२</sup> न बार

संत दानू ने उठे संसार का फूल कहा है।<sup>३</sup> दूसरे स्वप्न पर उन्होंने उठे स्वप्न रूप भी कहा है।<sup>४</sup> पल्लव<sup>५</sup> शाहब ने उठे भूठ्य कहते हुए लिखा है—

पल्लवरास तबो भृगतृष्णा भूठा सफल पसारा है

एक दूसरे स्वप्न पर उन्होंने इस संसार को बुदबुद की भाँति क्षणिक कहा है।<sup>६</sup> एक स्वप्न पर तो उन्होंने वेदान्त के प्रतिबन्ध रक्त और शुक्ति के सहारे संसार का निष्पत्त्य प्रकट किया है—

यह संसार रैन का सपना रूपा भ्रम सीपी<sup>७</sup> केय

इसी प्रकार अन्य सन्तों ने भी उठे निष्ठा स्वप्नवत संसार के फूल के सदृश साक्षीन कहा है।

अब बिनाखीब बह है कि संतों का जगत सत्ता विवेचन किंतु दर्शन के अंग रूप हुआ। जगत को नरवर और क्षणिक वेदान्तिनों और बीखी दोनों में माना है। परम्य दोनों के स्वप्नवाद में बहुत बड़ा अन्तर है। वेदान्त में भी जगत सत्ता के सम्बन्ध में विविध मतवाद हैं किन्तु उठथे निष्पत्त्य में आद्वैतवादी ही विश्वास करते हैं।

<sup>१</sup> संसार केय सुपिब सैसा—कबीर प्रबंधवली—७० १०१

<sup>२</sup> कबीर प्रबंधवली—७० १२१

<sup>३</sup> दानू बानी भाग २—७० १७

<sup>४</sup> क—क० प्र० ७० २३७ पंक्ति ४

<sup>५</sup> पल्लवरास भाग ३—७० १०

<sup>६</sup> पल्लवरास भाग ३—१७

<sup>७</sup> पल्लवरास भाग ३—३२

अद्वैतवाद की भी बहुत-सी शाखाएँ हैं। उनमें दो आचार्यों के मत बहुत महत्वपूर्ण हैं—एक आचार्य गौड़नाद का और दूसरे शङ्कर का गौड़नाद का सिद्धांत आचार्यनाद अर्थात् शङ्कर का मायावाद।

पहले तो हम बीड़ और अद्वैत वेदान्त के अर्थात् सम्बन्धी दृष्टिकोश्यों का अन्तर स्पष्ट करना चाहते हैं। आचार्य शङ्कर ने बीड़ों के स्वप्नवाद के स्वरूप का स्पष्टीकरण 'वैश्वानर न स्वप्नदिवत्'<sup>१</sup> की व्याख्या में किया है। व सित्ते हैं बीड़ों का यह मत कि बिना किसी इन्द्रिय प्राण्य पदार्थों के न हाठ हुए मी व होठ से देख सकते हैं यह मत ठीक नहीं है। शङ्कर के मतानुसार दोनों सृष्टियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं। उनमें परस्पर वैभर्म है। ये सम नहीं हैं। इस विभिन्नता का स्पष्टीकरण करने क लिए शङ्कराचार्य तीन तर्क प्रस्तुत करते हैं।

शङ्कर का पहला तर्क है कि हमारी स्वप्न स्थिति हमारी जाग्रत स्थिति से बाधित होती है। हमें स्वप्न देखने के बाद जगने पर स्वप्न की अनुभूतियाँ भिन्ना प्रतीत होती हैं। किन्तु जाग्रतावस्था में देखी हुई वस्तुओं का बोध नहीं होता। अतः वे स्वप्नवत् नहीं बड़ी या लक्ष्मी।

दूसरा तर्क यह है कि स्वप्नावस्था में देखी हुई वस्तु सृष्टि के परिक्रामत्वरूप उदय होती है। किन्तु जाग्रतावस्था क दरम और अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध होती हैं। तः इस आकार पर मी जाग्रत जगत् का स्वप्नवत् नहीं बड़ा या लक्ष्मी।

अन्त में तीसरा तर्क है कि मन बुद्धि आदि में किसी पदार्थ की सृष्टि का उदय होता व व क संभव नहीं होता जब तक वह पदार्थ पहले से न देखा गया हो। ऐसी प्रकृता में जाग्रतावस्था से स्वप्नावस्था क पदार्थ भिन्न हुए। यदि एक को प्रकृत्य कहेंगे तो दूसरे को लक्ष्मी। शङ्कराचार्य स्वप्नावस्था क पदार्थों को मायात्मक मानते थे। वे जाग्रतावस्था में प्रत्यक्ष अनुभव होनेवाले पदार्थों को मायात्मक नहीं करते थे यह बात उनके प्रसङ्ग के मान्य क प्रकृत्य है। अब प्रश्न उठता है कि उन्होंने स्वप्न सृष्टि का ही मायात्मक क्यों कहा मी। समझ में इतना कारण यही था कि स्वप्न सृष्टि के पदार्थों का देशकाल क और मी सम्बन्ध नहीं होता और उनमें अर्थ कारण सम्बन्ध मी योच्य नहीं होता इतनाकि उन्हें उन्होंने मायात्मक कहा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शङ्कर केवल उन्हीं पदार्थों को भिन्ना मानते थे जो स्वप्न सृष्टि के समान हैं। यहाँ पर प्रश्न यह उठ सकता है कि फिर ब्रह्मावस्था में आचार्यशङ्कर और बालाचरी के प्रसंग की व्याख्या करते हुए—शङ्कर जगत् के पदार्थों को 'शुद्ध अविद्यमाना' क्यों कहा गया है।

वेदान्तसूत्र—१।२।२४

<sup>१</sup> ब्रह्मसूत्र २।२।२

इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि यदि उक्त स्वतन्त्र का मनोयोग से अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होगा कि उन्होंने साम्प्रदायिकता के अध्यारोपित रूप को ही मृदा और अभिषमन कहा है, साम्प्रदायिकता के वास्तविक स्वरूप को नहीं।

साम्प्रदायिकता के अध्यारोपित पदार्थ स्वतन्त्र के उच्छ्रय ही मिथ्या होते हैं। प्रस-  
त्तर स्वतन्त्र नहीं होगा। दूसरे शब्दों में हम यह सच्चे हैं कि ज्ञानत जगत् मिथ्या  
नहीं है बल्कि उक्त पर अध्यारोपित मान रूप ही मिथ्या है। इस बात का स्पष्टीकरण  
माण्डूक्यकारिका भाष्य में भी देखा जाता है। कारिका का भाष्य करते हुए बाल्य  
पदार्थों के स्वरूप की स्वतन्त्र पदार्थों के स्वरूप से समानता प्रदर्शित की गई है किन्तु  
वहाँ पर मनो योग से विचार करते पर स्पष्ट हो जाता है कि वे बाल्य पदार्थों को  
केवल उही श्रम्यता में मिथ्या मानते थे जब उन्हें—स्वतन्त्रमानवत्—अर्थात् आत्मा के  
धर्म के रूप में देखा जाता है। दूसरे शब्दों में हम वां यह सच्चे हैं कि शंकर स्वतन्त्र  
जगत् की दृष्टि में साम्प्रदायिकता के नाम कभी को मिथ्या मानते थे। माण्डूक्यकारिका की  
बाह्यकी श्रम्यता की व्याख्या करते हुए आचार्य ने इसी बात का स्पष्टीकरण किया है।  
सो लोग स्वतन्त्र पदार्थों को आत्मा का स्वरूप मानते हैं वह ठीक नहीं है। मुँसते  
प्रकार में जैसे रज्जु को सर्प समझने का भ्रम हो जाता है ठीक उही तरह बाल्य जगत् के  
पदार्थों को आत्मा का धर्म समझ लेना है। इस प्रकार शंकराचार्य का मत स्पष्ट हो  
जाता है। बौद्धों का मत उनसे भिन्न था। बौद्ध बाल्य जगत् के पदार्थों को स्वतन्त्रजगत्  
के पदार्थों के उच्छ्रय नास्तिक रूप मानते थे।

अब हम शंकर के स्वतन्त्रवाद से गौडपाद के अज्ञानवाद का अन्तर स्पष्ट कर  
देना चाहते हैं। अज्ञानवाद का मूलमूल सिद्धांत है—

न करिषत ज्ञानते जीवः सम्मथो ऽपि न विद्यते  
पतन् क्वचन सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ॥<sup>१</sup>

अर्थात् कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता उच्छ्रय कोई कारण भी नहीं है। वही  
धर्म धरत है। संसार में कभी भी कोई भी बस्तु उत्पन्न नहीं होती। प्रश्न उठता है कि  
यह बात कथं हमें निर्धारित पड़ता है उच्छ्रय का समाधान होगा उच्छ्रय उत्तर है।  
मनोद्वेषमिदं द्वेषम<sup>२</sup> 'चित्तरान्दितमेवम'<sup>३</sup> अर्थात् बाल्य पदार्थ वास्तव में उत्पन्न हुए  
पदार्थ नहीं हैं। यह तो व्यक्तित्व के चित्त का ही संक्रम मात्र है। मन ही उन्हें देखा है

<sup>१</sup> माण्डूक्य कारिका २।४

<sup>२</sup> माण्डूक्य कारिका ३।१८

<sup>३</sup> बौद्ध ३।११

<sup>४</sup> बौद्ध ३।१२

मास्त्र में ऊनघ कोई अस्तित्व नहीं। इष्टी को माया कहते हैं। माया मात्रमिदं परमावैतः<sup>१</sup>। यह मायानव पदार्थ चतुःकोटि के होते हैं—अस्तिरूप, नास्तिरूप, नास्ति अस्ति रूप न नास्तिरूप नास्तिरूप। किन्तु आत्मा इन चतुःकोटि पदार्थों से अप्रभावित रहती है। शंकरमत में श्रीर गौडपाद के मत में यही मौलिक अन्तर है कि शंकर आमत ब्रह्म को स्वप्नगत की अपेक्षा सत्य और ब्रह्म की तुलना में मिथ्या मानते थे। किन्तु गौड पाद सबको मिथ्या मानते थे। वृत्ते शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि शंकर का दृष्टिकोण बहुत कुछ विपगत था किन्तु गौडपाद की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा विपरीतगत थी। एक ने आदर और यथाथ दोनों को खूने की चेष्टा की है। वृत्त को आदर्शवादी है। गौडपाद और बीदों के दृष्टिकोण में भी अंतर है, बीदों का दृष्टिकोण नास्ति रूप शून्यवादी है जब कि गौडपाद उत्पन्न शून्यवाद के समर्थी है।

उपर्युक्त विवेचन के प्रभार में यदि हम शक्तों के स्वप्नवाद का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि यह शंकर और गौडपाद की धारणाओं से ही अधिक प्रभावित है। बीदों का उक्त पर कोई प्रभाव नहीं था। उक्त लोभा पूर्ण आस्तिक थे। वे अस्तिरूप परमात्मा में पूरी आस्था रखते थे। ऊन्हीं आस्तिकता के प्रभाव में कबीर की निम्नलिखित वक्ति उद्भूत की जा सकती है—

ओ तुम देखी सो यह नाहीं।

यह पद अगम अगोचर माहीं<sup>२</sup> ॥

इसी भाव की पुनरावृत्ति दादू ने भी लगभग मिलते-जुलते शब्दों में की है—

मन रे तू देखे सो नाहीं।

है सो अगम अगोचर माहीं<sup>३</sup> ॥

इन वक्तियों में कबीर और दादू दोनों ही शक्तों ने ब्रह्म को अधिष्ठान रूप स्वीकृत किया है। यह भाव रूपरूपक ब्रह्म ठीकी अधिष्ठान पर आप्पायेति है। उक्त सुन्दर राव ने इस वक्त को श्रीर भी स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया है—य सिलते है—

सुन्दर कहत यह एक ही अधिष्ठान ब्रह्म।

ताहि यूँ पकट कर जगतनाम धरयो<sup>४</sup> है ॥

<sup>१</sup> शै० मा० का० ११७

<sup>२</sup> कबीर प्रयोगवली—पृ० १३३।

<sup>३</sup> दादू—११२६।

<sup>४</sup> सुन्दरविद्यास—पृ० १२४।

<sup>५</sup> दादूराज की बानी भाग १ पृ० ११४।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सन्तों की जगत्सम्बन्धी धारणा पूर्ण आत्मिक है। बीड़ों के सदृश नास्तिक और शून्यवादी नहीं।

शंकर और गौड़पाद में से सन्तों पर गौड़पाद का ही श्रेष्ठ अधिक दिखाई पड़ता है। गौड़पाद के सदृश सन्त लोग भी मन को ही जगत् की उत्पत्ति और रूप स्थापन मानते थे। बाबू ने माना के ब्याज से इसी सिद्धांत की ओर संकेत किया है—

बाबू मन ही माया सपने ।  
मन ही माँहि समार्ई<sup>१</sup> ॥

सन्त मुन्दरदास ने इसे और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है—

मन के भ्रम से जगत यह देखियत है ।  
मन ही के भ्रम गए जगत यह विसाव है<sup>२</sup> ॥

इसी प्रकार सन्त पल्लू ने लिखा है—

इहाँ वहाँ कुछ है नहीं अपने मन का फेर हैं ।

एक दूसरे रूप पर इसी सन्त ने वासना के ब्याज इसी सिद्धांत का समर्थन किया है—

बीज वासना को धरै तब छूटे संसार ।<sup>३</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों जगत् सच्चा निरूपण पर गौड़पाद का प्रभाव अधिक है उद्धर कर कम ।

### सृष्टि विकास क्रम

सृष्टि के विभव क्रम पर भौत साहित्य में आध्यात्मिक दृष्टि से विचार किया गया है। वैचरीयापनिषद्<sup>४</sup> में सृष्टि उत्पत्ति और उसके विभव पर प्रकाश डालते हुए लिखा है 'उत्पत्ति कर्मना की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। इस कामना से प्रेरित होकर सन्तने वरस्या की। वरस्या से सृष्टि की प्राप्ति हुई। जो कुछ भी है उच्चरी सृष्टि करके उसी में वह अनुप्रविष्ट हो गया। ब्रह्म की सृष्टि में अनुप्रविष्ट होने पर उसके दो

<sup>१</sup> मुन्दरदास—पृ० १३

<sup>२</sup> पल्लू बाबी भाग १ पृ० ४८ ।

<sup>३</sup> पल्लू बाबू की बाबी—भाग १—पृ० ४८

<sup>४</sup> जो कामना । बहुस्या प्रजापयेति च तपो तप्यत । च तपस्तप्या । इहं सर्वमप्यत्र त परिहं द्विच तस्युया तदेवापुपारिचत उदन्तु प्रविरव सत्त त्पत्त धमकर निवक्त कामिस्तवत्त—२।१।१—वैचरीयापनिषद् ।

रूप हो गये—एक स्त् और दूसरा त्वत् । दूसरे शब्दों में उन्हें एक आत्म परार्थ कह सकते हैं । इस प्रकार ब्रह्म के दो रूप हो गये । समस्त सृष्टि ही ऊन्हीं दो रूपों का विकास है—मन्त्रोपनिषद्<sup>१</sup> में भी इसी भाव की पुनरावृत्ति की गई है । ऐतरेयोपनिषद्<sup>२</sup> में आत्मा के ईश्वर को ही सृष्टि का अरथ व्यक्तित्व किना गया है । बृहदारण्यक<sup>३</sup> में एक स्थल पर मृत्युस्वरूपा परमात्मा से सृष्टि का विकास बतलाया गया है । इसी प्रकार श्वेताश्वतथ उपनिषद्<sup>४</sup> में ब्रह्म की उत्पत्ति आत्मपरैव से बतलाई गई है । उन्हीं को सब अरथों का अरथ कहा गया है । उपनिषदों के उपर्युक्त मंत्रों का अध्ययन करते समय दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं—एक यह कि जब ब्रह्म शुद्ध शुद्ध शुद्ध नित्य है तो फिर उससे ब्रह्म की उत्पत्ति कैसे मानी गई है । दूसरा यह है कि उस अरथ का रूप परमात्मा का भी कौन काय्य होगा । पहले प्रश्न का उत्तर वेदान्तसूत्र भाष्य में शंकराचार्य ने दिया है । उन्होंने लिखा है कि परात्पर ब्रह्म से ब्रह्म की उत्पत्ति हुई जो बात कही जाती है वह वैशान्त की सर्वादा मात्र<sup>५</sup> है । दूसरे प्रश्न का समाधान मुनिवों में उल्लिखित 'बह आत्मी महिमा में विद्यत रहता है' इस सिद्धांत से हो जाता है ।<sup>६</sup>

वैदिक साहित्य में सृष्टियोत्पत्ति के अतिरिक्त सृष्टि विकास क्रम पर भी प्रचण्ड बोलने की चेष्टा की गई है । इस विषय से सम्बन्धित ऋग्वेद में कई अंक्तियाँ मिलती हैं । उनमें एक स्थल पर लिखा है आरम्भ में मूल हिरण्यगर्भ या अमृत और सृष्टु दोनों उभरी हो क्षाया हैं ऊन्हीं से सृष्टि का विकास हुआ<sup>७</sup> है । उन्हीं में दूसरे स्थल पर आप का सृष्टि का आदिम उपस्थितत्व बतलाया गया है । उनमें लिखा है—पहले सब कुछ आर का बल रूप का उससे प्रजापति उत्पन्न हुए ।<sup>८</sup> इसी संदिता में ही गई एक दूसरी अंक्ति के अनुसार सृष्टि के आदि में विराट् रूप पुरुष मात्र या उन्हीं पुरुष से बह के द्वारा सारी सृष्टि<sup>९</sup> उत्पन्न हुई इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर लिखा है कि सर्वप्रथम श्रुत और सत्य उत्पन्न हुए उनसे अहोरात्र से आदिको का ब्रह्म<sup>१०</sup> हुआ । सृष्टि

<sup>१</sup> प्रथम ४—बृहदारण्यक—१०० १३

<sup>२</sup> ऐतरेयोपनिषद्—१११—२

<sup>३</sup> बृहदारण्यक उपनिषद् ११२।२

<sup>४</sup> श्वेताश्वतथ उपनिषद्—१।३

<sup>५</sup> आत्मादि ब्रह्मो मन्त्रानामुत्पत्तिरिति।वेदान्तसूत्र सर्वादा—ब्रह्मसूत्र भाष्य १।१।२२

<sup>६</sup> श्वे महिम्नि ब्रह्मिष्ठ्या—दान्तोपनिषद् ७।२७।१

<sup>७</sup> ब्रह्मेद्—१०।१२।१२

<sup>८</sup> ब्रह्मेद्—१०।२२।१

<sup>९</sup> ब्रह्मेद्—१०।२०

<sup>१०</sup> ब्रह्मेद्—१०।१२।०।१





वेग उत्पन्न हुए। तब से बल बढ़त हुआ बल के परमात् पृथ्वी उत्पन्न हुई। फिर पृथ्वी से अमल भी उत्पन्न हुए। मीठा चाइन के इस सृष्टि विज्ञान क्रम को पढ़कर ऐसा लगता है कि तन्त्रों ने श्रीरनिपदिक सृष्टि विज्ञान क्रम की धारणाओं को अपने ढंग पर विकसित करने की चेष्टा की थी। सामान्यतया उनका उद्घन शब्दवाद की ओर अधिक था। इसी लिए उन्होंने कहीं पर तो सृष्टि का शब्द से उद्भूत कहा है और कहीं पर ओंकार से। ज्योति से सृष्टिपोषण की धारणा भी कहीं प्राचीन है। हमारे वहाँ भुक्तियों में ब्रह्मज्योति का बर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। कहीं-कहीं पर ज्योति से ही ब्रह्म के उत्पन्न होने को बतलवाही है। इस धारणा की पुनरावृत्ति इस्लाम-धर्म में भी दिखलाई पड़ती है। वहाँ पर भी नर-वर्षन बड़े समतोह के साथ किया गया है और मूर से ही ब्रह्म की उत्पत्ति बतलाए गई है। यह ज्योति अथवा नूरवाद की धारणा तन्त्रों को मा मान्य थी। सन्त कबीर ने लिखा<sup>१</sup> है—

एक नूर से सब जग उत्पन्ना कौन मझा कौन मंदा ।

इसी प्रकार सन्त बाबू<sup>२</sup> ने ब्रह्म को नूर का चदकर उसकी कारखरूपता ज्ञानित की है—

इक लस एकै नूर है एक सस एकै तज ।

एक सस एकै ज्योति है बाबू खसै संज ॥

सृष्टि विज्ञान क्रम का विज्ञाना साम विवेचन सांख्यदर्शन में किया गया है ज्वना और कहीं भी नहीं मिलता है। सांख्यदर्शन में पञ्चीत मूलतत्त्व माने गये हैं। उनमें से सर्वभेद तत्त्व पुण्य है। पुरर का अतिरिक्त उत्तम प्रकृति को भी एक स्वतंत्र तत्त्व माना गया है। इन दोनों के सहारे सृष्टि विज्ञान दिखलाया गया है। सबसे पहली प्रकृति विज्ञान तत्त्व उत्पन्न होते हैं। ये तत्त्वों में छाठ माने गए हैं उनके नाम क्रमशः महत्तत्त्व अहंकार और बंध तन्मात्राएँ हैं। इनके अतिरिक्त सांख्य में सायद विज्ञान तत्त्व भी माने गए हैं। उनके अन्तर्गत मन, पाँच बानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, और पाँच पंचमहाभूत, गिनाए जाते हैं। यह विज्ञान पञ्चीत तत्त्व का ज्ञान है। वेदों की विज्ञान तत्त्वों को पूनरावृत्ति नहीं करते। अंतर्गत का सृष्टि विज्ञानक्रम गुण परिशामवाद के नाम से प्रसिद्ध है। गुण परिशामवाद की अन्तर्गत भौत साहित्य में भी मिलता है। ब्रह्मदर्श के लिए हम तैत्तिरीयोपनिषद् की यह श्रुति से सकते हैं—

परमत्मा स आभय, आभय से बाहु, बाहु से अग्नि, अग्नि से पानी और

<sup>१</sup> कबीर प्रणयसौ—पृ० ३६८

<sup>२</sup> बाबूबाबू की बाबी नाय २ पृ० १२२ ।

<sup>३</sup> तैत्तिरीयोपनिषद्—२।२

पानी से घृष्ठी रूप में है। लक्ष्य और वेदान्त के गुण परिचामवादों में एक अंतर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। वेदान्त में लक्ष्य मूल आत्मा मानी गई है। किंतु लक्ष्य वाहे परियाम का भेद बड़ा प्रकृति को ही देते हैं। उन्को में स्वतन्त्र-वस्तु पर लक्ष्य-वस्तु की बर्णना की है पश्चीत उन्को की मान्यता लक्ष्य दर्शन में ही है इसी लिए हम उन्को पर थोड़ा-बहुत प्रभाव लक्ष्य का भी स्वीकार करते हैं। किंतु उन्कोने पश्ची पर भी लक्ष्य के सृष्टि विचलन का लक्ष्य का लक्ष्य प्रभाव नहीं किया है। उनमें गुण परिचामवाद की सृष्टि भी दिखलाई पड़ती है। किंतु वह गुण परिचामवाद लक्ष्यों का न होकर वेदान्तिशो का शक्यता है। वही उन्को कबीर ने एक स्थल पर लिखा है—

घृष्ठी का गुण पानी सोक्या पानी तेज निहावहिरो ।

तेज पवन निहि पवन सबहि निहि सहाज समाधि सागवैरो ॥

यहाँ पर ऐसा अनुभव होता है कि उन्को कबीर ने वैचरीबोमनिबद के अनर्गुण गुण परिचामवादी उन्को को विनाशक से दखाने की चेष्टा की है। जो भी हो इसके इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि उन्को का गुण परिचामवाद भी वेदान्त से ही प्रभावित है। उन्को पर लक्ष्य की सृष्टि नाम-मात्र भर का है उन्को ने पश्ची पर भी सृष्टि का विचलन प्रकृति से नहीं माना है। उन्कोने आदित्य के रूप में या तो आत्मा का उन्को कृष्ण है या परमात्मा का। लक्ष्य और वेदान्त में वही भौतिक अंतर है कि लक्ष्य लोग प्रकृति और दो स्वतन्त्र लक्ष्य की स्वीकार करते हैं और प्रकृति को सृष्टि का उत्तरदायी कतलाते हैं। इसके विपरीत वेदान्त इन दोनों से परे अद्वैत परमात्मा से विरक्त करता है और उन्को से सृष्टि की उत्पत्ति बतलाता है। वेदान्त<sup>१</sup> सूत्र भाष्य में आचार्य शंकर ने एक स्थान पर लक्ष्य और वेदान्त के भौतिक अंतर का लक्ष्यकरता भी किया है। इस प्रश्न हम देखते हैं कि उन्को का सृष्टि विचलन वेदान्त की ओर ही मुक्त हुआ है।

### सतों की मोक्ष सम्बन्धी चारणा

उन्को की चारणों में हमें पश्ची पर भी मोक्ष के स्वरूप का शास्त्रीय विवेचन नहीं मिलता है। उन्को शास्त्रीय विवेचन करना उन्को लक्ष्य भी न था। वे कोई दार्शनिक न थे। उन्को प्रमुख लक्ष्य चार में सिद्ध मानकों को उन्को पर लाया था। कबीर आदि उन्को में लक्ष्य रूपों पर आने इस लक्ष्य की चरित्रकर्म भी कर दी है। वह लिखते हैं—ईश्वर की इच्छा हुई कि कबीर ऐसी वाली कहे कि बिलखे मन्सागर में ब्रह्म हुए लोगो की मुक्ति हो जाय। उन्को ने ईश्वर की इच्छा की पूर्ति की लोख कर

<sup>१</sup> वेदान्त सूत्र भाष्य १।१।३

ही थी। जनता को सन्मार्ग पर लाने का उत्तम प्रयास करते रहते थे। उनही समय कानिवाँ इही प्रेरणा का परिणाम है। उपदेश के बीच-बीच में मानवों को मुक्ति का आश्वासन भी दिया गया है। इस आरूपय मास को बल प्रदान करने के लिए कहीं-कहीं मुक्ति के स्वरूप की विशेषताएँ भी संकेतित की गई हैं। वे विशेषताएँ किसी एक दर्शन के अनुकूल्य पर आधारित नहीं की गई हैं। उन पर मध्ययुग की विविध दर्शन पद्धतियों में निरूपित मुक्ति स्वरूपों का प्रभाव है। उस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए हम प्रसिद्ध दर्शन पद्धतियों में बखितियों में बखितियों मुक्ति स्वरूपों का चर्चा कर देना आवश्यक समझते हैं।

म्याय दर्शन में मुक्ति के लिए अपवर्ग शब्द का प्रयोग किया गया है। अपवर्ग की परिभाषा देते हुए गौतम ने लिखा है कि—'मुक्त की आत्मान्दिक निवृत्ति का नाम अपवर्ग है। आत्मा को मुक्त से आत्मान्दिक निवृत्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब उसके गुणों का उन्मेष हो जाय। नैप्रायिकों के अनुसार आत्मा के विशेष गुण ही हैं। इनमें एक मुक्त भी है। अतः वे उसे मुक्त की अवस्था नहीं मानते।

योग दर्शन में मोक्ष के लिए कैवल्य शब्द का प्रयोग किया गया है। कैवल्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए पर्वबलि<sup>१</sup> ने लिखा है—'पुरुष को मांग तथा अपवर्ग दिलाने के कार्य से निवृत्त होकर मन और बुद्धि का अपने कारण में लीन हो जाना ही कैवल्य है। इही परिभाषा की एक दूसरे स्थल पर दूसरे शब्दों में पुनरावृत्ति की गई है। वैदिक दर्शन के आचार्य महर्षि ऋष्याद ने मुक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'उसके अभाव में संयोग का अभाव और पुनः उत्पन्न होना ही शब्दालंकार में पुनरावृत्ति है। अल्प दर्शन में भी मुक्ति को अपवर्ग ही कहते हैं। उसका स्वरूप निर्देश करते हुए लिखा गया है पुरुष की पद्धति से अलग स्थिति अपवर्ग है। मीमांसकों की मोक्ष संबंधी परिभाषा भी स्पष्ट है। शाल्म कीटिका में लिखा है कि इस जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध के विनाश का नाम मोक्ष<sup>२</sup> है।

<sup>१</sup> इच्छि—म्यायसूत्र १।१।२२

<sup>२</sup> पुनरावर्ग शब्दात्ता पुनरावर्ग प्रविप्रवृत्तः कैवल्य स्वरूप प्रविप्रवृत्तः का चिह्नितकथित—योग सूत्र ४।३४

उपमावाचकं भाषावर्गं ।

दर्शन तदुक्तं। कैवल्यस्य च योगसूत्र २।२२

<sup>३</sup> तत्र भावे संयोगा भावो प्रादुर्भावश्च मोक्ष—मिमेविक दर्शन २।१।१०

<sup>४</sup> इत्योरेकस्य वा औदासीन्य परगः—छा० प्र० भाग ३।०४

<sup>५</sup> मर्षक सर्वत्र विप्रयो मोक्षः शास्त्रदीपिका ४० ३२०



२—हीनयानी निर्वाण को लोकोत्तर रिक्ति मानते हैं किन्तु महायानी उसे लोकोत्तर अक्षरथा मानते हैं। हीनयानी लोक निर्वाण को केवल मुक्ति की अक्षरथा मर समझते हैं किन्तु महायान की दृष्टि में वह सर्वज्ञाता अक्षर धर्म स्यात् की रिक्ति है।

३—दोनों यानों में निर्वाण के मेदों के अभिधान भी अलग अलग हैं। हीनयान में निर्वाण के दो प्रकार माने गये हैं—सोपाधिरोप निरूपाधिरोप। महायानी भी निर्वाण के दो ही मेद मानते हैं किन्तु उनके नाम मिश्र मिश्र हैं। उन्हें क्रमशः प्रकृति शुद्ध निर्वाण और अत्यतिष्ठित निर्वाण बताये गये हैं।

४—हीनयानियों को निर्वाण और संसार की धर्म समता स्वीकार नहीं है किन्तु महायान के साम्प्रदायिक सम्प्रदाय में दोनों की धर्म समता पर विशेष बल दिया गया है।

बीजों के निर्वाण से बीज तांत्रिकों की निर्वाण-भाषना मिलती-जुलती है। बीज तांत्रिकों की दृष्टि में बिच का मुक्त होना ही निर्वाण<sup>१</sup> है। बिच वा मन की मुक्ताक्षरथा की पहचान मन का निरंजन होना<sup>२</sup> है। शुद्धाक्षरथा में वह विपयावस्तु खूब है। उसकी दया भीन पर्वण की अक्षर तथा हरिय की सी होती<sup>३</sup> है। इसी लिए अन्यो ने मन को बाँधकर आत्मस्वभाव में लीन करने का उपदेश दिया है। आत्मस्वभाव -शून्यरूप कहा गया है। वह निर्मल और शुद्ध होता<sup>४</sup> है। इसी को उद्भव और निरंजन भी कहा जाता है। त्रिदों ने मन और निर्वाण का समान केवल इसी अर्थ में कहा है कि दोनों का सम्बन्ध बिल से ही है। इससे प्रकृत है कि त्रिदों की निर्वाण धारणा शून्यवादिनों और विज्ञानवादियों से बहुत प्रभावित है। नापर्ययिता की मुक्तिधारणा भी उद्भवयानियों से मिलती-जुलती है। वे भी निरंजन में मन का लय का मुक्ति मानते हैं।

अन्यत्र धारणाओं से विशेष प्रभावित नहीं प्रतीत होती है। उक्तमें वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। वेदान्त के अतिरिक्त बीजों का शून्यवाद और विज्ञानवाद से भी उसे प्रेरणा मिलती थी। त्रिदों एवं नापर्ययियों की मुक्ति धारणाओं के मुक्ति मेदों की दृष्टा भी मिल जाती है।

अन्य मुक्ति को वेदान्तियों की भाँति अनाद्य की अक्षरथा मानते थे। उन्हीं की भाँति वे भी विरहाद्य करते हैं कि मुक्ति के प्राप्त हो जाने पर बीच का अनाद्यमन

१ लोहा कोप ५० २४४४ रजोक

२ बदी ५० १८

३ बदी ५० १४

४ बदी ५० ४

मही जाता। वह काल के संशुद्ध से मुक्त हो जाता है। संत अरजदास<sup>१</sup> लिखते हैं—  
 निर्वाण पद के प्राप्त हो जाने पर आवागमन नहीं होता। उच्छ्वस न हो अन्म ही  
 होता है और न मृत्यु ही होती है। काल भी उसे अपने बंधनों में नहीं बाँधता है।  
 वह शुद्ध-शुद्ध मुक्तस्वरूप हो जाता है। वेदान्तियों की भाँति संत लोग मुक्त को पूर्णानन्द  
 की अवस्था भी मानते हैं। ब्रह्मानन्दमरुतवाला सिद्धांत उन्हें पूर्णतया मान्य था।  
 दाम्<sup>२</sup> लिखते हैं—कि हमें उस प्रियतम की प्राप्ति हो गई है जहाँ शरद्वत् अज्ञान ही  
 अज्ञान रहता है। यही पूर्णानन्द की अवस्था है। यही मोक्ष है। इस पूर्णानन्द की  
 अवस्था में दुःख-मुल पाप-मुन्य सब छूट हो जाते हैं और आत्मा मगवान् के लोक में  
 पहुँच जाती है। सहजों ने शिला<sup>३</sup> है—जब भीव को मुक्ति प्राप्ति हो जाती है तो फिर  
 वह इन्द्राधीन हो जाता है। वह पाप पुण्य से परे हो जाता है। संत लोग वेदान्तियों  
 की मुक्ति धारणा से इतना अधिक प्रभावित हुए थे कि कहीं कहीं पर उन्होंने मुक्ति  
 सिद्धांत वाक्यों का अनुवाद करते रह दिया है। मुक्ति का प्रसिद्ध सिद्धांत वाक्य है—  
 ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति। दाम्<sup>४</sup> ने उक्त अनुवाद करते हुए कहा है—दाम्<sup>५</sup> कायें ब्रह्म कूँ ब्रह्म  
 लीला<sup>६</sup> होय। इस प्रश्न हम देखते हैं कि संतों की मुक्ति सम्बन्धी धारणा वेदान्तियों  
 से बहुत अधिक प्रभावित है। वेदान्तियों से इतना प्रभावित होते हुए भी संतों की मुक्ति  
 धारणा वेदान्त से भिन्न मुक्ति स्वरूप से दो-दो करती में भिन्न भी है। वेदान्त  
 ग्रन्थ में लिखा है कि मोक्ष की अवस्था में ही आत्मा का स्वप्न शरीर बना रहता है,  
 संत लोग विरनाच नहीं करते। वह पूर्ण शरीरवादी हैं। उन्हें वह सिद्धांत क्यापि मान्य  
 नहीं है किन्तु शरीर पाप ही अज्ञान भाव बना रहे।

संतों का मुक्ति स्वरूप योगियों के ईश्वर से भी प्रभावित है। सम्भवतः उन्हीं  
 से प्रभावित होकर कबीर ने निम्नलिखित पंक्तियाँ अर्थ गुणों धारण गुणों में लय  
 होना भी बर्णित किया<sup>७</sup> है। मुक्ति हो जाने के बाद हमारा पुनरागमन नहीं होगा।  
 अकाल्य विनिर्मित यह शरीर नष्ट हो जावेगा। कार्य गुण अपने धारण गुणों में लीन हो

<sup>१</sup> जो पार्श्व निर्वाण पर आवागमन सिद्धांत।

जगम मरन होई नहीं फिर काल न पाय ॥ अरजदास माग २ पृ० २६

<sup>२</sup> दाम्<sup>३</sup> लिखते हैं कि पाहवा जहाँ अज्ञान बाह्य भास—दाम्<sup>४</sup> १ पृ० २२

<sup>३</sup> पाप पुण्य दोनों छुटे हरिपुर पहुँचें कार्य—सद्गोवर्ध

<sup>४</sup> दाम्<sup>५</sup> कायें माग १ पृ० २२

<sup>५</sup> बहुरि हम बादे को पावेंगे।

बिदुरे पंच लख की रचना लख हम समर्थ पावेंगे ॥

पृथ्वी का गुण पायी मोक्षा पानी सेत्र मित्राविहिनि।

सेत्र बरन मित्रि पदक शब्द मित्रि सद्भि समाधि धरमर्षे ॥ कबीर प्रियावली पृ०  
 १२०।

बाबों। पृथ्वी तत्व का सब बल तत्व में होगा और जल तत्व का सब बल तत्व में होगा। धूम्र तत्व बायु तत्व में लीन होगा। इस प्रकार सहज में ही समधिकारी मुक्ति प्राप्त हो जायगी।

बौद्धों और सिद्धों की निर्वाण धारणाओं ने तो सत्त्वों के निर्वाण स्वरूप की प्राण्यविध्य की थी। विज्ञानवादियों के ढंग पर उन्होंने चित्त में चित्त और सिद्धों के अनुकरण पर मन के मन में समाने की बात कही है। चित्त में चित्त के समाने के सिद्धान्त को प्रकट करते हुए शङ्कर ने लिखा है<sup>१</sup> कि जब चित्त का लय चित्त में हो जाता है तब केवल परमात्मा भर होय रह जाता है। आत्मा-परमात्मा का भेद मिट जाता है। वही मुक्ति की अक्षरणा है।

इसी प्रकार कबीर ने मन में मन का समाने का उपदेश दिया<sup>२</sup> है। वे कहते हैं कि मुलसागर परमात्मा की अनुभूति तभी होती है जब मन का लय महात्मन में कर दिया जाता है। जिस प्रकार सिद्ध लोग मन को ही माय का अक्षरण समझते हैं वही प्रकार निर्वाण को भी उसी से संबंधित मानते हैं। उन्हीं का अनुकरण करते हुए संतों ने मन के रहस्य को समझने का उपदेश दिया है। संत दरिवा साहब<sup>३</sup> लिखते हैं— कि वा साधक मन के रहस्यों को समझ लेता है और साधना के सहारे उसको अपने अधीन कर लेता है वह निर्द्वन्द्व हो जाता है। बुल, मुल, पाप, पुष्य, बीजन, मृत्यु आदि द्वन्द्व वहाँ पर सत्ते हैं।

बौद्ध लोग निर्वाण का सामान्य अर्थ वासना का बुझ जाना लेते थे। संत लोग निर्वाण के इस अर्थ से परिचित थे। इसी लिए उन्होंने वासना की निवृत्ति पर बहुत बल दिया है। सहजों ने लिखा है—कि चित्त<sup>४</sup> साधक में लाक और परलोक दोनों की वातनाएँ नष्ट हो जाती हैं तब वह मझ स्वरूप हो जाता है। कवि ने ब्रह्मस्वरूप की विशालता दिखाने के लिए उतथी उपमा सागर से दी है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ लाग मक्ति दरानों के चार मुक्तियों से पूर्वतया परिचित थे। संत शङ्कर दास ने उनका उल्लेख भी किया है। मक्तिपरक दरान की

<sup>१</sup> जब चित्तदि चित्त समाया।

इम हरि चित्त और न जाना ॥ शङ्कर भाग १ पृ० ३२।

<sup>२</sup> कबीर कबीर मन मनदि मिखावा। कबीर प्रणवली—पृ० १०२

<sup>३</sup> मन भीमई ता होव निरवेदा।

पुष्ट जाव तब कमजुर पैदा ॥ दरिवा सागर पृ० ३८।

<sup>४</sup> सद्मो लोक परलोक की वही वासना आदि।

सो बद्द ब्रह्म स्वरूप है सागर ज्यों समाना ॥ शरदजोषाई ३२।



अनुभूति में होनाकरना इन मात्र बना रहता है। सगों को इवभाव बिलकुल मी माम् न था। वे पूष प्रद्वेन न। इही खिए मुक्ति को मी पूर्ण अद्वैतारणा मानते थे। इस अद्वैतारणा की अमिम्बकि इन्होंने विविध प्रकार से की है। संत दादू लिखते हैं कि परमात्मा से आरमा उठी प्रचर मिल जाती है बिस प्रकार बल से बल मिलकर एक हो जाता है। दूसरे स्थल पर उन्होंने अद्वैतमात्र की व्यंजना पूष और पानी तथा ममक और पानी के उपान्त से की है। न कहते हैं—कि ऐसा कोई बिरला ही जायक होता है जो अपनी आरमा अ परमात्मा में उठी प्रकार लीन कर देता है बिस प्रकार लाल बल में तरूँप उरूँर हो जाता है।

इयाबाई में तो परम अद्वैतरूप निर्वास लिखकर निर्वास की अद्वैतारणा सन्त शम्भों में उद्बोधित की है।

### संतों की दार्शनिक पद्धति

पंचबाह<sup>१</sup> पधारबी<sup>२</sup> एवं बाद<sup>३</sup> विचार के पक्के से सदा बचने की चेष्टा करनेवाले सगों की विचारवाय को विविध दार्शनिक बादों में विभाजित कर डा० बङ्गपञ्चाल<sup>४</sup> ने इनके साथ और सम्पाप किया है। सन्त लोग लोक एक वेद से उदा लीन रहकर स्वतंत्र निवा में ही अपने जीवन-वापन करत थे। वे सारणाही महात्मा थे। वे सदैव ही सत्य के प्रयोगों में लगे रहते थे। उन प्रयोगों में सगों को उत्कल्लब उप-लम्ब हाते थे उन्हीं का इरादेश देकर मभवसामर में इहली दुर्ग बनता ना उधार करने का प्रयोग करते थे। एक बाल और की बह अपने युग की कृषिम्बता एवं बलिहता से मी ऊर उठे थे। अतः उन्होंने उन्हीं सिद्धांतों को अपनाने का प्रयोग किया था जो पूर्व बर्ती बरिगवम सिद्धांतों के विरोध में थे। अपने पूर्ववर्ती बिन सिद्धांतों को अपनाना ही वना है उनका उन्होंने सहबीरुत करके अपनाया है। सब तो यह है कि सगों ने अपने पूर्ववर्ती विविध बरिग सिद्धांतों को अपनी आलीकिक प्रतिमा क सचि में दास कर सहब और मौलिक रूप दे दिया है। यही कारण है कि वे पूर्ववर्ती अनेक दर्शन पद्धतियों से प्रभावित होकर मी सहब उरुत और मौलिक प्रतीव हाते हैं।

<sup>१</sup> दादू केने लिखि रहा सगों अत्र उरुदि समाजा। दादूबानी भाग १ पृ० ६३

<sup>२</sup> गीत उत्र पैने रूप में सगों पाणी में मूष।

देके आत्मम हाय को मव इर सारै खीर ३ दादू० भाग १ पृ० १०६।

<sup>३</sup> सन्त गुणासार भाग १ पृ० ३८६—सारी १२

<sup>४</sup> " " " " " ६

<sup>५</sup> सम्प्रदायी संग्रह भाग २ पृ० १०८ पंक्ति ६०

<sup>६</sup> हिन्दी आर्य में निर्गुण सम्प्रदाय प्र० १३६

भारत बहुत प्राचीन काल से ही विविध दार्शनिक शास्रो का श्रीगणस्थल रहा है। मन्मथुग में आरत उनश्री बाद ही आ गारं थी। आचार्य शंकर के मायावादी अद्वैत-वाद की प्रतिक्रिया में द्वैतवाद, द्वैतद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि अनेक दार्शनिक वादो का उदय एवं विकास हो रखा था। साधारण जनता इन वादो के दसदस में कँवर सुपी तरह से तड़प रही थी। उल्लेख उल्लेख करने का भेय लतो को ही है। उन्होंने समस्त वादो एवं पंथो का विरस्तार करके सदाय अद्वैत मार्ग का प्रवर्तन किया था। तन्व सुन्दरदास ने स्पष्ट लिखा है—

और उपाय बके सबही तप संतन अद्वैतज्ञान द्यो है ।<sup>१</sup>  
 उनके इत रूपन की धार्यरुता उनकी बानियो से स्पष्ट प्रकट होती है। उनकी बानियो में हमें सर्वत्र द्वैत का सपहन और अद्वैत का मयहन मिलता है। दो एक सपहनायक शक्तिर्वा इत प्रकार है—

क—द्वैत कछू नहि देखिये सुन्दर ब्रह्म अत्यगिहृत एक को एका ।<sup>२</sup>  
 ख—सुन्दर द्वैत कछू मत जानहु एकदि ब्यापक वेद वताये ॥<sup>३</sup>  
 इही प्रकार अद्वैत का मयहन करनेवाली उक्तिर्वा की भी कमी नहीं है।

क—सुन्दर विचारत यू उपरै अद्वैत<sup>४</sup> जान  
 आर कू अत्यग ब्रह्म एक पहिचान्यो है ।  
 ख—बोले सग्य अपोर मजन अद्वैतवा<sup>५</sup> बगी ।

संतो ने इत अद्वैतवाद को ही बेदांत कहा है। इतछ प्रमाण यह है कि उन्होंने ब्रह्म अद्वैत से अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है उली अद्वैत सं बेदांत की वर्षा की है। संव मीला साहब ने स्पष्ट लिखा है कि—संतो ने बेदांत का ही उपदेश<sup>६</sup> दिया है।

क—बेद बेदांत संव मुक्त मातदि । ख—बेदि विधि अद्वैत बेदांत संव मुक्त सो  
 अदि कृत निबेय । उरयुक्त उदरयो से स्पष्ट प्रमाणित है कि संव लोग अद्वैत बेदांत हैं। उनके अद्वैत बेदांत से दर्शन छत्र में प्रकलित किसी भी अद्वैत दर्शन पदति का अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए। उनका अद्वैतवाद उन सभी विद्वानों और स्वर्ण है।

<sup>१</sup> सुन्दर बिदास पृ० १३८

<sup>२</sup> " " " १३६

<sup>३</sup> " " " १३६

<sup>४</sup> सुन्दर बिदास—पृ० १०६

<sup>५</sup> पण्ड साहब की बानी भाग १ पृ० ६०

<sup>६</sup> मीला साहब की बानी क—पृ० १० । ख—पृ० १८

इनके द्वारा प्रस्थापित अद्वैतवाद लक्ष्य और स्वाभाविक अंतर दृष्टि प्रधान विचारधारात्मक अनुभव अन्वय है। अन्वय अद्वैत पद्धतियों के लक्षण बहु तर्क पर नहीं आधारित है। अपने इत कथन को स्पष्ट करने के लिए हम उनके अद्वैतवाद प्रस्थापन प्रक्रिया पर योजा-जा विचार कर लेना चाहते हैं।

संतों के अद्वैतवाद को स्पष्ट करने से प्रथम हम उसके संक्षिप्त इतिहास पर संकेत कर देना आवश्यक समझते हैं। अद्वैतवाद के लक्ष्य और स्वाभाविक रूप का प्रतिपादन हमें श्चुम्बेद में मिलता है। उन्नी अत्र विलुप्त विवेचन उपनिषदों में हुआ है। वही वेदांत के नाम से प्रसिद्ध है। बादरायण ने अपने वेदांत सूत्र में उन्नी अत्र शास्त्रीय ऐसी में निरूपण किया है। श्री मद्भगवद् गीता में भी उन्नी सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। आगे चलकर वेदांत के इन तीनों ग्रन्थों के प्रधानशरी के आधार पर अनेक दार्शनिकवादों का प्रकटन हुआ। केवल अद्वैतवाद के ही १२ भेद बताये जाते हैं। इनमें रघु कृप से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं—विश्वानन्दैत, लक्ष्मीत, केरलाद्वैत। इनके अनेक भेदोपभेद प्रसिद्ध हुए। इन सबमें सबसे अधिक व्यापक और प्रचार प्राप्त बसिष्ठ के कल्याणवाद, गीतावाद के अबाधवाद, शंकर के मायावाद, ईश्वरद्वैत के आमातवाद भी है। संतों के अद्वैतवाद को इनमें से किसी ओरि में नहीं रखा जा सकता। इतना हीने हुए भी उत पर इनका प्रभाव है। वास्तव में ऐसा कि आगे के विवेचन से प्रकट हो जायगा उन्होंने जीव ब्रह्म और जगत् की एकरा प्रतिपादित करने के लिए सभी सिद्धांतों और दृष्टान्तों का उपयोग किया है या उन्हें बात व। वे जाहे किसी भी दर्शन पद्धति के हो लक्ष्य उन्होंने किया नहीं की।

संतों का अस्मिन्नरूप्य उपनिषदों की अर्थात्मवादी ऐसी में हुआ है। वहीं-उन्नी पर तो ऐसा अनुभव होता है कि उन्होंने उपनिषदिक दृष्टियों का अनुवाद वा कर बताया है। उदाहरण के लिए मीरा लक्ष्य की निम्नलिखित कविता से लखते हैं—

व्यापक ब्रह्म चहुँ जुग पूरन है सबमें सब रामें ।

आगे पीछे भव कर्म साइ इहिनै सोइ नामे ॥<sup>१</sup>

छान्दोग्योपनिषद् में ही इसे निम्नलिखित अर्थ मीरा लक्ष्य की अर्पुक्त कविता से देखिए किन्ना साम्य लक्ष्यी है—

स पञ्चाम्नात् स त्रारिण्यात् स परशान् स पुरस्तात् स इक्षित स उतरथा स पवेद् सर्वमिति<sup>२</sup> ।

<sup>१</sup> मीरा लक्ष्य की कविता पृ० १

<sup>२</sup> छान्दोग्योपनिषद् ७।१२।१

स्वार्थवाद के प्रतिरिक्त सन्त लोगों ने उपनिषदों के ढंग पर ही सत्य की अद्वैतता एवं अखंडता का तथा संकर के ढंग पर उसकी निर्गुणता और निर्विशेषता का प्रतिपादन भी किया है। उदाहरण के लिए हम संत सुंदरदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं—

ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुन नित्य निरंजन और न भासे ।  
 ब्रह्म अखंडित है अथ ऊरुष बाहिर भीतर ब्रह्म प्रकासे ॥  
 ब्रह्महि सूक्ष्मम स्थूल अहो जगि ब्रह्महि साहिन ब्रह्महि दासे ।  
 सुंदर और कछू मध ,सानहु ब्रह्महि पेश्वत ब्रह्म तमासे<sup>१</sup> ॥

संतों ने अपने अद्वैतवादी ब्रह्म का निरूपण गौडपाद के परमार्थ निरूपण के ढंग पर भी किया है। गौडपाद ने अधिकतर परमार्थ निरूपण में नक्षत्रयन्त्रक शैली का निरूपण किया है जैसे—

न निरोधो न भोत्यक्षिर्ने वदो न च साभक्तः ।  
 न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता<sup>२</sup> ॥

संतों ने भी गौडपाद, की शैली को अपनाया है। उदाहरण के लिए सन्त सुंदरदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी या सकती हैं—

पापन पुन्य न ख्युक्त न सुन्य न बोले न मीन न सोषे न जागी ।  
 एक न दो इन पुर्षे न जोइ कहै कहीं कोई न पीछे न भागे ॥  
 शूद्र न ब्राह्म न कर्म न काल न इन्द्र न विसाल न ऊँके न मागी ।  
 बंध न मोघ अमोघ न मोक्ष न सुंदर है न असुन्दर लागी<sup>३</sup> ॥

संतों का अद्वैतवादी ब्रह्म निरूपण नहीं वही तांत्रिक अद्वैतवादी से भी प्रभावित प्रतीत होता है। तांत्रिक अद्वैतवादी अपने ब्रह्म की अद्वैतता प्रतिपादन करने के लिए स्त्री और उसकी दासों का हस्तगत किया करते हैं। जिस प्रकार पना एक और अद्वैत होते हुए भी अपने अंतर में बा दासों द्वारा रहता है उसी प्रकार पर जिस अद्वैत और अखंड रूप है किन्तु उसके अंतर में शिव और शक्ति अन्तर्निहित रहते हैं। सन्त सुंदरदास ने ब्रह्म निरूपण के प्रसंग में तांत्रिकों के बने और दास बासे हस्तगत तक को दोहरा दिया है—

<sup>१</sup> सुन्दर विज्ञान पृ० ११६

<sup>२</sup> माण्डूक्य व्याख २।३९

<sup>३</sup> सुन्दरविज्ञान पृ० ११८

जैसे कोई अर्धनारी नटेशुर रूप धरे ।  
एक बीजहूँ तें होइ वाकि नाम पाए हैं ॥  
जैसे हो सुन्दर बस्तु ह्यु देख्यु ही एक रस ।  
कमय प्रकार होइ आपही दिखाए हैं<sup>१</sup> ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभों का प्रधानिकृत्य विविध प्रकार के अद्वैतवादी ब्रह्म निरूपण से प्रभावित है। ठठथे हम किन्ती बाद विशेष का ब्रह्म निरूपण नहीं कर सकते यह ठठठथे प्रभावित होते हुए भी मौलिक, नवीन और सहज प्रतीत होता है।

सन्त लोग ब्रह्म और आत्मा में कोई अंतर नहीं मानते थे। भीष्म साहब ने स्पष्ट लिखा है<sup>२</sup>—

भीष्मा ब्रह्मरूप निज आत्मा अनूप ।

वे लोग आत्मा ब्रह्म की एवमा में ही नहीं विस्थाप करते थे बल्कि जीव और ब्रह्म को भी अद्वैतकम मानते थे। सन्त सुन्दर<sup>३</sup> दास ने लिखा है—

तही जीवरूप तही ब्रह्म है अकारणत ।

अब स्पष्ट यह है कि जब जीव और ब्रह्म एक ही है तो फिर वे विभिन्न क्यों भावित होते हैं। इस प्रश्न का ठठठथे देने के लिए अद्वैतवादी अविषा अठठथे अथवा माया का आशय लिया करते हैं। विषयवाद प्रतिविम्बवाद आदि सिद्धांतों की अकारणता भी इसी प्रश्न के मूलमध्यम को दृष्टि में रखकर की गई है। जीव और ब्रह्म की अद्वैतता प्रतिपादित करने के लिए सभों ने भी इन सभी सिद्धांतों का आशय लिया है। सन्त सुन्दर दास ने अठठथे को अद्वैत का कारण बताते हुए लिखा<sup>४</sup> है—

छाह अज्ञान रघो अभियन्तर जानि सके नहीं आतम मूला ।

सुन्दर यूँ कपथे मन के मल ज्ञान बिना निज रूपहिँ मूला ॥

इन्हीं सन्त में एक वृत्ते स्थल पर इसी बात को अठठथे के ठठठथे व्यक्त करने की चेष्टा की है<sup>५</sup> ।

सुन्दर कहत अठठथे ही से जीव भयो ।

अठठथे गए यह एक ब्रह्म आपु है ॥

<sup>१</sup> सुन्दर विद्याधर पृ० १६६

<sup>२</sup> भीष्म साहब की बानी पृ० ४८

<sup>३</sup> सन्त बानी संग्रह पृ० १०२

<sup>४</sup> सन्त बानी संग्रह पृ० १०३ भाग २

<sup>५</sup> सुन्दर विद्याधर पृ० २२

छन्दों ने अद्वैत तत्त्व की प्रत्यक्ष अनेकधा का स्वप्नीकरस्यारांभ अद्वैतवादिनों की भाँति निवर्तनाद और प्रतिबिम्बवाद के सहारे करने की चेष्टा की है। संत<sup>१</sup> गारी साहब ने निवर्तनाद के सिद्धान्त का स्वप्नीकरस्य स्वर्ण और आभूषण के दृष्टांत से किया है। बिना प्रथम एक स्वर्ण से ही अनेक प्रकार के आभूषण बनकर भिन्न दिशाई पकते हैं उसी प्रकार एक ही अद्वैततत्त्व अज्ञान के कारण विविध बीजों के रूप में प्रतिमाधित होता है। यह लिखते हैं—

गहने के गढ़े से कहीं सोनों भी जातु है।  
सोनों बीज गहनों और गहनों बीच सोन है ॥  
भीतर भी सोनों और बाहर भी सोन सीसे।  
सोनों तो अचल अंत गहनों को भीच है ॥  
सोन को तो जानि लीजै गहनों बरबाद कीजै।  
गारी एक सोनो ता में ऊँच कयन नीच है ॥

प्रतिबिम्बवाद भी वेदान्त का एक प्रसिद्ध सिद्धांत है। इसके सहारे भी तत्त्व की अद्वैतता सिद्ध की जाती है। छन्दोंने अपने अद्वैतवाद के प्रतिपादन में इस सिद्धांत का भी आशय लिया है। तत्त्व सुंदरवास लिखते हैं—

जैसे स्थान काच के सदन मध्य देखि और।  
सूँकि सूँकि मरत करत अभिमान जू ॥  
जैसे गज फटिक सिखा सूँकरि तौरै देव,  
जैसे सिंह शूरा माहि उमक मुलान जू ॥  
जैसे कोठ फेरि खाव फिरत सु देखै अग,  
तैसे ही सुन्दर सप ते रोही अज्ञान जू ॥  
अपनी ही भ्रम सो तो दूसरो दिशाई देव,  
आप हूँ विचार कोऊ देखिये न ज्ञान जू ॥

छन्दों ने यही-यही पर ईश्वरपद्वैती प्रतिबिम्बवाद के सहारे भी बीच और मध्य की एषदा प्रतिपादित की है। उदाहरण के लिए हम संत सुन्दर<sup>२</sup> राव की निम्नलिखित उक्ति से कहते हैं।

देह को संभोग पाइ जीव ऐसे नाम भयो,  
पट के संभोग पटाकास ही कहाया है।

<sup>१</sup> गारी संत की रत्नावली पृ० २१०

<sup>२</sup> संत गानी संमह भाग २ पृ० १०४

<sup>३</sup> सुंदरविद्यास पृ० १०२

ईश्वर सकल विराट में विराजमान,  
 मठ के संयोग घटाकास ही कहायो है ।  
 ईश्वर सकल विराट में विराजमान,  
 मठ के संयोग मठाकास नाम पायो है,  
 महाकास माहि सब षट मठ बेखियत,  
 बाहिर भितर एक गगन समायो है ॥  
 वैसे ही सुन्दर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव,  
 त्रिविध उपाधिभेद प्रथम में गायो है ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों में जीव और ब्रह्म की अद्वैतता जितने प्रकार से समझ हो सकती है उतने प्रकार से विद्व करने की चप्या की है ।

संत लोग केवल जीव और ब्रह्म की ही अद्वैतता में विश्वास नहीं करते वे वे ब्रह्म और ब्रह्म को भी अद्वैत रूप ही मानते थे । सुन्दरदास<sup>१</sup> ने स्वयं शब्दों में लिखा है

तैसेही सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय,  
 ब्रह्म सो अगतमय वेद कहतु है,

ब्रह्म और ब्रह्म की अद्वैतता विद्व करने के लिए संतों ने कार्य श्रमण संघ पर भी विचार किया है । संत परब्रह्म<sup>२</sup> साहब ने लिखा है—

आपुइ कारन आपुइ कारअ विस्वल्प हरसाया ।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है वह कि ब्रह्म संत लोग ब्रह्म और ब्रह्म को पूर्ण अद्वैतरूप मानते थे तो फिर उन्होंने उसे मरपर और स्वप्नवत् क्यों कहा है । इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए वेदान्त को अग्निपार या अग्निपार के सिद्धांत का आशय लेना पडा है । वेदान्त<sup>३</sup> स्व के अनुसार ब्रह्म में ब्रह्म का भ्रम हा जाना ही अग्निपार है । वे लोग दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म को ब्रह्म या ब्रह्मरूप मानते हैं । किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से वे स्वयं ब्रह्म को मरपर कहते हैं । उनका कहना है कि अज्ञान से हम ब्रह्म पर ही ब्रह्म का आरोप कर लेते हैं । यह आरोपित ब्रह्म ही मरपर और स्वप्नवत् ब्रह्म है । इस सिद्धांत का स्पष्ट करने के लिए वेदान्तियों ने सती और रजत तथा चाही और रजत चाही के उदाहरण दिए हैं । वेदान्त का उदाहरण अग्निपारवादी सिद्धांत संतों को अपने दृष्टियों के साथ पूर्णतया मान्य था । उन्होंने उच्चैर् अधिव्यक्ति अनेक रूपों पर की है । उदाहरण के लिए हम स्वयं सुन्दरदास का निम्नलिखित उदाहरण दे सकते हैं—

<sup>१</sup> अन्त वाली संस्कृत भाग १ पृ० १०१  
<sup>२</sup> परब्रह्म साहब की वाली भाग ३ पृ० २  
<sup>३</sup> वेदान्त सूत्र ३।१।१ का भाष्य की रेखा

आदि हुतो नहि अंत रहे मध्य सरीर भयो भ्रम पूजा ।  
मासत है कुण्ड और कु औरहि ज्यों रजु में अहि सीपि में रूपा ॥  
देहि मरीच उल्लो विधि बिभ्रम जानत नाहि बहै रवि धूपा ।  
सुन्दर ज्ञान प्रकास भयो अथ एक अन्वडित ब्रह्म अनूपा ॥

उन्तो ने ब्रह्म और अगत की अद्वैतता की प्रतिपादना गौडपादीय ढंग पर की है । गौडपाद ने अज्ञानवाद को प्रवर्तन किया था । उन्होंने सिद्ध किया है कि बाह्य में ब्रह्म के अतिरिक्त न तो कोई वस्तु है और न कोई वस्तु व्यपन्न होती है ।<sup>१</sup> इत्य सृष्टि केवल मन का भ्रम मात्र है । गौडपाद का यह सिद्धांत जैसा कि हम पीछे दिखा पाये हैं उन्तो का पूर्वतया मान्य था । संत पण्ड<sup>२</sup> साहब ने लिखा है—

यहाँ वहाँ कुण्ड है नहीं सब अपने मन का फेर ।

‘उक्त सुन्दर<sup>३</sup>दास ने इस सिद्धांत को और भी सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है ।

मन ही के भ्रम से अगत यह देखियत,

मन ही के भ्रम भए अगत यह विस्तार है ॥

इस प्रकार उन्तो ने ब्रह्म और अगत के अद्वैतभाव को स्पष्ट करने के लिए गौडपाद तथा संकर आदि सभी प्रसिद्ध अद्वैतवादियों के सिद्धांतों का ग्राम्य किया है ।

उन्तो के उद्देश्य स्वामात्रिक अद्वैतवाद का स्पष्टीकरण उनकी मुक्ति संबंधी धारणा से ही जाता है । उक्त लोग मुक्ति को पूर्ण अद्वैतत्वस्था मानते थे । लोक में पूर्ण अद्वैत भाव को स्पष्ट करने के लिए मीर खीर और लक्षण और बल के उदाहरण दिए जाते हैं । उन्तो ने मुक्ति की अवरण के स्पष्ट करने के लिए इन दोनों उदाहरणों का उपयोग किया है । संत<sup>४</sup> दास लिखते हैं—

ज्यों जैसे दूध में ज्यों पाखी में लस ।

पसे आत्म राम सो मन हठ साथे कंस ॥

दयादास ने उदाहरणों आदि के अक्षर को निरर्थक समझकर निर्वाण की अवरण का स्पष्ट रूप से परम अद्वैत स्वरूपी च्छे दिया है । इस प्रकार स्पष्ट है कि उक्त लोग मुक्ति को पूर्ण और परम अद्वैतरूप मानते थे ।

<sup>१</sup> सुन्दर विज्ञान पृ० १००

<sup>२</sup> देखिए इस रूप में गौडपाद का अज्ञानवाद और सत अवि स्वीक ।

<sup>३</sup> पण्ड साहब की बागी भाग १ पृ० ४२

<sup>४</sup> सुन्दरविज्ञान पृ० ९३

<sup>५</sup> सादरवाक की बागी भाग १ पृ० १०२



उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सहज शब्दों में मानव की अभिव्यक्ति के बितने प्रकार, बितनी शैलियाँ बितने सिद्धांत और उनमें प्रयुक्त होनेवाले दृष्टांत संतों की बात हो सकने से उन्होंने उन सहज निर्वचन मानव से उपयोग किया है यही कारण है कि उनके दार्शनिक चिंतन में हमें मध्ययुग की अविश्वस्य दर्शन पद्धतियों के सिद्धांतों की जगह दिक्कत ही पड़ती है। अपने-अपने दार्शनिक वादों के सिद्धांतों को अपनाते के कारण उन्हें किसी एक वाद या सम्प्रदाय के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि उनकी विचारधारा-संग्रह मात्र है। ऐसी भाँति समी हो सकती है जब कि उनके लक्ष्य का ज्ञान न हो। संतों के जीवन का लक्ष्य सहज दर्शन, सहज साधना और सहज जीवन का उपदेश देना था। सहज दर्शन के रूप में उन्होंने शब्दों के वेदान्त का प्रतिपादन किया है। शब्दों के वेदान्त से उनका तात्पर्य किसी वाद विशेष से नहीं होता था। वे उनके सहज स्वाभाविक रूप का प्रतिपादन करना चाहते थे। उनके प्रतिपादनार्थ ही उन्होंने उन उच्च सिद्धांतों और दृष्टांतों का उपयोग किया है जो उन्हें अपने लक्ष्य की पूर्ति में उपयोगी प्रतीत हुए थे। सब तो यह है कि निम्न-निम्न वादों के सिद्धांत उनकी शब्द विशेष की ओर सम्पूर्ण प्रतिभा के साथ में टाँसकर मौखिक जीवन और सहज शब्दों के वेदान्त के रूप में निरंतर आये हैं।

## छठ्य अध्याय

संतों की आध्यात्मिक साधनाएँ—

संतों का लक्ष्य—संतों की साधनाएँ—धर्ममार्ग—धर्ममार्ग का सहजीवरूप  
ज्ञान-साधना—संतों का स्वरूप—संतों में ज्ञान का स्वरूप संतो—द्वारा ज्ञानमार्ग का  
सहजीवरूप—योग साधना और संत ऋषि—

योग का अर्थ—योग के प्रकार—योगमार्ग के प्राप्तभूत विद्वान्त—अष्टांग योग  
साधना—हठयोग साधना—

हठयोग के प्रकार—

परिमत्ता—दशबाहु—अक्षपाजार—नाडी विचार—सुद्राओं का महत्त्व—पदकर्म—  
कुंडलनी-स्वभावम प्रक्रिया—धर्मों का बर्णन—

संतों की हठयोग साधना—

सर्वयोग—हिंदू संतियों के अनुष्ठान नादसक साधना—सर्वयोग—श्रीकृष्णों की  
साधनविधु साधना—राजयोग साधना—राजाधिराजयोग—अद्वैतारक अथवा लक्ष्य  
योग—संतों का शब्द सुरति योग—सहजयोग—

संतों की भक्ति साधना—

भक्ति का महत्त्व और स्वरूप—संतों की भक्ति में प्रेम और विश्वास—  
आत्मसक्ति—भक्ति के अनिवार्य साधन—भक्ति के पोषक साधन—भक्ति के साधक  
रूप—भक्ति के प्रकार—संतों की भावभक्ति की प्रमुख विशेषताएँ—भक्ति मार्ग का  
सहजीवरूप—

### संतों की आध्यात्मिक साधनाएँ

संतों का लक्ष्य—निर्गुणिकता संतों का लक्ष्य अन्मा और परमात्मा का  
सादरम्य स्थापित करना था। संत दादू ने स्पष्ट घोषणा की है—

सुखमें ही मेरा धनी परदा श्लोक दिताय ।  
आत्म सो परमात्म परगट भान मिताय ॥<sup>१</sup>

<sup>१</sup> दादूदास की वाणी—भाग १, पृ० ५

हरी माव की पुनरुत्थिति उन्होंने एक दूसरे स्वप्न पर भी की है।

सहजमाय सुख समाय जीव जगत् में काय रे।<sup>१</sup>

अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्हें कई आध्यात्मिक साधनाओं का आश्रय लेना पड़ा है।

**सन्तों की साधनाएँ**— जैसा कि संत नामक में लिखा है। साधनाएँ संसार में अतिसर और अमन्य हैं।<sup>२</sup> किन्तु भारतीय आध्यात्म क्षेत्र में सबसे अधिक प्रसिद्ध और साधना मतों की रही है। कर्म, उपासना, ज्ञान और योग। संतों में प्रथम के प्रति उभेसा तथा अन्य तीनों के प्रति भ्रष्टाचार प्रकट किया है। अब प्रश्न यह है कि संतों में इन तीनों को अलग अलग अपनाने की चेष्टा की है या उनके समन्वित रूप को महत्व दिया है। हमारी अपनी दृष्टि यह है कि उन्होंने उपर्युक्त तीनों साधनाओं का समन्वय कर तथा उक्त समन्वित रूप का सहजीकरण करके एक नये साधना मार्ग का प्रवर्तन किया है। उसे हम सहज साधना का अभिधान दे सकते हैं। वास्तव में उनकी साधना का परम और अन्तिम रूप यही है। याल्पीय कर्म, उपासना ज्ञान और योग इसके चार लोचन मात्र हैं। इन लोचनों के क्रमिक महत्व के संबंध में संतों में योजा मतभेद है। कबीर आदि ज्ञान को प्रथम लोचन मानते थे। इसीलिए उन्होंने लिखा है वे बाधते हैं किन्तु ज्ञान का विचार नहीं किया है। अन्यत्र ज्ञान संसार में बुरा ही समझना चाहिए।<sup>३</sup> मक्ति को सब साधनों का मूलाधार समझने वालों के मुक्तिपा संत चरमदास हैं। उन्होंने साधना की बुरा रूप में स्वीकार करते हुए लिखा है साधना कभी बुरा का मूल मक्ति है, ज्ञान फल और योग शाका है।<sup>४</sup> योग को सबक आधारभूमि मानने वालों में गुस्ताख साहब विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने एक स्थल पर शब्द रूपिने योग को सब साधनों का आधार खत्म बनाने की चेष्टा की है।<sup>५</sup> इतना होते हुए भी इनमें से किसी के भी रूप का हम विद्यार्थ रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। क्यों

<sup>१</sup> पृ. १०६

<sup>२</sup> अर्थात् ज्ञान धर्मका भाव पूजा धर्मका रूप साध

धर्मका अर्थ मुक्तिपेत् पाठधर्मका योग का यह रहस्य उपास

नामक—संतमुपासना, पृ. ११८

<sup>३</sup> कबीर प्रवचनसौ—पृ. २१०

बाबू से ज्ञान विचार का बाया विरथा ज्ञान गेराया।

<sup>४</sup> अन्तर्गत संग्रह भाग २—पृ. १०१

ज्ञान विरह के चने बृज उन्हें छाया ज्ञान की मक्ति मूख।

<sup>५</sup> गुस्ताख साहब की बानी पृ. १००

कि सन्तों का प्रमुख लक्ष्य तीनों के समन्वित रूप पर बल देना था, उनका पारस्परिक क्रम निर्धारण करना नहीं। सब लोग जैसे तो उपासना, ज्ञान और योग इन तीनों का समान महत्त्व देते थे, किन्तु शिष्य की प्रवृत्ति देखकर इनमें से किसी एक पर उसकी रुचि के अनुरूप बल देना भी आवश्यक समझते थे। सहजोबाई ने लिखा भी है कि गुरु को बाह्य कि शिष्य की मनोवृत्ति परसकर उसी के अनुरूप उपासना ज्ञान और योग में से किसी एक की सीढ़ी दे। किन्तु इतना यह अर्थ न समझना बाह्य कि संत लोग उपासना, ज्ञान और योग आदि के परम्परागत रूप के अनुयायी थे। उन्होंने वहाँ अन्य क्षेत्रों में अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है वहाँ साधना क्षेत्र को भी अपनी प्रतिभा से समृद्ध कर दिया है। उन्होंने परम्परागत साधनाओं का सहजीकरण किया है। कर्म, उपासना, ज्ञान और वाग साधनाओं का सहजीकृत रूप ही संत मठ का माध्यम है। किन्तु यहाँ एक बात स्मरण रखनी है। वह यह कि संतों ने अपनी सहस्रसाधना की प्रविष्ट साधनाओं के परम्परागत रूपों की छुटभूमि पर ही की है। यही कारण है कि उनमें कर्म, ज्ञान, उपासना और योग के परम्परागत रूपों की भौतिकी के अंतर्गत सहस्र साधनास्त्री देवी प्रतिष्ठित मिलती है।

**कर्ममार्ग**—कर्ममार्ग के प्रति संतों का लगाव बहुत कम था। केवल तुन्दर दास आदि दो-एक संतों में ही साधनाओं के प्रसंग में कर्ममार्ग की चर्चा कर दी है किन्तु ब्रह्म और शिव के वादात्म्य लाभ में बं कर्म मार्ग को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं देते थे। यह बात उनके साधना संकल्पी हृदय के रूपक से प्रगट है। उन्होंने लिखा है साधन एक हृदय के उदर है। कर्म उसके पत्र, ज्ञान फूल और वाग फल है।<sup>१</sup> अन्य सन्तों में वा कर्ममार्ग की घोर निन्दार की है। सन्त कबीर इत मार्ग को बंधनरूप मानते थे।<sup>२</sup> तुलना साहब ने उसे भ्रम रूप कहा है।<sup>३</sup> सहजोबाई उसे घोर दुःख रूप समझती

<sup>१</sup> सहजोबाई की वाणी पृ० २

ज्ञान भक्ति और योग का घर खोले पहिचान।

किसी वाणी बुद्धि सीधे बताये ध्यान ३

<sup>२</sup> सन्त सुधाधार पृ० ५८०

कर्मपत्र का बाह्य मंत्र पुण्य पहिचान।

सन्तमार्ग अज्ञरूप है काबल तीनों का ३

<sup>३</sup> कबीर प्रयागवासी पृ० २८०

‘कर्म करत कये पाहनेव’

<sup>४</sup> तुलना साहब का शब्द सागर पृ० ११

बार बार के धरम गवन में कर्म मर्म की धार।

थी।<sup>१</sup> पसदू बेनारे कर्म के दागों को निराहृत करने में ही प्रयत्नशील रहे। [भीष्मा की उधे दुस्त्र का ही अर्थ रूप करते थे।<sup>२</sup> दयाबाई का तो यहाँ तक कहना है कि बीव कर्म के अरतु ही मन के अन्ध रूप में पकटा है।<sup>३</sup> कर्म का विस्तारक्षेत्र लोक और वेद है। इसीलिए संतो ने कर्ममार्ग के साथ साथ लोक और वेद की भी निन्दा की है। संत कबीर ने लिखा है "मैं लोक और वेद के साथ यज्ञा का रहा या सो माप्य से मार्ग में गुण मिल गये। उन्होने ज्ञान का बीजक देकर मेरा उधार कर दिया। उक्त ज्ञान बीज से आत्मा प्रचरित हो उठी।"<sup>४</sup> इसी प्रकार पसदू तादह ने भी लोक और वेद की निन्दा ही की है।

यद्यपि कर्ममार्ग पन्धन का अर्थ है, प्रमत्त है और बीव को मन के अन्ध रूप में डालनेवाला है, फिर भी शरीरपापी प्राणी उसके निवृत्ति नहीं पा सकता। गीता में भगवान् ने स्पष्ट लिखा है कि कोई भी मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये हुए बिना नहीं रहता, प्रकृति के गुण प्रत्येक पक्षत्र मनुष्य को सदा कुछ न कुछ कर्म करने में लगाना ही करते हैं।<sup>५</sup> जब कर्मों से निवृत्ति हो ही नहीं सकती, तबका करना अविचार ही है तो फिर उन्हें निष्काम कृति करना चाहिए। यही गीता का उपदेश है। संतो ने उधे कर्मों का लो भोचर किया है। संत नरनादास ने लिखा है—

जाग लपस्या कीजिया सकल वामना त्याग  
ताकु फल मत धारिण्य तजो होय करु राग  
अष्ट सिद्धि जो पै मिल नक न बीजों नेह ।  
धरि हिरदै परमात्मा त्यागे रहियो रहै—<sup>६</sup>

निष्काम कर्म के प्रतिरिक्त संतो ने कर्मों को ईश्वरधारित करने का उपदेश भी दिया है। वे लिखते हैं—“जो बीजिए हरि हैत ही।” यहाँ पर भी गीता का ही प्रमाण दिगार पकटा है।

<sup>१</sup> पसदूबाई की बाणी पृ० २२

कर्मन के घेरे बिच अमम-अमम दुःख होय ।

<sup>२</sup> भीष्मा तादह की बाणी पृ० २

<sup>३</sup> पसदू तादह की बाणी भाग ३ पृ० २३

<sup>४</sup> दयाबाई की बाणी पृ० १

<sup>५</sup> कबीर प्रबंधनी पृ० २ भागी ११

<sup>६</sup> गीता ३।२

बहि करिण्यकामनि जाग निरन्तु कर्मरूप ।

कार्यने दि धर्याः कर्म मने प्रहृतिरैगु होः ४

<sup>७</sup> नरनादास की बाणी पृ० ७२

कर्ममार्ग का सहजीकरण—संतों ने कर्ममार्ग का सहजीकरण सहज

बीजन के रूप में किया था।<sup>१</sup> पाल्बोर्ग<sup>२</sup> का यह आचार्य से ठहरे प्रथा थी। उनका स्थान पर उन्होंने सदाचार प्रथम होने का उपदेश दिया है। मल्लिकार्जुन ने स्पष्ट लिखा है "परमात्मना अप एव आदि कठिन साधनों से नहीं प्रसन्न होता, वह उठी से प्रसन्न होता है जो दूसरों के प्रति कष्टनामान रखता है और अपने गुण को साधना ही दुःख समझता है।"<sup>३</sup> सच तो यह है कि सदाचार प्रथमता संतमन की प्राथम्य विशेषता है। उठका मूलमूल सिद्धांत है। संत कबीर ने स्पष्ट घोषणा की है कि लोग सहज-सहज तो चिन्ताते हैं, किन्तु सहज साधना क्या है, इसको नहीं समझते। धीरे धीरे विषय-वासनाओं से बिरक्त हो जाना ही सहज मार्ग है। इसका लिए उसे भ्रम, क्रोध, मोह, मद आदि पंचों को अपने अधीन करना होता है।<sup>४</sup> इन सबका साधन तभी स्वाभाविक कर सकता है, जब वह सदाचारी और संयमी हो। वह सदाचारी और संयमी तभी हो सकता है जब सरल, सहज और स्वाभाविक ढंग से जीवन यापन करे। इसीलिए कबीर ने धीरे-धीरे सन्तो मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है—

साईं सती साध चल औरा सु सुध माय ।

माये साम्भ फेस कर माये घुटि मुंजाय ॥

सदाचारपूर्ण जीवन की यह सरलता ही कर्ममार्ग का सहजीकृत रूप है। संत साधना में इससे ही महत्त्व दिया गया है। इसका विद्वान विवेचन "सहज साधना का स्वरू" के प्रथम में करेंगे। यहाँ पर इतना ही दिखाना अभिप्रेत है कि संतों ने कर्म मार्ग के सहजीकृत रूप को महत्त्व दिया है। उक्त सहजीकृत रूप का एक पक्ष सदाचार के साथ धीरे-धीरे ढंग से जीवन-यापन करना है।

<sup>१</sup> कबीर प्रियावली पृ० ४२

सदर-सदर सब कोई करै सहज न चीन्हे कोई ।

जिन सदरै विपदा तही सदर करीये सोई ॥

सदर-सदर सब कोई करै सहज न चीन्हे कोय ।

पाँपु राखि परमती सदर करीये माई ॥

<sup>२</sup> मल्लिकार्जुन का बामी पृ० १४

<sup>३</sup> कबीर प्रियावली पृ० ४२

सदर-सदर सब कोई करै सदर न चीन्हे कोर

जिन सदरै विपदा तही सदर करीये सोई ।

सदर-सदर सब कोई करै सदर न चीन्हे कोय

पाँपु राखि परमती सदर करीये सोई ॥

कर्म मार्ग के सहजकरण का दूसरा पक्ष कर्मी और कर्मि की पक्षता है। संतो का दृष्ट बिस्वास था कि कोरे उपदेश स्वर्ण होते हैं। वे उसी को अपना सहजीवाधी संत मानते थे जो अपने उपदेशों के अनुसरण अपने जीवन को ढालने में समर्थ हो सके। कबीर कहते हैं ईस्वर उषी संत के समीप रहता है जो अपने उपदेशों को अपने जीवन में परिचर्य करके दिखा देता है।<sup>१</sup> संत भरनदास कर्मि के दिन कर्मि को देता ही साधन समझते थे बित प्रघर बंद के बिना यदि निस्वार लगती है।<sup>२</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि परंपरागत कर्म-मार्ग के प्रति संतो की कोई आस्था न थी। इतना ही नहीं वे उभे हुए भी समझते थे। किन्तु गीता के अनुसार कोई भी मनुष्य कर्मों से पूर्ण निर्गुण प्राप्त ही नहीं कर सकता है। उसे कुछ न कुछ कर्म करने ही पड़ते हैं, चाहे उन्हें वह इच्छा से करे, अपवा अनिच्छा से। सम्भवतः इतिहास उन्हें कर्म का भी सहजीकरण करना पड़ा है। इस सहजीकरण के दो पक्ष हैं—सहाकारपूर्वक सीधे लक्ष्य प्रघर से जीवन-यापन और कर्मि के अनुसरण करनी करना। इनके अतिरिक्त योग कर्मों को वे बंधन रूप मानते थे। महात्मा कबीर के अनुसार मानव द्वारा किये गये कर्मों का कारण अहंभाव है। किसी भी कर्म को करके मानव अपने को उलझ नहीं समझने लगता है, नहीं उलझ भ्रम है। इसी भ्रम से वह अहंकारबलित माया बाल में आसक्त हो जाता है।<sup>३</sup> संतार के अभिधर्य लोग कर्ममूलक इसी मायाबाल में बँधे हुए हैं। संतो ने इन कर्मबाल में बँधे हुए व्यक्तियों के लिए दो उपाय या दो साधन निर्दिष्ट किये हैं—ज्ञान और योग। कबीर<sup>४</sup>, रैदास<sup>५</sup>, गुणाक<sup>६</sup> आदि संतो ने कर्मबाल को ज्ञान की अग्नि में ही जलाने का उपदेश दिया है। भीष्मा साहब योग के पक्ष में ही थे। उनका बिस्वास था कि साधक शब्द-मुक्ति योग में अपने कर्म बाल को मछ कर सकता है।<sup>७</sup> इतने वह भी प्रकट है कि संत लोग कर्ममार्ग की अपेक्षा ज्ञानमार्ग

<sup>१</sup> कबीर प्रभावगी पृ० ३८

कैसी सुख से जीवने तैसी बाले बाल ।

पार ब्रह्म वेदा तई पक्ष में कर निदास ॥

<sup>२</sup> कर्मि बिन कर्मि इसी ज्यो सखि बिनु कर्मि । भरनदास की बानी भाग १ पृ० ३८

<sup>३</sup> कबीर प्रभावगी पृ० २००

कर्म करन बड़े अहंमेत

<sup>४</sup> कबीर प्रभावगी पृ० २०८

<sup>५</sup> अमृत गुणाकर पृ० १८१

<sup>६</sup> गुणाक साहब की बानी—पृ० ८३

<sup>७</sup> भीष्मा साहब की बानी—पृ० ३

और ज्ञानमार्ग का ही अधिक भेदबन्ध उपसक्तों से। किन्तु यहाँ पर एक बात फिर ध्यान में रखनी होगी, वह यह कि उन्मुख साधनाओं का परंपरागत रूप संतों का सिद्धांत रूप न था। कर्ममार्ग के उद्देश्य उन्होंने इन मार्गों का भी सहजीकरण किया था।<sup>१</sup> उनके सहजीकृत रूप के प्रति ही उनकी सच्ची आस्था थी। आत्मों के विवेचन से वह बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी।

### सन्तों की ज्ञान साधना

सन्तों की ज्ञान मार्ग के प्रति प्रवृत्ति—संतों ने ज्ञान को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। संत कबीर ज्ञान के बिना भग्य ही निश्चार मानते हैं<sup>२</sup>। उनकी दृष्टि में ज्ञान और धर्म में कोई भेद ही नहीं है।<sup>३</sup> संत हरिया (विहार भागों) के मतानुसार साधक को बिना ज्ञान के भगवान् के दर्शन हो ही नहीं सकते।<sup>४</sup> उसे बार-बार संत चक्र में पेशना पड़ता है। पलटू साहब बौद्धिक ब्रह्म की उपलब्धि भी ज्ञान के सहारे ही मानते हैं।<sup>५</sup> संत सुन्दरदास के अनुसार ज्ञानभ्योति के बिना हृदय की अज्ञान प्रथिवी ही नहीं उन्मुक्त होती है।<sup>६</sup> पलटू साहब ज्ञान अंबन के बिना जीव को अंधा ही मानते थे।<sup>७</sup>

ज्ञान का स्वरूप—यहाँ पर थोड़ा विचार ज्ञान के शास्त्रीय स्वरूप का करना बड़ा आवश्यक है। ज्ञान के शास्त्रीय पक्ष का कितना व्यापक और स्पष्ट विवेचन महात्मना गुलाबी ने अपने मानस के उत्तरार्ध के ज्ञानदीप प्रकरण में किया है उसका

<sup>१</sup> संत कबीर संग्रह पृ० ३२

<sup>२</sup> कबीर प्रबोधवक्त्री पृ० २३०

बाबरी से ज्ञान विचार का पाया।

द्विधा जगत् संभाषा ३

<sup>३</sup> कबीर प्रबोधवक्त्री पृ० २६९

यहाँ ज्ञान यहाँ धर्म है।

<sup>४</sup> हरिया साहब पृ० २६

ज्ञान बिना यदि जीव निष्कार्

<sup>५</sup> पलटू साहब की कबीर भाग ३ पृ० ७९

ज्ञान हरि से कजर परतु है रज्जु हार एक खोगी है।

<sup>६</sup> सुन्दर विद्यालय पृ० ६४

विश्व ज्ञान काय यदि दृष्ट्य हृदय प्रीति।

<sup>७</sup> पलटू साहब की कबीर भाग ३ पृ० ७८

जगत् देव न ज्ञान का अंधा मया ब्रह्माय।



कर्म मार्ग के सहजकरण का दुसरा पक्ष कपनी और करनी की एकरा है। संतो का यह विश्वास था कि कोरे उपदेश व्यर्थ होते हैं। वे उठी को उम्मा सहजीवादी संत मानते थे जो अपने उपदेशों के अनुरूप अपने जीवन को ढालने में समर्थ हो सके। कबीर कहते हैं ईश्वर उठी संत के समीप रहता है जो अपने उपदेशों को अपने जीवन में परिष्कार करने दिखा देता है।<sup>१</sup> संत परतदास करनी के दिन कपनी को देखा ही साधुनि समझते थे जिस प्रकार चंद्र के बिना रात्रि निस्तार लयती है।<sup>२</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि परंपरागत कर्म-मार्ग के प्रति संतो की कोई आस्था नहीं। इतना ही नहीं वे उसे हेच भी समझते थे। किन्तु गीता के अनुसार कोई भी मनुष्य कर्मों से पूर्ण निवृत्ति प्राप्त ही नहीं कर सकता है। उसे कुछ न कुछ कर्म करने ही पड़ते हैं, चाहे उन्हें वह इच्छा से करे, अपवादा अनिच्छा से। सम्भवतः इसीलिए उन्हें कर्म का भी सहजीकरण करना पड़ता है। इस सहजीकरण के दो पक्ष हैं—सदाचारपूर्वक सीधे स्वयं प्रकार से जीवन-यापन और कपनी के अनुसार कपनी करना। इनके अतिरिक्त योग कर्मों को वे बंधन कम मानते थे। महात्म्य कबीर के अनुसार मानव द्वारा किये गये कर्मों का कारण अहंभाव है। किसी भी कर्म को करके मानव अपने को उठका चर्चा समझने लगता है; कही उठका प्रम है। इसी प्रम से वह अहंकारबन्धित माया बाल में आसक्त हो जाता है।<sup>३</sup> संसार के अपिचर्य लोग कर्ममूलक इसी मायाबाल में बँधे हुए हैं। संतो ने इन कर्मबाल में बँधे हुए व्यक्तियों के लिए दो उपाय या दो साधन निर्दिष्ट किये हैं—ज्ञान और योग। कबीर<sup>४</sup>, रेदास<sup>५</sup>, गुनास<sup>६</sup> आदि संतो ने कर्मबाल को ज्ञान की अग्नि में ही बलान का उपदेश दिया है। भीला साहब योग के पक्ष में ही थे। उनका विश्वास था कि तावक शब्द-मुक्ति योग में अपने कर्म बाल को मस कर सकता है।<sup>७</sup> इससे यह भी प्रकट है कि संत लोग कर्ममार्ग की अपेक्षा ज्ञानमार्ग

<sup>१</sup> कबीर प्रसादजी पृ० १८

देखी मुझ से कीकरी सीमी जाके जाके ।

बार बरस मेदा रही पक में कर निहाल ॥

<sup>२</sup> करनी जिन बजनी इसी ज्यो खनि बिनु जनी । करनदास की बानी भाग २ पृ० १८

<sup>३</sup> कबीर प्रसादजी पृ० २००

कर्म करत बने अहमेक

<sup>४</sup> कबीर प्रसादजी पृ० २०८

<sup>५</sup> अमल मुखाकर पृ० १८२

<sup>६</sup> गुनास साहब की बानी—पृ० ८३

<sup>७</sup> भीला साहब की बानी—पृ० ३

और योगमार्ग को ही अधिक भयस्वर समझते थे। किन्तु यहाँ पर एक बात फिर ध्यान में रखनी होगी; यह यह कि उपर्युक्त साधनाओं का परंपरागत रूप संतों का सिद्धांत पक्ष न था। धर्ममार्ग के लक्ष्य उन्हें हीने इन मार्गों का भी सहजीकरण किया था।<sup>१</sup> उनके सहजीकरण कर क प्रति ही उनकी सच्ची आस्था थी। आगे के विवेचन से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी।

## सन्तों की ज्ञान साधना

सन्तों की ज्ञान मार्ग के प्रति प्रवृत्ति—संतों ने ज्ञान को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। संत कबीर ज्ञान के बिना भग्य ही निस्वार मानते हैं<sup>२</sup>। उनकी दृष्टि में ज्ञान और धर्म में कोई भेद ही नहीं है।<sup>३</sup> संत हरिपा ( बिहार भाग ) के मतानुसार साधक को बिना ज्ञान के मागवान् के दर्शन हो ही नहीं सकते।<sup>४</sup> उसे बार-बार उस लक्ष में केंद्रना पड़ता है। पद्म साहब योगिक ब्रह्म की उपसंखि मी ज्ञान के सहारे ही मानते हैं।<sup>५</sup> संत मुन्दरदास के अनुसार ज्ञानव्याप्ति के बिना हृदय की अज्ञान प्रविषी ही नहीं अनुभव होती है।<sup>६</sup> पद्म साहब ज्ञान अंधन के बिना जीव को अंधा ही मानते थे।<sup>७</sup>

ज्ञान का स्वरूप—यहाँ पर थोड़ा विचार ज्ञान के शास्त्रीय स्वरूप का करना पड़ा आवश्यक है। ज्ञान के शास्त्रीय पक्ष का बिना व्यापक और स्पष्ट विवेचन महत्त्वा तुषी ने अपने मानस के उत्तरवाह के शानदीन प्रकरण में किया है अतः

<sup>१</sup> सप्त वाणी संग्रह पृ० ३२

<sup>२</sup> कबीर प्रभावली पृ० २३०

बाधरे से ज्ञान विचार न पाया।

विरल जलम गर्बाया ७

<sup>३</sup> कबीर प्रभावली पृ० २६२

ज्यों ज्ञान तहाँ धर्म है।

<sup>४</sup> हरिपा साहब पृ० २२

ज्ञान बिना यदि भीठ दिख्यै

<sup>५</sup> पद्म साहब की वाणी भाग ३ पृ० ७२

ज्ञान हरि से नजल पायु है वस्यु हार एक जागी है।

<sup>६</sup> मुन्दर विद्यास पृ० ६७

बिना ज्ञान पायु नहि प्युठ हृदय मंथी।

<sup>७</sup> पद्म साहब की वाणी भाग ३ पृ० ७८

अज्ञान रूप न ज्ञान का अंधा अंधा बनाव।

सायद ही किसी व्याख्यान ने किया है। प्रकृति के अनुसार ज्ञानमार्ग के प्रमुख सोपान निम्नलिखित हैं :—

- (१) सात्विक भ्रष्टा
- (२) शुभ कर्मों का आचरण
- (३) भाव की पवित्रता
- (४) मन की शुद्धता
- (५) धर्माचरण
- (६) निष्कामता
- (७) समोपमादि गुणों का अस्तित्व
- (८) विचारशीलता
- (९) वैराग्य
- (१०) योग
- (११) बुद्धि की बागरूढ़ता
- (१२) चित्त की दृढ़ता
- (१३) साधक का त्रिगुणातीत होना
- (१४) सोपानमि का प्रसंग भाव
- (१५) आत्माशुभव

प्रकृति द्वारा निरूपित ज्ञान का यह स्वरूप बड़ा ही कष्टदायक है। धीरे से धीरे साधक भी इसके लम्बे-बीड़े सापना मार्ग को देखकर निरस्त हो सकता है। यदि धर्म साहस करने का आचरण भी करे तो थोड़ी ही अवधि में मरने में तत्पूर्व प्रपत्नों पर पानी फेर सकती है। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर संतों ने ज्ञानमार्ग का सहजीकरण किया है। चिन्तु इसके यह नहीं समझना चाहिए कि संतों की बानियों में ज्ञान के उर्ध्वक स्वरूप की भाँति ही नहीं मिलती। उनकी रचनाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि उन्होंने ज्ञान के उर्ध्वक सभी तत्त्वों के प्रति मान्यता प्रकट की है।

सन्तों में ज्ञानस्वरूप—सन्तों की बानियों में हमें राष्ट्रीय ज्ञान मार्ग के सभी तत्त्वों की प्रकृति मिलती है। यहाँ पर उनमें से प्रत्येक का संक्षिप्त संकेत कर देना अनुचित न होगा। सभी संतों के अनुसार साधक में सात्विक भ्रष्टा का होना बड़ा आवश्यक है, क्योंकि आसक्तिता की व्याख्या भ्रष्टा ही है। बीच सभी एक व्याकुल रहता है जब तक वह ईश्वर में भ्रष्टा और विराग्य नहीं करता। परमात्मा में भ्रष्टा और विराग्य के

उत्पन्न होते ही धीरे धीरे घायी व्याकुलता नष्ट हो जाती है। संत मुन्दरदास ने सिखा "है, हे मानव तू स्पर्श ही व्याकुल होता है। ईश्वर में भ्रमा और विश्वास कर। तेरी घायी व्याकुलता नष्ट हो जायेगी।" इसी प्रकार कर्मों के अनुष्ठान पर भी संतमत में बल दिया गया है। संत चरनदास ने मक्ति और जोग को उपदेश देते हुए शुभ कर्मों के आचरण का आदेश भी दिया है।<sup>१</sup> संत जोग भाष के शुद्धीकरण में भी विश्वास करते थे। क्योंकि जिसप्र जैसा भाष होता है वैसा ही उसप्र भीजन बन जाता है।<sup>२</sup> संतों ने मन की शुद्धीकरण पर भाष के शुद्धीकरण से अधिक महत्त्व दिया है। उनका उद्देश्य विश्वास था कि इसका भीतने में ही मानव की भीत होती है।<sup>३</sup> ज्ञान के सिध उच्चम बुद्धि का होना भी परमापेक्षित है। संत जोग इस तथ्य से पूर्णतया परिचित। संत मुन्दरदास ने एक स्थल पर हीन बुद्धिवाले भक्ति की दुर्दशा का उल्लेख कर सद्बुद्धि की महत्ता को और मुन्दरदास से संकेत किया है। वे लिखते हैं कि हीन बुद्धि वाला व्यक्ति स्वतन्त्र से आर्द्र रहकर इतर-उपर मटकता रहता है। वह पाहे कठिन वपस्या भी करे, मेव, सीत, पाम आदि को सहन भी करे तथा पाहे कामनाओं के उद्रेक के मय से वह अन्धमूल फल खाकर भीजन-याप्त करे, किन्तु उसे मुक्ति नहीं मिलती। बहिष्कृत इसके विपरीत वह अपने आत्मरूप मूलकर बंधन में बँधता जाता है।<sup>४</sup> संतों ने त्रिगुणातीत और तृतीया वस्था की प्राप्ति का अपनी साधना का लक्ष्य बनाया था। चरनदास ने अपने गुरु के उपदेश का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मुन्दरदास ने मुझे त्रिगुणों से ऊपर रहने का स्थान दिया है।<sup>५</sup> मन्त्र ही तृतीय पद है। वहाँ दिन और रात नहीं होती। वहाँ एक धर्माचरण की बात है, संतों ने मानव को सदैव ही सद्धर्म पर चलने का उपदेश दिया है। मन्त्रदास ने धर्म के सीधे को सबसे अच्छा सीधा कहा है।<sup>६</sup> किन्तु उनका उद्धर्म संबंधी

<sup>१</sup> मुन्दर विद्यास पृ० ४६

मुन्दर कर्मो विज्ञानत किरी अथ राज इत्य विश्वास प्रमु को ।

<sup>२</sup> संत चरनदास की बानी भाग २ पृ० ७२

भक्ति जोग और शुभ कर्म नीरी और निवास ।

<sup>३</sup> मुन्दर विद्यास पृ० १२१

मुन्दर जैसे ही भाष है आपको है साईं दोष गयो यह बानी ।

<sup>४</sup> मन्त्रदास की बानी पृ० ३८

या के भीते भीत अब मैं पायो भेज ।

<sup>५</sup> मुन्दर विद्यास पृ० ६२

<sup>६</sup> श्रीगुरु ने ऊपर हैं मुन्दर बग्यायो है ।

चरनदास दिव रत्न नदि मुनिया पर पायो है ॥

<sup>७</sup> मन्त्रदास की बानी पृ० ३३

दृष्टिकोण प्रपञ्चित दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है, इसका स्पष्टीकरण 'धार्मिक विचारों' के प्रसंग में किया जाएगा। निरुपम साधना पर भी संतों ने बहुत बल दिया है। परन्तु दास ने सिखा है कि साधना निरुपम मात्र से ही करनी चाहिए।<sup>१</sup> संतोप, ज्ञाना, शील आदि उदात्त गुणों के महत्त्व से संत लोग पूर्णतया परिचित थे। संत मन्मथ ने संतोप के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि मनुष्य संतोपादिक के आभाव में बहुत दुःख उठता रहता है। विचारणा के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं। यह उनकी विचारणा की मूल सोचलिनी है। उक्त महत्त्व का संकेत उन्होंने पग पग पर किया है। संत तुम्बरदास ने तो उसे ईश्वर का ईश कहा है।<sup>२</sup> कबीर को आत्मविचारणा से ज्ञानि ब्रह्मनीय आनन्द की उपलब्धि हुई थी।<sup>३</sup> योग वैराग्य भी संत-साधना के प्रमुख अंग थे। परन्तु दास ने सिखा है कि साधक को मोहो से बिरक्त होकर योगाभ्यास में रत रहना चाहिए। तुलसी का उदाहरण ही संतोप में भी सोझ जाय का महत्त्व दिया है। संतोप का अन्वयार्थ सोझ जाय ही है। तुलसीदास ने सिखा भी है कि वह अन्वयार्थ से उत्पन्न होनेवाली सोझ दोर में बँधे हुए आत्मस्थिति में लीन रहते हैं।<sup>४</sup> इसी प्रकार आत्मज्ञान प्रथम ही संतमठ का प्राधान्य सिद्ध है। इसको संतोप ने सर्वोच्च स्थान दिया है। तुम्बरदास ने ज्ञान की चार आदिपत्तियाँ निर्धारित की हैं—अवय ज्ञान, मभन ज्ञान, निद्रि पाठन ज्ञान और अनुभव ज्ञान। इनमें उन्होंने अनुभव ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ कहा है। भवय ज्ञान की समता साधारण ज्ञान से की गई है। यह मायाजल के स्पर्शान्न से प्राप्त हो जाती है। मनन ज्ञान विद्युत् के उदाहरण है, वह बरतते हुए मायाजल में भी नहीं बुझती है। निद्रिपाठन ज्ञान वज्रज्वालि के उदाहरण है। किन्तु अनुभव ज्ञान प्रकृत्याग्नि के उदाहरण है। इसमें दृष्टात्मक प्रत्यक्ष स्वयमेव विहीन ही जाता है। वह पूर्ण अद्वैतरूप है। दास ने इसी लिए अद्वैताभाव को ज्ञानोदय का चिह्न माना है।<sup>५</sup> इस अद्वैतावस्था को संत लोग हर संतान और बेहद असीम से परे मानते थे। इस अनुभव ज्ञान की

<sup>१</sup> आत्मज्ञान की बातों—भाग २, पृ० २३

'ज्येष्ठ साधन धरिने की रदिपु निरुपम'

<sup>२</sup> तुम्बरदास पृ० २

'बस का विचार कई और न मुदास है,

तुम्बर बदल सोइ ईश्वर को ईश है।

<sup>३</sup> कबीर प्रसन्नवचन पृ० ८३ पत्रिपे।

आर्षद पाय विचारिये तब केना होय अकार्य रे।

<sup>४</sup> तुलसीदास की बातों—पृ० २७

अन्वयार्थहि अय सोई कोरि आर्ष।

तुलसी नामे बिदि कोरि मैं आर्ष ॥

<sup>५</sup> पद्मदास की बातों—भाग १, पृ० ११७

अन्तर्निविष्ट विचारणा से ही होती है। यही ब्रह्मानुभूति या आत्मानुभूति की अवस्था है। इसके उदय होते ही बाहर मोलर सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश ही प्रकाश दितारै पकवा है। अज्ञान का अन्वकार विलीन हो जाता है।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों ने मुक्तिसम्पन्न ज्ञान मार्ग के सभी चर्यों के प्रति माम्यता प्रगट की है। किन्तु इस माम्यता का अन्ध विद्यांत पक्ष नहीं समझना चाहिये। अन्ध विद्यांत पक्ष ज्ञानमार्ग का सहजीकृत रूप है, उसका शास्त्रीय स्वरूप नहीं। अन्ध शास्त्रीय स्वरूप तो उसके सहजीकृत रूप की आधारभूमि मात्र है। सहज मात से विषय-बाधना का परित्याग कर देना ही बाल्य में सहजज्ञान है।

### संतों द्वारा ज्ञानमार्ग का सहजीकरण

संतों ने ज्ञानमार्ग का सहजीकरण सहज वैराग्य, सद्गुरु समर्पण, सहज विचारणा, और नाम ज्ञान से किया है। संत लोग वैराग्य के परम्परागत शास्त्रीय स्वरूप में विरुद्ध नहीं करते थे। उसके बनी शकन की ओर संकेत करते हुए पलटू साहब ने लिखा है कि वैराग्यतापना से जीवे को मर जाना जन्झा है।<sup>२</sup> संत लोग सहज वैराग्य को साधना में बड़ा महत्त्व देते थे। इसी सहज वैराग्य की ओर संकेत करते हुए गारी साहब ने लिखा है कि साधक बिना वैराग्य के परमात्मना के रहस्य को नहीं समझ सकता।<sup>३</sup> सहज वैराग्य का अर्थ बाधना और विचारों का परित्याग मात्र है। संत कबीर ने लिखा भी है कि सहज ज्ञान की अर्था तो सभी करते हैं किन्तु उसके स्वरूप को कोई नहीं समझता। इसके लिए मन में जाने की आवश्यकता नहीं होती। यदि मन में जाकर वैराग्य का ढोंग मज्जे पर भी साधक की विषय बाधनार्थ बुर नहीं होती तो ऐसा वैराग्य विकृत अर्थ है। इतीकिए कबीर<sup>४</sup> ने लिखा है—“मनह बसे का बंधिये बेमन नहिं तबै विचार” संत दादू ने तो विचारों के सहज त्याग को ही अपने मत का सार रखा है।<sup>५</sup>

एक राम जौंसे नहीं छोड़ै सकल बिकार ।

दादू सहजै होय सब दादू का मत सार ॥

<sup>१</sup> कबीर प्रसंगिका पृ० १०८

<sup>२</sup> पलटू साहब की बानी भाग १, पृ० ४२

‘जीवन से मरना यथा नहिं भया है वैराग्य’

<sup>३</sup> गारी साहब की बानी पृ० ७

‘बिना वैराग्य भेद नहीं पावे’

<sup>४</sup> क० प्र० पृ० १०८

<sup>५</sup> दादूसाहब की बानी भाग १ पृ० १११

सब लोग वैराग्य को केवल साधन मात्र मानते थे साध्य नहीं। साधन स्वयं में भी उसे अनिवार्य नहीं समझते थे। यदि यह साध्य जीवन में साध्य रूप से जानोदय हो पाये तो वैराग्य के आह्वार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। कबीर कहते हैं—<sup>१</sup> “कबीर जान्वाही पहिने क्या प्रह क्या वैराग” इसी प्रकार परसद साध्य में भी शिखा है यदि मन विकार छोड़ दे तो पर मैं ही वैराग्य प्राप्त हो जाता है। विकार छुड़ाने का एकमात्र साधन साधु-संन्यास है। इसीलिए संन्यास वैराग्य साधु-सेवा ही है।<sup>२</sup> कर्ता का साध्य वैराग्य नहीं है। उनके साध्य ज्ञानमार्ग का यही प्रमुख उपाय है।

सत्ता के सहबोधित ज्ञानमार्ग का दूसरा प्रमुख उपाय साध्य विचारणा है। सत्ता कबीर विचारणा को साध्य मार्ग का प्रमुख साधन मानते थे।<sup>३</sup> सत्ता सुन्दरदास ने आत्मदर्शन की उपायविधि आत्म विचारणा से मानी है।<sup>४</sup>

आत्म विचार किये आत्म ही सीसे एक।

सुन्दर कहत कोइ दूसरे न जान है ॥

आत्मदर्शन की यह अद्वैतानुभूति ही जानोदय का सिद्ध है—

“दाबू एक रह गया तब जानी जागा”

यह विचारणा साधक में पूर्ण वैराग्य की स्थिति उत्पन्न कर देती है। पूर्ण परमात्मा के विचारों में प्रसन्न रहने का कारण साधक का स्वभाव से ही काम, लोभ, मोह आदि विकार संश्लेष नहीं करते हैं। समस्त इन्द्रियों के हाते हुए भी साधक इन्द्रिय रहित सा रहता है क्योंकि उनके विषय इन्द्रियों को आकृष्ट नहीं कर पाते हैं। इन्द्रियाँ वही परमात्मा के विचारों में निमग्न रहती हैं। विचारों की इस निमग्नता में साधक को सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म दिखलाई देता है।

<sup>१</sup> क० प्र० १०० २२६

<sup>२</sup> परसद साध्य की कानी भाग १ पृ० ३२

“बहसे जाना तब करि सा वैराग प्रमाण।

सो वैराग प्रमाण सेवा साधुन की कीर्ति ॥

तब छोड़ि संसार ब्रह्म पर ही मैं कीर्ति ॥

<sup>३</sup> क० प्र० १०० २२२

धरने विचार समार कीर्ति स्वयं के पावने पर करि कीर्ति ॥

<sup>४</sup> सत्य कानी संग्रह १ १०६

<sup>५</sup> दाबू साध्य की कानी भाग १ पृ० ११४

आदिहृ अंतहृ मध्यहृ ब्रह्महि है सब ब्रह्म यही मतिठानी ।  
सुन्दर श्लेष भरु ज्ञानहृ ब्रह्महि आपहृ ब्रह्महि जानत ज्ञानी ॥<sup>१</sup>

सहज विचार से उत्पन्न होनेवाले सहजज्ञान का अलंब स्वरूप यही है ।

सहज ज्ञान की अलंब स्थिति सहज समदर्शिता से भी प्राप्त हो जाती है इसी लिए सन्तो ने समदर्शिता को बहुत अधिक महत्त्व दिया है । सन्त दादू ने लिखा है<sup>२</sup>—

निरवैठि सब आत्मा परमात्म जानै ।  
मुखदाई समिता गई आपा नहीं आनै ॥

गरीबदास की स्वयं राम को समता रूप मानते थे ।<sup>३</sup>

समता रूपी रामजी सब सों एकहि मात्र ।

सन्त रामदास ने भी समता ज्ञान को ही महत्त्व दिया है । उन्होंने उषस्त्री और शकेत करते हुए लिखा है<sup>४</sup>—

“रत्नस्य समता ज्ञान पिपारा, पंच सत्त्व का सकल पसारा ।”

समता ज्ञान के स्वरूप को पलटू साहब ने अधिक सुन्दर शब्दों में प्रकट किया है । वह लिखते हैं<sup>५</sup>—

संमह त्याग नहीं कछु एको नहीं मान अपमाना ।  
सपति पिपति अस्तुति निदा न कछु साम न हानि ॥

इसी प्रकार और अनेक रसकों पर अनेक प्रचर से सन्तो ने समत्व मात्र की सहज प्राप्ति पर बल दिया है ।

सन्तो में अपने सहजीकृत ज्ञानमार्ग में माम ज्ञान के महत्त्व का बड़े प्रवेग पूर्ण शब्दों में प्रतिपादन किया है । सन्त चरनदास ने लिखा है—“चार बेह और अठारह पुराणों का सारभूत ज्ञान नाम ज्ञान ही है ।” सन्त भीखा साहब ने नाम की महिमा और भी अधिक प्रभावपूर्ण शब्दों में वर्णित की है । वे मान को ही सर्वत्र और अद्वैत रूप

<sup>१</sup> सुन्दर विलास पृ० १३६

<sup>२</sup> सन्त बाबी समद भाग २ पृ० ६१

<sup>३</sup> सन्त सुभासार पृ० २०८

<sup>४</sup> सन्त सुभासार पृ० २०३

<sup>५</sup> पलटू साहब की बाबी भाग ३ पृ० ८६

<sup>६</sup> चरनदास की बाबी भाग २ पृ० ७०

<sup>१</sup> अधिको कैंचा राम है सब करनी का जीव ।

अप्यारु और पारि का मयि करि काश पीव ॥”



मानते थे । हठी सर्वस्व और अद्वैत कम नाम के ज्ञान का महत्त्व संकेत उन्होंने लम्बे-बीड़े शब्दों में किया है ।<sup>१</sup>

नामै शब्द सूर दिन राती । नामै किरियम की बतपाती ।  
 नाम सरसुती अमुना गंगा । नामै साठ समुद्र तरंगा ॥  
 नामै गहिर भगूड अघाह । असरन सरन को चरन निषाह ।  
 मूल गायत्री ओ अकार । छठ द्वारया पर सूक्ष्म सार ॥  
 पलक हरियास पुष्टि हरिनाम । नामै ठाकुर साक्षिगणम ।  
 सिध ब्रह्मा भुनि सबकी नायक । पीठल नाम साहब सुक हायक ॥

हठी प्रकार उन्होंने एक पृष्ठे स्थल पर भी नाम की महिमा का वर्णन किया है<sup>२</sup> ।  
 छठ गुलाम साहब ने तो यहाँ तक लिखा है “बिना नाम ज्ञान के मनुष्य अज्ञानीप रहता है और उसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती”<sup>३</sup> । इसीलिए उन्होंने नाम ज्ञान को सम्बन्धित कहा है—

नाम न जानहु सत्य ज्ञान । (गुलाम साहब की बानी पृष्ठ २२)

### योग साधना और संत कवि

योग का अर्थ—संस्कृत साहित्य में योग शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है<sup>४</sup> । उनमें दो अर्थों का विशेष प्रयोग और प्रचार रहा है । उन दो में एक विशेष है और दूसरा सामान्य । योग का सामान्य अर्थ साधना लिया जाता है । भी

<sup>१</sup> भीष्म साहब की बानी पृ० १०

<sup>२</sup> भीष्म साहब की बानी पृष्ठ २१

“नामै शब्दी नामै पबता । रंकार मंगल सुख बरता ॥  
 नामै धरती नाम अक्षयस । नामै पाबक तेज प्रकाश ॥  
 नाम महारेव देवन को देवा । नामै पूजा करता सेवा ॥  
 नाम ज्ञान सुख नामै दाता । नामै धात्र विज्ञान विधाता ॥  
 नाम सुमेर महा समीर । नामै पारस मन्नाया नीर ॥  
 नाम अयोध लोक र्त रदित । अजानुम बीमहि ओ कहुता ॥  
 नामै रिद्धि-विद्धि ओ करता । नामै अमपेनु है मरता ॥  
 नाम अनादि एक का एक । भीष्म साहब सत्य अनेक ॥

<sup>३</sup> गुलाम साहब की बानी पृष्ठ २२

“बिना नाम नहीं मुक्ति संय संय होइया”

<sup>४</sup> योग के विविध निरवचनों के लिए इन्द्रिय ‘अध्याय’ का योगांक पृ० ८

सद्भागवत<sup>१</sup> में तथा कुछ अन्य प्राचीन ग्रंथों में कई स्थलों पर वह अपने सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। योग का विरोध अर्थ कुछ पारिभाषिक सा हो गया है। पित्रस्य आत्मा के परमात्मा में अंतर्भाव को योग कहा जाता है<sup>२</sup>। यजुर्वेद<sup>३</sup> तथा अन्य बहुत से प्राचीन ग्रंथों में वह अपने इसी अर्थ में प्रयुक्त मिलता है। पित्रस्य परमात्मा में पित्रस्य आत्मा को शम करने के बितने प्रयास किये गये हैं वेष्ठयोग के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। ये प्रयास संकटा में लालों बतलाये गये हैं<sup>४</sup>। श्रीमद्भागवद्गीता जैसे छोटे से ग्रंथ में ही लगभग अठारह प्रकार के योगों की चर्चा की गई है। उनमें निम्नलिखित विरोध प्रसिद्ध हैं—कर्मयोग<sup>५</sup>, दीव्ययोग<sup>६</sup>, योग, आत्मसंयम योग<sup>७</sup>, उन्मत्त योग<sup>८</sup>, योग-बल<sup>९</sup>, ब्रह्मयोग<sup>१०</sup>, उन्मत्त योग<sup>११</sup>, अम्बास योग<sup>१२</sup>, ज्ञानयोग<sup>१३</sup>, ऐश्वर्य योग<sup>१४</sup>, बुद्धियोग<sup>१५</sup>, आत्मयोग<sup>१६</sup>, भक्ति योग<sup>१७</sup> और ध्यान योग<sup>१८</sup>।

<sup>१</sup> श्रीमद्भागवत ११।२०।८

‘सोपास्यो मया प्रोक्ता विद्यामि अथो विवित्तया ।

ज्ञान कर्म भक्तिरथ सोपायो अम्योभस्ति ॥’

<sup>२</sup> हठयोग प्रदीपिका की भूमिका—योगी श्रीनिवास धारंगल—५० ६

<sup>३</sup> यजुर्वेद की विम्नलिखित अध्या में योग शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है—यजुर्वेद १२।१८। वह अध्या अध्वेद और अथर्ववेद में भी मिलती है। इत्थि—अध्वेद १०।१०।१। अथर्ववेद २।१०।१२

<sup>४</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।६६

<sup>५</sup> गीता २।२

<sup>६</sup> गीता ३।२२

<sup>७</sup> गीता ३।२०

<sup>८</sup> गीता २।४८

<sup>९</sup> गीता ३।२८

<sup>१०</sup> गीता २।२१

<sup>११</sup> गीता ६।२

<sup>१२</sup> गीता ८।८

<sup>१३</sup> गीता ३।३

<sup>१४</sup> गीता ३।२

<sup>१५</sup> गीता १०।१०

<sup>१६</sup> गीता १०।१८

<sup>१७</sup> गीता १३।२६

<sup>१८</sup> गीता १८।२६

योग के प्रकार :- यद्यपि वांग सागो प्रकार अ हो पक्ष है किन्तु उन सब को हम वांग की प्रयासाएँ ही मानेंगे । व समस्त प्रयासाएँ अर्थांग बोधरूपी बुध की वांग प्रमुख शाखाएँ—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग से ही प्रस्तुति हुई हैं । योग तत्त्वोपनिषद् में लिखा है—'बोध बहुत प्रकार का होता है किन्तु व्यवहार' मेद से उच्च प्रमुख चार मेद अथवा पद माने गये हैं । इन चारों की भी आम्पवायूमि महर्षि पंथबलि च अर्थांग योग है । बास्व में योग की शाखाओं और प्रयासाओं का विचित्र अर्थांग योगरूपी बुध में ही हुआ है । प्राचीन भारत में अर्थांग योग की ही प्रतिष्ठा अधिक थी । किन्तु पश्चिम में आकर उच्छे प्रस्तुति इतयोग, लययोग, मन्त्रयोग और राजयोग का प्रचार बढ़ा । और आगे चलकर इन चारों में अनेक शाखाएँ प्रयासाएँ प्रस्तुति हुईं । निर्गुणियों अर्थियों ने सहजयोग शब्द सुरति योग नामक ही नवीन योग साधनाओं का प्रवर्तन किया । इन साधनाओं की सृष्टि पूर्ववर्ती विविध शाखाओं के तत्त्वों के सहजीकरण से हुई थी । अतएव इनके शब्द सुरति योग तथा सहजयोग का स्वरूप तब तक नहीं समझ का सकता जब तक इनकी समस्त पूर्ववर्ती शाखाओं च दृष्टीअर्थ म हो जाए । एक बात और भी है । संत लोग तत्त्व के वैज्ञानिक परीक्षणों में विश्वास करते थे । उन्होने प्राचीन तत्त्व संतों की परीक्षा करने अनुभव की प्रयोगशाळा में की थी । उनमेंसे जो तत्त्व लड़ उन्हें लरे दिनाई रहे, उनका उन्होंने सहर्ष स्वापच कर लिया । इन स्वापचीकृत तत्त्व संतों के सहारे उन्होंने अपने अभिनव तत्त्व स्वरुतों च संगठन किया । योग क्षेत्र में उनके परीक्षण कुछ संतों में अधिक हुए थे । अनेक योग संतों की परीक्षणों से सम्बन्धित बातें उनकी बानियों में मिलती हैं । वही कारण है कि उनकी योग सम्बन्धी बानियाँ अत्यधिक बरिदा हो गई हैं । वही वही पर तो एक ही पर में योग की कई शाखाओं से सम्बन्धित परीक्षणों की बातें संश्लिष्ट कर दी गई हैं । परीक्षण सम्बन्धी बातें भी दो रूपों में ब्यक्त हुई हैं । एक परम्परागत रूप में और दूसरे मुखाति रूप में । इसमें उनके योग वर्णनों में और भी अधिक बरिदाता आ गई है । अदृष्टी अर्थियों की बात तो मैं नहीं बन्द सकता किन्तु मरा अचना निश्चात यह है कि संतों के योग सम्बन्धी विचारों की आम्प

१ योग उपनिषद्—५० २६०

'बोधेहि बहुधा अर्थान् मिच्छते व्यवहारतः ।

अन्त्रयोगो अर्थांग इत्येतावौ राजयोगश्च ॥'

परात्मवाय के समतोय अत्र नामक प्रथम में उच चारों का अर्थ हम प्रकार है—

“अत्र वांग इत्यर्थैव अन्त्रयोगस्तृतीयकः ।

अन्त्रयोगो राजयोगश्च शिवाभावा विभिन्निताः ॥”

—अमर्षय प्रबोध का तीव्रत इषोड

के पुस्तक ज्ञान में निपुण मानव के लिए समझना असम्भव ही है। संतों ने अनुभव की बात कही है और उसको समझ भी अनुभवही लोग ही सकते हैं। संतों की योगिक साधना को समझते समय संतों की एक प्रवृत्ति और विशेषरूप से ध्यान में रत्ननी पड़ेगी। यह है सहजीवरूप की प्रवृत्ति। उन्होंने प्रचलित योग साधनाओं के सहजीवरूप को ही धारणाने की चेष्टा की थी फिर भी वे उन्हें सिद्धांत रूप में स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने सिद्धांत रूप में शब्द सुरति योग और सहज योग की स्थापना की है। अल्प योग प्रशालियों को उन्होंने उपर्युक्त दोनों योगों की दृष्टभूमि के रूप में ही वर्णित किया है। दृष्टभूमि के रूप में संतों ने बिन योग पद्धतियों की बर्णना की है उनमें से विशेष विचारार्थीय निम्नलिखित हैं—

- (१) अष्टांग योग
- (२) हठयोग
- (३) क्षय योग
- (४) मंत्र योग
- (५) रास योग—राधापियरसयोग—ब्रह्मवतारक योग
- (६) समस्त योग
- (७) आत्मसंभोग योग

### योगमार्ग के प्राणभूत सिद्धान्त

विशेष प्रकार की योग साधनाओं का स्वरूप स्पष्ट करने के पहले हम योग शास्त्र के एक मूलभूत सिद्धान्त को स्पष्ट कर देना चाहते हैं। उक्त सिद्धान्त का निर्देश संत कबीर ने अल्पसंत संक्षेप में 'जा पियरे सो ब्रह्मापरे जान' कहकर किया है। शिवसंहिता में उसी का इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

ब्रह्मापरे संस्रके वेद यथा वेरो भ्यवरिधत\* ।

मेरु शृंगे सुषाठरिमबहिरष्ट कलायत\* ॥ शिव सं० २।५ ॥

अर्थात् शरीर ब्रह्मापरे संसा है बिल तरह लघार में सब देश और सुमेरु पर्वत है। उसके ऊपर सुषाठर रिवति है। गोल्बनाप मे धरने प्रसिद्ध प्रग्य सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में इस सिद्धान्त का निरूपण बड़े विस्तार से किया है।<sup>१</sup> उन्होंने समस्त ब्रह्मापरे को पर में पठित करके दिक्षा दिया है। कहना न होगा कि यह सिद्धान्त समस्त योग-पद्धतियों की आधारभूमि है।

इसी प्रसंग में इत्यादि का एक दूसरा आधारभूत सिद्धान्त भी स्पष्ट कर देना

\* सिद्ध सिद्धान्त पद्धति का तृतीय पटल दृष्टिसे

बाहते हैं। शरीर में जीवात्मा और सप्तात्मा दोनों अवरिच्य रहते हैं। उन दोनों को मिलाना ही योग है। इस सिद्धान्त श्री र्मयना शिवरहिता के निम्नलिखित श्लोक से ब्रिठमें यह श्री परिभाषा ही गई, होती है।

प्राणायान नाए बिंदू जीवात्मपरमात्मना ।

मिलित्वा पटते यस्मात्परमाद्दृष्टं षट् कण्ठे ॥ शि० स० ३।६६

**अष्टांग योग साधना**—अष्टांग योग का प्रतिपादन योगशास्त्र के प्रसिद्ध तम और प्राचीनतम ग्रंथ पार्श्वक योग सूत्र<sup>१</sup> में किया गया है। इस ग्रंथ में चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है।<sup>२</sup> चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए विवेक ज्ञान श्री बड़ी आवश्यकता बतलाई गई है।<sup>३</sup> विवेक ज्ञान के उद्भव होने पर ही श्लेशों का मूलोन्मेष हो सकता है और श्लेशों का मूलोन्मेषन होने पर ही बुद्धों का अत्यन्त मान रूप कैवल्य प्राप्त होता है।<sup>४</sup> विवेक ज्ञान श्री प्राप्ति के लिए ही अष्टांग योग का विधान किया गया है।<sup>५</sup> योग के अष्टांग क्रमशः यम, निधम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि बतलाये गये हैं।<sup>६</sup> यम धरना को योग साधना के अनुकूल बनानेवाले शब्दों को यम कहते हैं।<sup>७</sup> योग सूत्र में यम पाँच बतलाये गये हैं।<sup>८</sup> किन्तु हठयोग प्रदीपिका में इनकी संख्या दस ही हुई है।<sup>९</sup> भीमद्भागवत<sup>१०</sup> में बाह्य यमों का उल्लेख किया गया है। योगसूत्र के अनुसार पाँच यम क्रमशः अहिंसा, उत्प, अस्तोन्नयन और अपरिग्रह हैं। हठयोग प्रदीपिका में दिये गये यमों के नाम क्रमशः अहिंसा, उत्प, अस्तेव, ब्रह्मचर्य, दाना, धृति, दया, आर्चन, निद्राहार और शौच बतलाये

१ देखिये योगार्क में 'पार्श्वक योग दर्शन श्री प्राचीयता' टीकांक लेख—पृ० २४४

२ योग १।२ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।'

३ योग दर्शन २।२८, पृ० ८४

४ बही पृ० १४३।१२०

५ योग २।२८

६ योग २।२४

'यमनियमसवप्रमाणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिपोषणवर्षादि'

७ योगार्क पृ० ४४३

८ योग २।२०

अहिंसामत्यास्तेयःसवर्षाधिप्रहा यमाः ।'

९ हठयोग प्रदीपिका पृ० १।१०

१० भीमद्भागवत १।१।२।३३

जाते हैं<sup>१</sup>। भीमवृन्दागत में बर्षिन बारह यमों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—  
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अश्रम, ही, अशंभन, आस्तित्य, ब्रह्मचर्य, मोन, स्वैर्य, जमा  
और अमय<sup>२</sup>। दर्शनोपनिषद् में भी यम दत्त ही बतलाये गये हैं। उनके नाम ये ही  
हैं या हठयोग प्रदीपिका में मिलते हैं<sup>३</sup>।

छन्दों की बानिषों में हमें यमों की अर्थात् व्यवहारिक रूप में केवल दो-चार ही  
छन्दों में मिलती हैं। इनमें छंद सुन्दरदास और मल्लूदास उल्लेखनीय हैं। छन्दों पर  
हठयोग प्रदीपिका का प्रभाव कुछ अधिक दिखाई पड़ता है। छंद सुन्दरदास और मल्लू-  
दास ने यम हठयोग प्रदीपिका के अनुकरण पर दत्त ही माने हैं। छंद सुन्दरदास ने  
उनका उल्लेख इस प्रकार किया है<sup>४</sup>—

प्रथम अहिंसा सत्य हिं ज्ञानि सोय मुन्यागै ।  
ब्रह्मचर्ये दृढ गहे जमा धृति सौ अनुग्रहै ॥  
दया बह्वी गुन होइ भागजं ब हृदय सुधानै ।  
मिताहार पुनि करै शौच नीकी बिधि जानै ॥

छंद मल्लूदास हठ यमों का वर्णन इस प्रकार है<sup>५</sup>—

छंद अहिंसा ब्रह्मचर्य परधन तपत्र विकार ।  
दया अर्जुन जमा सौच पुनि संपद नित्याहार ॥

अन्य छन्दों में भी हमें यमों का उल्लेख अन्वयव्यय रूप में मिलता है। छन्दों  
की बानिषों में सबके उदाहरण दूँके या ठकते हैं। विस्तारमय से उदाहरण यहाँ पर  
संग्रहीत नहीं किये जा रहे हैं।

<sup>१</sup> हठयोग प्रदीपिका ११०

“अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं जमा धृतिः ।  
दया अर्जुन मिताहारं शौचं चैव यमा दत्तः ॥”

<sup>२</sup> भीमवृन्दागत ११११११११

“अहिंसा सत्यमस्तेयं संगो हरिद्विष्यया ।  
आस्तित्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्वैर्यं जमा मयम् ॥”

<sup>३</sup> दर्शनोपनिषद् १११

“अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्म दया अर्जुनम् ।  
जमा धृति मिताहारः शौचं चैव यमा दत्तः ॥”

<sup>४</sup> सुन्दर दर्शन—दा० त्रिकोटीनारायण हीदित—पृ० ११

<sup>५</sup> सुन्दर दर्शन—दा० त्रिकोटीनारायण हीदित—पृ० १०

नियम—कर्म के हेतु मूल अर्थम कर्म से नीचे श्री नियुक्ति कर्म के मोक्ष के हेतु मूल निष्काम धर्मों में उक्तरी प्रकृति करनेवाले कर्मों को नियम कहते हैं।<sup>१</sup> योग सूत्र में केवल पाँच नियमों का उल्लेख किया गया है। उनके नाम क्रमशः यौत्स्य, संतोष, तप, स्वाप्नात् और ईश्वर प्रविशाल हैं।<sup>२</sup> इत्योग प्रदीपिका में दस नियमों की बर्णना की गई है। उनके अनुसार नियमों के नाम क्रमशः तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, सिद्धान्त, वास्य भवय, ही, मति, तप और होम हैं।<sup>३</sup> शर्वापोनिष्क में भी इन्हीं दस नियमों का मात्मन्वा की गई है।<sup>४</sup> सन्तों ने इत्योग प्रदीपिका का ही अनुसरण किया है। उक्त सुन्दरदास ने लगभग इन्हीं दस नियमों का उल्लेख किया है।<sup>५</sup>

तप सन्तोषहि भवै मुक्ति आस्तिक्य सुभानय ।  
 दान स्मृति करि वेद मानसी पूजा धनय ॥  
 बचन सिद्धांत सुसुनय ज्ञानमति दृढ़ करि यपय ।  
 व्याप करय मुख सीत तहाँ छग बचन न मापय ॥  
 पुनि होम करै इहि विधि तहाँ जैसी विधि सवगुठ कहैं ।  
 ये इरा प्रकार के नियम हैं भाग्य बिना कैसे कहैं ॥

आसन—धिरकन्त तक निश्चल होकर धारणा के लिए एक ही स्थिति में बैठने का अन्वयात् आसन ब्रह्मदाता है।<sup>६</sup> योग मार्तण्ड नामक ग्रंथ के अनुसार आसन

<sup>१</sup> अन्वयात् योगश्लोक सू० २३८-२४३

<sup>२</sup> योग सूत्र २।३२

यौत्स्य सन्तोषतपः स्वाप्नात् ईश्वर प्रविशालादिभिर्यमः ।

<sup>३</sup> इत्योग प्रदीपिका १।७३

तपः सन्तोष आस्तिक्यं वाग्मीरवरपूजकम् ।

सिद्धान्तवाक्यप्रबन्धं ह्रीमती च तपो ब्रह्मम् ।

नियमः कृत संशोका योगशास्त्रविहारै ३

<sup>४</sup> शर्वापोनिष्क १।१

तपः संतोषमस्तिव्यं वाग्मीरवरपूजकम् ।

सिद्धान्तप्रबन्धं चैव ह्रीं मतिरथ तपो ब्रह्मम् ॥

<sup>५</sup> यह उद्धरण का० दीक्षित द्वारा 'सुन्दरदर्शन' सू० २९ से उद्धृत है।

<sup>६</sup> इत्योग प्रदीपिका १।१० की टीका योगसूत्र २।३३

<sup>७</sup> योगमार्तण्डक रत्नकोक ३

आसनानि च तावन्ति आसन्तो धीरकन्तकाः ।

धृतेर्वा शक्यं मेव विजयाति श्रेयसता ॥

संख्या में कठने ही होते हैं जिनमें श्री बीर-बंदु। उन कठके रहस्य का मगवान शंकर ही समझते हैं। शिवसंहिता में<sup>१</sup> चौरथी आसन प्रमुख माने गये हैं। इन चौरथी आसनों में भी बार को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। वे क्रमशः सिद्धासन, पद्मासन, उपासन और स्वस्तिभक्तन नामों से प्रसिद्ध हैं।<sup>२</sup> योगमार्तण्ड<sup>३</sup> नामक ग्रंथ में केवल सिद्धासन और पद्मासन को ही महत्त्व दिया गया है। सिद्धासन के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए शिव संहिता में लिखा है कि बायीं को पादिए सिद्धासन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए एकी का शिग के मूल स्थान पर रखें तथा एकी से बोलि स्थान को दाहिने, दृष्टि भू के मध्य में रखनी पादिए। शरीर विस्तुल सीमा रहना पादिए। यह आसन सिद्धों को भी सिद्धि देनेवाला कहा गया है।<sup>४</sup> असासन का स्वरूप इस प्रकार बयलाया गया है—'सायक का होतो बरखों को उपासन करके बघ से उठ पर रखने पादिए और होतो हाप सींचे करके उठके मध्य में रखने पादिए। दृष्टि नासिध के अग्रभाग में केन्द्रित रखनी पादिए और बिहा दाँतो के बीच में स्थिर करनी पादिए। विस्तुल हृदय स्थान पर स्थित रहनी पादिए। अर्थात् बायु को उठाकर प्रायः का शनै शनै पपाशक्ति पूरक करके पारण करे। बाद में बायु को बाहर निष्कल है। इस क्रिया से शरीर को पसासन कहते हैं।<sup>५</sup> उपासन शीर

<sup>१</sup> शिव संहिता ३।१००

'अनुपरीत्यासनाणि सन्धि नाम्ना विधानि च।

सेम्पदकुपुण्डमाहापप्रबोलाणि असीन्वहद् ॥

<sup>२</sup> शिव संहिता ३।१००

सिद्धासन कठः पद्मासन चोर्ग, च स्वस्तिभक्तम्'

<sup>३</sup> योग मार्तण्ड, श्लोक ४

'आसनात्मकः समस्तस्यः रूपमेव विदित्यते।

एवं स्वस्यात्मने (सिद्धासन) मोर्ले द्वितीय असासनम् ॥'

<sup>४</sup> शिव संहिता ३।१०१

'श्रीनि संवीर्य बन्नेन पादसूत्रेण आचरन्।

अनुपरी पादसूत्रं चिन्त्येत बोधवित्तरा ॥

<sup>५</sup> शिव संहिता ३।१०२

'उपासी बरखी हृत्वा रसुदी प्रपञ्चतः।

उपसन्ने तपोपासी पासी हृत्वा च ताप्यी ॥'

शिव संहिता ४० ३३

'इदं पद्मासन मोर्ले सर्वान्नाप्रिबिन्दात्मम्।

दुक्तमे वैतरेयानि चीयता अल्पने परम् ॥'



हिंदी की निर्गुण काम्यवाच और उच्चरी शारीरिक पृष्ठभूमि

स्वस्तिचक्रन का अन्वयन भी चित्र संदिग्ध से किया जा सकता है। सन्त सुन्दरदास ने आत्मों के महत्त्व और स्वरूपों पर भी प्रफुल्लित किया है। उन्होंने लिखा है कि श्रुतियों, मुनियों और योगियों की वाचना के रहस्य उनके विभिन्न आत्मन ही से।<sup>१</sup> सुन्दरदास ने बोग मार्तण्ड नामक ग्रंथ का अनुसरण करते हुए दो ही आत्मों को चारभूत हैं के आत्मन इमरा सिद्धासन और पद्मासन हैं।<sup>२</sup> हम उन्हीं का वर्णन करेंगे। सुन्दरदास ने इन दोनों आत्मों के स्वरूप का भी स्पष्टीकरण किया है। उन दोनों के स्वरूप इस प्रकार हैं—

एकी वाम पाँव की सगाये सीधनि के बीच ।  
वाही जोनि ठौर वाहि नीके बारि जानिये ॥  
तेसे ही युगति करि बिधि सी मले प्रकार ।  
मेंद हू के ऊपर वरुन पाव जानिये ॥  
सकल शरीर हृद इन्द्रिय संयम करि ।  
अबल ऊरु हरय मू के मध्य ठानिये ॥  
मोक्ष के कपाट को उपास आबरयमेव ।  
सुन्दर कहत सिद्ध आसन यपानिये ॥

पश्चिम उस ऊपरव प्रथम वामहि पग आनय ।  
बामहि उस ऊपरव तर्बाहि वक्षिण पग ठानय ॥  
होऊ कर पुनि फेरि दृष्टि पीछे करि अवयव ।  
हृद के मई अगुष्ठ किबुक बक्षस्यस आवय ॥  
इहि मूर्ति दृष्टि हन्मय करि अम नासिका राबिये ।  
सब व्याधि हरण योगीन की पम्मासन यह मापिये ॥

आत्मों के स्वरूप का रहना अन्वयित और शास्त्रीय निरूपण अन्य उन्हीं ने बहुत कम किया है। अचिन्तन संत आत्मन का मानोत्प्रेक्षक करने ही रह गये हैं। जैसे भीष्माचार्य ने "सुखमन के घर आसन माद्री" दरिपा साहब ने "सुन्दरदास में आसन

१ सुन्दर दर्शन से उद्धृत पृ० १६  
'उत्प्रेक्षणी आसनात्मि में सारभूत है अग्नि ।  
सिद्धासन पम्मासवर्हि लीके क्यौ बलाभि ॥'  
२ सुन्दर दर्शन से उद्धृत पृ० १६  
'अधि सुभि योगी प्रहाराये । तिन सब पदमे आचर सारे ॥  
३ सुन्दर दर्शन पृ० १८-१९ से उद्धृत  
४ भीष्मा साहब की बानी पृ० ७०  
५ दरिपा साहब के सुने हुए पर और साजी पृ० २०

मादृ, मर लिखकर छोड़ दिया है, किसी विरोध आसन का निर्देश नहीं किया है। उन्होंने कहीं-कहीं पर किसी आसन विरोध के स्वरूप की किसी एक विरोधता का संकेत करके योग साधना के पथ पर अग्रसर होने का उपदेश दिया है। इस दृष्टि से यारी साहब<sup>१</sup> की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करने के योग्य हैं—

ओगी जुगति आग कमाय ।

सुखमना पर बैठि आसन, सहस्र ध्यान हागाव ।

दृष्टि सम करि सुम्नस्रोवो, आपा भेटि उड़ाव ॥

यहाँ पर दृष्टि सम करि को पद्वि हम “भाषामे विन्यसेत् दृष्टि” की ओर संकेत करता हुआ माने तो अनुचित न होगा “भाषामे विन्यसेत् दृष्टि” का अयोग शिब संख्या में पद्यासन के प्रसंग में किया गया है। परसद साहब ने तो स्पष्टरूप से आठों पहर पद्यासन में रिपट रहने का उपदेश दिया है—“पदम आसन नाहि छूटे आठ पहर लगायनम” इस पद्यर हम देखते हैं कि संत लोग पद्यासन के पथ में कुछ धार्मिक थे।

प्राणायाम—वायु, अपान, समान वायुओं से मन के निरोध करने के अभ्यास को प्राणायाम कहते हैं।<sup>२</sup> प्राणायाम के तीन अंग बतलाए गये हैं—पूरक, कुम्भक, रेपक। आभरास्य अपान वायु को नासिका द्वारा आर्च्यय करके उदर में धरना पूरक कहलाता है। मरे हुए वायु को पषारासित रोखने को कुम्भक कहते हैं। तथा मरे हुए अशुद्ध वायु को नासिका द्वार से निकाल देने को रेपक संज्ञा दी जाती है।<sup>३</sup> कुम्भक के आठ अंग माने गये हैं। ये सामान्यतया प्राणायाम के आठ भेदों के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके नाम अमरा<sup>४</sup>, स्वर्भेदन<sup>५</sup>, उग्वायी<sup>६</sup>, शीतकार<sup>७</sup>, शितली<sup>८</sup>, मसिन्ध<sup>९</sup>, मूर्च्छा<sup>१०</sup>, आमरी<sup>११</sup>, प्लावना<sup>१२</sup> हैं। संत सुन्दरदास<sup>१३</sup> ने इन

<sup>१</sup> यारी साहब की रत्नावली पृ० ४

<sup>२</sup> परसद साहब की बानी भाग ३ पृ० २३

<sup>३</sup> प्राणायाम के अर्थके प्रमाण— श्रुतबोधनिपट १११

<sup>४</sup> बही १११ तथा योगसिद्धामणिसिद्धिनिपट ३२, ३६, १००

<sup>५</sup> श्रुतिये योग कुण्डल्युपनिपट ११३—२२

<sup>६</sup> बही ११३, ११३

<sup>७</sup> दृष्टयोग प्रदीपिका ११३

<sup>८</sup> योग कुण्डल्युपनिपट ११३, ११३

<sup>९</sup> योग कुण्डल्युपनिपट ११३, ११३

<sup>१०</sup> दृष्टयोग प्रदीपिका ११३

<sup>११</sup> बही ११३

<sup>१२</sup> बही

<sup>१३</sup> देविये दृष्टयोग प्रदीपिका ११३

५८१ हिन्दी की निर्गुण अभ्युपाय और उत्तरी बार्थनिक प्रश्नमूल  
 लव का वर्धन किया है। पूरक, कुंमक एवं रेचक का वर्धन निम्नलिखित पंक्तियों में  
 देखिए—

इका नाड़ी पूरक करे, कुंमक राखे भारि ।  
 रेचक करिये विगला, सब पातक कटि खाहि ॥  
 - वीज मंत्र संयुक्त, 'पोकरा पूरक पूरिये ।  
 जबसठि कुंमक कस्त, हाशिरावि करि रेचना ।  
 बहुदि विपर्यय ऐसे भारे, पूरि विगला इका निकारे ।  
 कुंमक रापि प्राण की जीत, पसुबोर अभ्यास क्यतोवे ॥

1 प्रक बूतरे रक्त पर उन्होंने कुंमक के आठ मेरों का मी उल्लेख किया है<sup>१</sup>। सुन्दरदास  
 के अतिरिक्त मायावाम के वर्धन अन्य संत कवियों ने भी किये हैं<sup>२</sup>। संत कबीर  
 में लिखा है—

मन पवन जब परचामया ब्यों नाजे राखी इस नैया ।  
 कई कबीर भट जेहु बिचारी कौभट घाट सींच छे क्यारी ॥  
 यहाँ पर मन, पवन, साधना का उल्लेख करके मायावाम का संकेत मात्र किया  
 गया है। अन्य संतों ने भी मायावाम का संकेत मन, पवन, साधना के रूप में ही  
 किया है। उक्त गुणाक्ष साहब मन, पवन, साधना की ओर संकेत करते हुए  
 लिखते हैं—

मन पवना को संगम कोई नर पाईया ।  
 अनहद बजै अपार तो अलख खलाईया ॥

मायावाम के प्रसंग में हम बानुभो का उल्लेख भी कर देना चाहते हैं। परंतु  
 संक्षिप्त के अनुसार शरीर में दस वायु हैं<sup>३</sup>—उनके नाम क्रमशः प्राण, अपान, समान,

<sup>१</sup> सुन्दर दर्शन—का० शीविल पृ ३८  
<sup>२</sup> सर्व भेषन प्रथम द्वितीय उर्जर करिये ।  
 शीतकार पुनि क्रिये शीतकी चतुरप भदिये ॥  
 पंचम है मरिचका सारी पत्र सु जानहु ।  
 सुरक्षना सप्तमी सप्तमी केवल माबहु ॥  
<sup>३</sup> कबीर प्रेमचरणी पृ० १२०  
<sup>४</sup> गुणाक्ष साहब की बानी पृ० ७०  
<sup>५</sup> वैराग्य संक्षिप्त पंचम उपदेशे रसोच ६०  
 "मायो अपाना समाकरभोदाय धर्यानी तयैव च ।  
 वायुः कर्मरथ कृको रेचकतो वर्धय्या ॥"  
 गोरपट्टक में भी यही नाम दिये हैं देखिए रसोच २३

उदान, व्यान, नाग, कूर्म, किच्छ, देवदत्त और चन्द्रय हैं। इनमें से प्रथम पाँच को बिरोंप महत्त्व दिया जाता है। और प्रायः अपान साधना तो हठयोगिक प्राणायाम का प्रधान विद्योत है। प्रायः अरान साधना प्राणायाम से ही संकलित होती है। संत कबीर ने एक स्थल पर पंच वायुओं का अनुसंधान करके प्राणायाम के सहारे विदु को ब्रह्मरंभ में ले जाने का उद्देश्य दिया है<sup>१</sup>।

पहले लोनी पंचेवाय, व्याय व्यंद् ले गगन समाय ।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'कबीर के रहस्यवाद' में वायु साधना से सम्बन्धित कबीर के कई सुन्दर उदाहरण उद्धृत किये हैं—छन्द ११ के संस्करण में पे पृष्ठ २०७ पर देखे जा सकते हैं। यारी साहब ने प्रायः अपान साधना को बिरोंप महत्त्व दिया था। उन्होंने लिखा है<sup>२</sup>—'दिके मान अपान मिलावै बली पवन में गगन गरबावै' संत गुलाल साहब ने प्राणायाम के द्वारा वायु साधना का संकेत किया है। उन्होंने लिखा है<sup>३</sup>—

॥अर्घ्य पवन ले घरी गगन में बोध करी बिनाम ॥"

इसे हम कुम्भक का अष्टा उदाहरण मान सकते हैं। गुलाल साहब ने और भी कई स्थलों पर प्राणायाम से सम्बन्ध रखनेवाली पवन-साधना और मन-साधना पर बल दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों ने प्राणायाम और उससे सम्बन्धित मन पवन-साधना तथा केवल पवन-साधनाओं पर बिरोंप बल दिया है। इसका कारण यह है कि उनका ध्येय मुक्तिपाग इन्हीं साधनाओं पर आधारित है। इत विरय पर हम आगे थोड़ा विचार से विचार करेंगे। वहाँ पर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि संतों की हठयोग साधना में प्राणायाम तथा अन्यसे सम्बन्धित मन पवन-साधना तथा पवन-साधना आदि का बिरोंप महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राणायाम के अर्थ में ही कुछ आचार्यों ने पटक्यों<sup>४</sup> और मुद्राओं<sup>५</sup> का निर्देश किया है<sup>६</sup>। वे लोग इन दोनों

<sup>१</sup> कबीर प्रसादकी पृ० १६८

<sup>२</sup> यारी साहब की बानी पृ० ७

<sup>३</sup> गुलाल साहब की बानी पृ० ७

<sup>४</sup> हठयोग प्रदीपिकाकार का पदी मन है। देखिये—

उसका श्रुतीचोदये ३१।३०। इसमें बह्मर्ष को प्राणायाम का उदाहरण कहा गया है।

<sup>५</sup> पटक्यों का विराय हयिप। हठयोग प्रदीपिका २।२२।३६ तक

<sup>६</sup> मुद्रा का अर्थ चित्तमहिमा में उच्छ्वाह के साथ प्रतिपादित किया गया है। उस प्राणायाम में उच्छ्वाह माना गया है। देखिये उसका अनुसंधान पत्र।

के बिना प्रत्यापान को अर्थात् समझते थे। ये दृष्टिकोण दृष्टयोगियों का था। अतएव हम इनका विवेचन दृष्टयोग के प्रथम में ही करेंगे।

**प्रत्याहार**—प्रत्याहार की परिभाषा देते हुए आचार्यों ने लिखा है कि श्रीभक्ति दृष्टियों का स्वयं ही प्रत्यक्ष स्वाभाविक विषयों से विवेक बल द्वारा निवृत्त करके उनका असौम्य आहार बंद करके चित्त के आधीन करना प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार की विधि के लिए आचार्यों ने बहुत से सहायक साधन निर्दिष्ट किये हैं उनमें से प्रमुख दस प्रकार हैं—

१—परमात्म से बैठकर कुम्भक के द्वारा स्वातोष्मवास की गति अचल करना।

२—विदासन से बैठकर त्रिकुटी अथवा नासिकाग्र पर निमेषोन्मेष रहित दृष्टि स्थिर करना।

३—मूर्छा प्राणायाम का अनुष्ठान।

४—राशि चित्त से एक क्षण भीस हवार प्रत्यक्ष के रूप करना।

५—विपरीतकारणी मूत्रा के अनुष्ठान से मनोदृष्टि को स्वातोष्मवास के लपोद्गम के स्थान में स्थिर करना।

बैठे तो संतो की प्रवृत्ति हमें प्रत्याहार के सभी सहायक साधनों की ओर दिखाने पकती है किन्तु उनका विरोध कमजोर प्रथम की ओर ही था। अर्थों का उन्हें ही संबन्धमान किया है। प्रथम साधन संतो के सहयोग के बहुत अनुकूल प्रतीत होती है। इसके लिए किसी प्रकार के हठसाधन की आवश्यकता नहीं होती। साधक सहज भाव से इच्छा अनुभव कर सकता है। इसकी ओर संकेत करते हुए पण्डित साहब ने लिखा है कि योगी का कर्तव्य है कि सदाचारपूर्वक साधु-श्रीवन स्वीकृत करते हुए आठों पहर परमात्म से बैठे रहे। ठीके दृष्टी द्वारा बंद कर लेने चाहिए और प्रयत्नपूर्वक त्रिकुटी में वायु को आकृष्ट करके स्वातोष्मवास की गति रोक देनी चाहिए।<sup>१</sup> प्रत्याहार की विधि के दूसरे साधन के संकेत भी संतो की बातियों में मिलते हैं। किन्तु वे बहुत स्पष्ट नहीं हैं। बराबरी ने एक स्थल पर "नासा आगे दृष्टि करे

<sup>१</sup> पण्डित साहब की बानी भाग २—पृ० २३

प्रथम साधन अर्थात् दृष्टि आठ पहर आगमन।  
 कर अंशम शेष आगत साधन दृष्टी अर्थात् ११  
 दसों द्वारा मूर्छि मर्छि पवन चलन कराने।  
 सत्य त्रिकुटी रंग अनुष्ठान वहाँ स्थिति अनुभव ॥

साँचा में मत रखि<sup>१</sup> तथा "दवा प्यान बिहुटी भरे परमात्म दरशाए"<sup>२</sup> किलकर प्रत्याहार के दूसरे सहायक साधन की ओर संकेत किया है। जहाँ तक मूर्ख प्राणायाम के संकेत की बात है उसका स्पष्ट उल्लेख संतों में नहीं मिलता है। यह बात दूखी है कि बहुत लोग करने पर एक आप उदाहरण मिल जाय। विपरीतकरणीमुद्रा की ओर संतों की प्रवृत्ति कुछ अभिन्न रही है। विपरीतकरणीमुद्रा का स्पष्टीकरण हठयोग में इस प्रकार किया गया है। योगशास्त्रियों का विश्वास है<sup>३</sup> कि सहस्रार में चन्द्र तपन है।<sup>४</sup> जिससे अमृत ऋण करता है और नामि के नीचे खूँ तपन है जो चन्द्र के अमृत को मख कर देता है।<sup>५</sup> विपरीतकरणीमुद्रा से योगी साग खूँ को ऊपर कर देते हैं और चन्द्र को नीचे कर देते हैं। यह किना प्रत्याहार और प्राणायाम के द्वारा ही सिद्ध होती है।<sup>६</sup> विपरीतकरणीमुद्रा ही आगे चलकर संतों में विपरीतकरणी खूँ चन्द्र साधना के नाम से प्रसिद्ध हुई। संतों की बानियों में विपरीतकरणी खूँ चन्द्र साधना के अनेक संकेत मिलते हैं। सन्त पारी साहब ने लिखा है—मगवान् की कृपा से ही साधक चन्द्र को अपस्वात स्थिर करने में और खूँ को ऊर्ध्वमुखी करने में समर्थ होता है।<sup>७</sup> यहाँ पर पारी साहब ने विपरीतकरणीमुद्रा की ओर स्पष्ट संकेत किया है। अन्य संतों की बानियों में भी इस प्रकार के उदाहरण दुर्लभ पाए जाते हैं। प्रत्याहार का भीया साधन मध्यम कर है। ये अप संख्या में एक साल और बीस हजार होने चाहिए तभी प्रत्याहार सिद्ध हो सकता है। संतों ने अप का तो बहुत महत्त्व दिया है। किन्तु एक साल बीस हजार की संख्या का उल्लेख बहुत कम किया है। उन्होंने प्रत्यक्ष अप के स्थान पर सोई

<sup>१</sup> द्वापार्द की बानी पृ० १०

<sup>२</sup> शिव संहिता २।१०८।१०३

<sup>३</sup> द्वापार्द की बानी पृ० १०

<sup>४</sup> यह मत शिव संहिता का है—शिव संहिता २।१० २०

<sup>५</sup> गोरखनाथ की का मत हमसे थोड़ा भिन्न है। उनके अनुसार खूँ नामिदेश में स्थित है और तालु मूख में चन्द्र है। खूँ ऊर्ध्वमुख है और चन्द्र अधोमुखी होता है। गोरखनाथ का यह मत हठयोग प्रदीपिका ३।०० की टीका में उद्धृत है। योगसिद्धोपनिषद् भी हरिपुरे २।३९ ३३ ३४

<sup>६</sup> हठयोग प्रदीपिका—तृतीय पटल ३।०६

ऊर्ध्वनामिरेषत्वाबोर्ध्वमाधुरया गयी ।

अरवी विपरीताधना मुख्याहरेण अभ्यते ॥

<sup>७</sup> पारी साहब की बानी पृ० ११

देन इनापत हरि की परे चन्द्र उतारे सूरज चरे ।

हिन्दी की निर्गुण काव्यभाषा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

के अन्वयगत को ही विशेष महत्त्व दिया है। इस अन्वयगत<sup>१</sup> की व्याख्या हम आगे करेंगे। प्रत्याहार की विधि का पौनर्वा ताबन मनोवृत्ति को स्वाधोत्प्लावक के रूप स्थान पर स्थिर करना है। उन्मो क्य शब्द सुप्रतिबोम प्रत्याहार शब्दक इती ताबन पर आधावृत्ति है। स्वाधोत्प्लावक का लघोत्प्लावक का स्थान लहसार माना जाता है। इस लहसार में ही मनोवृत्ति को स्थिर करना पड़ता है। शब्द सुप्रति योग में भी सुप्रति को लहसारस्य शब्द में लीन करना पड़ता है। बहुत से संतों में सुप्रति को मनोवृत्ति के रूप में किया है। उक्त दशा में शब्द सुप्रति योग को हम प्रत्याहार विधि का एक ताबन मानेंगे।

प्रत्याहार के विद् होने पर इन्द्रियाँ स्वयं बोगी के अधीन हो जाती हैं। इस अन्वयगत का वर्णन करते हुए दयाशार्ङ्ग ने लिखा है<sup>२</sup>—

इयाकहियो गुरुदेव ने पूरक को मत लेहि ।  
सब इन्द्रिय कू रोकरि सुप्रति स्वाँस में देखि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों में प्रत्याहार ताबन की अभिव्यक्ति विविध प्रकार से हुई है। कुछ संतों में तो प्रत्याहार का शास्त्रीय स्वरूप ही व्यक्त किया है। ऐसे संतों में उक्त सुन्दरदास विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके द्वारा किया गया प्रत्याहार का वर्णन है—

अथ शब्द को गहत है नयन गहत है रूप ।  
जब गहत है नासिका रसना रस की धूप ॥  
रसना रस की धूप श्रुता सुस्पर्श हि जाई ।  
इनि पंचनि की फेरी आवना निस्पाटी है ॥  
हृत्सु अंगहि मई ममा रवि कर्यय द्रव्य ॥  
इम करि प्रत्याहार विषय शब्दादिक अर्थ ॥

अध्यांग योग का कृता अंग धारणा है। 'आत्मात्मिक' आधिदैविक और

<sup>१</sup> अन्वयगत का अन्वयगत निम्नलिखित स्वरूपों पर कर्तव्य—

- १ अन्वयगत विन्दुपत्रिका १११६० श्लोक देखिये
- २ अन्वयगत विन्दुपत्रिका ००१८० श्लोक देखिये
- ३ बोग कृतान्तुपत्रिका १११२२ श्लोक देखिये
- ४ अन्वयगत १६०० पद्यांश
- ५ योगशास्त्र १०—२३ श्लोक
- ६ दयाशार्ङ्ग की बानी ५ १०
- ७ अन्वयगत ५० ४६

आधिभौतिक भेद से तीन प्रकार के देशों में से किसी योग्य ध्येय विषय में चित्त को एकाग्र करना पारम्भा कइलाती है।<sup>१</sup> इसके आम्वास से चित्तवृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं। पारम्भा की विधि के देश विद्वानों ने कुछ मन साधना सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख किया है। उन मुद्राओं में अगोचरी, भूचरी, वाचरी और शाम्भवी प्रमुख हैं।<sup>२</sup> नासिम्भ के अग्रभाग पर मन को स्थिर करना अगोचरी कइलाता है। नासिम्भ के अग्रभाग से चार अंगुल की दूरी पर मन को स्थिर करना भूचरी कइलाता है। मन को आकाशक में केन्द्रित करने को वाचरी कहते हैं। साधक मन को आकाशक में केन्द्रित करके समस्तवर्षी समरस्य पर एक बालिष्ठ से शिखर दो गज की दूरी के बीच में मन्तेनित पदार्थ के ध्यान में रहना चाहिए। इसके लिए किसी बाहरी उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। छंदों ने पारम्भा की इन समस्त मुद्राओं का संकेत किया है। उदाहरण के लिए हम संत वारीसाहब की निम्नलिखित वक्तियाँ ले सकते हैं। इसमें उन्होंने पारम्भा और उठती सहायक मुद्राओं का स्पष्ट संकेत किया है—

अँसि कान माक सुँह सूँदि के निहार देखु,  
 सुन्न में जोति बाही परगट गुठ ज्ञान है।  
 त्रिकुनी में चित्त देई ध्यान धरि देखु तहाँ,  
 हासिनि हमके वाचरी मुद्रा को अस्थान है ॥  
 भूचरी मुद्रा सोहाग जागी मस्तक,  
 भाग पायो सकल निरंतर की ज्ञान है।  
 गगन गुफ्र में पैडि अंधर आसन बैठि,  
 संचरी मुद्रा अकास फूलि निवाँन है ॥

टिप्पण—अध्यांग योग साधना का सातवाँ अंग ध्यान है। योगसूत्र के अनुसार पारम्भा के देश में चित्तवृत्ति का विलयायत अलंकार प्रवाह तथा मन का निर्विषय होना ध्यान कइलाता है। शास्त्रीय ग्रन्थों में ध्यान के तीन प्रकार बतलाये गये हैं। स्थूलध्यान, सूक्ष्मध्यान, सूक्ष्मध्यान। जब किसी मूर्तिमान अग्रोष्ठ देवता आदि का ध्यान किया जाता है तब उसे स्थूलध्यान कहते हैं। तेजस्व परमात्मा का ध्यान करना सूक्ष्मध्यान कइलाता है। बुद्धत्वार्थी शक्ति के दर्शन करने को सूक्ष्म ध्यान कहते हैं। छंदों में हमें अंतिम दो प्रकार के ध्यानों का उल्लेख ही विशेष रूप से मिलता है। वारीसाहब की चार संकेत करते हुए द्वाबार्द ने<sup>३</sup> “दया ध्यान त्रिपुरी परे परमात्म दरशाव”, वारी साहब ने<sup>३</sup> “त्रिपुरी ध्यान जोति है रे तँह देखि

<sup>१</sup> ‘अध्याय’ योगीश ११८

<sup>२</sup> द्वाबार्द की वाणी ५० १०

<sup>३</sup> वारी साहब की १ की ५० २०



सेबे गुण स्थान सेती", बुद्धा साहब ने<sup>१</sup> "भिल्लमिल्लभिल्लमिल्ल त्रिपुटी ध्यान" लिख कर ज्योतिरध्यान साधना का ही संकेत किया है। उन्हीं में एहम ध्यान के भी उल्लेख मिलते हैं। पारी साहब ने<sup>२</sup> निम्नलिखित मंत्रिकों में एहम ध्यान की ओर संकेत किया है—

भँवर गुफ्य ब्रह्माय मेसला जोग जुगति बनि भाई ।

चौबी उल्लट सूर्य को छाई सधि में मीन बहाई ॥

उन्हीं में हमें दो प्रकार के ध्यानों का उल्लेख मिलता है वे ध्यान भी एहम ध्यान के अन्तर्गत ही आँवेंगे। एक माद नागपक्ष का ध्यान है और दूसरा एहम ध्यान है। माद ध्यान की ओर संकेत करते हुए पारी साहब ने लिखा है<sup>३</sup>—

नाग धरन जो छाबै ध्यान । सो भोगी क्षुग जुग परनाम ॥

इसो मन्धर यूय ध्यान का उल्लेख करते हुए पारी साहब ने लिखा है<sup>४</sup>—

दृष्टि सम करि सुन्न सोबो, बापा मेदि पढ़ाव ।

इसी एहम ध्यान को उन्हीं ने निर्गुण ध्यान भी कहा है। पारी साहब ने लिखा है यूय में ध्यान करते से ही निर्गुण के बर्णन हो सकते हैं।<sup>५</sup>

सुन्न से निव लारी साबो, सुम्नि है निर्गुन ॥

उक्त सुन्दरदास ने ध्यान के नये चार भेदों की बखाना की है। पदरथध्यान, सिद्धस्य ध्यान, रूपरथध्यान, स्माटीरध्यान। उनके मगानुसार उपदेशपूर्व महावाक्यों और मन्त्रमंत्रों का बण करते हुए इनका ध्यान करना पदरथध्यान है। उन्होंने चन्द्र और गुह के ध्यान को विद्वत् ध्यान कहा है तथा ज्योतिरध्यानी ध्यान को रूपस्य ध्यान तथा निर्गुण निराधर ध्यान को क्लमटीर ध्यान की संज्ञा दी है। हमारी समझ में सुन्दर दास हुए ध्यान के ये चारों भेद योगशास्त्र में बखित उपर्युक्त तीनों भेदों के ही स्मा स्तर हैं। अन्य किसी उक्त में सुन्दरदास के इन ध्यान भेदों का उल्लेख नहीं किया है।<sup>६</sup>

समाधि—अध्यास बोन साधना का अन्तिम अंग समाधि है। समाधि के स्वल्प का स्वीकार्य अनेक आचार्यों ने किया है।<sup>७</sup>

<sup>१</sup> बुद्धा साहब की रत्नावली पृ० २८

<sup>२</sup> पारी साहब की बाबी पृ० ११

<sup>३</sup> पारी साहब की रत्नावली पृ० ३

<sup>४</sup> पारी साहब की रत्नावली पृ० ४

<sup>५</sup> पारी साहब की रत्नावली पृ० ६

<sup>६</sup> देखिये—सुन्दर बर्णन पृ० ४८

<sup>७</sup> 'अध्यास' के अर्थों में अन्तिम मन्त्रधार द्वारा सिद्धित समाधि योग नामक लेख में समाधि की वैशेषी परिभाषा दी गयी है। देखिये पृ० ११०

पार्लमलि योगसूत्र की परिभाषा—जान कले-कले जब बोगी का बिच घेवनाकर हो जाता है और ज्येपी तथा ज्ञाता का मेद मिट जाता है तब उसे समाधि कहते हैं।<sup>१</sup>

जावालिदर्शनोपनिषद् की परिभाषा—बीजाल्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञान के उदय को ही समाधि कहते हैं।<sup>२</sup>

मुक्तिबोपनिषद् की परिभाषा—श्रुतियों द्वारा साधित समाधि उस तत्पररात्म्य अवस्था का नाम है जिसमें न मन की क्रिया है और न बुद्धि का व्यापार है। यह आत्मज्ञान की अवस्था है इसमें प्रत्येक चैतन्य के अतिरिक्त सबका नाश हो जाता है।<sup>३</sup>

बृहदारण्यकोपनिषद् की परिभाषा—बिच समय इदम में मरी हुई घारी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं उसी समय यह मरणभर्मा मनुष्य अमृतत्व प्राप्त कर लेता है और इसी जीवन में ब्रह्मसंन्द का अनुभव करता है।<sup>४</sup>

शांखिल्योपनिषद् की परिभाषा—बीजाल्मा और परमात्मा की एकता की अवस्था जिसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयी रूप त्रिपुटी का समाव रहता है जो परमानन्द होता है, और शुद्ध चैतन्यारिक्ता है, बही समाधि है।<sup>५</sup>

समाधि की उन्नतक परिभाषाओं का मनोबोध के साथ सम्पन्न करने पर समाधि की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं—

- १—संकल्प विच्छेदी का समाव ।
- २—पूर्व आत्मज्ञान की अवस्था ।
- ३—पूर्व ब्रह्मसंन्द की अवस्था ।
- ४—चैतन्यता ।
- ५—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी का समाव ।

<sup>१</sup> पार्लमलि योग सूत्र—विभूतिबाद सूत्र ३

<sup>२</sup> तदेवायमात्मनिर्मासं स्वस्वरात्म्यमिष सम्यक् १'

<sup>३</sup> जावालि दर्शनोपनिषद् १०११

उसी परिभाषा अष्टाव्योपनिषद् में भी दी हुई है। १।०२

<sup>४</sup> मुक्तिबोपनिषद् १।२२

<sup>५</sup> बृहदारण्यकोपनिषद् ३।३।०

<sup>६</sup> शांखिल्योपनिषद् १।११

संतों ने समाधि की अवस्था के विविध रूपों को प्रस्तुत किये हैं। कबीर की निम्नलिखित पंक्तियों में समाधिरूप बोगी की अवस्था का ही विषय किया गया है—

भास्मा बनन्दी ओगी, पीबै महारस असुठ मोगी ।  
 अन्न खागि जाया परजाटी, अन्नपा जाप बनमनों वाटी ॥  
 त्रिभुज कोट में आसख मांडै, सहज समाधि बिपै सब जाई ।  
 त्रिबेणी बिभूति करै मन भंजन, अन कबीर प्रभू अल्प निरंजन ॥

संतों में समाधि के रहस्यमय वर्णन बहुत मिलते हैं। इन रहस्यमय वर्णनों में उनकी भावनाओं में एक अनिर्वचनीय रहस्य छिपा है। समाधि के रहस्यपूर्ण एवं भावमय वर्णन के उदाहरण के रूप में हम यहाँ साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं—

“नैन सेत्र नित्र पिय पौड़ाई, सो सुख भौवै दिखहि खनाई ।  
 बोलैठा अन्न भास्मा पकै, भाव मिखन को सकै दुपाई ।”

अगम अगोप्य अवर अकथ प्रभु, ता से कहीं कौन मुँह साई ॥<sup>१</sup>

संतों ने एक मन्त्र की समाधि की और कल्पना की है उसको उन्होंने सहज समाधि का नाम दिया है। इसका सम्बन्ध उनकी सहजबोगी साधना से है। कबीर यहाँ हम उनके सहजबोगी के प्रथम में करेंगे।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि संतों में अर्धांग योग की प्रवृत्ति वर्तमान थी। केवल संत तुन्दरदास को छोड़कर जिन्होंने केवल दृष्टयोग प्रदीपित का ही अधिक अनुगमन किया है अन्य संतों ने किसी एक शास्त्रीय मन्त्र का आधार लेकर अर्धांग योग की प्रक्रियाओं का व्यवहार नहीं किया है। वे योगशास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों से प्रभावित हैं। किन्तु अक्षरतः अनुगमन उन्होंने किसी भी ग्रंथ के विचारों का नहीं किया है। अन्तःशुद्ध अर्धांग योग साधना में शिवालय रूप से विरवाह नहीं करते थे। उन्होंने कबीर को यहाँ की है जो केवल दृष्टभूमि के रूप में ही की है। केवल तुन्दरदास और महाप्रदास आदि ही एक संतों ने अर्धांग योग के शास्त्रीय स्वरूपों की ओर संकेत किया है। डा० बिक्रमजीनारायण शीरोडि ने अपने ‘तुन्दरदास’ नामक ग्रंथ में अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि तुन्दरदास ने अर्धांग योग साधना को पूर्ण रूप से अपनाते की चेष्टा की थी। किन्तु यह धारणा विस्तृत प्रातिपूर्व है। तुन्दरदास अन्तःशुद्धियों में सबसे अधिक विद्वान् व्यक्ति थे। उन्होंने कुछ तो अपनी विद्वान् प्रवर्तन के माध्यम से और कुछ साधना के प्रथम अर्थ में परीक्षण के

<sup>१</sup> कबीर प्रवचनकी पृ० १६८

<sup>२</sup> श्रीका साहब की भागी—पृ० ११

विचार से आध्यात्म योग का तांग बर्तन किया है। किन्तु अपने उस परीक्षण में उन्हें बड़ी निराशा हुई थी। इसी लिए उन्होंने आध्यात्म योग साधना के प्रति उपेक्षा दिखलाने पर उसे अनाश्रयक अभित किया है। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—<sup>१</sup>

सूत्र्य में समाधि साध, मृत मारयतु है।  
 ऐसे ऐसे करत, करत केते दिन बीते।  
 सुन्दर कहत अजहूँ, बिषारिपतु है।  
 करे ही न पीरा न ली, तावो ही न सोये कहु।  
 हाय न परत तावे, हाय मरियतु है ॥

एक दूसरे स्थल पर उन्होंने सभी प्रकार की क्रियात्मक साधनाओं को त्यागकर केवल मगलर मक्ति करने का संकेत किया है।<sup>२</sup>

“तैस हि सुन्दर और किया सब राम बिना निहरी भर रोय।”

### हठयोग साधना

हठयोग के प्रकार—शारंगधरयोग के अध्यांगों का आचार लक्ष्य किन्तु सबसे पहले हठयोग का प्रवर्तन किया यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। लोक-मतिदि के अनुसार हठयोग के सबसे प्रथम आचार शिवजी करताए जाते हैं किन्तु यह देवी आचार हैं। मानवी आचारों में मार्कण्डेय ऋषि सबसे प्रथम माने जाते हैं और मध्ययुग में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि तंत्रों में प्राचीन मार्कण्डेय ऋषि द्वारा प्रवर्तित हठयोग की ही पुनर्मतिष्ठा की थी। ऐसा प्रतिक्रम ही है कि हठयोग दो प्रकार का होता है—

एक वह बिषय प्रवर्तन मार्कण्डेय से पुनी आदि ने किया था। दूसरा वह बिषयी प्रायःप्रतिष्ठा गोरक्षादि तंत्रों में की थी। आचरत हमें मत्स्येन्द्रनाथी योग शाला के लिखित ही उपलब्ध हैं।

परिभाषा—हठयोग की परिभाषा देते हुए गोरक्षनाथ ने<sup>३</sup> लिख-लिखित परंपरि में लिखा है कि हठ शब्द का 'ह' वर्ण सूर्य का चोकर है और 'ठ' चन्द्र का बाधक है। इसी आचार पर हठ उस योग का कहते हैं जिसमें सूर्य और चन्द्र को

<sup>१</sup> सुन्दर विद्यास हृष्य १११

<sup>२</sup> सुन्दर विद्यास हृष्य ११

<sup>३</sup> निरुद्ध विद्यास परमति पृ० ११

मिलाने की ताबना का उपदेश उद्धृत है। योगशिक्षोपनिषद्<sup>१</sup> में भी इत्येव की ऐसी ही परिभाषा दी गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इत्येव का प्रमुख विषय यत्र सर्व ताबना है। इस ताबना से सम्बन्धित तत्त्व ही इत्येव के प्रमुख अंग माने जायेंगे। आचार्यों में इत्येव के अंगों के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। कुछ आचार्य आत्मन मायात्मान, मुद्रा और माहातुल्यपाल को इत्येव का प्रतिपाद्य विषय मानते हैं<sup>२</sup> कुछ पहले आचार्यों ने इत्येव के सात अंग माने हैं, वे क्रमशः परब्रह्म आत्मन, -मुद्रा, प्रत्याहार, मायात्मान, ध्यान और समाधि हैं। हमारी समझ में इत्येव के अंतर्गत वे तमाम ताबनार्थ आती हैं जो सर्व और यत्र को इत्थात् मिलाने में लक्ष्यक होती हैं। सर्व और यत्र इत्येव प्रदीपिम्ब<sup>३</sup> के दीकाकार के अनुसार प्राय और अपान के ताबक भी हैं। योगशिक्षोपनिषद्<sup>४</sup> में प्राय अपान समयोग को सभी प्रकार के योगों का प्रमुख ताबक धनित किया गया है। प्राय अपान ताबना का धनित सम्बन्ध कुम्हलनी उद्यापन प्रक्रिया से है। कुम्हलनी उद्यापन प्रक्रिया के प्रसंग में ब्रह्मक मेहन प्रक्रिया भी आती है। प्राय अपान ताबना, कुम्हलनी उद्यापन प्रक्रिया तथा ब्रह्मक मेहन विना नाड़ी रोपन के नहीं होते हैं। प्राय अपान ताबना का इतना महत्व केवल इती लिए है कि और इन्हीं दोनों के बधीमूल होकर नीचे उतर जाता जाता है<sup>५</sup>। इत्येव के प्रमुख विषय यही हैं। वन, ध्यान, आत्मन, मायात्मान, ज्ञानाहार, चारुता, ध्यान, समाधि, किन्हीं योग तत्त्वोपनिषद् ने इत्येव के प्रधान अंग कहा गया है<sup>६</sup>। इनमें से अधिचर्य अंगों का विवेचन अध्यांग योग के प्रकरण में कर चुके हैं। यहाँ पर हम उन्हीं विषयों पर प्रकरण डालेंगे किन्के पीछे उल्लेख नहीं किया गया है।

<sup>१</sup> योगशिक्षोपनिषद्—वृषभ अम्बार श्लोक—१३३

“इत्येव य सर्वः स्वात्मधारेणैवु सम्भते।

सुर्वाचन्द्रमसो रैत्वं इड इत्यभिधीयते ॥”

<sup>२</sup> योगार्थक पृ० ७

<sup>३</sup> इत्येव प्रदीपिम्ब १११ की टीका देखिए

<sup>४</sup> योगशिक्षोपनिषद्—१३८

<sup>५</sup> आत्मन विष्णुपनिषद् श्लोक—२८

“मायात्मानमसो बीयो कश्चरचोर्ध्वं च आवति ।”

<sup>६</sup> योग तत्त्वोपनिषद् श्लोक १४, १५

योग मार्तण्ड श्लोक ११

“मायात्मान अम्बाराच उद्यातो न्याय एव च ।

माया इमोर्ध्वं इत्येवो रैत्वंतो वर्तयतः ॥”

**वसुवायु**—शरीर में इस वायु<sup>१</sup> मानी गई है। ये सर्वाँ वायुएँ नाभिको के मध्य में संचरित होकर शरीर में शक्ति का संसार करती रहती हैं<sup>२</sup>। इसी वायुओं के नाम क्रमशः प्राण, अपान, समान, उदान, ध्यान, नास, कूर्म, कुम्भ, देवदत्त और धनञ्जय हैं। यह सर्वाँ वायुएँ इस नाभिको में संचरित होती हैं। इन दस वायुओं में हठयोग की दृष्टि से पाँच अधिक महत्त्वशाली हैं<sup>३</sup>। पाँच में भी दो सबसे अधिक प्रधान हैं। उनके नाम क्रमशः प्राण और अपान हैं। प्राण वायु का स्थान हृदय माना जाता है। ये अधिकतर मुख में, नाक में, नाभि में, ऊँठ देश और अँगूठे में स्थित मानी जाती हैं<sup>४</sup>। इस वायु की साधना जिसे प्राणायाम कहते हैं हठयोग का प्रधान अंग है। अपान वायु शरीर के निचले आधे भाग में रहती है<sup>५</sup>। उसका मुख्य स्थान गुद्ग प्रदेश में माना जाता है। इसके अतिरिक्त यह लिंग प्रदेश, उरुओ, पातुओ और पेट के निम्न भाग नाभि प्रदेश में रहती है।

**अनपाजाप**—प्राण और अपान वायुओं के संबंध में प्रसिद्ध है कि वे ऊपर नीचे स्थित रहती हैं और वे नाभि-स्थल में मिलती हैं। इसीलिए योगी लोग नाभि को केन्द्रस्थल मानते हैं। योगी प्राण के द्वारा अपान को आकृष्ट करके नाभि प्रदेश में दोनों को मिला देते हैं। इसी प्रकार अपान प्राण को आकृष्ट करती हैं। एक दूसरे को आकृष्ट करके योगी नाभि प्रदेश में एक दूसरे को मिला देते हैं। कहते हैं वे प्राण अपान के आकृष्ट और अनाकृष्ट करने की प्रक्रिया स्वयमेव करती रहती है। हंसमंत्र का उच्चारण अपने अपने अंग कसता रहता है। दिन-रात में इसीस हकार का ही बार इस मंत्र की आरुपि स्वयमेव रहती है। बीच अज्ञानपर इस मंत्र के महत्त्व को नहीं समझता। जब ठान से उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है तब वह इस स्वामा-यिक प्रक्रिया को मंत्र रूप में ग्रहण कर लेता है तभी इसका नाम अजपाजाप हो जाता

<sup>१</sup> हर्षनोपनिषद् ३।१७

“युने पाञ्चिपु सर्वाँसु चास्ति स्य वायवः।”

<sup>२</sup> अमृतमहोपनिषद् ३३वाँ श्लोक

ये उद्धरण ध्यान विन्यूपनिषद् में भी दिये हुए हैं। देखिये—श्लोक १६-२७

<sup>३</sup> यागमातंरह २३वाँ श्लोक

“इदि प्राणो कयी तित्थ अरायो गुण मरहजे।”

<sup>४</sup> हर्षनोपनिषद् १ २४, २२, २६ २७ इति

<sup>५</sup> त्रिशिष्य ब्रह्मसूत्रोपनिषद् का मंत्र भाग ७८वाँ श्लोक

हिन्दी की निर्गुण सम्प्रदाय और उठवीं शताब्दिक दृष्टिकोण

है। प्रायः अपना ताबना में अक्षयावाप का बहुत बड़ा महत्त्व है।<sup>१</sup> इस महत्त्व का संकेत करते हुए योगमार्तण्ड नामक ग्रंथ में लिखा है कि अक्षयानाम गायत्री योगियों के लिए मोक्ष प्रदान करनेवाली होती है। इसके संक्षयमात्र से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। इसके लक्षण विद्या, इसके लक्षण ब्रह्म, इसके लक्षण पुत्रवत्त होता है और न हो सकता है।<sup>२</sup> अक्षयावाप पर हम आगे भी प्रकाश डालेंगे।

नाड़ी विचार—नाड़ियों का संसार नाड़ियों के द्वारा होता है अतएव इनमें यहाँ पर थोड़ी सी चर्चा नाड़ियों की भी करनी है। कुंडलनी उत्थापन प्रक्रिया में जो हठयोग में अपना बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।<sup>३</sup> नाड़ी ताबना का बड़ा महत्त्व माना जाता है। योगियों की धारणा है कि पापु से दो अंगुल ऊपर और ठरस्व से दो अंगुल नीचे बद्धरंगुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूलस्वस्व पदी के अंश के लक्षण एकत्र विद्यमान है।<sup>४</sup> इसमें से गोरक्षराजक और हठयोग प्रदीपिका के अनुसार

१ योगमार्तण्ड—

मायेबाहुभ्रतेअपाकः प्रयोअपायेव कृण्वते ।  
 अक्षयावाः स्थितावेतौ यो अजाति च योगिनः ॥१०॥  
 अक्षरोय बह्विपति सक्षरेव विद्येत्युक्त्वा ।  
 ईशोर्हस्तेत्यमुं मन्त्रं बीजो जपति सर्वदा ॥११॥  
 अक्षयाव्य होरात्रं सक्षरात्वेवविद्यति ।  
 यत्तर्कनाम्नितं मंत्रं बीजो जपति सर्वदा ॥१२॥

२ योगमार्तण्ड—

अक्षयानाम गायत्री योगिणां मोक्षद्वयं च  
 अस्व संक्षयमात्रेण नराः पापी प्रयुज्यन्ते ॥१३॥  
 अमया सच्छी विद्या अमया सच्छो ब्रह्म ।  
 अमया सच्छी पुत्रवत्त न मृतो न प्रकियति ॥१४॥

३ देखिये शिव संहिता पृ० ३।३४

अर्धमेत्रात् अथो नामोः अक्षयोनिं वाग्वदन् ।  
 तत्रगद्ग्वं समुत्तम्याः प्रहाराणां त्रिपञ्चति च गोरक्षराजक २२वाँ श्लोक

और भी देखिये

पूर्वोपनिषत् पृ० ३।३, ४ और इनके स्वयं देखिये  
 पृ० ३।३ १८

त्रिपिचोपनिषत् में इस अक्ष की स्थिति नामि में मानी गई है। १८-२४

बहुर हरार, शिव संहिता के अनुसार साढ़े तीन साल<sup>१</sup> तथा कुछ अन्य योगाचारों के अनुसार दो साल माफियाँ निकलकर शरीर भर में व्याप्त है।<sup>२</sup> इनमें कुछ आचार बहुर<sup>३</sup> को, कुछ बीदह<sup>४</sup> को तथा कुछ इस को विशेष महत्त्वपूर्ण मानते हैं।<sup>५</sup> योग ग्रंथों में निम्नलिखित इस नादियों को विशेष महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है—ये इका, विंगला, सुपुन्ना, गांधारी, हस्ति बिम्हा, पूषा, बरहस्वनी, अलम्बुषा, कुडु और शक्तिनी हैं।<sup>६</sup> अन्य यौगिक ग्रंथों में भी इन्हीं का उल्लेख किया गया है। इन इस माफियों में भी सबसे अधिक महत्त्व तीन को दिया जाता है—इका, विंगला और सुपुन्ना।<sup>७</sup> कुडुलनी शक्ति के उत्पादन में ये तीनों नादियाँ बहुत सहायक होती हैं। यौगिकग्रंथों में ये अन्य बहुत से नामों से भी प्रसिद्ध हैं। कुछ ग्रंथों में इन तीनों को अमराः सूर्य, पन्न और अग्नि,<sup>८</sup> कुछ ग्रंथों में गंगा, जमुना और सरस्वती<sup>९</sup> कहा गया है। सुपुन्ना को ब्रह्म माफी भी कहते हैं।<sup>१०</sup> सती ने इसे 'ब्रह्म अग्नि' कहा है। यही शून्य पदवी ब्रह्मरंभ, महा पन्न, रमयान, राम्यनी, मन्मार्ग, शक्तिमार्ग आदि के अभिधानों से भी प्रसिद्ध है।<sup>११</sup>

<sup>१</sup> शिव संहिता १।१३

आर्षं ब्रह्मरूपं भाष्यः स्मृति देहात्तरे नृबाम् ।

<sup>२</sup> इति—गोरक्षनाथ और अलम्बुषा योगी पृ० ३०७—३०८

<sup>३</sup> गोरक्षशतक २१वीं श्लोक और देखिये—

शक्तिरूपोपनिषद् १।११

शर्योपनिषद् ४।५ ३

<sup>४</sup> शिव संहिता १।१३

<sup>५</sup> गोरक्षशतक २०वीं श्लोक

<sup>६</sup> गोरक्षशतक २०-२८

शिवसिंहान्त पद्धति १।१० में लिखा है प्रसिद्ध इस नादियों इस नासा के दो द्वार (इका, विंगला, सुपुन्ना) साल से मकरंभ तक सरस्वती मुख द्वार पूषा, अलम्बुषा, गांधारी के दोनों द्वारों से, गांधारी और हस्तिविम्हा ऊर्ध्व द्वारों से कुडु पुन द्वार से शंभुनी शिव अन्य नादियों रोम शृणों में बहती हैं।

<sup>७</sup> एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः विंगलेषा सुपुन्मिषा

<sup>८</sup> शिव संहिता १।१३

<sup>९</sup> इच्छोग प्रदीपिका ३।१०३ ११०

<sup>१०</sup> अष्टपदारशेखरिन्दू २१वीं अध्याय

<sup>११</sup> इच्छोग प्रदीपिका ३।३-४



ये मूलाधार से लेकर ब्रह्मार्पण तक फैली हुई हैं। शिव और शक्ति का मिलन करनेवाली नाकी बही है। योग प्रबंधों में इसका बड़ा महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। सुरिक्रोम निषद्<sup>१</sup> में लिखा है कि सुमुग्ना दश नाकियों से बिली रहती है। यह गुण्यजर्वा होती है। मास को इसी मार्ग से ऊपर उठाना चाहिए। दर्शनोपनिषद् में इसके अपिठठा शिव-की बतलाए गये हैं।<sup>२</sup> योगशिक्षोपनिषद् में सुमुग्ना की महती महिमा का बर्णन किया है। उसमें उसे सर्वभेद तीर्थ, सर्वभेद जप, सर्वभेद ध्यान तथा परम गति रूप कहा गया है।<sup>३</sup> अद्वैतारकोपनिषद् में अनुष्ठार सुमुग्ना के मध्य में अनेकों शक्ति के उद्योग प्रतिपादन योग प्रबंधों में बड़े समारोह के साथ किया गया है। ये सुमुग्ना महत्त्व का भी प्रतिपादन योग प्रबंधों में बड़े समारोह के साथ किया गया है। ये सुमुग्ना के बार्हो श्रोत्र<sup>४</sup> रहती हैं। ये उपर्युक्त बंद से निष्कलात्र के बार्हो मत्स्यायुक्त तक फैली हुई हैं।<sup>५</sup> दर्शनोपनिषद् के अनुष्ठार इका में सर्वत्र ब्रह्ममात्र का निवास रहता है।<sup>६</sup> पिण्ड नाकायुक्त तक माना जाता है। ये समस्त नाकियाँ इत्ययोग प्रदीपिका के अनुष्ठार में नहीं होती हैं, अतएव बोधी को इनके सहारे कुंडलानी उद्यापन के पहले मुद्रा 'आसन' प्रासावाम आदि विविध क्रियाओं का करना आवश्यक होता है।<sup>७</sup> एक वृत्ते स्थल पर इसी प्रबंध में कुंडलानी को प्रयुक्त करने के लिए मुद्रा अन्नास को बहुत आवश्यक बताया गया है।<sup>८</sup>

**मुद्राओं का महत्त्व**—मुद्राएँ अनेक बतलाई जाती हैं किन्तु विशेष प्रसिद्ध दस हैं। उनके नाम क्रमशः महासुद्रा, महाबेध, महाबध, उकीवान, मूलबंध, आसनबंध, विपरीतकरावी, बज्रोली शक्तिबासन है।<sup>९</sup> इनकी वाचना से वाचक को अत्यंत

- <sup>१</sup> सुरिक्रोमनिषद् देखिये श्लोक ८ और ९
- <sup>२</sup> योगशिक्षोपनिषद् ३।३२
- <sup>३</sup> ३।१७२ और भी देखिये ३।३५, ३६ ३०, ३८, ३९ ४०
- <sup>४</sup> सुरिक्रोमनिषद् १६वाँ श्लोक 'इका तिष्ठति नामेव'
- <sup>५</sup> शिक्षोपनिषद् ४०वाँ श्लोक
- <sup>६</sup> शिक्षोपनिषद् ३।१६
- <sup>७</sup> और भी देखिये
- <sup>८</sup> दर्शनोपनिषद् ३।३६
- <sup>९</sup> इका के सम्बन्ध में त्रिब स्यत्रों का बर्णन किया गया है जहाँ स्यत्रों पर पिण्डा का बर्णन भी देखा चाहिये।
- <sup>१०</sup> इत्ययोग प्रदीपिका १।२६
- <sup>११</sup> " " ३।२
- <sup>१२</sup> " " ३।२, ६, ७

विद्विर्वा प्राप्त होती है।<sup>१</sup> महामुद्रा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि योगी का श्वासादि की एकी से गुदा और भेद के मध्य में स्थित योगि का पीठित करना चाहिए। दाहिने पार का दोनों हाथों से बंधना चाहिए। नबी हाथों का रोक्कर ठोकी को हृदय पर स्थित करके पितृवृत्ति को स्थिर करके वायु का निरोध करना चाहिए।<sup>२</sup> महामुद्रा का परश्वात् महार्थप आता है योगी जब पैरों को फैलाकर दक्षिण परशु को बायें उर पर स्थित करता है और गुदा का आकुञ्चन करके अपान को ऊर्ध्वमुखी कर उदान वायु से संयोजित करके प्राणवायु की अपोमुखी करता है तब उस स्थिति को महार्थप कहते हैं।<sup>३</sup> इसके सम्प्राप्त से प्राणवायु सुमुक्ता के मध्य में स्थित हो जाता है। महार्थप<sup>४</sup> उस स्थिति को कहते हैं जब सायक अपान और प्राण को एक करके महार्थप की मुद्रा में स्थित होकर उदर का वायु से पूरा करता है और दोनों पार्श्वों को दबाता है। इस महार्थप की वाचना करने से अम्म-भरण शाश्वतीवासु सिद्ध हो जाती है। यह वायु शरीरम अरु में स्थित देवताओं का अन्तर्गत कर देती है। जिससे कुंडलनी ब्रह्म स्थान में लीन होने लगती है। उपर्युक्त महामुद्रा और महार्थप बिना महार्थप के निरूपण नहीं होते हैं।<sup>५</sup> खेचरी<sup>६</sup> मुद्रा हठयोग में बहुत प्रसिद्ध है। इस मुद्रा में सायक अन्नान या पद्मासन से बैठकर दोनों भ्रुवों के मध्य में दृष्टि को स्थिर करता है, तथा बिम्बा का उभरकर मुखा रूप स्वरूप तात्तु विवर से संयोजित करता है और सबक अमृत का पान करता है। इस प्रक्रिया का गर्भास मखस कहते हैं। बाल्यपर मुद्रा भी कम प्रसिद्ध नहीं है। इस मुद्रा में सायक गल शिखावाच को बाँधकर बिभुक्त को

<sup>१</sup> हठयोग प्रदीपिका पृ० ३१०

और भी इन्दिपे—शिव संहिता ३।२।३।३२

<sup>२</sup> शिव संहिता ३।२० स खेचर ३० तक।

इस मुद्रा का बंधन हठयोग प्रदीपिका में योत्ता मित्र रूप में किया गया है। इन्दिपे—  
हठयोग प्रदीपिका ३।१०-१४ तक

<sup>३</sup> शिव संहिता ३।३०-३२

हठयोग प्रदीपिका में भी है ३।१३-२२

<sup>४</sup> शिव संहिता ३।४३ ३०

<sup>५</sup> शिव संहिता ३।४२

<sup>६</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।४२

पद्मश्री/बादिता त्रिपदा, लोचनश्री/हितानुनि।

गार्ग्य महर्षि तत्त्व, मद्रापातक वाचनम् ३

त्रिपे ऊपर गर्भास बन गया है उसे अम्म बाधवी भी कहते हैं। इन्दिपे  
३।४६ हठयोग प्रदीपिका।

हृदय पर विपर करके चन्द्रमंडल से भवित होने वाले अमृत का पान करता है। इस अमृत का पान करनेवाला अमर हो जाता है।<sup>१</sup> विपरीतकरणी मुद्रा के स्वरूप के संज्ञक में हठयोगियों में बड़ा मतभेद है। शिव संहिता में विपरीतकरणी मुद्रा का वर्णन शीर्षासन के ढंग पर किया गया है। उठमें लिखा है कि साधक श्री इस मुद्रा की साधना के लिए सिर को मृत्ति पर स्थिर करके चरणों को आध्याय की ओर निरुत्थं लडा करना चाहिए। हठयोग प्रदीपिका में सूर्य को ऊर्ध्वमुखी और चंद्र की अधोमुखी करने की प्रक्रिया को विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है<sup>२</sup>। उद्योगान मुद्रा में उदर को पीछे से आर्ध्वस्थ करके नाभि के ऊपरी भाग में प्राकृतिक किया जाता है। इस मुद्रा के साधक की मृत्यु का मग नहीं पडता। हठयोग की बज्रोत्थी मुद्रा<sup>३</sup> शिवे योनि मुद्रा भी कहते हैं बहुत प्रसिद्ध है। यह मुद्रा बहुत कठिन है। इसमें योगी श्री श्री योनि में किंग बासकर उसके रज का आर्ध्वस्थ करता है फिर अपने किन्तु का निरोध करके किंग का पालन करता है। यदि किन्तु अधोमुखी होने लगता है तो वरुपूर्वक अपान वायु का प्राकृतिकन करके उच्छ्वस निरोध करता है। योगिक माया में किन्तु को शिव और रज को शक्ति माना जाता है। बज्रोत्थी के सदृश ही उद्योगी<sup>४</sup> और अमरोत्थी<sup>५</sup> आदि मुद्राएँ भी किन्तु धारणा से ही संबंधित हैं। लक्ष्य में हठयोग में मुद्राओं का बड़ी लक्ष्म वर्णित है।

पट्कर्म—मुद्राओं के प्रयोग में हम पट्कर्मों का उल्लेख भी कर सकते हैं। पट्कर्म की उच्च साधक को आवश्यकता पकती है कि उनके शरीर में भेद और श्लेष्मा अधिक होता है। इनकी साधना शिवे किना प्रात्यापाम और मुद्रा में कोई भी साधक समर्थ नहीं होता। इनको हम पट शोषन कारक पारम्भिक उपाय मानते हैं<sup>६</sup>। हठयोग

<sup>१</sup> शिव संहिता ३।६०-६३

<sup>२</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।७७, ७८, ७९

“अध्वजवक्त्रिं श्रेष्ठ महासिद्धैरथ धेवितान् ।  
सर्वेषां हठव्याध्यां साधनं योगिणो किन्तु ॥  
‘पश्चिच्छिद्यन्मते चंद्रावपुतं शिव्य कपिष्यः ।  
उत्कर्षं प्रसते सुर्षस्तेन निचयो बराबुता ॥  
गुह्यमेततो शोर्षं न तु साधारणं कीदृशितः ।  
अर्ध्यामेरुस्तोकोकर्मं मानुरथा शरी ॥  
अथो विपरीताख्या गुह्याक्येन कल्पते ॥”

<sup>३</sup> देखियु—हठयोग प्रदीपिका ३।८३।३१

<sup>४</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।३२

<sup>५</sup> अमरोत्थी के शिपु देखियु ३।३६ १०३ “हठयोग प्रदीपिका”

<sup>६</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।३६, ३।३१ २३

प्रदीपिका में छः पदकर्म बतलाए गये हैं। उनके नाम क्रमशः धौति, बस्ति, नीति, नीलि, क्वाल कर्म माति श्राटक हैं<sup>१</sup>। आगे चलकर गजचरणी नामक एक और कर्म का उल्लेख किया गया है<sup>२</sup>। इतथयोग प्रदीपिका में शौच कर्म का उल्लेख करते हुए लिखा है कि पार अंगुल चौड़े और पंद्रह हाथ लम्बे महीन बरत को गर्म जल में भिगाकर घोड़ा निषोड सेना चाहिए फिर सुयोग गुण के निर्देशन में धीरे-धीरे एक-एक हाथ प्रतिदिन करने को निगलने का प्रयत्न करना चाहिए। आठ-दश दिन में एक हाथ धोती को छोड़कर शेष धोती को निगलने का प्रयत्न करना चाहिए मही शौच कर्म है।<sup>३</sup> बस्ति को श्राक करना बस्तिकर्म कहलाता है।<sup>४</sup> यह दो प्रकार का होता है<sup>५</sup>—पवन बस्ति और बलबस्ति। नीलिकर्म द्वारा अपान वायु को ऊपर लीच पुनः मूत्र आसन से त्यागने को बस्तिकर्म कहते हैं। पवन बस्ति पूरी सब जाने पर बल बस्ति की क्रिया शक्य हो जाती है। इतथयोग प्रदीपिका में लिखा है कि गुदा के मध्य में छः अंगुल लम्बी नली को रखना चाहिए। उसके छिद्र कनिष्ठिका की उँगली के बराबर हो। उसे पार अंगुल अंदर प्रविष्ट करे और दो अंगुल बाहर रखे। उक्त आसन से बल मरे टब में बैठकर आचार कृपण करे मिससे बड़ी अंत में अपने आप बल बढ़ने लगेगा। फिर इत बल को बाहर निकाल दे। इधी को बस्तिकर्म कहते हैं।<sup>६</sup> नीति की भाषा नेति कहलाती है। ये दो प्रकार की होती है—बल नेति और श्रु नेति। इसमें माक में बल का सूत्र भर के उम्मुक्त किया जाता है।<sup>७</sup> नेति के बाद नीलि किया करनी चाहिए। नीलिकर्म को स्पष्ट करते हुए उही ग्रंथ में लिखा है कि योगी जब कंधों को मुझकर बल अमर के लक्ष्य अपनी तुंड को दाहनी और बाईं ओर पुनःता है तब उसे नीलिकर्म कहते हैं।<sup>८</sup> पाँचवीं क्रिया क्वाल माति है। इसमें रेचक प्राणायाम का विधान रहता है। इतथे काम, होय मष्ट हो जाता है। पदकर्मों की अंतिम क्रिया श्राटक के नाम से प्रसिद्ध है। इतथयोग प्रदीपिका के अनुसार एकप्र-

<sup>१</sup> इतथयोग प्रदीपिका १।१२

“धौतिर्बस्तिस्तथा बति श्राटक नीलिकं तथा।

क्वालमातिरचैतानि पद क्माणि प्रचरयेत्॥”

<sup>२</sup> इतथयोग प्रदीपिका १।३८

<sup>३</sup> इतथयोग प्रदीपिका १।२३-२८

<sup>४</sup> " " १।२६

<sup>५</sup> " " १।२०-२८

<sup>६</sup> " " १।२१

<sup>७</sup> " " १।२२

<sup>८</sup> " " १।२३

विषय हुआ मनुष्य जब निश्चल इच्छा से किसी वस्तु लक्षण को उस वस्तु देखता रहता है। जब तक उसके अन्तर्मुख में ही आ जाते तक उस वस्तु को आटक कहते हैं।<sup>१</sup> कुछ योगी गणकरीणी क्रिया भी करते हैं। गणकरीणी क्रिया में ठीकी तरह से बस अंदर सींच कर बाहर निश्चल दिया जाता है बिल प्रथम से हाथी अपनी सूँठ से करता है।<sup>२</sup>

**कुम्भसूतनी उत्थापन प्रक्रिया**—अब हम कुम्भसूतनी उत्थापन प्रक्रिया पर विचार करेंगे। नारायणोत्थापन में यह प्रक्रिया बहुत महत्वका मानी गई है। कुम्भसूतनी उत्थापन बहुत प्राचीन है। कुम्भसूतनी के वर्णन यजुर्वेद<sup>३</sup> तक में मिलते हैं। यज्ञों के रहस्य को समझने की विज्ञाता की अभिप्रेत श्रुतियों<sup>४</sup> तक में मिलती है। बौद्धिक ज्ञानों में इसके अनेक वर्णन मिलते हैं। अद्वैततारकोपनिषद्<sup>५</sup> में कुम्भसूतनी को कोटि तन्त्रि सटल स्थिति मति और मृशाल उत्थापन सूत्र कहा गया है। त्रिशित्तमस्योपनिषद्<sup>६</sup> में लिखा है कि मनुष्य की देह सैक कर स्थान है वहाँ से समस्त जातियाँ निकलती हैं। कुम्भसूतनी जली के उर्ध्व में स्थित रहती है और वे अद्वैत अर्थात् सुमुक्ता के मुख को अपने मुख से आभिप्रेत रहती है। हठयोग में यह कुम्भसूतनी, सुबहनी, ईश्वरी, कुम्भसूतनी, अक्षयती और वासुदेवा नाम से भी प्रसिद्ध है<sup>७</sup>। हठयोगी इस कुम्भसूतनी का उत्थापन करता हुआ पद्यों को अर्पण करता है। विविध प्रकार की वायुओं के केन्द्र स्थानों को पकड़ते हैं। इनका हम शैवशास्त्रियों के मतों में विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। वहाँ पर केवल बोझी-सी चर्चा भर करेंगे।

**वायुओं का वर्णन**—विविध प्रकार की वायुओं के केन्द्र स्थानों को पकड़ते हैं। कुम्भसूतनी इन वायुओं का अर्पण करती हुई सहस्रत में पहुँचती है। ये पकड़ शक्ति का स्थान माने जाते हैं। वायुओं की संख्या के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है। हठयोग में अविष्टार पद्यों का वर्णन ही किया गया है। हिन्दू संत-मंत्रों में गणकरीणी अनेक वायुओं की कल्पना की गई है। बौद्धिकों में केवल चार वायुओं का ही उल्लेख किया गया है। पहले हम पद्यों के स्वरूप पर ही प्रकाश डालेंगे। उनके नाम क्रमशः मूलाधार, आभिप्रेत, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आकाश हैं। प्रथम पाँच क्रमशः चित्ति, बस, अग्नि, वायु, गगन के केन्द्रस्थान माने जाते हैं। अद्वैत में परम स्थिति का स्थान माना जाता है।

<sup>१</sup> हठयोग प्रदीपिका २।१२

<sup>२</sup> २।१८

<sup>३</sup> वेदिक कल्पशास्त्र का योगांक पृ० १८८

<sup>४</sup> अग्नेह पृ० ३।१३।३

<sup>५</sup> अद्वैत तारकोपनिषद् पौर्वाणो गद्य भाग ।

<sup>६</sup> त्रिशित्तमस्योपनिषद् मंत्र भाग—श्लोक १२।११, १२, १३

<sup>७</sup> हठयोग प्रदीपिका पृ० ३।३०२

**मूनाधार चक्र**—ये चक्र आहार, गुदाय, गुदास्थान, भ्रूमण्डल, मूलचक्र आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इसकी स्थिति गुदा के ऊपर लिङ्गमूल के नीचे, मूना के मुल से संलग्न बतलायी जाती है<sup>१</sup>। इसके मध्य में पीले रंग का चतुष्कोण है, घाट पूर्वी तट्ट के प्रतीक शूलों से आच्छादित है<sup>२</sup>। इन शूलों के ऊपरी भाग शिवों के स्तनों के ऊपरी भाग के लक्षण होते हैं। इस चतुष्कोण के मध्य में एक लाल त्रिकोण रहता है। इसे योनि का प्रतीक करते हैं। इसका नाम कामरूप है<sup>३</sup>। उसे अग्नि का स्थान भी मानते हैं। इसमें कन्दर्प नामक वायु रहता है।<sup>४</sup> योनि के मध्य में स्वयम्भुक्तिग है जो प्रकाश कर है। इस लिङ्ग को कुंडलनी छोड़े तीन बल्लवों से आच्छादित किया हुआ है। कुंडलनी का मुल ऊपर की तरफ रहता है। यही परजस द्वार है।<sup>५</sup> इस द्वार द्वार से ही वह अमृत का पान करती है। वही से नाद का जन्म होता है। वहाँ पर पोकरी के रूप में इसका स्थान अपना बतलाया गया है। इस चक्र के चार दश बतलाये गये हैं। इन दशों के बीजाक्षर व, प, य, हैं। इसके देवता गणेश हैं और अधिष्ठात्री देवी वाकिनी है।

**स्वाधिष्ठान चक्र**<sup>६</sup>—इसको बल मंडल, मेदूधार और गरुडपीठ भी कहते हैं। इसकी स्थिति लिङ्गमूल में बतलाई जाती है। इसका वर्षा साल माना गया है। इसमें छः दश होते हैं उनके बीजाक्षर क्रमशः वम्, मम्, मम्, यम्, रम्, लम् हैं। इसके मध्य में एक अर्धचन्द्र माना गया है। इस अर्धचन्द्र के मध्य में बन्ध का चक्र स्थान है। कुछ लोग कहते हैं कि इस अर्धचन्द्र की प्रत्येक दिशा में एक अक्षर बतलाया गया है। व इसका बीजमंत्र माना जाता है। कुछ लोगो ने विष्णु को इसका देवता माना है और कुछ ने ब्रह्म को। इसी प्रश्न कुछ आचार्य इसकी अधि-

<sup>१</sup> पद्मसहितस्यम् ४ स्तोत्र

<sup>२</sup> यदी २०० स्तोत्र

<sup>३</sup> यदी २०० स्तोत्र

<sup>४</sup> यदी २०० स्तोत्र

<sup>५</sup> यदी १०० स्तोत्र

मूनाधार चक्र का वर्णन देखिए—योगशिखासहितम् १८८१०१

<sup>६</sup> स्वाधिष्ठान चक्र का वर्णन निम्नलिखित पर आधारित है—

१—पद्मसहितस्यम् २११६, १७, १८ २०

२—शिव संहिता २१८८ १०८

३—व्याससहितस्यम् ४८, ४९

४—योगशिखासहितम् १११०२

प्राची देवी शाकिनी को मानते हैं और कुछ शक्ति को। इस षष्ठ में स्थित स्वर्ण में प्रायः प्रतिष्ठित रहता है। मूलाधार और स्वाधिष्ठान के बीच में योग स्थान की कल्पना की गई है। वहाँ शिव और शक्ति का निवासस्थान माना जाता है। कुछ लोग इसे यस्क पीठ भी कहते हैं।

**मणिपूरक षष्ठ**<sup>१</sup>—इसको तामिस्थान, रविस्थान और सूर्यस्थान भी कहते हैं। ये तामि प्रदेश में रहता है इसमें दस दस हाते हैं किन्तु संकेताक्षर अक्षर अ, व, ख, ल, ध, द, प, न, ब, क हैं। इस षष्ठ को धर्मि और सूर्य का स्थान मानते हैं। समान वायु का केन्द्र भी नहीं है। इसका बीजमंत्र रं है। यह रं एक सात त्रिकोण में जो तीन ओर से स्वस्तिका किन्हीं से आच्छादित रहता है इसको रबरस्थान भी मानते हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि तद्विस्तार में स्थित अक्षर से भङ्गनेवाले अक्षर को इसी षष्ठ में स्थित सूर्य मन्त्र का देता है। इसके अधिष्ठिता महाशक्ति माने जाते हैं। शिवसंहिता में शिष्टु को इसका अधिष्ठिता माना गया है। इसकी अधिष्ठिता शाकिनी देवी है। यह षष्ठ सिद्ध माने गए हैं। जो इस मणिपूरक षष्ठ का ज्ञान करते हैं उन्हें पञ्चास विभिन्न मास हा जाती है।

**अनाहत षष्ठ**<sup>२</sup>—यह षष्ठ हृदय प्रदेश में रहता है। इसमें बाह्य दस श्रेणियाँ हैं। उनके संकेताक्षर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, मने गये हैं। इस षष्ठ का नाम अम्बिका का वायव्य स्थित होता है। जो दो मन्त्रों के संपर्ण के बिना ही उत्पन्न होता है। यह प्रायः अम्बिका बीजमन्त्र का निवासस्थान कहा गया है। यह वायु तत्व का प्रतीक माना जाता है। इसका रंग सात कदलाया गया है। इसके सिद्ध

<sup>१</sup> मणिपूरक षष्ठ का विवरण निम्नलिखित विवरणों पर आधारित है—

१—अक्षरक निरूपण—अक्षरक तृतीय श्लोक ११-२१

२—शिवसंहिता २।१०७, १०८, १०९, १०७, १०८

३—आध्यात्मिकविज्ञान ३०।३८५।३८।श्लोक

४—योगशिखोपनिषद् १।१०९

५—योगसूत्रसुपनिषद् ३।१८

<sup>२</sup> निम्नलिखित ग्रंथ देखिए—

१—अक्षरकनिका ३।२२, २३, २४, २५, २६, २७

२—शिवसंहिता २।१०३ ११२

३—योगसूत्रसुपनिषद् १।१८-७०

४—" ३।११

५—योगशिखोपनिषद् १।१०३

६—" २।१८

निापी हैं और अपिष्ठापी देवी काकिनी हैं। इसका प्यान करनेवाला साधक विघ्नल  
रहा हो जाता है और स्वेच्छा से आश्रय में गमन करने लगता है।

**विशुद्ध चक्र**—इसकी रीति कंठस्थान में मानी जाती है। यह स्वर्ग के  
साथ संबंधमान होता है। इसमें सोलह संकेताक्षर युक्त वक्त्र होते हैं। उनके संकेता-  
क्षर क्रमशः इस प्रकार हैं—आ, ई, ई, उं, ऊं, ए, अ, ए, लृ, ए, ऐ, ओ, औ,  
अं। इतनीग महीविष्णु<sup>१</sup> में इसको लोकपाधाररूप कहा गया है। अर्थात् यह एक शरीरस्थ  
लोक्य आधारे को बधि हुए है। ये लोक्य आधारे<sup>२</sup> क्रमशः अंगुष्ठ, गुह्य, बाहु, उरु,  
शिवनी, शिग, नाभि, हृद, शीरा, कंठ, देह, शक्ति, बाधि, भूमध्य, ललाट, मूर्धा  
और अक्षर<sup>३</sup> हैं। कुछ दूसरे आधारों ने इन लोक्याधारों के नाम इस प्रकार दिये हैं—  
पदांगुष्ठाधार, मूलाधार, गुदाधार, मोधार, उड़ीयानाधार, नाम्माधार, हृदयाधार,  
कंठाधार, पांडिनाधार, तन्त्राधार, जोड़मूलाधार, नामाग्राधार, भूम्या  
धार, ललाटाधार और अक्षरग्राधार<sup>४</sup>। इस चक्र का प्यान करनेवाला योगी धारों से हों  
अ जाता हो जाता है। इसका भीकर्म<sup>५</sup> माना गया है। इसकी अपिष्ठापी देवी काकिनी  
है। यह उदान वायु का रयान माना जाता है। आश्रय इसका तन्त्र है। इसमें सिद्ध  
निहित रहता है। इस चक्र को कुछ दूसरे याग धर्मों में कंठादेश कन्तरयान, चालंधर  
पीठ, माखीरयान, नमोमंजरी आदि नाम भी दिये गये हैं।

**आज्ञा चक्र**—इसको उड़ीयान और ज्ञान चक्र भी कहते हैं। यह भूमध्य  
भाग में स्थित है। इसमें दो वक्त्र होते हैं। उनके संकेताक्षर हैं और धं हैं। यह चक्र  
बुद्धि, अर्हत्कार, मन तथा इन्द्रियों के सूक्ष्मरूप का कन्तरयान माना जाता है। इस स्थल  
पर परम शिव का निवासस्थान माना गया है। काकिनी इसकी अपिष्ठापी देवी है।  
महाशक्त इसका शिख, परमात्मना इसका देवता हैं। इस अज्ञाचक्र के मध्य में शत्रु चक्र के

<sup>१</sup> इस चक्र का बर्णन विष्णुसिद्धि स्वर्गो परे देखिये—

१—२२ अक्षरविष्णुय २।२८३१

२—शिवसिद्धि २।१११ १२१

<sup>३</sup> इतनीगमहीविष्णु ३।०३

<sup>४</sup> " " की टीका देखिये

<sup>५</sup> मोरचण्डिक के पूजा अष्टावक्र की संस्कृत टीका देखिये।

<sup>६</sup> इन लोक्याधारों का बचन बलिचिह्न हेरान्देर के शाब 'सिद्ध सिद्धांत परबति' में किया  
गया है। २।१०-२६

<sup>७</sup> इस चक्र का विवरण देखिये—

१ चक्रविष्णुय—२।२१ २८

२ शिवसिद्धि—२।१२२।२३।१४६



वदय परम श्योतिरुक्त चंद्रबीज ठ है। इसी स्थल पर दहा और सिंगला मिलती है। किन्तु पारिभाषिक मन्त्र में बन्ध और असी कहते हैं। बन्ध और असी का मिलन किन्तु होमे के अन्त्य अर्धे वायव्यी कहा जाता है। यह विद्वानायत्री का स्थाप माना गया है। कुछ योगियों के अनुसार इस कर्मल के ऊपर पीठप्रय की स्थिति है। उनके नाम कर्मलः नाद किन्तु और शक्ति हैं। आवापत्र के आगे छहस्र कर्मल है।

छहस्र कर्मल<sup>१</sup>—शिव उद्विता के अनुसार यह कर्मल सुनुना के ऊपरी मन्त्र में वाह मूल में स्थित है। इसमें बीस विवर हैं। एक एक विवर में पचास पचास मास्किर्य हैं। ये ही सब मिलकर एक छहस्र हो जाती हैं। इसीलिए इसे छहस्र कहते हैं। योगी लोग इसे अशोभनी कहते हैं।<sup>२</sup> योगी ग्रंथों में इस छहस्र कर्मल का वस्तु वर्णन किया गया है। पादुकापत्रक नामक ग्रंथ में लिखा है कि अशोभनी छहस्र के नीचे ऊर्ध्वमुखी द्वादश दल है। इ एव च इस पत्र के दो दल हैं। इन दलों की एक आशुतिर्या मिलती है। इसीलिए इसको द्वादश दल कर्मल कहते हैं। कुंजली विवर कर्मल संक्षिप्त छहस्र कर्मल में शिव विद्यमान हैं। उन शिव एक बाने के शिप चित्रों की मात्री द्वारा अलंकरण एक मार्गस्य छिद्र है। छहस्र दल कर्मल और द्वादश दल कर्मल वहाँ पर मिलते हैं वहाँ एक त्रिकोण है उसमें ह, ल, घ बर्णों से आच्छाद शक्ति विद्यमान है। इस त्रिकोण के बान के बिना छहस्र में ध्यान स्थिर नहीं होता। इस त्रिकोण के त्रिभिन्नु जघा, विष्णु और शिव हैं। और त्रिकोण सव, रज और तम रूप है। इस त्रिकोण के मन्त्र में नीचे शुभ्र नाद है और ऊपर रक्त बर्ण किन्तु है। शीप में मक्षिपीठ है। त्रिकोण के मन्त्र में अक्षरित नाद किन्तु स्थित इस मक्षिपीठ का ध्यान किया जाना चाहिये। नाद किन्तु समन्वित नहीं पर कैलाश माना जाता है। इसी के कंद देश में स्थित त्रिकोण में कुछ योगियों के अनुसार सुनुना का मूल है जिसे जस विवर कहते हैं। इसी को दशक द्वारा कहा गया है। जिसे हमने ऊपर किन्तु कहा है उसे कुछ लोग शट्टप मी कहते हैं। वही परंजघा का निवासस्थान है। इस कर्मल में ही अन्त तत्त्व की स्थिति बतलाई जाती है। जिससे अमृत भङ्गा किया है। शिव उद्विता

<sup>१</sup> इत्यादि विवरण देखिये—

<sup>२</sup> बद्रूपक विरहमन्त्र—४४० प्रकरणा

१ शिवसंहिता १०१६०, १८०  
 २ यह कर्मल आर्षेय एकेकन द्वारा लिखित 'दि शर्वेश्वर नाक पावर्' नामक ग्रंथ में संश्लेषित है। पादुकापत्रक पर आधारित है।  
 ३ आर्षेय एकेकन द्वारा सम्पादित लिखित 'शर्वेश्वर पावर्' के मन्त्र में संश्लेषित पादुकापत्रक ५० १२६ पर टीका में दिया हुआ बा० विद्यालय का बद्धरूप १

के अनुसार यह समूह इस नाडी से प्राप्त करता है। इसी काल में शिव शक्ति का मिलन होता है और वही पहुँचकर तापत्र को उन्नीसवीं अवस्था की प्राप्ति होती है।

इन चन्द्रों के अतिरिक्त योग और तंत्र ग्रंथों में और भी कई चन्द्रों का उल्लेख किया गया है। इन चन्द्रों में अष्टदश कमल का उल्लेख कर देना आवश्यक है, क्योंकि संतो ने अष्टदश कमल का ही बहुत अधिक बर्णन किया है। इस अष्टदश कमल का बर्णन हमें म्यान किन्तु उन्नीसवें में मिलता है। उसमें लिखा है कि हृदय स्थान में अष्टदश कमल खड़ा है। उन्नीस हृदय कमल के बीच में रेखा बलय बनाती हुई ज्योतिस्वरूप अणुमात्र आत्मा रहती है। यह आत्मा उस कमल के भिन्न-भिन्न मार्गों में प्रसृत होती हुई विभिन्न प्रवृत्तियों और अवस्थाओं को प्राप्त होती है। प्राण और अज्ञान का योग करते इस जीवतमा की तापना की जाती है। प्राण और अज्ञान का यह योग मन और बुद्धि से किया जाना चाहिए। संदेह में यही अष्ट कमल दस तापना है। वायु बुद्धि मन के अतिरिक्त कुंडलिनी के द्वारा भी अष्टदश कमल की तापना करने का विधान मिलता है।<sup>१</sup>

तंत्र ग्रंथों में और भी कई चन्द्रों का बर्णन मिलता है। आठवाँ चक्र के उन्नीस एक मन-चक्र की कल्पना की गई है। उसमें सोलह दस कथलाएँ पाते हैं। आठवाँ चक्र के उन्नीस ही अक्षर शरीर से संबंधित साठ श्रेण हैं। इनके नाम अमृत, इन्द्र, वायु, मार, अर्धचन्द्रिका, महानाद, कला और उन्नीस हैं। पहले हैं उन्नीस और में पहुँचकर और की पुनर्प्राप्ति नहीं होती। बहुत से तंत्र और इतहास के ग्रंथों में भी चन्द्रों का बर्णन किया गया है किन्तु उनके नामों के संबंध में संशय है। किन्तु सिद्धांत परवृत्ति में किन नौ चन्द्रों का उल्लेख किया गया है उनमें परचक्र का मूलाक्षर स्वपिच्छन आदि हैं। उक्त सिद्धांत में तीन चन्द्रों का नाम और जोड़ दिया गया है। उनके नाम अमृत, वायुचक्र, निर्वाण चक्र और आध्यात्म चक्र हैं। कुछ प्रवृत्तियों में इन चन्द्रों के नियंत्रणिका मनाकर और अष्ट चक्र अभिधान प्रयुक्त किये गये हैं।

किन्तु सिद्धांत परवृत्ति में नौ चन्द्रों के पात्र मन और विचारण दिये गये हैं उनका रक्षणीकरण कर देना आवश्यक है क्योंकि उक्त साठ इन अवस्था से प्रभावित प्रवृत्ति होते हैं। इस ग्रंथ के अनुसार प्रथम चक्र का नाम अमृत है उन्नीस विचारण आध्यात्म में मानी जाती है। इस चक्र के साथ ही उन्नीस ज्ञानरूप पीठ की स्थिति आकाश मानी है। इस चक्र में तापत्र का तापत्राक्षर प्राप्त करना चाहिए।<sup>२</sup> दूसरा चक्र इस ग्रंथ के अनुसार

<sup>१</sup> किन्तु—आत्मकिन्तुवदिरद—एत नाम ३३१ मे ११ लक्ष

<sup>२</sup> निरवे नव चन्द्राणि आध्यात्मिक प्रवृत्तयः त्रिभारवर्ग मगानवदशाक्षरं तत्र मूलचक्रस्य तत्र स्थितिं तापत्राक्षरं व्याप्य तत्रैव आत्मरूपं पीठं प्रवृत्तयाम् सति ३३३

स्थापित्यन है। इस पत्र में एक परिचयानुक्त प्रबालाङ्कुर के उदय काज और स्थापित्यन लिग है। बोली को इस पत्र में इही लिग का ध्यान करना चाहिए। इस पत्र के समीप ही उदरानिबान पीठ माना गया है।<sup>१</sup> तीसरा पत्र नामि पत्र स्वप्नावा गया है। इसमें मत्प्राप्तिकि का ध्यान करने का उपदेश दिया गया है। यह मत्प्राप्तिकि कुंडली शक्ति के उदय ही होती है। इसमें करोड़ों दुर्गों के उदय शक्ति होती है। दुर्ग के उदय कल्प बनाकर यह कुंडलाक्षर में स्थित रहती है।<sup>२</sup> चौथा पत्र इदम कर्म कलावा गया है। ये इच्छे अचोमुली मानते हैं। इसमें आठ दस कलाएँ गये हैं। इसकी अक्षिका में लिगाक्षर शक्ति का ध्यान करने का उपदेश दिया गया है। इसे इस कला कहा गया है।<sup>३</sup> पाँचवाँ पत्र कंट पत्र है। यह चार अंगुल का है। इसकी बाईं ओर इका और दाहिनी ओर सिंगला किन्हे कमला अत्र और दुर्ग नाडी कहते हैं स्थित हैं। इसके मध्य में सुमुत्ता का ध्यान करने का उपदेश दिया गया है और उत्तरी अनाहत कला का विधान दिया गया है। इसमें ध्यान करने से अनाहत सिद्धि की प्राप्ति होती है।<sup>४</sup> छठा पत्र तातु पत्र कहा जाता है। वहाँ पर अमृत प्रकाशित रहता है। यहाँ पर शक्ति की नाडी का विचार है इसे इरमद्वार कहा जाता है। वहाँ पर शून्य का ध्यान करने से विचक्षण बड़ी सरलता से हो जाता है।<sup>५</sup> मूक नाम का उत्तरवाँ पत्र है। यह मन्मार्गुत्तम होता है। बीजलिखा के अक्षर के उदय इस अन रूप का ध्यान करना चाहिए इससे वाणी सिद्ध होती है।<sup>६</sup> आठवाँ अक्षर निर्वच पत्र है। यह शक्ति के अग्रभाग के उदय लक्षण है। इसी के समीप बालाक्षर पीठ है। धूम्राक्षर रूप में इसका ध्यान करना चाहिए।<sup>७</sup> नवम पत्र आक्षर पत्र के

<sup>१</sup> त्रितीय स्थापित्यनपत्र तन्मध्ये दक्षिणतमिदुर्गं विना प्रबालाङ्कुर उदयं ज्ञापेत्।  
उत्तरीवोदयानपीठं जगदाकारं भवति ॥२॥

<sup>२</sup> तृतीयं नामिपत्र प्रचारवत् सर्वकल्पकाक्षरं तन्मध्ये कुंडलीनी शक्ति वाक्यात्  
श्रेष्ठिवाहरी ज्ञापेत् वा मन्वास्तयिवाः सर्वं सिद्धता भवति ॥३॥

<sup>३</sup> चतुर्थे इदवाधारात्मकं कर्म अचोमुलं तन्मध्ये अक्षिकायां लिगाक्षरां  
शक्तिर्ज्ञापेत् सर्वे इंसद्वासा सर्वेन्द्रियक्षया भवति ॥४॥

<sup>४</sup> पंचमं कल्पककण्डुल तत्र वामे इका अत्र नाडी दक्षिणे सिंगला दुर्गबद्धौ  
तन्मध्ये सुमुत्ता ध्यायेत् दीवानाहवक्त्रा अनाहतसिद्धि भवति ॥५॥

<sup>५</sup> षष्ठं तातु पत्रं तत्रासुतभाराववाहः शक्तिशक्ति मूलरत्नं राजरत्नं शक्तिनी विचरं  
इरमद्वारं तत्र शून्यं ध्यायेत् विचक्षणो भवति ॥६॥

<sup>६</sup> अष्टमं मूकं मन्मार्गुत्तमार्थं ज्ञानवर्धनं शीपशिखाक्षरं ध्यायेत् वाचां सिद्धिर्भवति ॥७॥

<sup>७</sup> नवमं अक्षरप्रविर्वाचकं सूचिप्रयत्नेन धूम्राक्षरं ध्यायेत् तत्र बालाक्षर पीठं  
मोक्षार्थं भवति ॥८॥

नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सोलह दल होते हैं। इसका मुख ऊपर की ओर होता है। इसकी चर्चिष्ठा में त्रिकुटाकार की ऊर्ध्व शक्ति होती है। उसको परम शून्य कहते हैं। उसी के समीप पूर्वोत्तिरीय नाम का स्थान है। परम शून्याशक्ति का ध्यान करने से समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।<sup>१</sup> तंत्र ग्रंथों में दिये गये नौ चक्रों के नाम और स्थान इनसे मिले हैं। कुछ तंत्रों में प्रसिद्ध षट्चक्रों के अतिरिक्त आठवाँ चक्र के समीप मनः चक्र की कल्पना की गई है। उसमें सोलह चक्र बताए जाते हैं। आठवाँ चक्र के समीप ही अरब शरीर से संबंधित सात कार्य कथित किये गये हैं। बिनके नाम क्रमशः इन्द्र, बोधिनी, नाद, अर्धचन्द्रिका, महानाद, कला और उन्मनी है।<sup>२</sup> कहते हैं इत उन्मनी कोय में पहुँचकर पुनर्जाति नहीं होती। कुछ यागियों ने आठवाँ चक्र से अक्षर तक के बीच में किंकर गोक्षत्राद, और पीठ और प्रसर गुच्छ नाम के अन्य पाँच चक्रों की कल्पना की है।<sup>३</sup> शक्ति सम्प्रदाय तंत्र में बिन मी चक्र का वर्णन किया गया है वे विस्तृत मिले हैं। अधिक मान्य न होने के कारण यहाँ पर उनका विवरण नहीं दे रहे हैं।

बीज तंत्रों में केवल चार चक्रों को ही मान्यता दी गई है, उनके नाम क्रमशः मणिपूर, अनाहव, विशुद्ध और उष्णीश हैं। तीन नाम तो हिन्दू योगशास्त्र के ही हैं। उष्णीश नामक नाम अक्षरय नवा है। उष्णीश को हम उद्धार का ही नामांतर मानते हैं। इन चक्रों का संबंध बायों से स्थित किया गया है। प्रथम तीन क्रमशः निर्मासकार, समासकार और समक्षय से अभिष्ठित हैं। चौथी चापा सहस्रक्षय है। उसकी प्रतिष्ठा उष्णीश कमल में मानी जाती है। उस कमल को महामुक्त कल्प भी कहते हैं। उद्देय में हृत्पात्र का प्रमुख प्रतिपाद्य नहीं है। इन समस्त प्रक्रियाओं के वर्णन बड़े विस्तार से किये गये हैं। प्रत्येक साधक ने उसमें अपनी अपनी साधना अनिव नवीन प्रक्रियाओं का भी उल्लेख किया है जिससे यह निष्पन्न बहुत कठिन हो गया है। सन्तों ने इस विषय की अज्ञातवा अज्ञानी जानियों में पूरा कठिणता के साथ की है। यहाँ पर उन समस्त कठिणताओं का उल्लेख करना बड़ा कठिन है, फिर भी हम उसका अध्यात्मिक निदर्शन कर रहे हैं।

सन्तों की योग साधना—सन्त लोग ज्ञानी और मस्त ही नहीं उन्म

<sup>१</sup> नामाकाराच्छ पाठ्याच्छ कमल मूर्ध्वमुखं तन्मये चर्चिष्ठीयां त्रिकुटाकारं तदूर्ध्वशक्तिं तां परम शून्यां व्यापेर तत्रैव पूर्वोत्तिरीयं सर्वोत्पादिक्रियवति ॥१॥

<sup>२</sup> कल्पनाय का योगांक पृ० ११८

<sup>३</sup> यही पृ० १११

<sup>४</sup> यही पृ० १११

कोटि के योगी भी थे। योग के प्राच्यमृत सिद्धान्त 'पितृ संवित्' में वे पूरी आत्मा रखते हैं। उच्च कबीर ने 'बो पिहरे सो ब्रह्मायके जान' लिखकर इसी सिद्धान्त की स्वीकृति की थी। अन्य संतों ने भी इस सिद्धान्त की अभिव्यक्ति काया साधन और ध्यानात्मक रूपों से कर दी है। उच्च वायू ने अपारिणितिक अभिधान से उच्चतम सिद्धान्त का संकेत किया है।<sup>१</sup> वायू ने काया साधन उच्चतर पंक्तियों में रखी है, कबीर ने वायू पंक्तियों में रख दी है—

काया मये कोटि तीरथ काया मये कामी ।

काया मये कंठसा पति काया मय बैकुण्ठवासी ॥ (पृ० १४४)

उन्तों में हमें वायु साधना के विभिन्न स्वरूप मिलते हैं। उच्च कबीर ने सबसे प्रथम पाँच वायुओं को खोजने का उपदेश दिया है।<sup>२</sup> उच्च सुन्दरदास ने दसों वायुओं और उनके स्थानों का शास्त्रीय निरूपण किया है। किन्तु अधिष्ठित उन्तों में हमें इसके पल्लव-फिरते बरतन भी मिलते हैं। प्रमुख उन्तों का कुछ उदाहरण दे देना आवश्यक न होगा। उच्च गुस्ताक साहब ने लिखा है—कि बोली को बाहिए उर्पवन को लेकर ब्रह्मरंज में स्थित करे।<sup>३</sup> उच्च कबीर ने<sup>४</sup> भी कई स्थानों पर पवन को उच्चतर पदचक्र में स्थित की बात कही है। इसी प्रकार उच्च गुस्ताक साहब ने भी एक स्थल पर पवन को बाँधकर गगन की याचना करने का उपदेश दिया है।<sup>५</sup>

गारी साहब ने प्रायः अगान पाग का उपदेश करते हुए लिखा है कि बो बोली प्राय और अगान का योग स्थापित कर लेता है वही शम्भू भक्त की साधना कर पाता है।<sup>६</sup> संतों ने बहुत से स्थानों पर प्राय अगान साधना का संकेत, बहुत से स्थानों पर ब्रह्म और सूर्य के प्रतीक से भी किया है।<sup>७</sup> गुस्ताक साहब ने एक स्थल पर बिबेदी के किनारे पन्न और सूर्य के मिलाने की बात कही है। एक दूसरे स्थल पर उन्होंने बाँध

<sup>१</sup> कबीर प्रभावली पृ० ११८

<sup>२</sup> गुस्ताक साहब की वाणी पृ० ७

'बाँध पवन है धरत गगन में बाँधि करी दिग्वास'

<sup>३</sup> कबीर प्रभावली पृ० ६०

उच्च पवन पदचक्र मेरा ।

<sup>४</sup> सुस्ताक साहब की वाणी पृ० २

बाँध पवनहिं काय गगनहिं धरत गगन मुनाबही ।

<sup>५</sup> गारी साहब की वाणी पृ० ७

"संकेत प्राय अगान मित्राई बाही पवन में गगन चर्चारी ।"

<sup>६</sup> गुस्ताक साहब की वाणी पृ० ७ उपर १४ देखिए

एक साधना का अर्थ 'अर्ध-उर्ध' शेष के अर्थ से किया है। ऊर्ध्वार्ध का अर्थ उत्तमों ने अर्ध उरध कर दिया है। यह दोनों प्रायःपल योग के वाचक हैं— यह बात शम्भुसंवाद नामक ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेखित की गई है—

प्रायेणाकृत्यते अपान प्राणोअपानेन कृत्यते ।

उर्ध्व आधः शिवतौ एतौ योजनानाति स योगवित् ॥ ३० ॥

उत्तमों ने भी उन्मत्त प्रयोग प्रायः इसी अर्थ में किया है। बानिषों से यह बात स्पष्ट प्रगत होती है—कबीर ने लिखा है—

अरध अरध विष्य लेइ ले अकारा ।

साध्या ब्योति करै परकास ॥ क० प्र० १३९

एक दूसरे स्थल पर उन्होंने इस बात को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है।

अरध अरध की गंगा अमुना मूल कौबल को घाट । (क० प्र० ३४)

इसी प्रकार बुद्ध साहब ने एक स्थल पर पवन को मयानी कहकर पवन-साधना की ओर संकेत किया है। इन्हीं संत में एक दूसरे स्थल पर वायु-साधना से सम्बन्धित प्राण-पान के पूरक कुंमक रेचक आदि अंगों का उल्लेख किया है। संतों में इस प्रकार के पवन साधना सम्बन्धी सात्वो उदाहरण दूँके या सकते हैं।

संतों में इतपयोग की नाडी साधना का भी बड़ा विकृत उल्लेख मिलता है। विपला और सुमुखा की बखना उन्होंने सर्वत्र की है। कबीर ने बहचर नादियों को एक स्थल पर बहचर आधारी<sup>१</sup> कहा है। एक दूसरे स्थल पर अरध पर कहा है।<sup>२</sup> पंथ

<sup>१</sup> गुणाक साधन की बानी पृ० ६३

“अर्ध अर्ध को शेष कोर कर, पावरी ।

बाँध धर को बाँधि गगन की आधरी ॥

ईपक-सिपक होइ बाँधि अरध तब आधरी ।

अरध गुणाक हर रोज आधर तब आधरी ॥

<sup>२</sup> बुद्ध साहब का शब्द सागर पृ० २

“पवन मयानी शिरसे बूँडो, तब पावै मन ठीक ।”

<sup>३</sup> बुद्ध साहब का शब्द सागर पृ० ३

“ई कुंमक पूरक पर रचना रेचक अंजम हूँ ।”

<sup>४</sup> कबीर प्रियवन्दी पृ० ३०८

बहुधा एक बहचर आधारी ।

<sup>५</sup> कबीर प्रियवन्दी पृ० ३०३

बहचर पर एक पुरन अमावा ।

नाकिबों के लिए उन्होंने पंच विद्या<sup>१</sup> और पंच सती<sup>२</sup> शब्दों का प्रयोग किया है। संतों के इन श्लोकों से प्रकट होता है कि वे लोग नाकिबों की संख्या से पूर्ववत्ता परिचित थे। पिन पंच नाकिबों का अर्थ है उन्होंने किया है उनके नाम अमरा, इंगला, सिंगला, सुमुना, बजा और बस माही हैं। इनमें से प्रथम तीन का अर्थ है संतों ने पग पग पर किया है। चर्ची पर तो उन्होंने इन नाकिबों का शब्द नामों से अर्थ है किया है और चर्ची पर उन्होंने इनके लिए नये प्रतीकालक पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किये हैं। पूर्ववर्ती योगियों के अनुकरण कर गंगा, बसुना, सरस्वती नामों का प्रयोग प्रायः सभी ने किया है।<sup>३</sup> इका सिंगला के लिए फर<sup>४</sup> और सु<sup>५</sup> शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। सुमुना के लिए बंजनाति का प्रयोग भी बहुत अधिक मिलता है। बंजनाति के अतिरिक्त संतों ने उलके लिए अग्नि का भी प्रयोग किया है। इका को भी और सिंगला को पुष्य भी कहा गया है। दोनों के लिए अल शब्द का प्रयोग भी संतों ने किया है।

संतों में हमें सुमुना के अनेक ख्यात्मक बर्चन मिलते हैं। विद्वान् दृष्टों में हम दिक्ता माने हैं कि योग श्रमों में सुमुना के स्वल्प पर बड़े विचार से प्रभु काहा गया है। उनमें सवे शुक्ल बर्च की श्लोकों उक्ति के प्रभु से प्रभावित किया गया है। इस प्रकार का बर्चन श्लोकों प्रभु से किया है। चर्ची के दो-चार बर्चन देखिये—

अरथ अरथ विधि झाड़ ले अकारा तहूर्वा जोति करै परकारा ।<sup>६</sup>  
अगम निगम गढ़ रधि ले अवास तहूर्वा जोति करै परकास ॥  
बमके किजुरी तार अनन्त तहूर्वा प्रमु बैठे कबसा कंव ।<sup>७</sup>

संतों ने इष्टयोगिक मुद्राओं का चर्ची पर भी विद्यमान रूप में कल्पन नहीं किया है। हाँ, प्यास और पारखा से सम्बन्धित मुद्राओं की चर्चा उन्होंने अवश्य की है।

<sup>१</sup> चर्ची प्रभावशाली पृ० १४

<sup>२</sup> चर्ची प्रभावशाली पृ० १४२

<sup>३</sup> शिव चरिता २।१२२

इका गंगा पुरा मोस्ता सिंगला आदि पुस्तिका ।

गंगा सरस्वती मोस्ता ताका संयोगिता दुर्बमः ॥

<sup>४</sup> चर्ची प्रभावशाली पृ० ११०

<sup>५</sup> " " पृ० ११०

<sup>६</sup> " " पृ० १११

<sup>७</sup> " " पृ० १११

बौद्धिक प्रयोगों में ध्यान सम्बन्धी अनेक मुद्राओं का उल्लेख किया है—प्रमुख ध्यान सम्बन्धी मुद्राएँ इस प्रकार हैं—(१) अगोचरी (२) मूषरी (३) बाबरी (४) सेवरी (५) शाम्भवी तथा (६) उम्पनी ।

कुछ लोगों के अनुसार-सेवरी और पाचरी एक ही हैं । कुछ लोग दोनों को मिश्र मानते हैं । इनमें से पाँच के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा चुका है अतः यहाँ पर केवल उम्पनी का स्वीकार करना करेंगे । संत लोगों ने सिद्धांत रूप से उम्पनी के प्रति भ्रम प्रकट की है । इन सब मुद्राओं को हम उम्पनी की दृष्टानुभूति के विभिन्न स्तर कहा सकते हैं । सम्भवतः इहीलिए उम्पनी का सिद्धांत रूप से प्रतिपादन किया है । यही अम्पनी का भी सामान्य रूप से कल्पन कर दिया गया है । संत मायी साहब ने उपर्युक्त मुद्राओं में बाबरी, मूषरी और सेवरी का उल्लेख किया है और उनके स्वरूप की ओर भी संकेत किया है । उनके मतानुसार त्रिकुटी में दायिनी श्रेणी शक्ति पर मन को केन्द्रित करना बाबरी मुद्रा है । मस्तिष्क में शक्ति के वर्धन करने को मूषरी मुद्रा कहा गया है । घन गुण या ब्रह्मरूप में शक्ति के ध्यान को सेवरी मुद्रा कहा है । सामान्यतया शून्य में ध्यान केन्द्रित करना उम्पनी मुद्रा है । हरिया साहब ने संत मायी द्वारा बर्णित मुद्राओं के अतिरिक्त अगोचरी मुद्रा का उल्लेख किया है । “साहब योग” के प्रसंग में हम तब पर विचार किया जायगा, क्योंकि वे सब ध्यान और चारणा से सम्बन्धित हैं । इतना ही संत का ध्यान नहीं है । यही कारण है कि परेष्ट उद्दिष्टा में २५ मुद्राओं के वर्धन के अन्तर्गत इनका नाम नहीं लिया गया है । मैं डा० बंसेन्द्र ब्रह्मचारी के इस कल्पन से भी सहमत नहीं हूँ कि “यदि इन चार शब्दों को शुद्ध रूप में पढ़ा जाय तो वे सेवरी, मूषरी, अम्पनी और बाबरी—अर्थात् परेष्ट उद्दिष्टा द्वारा बर्णित पाँच चारणा मुद्राओं में से चार—यथा आकारी, पार्थवी, आग्नेयी और आमसी ही के बूते नाम जान पड़ते हैं । इनकी साधना करने पर योगी सुगमपूर्वक वायुस्थल अग्नि और बल में अनवरत गति की घमणा प्राप्त कर लेता है ।” पाँचवीं मुद्रा बाबरी को माय हरीश्वर छोड़ दिया गया है । क्योंकि आकाश में विचरण करने का मतलब वायु में भी विचरण करना होता है । मेरी समझ में इन मुद्राओं का सम्बन्ध परेष्ट उद्दिष्टा में बर्णित मुद्राओं से नहीं है । वे स्वतंत्र मुद्राएँ हैं । राज योग के प्रयोग में इनका स्वतंत्र उल्लेख किया गया है । संतों ने कहीं से उन्हें प्राप्त किया है ।

पठकों के प्रति भी संतों की कोई विशेष भ्रम न थी । यद्यपि संत ब्रह्मदास ने अपने मक्ति सागर<sup>१</sup> नामक ग्रन्थ में उम्पनी कर्मों का विस्तार से उल्लेख किया है किन्तु

<sup>१</sup> ध्यान हरिया—यमेश्वर ब्रह्मचारी पृ० ६१ १००

<sup>२</sup> मक्ति सागर—हरिया साहब पृ० ६२२



उसे हम उनका सिद्धांत पक्ष ब्रह्मते हैं। उन्होंने उनका वर्णन परम्परा के बालन के रूप में ही किया है। उनके अतिरिक्त यदि अन्य संतों ने इसी प्रकार की परम्परा का पालन किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। संत जमीर आदि भी सम्भवतः साधना के प्रथम कारण में पदधर्मादि में भिरकात करते थे। डा० रामकुमार वर्मा ने जमीर का निम्न लिखित उद्धरण उद्धृत किया है। इसमें उन्होंने पदधर्मों की ओर ही संकेत किया है—

घोरी नेता बखी छाओ आसन पदम जुगति करबाओ।

पहले मूख सुबार कार्य हो सारा।<sup>१</sup>

किन्तु इस प्रकार के उद्धरण इनेगिने ही हैं। अन्य संतों ने भी इन पदधर्मों का उल्लेख सिद्धांत रूप से कहीं पर भी नहीं किया है।

संतों में इनमें पदधर्मों की बर्ना भी मिलती है। मूलाधार पद्यना एक है। संतों ने मूलाधार साधना को कुछ विशेष महत्त्व दिया है। इसका कारण सम्भवतः उत्तम धीव का निवासस्थान होना है। संत हरिया साहब ने इसका संकेत इस प्रकार किया है—

छब चक लोजि करौ निवास

मूख चक मंह जिय को वास ॥<sup>२</sup>

इसी प्रकार जमीरबास ने गंगा-जमुना के तटस्थ 'मूल कंबल धार' का वर्णन किया है—

अरध-अरध गंगा जमुना

मूल कंबल को धार ॥<sup>३</sup>

मूल कंबल के बाद स्थापिष्ठान कंबल आता है। संतों में इस कंबल की बर्ना उसके दलों की संख्या के सहारे की है। इसके छः दल बताये जाते हैं। जमीर ने मयवान् के बद्द दल कंबल निर्गती कहा है—“पद् दल कंबल निवासिना”।<sup>४</sup>

संतों में इन्द्र-कंबल को बहुत महत्त्व दिया है। किन्तु इनकी इन्द्र कंबल की भावना हिन्दुसी है—एक ध्यान विन्यूननिपद् में बर्णित अष्टदल कंबल सम्बन्धी और कुसरी १६ दल वाली। यद्यपि संतों ने षोडश कंबल दल का वर्णन किया है। उसके बैठने पर बनबापी के मिलने की बात कही है।<sup>५</sup> किन्तु उनका सम्यक

<sup>१</sup> जमीर प्रणयबली पृ० ६२४

<sup>२</sup> हरिया साहब पृ० १६

<sup>३</sup> जमीर प्रणयबली पृ० ८४

<sup>४</sup> जमीर प्रणयबली पृ० ८५

<sup>५</sup> जमीर प्रणयबली पृ० ८५

अप्यदस इत्यर्चयत्त श्री साधना श्री श्रौत ही विशेष का। तंत्रों ने उक्त अप्यदस  
अप्यदस का महत्त्व बर्णन विविध प्रकार से किया है। कबीर ने लिखा है—

“अप्यदस कंबल दस भीतर तहाँ श्रीरज केलि करार्ह रे।”<sup>१</sup>  
तबहु साहब ने मी लिखा है—

“अप्यदस कंबल फुले प्यान कमठ लगाने।”<sup>२</sup>  
इसी प्रकार हरिया साहब ने मी लिखा है—

अप्यदस कंबल मर्योखा।  
तहबो बिनस रस योगी ॥<sup>३</sup>

यही साहब भी कहते हैं—

अप्यदस के कमठ भीतर बोलता एक सुभा।<sup>४</sup>

इसी प्रकार अन्य तंत्रों में भी अप्यदस कंबल साधना श्री ही सबसे अधिक महत्त्व  
दिया है। यहाँ पर महत्त्व उक्त उक्त है कि उन्होंने अप्यदस कंबल साधना श्री इतना  
अधिक महत्त्व क्यों दिया? हमारी समझ में इसका कारण उक्त कमठ का प्यान योग  
से संबंधित होना है। इसका कारण तबसे आत्मा का आवास होना मी है। इसी  
आत्मा पर प्यान को केंद्रित करने से ही आत्मरूप हो जाता है। उक्त योग प्यान  
योगी ही वे। इत्येव के प्रति उनकी विशेष आस्था न थी। यही कारण है कि उन्होंने  
अप्यदस कंबल का बरतन कम किया है और अप्यदस कंबल का अधिक।

पार्ष्णी एक विशुद्ध नाम से प्रसिद्ध है। तंत्रों की कानियों में इसके मी संबंध  
मिलते हैं। इसके १६ दलों का संबंध करते हुए कबीर ने लिखा है कि तबको साधन  
करने से बनवाली के दशन होते हैं।

पौडस कंबल अब जेठिया तब मिलि है श्री बनवादि रे।<sup>५</sup>

विशुद्ध कंबल के बाद आया एक आता है। तंत्रों ने इस कंबल को अन्यो की  
अप्यदस बहुत अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण है—इस कंबल का प्यान श्री  
कमपारि योग से आध्यात्मिक सम्बन्धित होना, क्योंकि अप्यदस प्रत्यक्ष रूप से आत्मा का बड़ी  
रक्षण माना जाता है। यही नर ईशान्त्री बरया और निगशास्त्री अर्धी श्री सिद्धि  
है। ईशान्त्री इसे वाच्यत्री कहते हैं। यही गंगा (ईशान्), बसुता (निगशा), सरस्वती

<sup>१</sup> कबीर आख्यातकी पृ० ८८

<sup>२</sup> तबहु साहब ३।२४

<sup>३</sup> हरिया साहब के पुत्रे हुए पर पृ० ३४

<sup>४</sup> हरिया साहब की रावणवती पृ० ३

<sup>५</sup> कबीर आख्यातकी पृ० ८८

(द्रुमुना) का मिलाव बिन्दु है। कबीर ने इस त्रिवेणी में स्नान करने का बड़ा महत्त्व बताया है।

आधा पत्र के बाद सहस्रार पत्र आया है। संतो में इस पत्र के बर्णन बहुत मिलते हैं किता कि हम पीछे बतला चुके हैं। शिव उद्विता के अनुवार इस कर्मस की स्थिति वास्तु मूल में है। इस कर्मस के केंद्र में एक पश्चिमामिमुखी वीथि है। उसके मध्य में दो मूल बिबर है जिनमें द्रुमुना नाड़ी स्थित है। इस द्रुमुना के बीच में विशा माफी है। उठमें भी शून्य ब्रह्म की कल्पना की जाती है। उठों में शिव उद्विता के इस बर्णन से मिलते-जुलते बहुत से बर्णन मिलते हैं। उदाहरण के लिए कबीरदास जी का निम्नलिखित अन्वयार्थ लें सकते हैं—

ब्रह्मनासि के अंतरे पश्चिम विसा की बाट रे।

निर्झर झरे रस पीजिये तहँ मँबर गुफा के घाट रे ॥ क० प्र० पु० ८८  
यहाँ पर हम मँबर गुफा के संबंध में एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं। योगिक ग्रंथों में विशेष करके गोरक्षनाथ की सिद्ध सिद्धांत पद्धति में मँबर गुफा का बर्णन ब्रह्मोत्पी के प्रलय में आया है। इसकी स्थिति अजर में बताया है। संत लोगों ने अजर गुफा की स्थिति ब्रह्मरंज के समीप बताया है। कुछ संत तो ब्रह्मरंज को ही अजर गुफा मानते थे। कुछ संतों ने इस अजर गुफा को गगन गुफा भी कहा है।

योगिक ग्रंथों में ब्रह्मरंज को ब्रह्मोत्पी कहा जाता गया है और इसी में ज्योति-स्वरूपी ब्रह्म की स्थिति बताया गई है। संतों ने इस तथ्य का भी ज्यों का त्यों बर्णन प्रस्तुत किया है। पताचूँ कहते हैं—“उद्विता रूप गगन में तितमें बरे चिरग” प० ब्रह्मी पु० १०६ ब्रह्मरंज को योगिक भाषा में दशमद्वार भी कहते हैं। इस दशम द्वार के केंद्र में ब्रह्ममयब्रह्म की स्थिति है उठते अमृत फरता है। वह पत्र उलट्टाह कलाओं का अक्षित किया गया है। वही निरञ्जन का वास्तव्य है। यारी ताहब ने सिखा है—

“यारी सागी दशवें द्वार तच निर्जन ओंकार।” यारी साहब की रत्नावली पु० १०

संतों ने ब्रह्मरंज के लिए शून्य शब्द का भी प्रयोग किया है और इसकी स्थिति गगन मंडल अर्थात् सहस्रार में मानी है। कबीर कहते हैं—

सहज सुनि को नेहरी गगन मंडल धिरभीर।

इसी में ज्योति पुरुष के बर्णन किये जा सकते हैं। संतों ने उठी ज्योति पुरुष से - लय करने का उद्देश्य दिया है। कबीर ने सिखा है—

“शून्य संकल में पुरुष एक वाहि रहै ह्यो साय ।” क० प्र० पृ० ६७  
 इस शून्य में स्थान लगाने की बात संतो ने एकदो बार की है ।

पदपत्रों के अतिरिक्त संतो ने अन्य पत्रों का उल्लेख नहीं किया है । यदि बहुत खोब करने पर कुछ पत्रों का उल्लेख मिल भी पाय तो उनके आधार पर कोई सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता । पदपत्रों के अतिरिक्त संतो ने सोलह आध्यात्मिक के भेदन की बात भी कही है । इनकी ओर संकेत करते हुए एक स्थान पर कबीर ने लिखा है—

सोलह भजे पवन मूकोरिया । क० प्र० पृ० २६६

इतयोग में अकमेदन के अतिरिक्त कुडलनी उत्थापन प्रक्रिया को भी बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है । यद्यपि संत साग हठयोगिक ढंग से कुडलनी उत्थापन में विरक्त नहीं करते वे किन्तु फिर भी उनकी बानियों में दो-बार स्थलों पर कुडलनी की बर्णना मिल ही जाती है । योगिक ग्रंथों में कुडलनी के लिए बहुत से पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त मिलते हैं । इतयोग प्रदीपिका में लिखा है कि—

कुटिलांगी कुण्डलिनी मुर्झगी शक्तिरबरी ।

कुण्डलिन्य रुपती येते शब्दा पयायबाचका ॥ ६० यो० प्र० ३।१०४

संतो ने इसका बयान सर्वेष्टी नागिनी आदि नामों से किया है । कबीर ने एक स्थल पर ‘शोबत नागिनी बागी’ की बर्णना की है ।

इस नागिनी का बर्णन करते हुए संत बुझता साहब लिखते हैं —

तिरबनी तिरपाण संचारो जगमगि जगमगि मनि उचियारो ।

भाग बड़ो त्रिन यह गति सारो पवन मियायनागिनी मारो ॥

पुस्तका साहब की बानी पृ० १६

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतो में इतयोग की बहुत सी बातें उनकी बानियों में अल्प-अल्प रूप से दिखती हुई हैं । उनकी रचनाओं में शायद ही कहीं कोई इतयोग का स्पष्टीकरण बर्णन मिले । बाह्य में वे इतयोग का सिद्धांत बर में स्वीकार नहीं करते थे । कुछ संतो ने तो उससे स्पष्ट शब्दों में निंदा भी की है । संत कबीर ने लिखा है कि यदि मगवान्<sup>१</sup> स भेन नहीं है तो अनहद वाक्या विरहून बर्य है ।”

<sup>१</sup> क० प्र० पृ० १११

<sup>२</sup> कबीर संकलनी १२२ पृ० अन्तिम पंक्ति

‘इत्य कन हरि कीं नहि मीचा कन भयो जो भवदद बाणी’

एक दूसरे स्थान पर फिर उन्होंने लिखा है 'ये बावले' धातन एवं पावन साधना और कृत कर्म स्वयं कर मगवान् का मकन कर' संत हरिदा साहब ने भी हठयोग के प्रति उपेक्षामान प्रकट करते हुए लिखा है "हठ निग्रह करि मूल न बोली" अर्थात् 'हे योगी हठ साधना में प्रमित न हो'।<sup>१</sup> इसी प्रकार अन्य संतों ने भी हठयोग की निंदा की है। हठयोग संत मूल का विज्ञान्य पक्ष नहीं है।

**सत्य योग**—हठयोग के बाद महात्मा श्री टॉपि से सत्य योग आता है। हठ-योग प्रदीपिका में लिखा है कि इन्द्रियों का स्वामी मन और मन का स्वामी प्राण है। प्राण का माय मन का सत्य है। मन का सत्य माद के अवस्था से होता है।<sup>२</sup> योग तत्त्वोपनिषद् में विद्य सत्य को सत्य कहा जाता है। सत्य योग में साधक पहले समय, बैठते समय, सोते समय, साते समय ईश्वर का ही ध्यान करता है। इसके प्रकट होता है कि सत्य योग में ध्यान को विशेष महत्त्व दिया जाता है। ध्यान का सम्बन्ध मन और विद्य से होता है। मन और विद्य का सत्य करना ही वास्तव में सत्य योग होता है। योग प्रणियों में सत्य योग के साधो प्रचार बतलाये गये हैं। किन्तु सबसे अधिक सम्पत्ता माद सत्य योग को दी गई है। हठयोगियों, हिन्दू ठाकुरों और बौद्ध ठाकुरों ने इस माद सत्य योग को ही महत्त्व दिया है किन्तु इसका विप्लव टीनों ने अपने अपने ढंग पर किया है। यहाँ पर हम टीनों के सत्य योग पर स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे। हठयोग प्रदीपिका में मन<sup>३</sup> को माद में लीन करने को ही सत्य योग माना गया है।<sup>४</sup> इसके लिए उन्हें श्याम्भवी मुद्रा का विधान मिलता है। इतमें लिखा है कि योगी को विद्यावन से बैठकर श्याम्भवी मुद्रा को साधते हुए माद अवस्था करना चाहिए। श्याम्भवी मुद्रा यह है जिसमें साधक बैठता तो किसी बाहरी लक्षण पर है किन्तु उद्योग ध्यान अंतर्लक्षण पर रिया रहता है। यह अंतर्लक्षण ध्युम्ना भाषी होती है। मन को

<sup>१</sup> कबीर संघासनी पृ० २६२

'सासन पवन बुरि करि बररे जोकि कपड मित हरि मन्ने'

<sup>२</sup> हरिदा ध्यागर पृ० ३०

<sup>३</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।२३

<sup>४</sup> योग तत्त्वोपनिषद् श्लोक २३

'सत्य योगोपनिषत्स्यः कोटिः। परिकीर्तितः।

गण्यंस्तिष्ठन्स्वप्नमुत्पन्नवापेक्षिन्कर्मवीरवरम् ॥

<sup>५</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।६४

<sup>६</sup> हठयोग प्रदीपिका ३।६५-६६ को योगी संज्ञिते

इसी शुभला नाडी में प्रवेश करके माद भव्य करता चाहिये।<sup>१</sup> योग धर्मों में माद के विविध स्तरों और स्वरूपों का उल्लेख मिलता है। त्रिपुरसारसमुच्चय ग्रंथ के अनुसार चौथी अग्रत उच्चोत्तर अग्रत च मनमनाहत की ध्वनि, बंसी ध्वनि, पट ध्वनि, समुद्र गहन, मेघ गर्जन से मिलती हुई लती ध्वनियों का भव्य करने में समय होता जाता है।<sup>२</sup> मेघ इत्यादि प्रदीपिका में साधक करने नाद भव्य प्रक्रिया में क्रमशः बलघ्न, भीमूत, मयी, र्धमर, मृदाल, शंख, पंख, कोहल किचयी, बीणा और बंसी की ध्वनियों को सुनता है।<sup>३</sup>

इत्यादि प्रदीपिका तथा कुछ अन्य भौतिक धर्मों में नाद की चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। वे नाद योग की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं। उनके नाम क्रमशः आरम्भ, पट, परिचय और निष्पत्ति हैं।<sup>४</sup>

प्रथमावस्था में साधक मातापाम के सहारे अनाहत चक्र स्थित अक्ष प्रथि का मदन करता है। प्रथि मदन के पश्चात् उसे उठ चक्र में शून्य से उद्भूत नाना प्रकार के मूर्तों से बनी ध्वनियों सुनाई पड़ती है।<sup>५</sup> पट नामक दूसरी अवस्था में प्राण अगत से निकल कर विगुह चक्र में प्रवेश करता है। इसी अवस्था में विष्णु प्रथि का मेहन होता है। इस समय को अति शून्य भी कहते हैं। यहाँ पर अति शून्य से उद्भूत विविध प्रकार की विभिन्न ध्वनियों सुनाई पड़ती है। इसी अवस्था में मेरी बीजा शब्द भी भव्य गायकर होता है। तीसरी अवस्था परिचयावस्था कहलाती है। लयवस्था मिले हुए प्राण और अगत अवस्था नाद और विगुह आका चक्र में पहुँचते हैं। यहाँ पर अक्ष प्रथि का मेहन करते हैं। इसी समय पर महायून्य से उठा दुर्ग मृदाप क ध्वनि सुनाई पड़ता है।<sup>६</sup> चौथी अवस्था निष्पत्ति है। इसका उदय उठ समय होता है जबकि प्राण अग्रत में प्रवेश करता है। इस अवस्था में बीणा भीभी ध्वनि सुनाई पड़ती है। ध्वनि सुनत-सुनत मन ध्वनि से एकीभूत हो जाता है जिस ध्वनि का सुनकर मन लय का प्राप्त हो जाता है

<sup>१</sup> इत्यादि प्रदीपिका ३।१० की टीका द्वाबे

<sup>२</sup> इत्यादि प्रदीपिका ३।१२।२६

<sup>३</sup> शास्त्री मुद्रा क द्विप देविय बही ३।१२।३०

<sup>४</sup> इत्यादि प्रदीपिका ३।१६६ ध्वनि—

आरम्भ पट परिचय निष्पत्ति ।

निष्पत्ति सर्वपाणु स्थावस्था अनुत्पत्तम् ।

और भी ध्वनि—

धर्माप प्रयोग—५२१ अक्ष

<sup>५</sup> इत्यादि प्रदीपिका ३।१०

<sup>६</sup> इत्यादि प्रदीपिका ३।१०-११

<sup>७</sup> इत्यादि प्रदीपिका ३।१२ ००

उसको अनन्त रूप में कहते हैं। जो कुछ नाद रूप है वही शक्ति है। जिसमें यह नाद शब्द होता है वह निराकार शब्द ब्रह्म है। नाद शब्द की पूर्ण स्थिति को उन्नती अवस्था कहते हैं। वही उमाधि की अवस्था है। इसी का शब्द प्राप्ति की अवस्था और मुदीया वरणा कहा गया है।<sup>१</sup> वहाँ पर उन्नती अवस्था के स्वरूप को स्पष्ट कर देना आवश्यक है क्योंकि लोगों ने उक्त शब्दों का प्रयोग किया है। उन्नती अवस्था को मनोउन्नती अवस्था भी कहते हैं। मन और नाद की स्थापना उन्नती अवस्था कहलाती है।<sup>२</sup> उन्नती अवस्था का बन्धन करते हुए इतयोग प्रदीपिका में लिखा है कि उन्नती अवस्था शाश्वती मुद्रा की साधना से प्राप्त होती है। उन्नती अवस्था को प्राप्त हुए साधक का स्वरूप इस प्रकार होता है।<sup>३</sup>

अर्धोन्मीलितश्लोचनं स्थिरमना नासाग्रचक्षुष-  
रचन्द्रार्क्षबिम्बि क्रीनतापपमयभिःस्पन्वमाभेन यः।  
ष्योतिरूपमशेषं धीज्जमल्लिख्य देदीप्यमानं परं  
तस्त्वं तस्मिन्नेति वस्तु परमं वाच्यं किमत्राधिकम् ॥

इतयोग प्रदीपिका<sup>४</sup> में शब्द बोध का एक और प्रकार उल्लिखित मिलता है उसमें लिखा है कि त्रिपुरी के मन्त्र में प्यान लगाकर उन्नती अवस्था की प्राप्ति वही उरुलया से की जा सकती है।<sup>५</sup> इतयोग प्रदीपिका में शून्य शब्द भोग का भी उल्लेख मिलता है।<sup>६</sup> उसमें लिखा है कि अपने स्वरूप की कल्पना का प्रयत्न या शून्य रूप में करनी चाहिए। हम शून्य ब्रह्म हैं यह प्यान करते-करते ही मन शून्य में लीन हो जाता है और उमाधि की अवस्था का उदय हो जाता है। उल्लेख में इतयोगिक लय के प्रश्न से ही है।

### हिन्दू सांख्यिकों के अनुसार नादलय साधना

शास्त्राधिकारक तंत्र में कुंडलिनी को शब्द ब्रह्म समझी कहा गया है। इस कुंडलिनी से शक्ति उत्पन्न होती है। शक्ति से पानि और पानि से नाद और नाद से निरोधिष्य और निरोधिष्य से अर्धेन्दु और अर्धेन्दु से किन्दु की स्मरणा उत्पत्ति होती

<sup>१</sup> वही १।१४, २२, २३ रेखिए

<sup>२</sup> नादविन्दूपनिषद्—३२वाँ श्लोक

<sup>३</sup> इतयोग प्रदीपिका १।२१

<sup>४</sup> वही—१।३२।२७

<sup>५</sup> वही १।२६

<sup>६</sup> वही १।२६

है।<sup>१</sup> शक्ति से वहाँ शुक सत्व प्रविष्ट चित् का माद लिया जाना चाहिए। जब चित् शक्ति रबोत्तुचिद एवम् सत्व प्रविष्ट होती है तब उसे प्वनि कहते हैं। इसी प्रकार तमोत्तु चिद चित् शक्ति को माद कहा जाता है। तमस प्राप्ति से चित् शक्ति निरोधिक कहलाती है। सत्व प्राप्ति वाने से वह अर्चन्तु कहलाती है। सत्व और तमस से विशिष्ट होने पर उसे किन्दु कहते हैं। इस क्रम से शक्ति स्रष्टावरणा से स्रष्टावस्था में भ्रष्ट होती जाती है। किन्दु उलट्टी पूर्ण स्रष्टावरणा है।<sup>२</sup> इन सबके बाद पर उसके बाद मध्यमा और अंत में बैलरी की चर्चा आती है। पर के निर्धनवरणा कहते हैं। यह माद की स्रष्टावरणा है। परपत्ति, मध्यमा और बैलरी के स्रष्टावरणा है। बैलरी बीबक्य होती है। मध्यमा नाद कस्यो होती है, परपत्ति चिदु कस्यो होती है।<sup>३</sup> और बैलरी यह होती है जो नित्यप्रति स्रष्टावरणा में आती है। शक्त के ऊपरी भागों के स्रष्ट से उत्पन्न होनेवाली बैलरी कहलाती है। यह मौक्तिक भवणों से मुनी का स्रष्टी है। शेर प्वनि की मौक्तिक भवणों से नहीं मुनी का स्रष्टी। वे गच्छे के नीचे रहती हैं। परनाक मूलाधार में रहती है। परपत्ति स्वाधिष्ठान में, मध्यमा अनाहत में और बैलरी अंत में।<sup>४</sup> कुबडलनी चिदस मध्यरुपा होती है। उसे मुना नहीं का स्रष्टा। वही स्वाधिष्ठान में बाहर परपत्ति हो जाती है। और अनाहत में नादक्या हो जाती है। इसका भवण योगी साग ही कर सकते हैं। पर मूलाधार में प्राप्तिप्राप्त अथवा इच्छा शक्ति को उत्पन्न करती है। जब य इच्छा शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होकर स्वाधिष्ठान में पहुँचती है तब तस्य स्रष्टावर्ण वहाँ मन से स्थापित होता है तब वह परपत्ति कहलाती है। वही अनाहत में पहुँचकर बुद्धि से संयुक्त होकर मध्यमा कहलाती है। प्राग पलकर प्वनि यंत्रों से स्रष्ट साम करके वह बैलरी कहलाती है। इसीलिए कहा गया है। कि देवी के दा रूप होते हैं एक जोति दूसरे मन।

हिन्दू शास्त्रियों का विश्वास है कि किन्दु का स्थान तद्वरणा है। नाद स्वरूप

<sup>१</sup> शारदा तिथक सत्र १११० से खेत्त ११२ तक

<sup>२</sup> गार्डरक काक ईर्ण ५० २०३

<sup>३</sup> इनका विचार देविन्दु—

योगसिद्धोपनिषद् ३।११

<sup>४</sup> गार्डरक काक ईर्ण ५० २०४

और श्री देविन्दु—

योगसिद्धोपनिषद् ३।१२

योगसिद्धोपनिषद् ३।१३

और उम्पकी टीका श्री देविन्दु।



### हिन्दी की निर्मूल्य काव्यपाठ और उत्तरी दार्शनिक दृष्टमूर्ति

कुंडलनी का उठने लग करना ही लग योग का प्रमुख लक्षण होता है।<sup>१</sup> वहाँ पर हम हिन्दू वाक्त्रियों के अनुष्ठान नाद और बिन्दु का कुल और अधिक शक्तिकरल कर देना चाहते हैं। स्मरण रखने की बात है कि गोरलनापी इत्थौगिक प्रन्थों में नाद और बिन्दु को प्रायः और अपान तथा बीजलता और परमात्मा रूप कहा गया है।<sup>२</sup> हिन्दू वाक्त्रियों ने नाद और बिन्दु को शिव और शक्ति का प्रतिरूप माना है। वे दोनों तत्व शक्ति के दो पक्ष हैं जो सुबन कार्य में सहायक होते हैं। शारदासिक्तक तंत्र में लिखा है कि सन्धिबहनम् स्वस्मी सकल परमेस्वर से नाद की उत्पत्ति हुई और नाद से बिन्दु संभूत हुआ। बिन्दु ही शब्द ब्रह्म है। मंत्र में नाद और बिन्दु दोनों ही प्रतिष्ठित रहते हैं। नाद नीचे रहता है और बिन्दु ऊपर। मानव शरीर भी मंत्र रूप है। इसमें नाद नीचे और बिन्दु ऊपर रहता है। नीचे ऊपर से क्रमिमाय मूलाधार और छहसार से ही नादरूपा कुंडलनी मूलाधार में रहती है और बिन्दु रूपी शब्द ब्रह्म छहसार में रहता है। वे दोनों क्रमशः शक्ति और शिव रूप कहे जाते हैं। इन दोनों का मिलन करना ही हिन्दू तंत्रों में सबसे अधिक महत्त्व मंत्रों को दिया गया है। वे मंत्रों के सहारे ही नाद बिन्दु का योग स्थापित करना उचित समझते थे। नाद बिन्दु के मिलन की आवश्यकता को तंत्रों में समरसता की आवश्यकता कहा गया है। कुल तंत्रों में इसे उम्मीनी अवस्था भी कहा गया है। उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि हिन्दू वाक्त्रियों की योग स्थापना में नाद बिन्दु का योग और मंत्र योग का सामंभस्य पाया जाता है। इसमें मंत्रों के सहारे कुंडलनी को प्रबुद्ध करके पद्यों का मेहन करते हुए और नाद को क्रमशः मुक्तिय करते हुए छहसारतय बिन्दु में लीन करत हैं। इसी प्रसंग में हम तंत्रों में मंत्र योग का भी उल्लेख कर देना चाहते हैं।

मंत्र योग—मंत्र योग के स्वस्म को समझते हुए योग शिलोरेनिम्न में लिखा है—

हकारेण बहियाति सकारेण विरोत्सुन ॥१३०॥  
 हं'सह सेति मंत्रोऽयं सर्वैर्जीविरण च्यते।  
 गुरुवाक्यास्तुपुग्नायां विपरोठी मयंजय ॥ १३१ ॥  
 सोऽहं सोऽहमिति पा। त्यान्मंत्रयोगः स च्यते।

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य जब शीत होता है ता शीत के बाहर जाते समय हकार की जनि

<sup>१</sup> शारदासिक्तक व्यास शीतल ५०-२०४  
<sup>२</sup> इत्ययोग प्रदीपिका १११ की टीका शक्ति  
<sup>३</sup> योगशिलोरेनिम्न १३०-१३१



बाप से ही साबक नाद का अनुभव करता है।<sup>१</sup> ब्रह्मपा को इस विद्या भी कहते हैं। संतो ने इस की बहुत बर्खा की है अतएव यहाँ पर हम इस का भी स्वीकार्य कर देना चाहते हैं।

इस विद्या का इस योग का विद्युत् बर्खन ब्रह्मविद्योपनिषद्<sup>२</sup> और हंसोपनिषद्<sup>३</sup> में मिलता है। हंसोपनिषद् के अनुसार चारे शरीर में इस उच्च प्रकार से व्याप्त रहता है बिना प्रकार अग्नि काष्ठ में और तिलों में तेज व्याप्त रहते हैं।<sup>४</sup> ब्रह्मविद्योपनिषद्<sup>५</sup> में इस का स्वीकार्य करते हुए शिखा है कि इस उच्च अणुत्तम ब्रह्म ही होया है। इत्यत्र उक्तानि निवासमानानि हैं। बही पशुम सत्य है, पशु वैदिक नाम है, पशुत्वर का भी बही है तथा उच्च को समस्त देवताओं में निवास करनेवाला महेश्वर भी कहते हैं। पृथ्वी से लेकर शिव तक इत्यावन भेदों में बही परिव्याप्त है, बही इत्यावन बस कम है। और कूराम्त में बही मात्रिकाओं के रूप में रहता है। इस का प्रत्यक्ष रूप प्रसन्न है। प्रत्यक्ष का अकार अग्निरूप ब्रह्म यवा है। यह मूलाकार में रहता है। उच्चर अनाहत में रहता है और मकार अमूम्य में। इन तीनों स्वरों में क्रमशः का प्रथिवा मानी जाती है। अक्षर, उच्चर और मकार क्रमशः ब्रह्म, विष्णु और का के प्रतिरूप भी माने जाते हैं।<sup>६</sup> हंसोपनिषद् में इस के अगुण्य ज्ञान का भी बर्खन किया गया है। यहाँ पर उच्चरी ब्रह्मना विद्याइँ इस रूप में भी गयी है। अग्नि और चन्द्र उच्चके पक्ष ब्रह्मे गये हैं। अकार उच्चर अक्षर मना गया है। अक्षर, उच्चर

<sup>१</sup> हंसोपनिषद् ११।१४

<sup>२</sup> ब्रह्मविद्योपनिषद् ११ ११ श्लोक

<sup>३</sup> हंसोपनिषद्

<sup>४</sup> हंसोपनिषद्

उच्चैः पृथु वैदुः व्याप्य वर्तते अथाह्वानि काप्येऽनु तिलेषु तैलमिक्तः । उच्च विदित्वा न सन्धुमति ॥२॥

<sup>५</sup> ब्रह्मविद्योपनिषद्

आशिर्वा श्रेष्ठ मन्त्रे तु सिक्तो हंसः प्रप्राज्यकुतः ।

इस एव परं सर्वं इस एव तु अत्येवम् ॥१०॥

इस एव परं वाच्यं इस एव तु वैदिकम् ।

इस एव परी क्री इस एव परात्महम् ॥११॥

सर्वं देवस्य सम्पत्सौ इस एव महेश्वरः ।

पृथिव्यादिभिर्वास्तं तु आकारस्य बर्खनाः ॥१२॥

ब्रह्मता इस एव स्वात्म्यानुभेति प्यवसिक्ताः ॥

<sup>६</sup> ब्रह्मविद्योपनिषद् १० १८, १९, २०, २१, २२

घोर प्रकर उलझी तीन श्रृंखलें हैं, इन्हें उलझा मुक्त है। अर्थात्, घोर श्रापों से उलझे दो रास हैं। इस प्रकर हंस के से गुण्य और निर्गुण रूपों का स्थान करते हुए उलझा रूप जन्मा बहिए। अथवा का उपसहार क्रम यही है। इही उग्नियद में एक वृद्धे स्थल पर दूरस्थ में जो आठ दल का माना जाता है हंस की भावना से त द्वीपमतीव की प्राप्ति काहे गयी है।<sup>१</sup> ब्रह्म विद्योपनिषत् में हंस योग का विस्तृत बर्णन किया गया है। उलझे की कुंडलनी उदरपात्र पर ही बल दिया गया है। वह भी नानानुसंधान से ही संबंधित है। तन्त्रों में उलझ रूप की अभिव्यक्ति नहीं मिलती है। अथवा यहाँ पर उलझ संकेत मात्र किया गया है। हंसयोग साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग अथवा है। अथवा के लिये ही कुंडलनी को प्रयुक्त करने का उपदेश दिया गया है। अथवा का स्वरूप इस पीछे स्पष्ट कर चुके हैं। अथवाभाव से ही तावक मन को धरलता से नाद में लीन कर लेता है।

हंसोपनिषत् में इस प्रकर के नादों का बर्णन किया गया है। वे क्रमशः सिन्धी, पिपिपिपि, पंखा नाद, शंखनाद, तंभीनाद, कलनाद, बेगुनाद, मेपीनाद, मुदंगनाद और मेपनाद हैं। इन नादों के फल का भी निर्देश इस ग्रंथ में विस्तार के किया गया है। उलझे शिखा है कि पिपिपिपि ध्वनि से शरीर में ध्वनिचिनी पैदा होने लगती है। शरीर ध्वनि मुनकर मूट हो जाती है और तीव्र ध्वनि मुनकर अनाह्वय पर प्रथम हो उठता है और शीघ्र ध्वनि मुनकर तिर हिलने लगता है। पिपिपी ध्वनि मुनकर ताह्य संबंध होने लगती है। कृत्री ध्वनि मुनकर सूर्य और चन्द्र के मिलन से उत्पन्न अमृत का पात्र करने लगता है। तावकी ध्वनि मुनते ही गूढ विज्ञान उत्पन्न होता है। आठवीं ध्वनि मुनते ही पदपात्र की अनुमति मिलती है। नवीं ध्वनि के मुनते ही योगी अंतर्ध्यान होकर दिव्य वेद प्राप्त कर लेता है और ईश्वर रूप हो जाता है और दसवीं ध्वनि मुनकर वह परब्रह्म हो जाता है। अथवा से उलझित लययोग का यही स्वरूप है।

मंत्रयोग का एक स्वरूप हिंदू तंत्रों में बर्णित है। मंत्र शुद्धि तंत्र में लिखा है कि मंत्र मंत्र का अदिष्ट देवता होता है उलझा भाव करते हुए साधक अपनी शक्ति को उदाहर कर देता है जिससे उलझ मंत्र में शक्ति पूर्ण कर से लीन हो जाती है। इही का मंत्रध्यान लययोग कहते हैं।

### १ हंसोपनिषत्

अग्निशोमी ब्रह्मोपनिषत्: सिर उलझरोविष्णुसिद्धिर्ध्वं मुनं  
 द्यो उदासी बाली शिखिर्ध्वं कलनाः कुर्वोद्विष्णुमयाः  
 अथोपनिषत्: इत्यभिधीयते ॥१०८॥  
 एवं हंसोपनिषत्: विद्ययते ॥१०९॥

**बौद्ध संघों की नाद बिन्दु साधना**—एक और मंत्र बोध के प्रथम बौद्ध संघों की नाद बिन्दु साधना या शून्य साधना भी विचारणीय है। क्योंकि वह मन्त्री हन्दी बानों से संबंधित है। बौद्ध धर्मियों का लक्षण महाशून्य की अवस्था का अनुभव करना था। तदनुभवानी सिद्ध इसकी तदनुभवस्था कहते थे श्री र ब्रह्मवानी इसकी अवस्था मानते थे। ये एक बौद्धों की बोधविति की अवस्था का मार्गदर्शक और रूपदर्शक है। इसी को लक्षण भी कहा गया है। इसी को शून्यावरणा भी कहते हैं। वही परमार्थ तत्त्व है। यह पूर्ण अज्ञेतावस्था है। इस परमार्थ तरंग की बिन्दु बौद्ध लोग शून्य कहते। नारयानुन ने आर्यश्रितिकों कश्चित् की थी—शून्य, प्रकारशून्य, अतिशून्य और महाशून्य। यह मेदीकरण अर्थकरण शून्यता से संबंधित है। पहला शून्य महाकाव्य है। इसमें बिन्दु संकलन विचार प्रदान रखा है। इसी लिए इससे पर्यंत्र कहा जाता है। इस प्रकारमक शून्य की अभिव्यक्ति की मानी गयी है। इसके अर्थ अन्तर्मन्त्र का अन्तर्ल वा अकारणिक बीजाक्षर भी कहते हैं।<sup>१</sup> अतिशून्य आलोचक रूप माना गया है। इसी को उपाय भी कहते हैं। वह दक्षिण पूर्व मंडल ब्रह्म और पुरुष भी कहलाता है। वह मन से परमभूत रखा है। तृतीय अवस्था अतिशून्य की है। वह शून्यातिशून्य का प्रबोधन के मिश्रणसे सिद्ध होती है। यह अवस्था भी दोषों से मुक्त मानी जाती है। महाशून्य का बोधो से मुक्त हो जाता है। तब उसे सर्वशून्य कहते हैं। इसी को तदनुभव कहते हैं, यही मायाभाव रहित अवस्था है। सिद्ध कश्चित् द्वारा बर्णित आर्यशून्य का भी वही अर्थ है। प्रबोधन ही बौद्ध संघ में शून्याशून्य का गये हैं। इन दोनों का लक्षण ही बौद्ध संघ साधना का प्रधान लक्षण माना गया है। प्रबोधन के योग का विधा का लक्षण महाराग माना गया है। यह महाराग गुण से ही प्राप्त होता है। योग ही संघ संघों में गुण को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। महाराग वापसि के लिए मन का बिन्दु का शून्य होना बड़ा आवश्यक है। मन के शुद्धिकरण करने के ऊपर योग तत्त्व अल्प संघ संघों में भी विशेष बल दिया गया है। यहाँ पर हम बोधी ही बर्णन मन के शुद्धिकरण की कर देना चाहते हैं।

मन के शुद्धिकरण पर योग तथा संघ संघों में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय धर्मिक में विशेष बल दिया है।

**राजयोग साधना**—योग क्षेत्र में राजयोग का बड़ा महत्त्व माना गया है। इसका प्रमुख प्रभाव यह है कि इसके लिए बितने पर्यायवाची शब्द इत साधना के लिए प्रसिद्ध हैं। उजने और किसी के लिए नहीं। इतयोग प्रदीपिका में लिखा है कि राजयोग की प्रसिद्ध उजनी, मनोज्ञानी, अमरवर्ण, सपतल, शून्याशून्य, परमवर्ण

<sup>१</sup> सिद्धभारती—भा० बर्मबीर पृ० १८१



राजयोग कहते हैं। शिव संहिता में राजयोग का निरूपण लगभग इसी ढंग पर किया गया है।<sup>१</sup> इस प्रकार हम राजयोग को मनकम योग और स्थान योग कह सकते हैं। कुछ लोग इसे समाधि बाण भी कहते हैं। बाह्य में समाधि योग इसका ठिक रूप होता है और स्थान योग उसका काव्य रूप होता है। जो भी हो हम राजयोग को परिशुद्ध मन को आधार में लीन करना समझते हैं।

**राजाधिराज<sup>२</sup> योग<sup>३</sup>—** शिव संहिता में एक राजाधिराज योग का भी उल्लेख मिलता है। इसका बर्णन करते हुए उतमें लिखा है कि बुद्धिमान् योगी को वेदाभिरुक्त ढंग से मन और बीच को निराकार करके मन को बीच पर केन्द्रित करना चाहिए। जब मन स्थान योग से वृत्तिहीन हो जायगा तो वह स्वयं आत्मस्वरूप हो जायगा। ऐसा योगी सर्वत्र आत्मदर्शन ही करता है। इसी योगी को उतमें उद्गमस्त कहा गया है। वह सब प्रकार के बंध मोक्ष से रहित रहता है। इस योग के स्वप्न का उल्लेख में बर्णन करते हुए प्रथकार ने लिखा है—

अहमस्मीति सन्मरुधा श्रीबाराणपरमात्मनो ।  
 अहं त्वमेतदुभयं व्यक्तत्वा सख्यं विचिन्तयेत् ॥ २०३ ॥  
 अग्यारोपापबाह्याभ्यां यत्र सर्वं विस्तीर्यते ।  
 तद्बीजमाभयेवोगी सर्वसंग विवर्जितः ॥ २१० ॥

योगी को अपनी बीजात्मा को परमात्मा के लक्ष्य समझना चाहिए। उसे हम हम अनित्य हैतुमूलक मात्र का परिचय कर देना चाहिए। उसे अज्ञान ब्रह्म का स्थितन करते हुए अकारण और अपवाद द्वारा सर्वसंगरहित होकर विचित्रचित्त को आत्मा में लीन करना चाहिए।

<sup>१</sup> इन्द्रयोग प्रतीपिका ७।२२ की टीका से उद्धृत

<sup>२</sup> शिव संहिता—पौषर्षो पठत  
 राजयोगोमया क्वातः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ।  
 राजाधिराजयोगोऽयं क्यपामि समासत ॥ २०३ ॥

<sup>३</sup> शिव संहिता—पौषर्षो पठत  
 निराहम्भं मयेऽम्भं बं ज्ञात्वा वेदात्तपुनितः ।  
 विराहम्भं मया कृत्वा न विचिन्तयेत्सुधीः ॥ २०२ ॥

<sup>४</sup> शिव संहिता—पौषर्षो पठत  
 एतद्ब्रह्मात्माम्भ्यामिद्विमेकत्वेन न संशयः ।  
 वृत्तिहीनं मया कृत्वा पूर्वकृतं स्वर्गं मयेत् ॥ २०१ ॥

<sup>५</sup> शिव संहिता से उद्धृत

**अद्वैतारक योग अथवा लक्ष्य योग**—राजयोग के प्रथम में अद्वैतारक

योग का स्वीकरण कर देना भी आवश्यक है क्योंकि संत लोग अप्रत्यक्ष रूप से इच्छे में प्रभावित हुए थे। अद्वैतारक योग का विवेचन अद्वैतारकोपनिषद् में किया गया है। इस ग्रंथ की धूमिका में श्लोक ने अद्वैतारक योग को राजयोग का सर्वस्व पानित किया है।<sup>१</sup> इस योग साधना के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उपनिषद्कार ने लिखा है कि साधक को सदैव अपनी आँसुं बंद करके तथा विविध उन्मीलित करके तथा दृष्टि को अंतर्मुखी बनाना करना ही अद्वैतारक योग का उद्देश्य है।<sup>२</sup> अतः अद्वैतारक योग के उद्देश्य के ऊपर अभिधान के तंत्र का उल्लेख देना आवश्यक है। अद्वैतारक योग के उद्देश्य को साधक तद्रूप अर्थात् चैतन्यरूप हो जाता है। यही तारक योग है।<sup>३</sup> इस योग को तारक नाम इसलिए दिया गया है कि यह जीव का गर्म, जन्म, मरण, संसार आदि पदों से उच्चार करता है। इसकी साधना करने वाला जीव और ईश्वर के भेद को मापारूप समझकर उलका परिवर्तन कर देता है। अतः साधक को एक अंतर्लक्ष्य, बदिलक्ष्य और मध्यलक्ष्य। अंतर्लक्ष्य का वर्णन करते हुए उपनिषद्कार ने लिखा है कि शरीर के मध्य में सुमुग्धा नाम की एक करिणी एवं पूर्ण अन्तःकृत के उदर अतिवाली और मुखात् एव ही तच्छुद्धि की कुंडलिनी रहती है। उसके मन से देवदत्त साधक सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। और यदि साधक निरंतर मलक के ऊपरी भाग पर उसके दिव्य तंत्र का ध्यान एवं दर्शन करे तो उसे शीघ्र ही विद्वि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार की साधना करते-करते तर्जनी से बन्द किये हुए कानों में सुषार शब्द उत्पन्न होता है। उस शब्द में मन के तीन ही भागों पर साधक को आँसुं क नीच में एक नीच व्याधि वाला स्थल दिखाई पड़ता है। अंतर्मुखी दृष्टि से उसे देखकर योगी निरतिशय मुग्ध हो जाता है।

<sup>१</sup> अद्वैतारकोपनिषद् पृ० १

<sup>२</sup> चित्तारकनीतिमिति सदा भावयन् सत्यम् किमिति वाचः चित्तुन्मीलित्वको वा चन्तारक्या आहाराणुपरि सारिचक्षुःकरोता वृत्तकर्म पराङ्मनावलोचयन् तद्गुणैः भवति ।

<sup>३</sup> अद्वैतारकोपनिषद्—तीमता गद्य  
 'गद्यक्रम आत्मपर्यन्तार विचारात् सतारधनि तत्सतारधनिनि । ओवेरवती ।  
 भाविकादिनि विनाश सचिद्वेद भेति नेनोनि विहाय यद्वदित्यन्ते तद्वर्षं मल ॥



अंतर्लक्षण का यही विधान है। इस प्रकार का अंतर्लक्षण हृदय पर भी किया जा सकता है।<sup>१</sup>

अब अंतर्लक्षण पर विचार कर लेना चाहते हैं। उपनिषद्धार में लिखा है कि जो सामक नीला बुद्धि की श्यामता से रचित भीले रंग के आकाश को अपनी नाक के सामने धार, छू, झट, एत अथवा बाह्य अंगुल की दूरी पर देखता है वह योगी हो जाता है। जो व्यक्ति आकाश की ओर निरंतर देखता है उसकी आँखों के सामने अतिरिक्त प्रकाश आते हैं। उनको देखकर जोनी योगी होता है। तथा वह योगी कृत स्वर्ण के उद्यत अतिरिक्त प्रकाश को अपने आँगनों की अथवा दृष्टि पर देखता है। उठती दृष्टि स्थिर हो जाती है। जो योगी अपनी दृष्टि को अपने तिर से बाह्य अंगुल की दूरी पर स्थिर करता है उसे अक्षय प्राप्त होता है। मध्य लक्षण का लक्षण देते हुए अक्षय में लिखा है कि मध्य लक्षण वाला योगी प्रातःकालीन पूर्व के मंदक के उद्यत विविध रंगे अति पर मोक्षि बाला की अक्षयि की प्रतीत होती है अथवा जो उठते विहीन अंतर्लक्षण के उद्यत अति को देखता है वह तदाक्षर अक्षयि हो जाता है। इनको बार बार देखने से निर्गुण आकाश की उत्पत्ति हो जाती है। इसी प्रकार पराक्षय का अभाव होता है और फिर महाअक्षय य। पुनश्च यह लक्षणकार को देखता है और अंत में अक्षय को देखता है। इस प्रकार लक्षण पर दृष्टि रखने से अक्षयप्रत्यक्ष अक्षय हो जाती है।<sup>२</sup> तारकयोग की इस लक्षण प्रभावता के कारण ही इसे लक्षणयोग भी कहा जा सकता है। संत तुलसीदास ने इसे लक्षणयोग के नाम से ही अक्षयि किया है। तारक योग के दो भेद बतायाने गये हैं—एक पूर्व, दूसरा उत्तर। पूर्व का नाम तारक और उत्तर का अक्षय रखा गया है।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> अक्षयतारकोपनिषद्—पूर्वार्ध गद्य भाग

प्रथम अक्षयतारकी मुमुक्षुता पूर्वकपिभी पूर्वकप्रथमा वर्तते। एतत् सूत्राचार्यद्वारा अक्षयतारकी मन्त्रि। तन्मध्ये तादृशमेति सूत्राक्षयतार सूत्रांगी कृष्णनीति प्रसिद्धास्ति। तां दृष्ट्वा मनसि चरः सर्वपापविनाश द्वारा मुमुक्षु भवति। जो उर्ध्वकक्षत्र मन्त्रसे विरलं तेजस्तारकं योगाक्षयिपूर्वकं परपति चैर सिद्धो भवति। तदेव प्रौढमयीक्षितकर्मप्रद्वेषे तत्र पूर्वक तन्मे जायते। तत्र स्थिते भवति अक्षयतार गतकीक अति स्थिते विहीनप्रत्यक्षत्वा विरहितगुणं प्राप्नोति।

पूर्वं हृदये परपति। एवमन्तर्लक्षणं मुमुक्षु भिषास्वम् ॥

<sup>२</sup> अक्षयतारकोपनिषद् सतर्षी गद्यांश ६ किये

<sup>३</sup> अक्षयतारकोपनिषद् गद्यांश ७ पक्षांश ७ ४ ८



साक्षात्कारी महारथा वे । आचार्य विविमर्शन सेन के शब्दों में उनकी आध्यात्मिक लुपा और आर्थात्मा विश्वमायी है । वे कुछ भी छोड़ना नहीं चाहते, इसीलिए वह प्रह्वरथीत नहीं वास्तव में आचार्य की की यह धारणा उनकी भाग साधना के संबंध में अद्वैताः सत्य है । उनके समय में योग की अनेक धारणें प्रचलमान थीं । जिनमें इत्योग, कुञ्ज कुंडलनी भाग, शिवशक्तियोग, नादविन्दुयोग, मनशून्य लययोग, शून्यासिशून्य लययोग, प्रह्वोगाय लययोग, रात्रयोग, नादलय योग, श्वोतिर्लययोग, द्वैताद्वैतयोग, मंत्रयोग, लहकयोग, आदि आदि प्रमुख हैं । वास्तव में ये सब एक ही रात्राधितमयोग वा आत्म-त्मयोग का रूपान्तर हैं । इन उच्चरी आध्यात्मभूमि उपनिषदों में बर्णित आत्म-ध्या-त्मयोग ही है । यही आत्मपरमात्मयोग अर्थात्तमयोग, अद्वैतयोग, सप्रभियोग, रात्रा-धितम भागों आदि के नामों से प्रसिद्ध है ।

योग का प्रसिद्ध सिद्धांत सिद्ध में प्रज्ञाह की कल्पना है । गोरक्षनाथ ने इससे सिद्ध समर्थित कहा है । इस सिद्धांत के अनुसार सिद्ध में समस्त प्रज्ञाह की कल्पना की जाती है । प्रज्ञाह में दो प्रश्नर की शक्तिर्वा लक्षित हैं—स्वच्छि शक्ति और समच्छि शक्ति । सिद्ध में भी इन दोनों शक्तियों की कल्पना की गयी है । उपनिषदों में भी इस कल्पना की शर्तकी मिलती है । ऋग्यजुर्वेद में छाया और आलय के उदर दो तत्त्वों का उल्लेख किया गया है । श्वेताश्वतर उपनिषद में यही बात दो शक्तिों के रूपक से बर्णित की गयी है । वास्तव में ये दोनों पक्षी अथवा छाया और आलय स्पष्टि और समच्छि शक्ति के ही प्रतीक हैं । प्रत्येक योग साधना का लक्ष्य स्वच्छ शक्ति का समच्छि शक्ति में लय करना माना गया है । यह बात दृश्य है कि भिन्न-भिन्न योग धाराओं में इन दोनों के लिए भिन्न-भिन्न नाम भी बर्णित किये हैं । इन दोनों के मिलने से एक हीतरी अवरथा भी उदित होती है । इसका भी नामधरव भिन्न-भिन्न योग-धाराओं में अलग-अलग ही किया गया है । संतों ने स्पष्टि शक्ति, समच्छि शक्ति तथा उनके योग से प्राप्त होने वाली अवरथा के लिए क्रमशः सुरति निरति और स्वयम् शब्दों का प्रयोग किया है । संत कबीर ने लिखा है—

“सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।  
सुरति निरति परचामया, तब लुले स्वयम् हुधार ॥

अर्थात् जब सुरति (निवृत्तस्था स्पष्टि शक्ति) निरति में (निवृत्तस्थ समच्छि शक्ति) में लीन हो जाती है तब स्वयम् द्वार कुल जाता है । संतों ने बिनके लिए सुरति,

१ योगार्क पृ० २३३  
२ ऋग्यजुर्वेद १।१।१  
३ श्वेताश्वतर ३।९

निर्णय और शंभु शब्दों का प्रयोग किया है उनके लिए तत्कालीन मित्र-मित्र बोध साधनाओं में जो नाम प्रचलित थे वे निम्नलिखित सारणी से सम्बन्धित किये जाते हैं :—

योग धाराएँ :	सुरधि	निर्घृति	स्वप्न अथवा शम्भु
हठयोग :	प्राण	अपान	अनलशिला, अमल्य
	इडा	पिंगला	कुमुदा
	सन्द	सर्व	ब्रह्म अधि
कुम्भकुम्भसिनी :	कुम्भसिनी	कुम्भ	अङ्गुला
नाम्बिन्दु योग :	बिन्दु	नाद	अनहद
शिबशक्ति योग	शक्ति	शिब	परमशिब समरधवा
मनशून्य लययोग :	मन	शून्य	शून्यातिशून्य (लययोग)
शून्यातिशून्य योग	शून्य	अतिशून्य	शून्यातिशून्य
प्रज्ञापाय योग :	प्रज्ञा	उपाय	मन्त्रासुख
राजयोग :	मन	रामन	मनोम्पनी
नासलय योग :	मन	नाद	उम्पनी
बोविलय योग :	बोविलि	निरङ्गन	अद्वैत
राजाधिराज योग :	आत्मा	परमात्मा	बीव-मुक्ति
सहज योग	रागारिनप्रवृत्ति	सहज	सहज समाधि
मन्त्र योग :	शम्भारिनअ आत्मा शब्द ब्रह्म	बेहद	अनहदनाद
हरबेहद योग :	हर	बेहद	दोनो से परे
द्वैताद्वैतवाद :	द्वैत	अद्वैत	द्वैताद्वैत विलक्षण

सन्तो में हमें उपरोक्त सभी योगों की खर्चा मिलती है। कुछ का व्युत्पत्ति इन्होंने वृत्तशक्ति के रूप में किया है और कुछ को विद्वान् रूप में स्वीकार करते थे। वृत्तशक्ति के रूप में बर्णित योगों के नाम क्रमशः हठयोग, कुम्भ कुम्भसिनी योग, मादबिन्दु योग, शिबशक्ति योग, प्रज्ञापाय योग हैं। इन सभी योगों का सम्बन्ध प्रायः हठयोग से ही है। लय योग हठयोग का पक्ष में नहीं थे। उन्होंने अनेक स्थलों पर उक्तभी निम्ना भी है। पर हम वीर्य दिशा जाते हैं। उनका लक्षण हठयोगियों को लययोग अथवा राजयोग की ओर प्रेरित करना था। सन्तो ने इन्हीं दोनों को अधिक मान्यता दी है। इन दोनों के विचार करवाते ही खर्चा भी उनमें पार जाती है। लययोग के स्वरूपों में उन्होंने मन शून्य लययोग, शून्यातिशून्य लययोग, नादलय योग, बोविलय योग और सहज लय योग की खर्चा भी है। सद्वचन योग उनका अन्तः सिद्धांत पक्ष था। शेष अन्य पहले से प्रचलित थे। पाल्ना में उनका सद्वचन, राजयोग और राजाधिराजयोग का मिश्रित रूप है। इनके अतिरिक्त सन्तो ने हर-बेहद योग और द्वैताद्वैत योग भी

मलक मिलती है। मन्त्रयोग के प्रति भी उनकी पूरी धारणा थी। बाह्य में उनका शब्द गुरुति योग, सप्तयोग, मन्त्रयोग और धर्मयोग का मिश्रित रूप है।

'गुरुति' का स्वरूप और अर्थ बाह्य में अनिश्चयी है। यह आत्मा, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, बीज आदि सबसे बिलक्षण होते हुए भी वह कुछ है। उक्त लोग गुरुति को कित्त-कित्त तरह से मिस्र मानते थे। इसकी बीज हमें उनकी बानियों में करनी पड़ेगी। उक्त शब्द बीज को गुरुति से मिस्र-मिस्र मानते थे यह बात उनकी इस पंक्ति से स्पष्ट है—

बिरह अगावै हरद को हरद अगावै जीब ।

बीज अगावै गुरुति को गुरुति अगावै बीज ॥ शब्द मा० १ पृ० ४२ ॥

यहाँ पर 'गुरुति' को बीज से बिलक्षण ही नहीं उल्लेख करते भी धर्मित किया गया है। एक दूसरे स्थल पर शब्द 'गुरुति' ने गुरुति को प्राण से भी मिस्र धर्मित किया है। उन्होंने गुरुति को प्राण कही इस की बह ब्या है। इसी प्रकार गुरुति, मन, बुद्धि और चित्त आदि से बिलक्षण भी मानी गई है। शब्द ने स्पष्ट सिखा है—

प्राण शरीर गुरुति अब मल मोमि धामादि ।

रस पीयै फूलै फले शब्द सृष्टि नादि ॥

गुरुति अहङ्कार से भी मिस्र होती है। उक्त कबीर ने एक स्थल पर लिखा है कि—'गुरुति बार अहङ्कार तो न मुझा बोधस्तन द्वार।'<sup>१</sup> 'गुरुति' का अर्थ अर्धगुणी ब्रह्म ही नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अर्थ शब्दों की उसकी वास्तविकी वाचना के मेल में नहीं है। यह वाचना शब्दों की प्राणमूर्त वाचना कही जा सकती है। कबीर<sup>२</sup> ने लिखा है जो उसकी वाचना करता है वही इमाध गुरु है। उक्त शब्द ने तो एक स्थल पर गुरुति को उल्लेख करते ही बात कही है—

गुरुति अपुण्यी फेरिकर आठम माई आय ।

आगि रहे गुरु देव सों शब्द सोई सवाय ॥<sup>३</sup>

यहाँ पर हम पंक्तियों में एक बात और स्पष्ट है कि उक्त लोग गुरुति को अर्ध-गुणी ब्रह्म से ही मिस्र नहीं मानते थे शब्द/आत्मा से भी मिस्र समझते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्धगुण विवेचन से स्पष्ट है कि उक्त लोग विद्वान् रूप से

<sup>१</sup> शब्दमात्र की बानी भाग १, पृ० २८

<sup>२</sup> कबीर प्रणवकली पृ० १०२

<sup>३</sup> शब्दमात्र की बानी भाग १, पृ० ८६

<sup>४</sup> शब्दमात्र की बानी भाग १ पृ० ११०

सृष्टि को आत्मा मान्य, बीज, यम, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, रसुक्ति आदि सबके मिलकर मानते थे। बनारी दृष्टि में सृष्टि शब्दात्मक आत्मा (को वाग में कुंडली के नाम से प्रकिय है) की वस्तु है। निरति को वे शुद्ध शुद्ध विद्वान् शब्द ब्रह्म का प्रतीक मानते थे। दादू एक स्थल पर लिखता है—

सबदे सबद समाहृत पर आत्म सो पाय १<sup>१</sup>

अर्थात् शब्दात्मक प्राय को शब्दात्मक ब्रह्म में लीन करता आदि। अन्य हरिया शास्त्र में एक स्थल पर स्पष्ट शब्दों में शब्दात्मक सृष्टि के गुणों में आशय होने की बात कही है। (हरिया शास्त्र पृ० ३६) पलटू शास्त्र सृष्टि और शब्द के मिलन में ही आनन्द को अनुभूति करते थे।<sup>२</sup>

“सृष्टि शब्द के मिलन में मुझको मया आनन्द।”

यदि सृष्टि शब्द रूपकी न होती तो वह शब्द ब्रह्म को अनुभव नहीं कर सकती थी। क्योंकि दर्शन का प्रकिय विद्वान् है कि तात्-विशेष की अनुभूति तभी तब के तद्वारे सम्भव होती है। तन्त्र लोग इस विद्वान् से परिचित थे क्योंकि तन्त्र दादू ने एक स्थल पर लिखा है कि घट का परिवर्णन घट से होता है और प्राय का परिवर्णन प्राय से ही हो सकता है।<sup>३</sup>

इससे स्पष्ट है कि ‘सृष्टि’ का प्रयोग तन्त्रों ने शब्दात्मक बीज के लिए ही किया है। पलटू ने तो एक स्थान पर ‘सृष्टि’ के स्थान पर पुन शब्द का प्रयोग भी कर सकता है। मुक्ति का पर्यायवाची शब्द होता है। कई आशयों नहीं कि इस शब्द का ही तन्त्रों ने अपना शास्त्र से सृष्टि कर डाला हो और ‘निरति’ की अन्वया श्रेय तन्त्रों तद्द से तबके अनुकरण पर कर ली गई हो किंतु तद्द से विगत से तन्त्र में विगत शब्द की अन्वया कर ली गई थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि तन्त्र लोग सृष्टि को नादात्मक बीज रूप मानते थे। तब दादू ने एक स्थान पर सृष्टि को बीज रूप कहा भी है। पलटू ने भी एक स्थान पर—‘सृष्टि अमान करि नाम निजाना मार’ लिखकर ‘सृष्टि’ को बीज का आत्मा रूप ही वस्तु किया है। सृष्टि बीज प्राय नहीं है, वह शब्दात्मक बीज है। बीज शब्द का प्रयोग वेदान्त में किया जाता है। वही पर वह आत्मा का अर्थ अज्ञानोद्दित रूप माना गया है। किन्तु सृष्टि का अर्थ में वह बात नहीं है। सृष्टि को इन विद्वान् शब्द का स्थूल रूप मान सकते हैं। शब्द के पार कर बतलाए

<sup>१</sup> बनटू शास्त्र की बानी भाग १, पृ० ३६

<sup>२</sup> वही

<sup>३</sup> दादू शास्त्र की बानी पृ० ३६

‘घट बोधे घट घट सौ प्राय परीचै प्राय।’

गये हैं—परा, परब्रह्म, मम्ममा और बैखरी। मूर्ति हमारी समझ में परब्रह्म, मम्ममा और बैखरी के लिए मनुक किया गया है। बास्तव में यह एक ही वाक् के रूप हैं जो एक और स्थूल। बैखरी स्थूल है उठथी अर्थात् कण्ठ के ऊपर होती है। मम्ममा और परब्रह्म सूक्ष्म रूप हैं, हमथी स्थिति कण्ठ के नीचे रहती है।

इतयुग क्षेत्र में शब्दात्मिन्द्र बीज शक्ति कुंडलनी बिन्दु, शक्ति आदि के नामों से भी प्रसिद्ध रही है। कुंडलनी योग में उसे कुंडलनी कहा जाता है। नाद बिन्दु योग में उसे बिन्दु कहा गया है। शिवशक्तियोग में यह शक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। बीज-उन्मो में उठी को प्रसा कहा गया है। हिन्दू ग्रन्थों में उठथी प्रयोग व्याप्ति के रूप में भी की गई है। उन्मो ने मूर्ति का प्रयोग उरपुंक्त योग पाराशरों के अनुश्रवण पर कुंडलनी, बिन्दु, शक्ति, शक्ति आदि के रूप में भी किया है। इसका कारण हमारी समझ में यह था कि वे लोग अपनी वापना को दूसरे योग वापकों में भी प्रसिद्ध करना चाहते थे। मूर्ति के समान ही उन्मो निरति शब्द का प्रयोग भी कुल कुंडलनी योग, नादबिन्दु योग, शब्द मूर्ति योग, शिवशक्ति योग, प्रयोग योग, शक्तिर्लप योग, के अनुश्रवण पर कुल, नाद, शिव, उठाव और निरजन आदि शब्दों के अर्थ में किया है। उन्मो मूर्ति और निरति को नाद और बिन्दु का समान मानते थे। यह बात भीला साहब की बानी से स्पष्ट है—

“मूर्ति निरति का मेला होय, नाद और बिन्दु एकसम सोय।”

कुल रूपकों पर तो उन्मोने मूर्ति और निरति का प्रयोग न करके नाद और बिन्दु का ही प्रयोग किया है—

“नाद बिन्दु का मूल होय वे साहिव वे सेवक सोय।”

मूर्ति और निरति का प्रयोग उन्मो ने शिव और शक्ति के अर्थ में भी किया है। उन्मो ने एक स्थल पर मूर्ति और निरति का उल्लेख न करके शिव और शक्ति का ही नाम किया है—

काष्टि सकतो शिव सह्य पुकास्यो एकै-एक समाना<sup>१</sup>

इसी प्रकार लोच करने पर ‘मूर्ति’ ‘निरति’ के लिए कुंडलनी और कुल, प्रसा और उठाव आदि शब्दों का प्रयोग भी मिल सकता है। उन्मो का अभिप्राय यह है कि उन्मो का मूर्ति शब्द योग कुलकुंडलनी योग, नादबिन्दु योग, शिवशक्ति योग, प्रयोग योग, शक्तिर्लपयोग आदि से बहुत कुछ सम्बन्ध रहता है। अंतर केवल इतना ही है कि

<sup>१</sup> भीला साहब की बानी पृ० १७

<sup>२</sup> भीला साहब की बानी पृ० १०

<sup>३</sup> कबीर प्रसावली पृ०

इन सब योग शास्त्रों में हठ को प्रधानता दी गयी है जबकि संत लोग हठ के विस्तृत विस्मय थे।

छठों में हठयोगिक शिक्षाओं को साधयोग में पूर्ववर्धित करने की चेष्टा की है। इस चेष्टा के फलस्वरूप इनके सुरुति और निरुति शब्द क्रमशः मन, श्म्य, श्म्यतिश्म्य, मन और नाद आदि के अर्थों में भी प्रयुक्त हुए हैं। सहजयोग के प्रयोग में यहाँ कहीं सुरुति शब्द का प्रयोग किया गया है, यहाँ वह योगशिक्षा वृत्ति का वाचक है। क्योंकि सहज योग का प्राकृतिक शिक्षावत योगशिक्षा वृत्ति को ही अंतर्मुखी करके सहज ब्रह्म में लीन करना है। छठों ने कहीं-कहीं पर सुरुति और 'निरुति' शब्दों के माथों की व्यंजना हर और वेद के अर्थों में भी की है। अण्पात्म योग के प्रयोग में यदि यहाँ 'सुरुति' 'निरुति' शब्द का प्रयोग मिले तो यहाँ पर इनका अर्थ भीवत्तया और परमात्मा लेना होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सुरुति' और 'निरुति' शब्द का छठों ने बहुत व्यापक प्रयोग किया है। किन्तु शिक्षावत रूप में वे सुरुति को शब्दात्मक भीवत्तया और निरुति को वे शब्द ब्रह्म ही मानते थे।

छठों में सुरुतिलक्षणयोग साधना के तीन उदाहरण वस्तुओं पर विशेष बल दिया है। वे हैं—जप, ध्यान और विचार। छठों में जप साधना के अंतर्गत अक्षरा और नाम जप को बहुत महत्त्व दिया है। अक्षराजप से सुरुति लय योग चिठ प्रथम उन्नत होता है इसलिये संकेत करते हुए द्वाबाई ने लिखा है—

द्वाबाबा अक्षरा जपौ सुरुति स्वांस में लाओ।

अथ तर्प मधि सुरुति धरि जपे जो अक्षराजप ॥<sup>१</sup>

इन पंक्तियों में द्वाबाई ने स्वांस में सुरुति में लाने की बात बड़े-बड़े प्राज्ञाश्रम की ओर संकेत किया है। अक्षराजप के लिये ह्वा, गिंगला और गुणुमा नाडी में शब्दरूपा कुंडलनी को आकृष्ट करना होता है। उपर्युक्त उदाहरण अर्थात् तर्प और मधि क्रमशः ह्वा, गिंगला और गुणुमा के लक्षण हैं। सुरुति का अर्थ शब्दात्मिक भीवत्तया वृत्ति है। एक दूसरे लक्षण पर लक्ष्मी अक्षरा का उल्लेख एक दूसरे प्रकार से किया है। वह यही है—

द्वा सकार ह्कार अक्षर को जो जप करता।

अंतर ह्य चक्रियार अक्षरा सब हला ॥

मथम पैठ पाताल में धमक पड़े आकास।

द्वा सुरुति नन्ही भई बांध वस्तु निज स्वांस ॥<sup>२</sup>

<sup>१</sup> द्वाबाई की बातें पृ० १०

<sup>२</sup> सप्तमुपाहार पृ०



अवधारण के सहज ही सुरति लय योग में नाम रूप का महत्त्व है। नामरूप से सुरति निरति अर्थात् संयोग कैसे होता है, इसका संकेत करते हुए भीला साहब करते हैं—

हरब्रह्म नाम सुनत अभि अन्तर अनुभव मधुरवचनियार्।<sup>१</sup>

सुनत सुनत विज्ञानमय अक्ष सागी खगी सुरति निरत वनमुनियार्।

सुरति लय योग के साधन के रूप में संतों ने ध्यान को भी महत्त्व दिया है। यह ध्यान तन मन और बुद्धि सबसे परम्य होना चाहिए। दादू ने लिखा है—

सबह सुरति छय साज चित्त वन मन मनसाकरहि<sup>२</sup>

ध्यान के अतिरिक्त संतों ने लय योग साधना में विचार को भी महत्त्व दिया है।

संतों ने सुरति लय योग की उत्कृष्टता के लिए सुरति को अंतर्मुखी करने का उपदेश भी दिया है। ऐसे स्थलों पर सुरति का अर्थ योगात्मिक चित्तवृत्ति सिद्ध जायेगा। यह अर्थवचन अर्थात् विषय है अतएव वही पर इसका विवेचन करेंगे।

सुरति योग के अतिरिक्त संतों ने लय योग के और भी कई प्रकार मिलते हैं, जिनमें मन 'नाद' लय योग, मन अमुन लय योग, शून्यातिशून्य लय योग विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सब का संबंध सहज योग से भी है। इन्हें हम शब्द सुरति योग और सहजयोग के बीच की योग साधनाएँ मानते हैं। इन सभी लय योग साधनाओं का संबंध ध्यान और धारणा से बहुत अधिक है। मन नादलय योग का वर्णन संतों में अधिक नहीं मिलता है किन्तु फिर भी कहीं कहीं पर इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। दयादाई ने विविध प्रकार के मादों का वर्णन करते-करते उनमें मन को लीन करने का संकेत किया है—

घंटा लाल मृदंग अग्नि सिंह गरज पुनि होय।

दया सुनत गुरु कृपा सेँ बिरलासाधु फोय ॥

गगन मध्य मुरली बजे जे मुनि निज कान।

दया दया गुरु सेवा की पायो पद निरवान ॥<sup>३</sup>

अनहद माद में मन को लय करने की बात संतों ने उदाहरणों द्वारा भी की है। दादू लिखते हैं—

<sup>१</sup> भीला साहब की बानी पृ० १२

<sup>२</sup> दादूदास की बानी भाग १ पृ० ७२

<sup>३</sup> दयादाई की बानी पृ० ११

अनमय काटें रोग को अनहृद् उपजि जाय ।  
सोई अनुभव सोई उपजि सोई सबद् ठव सार ॥  
सुणता ही साहिब मिलै मन का जाहि पिचार ।<sup>१</sup>

मन उम्नन तब योग की मूर्च्छी मी संतों में मिली है । मन को उम्नन रूपी परमात्मा में लीन करने से मन निर्मल हो जाता है । संत दादू ने एक स्थल पर लिखा है—<sup>२</sup>—“वैले मन को मन से चोकर उम्ननी में लीन करता पाहिए तमी बह निर्मल होता है । मन उम्नन तब योग के लिए उम्ननी प्यान और उम्ननी मुद्रा की साधना बहुत आवश्यक होती है । उम्ननी प्यान से ही उम्ननी समाधि सिद्ध होती है । संत दादू ने लिखा है कि बैरागी बेगी सदैव उम्ननी प्यान में ही लीन रहता है ।<sup>३</sup> इस उम्ननी प्यान की उपलब्धि घट के अंदर होती है । दूसरे शब्दों में यह यह कहते हैं कि मन का अंतर्मुखी करने पर ही उम्ननी प्यान लगता है । कबीर कहते हैं—<sup>४</sup>—“सोग परमप्रमा को बाहर दूँदने में सारा जीवन मष्ट कर देवे हैं किन्तु उम्ननी प्यान से उसकी उपलब्धि घट के भीतर हो हो सकती है । यही उम्नन प्यान पीरे पीरे उम्नन समाधि में परिणत हो जाता है । कबीर कहते हैं—<sup>५</sup>—“उम्नि प्यान में संलम्न रहने के कारण मन एक गवा है, सहज समाधि लग गयी है किसी बात का बर्चन मही किया जा सकता ।” उम्ननि प्यान की उच्छ्रिता उम्ननि मुद्रा पर आभित रहती है । मन का अंतर्मुखी करना ही उम्ननि मुद्रा है । कबीर ने लिखा है कि “ठावक को पाहिए कि मन को अंतर्मुखी करके उम्ननि मुद्रा में प्यान लगावै ।” उम्ननि मुद्रा में उम्नन प्यान करने से मन शून्य में समा जाता है । यही मन उम्नन तब योग वा मन शून्य तब योग है । मन उम्नन योग से संबंधित यहाँ पर एक बात और प्यान देने की है । वह है मन का परिष्कार । उम्ननि मुद्रा में मन को अंतर्मुखी करना होता है । मन तब तक अंतर्मुखी नहीं होता है जब तक हान और सदाचार का आभाव न लिया जाय । संत दादू ने लिखा है कि मन करीमूगा को जानरूपी लहग से मारना चाहिए ।<sup>६</sup> सदाचार का उददेश

<sup>१</sup> दादूपावक की बानी माग १ पृ० ११०

<sup>२</sup> दादू माग २ पृ० १११

<sup>३</sup> तुगिया बैरागी बाबा रही चकेडा उम्ननी आण्य ।

<sup>४</sup> कबीर प्रियावली पृ० १४

बाहर लोअन बनम गंहाया उम्नन प्यान घट भीतर पाया ।

<sup>५</sup> कबीर प्रियावली पृ० १०४

धरिज मनो मन करपो न जय सज्ज समाधि रणो खय जाय ।

<sup>६</sup> कबीर प्रियावली पृ० ८१

उम्नि मुद्रा प्यान लगवै मन में उठति समारै ।

अवसाय के सद्य ही सुरति लय योग में नाम लय का महत्व है। नामलय से सुरति निरति का संयोग कैसे होता है, इसका संकेत करते हुए मीमा साहब करते हैं—

हरदम नाम सुनत अमि अन्तर अनुमथ मधुरधनिर्षा ।

सुनत सुनत दिङ्माभय अल्ल क्षागी क्षागी सुरति निरत अनसुनियो ।

सुरति लय योग के लक्षण के रूप में संतों ने ध्यान को भी महत्व दिया है। यह ध्यान तन मन और बुद्धि सबसे एकत्र होना चाहिए। दासू ने लिखा है—

सबद सुरति लय साध चित्त तन मन मनसाकरहि २

ध्यान के अतिरिक्त संतों ने लय योग साधना में विचार को भी महत्व दिया है।

संतों ने सुरति लय योग की सफलता के लिए सुरति को अंतर्मुखी करने का उपदेश भी दिया है। ऐसे स्थलों पर सुरति का अर्थ एकात्मिका विचलति किया जायेगा। यह सर्वयोग का विषय है अतएव वहाँ पर इसका विवेचन करेंगे।

सुरति योग के अतिरिक्त संतों ने लय योग के और भी कई प्रकार मिलते हैं, जिनमें मन 'नाद' लय योग, मन उन्मुन लय योग, शून्यादिशून्य लय योग विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सब का संबंध सहज योग से भी है। हमें हम शब्द सुरति योग और सहजयोग के बीच की योग साधनाएँ मानते हैं। इन सभी लय योग साधनाओं का संबंध ध्यान और चारणा से बहुत अधिक है। मन नादलय योग का वर्णन संतों में अधिक नहीं मिलता है किन्तु फिर भी वहाँ वहाँ पर इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। दयाचार्ड ने विविध प्रकार के नादों का वर्णन करके उनमें मन को लीन करने का संकेत किया है—

पंटा लाल सुदंग चनि सिंह गरम पुनि होय ।

दया सुनत शुद्ध हृमा तें विरळासाधु कोब ॥

गगन मध्य सुरभी वज्र से सुनि निज कान ।

दया दया शुठ सेवा की पायो पद् निरपान ॥३

अनदद नाद में मन को लय करने की बात संतों ने वैद्यों को धार दी है। दासू लिखते हैं—

१ मीमा साहब की वाली पृ० १९

२ दासूसाहब की वाली भाग १ पृ० ७२

३ दयाचार्ड की वाली पृ० ११

अनमय घाटे रोग को अनहृद्य उपसै जाय ।  
सोई अनुमय-सोई उपसै सोई सबद् वत सार ॥  
सुणवा ही साहिब मिलै मन का आहि विचार ।<sup>१</sup>

मन उन्मत्त रूप योग की मूर्च्छी भी संतों में मिलती है। मन को उन्मत्त कभी परमात्मा में लीन करने से मन निर्मल हो जाता है। संत दादू ने एक स्थल पर लिखा है<sup>२</sup>—“मिले मन को मन से बाहर उन्मत्ती में लीन करना चाहिए तभी वह निर्मल होता है। मन उन्मत्त रूप योग के लिए उन्मत्ती प्यान और उन्मत्ती मुद्रा की साधना बहुत आवश्यक होती है। उन्मत्ती प्यान से ही उन्मत्ती समाधि सिद्ध होती है। संत दादू ने लिखा है कि बीरगी योगी तब ही उन्मत्ती प्यान में ही लीन रहता है।<sup>३</sup> इस उन्मत्ती प्यान की उत्कर्षित घट के अंदर जाती है। बृहते शब्दों में यह कह सकते हैं कि मन को अंतर्मुखी करने पर ही उन्मत्ती प्यान लगता है। कबीर कहते हैं<sup>४</sup>—“साग परमात्मा को बाहर टूटने में तारा बीजन नष्ट कर देते हैं किंतु उन्मत्ती प्यान से उसकी उत्कर्षित घट के भीतर हो हो सकती है। यही उन्मत्त प्यान पीरे पीरे उन्मत्त समाधि में परिणत हो जाता है। कबीर कहते हैं<sup>५</sup>—“उन्मत्ति प्यान में संकल्प रहने के कारण मन चक गया है, सहज समाधि तब गयी है किसी बात का चर्चन नहीं किया जा सकता।” उन्मत्ति प्यान की सफलता उन्मत्ति मुद्रा पर आश्रित रहती है। मन का अंतर्मुखी करना ही उन्मत्ति मुद्रा है। कबीर ने लिखा है कि “साधक को चाहिए कि मन को अंतर्मुखी करके उन्मत्ति मुद्रा में प्यान लगावे।” उन्मत्ति मुद्रा में उन्मत्त प्यान करने से मन शून्य में समा जाता है। यही मन उन्मत्त रूप योग का मन शून्य रूप योग है। मन उन्मत्त योग से संबंधित यहाँ पर एक बात और प्यान देने की है। यह है मन का परिष्कार। उन्मत्ति मुद्रा में मन का अंतर्मुखी करना होता है। मन तब तक अंतर्मुखी नहीं होता है जब तक ज्ञान और सदाचार का आभय न लिया जाय। संत दादू ने लिखा है कि मन कबीरगा को आनकरी लहग से मारना चाहिए।<sup>६</sup> सदाचार का उद्देश

<sup>१</sup> दादूदास की बाणी भाग १ पृ० १३६

<sup>२</sup> दादू भाग १ पृ० १६६

<sup>३</sup> सुगिया बीरगी बाबा रही चक्रेडा उन्मत्ती जाण्य ।

<sup>४</sup> कबीर प्रणयवली पृ० १४

बाहर परमात्मा अन्तर्गत गवाया उन्मत्त प्यान बर भीतर बाया ।

<sup>५</sup> कबीर प्रणयवली पृ० १०४

कहिन मनो मन कदो न जाय सहज समाधि रहो सब जाय ।

<sup>६</sup> कबीर प्रणयवली पृ० ८१

उन्मत्ति मुद्रा प्यान लगाई मन में उदरि समाई ।

तंतों में वग-वग कर दिया है। उनकी जानियों में तापना से संबंधित बितने भी विज्ञान मान्य मिलते हैं, उनमें सदाचार को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। सहजयोग के प्रसंग में इस पर और अधिक प्रकाश डालेंगे। मन जान और सदाचार से परिचित किये जाने पर ही उन्मत्ति स्थान और समाधि में लीन किया जा सकता है। यह उन्मत्ति स्थान और समाधि रस काशी कहे गये हैं। कबीर ने लिखा है—<sup>१</sup>“तापक उन्मत्ती समाधि में लीन होकर गगन में रस पिया करता है।”

मन उन्मत्ति योग से संबंधित मन शून्य योग भी है। मन को ब्रह्मरूप में, स्थित करना ही मन शून्य योग है। तंतों में शून्य के अभिधान से ब्रह्मरूप का ही उल्लेख किया है। यह बात कबीर की निम्नलिखित पंक्ति से प्रकट है—

गंगा जमुन उसके अंतरे सहज शून्य लेभो पाव । क० प्र० पृ० १८  
अर्थात् इका और शिवा के बीच में सहज शून्य है। सहजशून्य वहाँ पर सुमुक्ता के लिए प्रयुक्त हुआ है। बाग में सुमुक्ता को ही ब्रह्मरूप और शून्य पूछी भी कहते हैं। इसी सुमुक्ता या शून्य परदबी में मन को लीन करना मन शून्य योग है। इसी सुमुक्ता या ब्रह्मरूप में अनहद नाद की अनुभूति होती है। कबीर ने लिखा है<sup>२</sup>—“यस मन शून्य में समा आता है तो ब्रह्मरूप में अनहद नाद सुनाई पकता है।

संघ कबीर की दृष्टि में सत्त्वा योगी नहीं है जो सहज शून्य में लीन लगता है।  
“कई कबीर सोई जागेश्वर सहज शून्य ली लभे।”

तंतों के विविध प्रकार के लक्ष्यों का यही इतिहास है। यद्यपि लक्ष्यों में उन्हें पूरी आस्था थी किन्तु अपनी स्वामासिद्ध प्रकृति से प्रेरित होकर उन्होंने उद्योग भी सहजीकरण किया है। यह सहजीकरण प्रेम का मान्य मंगल के द्वारा किया गया है। यदि हम उनके लक्ष्यों को भाव-मंगल से विच्छिन्न कर दें तो वही सहजयोग कहलाने लगेगा। चाहे उनके इस सहजयोग पर थोड़ा विचार से विचार करेंगे।

### सहजयोग

तंतों की सामान्य प्रकृति बहिष्कृत से सहज की ओर रही है। योग क्षेत्र में उनकी इस प्रकृति का विचार बहुत रम्य दिखाई पकता है। उन्होंने हठयोग, लक्ष्ययोग, मंत्रयोग आदि लक्ष्य सहजीकरण करके उनको सहजीयोग में पर्यवर्तित करने की चेष्टा की है। तंतों की इस सहजयोग तापना पर आपात कृतिगोहन केन में प्रकाश

<sup>१</sup> दादू काशी नाम १ पृ० ११०

<sup>२</sup> कबीर प्रियावली पृ० ११

उन्मत्ति का गगन रस पीवै।

<sup>३</sup> गगन मन्त्रि मन शून्य समाता बाजी अनहद नूत। क० प्र० पृ० १०

प्रयास जाना है। यहाँ पर उनके शब्दों में सहज साधना का स्वरूप संक्षिप्त कर देना अनुपुक्त न होगा। “कबीर, दादू इत्यादि के मत से साधना सहज होनी चाहिए।” प्रतिदिन के जीवन के साथ परम-साधना का कोई विरोध न होना चाहिए। आत्म भी वैज्ञानिक माध्यम में अंगर बहना हो तो इस प्रकार कह सकते हैं—पृथ्वी जिस प्रकार अपने केन्द्र के चारों ओर घूमती हुई अपनी दैनिक गति सम्पन्न करती है और यही गति उसे सूर्य के चारों ओर और बृहस्पति वार्षिक गति के मार्ग में अग्रसर कर देती है। इसी प्रकार दैनिक जीवन शारदत जीवन को सहज ही अग्रसर कर देगा। सूर्य के चारों ओर वार्षिक गति के मार्ग में उसे न्यून अस्थी तरह चलना है, यही सोचकर पृथ्वी यदि अपनी गति बन्द कर दे तो उसकी सब गति ही तन्मूल नष्ट हो जाय।

दैनिक गति के साथ शारदत गति का भी यह सहजयोग है। उन्नीसवीं को ये संत ‘सहज पाव’ कहते हैं। नदी के तीर इन दोनों जीवनो का पूर्ण सामंजस्य है। नदी प्रतिदिन, प्रतिपक्ष अपने दोनों किनारों पर अगणित कार्य करती चलती है और साथ ही साथ अपने का अतीत समुद्र में निरन्तर निमग्नित कर रही है। उठता दण्ड पल पल जीवन उसके शारदत, जीवन के दृश्य साथ सहजयोग से युक्त है। इसमें से एक का छोड़ने से दूसरा निराश हो जाता है। इसी लिए मऊ कबीर ने कहा है, “संसार की दुःख पीड़ा जीवन को छोड़कर साधना नहीं हो सकती है।” साधना में किसी प्रकार की ‘सैना-जानी’ अर्थात् सैनिक-जान नहीं है। साधना में दैनिक और नित्य लक्ष्य में कोई विरोध नहीं है।”

उपर्युक्त उद्देश्य की प्रतिम तीन पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं। उन्नीसवीं महाराजपूर्ण बात यह कि साधना में किसी प्रकार की सैनाजानी नहीं होनी चाहिए। जब तक साधना में सैनाजानी रहेगी तब तक यह हठ साधना ही कहलावेगी। हठसाधना सर्वत्र ही नष्ट पूर्ण होती है। इसी लिए संतों ने उसके प्रति उतेषा प्रदर्शित की है।

सहज साधना का समझने के लिए एक मनोवैज्ञानिक तथ्य स्मरण रखना पड़ेगा। मानव हृदय की सहजतम और समानाधिक्रमण प्रवृत्ति राग की है। संतों ने उन्नीसवीं साप्ताहिक प्रवृत्ति का स्वाभाविक गति से विकसित करने का उद्देश्य दिया है। यह वृत्ति जब तक संतारोन्मुक्त रहती है। तब तक काम कहलाती है और जब ईश्वरोन्मुक्त हो जाती है तब उन्नीसवीं की मूर्ति कहत है। संतों ने इस माय की अभिव्यक्ति सुन्दर शब्दों में की है। संत कबीर ने लिखा है—

“यदि कहीं जान का उदुग्धाय करे तो बाय ही मनुष्य को ईश्वर से मिला करता है।” इसी माय की पुनरावृत्ति संत मन्मन्दास ने भी की है। संतों की शायी

१ मन्मन्दास के मूल कवि श्री ईश्वरदास द्वारा मन्मन्दास द्वारा संतरीत विवेकनामक निबन्ध में पृ० ८२

उच्च साधना इस काम के उच्चोत्तर में ही मध्य है। इसका उच्चोत्तर उच्चको अंतर्मुखी करने से ही हो सकता है। इसकी अंतर्मुखी करने की साधना को उच्चरी प्राप्त करना है। तब ही इस उच्चरी प्राप्त को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। कबीर ने लिखा है—“हमारा सम्बन्ध गुण नहीं है जो उच्चरी प्राप्त से परमात्मा से मिलता है।”

काम को ईश्वरमुखी करने के लिए संत लोग जोरे वैराग्य की आवश्यकता नहीं करते थे, क्योंकि वैराग्य का मार्ग कठिन और हठ साध्य है। साथ ही साथ वे संसार के मार्ग मोक्ष के पथ में भी नहीं थे। उन्होंने मध्य मार्ग का निर्देश किया है।

मन को या काम को अंतर्मुखी करना वास्तव में बहुत कठिन है। संतों ने इसको अंतर्मुखी करने के उच्च उपाय बताये हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—सामान्यतया सदापरशुपूर्व जीवन व्यतीत करना।

२—परमात्मा की रूप भ्रष्टी में निमग्न रहना और उसके प्रति तीव्र श्रुत रसित रहना।

३—सब प्रकार के काम साधनों का मानवीकरण करना।

४—अन्यासाय करना।

५—सामाजिक विचार में निमग्न रहना।

६—समाह्वित का रहना।

७—उच्चशून्य में ध्यान को लगाये रहना।

८—जन, मन, बुद्धि सभी को एक साथ परमात्मा की ओर प्रेषित करना।

९—उत्सर्गगति करना।

१०—मोक्ष।

### संतों की भक्ति साधना

भक्ति का महत्त्व और स्वरूप—माखीय साधना क्षेत्र में भक्ति मार्ग की बड़ी प्रसिद्ध है। गीता में मगवान् कृष्ण ने भक्तिमार्ग को सब विद्याओं में श्रेष्ठ कहा है।<sup>१</sup> नाटक भक्ति एव में वा ११ कर्म ब्रह्म योग्यो अविच्छेद<sup>२</sup> चक्षुः भक्ति को कर्म,

<sup>१</sup> गीता ११२

राजविद्या राजगुरुं पदित्रमिदमुत्तमम् ।  
मरुचम्बगान् परमं सुसुखं कथं मय्यमम् ॥

और भी देखिए—गीता के ११ में अर्जुन के २१ और २३ श्लोक

<sup>२</sup> यह श्याम्या—बबरेव प्रसार मित्र के तुलसी दर्शन पर आधारित है।

ज्ञान और योग इन तीनों साधना मार्गों से भेद कहा गया है। भीमरूपायतकार ने इतनी महिमा का बर्णन अपनेक स्थलों पर किया है।<sup>१</sup> पुण्य, स्मृति आदि ग्रन्थ बर्म-ग्रन्थों में भी मक्ति को भेद साधना मार्ग बताया गया है। मक्ति की महिमा का संकेत मातृ के मापीनतम् प्रथम ऋग्वेद तक में मिलता है। षड्वर्ष मंडल में प्रभु की स्तुति करते हुए एक स्थल पर कहा जाता है—“हे भगवान्, आप अपने मक्त पर बने कृपाशु रहते हैं। वा मक्त काम, श्लेष आदि शत्रुओं को बध में कर लेता है उसे आप काम-वेनु रूप बना देते हैं। दुम्हारी कृपा से किसी का उल्लिख महासागर दण्ड मर में शक्ति हो जाता है। दुम्हारी कृपा से दुम्हाय मक्त विच्छिन्न सागर को गऊ के लुर के लहर दुग्मत्ता से पार कर लेता है।<sup>२</sup> भारतीय बर्म-वेत्त में मक्ति की इतनी महिमा का कारण क्या है—इस रहस्य का बोझ-सा लपटीकर्य महात्मा दुक्तधीदास ने निम्नलिखित पंक्ति में किया है :—

“जाते वेग ब्रह्मों में मारें, सो मम भगति भगत सुखराई।”

इस पंक्ति में दुक्तधी ने मक्ति के पाँच गुण व्यक्त किये हैं,<sup>३</sup> जिनके कारण वह साधना मार्गों में अग्रगण्य को भेद समझी जाती है। (१) मक्ति साधन रूप है, साध्य रूप नहीं। साध्य तो भगवान् ही है। यह बात शब्द से प्रकट है। (२) मक्ति में भगवान् का शिवाविशेष इतित करने की क्षमता होती है यह मात्र “वेग ब्रह्मों” से व्यक्त होता है। (३) मक्ति मार्ग व्यक्त परमात्मा के प्रति ही संभव होने के कारण अन्य मार्गों की अपेक्षा जिनमें अन्यक परमात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता है भेदकर होता है। करते हैं उन्हें बड़ा बन्द होता है। भगवान् ने लिखा है—“अन्यक परमात्मा में मन का केन्द्रित करना बहुत कष्टपूर्वक है, जो लोग अन्यक में अपना मन केन्द्रित नहीं कर पाते हैं।” इस मात्र की व्यञ्जना उर्वरक पंक्ति में ‘मै’ शब्द से होती है।<sup>४</sup> (४) मक्तिमात्र में ऊँच नीच का मात्र नहीं रहता, इतमें सब समान समझे जाते हैं। वा वो बन्द सचते हैं कि वह ऊँच नीच सभी क लिए समान क्तदायक है। सभी इतका स्वतंत्रापूर्वक आचरण कर सचते हैं। वह बात दुक्तधी की उर्वरक पंक्ति में ‘मारै’ शब्द से प्रकट होती है। इनके अतिरिक्त उर्वरक पंक्ति से एक विशेषता और व्यक्तित होती है। वह है इस मार्ग की सुगमता और सरलता। उन्होंने एक दूसरे स्थल पर लिखा भी है—

<sup>१</sup> भारत मक्ति सूच २२

<sup>२</sup> भीमरूपायत ७।१।१, १।१।१।२०, २१, २४, २२, २९

<sup>३</sup> ऋग्वेद ७।१।१।९

<sup>४</sup> गीता १।१।२

बजेगोऽधिकारान्तेन मन्यन्तामकथेनमाम् ।

अन्यथा हि गतिदुर्गं दरशिराप्सते च



“सख्य सुगम यह मारग भाई, मक्ति मोरि पुण्य भुवि गाई।”<sup>१</sup>

इन्हीं सब श्रवणों से मार्ग में मक्तिमार्ग को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। मार्ग की विविध बद्धि एवं आदर्श-प्रधान बर्तनताओं के कर्तव्य से सम्बन्धित बनता को मुक्त करने की ध्येयता से अभिव्यक्त संघ लोगों को मक्तिमार्ग ही सबसे उपयुक्त प्रतीत हुआ था। यद्यपि उत्कालीन मक्ति मार्गीयस्वरूप भी वैसी स्यादना के आदर्श के कारण विद्वत् और कल्पित हो जाता था किन्तु फिर भी अन्य मार्गों की अपेक्षा यह सहज और स्वाभाविक प्रतीत होता था। इसलिये संतों ने अन्य स्यादना मार्गों की तुलना में इस मार्ग को बेहतर कहा है। संत कबीर ने लिखा है कि मात्र प्रधान मक्ति के बिना जप, तप, ध्यान, मठ, स्नान, ज्ञान आदि सब निरर्थक होते हैं।<sup>२</sup> संत दादू जी मक्ति के बिना जीवन को ही निरर्थक मानते थे।<sup>३</sup>

“दादू हरि की भगति बिन भिग जीवन कछि माँही।”

सहजोभाई मक्ति के बिना सभी योग, मठ और आचार्यों को धोया समझती थी।<sup>४</sup> पहाड़ साहब का तो यह दृढ़ विश्वास था कि भगवान् के दरबार में मक्तिमार्ग ही केवल सर्वश्रेष्ठ उपाय है।<sup>५</sup> अन्य संतों की भाँति मुन्तरदात्र भी मक्ति के बिना समस्त साधनाओं को उत्थान समझते थे।<sup>६</sup> इस प्रकार स्पष्ट है कि संत लोग मक्ति को अत्यधिक महत्त्व देते थे।

प्राचीन ग्रन्थों में मक्ति के स्वरूप पर बड़े विचार से विचार-विमर्श हुआ है। यहाँ पर हम मक्ति की कुछ प्रसिद्ध परिभाषाओं का संक्षेप कर देना चाहते हैं। वेदक पारद-भक्ति रूप में ही तीन विभिन्न आचार्यों की परिभाषाएँ संश्लेषित हैं। उनमें लिखा गया है कि मक्तिमार्ग में प्रसन्न मन होना ही मक्ति है। महर्षि गर्ग मुन्द-प्रीर्षन

<sup>१</sup> रामचरितमानस

<sup>२</sup> कबीर ग्रन्थावली पृ० १०२

जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप

जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप

जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप जप

<sup>३</sup> दादूसाहब की बानी भाग १ पृ० १०२

<sup>४</sup> सहजोभाई की बानी पृ० ६२

‘बिना मक्ति छोड़े सभी योग जग पाचार’

<sup>५</sup> पहाड़ साहब की बानी पृ० ८२

आदि के दरबार में केवल मक्ति विचार

<sup>६</sup> मुन्तर विद्यास पृ० १४

‘सिद्धेहि मुन्तर और किया सब । राम बिना निहचर पर रोये’

आदि में होनेवाले प्रगाढ़ मागवत प्रेम को ही भक्ति मानते हैं। आचार्य शांतिहृदय के मतानुसार आत्मा में तीव्र रति का होना ही भक्ति है। शांतिहृदय का भक्ति सम्बन्धी यह दृष्टिकोण नारदभक्ति सूत्र में दिया हुआ है। आचर्य शांतिहृदय के नाम से जो भक्तिमूल उपलक्ष्य है उसमें ईश्वर में श्री गई परम अनुरक्ति को भक्ति कहा गया है। स्वामी रामानुजाचार्य ने स्नेहपूर्वक किये गये मगवत् ध्यान का भक्ति कहा है। मन्नाचार्य<sup>१</sup> ने अपने "भक्तिमहाभाष्य तात्पर्य निर्णय" नामक ग्रन्थ में उक्त तीव्रतम स्नेह का जो मगवान् के महात्म्य ज्ञान से विशिष्ट होता है, भक्ति कहा है। वे भक्ति को मुक्ति से भिन्न नहीं मानते थे। इती मन्नार श्रीमत् जयतीर्थ मुनीन्द्र जी<sup>२</sup> ने 'भक्तिशास्त्र' नामक ग्रन्थ में अपरिमित अनवेद्य कल्याण गुणा के ज्ञान से उत्पन्न हुये अपने समस्त-सम्बन्धी जन तथा पदार्थों ही से क्या, प्राणों से भी कई गुना अधिक इकारों विना ज्ञाने पर भी न टूटने वाले अत्यधिक सुदृढ़ गंगाप्रवाह के समान अर्णव प्रेम के प्रवाह को भक्ति कहा है। भागवत् में भी भक्ति में प्रेनतत्त्व को महत्त्व दिया<sup>३</sup> गया है। भक्ति श्री इन समस्त परिभाषाओं पर यदि मनोयोग के साथ विचार किया जाय तो एक बात बहुत स्पष्ट प्रकट प्रतीत होती है, वह भक्ति का तीव्रतम प्रेम विशिष्ट होना। सभी आचार्यों ने भक्ति के प्रेम, तत्त्व पर अधिक से अधिक बल देने की चेष्टा की है। वास्तव में प्रेम ही भक्ति का प्राथम्य तत्त्व है।

### सन्तों की भक्ति में प्रेम और बिरह-सत्त्व

भक्ति के परम्परागत एवं शास्त्र प्रतिपादित प्रेम तत्त्व के महत्त्व से संत लोग पूर्णतया परिचित थे।<sup>४</sup> उन्होंने प्रेम लक्षण भक्ति का ही सर्वत्र प्रतिपादन किया है। किन्तु संतों का प्रेमभाव मारपीत आचार्यों के प्रेमभाव से थोड़ा विनम्र था। उक्त विनम्रता का कारण यही प्रभाव है। उनकी भक्ति दानाभि प्रमत्त मर्पादा प्रदान

<sup>१</sup> कल्याण के योगीन्द्र (१० १८६ में उद्भूत)

महात्म्यशास्त्रंस्तु मुद्राः सर्वताधिकः।

स्नेहा भक्तिरिति शोभा तथा मुक्तिर्भक्त्याप्या ॥

<sup>२</sup> कल्याण का योगीन्द्र (१० १८६)

तत्र भक्तिर्नाम निरवधिज्ञानम्लानरघकरणाद्य गुणग्रहणार्थकः स्वस्वमात्मीय सम-  
कम्पुम्य भेदगुणाधिकोन्मत्तापयद्वये वाच्यप्रविबद्धो विस्मयमेवराहः।

<sup>३</sup> भागवत मुक्तोपिनी ३।२५-३२ ४० तक

<sup>४</sup> मुद्रा विज्ञान १० १४८

किन्तु एक ईश्वर को भेदों में ब्याप्य होय,

वही भक्ति बदिबन बदि प्रेम मार्ग है।

कोह की ही जनी मही है। उसको साफता के मादक और मयुर प्रेम ने भी आक्षिप्त कर रखा है। वही करण्य है कि संतों ने वहाँ भयभीती हुई जानामि से उत्तर होनेवाले प्रेम परचार्य की ओर संकेत किया है,<sup>१</sup> वही अपनी मादकता और मयुरता से उत्तमोत्तम करने वाली मातृत्मक मदिरा<sup>२</sup> की भी कर्षा की है। इस मातृत्मक मदिरा से कनकी मक्ति कायना कही अधिक रोषक, मयुर और रुहम हो गई है। सब तो यह है कि संतों ने कान मवान प्रेम को मातृप्रधान मादकता से सहजीकृत कर दिया है।

मातृकीय इच्छि से प्रेम बहुत पवित्र बस्तु है। उसके सदक होते ही अज्ञान बलित अंधकार नष्ट हो जाता है, आत्मनिर्मल होकर ईश्वरोन्मुख होने लगती है। कबीर ने लिखा है—

विखर प्रेम प्रकासिया बाम्या लोग अनन्त ।  
संसा पटा सुखमया मिथ्या पियारा कृत ॥  
विखर प्रेम प्रकासिया अन्तर मया उजास ।  
सुख कस्तूरी महमही वाणी फूटी बास ॥<sup>३</sup>

मातृकीय प्रेम की एक और विशेषता है। वह है उठती मर्वादा-विषयता। मातृकीय प्रेम की इत विशेषता का प्रमाण भी संतों पर पका था। संत दासू ने प्रेम को प्रेम रूप कहा है। वे लिखते हैं—

प्रेम प्रेम जिन ना किमो जीता नाही प्रेम ।  
अकल पुरिप सिनि न बकसो छार परै तेहि प्रेम ॥

मातृकीय प्रेम की तीवरी प्रमुख विशेषता एकनिष्ठता है। शास्त्रीय संघों में इस विशेषता को बहुत महत्त्व दिया गया है। संतों ने एकनिष्ठता को प्रेम का सबसे आत्परक तत्व बलित किया है। वह बात प्रेम के आदर्शों से प्रकट होती है। उन्होंने प्रेम के आदर्शों में अंध अंधेरे, अमर और अमल, दीपक और पर्वग, बासक और स्वाति,

<sup>१</sup> मौख्य साहज की बानी पृ० ४९

प्रेम परारण प्रकट भयो सब ज्ञान अग्निनि बुबकार ।

<sup>२</sup> अरवशाह की बानी भाग २ पृ० ३२

अबदू देही मयिरा दीकै ।

बेदि गुण में यह जग बिसरें कद सूर धम कीकै ॥

अरी कुशाक चार्द भायी बस अराक परबारी ।

अरि-अरि प्याहा देल कुशाकी बाहै मक्ति सुमारी ॥

माता है दाब अहरा है अम अरोच द धारै ।

<sup>३</sup> कबीर प्रयागवाणी पृ० १३

एक और स्त्री के प्रेम-माश पर विशेष बल दिया है। मक्ति की तुलना पतिव्रता के प्रेम से करते हुए दादू कहते हैं— “पतिव्रता के एक है, वृथा नहीं।” कबीर ने बहु निष्ठा की निम्दा करते हुए बहुनिष्ठा की तुलना बेशबा के पुत्र से की है।<sup>१</sup> प्रेम की यह एकनिष्ठा और संयमशीलता त्याग और वयस्या में परिणाम हो जाती है। भारतीय ग्राम में त्याग और वयस्या का बहुत बड़ा स्थान है। संत कबीर ने स्पष्ट लिखा है— “यदि कोई प्रेम मास की साधना करना चाहता है तो उसका आत्मत्याग एवं आत्म बलिदान करना पड़ेगा।”<sup>२</sup> इन्हीं तब कारणों से संतों ने प्रेम को ‘छादि की पार’ ‘अग्नि की माल’<sup>३</sup> कहा है।

संतों का मक्तिमार्ग संक्षिप्तों के प्रेममाश से भी बहुत प्रभावित है। इसके प्रमाण में हम वृत्तानदाव की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं—

हुमा है मस्त मसूरा चढ़ा सूजी न छोड़ा इक।

पुकारा इस्कबाजों को अई मरमा यही बरहम।

जो बोल आसिका यात हमारे दिल में है जो शक।” इत्यादि

सुख प्रेम की सबसे प्रमुख विशेषता मादकता और सरलता है। वे लोग प्रेम को मदिरा रूप मानते हैं। संतों में भी अपने प्रेम को आत्मरूप कहा है। किन्तु उसको उन्होंने राम के हाँसे में दालकर पवित्र कर दिया है। वह मदिरा से ‘राम रसायन’ बन गया। इसी ‘प्रेमरस’ को या ‘रामरसायन’ का पीते हुए संतसभ नहीं अथाते थे। कबीर कहते हैं—

राम रसायन प्रेमरस पीवत नाहि अषाय।

इस रामरस का पान करनेवाला आनन्द से अन्मत्त हो जाता है। वह चरेत ही सुमार में मरा रहता है—

हरि रस पीया जानिये जे कबहु न जाइ सुमार।

मैं मता घूमत रहै नाही तन की सार ॥<sup>४</sup>

<sup>१</sup> दादू ११२३

<sup>२</sup> कबीर प्रणयवली पृ० ६

राम-रिवात कांदिबर की आज का अषय।

बेरपा केरा पून ज्यों करे कोन हूँ बाप।

<sup>३</sup> कबीर प्रणयवली पृ० १३

‘जो सुई साप रिमि की पीस करे तोरि’।

४

<sup>५</sup> सम्प्रदायी संग्रह भाग २ पृ० १२३

<sup>६</sup> कबीर प्रणयवली पृ० १६

संतों के प्रेम का महत्त्वपूर्ण पक्ष विरहवत्त्व है। विरहभाव को संतों ने सबसे अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण द्विविधी प्रेरणा है। विरह वत्त्व को भारतीय आचार्यों और सूक्तियों दोनों में आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। महर्षि नारद मक्ति में विरह को आवश्यक मानते थे।<sup>१</sup> सूक्तियों की वाचना का तो वह प्रत्यक्ष वत्त्व है।<sup>२</sup> इन दोनों से ही प्रेरणा पाकर संतों ने मक्ति में विरह का महत्त्व प्रतिपादित किया है। दयाशार्ङ्ग ने स्पष्ट लिखा है कि विरह की व्याप्ता राम सनेही के हृदय में ही उत्पन्न होती है—

“विरह ब्याप्त उपजी हिये राम सनेही आय।”<sup>३</sup>

अब तो यह है कि प्रेममार्ग का सम्बन्ध पयिक ही वह हो सकता है, जिसका हृदय विरह की पीर से पीड़ित है। दयाशार्ङ्ग चरती है—

“पन्थ प्रेम को अटपटे कोइ न जानत बीर,  
के मन जानत आपनो के छागी जेहि पीर।”<sup>४</sup>

यह पीर पीर (गुरु) की ही हुई होती है। विरह काय गुरु ही मारता है।<sup>५</sup> विरह की पीर पाकर साधक की दशा विभिन्न हो जाती है—

“हृत्से न बोले छमनी अंघ्र भेख्या मारि।  
कई कबीर भीतर मिला सद्गुरु का हृदियार।”<sup>६</sup>

यही नहीं, विरह काय के जागते ही वह बालाक होते हुए मूक हो जाता है। कानबाला होते हुये भी बहरा हो जाता है। परस्परतम्य होत भी सङ्का रहता है।<sup>७</sup> यही पूर्ण तन्मयता की अवस्था है। संतों में हमें विरह के बड़े मार्मिक चित्र मिलते हैं। इन चित्रों की सङ्ग्रहाओं का उद्घाटन खरबचाह के प्रसंग में किया जायगा। वहाँ पर केवल एक उदाहरण देकर ही बात समाप्त कर देंगे—

<sup>१</sup> बारहमक्ति सूक्त सूत्र १६

<sup>२</sup> सप्तसुक्त और सूत्रीय—ब्रह्मवती वारहेच पृ० १११ १२२ (१६३२)

<sup>३</sup> दयाशार्ङ्ग की बानी पृ० ९

<sup>४</sup> दयाशार्ङ्ग की बानी पृ० ९

<sup>५</sup> कबीर प्रणवावली पृ० ६

<sup>६</sup> सद्गुरु सारथा बाबू भरि घरि सूफी मृति।

अहं ब्यादे छागिया गई दिवास् कृष्टि ॥”

<sup>७</sup> कबीर प्रणवावली पृ० ८

<sup>८</sup> कबीर प्रणवावली पृ० २

<sup>९</sup> मृगा हुआ बाबका बहरा हुआ अम।

बाबू के पंजुल अथ सद्गुरु मारय बाब ॥”

प्यारी पिया पीर कली आधी रतियो ।  
 सोयत समग्र ठठी अपने :में, क्या कहूँ बरनि बिपतिया ।  
 बोली बन्द बदन बिच खटके समगि समगि फनी छवियो ॥  
 रोयत रेन पैन नहि पित में कूर करम की बतियो ।  
 तुलसी देस पेस बिन पिय के सोच लिखूँ कित पतियो ॥<sup>१</sup>

इसी प्रसंग में हम आठकियों की वर्चा भी कर देना चाहते हैं। मारद ने मगवदमक्ति एकादश प्रकार की बतलाई है। प्रेमाभिम्पक्ति के दो प्रकार आठकियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके नाम क्रमशः गुणमहात्म्यासक्ति, पूजासक्ति, दास्यासक्ति, सेवासक्ति, स्थासक्ति, स्मरसासक्ति, कल्यासक्ति, भास्वस्थासक्ति, तन्मयासक्ति, परम विरहासक्ति एवं आत्मनिर्भेदनासक्ति हैं।<sup>२</sup> संतों में एकाप को छोड़कर लगभग सभी आठकियों की अभिम्पक्ति बारी जाती है। किन्तु कुल के प्रति उनकी विशेष प्रवृत्ति रही है। उनमें से एक विरहासक्ति है, जिसकी वर्चा हम अभी ऊपर कर चुके हैं।

गुण महात्म्यासक्ति भक्ति का सहायक है। किसी प्रकार भी कठोर साधना से इतका सम्बन्ध नहीं है। संतों ने अपनी सहायकता में इस आठकिक को इसी लिए विशेष महत्त्व दिया है। कबीर को गुणमहात्म्यासक्ति में अनुरक्त भक्त ही प्याय मालूम होता था—

“निरमल निरमल राम गुण गावै, सो भगवा मेरे मन भावै ।”<sup>३</sup>

संघ परबदास इस आठकिक में समग्र भक्त को सर्वश्रेष्ठ समझते थे—

“सोइ हाथ सिरोमणी गोविन्दु गुण गावै ।”<sup>४</sup>

बैदायी भक्ति में पूजासक्ति को भी बहुत महत्त्व दिया गया है। बैदायिक वास्तव में पूजासक्ति से ही सम्बन्धित है।<sup>५</sup> संतों ने भाप के सहारे इस आठकिक का सहजी-करण किया था।

कबीर का निर्यात था कि मगधान् बैधी पूजा से नहीं, भाषात्मक पूजा-विधि

<sup>१</sup> तुलसी साहब (हायाल बाबे) सप्तशती संस्कृत ५० १२२

<sup>२</sup> मारदमक्ति सूत्र ८२

<sup>३</sup> कबीर प्रणवावली ५० १२०

<sup>४</sup> सप्तशती अष्टम भाग २ ५० ११

<sup>५</sup> अंगिरा ने अपने दीदी भीमामा दर्शन में राम पार में बैठी भक्ति की ब्याख्या ११मि सूत्र ११।

से ही प्रलय किये जा सकते हैं।<sup>१</sup> महात्मक पूजा का बड़ा रस और सुन्दर उत्प्रेषण (जन्तुसुन्दरदातु) ने किया है। वे लिखते हैं—

मीति सी न पासी कोठ प्रेम से न फूत्र और,  
 चित्त सों चंदन सनेह सों न सेहर।  
 हृदय सों न आसन सहज सो न सिंहासन,  
 मास सी न सेब खर सो न गेहर ॥  
 शीतल सो न स्नान अथ स्नान सो न धूप और,  
 ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहर।  
 मन सी न माला कोउ सोई से न जाप और,  
 आत्म सों देब नाहि देह सों देहर ॥

सुन्दरदातु का इतने अधिक रस और सुन्दर चित्र और क्या दिया जा सकता है।  
 जन्म संतो<sup>२</sup> ने भी अनेक स्थलों पर इस सहज पूजासक्ति का वर्णन किया है। संतो  
 की भक्ति क्षेत्र की यह मौलिक है। इतने ऊँची भक्ति धारणा सम्पन्न हो उठी है।

संतों ने महात्मा की असाधारण दार्शनिक से ही की है। यही कारण है कि  
 इनके प्रत्येक रूप के सेवक सेवक मास की ही महानता दिखाई पकती है। संत की  
 प्रशंसा की सेवा को लक्ष्य बनाकर मानते थे। दादू ने सेवक सेवक मास की  
 अभिव्यक्ति अत्यधिक विनयपूर्ण शब्दों में की है—

तु साहिब मैं सेवक तैरा भावै सिर है कही मेरा,  
 भावै करबत सिर पर सार भावै लेकर गर्वन मारि।  
 भावै बहु दिखि अगिन जगाव भावै कास रसो दिखि लाइ<sup>३</sup>,

इतने अधिक सुन्दर आत्म-वर्णन का और कोन सा स्वरूप हो सकता है। सेवक सेवक  
 सम्बन्ध का सर्वत्र आत्म-वर्णन का मास ही है।

संतों में सत्प्रासक्ति के उदाहरण नहीं के बराबर हैं। यह बात बूढ़ी है कि  
 बहुत अधिक काम करने पर उनकी कानिबों में दो एक उदाहरण मिल जाय, किन्तु  
 विद्वान्त का ये उनमें यह आसक्ति नहीं मिल सकती।

<sup>१</sup> कबीर प्रभाषणी पृ०

“जो पूज हरि नाही धारि सो पूजहार बड़ा है।

जेहि पूज हरि मन भावै सो पूजदार न कही ॥”

<sup>२</sup> जन्तुदायी संप्रदाय भाग २ पृ०

<sup>३</sup> कबीर प्रभाषणी पृ० २७७ अन्तिम पंक्ति

<sup>४</sup> जन्तुदायी संप्रदाय भाग २ पृ० २२

जो मुख प्रभु गोविन्द की सेवा से मुख राज नाहि पाये ।<sup>१</sup>

संतों की प्रवृत्ति स्वात्मिक की ओर भी है। इतक कारण में सखी प्रभाव मानता है। सभी अपनी रुचि और प्रवृत्ति वास्तव भीतिक रूप की ओर नहीं थी। उन्होंने सखी प्रभाव से प्रेरित होकर अपने निर्गुण की रूप की भाँति सभार है जिससे उनके रूप वर्णन में एक विभिन्न रहस्यात्मकता आ गई है। दयाबार्ह ने इत रहस्यात्मक रूप को 'अद्भुत दुखि' कहा<sup>२</sup> है। कबीर उलझी अपना 'सुरबसेनि' से देते हैं। संतों के रूप वर्णन में कबीर पर भी मौलिकता की दुर्गन्धि नहीं मिलती है, वह संतों की स्वात्मिक की तबसे बड़ी विशेषता है।

स्मरणात्मिक संतों की भावमगति की प्रायःमूल विशेषता है। संत कबीर स्मरण को साधना का सार मानते थे।<sup>३</sup> रजब लाल ने स्मरण को सब सुखों का मूल कहा है—

रजब अजब यह मठा निसदिन नाम न भूझि ।

मनसा बाबा करमना सुमिरन सब सुख मूल ॥<sup>४</sup>

संतों में कल्याणिक अ सरस रूप भी विशिष्ट हुआ है, किन्तु वह पूर्ण मास्त्रीय नहीं है। उक्त पर सखी कास्त्राभाव का भी पूरा-नूत प्रभाव दिखाई पड़ता है। सखी प्रभाव के परिणामस्वरूप ही उन्होंने परमात्मा की रूपना प्रियतम रूप में और आत्मा की भावना स्वरूप में की है। प्रेमी और प्रेमिका के सम्बन्ध को उन्होंने परिणय करके परिणय कर दिया है—जिससे काष्ठात्मिक की आत्मा मास्त्रीय हो गई है। किन्तु इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि संतों की काष्ठात्मिक का ऊपर परिधान अमास्त्रीय ही है। रहस्यवाद के प्रसंग में हम इत आत्मिक पर विचार से विचार करेंगे।

वास्तविकतात्मिक के प्रति भी संतों का विशेष आकर्षण नहीं था। केवल दो-चार

<sup>१</sup> कबीर प्रियावली पृ० २६२

<sup>२</sup> दयाबार्ह की बानी पृ० ११

उके रहे धानम् में घाठ पहर गजतान ।

अद्भुत दुखि जिनसे बनी दया धरत मनष्यान ।

<sup>३</sup> कबीर प्रियावली पृ० १२

कबीर तेज अमल का मानो ऊँची सुरज सेकि ।

<sup>४</sup> कबीर प्रियावली पृ० २

भगति भजन हरि नाव है दृश्य सुख अपार ।

मनसा बाबा करमना कबीर सुमिरन सार ॥

<sup>५</sup> अमल सुपासार पृ० २१८



स्वतन्त्र ही ऐसे विद्ये हैं वहाँ उन्होंने अपने सात्विक और अतुल्य अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति वास्तव्यतावति से की है। एवं कबीर की "हरि जननी में बालक तोय" वाली उक्ति तो सोच प्रविष्ट है ही। 'मि' और 'पुन' का आत्मन्यत बनाकर वास्तव्यतावति का बर्णन उद्बोधार्थ में भी किया है—

हम बासक तुम माय हमारी, परत-परत मोहि करे रक्षायी ।

निस दिन गोदी ही में राखो, इतमित बचन चितावन माखी ॥<sup>१</sup>

उक्तों में तन्मयावति को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। उनकी 'श्री' शायदा वास्तव में तन्मयावति ही है। उक्तों के परंपरा अर्थों में इत आसक्ति के सुन्दर बर्णन मिलते हैं। जब शायद तन्मय हो जाता है, तब वह सर्वाधीन हो जाता है। तन्मयावति का वह परमत्वकर्म है। उक्तों में इच्छा विविध प्रकार से बर्णन किया। तन्मयावति दो प्रकार की होती है—प्रेम और रूप अनित्य और दृश्य ज्ञान अनित्य। पूर्ण तन्मयावति तमी का उच्यती है जब मूक का मन मयबान् के रूप रत में डूब जाय। एवं दयाकार में ऐसी ही तन्मयावति का बर्णन किया है।

प्रेम भगत गद्गद् बचन पुझकि रोम सत्र अंग ।

पुझक उयो मन रूप में क्या न है चितमंग ॥

कबहुँ धरत पग परत कहुँ अमगि गाव सत्र बेह ।

क्या भगत हरि रूप में दिन दिन अधिक सनेह ॥<sup>२</sup>

प्रेम अनित्य तन्मयावति का इच्छे सुन्दर दृश्य उदाहरण नहीं मिल सकता। इस अर्थार्थ में पहुँचकर मक्ति इन्हीं से परे हो जाता है। मीला साहब के शब्दों में प्रीति की रीति देखिये—

प्रीति की यह रीति बखानों ।

कितनों दुःख सुख परे देह पर झरन कमल कर ध्यानो ।

ज्ञान अनित्य तन्मयावति में उदाहरण के हैं जिनमें त्रिगुणाधीन अवस्था का बखान किया गया है। उक्तों में इत अवस्था के बर्णन श्रीवेणु द्वारिवादी, परमपद और अमनपद आदि के अभिधान से किये हैं।

अधिमूला मक्ति में आत्मनिवेदन की धार्मिक और प्रमाणात्मक भक्तिनी मिलती है। आत्मनिवेदन में मूक भगवान् की महामता और अपनी हीनता का बर्णन

<sup>१</sup> सप्त सुधासार पृ० ११६

<sup>२</sup> सप्त सुधासार पृ० २०२

<sup>३</sup> सप्त सुधासार पृ० १३३

कहा है। संतों में हमें आत्मनिवेदनाशक्ति क दानों पक्षों के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इस्लिये संत गुलाबसाहब ने दोनों पक्षों की प्रविष्टा एक ही पद्य में कियेने सुन्दर दंग से की है—

प्रभु तूम पेसे हीनइगल,  
हम अस अचम कुटिल भंडाल।  
केतिक अप कहाँ लागि बरनों,  
करम - भरम की आज।  
मोर-मोर करत दिन बीतल,  
मार जेत जम काल ॥<sup>१</sup>

भक्ति की हीनता का देखो दानू ने कितना व्यापक विषय सामने रखा है—

गोष्यदे कैसे तिरिए

नाब नाही खैब नाही राम विमुख करिये<sup>२</sup>—इत्यादि

भक्ति के अनिवार्य साधन—भक्ति का सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण साधन मानव शरीर है। तुलसी ने “उन किन मजन बेद मर्हि बरना” शिल्लघूर भक्ति में मानव शरीर के महत्व की ओर ही संकेत किया है। सन्त लोग भी इस तथ्य से परिचित थे। उन्होंने भी भक्ति-साधना में शरीर के महत्त्व को अष्टौ तह्द समझ लिया था। परमीदास ने लिखा है—“मानुष देह दुर्लभ अहै सुन रे बीरे ॥”<sup>३</sup> लहनाबाई तो मानव शरीर की शार्पघटा भक्ति-बीज के बयन में ही मानती थी—

सो बसन्त नहि बारबार में पाई मानुष देह सार,  
यह और विरया न ग्योव, भक्ति बीच हिए भरती ब्योव ॥<sup>४</sup>

सन्त दानू ने उसे मुक्ति का द्वार तक कहा है। संतों की दृष्टि में शरीर का महत्त्व साम्य भक्तों की अपेक्षा अधिक था, क्योंकि उनकी लहना-साधना में शरीर साधन को विशेष महत्त्व दिया गया है।<sup>५</sup> लहनाबाई ने इसी वायायोग की ओर ध्यान रखते हुए शरीर मंगर का बयान किया है—

<sup>१</sup> गुलाब साहब की बानी पृ० ४२

<sup>२</sup> दानूरपास की बानी भाग २ पृ० ३६

<sup>३</sup> सन्तदासी संग्रह भाग २ पृ० ११०

<sup>४</sup> सन्त सुदामार भाग २ पृ० १६२

<sup>५</sup> सन्त सुदामार भाग २ पृ० १६४

“बाबा काया नगर बसावो ।”<sup>१</sup>

दादू ने मात्र भगति में काया के महत्त्व का संकेत करते हुये लिखा है—

“मात्र भगति साटी मई काया कसयी सार है ।”<sup>२</sup>

आस्थिच्छा मक्ति का वृत्तय अतिवर्ध साधन है । तब तो यह है कि आस्थिच्छा मक्ति की आपारभूमि है । सन्त सुन्दरदास ने यहाँ पर मक्तियोग का वर्णन किया है यहाँ उन्होंने उसकी आपारभूमियों में सर्वप्रथम वैराग्य का नाम लिखा है और फिर विरवास का आस्थिच्छा का उल्लेख किया है ।<sup>३</sup> इसी सन्त ने आस्थिच्छा के महत्त्व की भ्यङ्गना एक दूसरे प्रकार से की है । उसका उद्देश है कि सन्त को सर्वत्र आत्म-दृष्टि ही रखनी चाहिये ।<sup>४</sup> सन्त सुन्दरदास को आस्थिच्छा के बिना सभी प्रकार की साधनाओं को निरर्थक और निष्फल मानते थे—

सुन्दर कहत एक प्रभु के विरवास बिनु ।

वास्तु के हूया सठ पथि के, सखु है ॥”<sup>५</sup>

मक्ति के पौपक साधन—शास्त्रीय ग्रन्थों में मक्ति के पौपक साधनों की बर्णना मिलती है । यहाँ पर हम कुछ प्रमुख पौपक साधनों पर विचार करेंगे ।

मक्ति का सबसे प्रमुख पौपक साधन व्रतान्तर है । तब तो यह है कि मक्ति का मबन व्रतान्तर की नींव पर ही बसा हुआ है । सन्त ऊपर व्रतान्तर को सन्तों का प्रमुख साधन मानते थे ।<sup>६</sup> सन्त दादू उसे मत्त का सार मानते थे ।<sup>७</sup> सन्त परनदास

<sup>१</sup> दादूदास की बाबी भाग २ पृ० १६३

“मक्तिवा बेह सुभक्ति का द्वारा ।”

<sup>२</sup> दादू ११२९

<sup>३</sup> सत सुभासत पृ० २८९

मक्तिवा कबरे छड़ वैरागा, मत्त विरवास करि सब त्यागा ।

<sup>४</sup> सत सुभासत पृ० ५८२

आत्म दृष्टि सख्त संसार, दंतन को राते पथिअर ।

<sup>५</sup> सन्तबाबी संग्रह भाग १ पृ० १०८

<sup>६</sup> ऊपर संग्रह पृ० २०

निरीरी निदकमता सौई सेती बेह ।

बिनया र्हुं न्यारा रहै सन्तन का संग पद ।

<sup>७</sup> दादूदास की बाबी भाग १ पृ० २९३

बाबा मेरे हरि भई तन मन सबे विचार ।

निरीरी सब औच र्हुं दादू यह मत सार ३

उदाचारी साधु को ही सच्चा साधु समझने का पथ में थे। इसी प्रकार अन्य संतों ने भी उदाचार को मन्त्रि में बहुत अधिक महत्त्व दिया है।

संतों ने उदाचार के उच्छेद ही उत्पावरण-महिमा पर भी प्रकाश डाला है। संत दादू लिखते हैं—‘मगवान् को सत्य प्रिय है। सत्य को सत्य ही अन्तर्गत लगता है। सत्य निष्ठ ही हमारा विधाता है। अन्य में वे कहते हैं कि परमात्मा सत्यनिष्ठ को ही दर्शन देते हैं। मूत्रा कनी उसके दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता—

दादू दरसन सौंवा पावै, मूत्रे दरसन न देखै ।<sup>१</sup>

मन्त्रि के पोरक साधनों में संतों ने अखंड मजन और गुण कीर्तन आदि की भी खर्चा की है। नारादमन्त्रि सूत्र में उन्हें विशेष महत्त्व दिया गया है। संत कबीर के शब्दों में दोनों के उदाहरण अमरा। इस प्रकार है।<sup>२</sup>

### अखंड मजन

काम परे हरि सिमिरिये सेवा सिमरी निष्ठ।  
अमरापुर वासा करहु हरि गया बहोरे निष्ठ॥

### गुणकीर्तनादि

रमइया गुण गाइये, जाये पाइये परम निषालु।

संत लोग ईश्वर और संतों की कृपा में भी बहुत अधिक विश्वास करते थे। संत कबीर ने लिखा है<sup>३</sup> कि सेवा दो की ही करनी आदिमें—एक संत की और दूसरी राम की। राम मन्त्रि के दाता हैं और संत नाम रूप कराते हैं। इसी प्रकार संत दादू<sup>४</sup> ने भी लिखा है—‘इस संसार में वेबस दो ही अमूर्तप रत हैं, एक साई और दूसरे संत।

<sup>१</sup> दादू बाणी भाग १ पृ० ८२

<sup>२</sup> कबीर प्रणवबन्नी पृ० २०२

कबीर प्रणवबन्नी पृ० ३२६

<sup>३</sup> कबीर प्रणवबन्नी—परिमिष्ठ पृ० २६०

कबीर सेवा को चुर भजे एक सत्य एक राम

<sup>४</sup> दादू बाणी भाग १ पृ० १६३

दादू इस संसार में दोइ रतन अनमोख।

एक साई एक अमृत बन इत्यथ मोख न कोख।

भागवत में नवधा मक्ति<sup>१</sup> के अंतर्गत श्रीर्तन, स्मरण, चरखवेवा, बंदन, दास्य सप्य एवं आत्मनिवेदन नामक तस्य परिमखित क्रिये गये हैं । मक्ति के ये नभों तस्य प्रेम लक्षणाभक्ति में संबर्धक माने जा सकते हैं । एवं चरनदास ने उन्हें इती रूप में प्रसिद्ध भी ही है ।<sup>२</sup> किन्तु ये तलके अनिबार्ध अंग नहीं कहि जा सकते । यही कारण है कि संतो ने कहीं पर तो नवधा मक्ति की प्रशंसा की है और कहीं पर उपेक्षा की है—

इन निरौपी उक्तियों से स्पष्ट प्रकट होता है कि नवधाभक्ति में एवं लोग सिखात रूप से बिश्वास नहीं करते थे । सिखात रूप से उन्होंने शुद्ध प्रेम—लक्षणा मक्ति को ही स्वीकार किया है । इतना प्रकट है कि नवधा मक्ति के कुछ अंगों को ये प्रेम लक्षणा मक्ति का योगक मानते थे, इती लिए उनसे सम्बंधित कुछ उदाहरण उनकी बानियों में मिल जाते हैं । इन अंगों में भवस्य, श्रीर्तन, स्मरण, बंदना, दास्य और आत्मनिवेदन उल्लेखनीय हैं । इनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार दिने जा सकते हैं—

(१) लक्ष्य<sup>३</sup>

‘हरि नामै दिन जाह रे जाको, सोइ दिन जेसै जाइ राम ताको’ ।

(२) कीर्तन—<sup>४</sup> निर्मल निर्मूळ राम गुण गावे सो भगता मेरे मन भावै ।

बब राम नाम कहि गावैगा तब भेइ अमेइ सहायेगा ।

(३) स्मरण—<sup>५</sup> मन से राम सुमरि राम सुमरि राम सुमरि भाई रे ।

(४) बंदना—<sup>६</sup> मोहि माथ मिला बह कौने गुना ।

प्रसु करि झीमे अपनो जना ।

(५) दास्य—<sup>७</sup> मक्ति दान गुरु दीजिये वदन के सेवा हो ।

चरन कमल बिसरें नहीं करिहो पद सेवा हो ॥

<sup>१</sup> श्रीमद्भागवत ७।१।२२

अथर्व कीर्तन विष्णोः स्मरणं पारसेवकम् ।

अथर्वं चरुं दास्यं सत्त्वमात्मनिवेदनम् ॥

<sup>२</sup> चरनदास की बानी

‘नहीं अंग के जाकते उपरि प्रेम अनूप’ ।

<sup>३</sup> कबीर प्रियावली पृ० १२०।१८२ पर

<sup>४</sup> कबीर प्रियावली पृ० १२०

<sup>५</sup> कबीर प्रियावली पृ० ११६

<sup>६</sup> गुणाक साहब की बानी पृ० १२३

<sup>७</sup> अंत सुभाषार भाग १ पृ० १ (बनि धरमशुस्त)

(६) आत्मनिषेदन—<sup>१</sup>माधो में ऐसा अपराधी तेरी मगति हेतु नहीं थापी ।

इनके अतिरिक्त संतो में मक्ति की आधारभूमि के रूप में भ्रष्टा और विश्वास को भी महत्त्व दिया है । संत कबीर ने स्पष्ट शिक्षा है—

भाब मगति बिरबास बिन कटे न संशय जात ।

संघेप में मक्ति की आश्रय में बोग देने वाले प्रमुख तत्त्व ये ही हैं । किन्तु भगवद् मक्ति का बरदान देनेवाला गुरु ही होता है ।<sup>२</sup>

गुरु विना राम भगति नहि जागे ।<sup>३</sup>

इसी लिए सन्तो में गुरु की मशूरी महिमा का बर्णन किया है । दयाबाई तो गुरु को ब्रह्म रूप मानती थी ।

गुरु हैं सब देवन को देवा, गुरु को कोऊ न जानत भेवा<sup>४</sup> ।

करुना सागर कृपा निधाना गुरु है ब्रह्म रूप भगवाना ॥

और साहबोबाई तो गुरु को भगवान से भी अधिक मानती थीं । उनका निम्न शिलित उदाहरण उद्धृत किया जा सकता है—

परमेश्वर से गुरु बड़े गावत वेद पुयन ।

सहजों हरि के मक्ति हैं गुरु के पर भगवान ।<sup>५</sup>

गुरु के अतिरिक्त मक्ति के उद्भावक तत्त्वों में सरसंगति का भी बहुत अधिक महत्त्व है । संतो के सम्बंध में पतञ्ज साहब ने लिखा है कि संत लोग परेशकार्य ही संसार में अवतार लेते हैं और संसार का वे सन्मार्ग पर लाते हैं । काम, ज्ञान और मक्ति का उद्देश भी वे ही देते हैं ।<sup>६</sup>

पर स्वारथ के कारणे मंत्र लिया औजार ।

मंत्र लिया औजार जगन को राह पत्रायें ।

मक्ति करें उद्देश ज्ञान वे नाम मुनायें ॥

<sup>१</sup> कबीर प्रयागजी पृ० १६९

<sup>२</sup> कबीर प्रयागजी पृ० १७९

<sup>३</sup> दयाबाई की बानी पृ० ३

<sup>४</sup> दयाबाई की बानी पृ० ३

<sup>५</sup> संत सुधासार पृ० १८२

<sup>६</sup> पतञ्ज साहब की बानी, पदवा भाग पृ० १३

संत दानू के महाशुभार उत्संगति से ही प्रेम-भक्ति बढ़ होती है और उची से मक्त में प्रेम भक्ति की स्ति पैदा होती है।<sup>१</sup> संत लोग साधुओं को परमात्मा का साक्षात् अवतार मानते थे।<sup>२</sup> उनका विश्वास था कि संत का मिलना कठिन है। यदि संत मिल जाये तो राम का मिलना सरल हो जाता है। इस दृष्टि से राम का मिलना सहाज है। और संत का मिलना कठिन है।<sup>३</sup> इसीलिए उत्संगति का भक्ति क्षेत्र में बड़ा महत्व है। दयाबार्द ने लिखा है कि आपने सब की उत्संगति से ही मनुष्य के चारे कर्ममय दूर हो जाते हैं। यदि कोई उत्संगति के महत्व को समझकर उच्चैः शैलीय आचरण करे तो उच्चैः शैलीय की वाचना नहीं हो सकती।<sup>४</sup> संत दानू उत्संगति को जीवन को मक्त से मिलाने वाली मानते थे। उन्होंने 'दानू संमति साधु की पात्रज्य तो संमि' लिखकर यही बात स्पष्ट की है।

भक्ति के विकास में ज्ञान और वैराग्य का भी बहुत बड़ा महत्व माना जाता है। पल्लू साहब तो उन दोनों को भक्ति की आधार-भूमि मानते थे।<sup>५</sup> मीना साहब ने प्रेम

<sup>१</sup> दानूसाहब की बानी भाग १ पृ० १६०

दिन प्रति दर्शन साध का प्रेम भक्ति बढ़ देर'

और

दानूसाहब की बानी भाग १ पृ० १२६

'साधु मिले तब कपड़े प्रेम भक्ति स्ति होय'

<sup>२</sup> दयाबार्द की बानी पृ० ११

'संत शिष्या अवतार काल को राह बजावै,

और

'संत रूप अवतार आप करि के जाये'

<sup>३</sup> पल्लू साहब की बानी भाग ६ पृ० ६२

'राम का मिलना सहाज है सन्त मित्रा को होय।

राम का मिलना सहाज है सन्त का मिलना दूर है'

<sup>४</sup> दयाबार्द की बानी पृ० १०

'साधु संग जग में बड़ो को कर ज्यो कोय।

आधो दिन धरती को, कजमज्ज हाजे घोय।'

<sup>५</sup> दानू साहब की बानी भाग १ पृ० ६

<sup>६</sup> सन्त बानी संग्रह भाग २ पृ० २११

पहले तो वैराग्य भक्ति तब शैलीय' और पल्लू साहब की बानी भाग १ पृ० ७

भक्ति बीज तब बोई मिठविज करे विवेक'

पदार्थ की सम्भूति ज्ञानाग्नि से बतलाकर ज्ञान को मक्ति का आधार धरित करने की चेष्टा की है।

मक्ति को प्राप्त करने के लिए पूर्वजन्म के संरक्षण, कुछ इस जन्म के कर्म, और कुछ पूर्व जन्म के कुछ कर्म आदि भी अपेक्षित होते हैं। सन्त कबीर ने शिखा भी है—

कुछ करनी कुछ करम गति कुछ पूरबखा लेख ।  
देखो भाग कबीर का दीसत किया अलेख ॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त मक्ति विकास के साधनों की साधना के फलस्वरूप साधक में मक्ति का उभोप होता है। मक्ति के उदय होते ही साधक का सारा स्वरूप, उसकी सम्पूर्ण स्थिति बदल जाती है। उसका बयान करते हुए संत कबीर ने लिखा है—

राम भवै सो जानिए आके आतुर नाहि ।  
सत संतोष क्रिये रहे भीरज मन मांहि ॥  
जन को काम क्रोध ध्यापे नहीं क्रिप्या न जरबै ।  
प्रफुलित आनन्द में गोबिन्द गुण गावै ॥  
जनको पर निन्दा मानै नहीं अरु असति न भावै ।  
कास कल्पना मेटि कर बनू बिच रावै ॥  
जन सम दृष्टि सीतल सदा दुखिया नहिं आनै ।  
कहै कबीर ठा रास सँ मेरा मन मानै ॥<sup>२</sup>

दयावाई ने मक्त का और भी अधिक माहात्म्यक चित्र प्रस्तुत किया है। वे लिखती हैं—

प्रेम मगन जे साध बन तिन गति कह्यो न जाय ।  
रोय रोय गावत हँमत दया अटपटी बात ॥  
हरि रस भावै जे रहै तिनकी मनी अगाध ।  
त्रिमुपन की सम्भति 'दया' तून सम जानत साध ॥  
प्रेम-मगन गद्गद बचन पुनकि रोम सब धेग ।  
पुनकि रखी मन रूप में 'दया' न दूवै बित्त अंग ॥<sup>३</sup>

<sup>१</sup> भीमसाहेब की बानी पृ० ४६

'प्रेम पदारथ प्रगट अय जब ज्ञान अगिनि अयकार'

<sup>२</sup> कबीर प्रसादजी पृ० २०६

<sup>३</sup> दयावाई की बानी पृ० ९



प्रेम मन्दि से पालक हुए तन्त्र के उपर्युक्त चित्र भीमदूयागवत् के प्रेमोन्मत्त मत्तो के चित्रों से बहुत मिलते-जुलते हैं।<sup>१</sup>

### मन्दि के बापक तत्त्व

अब हम संक्षेप में मन्दि के बापक तत्त्वों का संकेत कर देना चाहते हैं। मन्दि मर्या में सबसे प्रमुख बापक माया है। वह कलमुखी राम का नाम ही नहीं लेने देती। माया का परिवार बड़ा जम्हा-पीका है। उसका समस्त परिवार ही मन्दि छावना का बापक है। उसके परिवार के प्रमुख बापक तत्त्व निम्नलिखित हैं—

- (१) अण्ड विकार
- (२) ईश्वर अभिरवात
- (३) येष
- (४) कुलंगति

तन्त्रों में मन्दि के बापक तत्त्वों में अण्डविकारों की बड़ी निम्ना थी है। अण्ड विकारों के नाम क्रमशः कम्म, अण्ड, लोम, मोह, अहंकार, कण्ड, आराध और तुम्हा हैं।

कम्म सबसे प्रथम और सबसे मर्मकर विकार है। नाम और कम्म में परस्पर विरोध है।<sup>२</sup> कम्म का म्दीक बैठे तो स्त्री पुरुष दोनों ही हैं किन्तु लोक की सामान्य धारणा के अनुसार स्त्री है। तन्त्रों ने अपिचर स्त्री की धीर सामान्य रूप से स्त्री और पुरुष दोनों की निम्ना थी है। स्त्री की हेक्ता की ओर संकेत करते हुए तन्त्र कथीर ने लिखा है<sup>३</sup> जब पुरुष के पार्श्व स्त्री खड़ी है तो वह पुरुष की मन्दि, मुक्ति और ज्ञान तीनों को लब्ध कर देती है। इती मन्धर अन्वै एकत्रो रूपतो पर नापि-निम्ना मिलती है। किन्तु नापि निम्ना के लिए हम तन्त्रों को दक्षी नहीं उद्यत करते हैं। तन्त्रों में नापि की निम्ना

<sup>१</sup> भीमदूयागवत् में दिने गये कुछ चित्र इस प्रकार हैं—

‘मर्म मत्तः स्वमिबनामधीर्त्वा, ज्यताभुतगो भुतभित्त उन्नेः ।

इत्यन्वो रोदिति रोति मार्यास्तुमन्धरन्धरनि, लोके बाधाः । भीमदूयागवत् १११४

मन्दिद्वारन्धरभुतभित्तवा मन्दिद्वारि, ~~~~~ विधाः ।

मही की है, नारी रूपी काम की गर्हणा की है। संत दादू नारी के छाप-छाप पुरुष को भी काम का प्रतीक मानते थे। उनका विश्वास था कि पुरुष के लिए भिन्न प्रकार नारी कामरूपा है उसी प्रकार नारी के लिए पुरुष कामरूप होता है—

नारी वैरिणि पुरिख की पुरखा वैरी नारि  
अंतकास दून्यौ मुप दादू देखि विचार ।  
नारी पीवै पुरिख कू पुरिख नारी कू खाइ  
दादू गुरु के ज्ञान बिना दून्यो गय विलाय ।<sup>१</sup>

भिन्न काम की तथा उसके प्रतीकों की संतों ने इतनी निंदा की है, वह वास्तव में इतना हैच नहीं है। केवल उसकी प्रशंसा बढ़ाने की आवश्यकता होती है। जब तक काम की प्रशंसा बहिर्मुखी रहती है तब तक वह भक्ति में बाधक रहता है। किन्तु उसे अन्तर्मुखी कर देने पर बड़ी उत्तम लाभक वस्तु हो जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर संत कबीर ने लिखा है “काम मिलाने राम छु जो कोई जानि राखि” इसी प्रकार मल्लूचदास ने भी लिखा है ‘काम मिलाने राम जो जो राखे यह बीत ।’<sup>२</sup>

बहिर्मुखी काम का सम्बन्ध संत कबीर मन से मानते थे। काम को परिभाषा बढ़ करते हुए उन्होंने लिखा है ‘काम काम तो सब कहते हैं किन्तु काम क्या है, इसको कोई नहीं जानता। मन की बितनी भी कल्पनाएँ हैं, वह सब काम रूप ही होती हैं ।’<sup>३</sup> सम्भवतः यही कारण है कि संतों ने मन पर विषय प्राप्त करने की उपदेश सर्वत्र दिया है। संत कबीर ने स्पष्ट लिखा है ‘मन मारे बिन मगति न होय’<sup>४</sup> संत दादू ने मन क्ली मृग को जान क्ली लहगु से मारने का उपदेश दिया<sup>५</sup> है। एक दूसरे स्थल पर दादू ने मन को बिगपर कहा है। उसके पिय को दूर करने के लिए गुरु रूपी गावड़ी की शरण

<sup>१</sup> दादूबानी संग्रह भाग १ पृ० १३३

<sup>२</sup> मल्लूचदास की बानी पृ० ४०

<sup>३</sup> कबीर सागी संग्रह पृ० १३३

‘काम काम सब कोई करे काम न चीन्हे कोय ।

जेनी मन की बराना काम बटावै सोय ॥

<sup>४</sup> कबीर प्रभावली पृ ३१२

<sup>५</sup> दादू बानी संग्रह भाग १ पृ० ११०

ज्ञान लहगु गुन्देब का ता संग सरा मुबाज ।

मन मिरण मारे सरा तावा मीस नाम ॥

मैम मगति से पागल हुए सत्य के उपर्युक्त चित्र भीमदुभागवत के मेमोन्मत्त भक्तों के चित्रों से बहुत मिलते-जुलते हैं।<sup>१</sup>

### मक्ति के बाधक तत्त्व

अब हम संक्षेप में मक्ति के बाधक तत्त्वों का संकेत कर देना चाहते हैं। मक्ति मार्ग में सबसे प्रमुख बाधक माया है। वह कल्पमुक्ती राम का नाम ही नहीं लेने देती। माया का परिवार बड़ा लम्बा-बोका है। उसके समस्त परिवार ही मक्ति काष्ण्य का बाधक है। उसके परिवार के प्रमुख बाधक तत्त्व निम्नलिखित हैं—

- (१) अज्ञ विचार
- (२) ईश्वर अविश्वास
- (३) मोह
- (४) कुसंगति

सर्वों ने मक्ति के बाधक तत्त्वों में अज्ञविचारों की बड़ी निन्दा की है। अज्ञ-विचारों के नाम क्रमशः अज्ञ, अज्ञेय, लोभ, मोह, अहंकार, कषय, आराध और कृप्या हैं।

अज्ञ सबसे प्रथम और सबसे भयंकर विचार है। नाम और काम में परस्पर विरोध है।<sup>२</sup> अज्ञ का प्रतीक चिह्न तो स्त्री-पुरुष दोनों ही हैं किन्तु लोक की सामान्य धारणा के अनुसार स्त्री ही है। सर्वों ने अविश्तर स्त्री की और सामान्य रूप से स्त्री और पुरुष दोनों की निन्दा की है। स्त्री की ईषता की और संकेत करते हुए संत कबीर ने लिखा है<sup>३</sup> जब पुरुष के पारस को खड़ी है तो वह पुरुष की मक्ति, मुक्ति और ज्ञान हीनों को मध्य कर देती है। इसी मध्य अन्य वैष्णवों रसकों पर नापी-निन्दा मिलती है। किन्तु नापी निन्दा के लिए हम सर्वों को दोषी नहीं ठहरा सकते हैं। सर्वों ने नापी की निन्दा

<sup>१</sup> भीमदुभागवत में दिये गये कुछ चित्र इस प्रकार हैं—

‘मूर्धं जगः स्वविषयकामस्त्रीत्वां च्छतासुतागे मुक्तचित्त उन्धीः ।

इत्यस्त्वमे रोदिति रोति गार्वात्युग्मदुग्मदुत्पति शोक बाह्याः । भीमदुभागवत ११।२४

कश्चिद्दुःखदुःखवस्तुतकिन्तपा कश्चिद्दुःखमिति कश्चित् कश्चित् कश्चित्कश्चित्कश्चित् ।

कृतमिति गार्वास्त्वमुन्नीकपयमस्वर्गं मरन्ति दुःखो परमेत्पविर्त्वाः ॥ ११।२।२९

<sup>२</sup> कबीर साखी संसह—७० १३३

‘जहाँ अज्ञ तहाँ नाम बहि कहीं नाम नहि अज्ञ

दोनों कबहुँ न मिली रवि रजनी एक खम ॥

<sup>३</sup> कबीर प्रियावली १० २६

‘मारी कन्तवै तीन मुग्न जो नर पायै होय ।

धमति, मुगति मित्र ज्ञान में बैठ न सकई कोय त

मही की है, मारी रूपी काम की गईशा की है। संत दादू मारी के साथ-साथ पुरुष को भी काम का प्रतीक मानते थे। उनका विश्वास था कि पुरुष के लिए भिन्न प्रकार मारी कामरूपा है उसी प्रकार मारी के लिए पुरुष कामरूप होता है—

मारी येरिखि पुरिख की पुरखा वैठी नारि  
 अंतकास दून्यो गुए दादू देखि बिचार।  
 नारी पीसै पुरिख कूँ पुरिख नारी कूँ खाइ  
 दादू गुरु के ज्ञान बिना दून्यो गए विलास।<sup>१</sup>

बिच काम की तथा उसके प्रतीकों की छन्दों ने इतनी निंदा की है, वह वास्तव में इतना हैन नहीं है। केवल उठकी प्रकृति बदलाने की आवश्यकता होती है। जब तक काम की प्रकृति बहिर्मुखी रहती है तब तक वह मक्ति में बाधक रहता है। किन्तु उसे अन्तर्मुखी कर देने पर बही उठका साधक तब हो जाता है। इसी बात को स्वान में गुरुदास संत कबीर ने सिखा है “काम मिलाने राम छं ओ कोई जानै रासि” इसी प्रकार मल्लूकदास ने भी सिखा है “काम मिलाने राम का ओ रासै यह भीत।”<sup>२</sup>

बहिर्मुखी काम का सम्बन्ध संत कबीर मन से मानते थे। काम को परिभाषा यह करते हुए उन्होंने सिखा है “काम काम तो सब करते हैं किन्तु काम क्या है, इसको कार्य नहीं जानता। मन की चिंतनी भी करुनार्य हैं, वह रूप काम रूप ही होती हैं।”<sup>३</sup> सम्भवतः यही कारण है कि छन्दों ने मन पर विषय प्राप्त करने को उपदेश सर्वत्र दिया है। संत कबीर ने स्पष्ट सिखा है “मन मारे बिन मगति न होय”<sup>४</sup> संत दादू ने मन रूपी मृग को ज्ञान रूपी लक्ष्मण से मारने का उपदेश दिया<sup>५</sup> है। एक दूसरे स्थान पर दादू ने मन को विषय कहा है। उसके विष को बुर करने के लिए गुरु रूपी गाफ़ी की चरण

<sup>१</sup> दादूबानी संग्रह भाग १ पृ० १३९

<sup>२</sup> मल्लूकदास की वाणी पृ० १०

<sup>३</sup> कबीर वाणी संग्रह पृ० १३३

‘काम काम सब कार्य कर काम न चीन्हे कोय।

जेनी मन की बहाना काम क्यापि सोय ॥

<sup>४</sup> कबीर प्रभावली पृ० ३१२

<sup>५</sup> दादू बानी संग्रह भाग १ पृ० ११०

‘ज्ञान लक्ष्मण गुल्मेच कर ता संग धरा मुकाम।

मन मिलन मारे नरा लक्ष मीय मास ॥

में जाने का उपदेश दिया है।<sup>१</sup> इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर उन्होंने मन के संघन से उत्पन्न भगवद्भक्ति की प्राप्ति का संकेत किया है<sup>२</sup>—

क्यों नहीं बिलोये मात्स्य भावे त्यों मन भयिया तव पावै ॥<sup>३</sup>

संतों ने कम के लक्ष्य ही क्रोध, शोक, मोह, अहंकार, अमृत, आशा, दुःखा आदि के प्रति भी अपना उपेक्षा मात्र प्रगट किया है। मनुष्य अर्थात् वह सबसे अपना स्वयं ही समझे। वह तभी सम्भव है जब उल्टा मन स्थित हो। इसी लिए संत कबीर ने लिखा है—

अग में बैरी कोठ नहीं जो मन शीतल होय।<sup>४</sup>

शोक के होते हुए भी भक्ति साधना नहीं की जा सकती। संत कबीर ने लिखा है 'शोक में शिख मन विषय से तिक हो जाता है, विषय में तिक मन भक्ति मानना में शीन नहीं हो सकता। मोह अहंकार कम होता है। शरीर में मोह के कारण ही अज्ञान का अहंकार छा जाता है। अज्ञानाकारणा में भक्ति का उदय नहीं हो सकता'। अहंकार के उपस्र होने पर इच्छा इतनी विमूर्छित हो जाती है और वह वह नहीं समझता कि मनु और भगवान् एक ही होते हैं। वह संत बनना करते समय अभिमान करता है<sup>५</sup>। अतः तो भक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है। जब तक हृदय में अहंकार रहता है तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती<sup>६</sup>। इसी प्रकार आशा और दुःखा भी

<sup>१</sup> दादू बाणी भाग १ पृ० १११

'मन भुवण बहु विषय मरा निर्बिष कहीं नहि होय।

'दादू लिखा गुण पावरी निर्बिष श्रीवा सोय ॥'

<sup>२</sup> संत बाणी संग्रह भाग २ पृ० २१

<sup>३</sup> कबीर साखी संग्रह पृ० १२७

<sup>४</sup> कबीर साखी संग्रह पृ० १३०

'जब मन आगा शोक से गया विषय में भोग।  
कई कबीर विचार के कर भक्ति धन होय ॥'

<sup>५</sup> जब धर मोह समाइया सरे मया अविचार।  
निर्मोहज्ञान विचार के कोई साधु उतरे पार ॥'

—कबीर साखी संग्रह पृ० १३२

<sup>६</sup> कबीर साखी संग्रह पृ० १३२

'असत धीर भगवन्त एक हैं कुरी नहीं अज्ञान।  
सीस बजावत संत को बजा कर अभिमान ॥

<sup>७</sup> दादू बचन की बाणी भाग १ पृ० ११८

(क) 'एक कई दादू मोहि अकारज भाठी, इहय कपट क्यो मिसी मुठा

(ख) कबीर संग्रहखी पृ० २१७

'हरि न मिसै दिन दिरदै स्य ॥'

मक्ति भी सबसे बड़ी विधेयिनी है। इन दाना का सम्बन्ध भी मन से ही है। संत कबीर आशा को कर्म बन की बेल मानते थे। तुम्हा उठ बेल के फूल के लहर है। मनुष्य इसी इन्द्रबान में फँसा रहता है। और अनेक कर्म करत रहता है, किन्तु फल ईश्वर-धीन रहते हैं।<sup>१</sup>

मक्ति भावना के विकास में ईश्वर अविश्वास की बहुत बड़ा बाधक होता है। अब तो यह है कि मक्ति की आध्यात्मिक ईश्वर विश्वास है। संत मुन्दरदास ने इसी लिए लिखा है—

सुन्दर कहत एक प्रसु के बिरयास बिन,  
साहि कू बुधा सठ पदि के मरत है ॥<sup>२</sup>

सन्तों ने मक्ति में भेष को भी बाधा रूप ही स्वीकार किया है। संत मुन्दरदास कहते हैं—

भेष न पण निरन्तर लखजु और नहि कछु पाद बिबादू ।

ये सब लखन हैं जिन माहि सुन्दर के घर हैं गुरु दादू ॥<sup>३</sup>

कुसंगति को वे मक्ति के लिए विरह्य समझते थे। कबीर ने केशा और बेर के मन्त्रिक लक्ष्य से कुसंगति के दुष्परिणाम को अन्वेषित किया है—

मारु मरु कुसंग की केशा कड़े बेरि ।

बो हाले वा पीरिये मोपित संग न बरि ॥<sup>४</sup>

संत को मक्ति के इन सभी बाधक लक्ष्यों से मुक्त करना पड़ता है। संत मुन्दरदास ने इस मुक्त को 'साधू अ संगम' कहा है।<sup>५</sup> उधे बे साबीर के संगम से अधिक मानते थे। सन्तों ने इस आध्यात्मिक मुक्त अ वचन "कृती और साधु सन को संग" शीर्षके से किया है। संत दादू ने लिखा है, कन्हा कन्हा बही होता है जो साबीर होता है वह अपने स्वामी के लिए अपना तिर अन्ति अ देगा है सभी वह स्वामी की सेवा अ पाता है।<sup>६</sup> कन्हा कू बही है जो बकिरवाँ उठ जाने पर भी मैदान से नहीं भागा।

<sup>१</sup> कबीर मागी सप्रह १० १३२

<sup>२</sup> 'साधा बेनी कर्म की बाइन मन के साध  
तुम्हा कूच बीयान में कच कर्मा के हाथ'

<sup>३</sup> संत बापी संग्रह भाग २ १० १०८

<sup>४</sup> संत मुखासार १ १११

<sup>५</sup> कबीर प्रहलसी १० ३०

<sup>६</sup> संत मुखासार १० १३३

'साधू को संगम है अधिक साबीर न'

<sup>७</sup> दादूबाबी भाग १ १० २०३

'गूरा पूरा कन्हा बन साँई को मेरी ।

साधू साहिब कारये करना तिर हरी ।

सुरा तबही परस्मिन् कहे भयभी के हत ।  
पुरिजा पुरिजा है पड़े तऊन छाड़ें छेत ॥<sup>१</sup>

जब सुर सामक अपने मस्तक की बलि का संकल्प कर लेता है तभी परमात्मा से मोंट कर पाता है—

सुरे सीस उठारिया द्राही तन की भास ।  
भाग्ये से हरि मुसकिया आवत वैक्या दास ॥<sup>२</sup>

हमारी समझ में इसी अन्नात्मिक युद्ध की चोखटा के खरप ही सन्तों ने अपनी मक्ति को 'दुहेली लहि की भार'<sup>३</sup> 'अग्नि की मल' कहा है। इस युद्ध के लिए सन्तों को प्रेम की क्यारी, ज्ञान की सेवा पारण करना भूया आश्चर्यक है। सन्त साहा माय की चूठते हैं—

प्रेम क्यारी तन बहै ज्ञान सेवा का पाव ।  
सन्मुख जूमे सुरवा सेहो से बरियाव ॥<sup>४</sup>

### भक्ति के और प्रकार

नारदभक्तिसूत्र में भक्ति के दो प्रकार बतलाने गये हैं—परा और वीची। उनमें उनका समन्वय हुए सिद्धा है 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। उक्त अक्षर अनुभवकर्ता उक्तके रत का बयान थीक उची प्रकार नहीं कर पाता है किउ प्रकार गुणा गुण के स्वाद का बर्णन नहीं कर सकता। एउ प्रकार अनिर्वचनीय प्रेम किसी विरले ही परम योग्य शुक प्रेमी मन्त्र में ही प्रकट होता है। यह प्रेम चीनों गुणों से परे खड़ा है। इसमें किसी प्रकार की कामना का त्वर्य नहीं होता। इसका अद्वय प्रवाह बना रहता है। यह अति सूक्ष्म और केवल अनुभवगम्य मात्र है। भक्त इस प्रेम को प्राप्त कर उची

<sup>१</sup> कबीर प्रियावली पृ० ६६

<sup>२</sup> कबीर प्रियावली पृ० ७०

<sup>३</sup> कबीर प्रियावली पृ० ७०

'मगति दुहेली राम की बैची यादे की भार'

कबीर प्रियावली पृ० ७०

'मगति दुहेली राम की बैची अग्नि की मल'

<sup>४</sup> सन्त मुखासार पृ० ११३

को देखता है, उली को सुनाता है और उली का चिंतन करता है। यह प्रेम सदबा पयमक्ति हुई।<sup>१</sup>

बृहती मक्ति गौरी होती है।<sup>२</sup> इसके गुणों के आधार पर शास्त्रिणी, रामली और तामली तीन भेद होते हैं। गीता में भी मक्ति के तीन भेद ही बतलाये गये हैं—ये ऋषयः शार्त्त, विद्वांसु और अर्योर्वा हैं। उली श्री मक्ति इस सबसे भेष्ट होती है। भीमद् भागवत्<sup>३</sup> में भी शास्त्रिणी, रामली और तामली इन तीन प्रकार की मक्तियों को गीष् कहा गया है। उठमें पय मक्ति अष्टेष्टुनी और अम्पवहित कही गई है। उली को अनिमिष्ठा और मागवती मक्ति का भेष्टतम रूप माना गया है।<sup>४</sup> इसी को निर्गुण मक्ति कहा गया है। पयमक्ति में निम्न मक्त मगवदानम् के अतिरिक्त और कुछ नहीं थाइवा। महर्षि शार्त्तृष्ण ने मक्ति में मुफ्पा और गौरी नाम के भेद किये हैं।<sup>५</sup> मारद् श्री पयमक्ति ही शार्त्तृष्ण श्री मुफ्पा मक्ति है। महर्षि अगिर ने मक्ति के रागात्मिका और वैषी—ये दो भेद किये हैं। वैषी को ये रागात्मिका मक्ति का तोलान मान मानते थे।<sup>६</sup> उठओ उम्होंने शान्तिप्रदा कहा है। भीरुगोस्वामी ने मक्ति रसामुन नामक ग्रंथ में मक्ति के दो भेद किये हैं—पय तथा गौरी। परामक्ति सर्वोत्कृष्ट कही गई है और गौरी के दो भद् और किये गये हैं—रागातुगा और वैषी।

आचार्य बल्लभ ने मक्ति के विद्विता और अविद्विता नामक भेद किये हैं।<sup>७</sup> हमारी समझ में रुरगोस्वामी और आचार्यबल्लभ के भेद संतो के बाद के हैं, अतः उनके प्रकाश में संतो श्री मक्ति का अर्थपन नहीं किया जा सकता। उनही मक्ति का अर्थपन मारद् मक्ति सूत्र शार्त्तृष्ण मक्ति सूत्र मगवद्गीता आदि प्राचीन मक्तिशास्त्रीय ग्रंथों के प्रकाश में होना चाहिए। यही कारण है यहाँ पर हमने संतो श्री मक्ति मानना के

<sup>१</sup> अनिर्बलीयं प्रेमस्वरूपम् २१

सूत्रस्वात्मगत २२

प्रदास्यत्त वधापि वापे २३

गुणरदिन कामता रहित प्रतिबन्ध बर्षमाण ।

विचिपुत्रं सूक्ष्मतामनुभव हरण्य रूपम् २४

<sup>२</sup> मारद् मक्ति सूत्र २६

‘गौरी विद्यागुणभेदादागार्दिभेदादा ।

<sup>३</sup> हेनिष् भागवत ३।२।१८, ३।२।१९, ३।२।१० ३।२।११, ३।२।१२, ३।२।१३

<sup>४</sup> भीमद्भागवत्

<sup>५</sup> शार्त्तृष्ण सूत्र ७२ तथा २४ सूत्र

<sup>६</sup> द्विती श्रीमता दर्शन समार सूत्र १२, ११

<sup>७</sup> ह्यिषे अयुषाम्य ३।३।३६



विवेचन में वे प्रथम प्रमाण रूप में उद्धृत किये हैं। उठती की मक्ति गीबी नहीं थी। वह मारद के शब्दों में परा प्रवृत्ति प्रेम लक्षणा, मागवत के शब्दों में निर्गुण और अतिरिक्त के शब्दों में रागादिभ्यः और शाब्दिक के शब्दों में मुखापी। उठती ने अपनी मक्ति के लिए परा<sup>१</sup> और प्रेम लक्षणा<sup>२</sup> शब्दों का प्रयोग भी किया है। उठती ने ये शब्द मारद के अनुसरण पर प्रयुक्त किये हैं। ये उनके अपने नहीं थे। उनके अपने शब्द 'आदि-धनी', 'मावमगति'<sup>३</sup> और 'मम मगति' हैं। इन तीनों में मैं उठतीने अतिरिक्त 'माव-मगति' का प्रयोग किया है। मैं उठती की मक्ति के लिए 'मावमक्ति' शब्द पारम्परिक मानता हूँ। मावमक्ति से उनका अभिप्राय रागादिभ्यः मक्ति के लक्षणीय रूप से है। मक्ति का लक्षणीकरण उठतीने माव से किया, इसी लिए उठती उसे मावशब्द से विनिश्चय किया है। मावशब्द प्रेम की अवस्था अधिक माव गमित है। प्रेम का वो वह वर्तमानवापी है ही, किन्तु उठती विधि-विधानों के लक्षणीकरण की ध्वनि भी निश्चली है। उठती ने अपनी मावमगति में बूझा विधि का मावमक्त लक्षणीकरण कर जाता है। इसी मावमक्त लक्षणीकरण की शर्तों आगे पूजासक्ति के अन्तर्गत करेंगे। माव शब्द से मक्ति की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की व्यक्तता भी होती है। उठती की वाचना अन्तर्मुखी थी<sup>४</sup>। उठतीने मक्ति को भी अन्तर्मुखी बनाए रखने का ही उपदेश दिया है। माव शब्द अन्तर्मुखी का बहिष्कार कर जाता है। उठती ने अत्यन्त ही बल पर बल दिया है कि मावशब्द की मक्ति, रुद्धिपालन या अन्तर्मुखी के रूप में नहीं, मावना और विचार के साथ करनी चाहिये। इसी लक्षणीकरणों से माव शब्द मक्ति के आगे प्रयुक्त किया गया है और वास्तव में सार्थक भी है। उठती की मक्ति के स्वयं का अन्वयन करने के प्रयास रूप अन्तर्भव होता है कि उठतीके लिए इसके अधिक प्रयुक्त शब्द प्रयुक्त नहीं किया जा सकता था।

<sup>१</sup> अन्तर्मुख की वाणी भाग २ पृ० ३३

'परा मक्ति अन्तर्मुख अन्तर्मुख विमल और निष्काम'

<sup>२</sup> मुग्धवास — सन्तुष्टासार—५००

'शिव्य मुक्ताक लोहि मेम अन्तर्मुख मक्ति का'

<sup>३</sup> अन्तर्मुखी सन्तुष्टासार पृ० २२२

'यह लोहित अन्तर्मुखी'

<sup>४</sup> अन्तर्मुख की वाणी

'शब्द रमना राम सो लेखी अन्तर्मुख मक्ति।

इति सन्तुष्टासार में लोहित अन्तर्मुख मक्ति ॥

## संतों की भावमगति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

संतों की भावमगति की सबसे प्रमुख विशेषताएँ उदर की निष्कमता है। संतों ने किसी स्वार्थ-साधना से प्रेरित होकर मक्ति-साधना नहीं की थी। धनीबख्शदास कहते हैं 'हे गुरुदेव । मुझे आप केवल मक्ति मात्र दीजिये । मैं केवल भगवान् के चरणों की सेवा मात्र करना चाहता हूँ । मैं तीर्थ मत नहीं करना चाहता हूँ । दूसरे की भावना भी मुझे नहीं रुचती । मुझे अष्ट सिद्धियों और मौ निधियों और वैकुण्ठ आदि से भी कोई प्रयोजन नहीं है । मुझे सम्पत्ति एवं सुन्दर स्त्री की कामना भी नहीं है । मेरा हृदय भगवान् के दर्शनो की कामना के आतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु की इच्छा से स्वप्न में भी अभिभूत नहीं होता' १। संत परनदास ने लिखा है कि ऐसी साधना ही करनी चाहिए जो सर्वथा निष्काम हो २। वास्तव में भगवान् का ये ही मकद अरने अभीन कर पाते हैं जो निष्काम भाव से मक्ति-साधना करते हैं ३। उन्त कबीर ने वा यहाँ तक शिखा है कि 'जो लोग सक्रम सेवा करते हैं, उनकी मक्ति-साधना व्यर्थ है' ४।

संतों की मक्ति की दूसरी प्रधान विशेषता बर्णाभ्रम धर्म की उपेक्षा है। मक्ति क्षेत्र में बर्णाभ्रम धर्म के प्रति उपेक्षामात्र का सूत्राव स्वामी रामानुजाचार्य और आइबार मठों के समय से ही बना था। और आगे चलकर रामानन्द ने उठे और भी बल प्रदान किया। महासूत्र संत वा प्रत्यक्ष रूप से पूरा उदासीन हो गये हैं। संतों ने मक्ति क्षेत्र में बर्णाभ्रम धर्म की उपेक्षा ही नहीं की उन्होंने उठ सर्वथा अमान्य और अविशेष टह्यया है। पलटू साहब का विरवास था—

हरि को भजे सो बड़ा है जाति न पूछै कोय १५

संत परनदास ने चारों बर्यों की उपेक्षा ही नहीं की है उन्होंने चारों आभ्रमों को भी अविशेष टह्यया है—

चारि बरन आभ्रम नाही नहीं कर्मना कोई १६

संत लोग मक्ति के द्वारा साधना मानने के पक्ष में थे। उनका विरवास था कि

१ संत बापी संघद भाग २ पृ० ३६

२ बरनदास की बानी भाग २ पृ० ३६

३ मन्कुरास की बानी पृ० १६

४ कबीर बख्शदासी पृ० १० सागी ३२

५ उन्त अगि भगति सक्रमना सब जग सिद्ध होव

६ पलटू साहब की बानी भाग १ पृ० ८३

७ बरनदास २/११

मगवान् की कृपा कदाच स ही मन समस्त विचरये से मुक्त हो जाता है। मन के मात्रा रहित होने पर मक्ति स्वयमेव मी जाती है। संव मीला साहचर किरते हैं—

अस करिये साहचर दामा ।

कृपा कटाच होइ कोहि ते प्रसु कृति आय मन माया ॥<sup>१</sup> इत्यादि

सर्वों ने मक्ति में एकत्रियक्या को भी महत्त्व दिया है। उनका विरवाच या कि को मयवान् को पा होता है वह फिर अपना निदोरा नहीं पीरता बरन् द्विपकर रखने लगता है। पलट्ट साहचर कहते हैं—

मिनमिन पाया वस्तु को तिति तिति चले द्विपाय ।<sup>२</sup>

एक दूसरे स्थल पर उद्योने संसार को भाङ में भ्रंजने तक श्री बात कह जाती है—

मगान आपने क्याक में भाङ परे संसार ।

भाङ परे संसार नाहिं काहु से कामा ।

मन बच काय लगाय जानि ही केवल रामा ॥<sup>३</sup>

संव शैल ने मक्ति-मार्ग पर अकेले चलने की बात कही है—

राम प्रीति का पंथ दुर्दसा संगिन गबन अकेला ।<sup>४</sup>

सर्वों का मक्तिमार्ग बोध के सामंभस्य से पूर्णता को प्राप्त होता है। सन्व पलट्ट ने मक्ति के प्रेम तक श्री अनुमति महारत्न में करने का उपदेश दिया है।

गगन गुप्त के बीच प्रेम पिवाला प्रेम का चारै ।<sup>५</sup>

इसी प्रकार सन्त कबीर ने मक्ति के आरूप को और बोध के ध्येन मगवान् को एक करके मक्ति की योग विधिप्यता प्पनित की है।

मगति दुबारा सांख्या राई दसयें द्वार ।<sup>६</sup>

<sup>१</sup> कल्पवाची संमह २।१२५

<sup>२</sup> पलट्ट साहच भाग १।४०

<sup>३</sup> पलट्ट साहच भाग १।३०

<sup>४</sup> सन्त सुधासार १८४

<sup>५</sup> पलट्ट साहच श्री बानी भाग १ पृ० २

<sup>६</sup> कबीर प्रपञ्चवटी ५० २०

संतों की भक्ति प्रबोध्युषी है। तुलसी साहब ने लिखा है कि सच्ची भक्ति बही है वा मनसा, वाचा और कर्मसा तीनों प्रकार से प्रवृत्त होती है।<sup>१</sup>

संतों की भक्ति एकान्तिक और योग विशिष्ट होते हुए भी कल्याण-विधायनी और लोक-संग्रहात्मक है। एकान्तिक साधना करते हुए भी भक्त को लोक-संग्रह करना चाहिये। बाह्य में भक्ति वस्त्र के उदय होते ही अन्तः कल्याण होता है। संत चरन दास लिखते हैं—

“औरत नू उपदेश करि भजन करै निरकाम ।  
चरनदास ये साधजन पहुँचे हरि के घाम ॥  
भक्ति पदारथ सद्यः सू होय सभी कल्याण ॥”<sup>२</sup>

पसटू साहब की निम्नलिखित पंक्तियों से यह स्पष्ट ध्वनि निकल रही है कि संत लोग (लोक-संग्रह का अपना कर्तव्य समझते थे—

एक न भूला तुई न भूला भूला सब स्मरार ।  
पसटूदाम हम क्या पुकारी अब न होय हमार ॥<sup>३</sup>

अब हम संतों की भक्ति के उपास्य के स्वरूप पर प्रकाश डाल देना चाहते हैं। यही हम यह बुझे हैं कि उपासना हृदय की सात्त्विक समर्पण बुद्धि की अभिव्यक्ति है। प्रायः यह अभिव्यक्ति व्यक्त के प्रति ही अभिरुचि उत्पन्न करनेवाली होती है। स्वामी शंकराचार्य जैसे कठोर अद्वैतवादी को भी उपासना के लिए सगुण की ओर मुझना पड़ा था। महात्मा हजूर ने भी गीता में अर्पण की उपासना को दुस्साध्य कहा है। संतों में प्राचीनों की इतनी धारणा का निराकरण करके अर्पण के प्रति ही अपनी उपासना समर्पित की है।

संतों का आराध्य—संतों की भक्ति का आराध्य “मुनि मंदलवासी पुण्य” ही है। संतों में उसे आदि पुण्य परमात्मा<sup>४</sup> और आदि उपास्य<sup>५</sup> रूप कहकर

<sup>१</sup> तुलसी साहब १००

सच्ची भक्ति गुदाब की मरो मन मान्य ।

मनसा वाचा कर्मसा मुनु सख मुजाबा ॥

<sup>२</sup> चरनदास भाग २ पृ० ८२

<sup>३</sup> पसटू बामी भाग २ पृ० ११

<sup>४</sup> चरनदास की बामी समग्र भाग २ पृ० ८२

“आदि पुण्य परमात्मा तुम्हें भजके माय”

<sup>५</sup> चरनदास की बामी भाग २ पृ० ४३

“आदि उपास्य रूप सरा हा मूण्य नादि न ध्याई”

उसके प्रति अपनी भङ्गा अर्पित की है। यह चादि पुण्य परमात्मा ही संतो का राम है, पही जानियों का आत्मदास है।<sup>१</sup> योगियों ने वही निरञ्जन नाम से प्रकिय है।<sup>२</sup> संतो ने अपनी उगाठना को आराध्य निर्गुण आत्मा ही उद्गया या। इसके प्रमाण में हम संत चरनदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं। इन पंक्तियों में चरनदास की ने 'आत्मदास की पूजा' का उपदेश किया है। उक्त आत्मदेवता की सगुणता और मूर्तिमत्ता भी प्रतिपादित की है—

“हम तो आत्म पूजाघाटी  
समुक्ति समुक्ति कर निरञ्जय कीन्ही और सधन पर मापी  
और देवदास तहँ घुँघरी पूजा देवत दृष्टि न आवै  
हमरा देवत परगट हीसे दोखे जाले आवै ॥”<sup>३</sup>

संतों ने ब्रिह आत्मापरम की उगाठना का उपदेश दिया है, वह मौखिक भी है। उन्होंने आत्मा के सहारे आत्माकामी राम के दर्शन करने का उपदेश दिया है। उक्त चरनदास कहते हैं—

१. “मंदिर क्यों त्यागी और भागी क्यों गिरिधर को,  
हरि ओं हूँ बरसानि रूपै क्यों माधरे।  
२. सब साधन बतायो और चार येह गायी,  
आपन को आप देख अन्तर हीं काधरे ॥”<sup>४</sup>

संतों ने अपने निरञ्जन का सगुणीकरण प्रेम और लौकिक से करके उसे मूल परमार्थ से भी अधिक मयूर और लहब बना दिया है। संत गुलाल लहब लिखते हैं—

१. १—गुलाल साहब की बानी पृ० १३२  
‘आत्म राम सखत का धारै’  
२—की पृ० १०१  
‘कोई आत्म भक्ति-ज्ञान न जाले’  
३—गुलामी-संत सुभाषार पृ० २०२  
‘आत्म को देव चाहि पूजा भाई’  
४. साहूपाय की बानी भाग १ पृ० १११  
‘आत्म एक निरञ्जन देव’  
कबीर प्रयागवासी पृ० ३०  
‘मगति बुबारा साँकरा हाई संसरे भाई’  
कबीर प्रयागवासी पृ० ८३  
‘प्रेम मगति द्विदोस्य सब सन्तक को ।’

१. चरनदास की बानी भाग २ पृ० ७६

२. चरनदास की बानी भाग २ पृ० ७७

नाना रूप निरंजन नागर,  
 कामन लिहल पमार हो सजनी ।  
 रोम रोम छवि बरनि न आवे,  
 एक साह कठ पियार हो सजनी  
 नम धरम नहि काम नहि  
 निगुन रूप निनार हो सजनी ॥<sup>१</sup>

उस यौगिक, अगम, अगाधर, अलखनाथ पुरुष के दर्शन करके ही संत लोग उनाप हाते थे ।<sup>१</sup> क्यों उठे उन्हेंनि मल्ल बहल<sup>२</sup>, दीनदयाल<sup>३</sup>, कन्नानव<sup>४</sup>, गरीबनिवाज<sup>५</sup> आदि बना दिया है बिबिध पूर्ण सगुण लगने लगा है । किंतु भारत में वह है 'निगुण' ही । यहाँ पर मैं एक बार फिर स्मरण दिला देना चाहता हूँ कि संतों का निर्गुण शब्द भोगियों के प्रिय श्रोतित्वरूपी और नादस्वरूपी मल्ल के लिए लिया गया । यह श्रोतित्वरूपी और नादस्वरूपी परमात्मा और कुछ नहीं, परस्य शुद्धशुद्ध कुछ अप्रमत्त ही है । उसी परस्य निर्गुण निरंजन आध्यात्म को संतों ने राम का अभिधान दिया है और मक्ति-चेत में माह और प्रेम के सहारे उनका सगुणीकरण करके उस मल्ल का आराध्य बना दिया है । संत दानू मिलते हैं कि मैं उस मल्ल की निहाय हूँ या निगुण का सगुणीकरण करके उसके गुणों का भीवन करते हूँ ।<sup>६</sup>

यहाँ पर एक बात और स्मरण रखने की है कि संत साफ निष्ठा बट्टता में विश्वास नहीं करते थे । वह मक्ति करना अपना धर्म समझते थे, चाहे वह निर्गुण के प्रति की जाय या सगुण के प्रति । उनकी दृष्टि में सगुण और निर्गुण दोनों एक ही परमात्मा के रूप हैं । सहजा में लिखा है—

निगुन सगुन एक प्रभु देगो समुक्ति विचार' ।—इत्यादि ।<sup>७</sup>

<sup>१</sup> गुजरात साहब की बानी पृ० १३१

<sup>२</sup> बंदी पृ० ३४

“अगम अगाधर अलखनाथ”

<sup>३</sup> गुजरात साहब की बानी पृ० ४२

<sup>४</sup> बंदी

<sup>५</sup> बंदी पृ० ४३

<sup>६</sup> कबीर प्रपारखी

<sup>७</sup> दानू की बानी भाग २ पृ० १८३

‘दानू निगुन गुण बरे ऊठकी हो बविहार ।’

<sup>८</sup> उल्ल सुधासार गल्ल २ पृ० १३२

किंतु यम के रूप में इन रहस्यों को वही समझ सकता है जो बहुत प्रवीण है।

संतों ने आत्मा को सगुणीकरना ही नहीं किया है, उन्होंने विराट परमात्मा की उपासना का उपदेश भी दिया है।<sup>१</sup>

**प्रपत्तिपरता**—संतों ने अपनी मति में प्रपत्ति पर बहुत बल दिया है। प्रपत्ति का ब्रह्म धर्म स्वीकारना और वीरिण धर्म आत्म-निषेध है। यह आत्मनिषेध या प्रपत्ति दो प्रकार की होती है—मकल्लय मगवान् का स्वीकारना और मगल्लय मस्त का स्वीकार। प्रथम प्रकार की प्रपत्ति मर्यादिक प्रपत्ति है। इसके अर्थात् अर्जुन और विभीषण हैं। किंतु अर्जुन की प्रपत्ति पुष्टि समिभित मी है, शुद्ध मर्यादिक नहीं है, क्योंकि अर्जुन के लिए मगवान् भी उठना ही विहित रहते हैं किंतु अर्जुन मगवान् में निरत रहते हैं। संतों की प्रपत्ति मर्यादिक प्रपत्ति ही है। अन्य लोग ही पहले आत्म समर्पण करते हैं, फिर मगवान् स्वयं इच्छित होकर उसे अपना लेते हैं।

संतों ने मगवान् के प्रति आत्म-समर्पण करने का उपदेश सर्वत्र दिया है। कबीर कहते हैं—

अन कबीर पेरी सरन आयो रहति खेहु मगवान् ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार दासू ने कहा है—

सरय्य तुम्हारी आइ परे हम ।

जहाँ तहाँ हम सब फिर आए ॥<sup>२</sup>

यह सरसागति मनसा, बाचा और कर्मसा त्रयानुष्ठी होनी चाहिए। अन्य लोग कर्म में विश्वास नहीं करते वे अतः दासू ने मनसा, बाचा प्रपत्ति का उल्लेख किया है—

मनसा बाचा सरस्य घोर ।<sup>३</sup>

अन्य देवात प्रपत्ति के आगे तीरथ त्रय आदि सबको निरर्पक और निष्कृत मानते थे—

तीरथ बरत न करै अंदेसा तुम्हरे चरन कमल का मरोसा ।<sup>४</sup>

बासू पुण्य में प्रपत्ति के ६ अंग गिनाये गये हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—

<sup>१</sup> कबीर संकलन पृ० २०८

<sup>२</sup> कबीर प्रयोगश्री पृ० ११०

<sup>३</sup> दासू बानी भा० २ पृ० १०९

<sup>४</sup> दासू बानी भा० २ पृ० १२८

<sup>५</sup> अमृत सुभासार पत्रक १ पृ० १११

- (१) मगवान् के अनुकूल आचरण करना
- (२) मगवान् के प्रतिकूल आचरणों का निषेध
- (३) मगवान् की रक्षा में बिरिभाष रखना
- (४) एष्यन्त्र में मगवान् को आत्मसमर्पण करना
- (५) सर्वतोमुखी आत्मसमर्पण
- (६) अपनी असमर्पण का अनुभव करना ।

मगवान् के अनुकूल आचरण करना सरल नहीं है । मगवान् मर्मादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं । उनसे वे ही आचरण अच्छे लगते हैं । बिनासे लोक का रूपपाश होता है । मगवान् के अनुकूल आचरण से हम सदाचार का अभिमान भी दे सकते हैं । सर्वत्र सदाचारपूर्वक जीवन-यापन का ही उपदेश दिया है । 'अनुकूलस्य संभस्य' के उदय होते ही 'प्रतिकूलस्य बर्जन' वाली विशेषता स्वयं आ जाती है । संत दादू की निम्न शिल्लिपि पंक्तिों में दोनों का एक साथ ही संकेत मिलता है—

राम मझे विषया तजे ध्यापा न जनाये  
मिथ्या मुनि बोले नहीं पर  
भीगुण छोड़े गुण गहे मन हर पद भार् ।<sup>१</sup>

जियरा मेरे सुमिरि सार, धाम कोच मद तजि विहार ।<sup>२</sup>

तीसरा अंग है मगवान् की रक्षा में बिरिभाष । इस अंग का भी संतो में सेइको उदाहरण मिलते हैं । संत कबीर ने कहा है—

अथ मोहि राम भरोसा वेरा ।  
भीर फोन का कपे निहोर ॥<sup>३</sup>

सोचा अंग है एष्यन्त्र में परमात्मा का स्मरण करना, उनका ध्यान करना और उन्हें आत्मसमर्पण करना और उनकी कृपा का दान पाकर सुख होना—

प्रसु सुम ऐमे हीन इयाल,  
हम अक आपम कुटिल जन्वाल ।<sup>४</sup>

आत्म-निष्ठता के संतो में अगणित उदाहरण मिलते हैं । आत्म-निष्ठता उनकी पंक्ति की प्रमुख विशेषता है । रैदास की एक पद उक्ति देखिए—

<sup>१</sup> मत्स्य बाणी संग्रह भाग १ पृ० ११

<sup>२</sup> मत्स्य बाणी संग्रह भाग १ पृ० ११

<sup>३</sup> कबीर संग्रह पृ० १२४

<sup>४</sup> गुजरात की बाणी पृ० ४२



कहि रैदास सरनि प्रसु ठेरी  
सु खानहु स्यु कह गति मेरी ।<sup>१</sup>

कार्यरूप मात्र की अभिव्यक्ति भी संतों में बहुत स्थलों पर मिलती है। कार्यरूप का अर्थ है रीनता। अपनी रीनता का प्रदर्शन करके मठ भगवान् की शरण में जाता है। इसके अन्तर्गत आत्म-निवेदन मठ की अकिंचनता एवं सुखा और भगवान् की महानता आदिक बर्णन आते हैं। संत कबीर में इस प्रपत्ति के इस अंग के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। मठ की अनन्यता और नम्रता का देखिये कैदा सुन्दर उदाहरण है—

सपनेहु पर राय के जिह सुख निकसे राम  
ठाके पर की पावरी मेरे तन की चाम ।<sup>२</sup>

इसी प्रकार एक दूसरे स्थल पर उन्होंने आत्मदैव्य का सुन्दर प्रदर्शन किया है—  
माथी मैं ऐसा अपराधी ठेरी मागति हँसे नहीं साधी ।<sup>३</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों की बानियों में हमें प्रपत्ति के सभी अंग मिलते हैं।

**भक्तिमार्ग का सहजीकरण**—हम ऊपर दिला आये हैं कि संतों ने सनातन धर्म और ज्ञान-मार्गों का स्वीकार करते हुए भी अपनी सहज-साधना के अनुक्रम उन्नत सहजीकरण किया था। उनका सहजीकरण का विशिष्ट भक्तिमार्ग के सम्बन्ध में उक्त रूप में लागू नहीं होता है, बिलकुल रूप में धर्म और ज्ञान साधनाओं के क्षेत्र में उक्त प्रविष्टि की गई है। इसका कारण यह था कि संत लोग भक्तिमार्ग सहज मार्ग ही मानते थे। भक्ति-साधना प्रेम विधिप्रिय होती है। प्रेम संतों के सहजमार्ग की प्राणमय विशेषता है। सहजमार्ग की दूसरी प्रमुख विशेषता सदापरमपिपता है। भक्ति में उसी की वैसी ही प्रविष्टि है वैसी ज्ञानक्षेत्र में है। सहजमार्ग के अन्य उपर नाम रूप, अन्तर्मूर्त्ति साधना आदि भी भक्तिमार्ग में मिली न किठी रूप में उपलब्ध होते हैं। इन्हीं उपर साधना से संतों ने उच्च सहजमार्ग का स्वरूप दे दिया है। वैष्णवी भक्ति का प्रबल संतों की वैधीपूजा के स्थान पर उन्होंने माधारमक पूजाविधि को महत्त्व दिया है। संतों ने भक्ति मार्ग का सहजीकरण केवल इसी रूप में किया था।

<sup>१</sup> सप्त सुपासार पृ० १८२

<sup>२</sup> कबीर प्रबंधकी पृ० २६१

<sup>३</sup> वही पृ० १५२

<sup>४</sup> दादू साहब की बानी भाग २ पृ० १३१ पृ २०१

## सातवाँ अध्याय

### रहस्य और सहज साधनार्थ

उन्तों की रहस्य साधना—

स्वकृत—परिमाणार्थ—विचार और प्रेम का मिलन-बिन्दु—अनुभूति—  
मूलकृता—आखिरीकृता—रहस्यवादी और दार्शनिक का भेद—  
रहस्य विज्ञाता—रहस्यवादियों का प्रियतम—प्रेम तत्त्व—गुरु—  
विरहवस्तु—उपरस—रहस्यवाद की दो प्रक्रियाएँ—अंतर्मुक्ती रहस्यवाद—  
बाह्यात्मक रहस्यवाद ।

रहस्यवाद की अवस्थाएँ—बागएण की अवस्था—परिष्कारण की अवस्था ।  
अनुभूति की अवस्था—विष्णावस्था—मिलन की अवस्था—सादारम्य की  
अवस्था—योगिक रहस्यवाद—अभिप्यक्तिमूलक रहस्यवाद—विशेषणार्थ ।

उन्तों की सहज साधनार्थ—

धर्म क्षेत्रीय सहज साधना—युग की प्रेरणा—उन्तों की धार्मिक साधना का  
दो पक्ष—उन्तों के धार्मिक दृष्टिकोण की मौलिकता ।  
मध्ययुग की दो धर्म-शाखें—धर्मस्वरूप और तत्त्व—बुद्धिवादिता—  
आध्यात्मिकता ।

उन्तों की धर्म-साधना का अंतर्तात्मक पक्ष—

अप-विरहाद्यो का प्राधान्य और उनका संपहन—मिथ्यावाद्यो और  
आह्वानवाद्यो का प्राधान्य और उनका संपहन—स्मृतिवाद का प्राधान्य और  
सहज संहन—सहजीकरण—परिष्करण—सदान्तामूलक मानसीकरण—  
सदाचार के सहारे धर्म का सहजीकरण—सहजाचरण—सहजवैराग्य—  
सहजधर्म—सहज त्याग—सहज विनारग्य—सहजज्ञान—सहज प्रेम ।

उन्तों की सहज साधना—

सहजीपाल—नाम का और स्वरण—असि—सत्यगति—सहजवाग ।

उन्तों की समाज क्षेत्रीय सहज साधनार्थ—

तत्प्राणीन रिपत्रिवा—समाजमुक्ति के स्वरूप और योजनाएँ—दूरेत सामा  
जिक प्रयासो और अंतरायासो का संहन और सहजीकृत सामाजिक  
अंतरायासो का संहन—समाज का भेदभाव को दूर करने का बुद्धिवादी  
प्रयास—उन्तों का साम्यवाद ।

## संतों की रहस्य साधना

**स्वरूप**—रहस्यवाद का स्वरूप वास्तव में क्या रहस्यमय है। यही कारण है कि संतों विद्वानों द्वारा विवेचित किये जाने पर भी वह अस्पष्ट और रहस्यमय बना हुआ है। सहीम की सहीम से ऐक्यानुभूति का इतिहास स्पष्ट और रहस्यहीन हो भी कैसे सकता है। यह इतिहास इतना बृहत् और रहस्यपूर्ण है कि भाषि पुत्र से मानव बचकर उसकी अभिव्यक्ति करने की चेष्टा करता रहा है। किन्तु आज भी वह अनेक दृष्टियों से अनभिन्न है और शायद दुष्टि के अंतिम क्षण तक वह अनभिन्न और अस्पष्ट ही रहेगा।

**परिभाषा**—रहस्यवाद की संतों परिभाषाओं में से दो-चार महत्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख कर देना अनुपपन्न म होगा। अंगरेजी की प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में रहस्यवाद का स्पष्टीकरण तो नहीं किया गया है किन्तु रहस्यवादी की परिभाषा अक्षर्य ही गई है। उसके अनुसार रहस्यवादी उसे कहते हैं जो अनतीत सत्य की आत्मात्मिक अनुभूति में विश्वास करता है। 'स्वर्न' साहब के मतानुसार लोक में रहस्यवाद का प्रयोग कुछ धर्मग्रन्थालोक दृष्टि से किया जाता है। इसके अन्तर्गत ईश्वर और संसार से सम्बन्धित आत्मात्मिक एवं रहस्यात्मक साधनाएँ तथा भी बहुत ही विविध बातें आ सकती हैं।<sup>१</sup> रहस्यवाद का शाब्दिक अर्थकत करनेवालों में कुमारी इवेलिन आदर देता ही अच्छी यथासि है। उन्होंने रहस्यवाद के स्वरूप की दो स्थलों पर स्पष्ट करने की चेष्टा की है एक अपने मिस्त्रीकिंग नामक ग्रन्थ में और दूसरे टैगोर की इण्ड्रेड पोद्दमस आक कबीर की सूक्ति में मिस्त्रीकिंग नामक ग्रन्थ में यह लिखते हैं। मेरी दृष्टि में रहस्यवाद मानव की परात्पर के साथ मानवत्वक देवतानुभूति की प्राप्ति का प्रकाशन है। पारमिष्ठ दृष्टि से उनका आदि या कुछ भी स्वरूप, सीमा और विस्तार हो किन्तु मेरे विचार में बड़े बड़े रहस्यवादियों की मानना क्रमशः खेतना की सम्पूर्ण भूमि को आर्जित करती पत्नी जाती है। रहस्यवादियों<sup>२</sup>

1—Mystic—N (often contempt) One who believes in spiritual apprehension of truths beyond the understanding

—Concise Oxford Dictionary (1911 Ed.)

२—It is unquestionably true that the mysticism is often used in semi contemptuous way to denote any kind of occult or spiritualism.

—Mysticism in English literature page. 4 (1917 Ed.)

३—Broadly speaking understand it to be the expression of the innate tendency of the human spirit with the transcendental order Whatever be the theological formula under which the order is understood.

The tendency in great mystics gradually capture whole field of consciousness. It denotes their life and in the experience a mystic union. Mysticism (preface Page 14 (1912 Ed.) written by Evelyn Under hill.

का जीवन इसी मासि से परिपूर्ण रहता है। अनुभूति के क्षेत्र में इसको रहस्यत्मक निम्न कहते हैं। यह परिमाणा कुछ लम्बी और घटपट सी है। इंद्रोद पोश्मल आठ कवीर की भूमिका में दी गई परिमाणा अत्यधिक संक्षिप्त सारपूर्ण प्रतीत होती है। इसमें रहस्यवाद को सत्य के प्रति उद्भूत भावनात्मक प्रतिक्रिया कहा गया है। एम० के स्पेन्सर नामक एक दूसरे अंगरेज विद्वान् ने भी अपने ब्यापक मिस्त्रीसिम नामक ग्रंथ में रहस्यवाद के स्वरूप की ओर संकेत किया है। उन्होंने लिखा है कि रहस्यवादी किसी साम्र प्रमाणा पर आसक्ति नहीं रहता। वह परास्तर तक पहुँचने के लिए अपनी ही साधना का आश्रय लेता है। उनमें अतीव के प्रति तीव्र आकांक्षा रहती है और शास्त्र तक पहुँचने की तीव्र इच्छा है। इसी विद्वान् ने अपने ओबुअल डिजाउरी इन लाइफ नामक ग्रंथ में रहस्यवाद को धर्म का क्रियात्मक रूप कहा है।<sup>१</sup> उनके मतानुसार रहस्यवाद को धर्म के महानतम का भावनात्मक मानवीकरण कहा जा सकता है। यह रहस्यवादी को ईश्वरीय मनुष्य मानता है। उक्त मतानुसार रहस्यवादी प्रकृति के रहस्यों को समझता है और उनका उद्घाटन भी करता है।

सबसे प्रभावपूर्ण परिमाणा प्रो० शिंगे की है। उन्होंने मिस्त्रीसिम इन महा राष्ट्र नामक एक मोढ़ ग्रन्थ लिखा है। उसकी मसिहा में यह रहस्यवाद को समझते हुए लिखा है—रहस्यवाद उच्च मानसिक परिस्थिति के प्रकाशन को कहेंगे जिसमें वाचक का परमात्मा का सीधा संबंध रहता है। अनुभूतिमूलक परिज्ञान होता है। कुछ हिन्दी विद्वानों ने भी रहस्यवाद के स्वरूप को समझने की चेष्टा की है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण परिमाणों प्रसाद जी और डा० रामकुमार बर्मा जी हैं। प्रसाद जी ने रहस्यवाद का आमा की मूल संस्कृतात्मक अनुभूति की मुद्रा पाठ कहा है। यह परिमाणा बनावक होने हुए भी अरुण्ड है। सबसे सुन्दर परिमाणा डा० रामकुमार बर्मा की है। उनकी परिमाणा निम्नलिखित है—

१—“Mysticism is the temperamental reaction to the reality

—(Hundred Poems of Kabir) Preface

२—Joyous mysticism Page 16 Written by M. K. Spencer 1942

३—Mysticism is Religion in Practice. This is the sublimation of the highest in Religion. To be mystic is to be God head. He knows and unravels the secrets of Nature,

Spiritual Philosophy in life by M. K. spencer (1942) Page 50.

४—Mysticism denotes that attitude of mind which ensures a direct immediate firsthand intuitive Knowledge of God.

Mysticism in Maharashtra. Page (Preface)

## संतों की रहस्य साधना

स्वरूप—रहस्यवाद का स्वरूप वास्तव में बड़ा खतरमय है। यही कारण है कि वैदकों विद्वानों द्वारा विवेचित किये जाने पर भी वह अपसृष्ट और रहस्यमय बना हुआ है। तबीन की अतीत से ऐक्यानुमति का इतिहास स्पष्ट और रहस्यहीन हो भी सके लज्जा है। वह इतिहास इतना बृहत् और रहस्यपूर्ण है कि आदि युग से मानव बचकर उसकी अभिम्यक्ति करने की चेष्टा करता रहा है। किन्तु आज भी वह अनेक दृष्टियों से अनभिज्ञ रहता है और शायद सृष्टि के अंतिम क्षण तक वह अनभिज्ञ रहने और अपसृष्ट ही रहेगा।

परिभाषाएँ—रहस्यवाद की वैदकों परिभाषाओं में से दो-चार महत्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा। बौद्धों की प्रसिद्ध अंतर्द्वार आँसु-स्रोतों द्विकचनरी में रहस्यवाद का स्पष्टीकरण तो नहीं किया गया है किन्तु रहस्यवादी की परिभाषा अक्षर्य दी गई है। उसके अनुसार रहस्यवादी उसे कहते हैं जो शान्तीय छत्र की आत्मात्मिक अनुमति में विरक्त करता है। स्वर्न<sup>१</sup> साहब के महाशुभार लोक में रहस्यवाद का प्रयोग कुछ अक्षर्युक्त्यात्मक दृष्टि से किया जाता है। इसके अन्तर्गत ईश्वर और संसार से सम्बन्धित आत्मात्मिक एवं रहस्यात्मक साधनाएँ तथा और भी बहुत ही विचित्र बातें आ सकती हैं।<sup>२</sup> रहस्यवाद का शाब्िक अर्थ अज्ञान करनेवालों में कुमारी हेलेन आर्डर दिल की अक्षर्य संपाति है। उन्होंने रहस्यवाद के स्वरूप की दो रूपों पर स्तर करने की चेष्टा की है एक अपने मिलीशियम नामक ग्रन्थ में और दूसरे टैगोर की इस्ट्रेड पोश्मस आक कबीर की भूमिका में मिलीशियम नामक ग्रन्थ में वह लिखती हैं। मेरी दृष्टि में रहस्यवाद मानव की परस्पर के साथ मानवात्मक ऐक्यानुमति की महाधि का प्रकाशन है। पारिठ दृष्टि से उनका धार्य जो कुछ क्रमशः चेतना की सम्पूर्ण भूमि को आक्रान्त करती चली जाती है। रहस्यवादियों<sup>३</sup>

१—Mystic—N (often contempt) One who believes in spiritual apprehension of truths beyond the understanding  
—Concise Oxford Dictionary (1911 Ed.)

२—It is unquestionably true that the mysticism is often used in semi contemptuous way to denote any kind of occult or spiritualism.  
—Mysticism in English literature page. 4 (1917 Ed.)

३—Broadly speaking understand it to be the expression of the innate tendency of the human spirit with the transcendental order understood.  
Whatever be the theological formula under which the order is

The tendency in great mystics gradually capture whole field of consciousness. It denotes their life and in the experience a mystic union. Mysticism (preface Page 14 (1912 Ed.) written by Evelyn Under hill.

का बीजन इसी मूढि से परिपूर्ण रहता है। अनुभूति के क्षेत्र में इसके रहस्यात्मक भिन्न कहे हैं। यह परिभाषा कुछ लक्ष्मी और अत्यन्त ही है। इन्डो-पोरमस आफ कबीर की मूढि में दी गई परिभाषा अत्यधिक संक्षिप्त तारपूष प्रतीत होगी है। उसमें रहस्यवाद को धर्म के प्रति उद्भूत मानविक प्रतिक्रिया कहा गया है। एम० के स्पेन्सर नामक एक दूसरे अंगरेज विद्वान् ने भी अपने ब्यापक मिथरीसिम्प नामक ग्रंथ में रहस्यवाद के स्वरूप की ओर संकेत किया है। उन्होंने लिखा है कि रहस्यवादी हिन्दी नाम प्रभावों पर अत्यधिक नहीं रहता। वह परस्पर एक पहुँचने के लिए अपनी ही साधना का आश्रय लेता है। उनमें असीम के प्रति तीव्र आर्तना रहती है और शास्त्र तक पहुँचने की तीव्र इच्छा है। इसी विद्वान् ने अपने अष्टबुद्धि कलासची इन सादर नामक ग्रंथ में रहस्यवाद को धर्म का क्रियात्मक रूप कहा है। उनके मतानुसार रहस्यवाद को धर्म का महानतम का मानविक मानवीकरण कहा जा सकता है। यह रहस्यवादी को ईश्वरीय मनुष्य मानता है। उसके मतानुसार रहस्यवादी प्रकृति के रहस्यों को समझता है और उनका उत्पादन भी करता है।

सबसे प्रभावपूर्ण परिभाषा प्रो० शंगर की है। उन्होंने मिथरीसिम्प इन महाराष्ट्र नामक एक प्रौढ ग्रंथ लिखा है। उसकी मूढि में वह रहस्यवाद का समझते हुए लिखते हैं—रहस्यवाद उस मानविक परिधि के प्रसरण को कहेंगे जिसमें साधक को परमात्मा का सीधा सच्चा स्पर्श एवं अनुभूतिमूलक परिशान होना है। कुछ हिन्दी विद्वानों ने भी रहस्यवाद के स्वरूप का समझने की चेष्टा की है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ प्रसाद जी और डा० रामकुमार वर्मा की हैं। प्रसाद जी ने रहस्यवाद को धामा की मूल संस्कृतिक अनुभूति की मुख्य धारा कहा है। यह परिभाषा व्यापक होने हुए भी अत्यन्त ही है। सबसे सुन्दर परिभाषा डा० रामकुमार वर्मा की है। उनकी परिभाषा निम्नलिखित है—

१—“Mysticism is the temperamental reaction to the reality

—(Hundred Poems of Kabir) Preface

२—Joyous mysticism Page 16 Written by M. K. Spencer 1942

३—Mysticism is Religion in Practice. This is the sublimation of the highest in Religion. To be mystic is to be God head. He Knows and unravels the secrets of Nature,

Spiritual Philosophy in life by M. K. Spencer (1942) Page 52

४—Mysticism denotes that attitude of mind which ensures a direct immediate firsthand intuitive Knowledge of God.

Mysticism in Maharashtra. Page (Preface)

रहस्यवाद की वास्तविकता की उच्च अन्तर्हित प्रकृति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना ज्ञान और निरक्षर संबंध जोड़ना चाहती है और वह संबंध वहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।<sup>१</sup> इन समस्त परिभाषाओं का परिपूर्ण मनोबोध के साथ अभ्ययन किया जाना तो पाँच चरणों तक संचित होगी—

- (१) शाब्दिक की सत्यता की प्रियतम के प्रति तीव्र मातात्मक विज्ञान का उदय ।
- (२) भाव या प्रेम की प्रधानता ।
- (३) आत्मात्मिकता ।
- (४) अद्वैत की प्रकृति ।
- (५) वास्तविक संबंधी बुद्ध और रहस्यपूर्व प्रक्रियाएँ ।

प्रथम चार चरणों का सक्रिय मातात्मक रहस्यवाद में पाया जाता है। अंतिम विशेषता दृष्टान्तिक रहस्यवाद और अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद में सक्रिय मिश्रण है। उन्हीं में हमें रहस्यवाद की उच्चतम पाँचों प्रकृतियों अपनी पराकाष्ठा में विकसित दिखाई पड़ती हैं। इनके उदाहरण रहस्यवाद के विशेषण के प्रयोग में दिये जायेंगे ।

### संतों का रहस्यवाद भारतीय और सूफी रहस्यवादों का मिश्रण है

संतों के रहस्यवाद का विशेषण करने से पूर्व एक बात यह देना बहुत आवश्यक है। संतों का रहस्यवाद भारतीय और सूफी दोनों रहस्यवादों का संयम-सक्त है। उन्हीं दोनों रहस्यवादों की विशेषताएँ उल्लिखित हैं। भारतीय रहस्यवाद भी कई शाखाओं और उपाखाओं में विभक्त है। भारतीय रहस्यवाद की प्रमुख शाखाएँ दो हैं एक उपनिषदिक और दूसरी बौद्धिक। बौद्धिक रहस्यवाद भी कई शाखाओं व उपशाखाओं में विभक्त है—जैसे दृष्टान्तिक, तांत्रिक, बौद्ध तांत्रिक आदि। उपनिषदिक रहस्यवाद की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं। आत्मात्मिकता, अद्वैतवाद और पवित्रता। संतों के रहस्यवाद में इन तीनों चरणों की प्रतिष्ठा मिलती है। दृष्टान्तिक रहस्यवाद की सबसे प्रमुख विशेषता अंतर्मूर्त्ती प्रक्रिया है। संतों पर इस अंतर्मूर्त्ती प्रक्रिया का पूरा-पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। तांत्रिक रहस्यवाद में हमें अभिव्यक्ति की रहस्यमयता के दर्शन विशेष रूप से होते हैं। संतों का अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद तांत्रिकों से बहुत अधिक प्रभावित है। संतों पर सूफी रहस्यवाद का भी गहरा प्रभाव पड़ा था। सूफी रहस्यवाद की प्रमुख विशेषताएँ चार हैं—प्रेम, विरह, मुक्त और भाषाविरहता। ये सभी विशेषताएँ ही संतों के रहस्यवाद में प्रतिबिम्बित मिलती हैं। संतों के रहस्यवाद का अभ्ययन करते समय इन सब विशेषताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

<sup>१</sup> डा० रामकृष्ण वर्मा—कबीर की रहस्यवाद ग्रन्थ पृ०

विचार और प्रेम का मिलन-बिन्दु—संतों के रहस्यवाद की एक विशेषता और है। वह उक्त विचार और प्रेम का मिलन बिन्दु होगा। एष० के स्वस्वर ने प्रेम और विचार को रहस्यवादी संसार की प्राथमिक कहा<sup>१</sup> है। वाच वास्तव में विरक्तता रही है। यदि रहस्यवाद केवल प्रेम प्रधान ही हो तो वह उच्छ्वसिता की सीमा तक पहुँच सकता है और यदि विचार प्रधान हो तो केवल दर्शन में समाहित हो सकता है। संतों ने अपने रहस्यवाद को न शुद्ध-दर्शन में ही परिणत होने दिया है और न उच्छ्वसित ही होने दिया है। विचार और प्रेम की यह समन्वय साधना उनके रहस्यवाद की सबसे प्रमुख विशेषता है। संतों को रामरस की प्राप्ति विचाररामछटा के सहारे हुई थी। इसी लिए उनके रामरस मयुर और मादक होने हुए भी पवित्र, संवत और सदाचारपूर्ण है। इस विचारमूलक रामरस का वर्णन करते हुए श्रीर ने लिखा है—अप्यात्म चिंतन करते-करते रामरस की प्राप्ति हुई उस रामरस का पान करके हमारी आत्मा पृथक् तृप्त हो गई है। पार साधनारूपी अगाध चिंतन से उत्भूत रामरस की आसक्ति इतना मयुर है कि बार बार पान करने पर भी उसके कृति नहीं होती। उसके पान करते करते सुमायी लग जाती है और रसरूपी मस की अनुभूति होने लगती है।<sup>२</sup>

अद्वैतमूलकता—अद्वैतमूलक अनुभूति को हम रहस्यवाद का प्राण मानते हैं। रहस्यवाद वास्तव में अगाध की अद्वैतमूलक अनुभूति की ही अभिव्यक्ति है। अद्वैत का सत्यानुत्थान की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका माना जाता है। इस रूप को पार्व्याय और मार्तीय विद्वान् एक मंत्र से स्वीकार करते हैं। पियालादिवा बर्दानिया में लिखा है कि वा साधक किसी सत्य की अनुभूति के लिए तर्कज्ञान का आशय होता है वह उसकी अनुभूति नहीं कर सकता।<sup>३</sup> उसकी अनुभूति नहीं कर सकता है वा हमारे

१ Love and thought these are the keys of the mystic realm.

—Joyous mysticism by M. K. Spencer Page 12.

२ वाकि परको घातम मतिगता ।  
 बीजत रामरस करत विचारा ॥  
 बहुत मोक्षि महुँगे गुह पावा ।  
 से कवाच रस राम चुवावा ॥  
 लख पाठन में बीज पसारा ।  
 मीनी मीनी रम पीये विचारा ॥  
 करे कबीर चाही पीरन ।

सह राम रम खगी सुमायी ॥ ४० ॥ ५० ॥ १११

३ मिमरीगिम्स इन इंग्लिश डिप्लोमर से० एरार्जन (१९२०) पृ० ७



जने<sup>१</sup> ग्रंथों में भद्रा को आध्यात्मिक अनुभूति की मूल आधार मिथि माना गया है। इस संभव में छांदोग्योपनिषद् में एक मनोरंजक कथा दी गई है। उसमें लिखा है कि एक दिन श्वेतकेतु ने अपने पिता से स्वप्न परजल ही इस दृष्ट बगल पर मूल कारण कैसे हो सकता है यह प्रश्न पूछा पिता ने अनेक तर्कों के सहारे इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा की। किन्तु श्वेतकेतु ने उनसे भी अधिक पुष्ट तर्क देकर उन तर्कों का खंडन कर दिया। अंत में पिता ने पुत्र से बरगद का फल खाने का आदेश दिया और उसके बच्चे कि इसको तोड़कर देखो इसमें क्या है। श्वेतकेतु ने उसे तोड़कर देखा और कहा कि इसमें बहुत से बीज हैं। पिता ने पुनः कहा उन बीजों में से एक बीज ले लो और उसे तोड़कर बताओ कि उसमें क्या है। श्वेतकेतु ने एक बीज से शिवा और उसे तोड़कर देखा और कहा महाराज इसके अंदर कुछ नहीं है। पिता मुस्कराकर बोले जिसे हम कुछ नहीं कहते हो उसी से इतना क्या बरगद का दूध उत्पन्न हुआ है। इसमें कुछ है अथवा किन्तु वह तर्क सिद्ध नहीं है। उतका ज्ञान भद्रा से हो सकता<sup>२</sup> है।

**अनुभूतिमूलकता**—भद्रा प्रेरित ज्ञान को अनुभूति कहते हैं। यह अनुभूति ही रहस्यवाद का पात्र है। संत सुन्दर<sup>३</sup> बाब ने स्पष्ट लिखा है कि उस अलंकार परमत्मा के पदार्थ अनुभूति के बिना नहीं हो सकते।

अनुभूति बिना नहीं जान सके निरस्य निरन्तर नूर है जोरे  
यह अनुभूति ही तन्त्रों की दृष्टि में श्रेष्ठतम ज्ञान है। उपासार्थ ने इस अनुभव ज्ञान को सिद्धनाद के सद्यः कहा है। इसके आगे क्रम मरम और अज्ञान सब नष्ट हो जाते हैं। यह महाअनुभव<sup>४</sup> अनिर्वचनीय<sup>५</sup> आनंद कर होता है। संत लोग इसी आनंद की अनुभूति किया करते थे। इस आनंद के कुछ बख कभी कभी उनकी बानियों से उमक पड़े हैं। साहित्य में ये ही रहस्यवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं।

**आस्तिकता**—ब्रह्ममूलक अनुभूति की अपारम्भिक आस्तिकता है।

१ भद्रामयो सं पुत्रो को वचनः स एव सा—गीता—१०।२ मेघपविपद् ३।९  
 २ ये आत्म देवता मयता परमने अज्ञप्राप्तिताः  
 ३ तेषुपि मामेव कीन्तेव परत्पिचिचिर्ब्रह्म—गीता—१।२२  
 ४ सांख्योपनिषद्—१।१२  
 ५ सत्य मुपासार —२।१९  
 ६ आपु जिह समान है ताजत अनुभव ज्ञान।  
 ७ क्रम मरम भक्ति गम्भिरा दुर्लो अज्ञान ३ उपासार्थ को बानी—७० ३  
 ८ सुन्दर कह्यो न ज्ञात है अनुभव को आनंद। सत्य मुपासार ५० १२०

सहस्र वैराग्य की प्राप्ति के लिए मन साधना अति आवश्यक होती है। क्योंकि बिना मन की जीते हुए सहस्र वैराग्य टट्ट ही नहीं हो सकता। इसीलिए संत मल्लू-दास ने लिखा है<sup>१</sup>—

कोई जीत सके नहीं यह मन जैसे देव ।  
याके जीते जीत है अंत में पाया भेष ॥

अर्थात् मन कृती देवता की जीतना कठिन है। चिन्तु इसे जो जीत लेता है उन्ही की साधना लक्ष्य हो जाती है।

सहस्र कर्म—निष्काम भाव से कर्म करना ही सहस्र कर्म मार्ग है। समस्त कर्म ईश्वर को समर्पित करके करने चाहिए 'जो कीजिये हरि देव' ही। संतो का यह सिद्धान्त वाक्य सहस्र कर्म साधना का आधार-स्तम्भ है। यही कारण है कि संतो ने सर्वत्र निष्काम कर्म करने का उद्देश्य दिया है। यदि जानना त्यागकर इच्छा भी किये जायें तो भी मनुष्य उनसे बँपटा नहीं है। सहस्र कर्म मार्ग के उदाहरण के रूप में संत परतदास की निम्नलिखित उक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। उनका अर्थ यह है—  
तब<sup>२</sup> कामनाओं का परित्याग करके वाग तरस्या आदि साधनाएँ करनी चाहिए। उन साधनाओं का मुख्य लक्ष्य ही प्राप्त हो सकता है जब उनका आधार तब प्रभु की आशक्तियों और दोषों का परित्याग करके किया जाता है।

सहस्र कर्म का दूसरा पक्ष भी है—बह दे करनी और अपनी की रचना। सांसारिक व्यक्तियों की सामान्य महसूस यह होती है कि यह करने कुछ और हैं और करत कुछ और हैं; चिन्तु संत साग रतमें विश्वास नहीं करते थे। कबीर के शब्दों में उनका विश्वास था कि—मनुष्य<sup>३</sup> का वैसा ही आचरण करना चाहिए जैसा उद्देश्य यह देता है। जो ताबक परमात्मा में सीन रहता है वही आत्मसुख को प्राप्त करता है। यह सहस्र कर्ममार्ग है। संतो ने उद्देश्य ही के आचरण पर धन दिया है।

<sup>१</sup> मनुष्यस्य की बानी पृ० ३६

<sup>२</sup> ब्रह्मदास की बानी भाग २ पृ० ७२

जोग तरस्या कीजिये सहस्र कामना त्याग,  
ताहू करत मन चाहियो लखे दोन चर राम ।  
अप्य सिद्धि जा वै सिद्धि नेह न कीजे ते-  
धारि हरेन परमात्मा त्यागे रहिये देह ।

<sup>३</sup> कबीर प्रणवली पृ० ३८

जैसी मुख से कौनै कौनो कहे जाह ।  
ब्रह्मदास म् किरत रहे बह में कौ सिद्धाह ।

**सहज त्याग**—संतों ने सहजाचरक के अन्तर्गत सहज त्याग को महत्त्व दिया है। सहज त्याग किस अर्थ में है इसको रामू न रन शब्दों में सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—साधक को चाहिए कि वह राम का छोड़कर सबका परिहास कर दे। रामू के मत का सार यही है कि सहज भाव से श्वात्मनाशो का त्याग करके राम में लीन हो जाए।

**सहज विचारणा**—संतों ने अपनी बर्त साधना में सहज विचारणा को भी स्थान दिया है। अद्वैतभाव से आत्मविचार करना ही वास्तव में सहज विचारणा है। सुन्दरदास ने लिखा भी है।<sup>१</sup> आत्मविज्ञान से केवल आत्मना के ही दर्शन होते हैं। उस समय द्वैत बुद्धि निकलकुल मध्य हो जाती है। किसी दूसरी वस्तु के अस्तित्व का आभाव नहीं होता।

**सहज ज्ञान**—सहज ज्ञान भी संतों के सहजाचरक के अन्तर्गत ही विचारणीय है। सहज ज्ञान का प्रासंगिक विद्योत सर्वत्र परमात्मा की स्वीकृति देकर है। संत सुन्दरदास ने इस सहज ज्ञान का सुन्दर बर्णन प्रस्तुत किया है।<sup>२</sup> वे कहते हैं जो साधक आदि अन्त, मध्य, तीनों में अन्त की भावना करते हैं तथा उही को ही ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाता सब कुछ समझते हैं उन्हीं को सिद्धि प्राप्त होती है।

**सहज प्रेम**—संतों ने सहज प्रेम साधना को आत्मिक महत्त्व दिया है। जब तक साधक का हृदय सहजरूप से परमात्मा में लीन नहीं होता तब तक उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती। संत श्रीर ने लिखा है कि जो साधक आदि से अंत तक सहजभाव से परमात्मा में लीन है और उसे सहजसाधनागम्य समझकर संतोष रखते हैं वे ही सच्चे साधक हैं। वास्तव में ऐसा ही साधक सहजभाव से राम नाम में अपनी मन लगा होता है और सहजभाव से उठवी भक्ति भावना बढ़ हो जाती है।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> शारदापी भाग १ पृ० १४१

रामू राम चाहे नहीं चाहे सबका विचार।  
रामू सबके छोड़ सब रामू का मत सार।

<sup>२</sup> संत बानी भाग २, पृ० १०६

आत्म विचार कि आत्म ही हीनै एक  
सुन्दर कहत कोऊ दूसरो न जान।

<sup>३</sup> सुन्दर विग्राम पृ० १३६

आदिहु अंत हैं मध्य हैं महदि रही यही मति यानी।  
सुन्दर जेब और जानहु महदि आपहु मही जानत शानी।

<sup>४</sup> आदि अन्त को लीन मध्य है  
सद्मै जायि संतोष रहे है।

सहज साधना—सहजाचार्य के अन्तर्गत सहज साधना पर भी विचार कर लेना चाहिए। सन्तों की सहज साधना के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं—

- क—उत्तरी पाल।
- ख—नाम बन और स्मरण।
- ग—सम्भर्गति।
- घ—प्रसिद्धि।
- ङ—सहज याग।

उत्तरी पाल—उत्तरी पाल सन्तों की सहज साधना की मूलभूत विशेषता है। अभी तो कबीर ने कहा है 'उत्तरी पाल दिनि परमस सा सदगुरु हमारा।' वा मुग इस उत्तरी पाल में है बह और किता में मही है। दादू ने इसलिए लिखा है कि वा साधक अन्तर्मुखी साधना का आचरण करत हुए अपनी वृत्तियों का अन्तर्धाम पर केंद्रित कर लेता है उसमें बहुरूप सुखी संसार में बहिर् मही होता है। इस उत्तरी पाल में पलकर ही साधक बहुरूप क त्याग कर पाता है।<sup>१</sup> इस उत्तरी पाल का रहस्य क्या है इसकी ओर संभव करत हुए दादू कहत हैं कि मुक्ति का उलटकर अपना में निरत रहना उत्तरी पाल का रहस्य है।<sup>२</sup> दादू कहत हैं कि यही सत्तर साधक बहा का लक्ष्य है वा कि अन्तरी बहिर्मुखी वृत्तियों का अन्तर्मुखी करके परमात्मार्थी गुण में केंद्रित कर लेता है।

नाम जप—सन्तों की सहज साधना का प्रारम्भ तत्त्व नाम बन है। सन्तों ने इतना अत्यधिक महत्त्व दिया है। संत जगदीश्वरदास ने स्पष्ट पत्रिका की है कि नाम के बिना किसी का उद्धार नहीं हो सकता, चाहे वह निरत मात्र स्थान बने, चाहे अनेक प्रकार के आचार्यों का आचरण बने, मात्रा पाठ्य करे, दिनचर्या लगावे, मंत्र

सदरि नाम नाम हवा लाहू

नाम नाम करि भागि हवाण । कबीर प्रियावली १० ३२०

<sup>१</sup> कबीर प्रियावली १० ३२२

<sup>२</sup> उससे सम्बन्ध पातु में वा मुग कहत हैं बहि। दादूवाणी भा० १ १० ७२

<sup>३</sup> उन्हीं जगत गुण रहत हैं मोह त्रि मुक्ति समाप ।

नाम हकी मना उबदि क नामो दग चारि ॥ दादूवाणी भाग १ १० ७३

<sup>४</sup> मुक्ति पातुली करि करि अन्तम मार पात ।

भागि रहि मुगए मी दादू चारि मुगए ॥ दादूवाणी भाग १, १० ८६

करे और दुग्धाहारी बनकर रहे।<sup>१</sup> उक्त कथना की ने तो नाम की महिमा की और भी अधिक ओबपूर्णा शब्दों में बोगद्या की है<sup>२</sup> कि हमने एक अष्टौ तख परत कर देल किया है कि राम नाम के समान न तो कोई मूल्यवान् तख है और न ही तक्यी है। समस्त तीर्थों और बेंदशाओं के पुबप भी राम नाम के पुबप के बराबर नहीं हो सकता। निवम बर लप आदि बर्म के सभी विधान नाम के महत्त्व के आगे पीके हैं। शान, पुबप आदि कोई भी धर्म का अंड नाम की महिमा की समता नहीं कर सकता। बिरव के नवों लपडों में लोब करने पर भी नाम के लख कोई महत्त्ववाली बस्तु दिखाई नहीं पकती। संत चरनदास ने उसे अठायह पुराण और भार बेरों का तारकम कडकर उसे महा महिमावाली बताया है।<sup>३</sup> बृहानदास ने भी नाम को अविषक्त मक्ति का रूप कहा है<sup>४</sup> और उसकी मखी महिमा का उनेठ किया है। नाम का शुद्ध नहीं है। यदि शुद्ध तख होना तो फिर संतों की सख साधना में स्थान नहीं पाता। नाम का के संतो ने वसुगति और प्रेम से मिलाकर अत्यधिक मधुर और सरल बना दिया है।<sup>५</sup> संतों ने नाम रस का बर्षन प्रेमल और चमरस के रूप

<sup>१</sup> सप्त सुभासार भाग २, पृ० ६३

नाम बिनु बहि कोरु को निस्तारा ।

आन परत है शान लला में मन समुधि विचारा

कहा भपु कल प्राध नहापु का जपु किनु पाचार

कहा भपु मरता पहिरे से का दिपु तिबक बिबारा

कहा मपु मख अम्बहि त्यागे का किनु कृप अहार

<sup>२</sup> बोटरीका सब बोलीला कोई नाम सम्यक न होना ।

अकल तीरब बेरु पुराना तुकै नहीं को लख समाना व

नेम धर्म सब जप लप मीका नाब समान कोई दुघाम होला

शान पुबि, करि तुका बरुदा नाब समान कोई तुकल व दीध

को संत पूनी बोनी कोई कथना नहीं बराबर हार्द ३

—सप्त सुभासार पृ० २४८

<sup>३</sup> चरनदास की बाबी भाग २ पृ० ७७

अबिधी होना नाम है सब करनी का सीध ।

अन्धारुष अरु आरि का मपि कर कडा पीध ॥

<sup>४</sup> अविषक्त अविक्त नाम की महिमा कोउ न सकत मिदार्दु ।

—संतधानी संग्रह भाग १ पृ० १२२

<sup>५</sup> दादू बाबी भाग २ पृ०

धेन भगति साध की संगति नाब निरन्तर गार्द रे ।

में किया है। नान की मादकता शरत और अमर रुग्णी हाजी है।<sup>१</sup> इतीन्द्र संतो ने आमर का व्यापार होने का उद्देश्य दिया है।<sup>२</sup> इस रस की प्राप्ति साधु-संगति से होती है।<sup>३</sup> इसाफिद सम्भवतः साधु न आनी गुरु साधना में सम्भंगति की बहुत अधिक महत्त्व दिया है। नान का एक पद मुमिन है। यह संतो की गुरु साधना का परम मद्दर्शन है। कबाल न रतः पारणा से है कि सम्भवतः साधु नाशो का तार तस मुमिन ही है बरमे उताठना और साधना क सम्भव अंक नाम क मुमिन की समानता नहीं कर सके।

सत्संगति—संत काम साधु संतो का इशर का मानत है। मीना गुरु ने 'प्रभु में संत संत में प्रभु है' तथा पण्ड ने 'संत का अन्तार आन हरि करि क आवे' कहा है। दयाचार् भी संतो की मगवान् का अन्तार मानती थी। दयाचार् रसो पर पण्ड ने उन्हें मगवान् से उँचा उगा दिया है।<sup>४</sup> दादू ने साई और सन्त का अन्तार एन कहा है।<sup>५</sup> संतो का इतना महत्त्व इसाफिद है कि उनका दशन सतीनों तार निर बात है।<sup>६</sup>

संतों ने साधु-संतों का महत्त्व का प्रतिगान ही नहीं किया बल्कि सम्भंगति का गुरु साधना महान तस पानिग दिया है। संतो की बानी सम्भंगति की महिमा से मरी पड़ी है। संत मुम्तदास ने ही सम्भंगति को अन्तर्निधन का अन्तःसाधन का

<sup>१</sup> काम अमर उतरें ना मारुं ।

चार अमिक दिन का इतर मल्ल मुवासार गीत १ १० १०२

<sup>२</sup> पीय व्यापार हा मनशावा

व्यापार नाम अनी रस का । मल्ल मुवासार १० १२३

<sup>३</sup> नाम रस अमा है मारुं का इ मानु संगति म पाइ । मल्ल मुवासार गीत १ १० १०३

<sup>४</sup> कबीर मुमिन मार है और अकन अंजाल—कबीर सत्गी संगत भाग १ व सो १० २३

<sup>५</sup> दयाचार् की बाकी पृ ११

<sup>६</sup> गुरु गुरु की बाकी—भाग १ पृ ३

गुरु अन्तरे मल्ल का दूब द बरतार ।

<sup>७</sup> दादू इस संगत में है एक अमाक ।

एक साई पर मल्ल जव हुका सोच म साव ह दादूबाजी मार १ १० १२३

<sup>८</sup> तीन मार मि कावे मल्ल क इतीन्द्र कावे—गुरु गुरु की बाकी भाग १ पृ ३

मित किया है।<sup>१</sup> उन्होंने सत्संगति के मुख को बड़ा दुर्लभ बताया है।<sup>२</sup> प्रश्न यह है कि संतो ने सत्संगति को क्यों इतना महत्त्व दिया है। इतकर ठहर देते हुए सुन्दरदास ने कहा है संत लोग अचरितरदानी हैं। उदैक ही वे समाज को कुछ न कुछ देते ही रहते हैं। लोग यह जो कहा करते हैं कि संत लोग कुछ देते ही नहीं हैं ठीक नहीं है।<sup>३</sup> संत लोग समाज को क्या देते हैं उन्हीं के शब्दों में देखिए—वे मानकों को रूखा उपदेश देते हैं। उनमें सुबुद्धि और समत्वबुद्धि जाग्रत करते हैं। उन्हें उन्मार्ग पर ले जाते हैं। भाव मक्ति का बरदान भी संतो से ही प्राप्त होता है। प्रेम, विश्वास, ज्ञान, आत्मविश्वास के प्रेरक भी संत ही होते हैं। अधिक क्या कहा जाय वे मरुत का आश्वासन देते हैं। इसी<sup>४</sup> भाव का समर्थन करते हुए दादू ने भी लिखा है कि सत्संगति से बचनपद बड़ी सरसता से मिल जाता है।<sup>५</sup> तापु संगति का महत्त्व इसलिए भी है कि उससे उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति सहज में ही हो जाती है जिसके लिए मुनि लोग तपस्वा करते हैं और देवता और मनुष्य सरस्वते और तर्कपते रहते हैं।<sup>६</sup> इसीलिए इसे सहजसाधना का महत्त्वपूर्ण अंग बताया गया है।

प्रपत्ति—संतों ने अपनी सहज साधना में प्रपत्ति को बहुत महत्त्व दिया है। प्रपत्ति मक्ति का सहजतम रूप है। इसीलिए सहजसाधना में इसकी माय्यता है। संत कबीर ने सब कुछ त्यागकर मान बप और प्रपत्ति को अपनाने का ही उपदेश दिया

<sup>१</sup> क स बुद्धि के संग से स्वल्प ज्ञान हास्य है—सुन्दर विद्यास ५० १०१

रा को पर ब्रह्म मिहो कोऊ चाहत।

सी मित संत समागम कीसै ॥ सुन्दर विद्यास—५० १२०

<sup>२</sup> सुन्दर और मित्र सब ही मुख।

संत समागम बुद्धिभ भार्ये । सुन्दर विद्यास—५० १२३

<sup>३</sup> सुन्दर कहत का संत कहु दत बादि ।

संत काव निसदिन दसो ही करत है । सुन्दर विद्यास—५० १४२

<sup>४</sup> योंको उपदेश देत भली सीख देत

समता सुबुद्धि देत कुमति दारु है ।

भारग विचार्य दत भावदु अरति दत

प्रेम की प्रतीत दत अमरा मरु है ।

ज्ञान देत भ्याम दन बिचार देत

मरु हूँ बन्दार्य देत मरु में करु है । सुन्दर विद्यास ५० १४२

<sup>५</sup> दादू नेत्रा परम पर साधु संगति मीदि—दादू बानी भाग १ ५० १२३

<sup>६</sup> मिस रस को मुनिपर मरे सुन्दर करे कजाप—दादू बानी भाग १ ५० १२१

है। वे कहते हैं—हे बीच सब प्रकार के मन के भ्रम त्यागकर मात्र धन ही साधना कर और एक परमात्मा की शरण में जा। अन्त<sup>१</sup> रेदास प्रसि के साथ आत्मसमर्पण में भी विश्वास करते थे। उन्हें<sup>२</sup> विश्वास ही मगबदू परियों में ही था।<sup>३</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों की सहज साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग प्रसि भी है।

### सन्तों की समाज क्षेत्रीय सहज साधना

कुछ लोगों की धारणा है कि सन्त लोग समाज से विस्तृत उदासीन थे किन्तु बात ऐसी नहीं है। सन्त लोग भारतीय थे। भारतीय सभी भी समाज से विस्तृत उदासीन नहीं रह सकते। लोक संसृष्ट करना वह अन्तः परम कष्टकर समझता है। सन्त लोग पूरे लोक संसृष्ट थे यह धर्म साधना के प्रथम में विस्तार से स्पष्ट कर चुके हैं। एक पाठ और ध्यान देने की है कि वे लोग अधिकतर ग्रहण थे। गरुड का चक्र रंगाने में उनका विश्वास नहीं था। कबीर जी, मन न रंगाने रंगाने योगी करण और बनद बध का कीर्ति जे मन नहीं तबे बिकार—बाली उक्तिवाँ लोक प्रसिद्ध हैं। इनसे यही प्रकट होता है कि संत लोग पातनाओं में डूबे जाने पर भी गरुड का चक्र पहनने की अपेक्षा मन का शासन पर्यटन जीवन स्थिति करना अधिक भेदपरक समझते थे। लोक संसृष्ट और ग्रहण बाहे बिठना भी समाज से उदासीन रहने का प्रयत्न करे किन्तु फिर भी वह समाज से अलग नहीं रह सकते। यही कारण है कि संत लोग समाज से विरक्त होने हुए भी उससे उदासीन नहीं रह पाते हैं।

संतों की समाज क्षेत्रीय सहज साधना को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर विचार करना अनुचित न होगा। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन तीन चीजों से किया जा सकता है—

- (१) समाज की राजनीतिक व्यवस्था।
- (२) समाज की धार्मिक प्रवृत्तियाँ।
- (३) सामूहिक परिस्थितियाँ।

<sup>१</sup> पदम कबीर मुनहुँ नर नारि पुरहुँ मन क भगमा ।

केरत नाम अरहुँ रे प्राणी परहुँ एक ही सरता ॥ कबार संपाउरी १० २१०

<sup>२</sup> संत मुषामर १० १८२

बहि बिनाम मरनि प्रमु लेरी ।

अपूँ जानहुँ अपूँ एक गनि मरी ।

<sup>३</sup> संत मुषामर—१० १११

तीरथ बरत न बरी सरता मुदरे बरत कमर क भगमा ।



यद्यपि प्रथम अवस्था में इन सब पर विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। विष्णु विवेचन की बुद्धिवादी के लिए प्रकृत बातों का संकेत यहाँ पर कर देना भी अनुपपन्न न होगा।

**तत्कालीन समाज की राजनीतिक स्थिति—**मध्ययुग की पंचल राजसूय की चिन्ता की राजवंश के अधिकार में अधिक दिन नहीं टिकती थी। राजा लोग स्वतंत्र प्रकृति के स्वेच्छाकारी शासक होते थे। उनकी स्वेच्छाचारिता के परिणाम कभी कभी बड़े मदानक होते थे। प्रजा को वे मदानक दुष्परिणाम सुगठने पकड़ते थे। इन्हीं सब कारणों से देश में विग्नसत्ता और अशांति का साम्राज्य पैदा हुआ था। हिन्दू लोग विभित और मुसलमान विजेता थे। विजेता विभितों के प्रति पौर अत्याचार करते थे। इन्हीं कारणों से हिन्दू समाज पर निराशा के काले बादल छाये हुए थे। राज नीतिक मंद माह ने भी बड़ा मयामक रूप धारण कर लिया था। हिन्दुओं को उच्च पद दिये ही नहीं जाते थे और यदि कोई अपनी योग्यता और शासक की उदारता से उच्च पद प्राप्त भी कर लेता था तो उसे हत्या का शिकार बनना पड़ता था। उदाहरण रूप में मुहम्मद गुलक और खान नामक हिन्दू के इतिहास की ओर संकेत किया जा सकता है।<sup>१</sup> राजनीतिक अनीति के परिणामस्वरूप शासक बेटी कुम्हारों के व्यवसाय होकर पसवने लगी थीं। बादशाह लोग विभित जाति के स्त्री-पुरुषों को छालों की संख्या में गुलाम बना लेते थे। अजाठरुन के प्रसंग में हम बतला आये हैं कि उन्होंने बजरा धम्मपाय नगर से बीस हजार युवतियों को लौंढी बनाकर मेवा या फिर पुरुषों की संख्या की तो स्वयं बहना की जा सकती है।<sup>२</sup> इस दारुण की कुप्रथा ने यवन समाज में भार भूमिधार फैला दिया। शासकों की अज्ञान बहना ने भूमिधार की बुद्धि में अग्नि में पृथ का करव किया। सुन्दर कथाओं का वस्तुपूर्वक अपहरण कर लिया जाता था इसके समाज में और भी अधिक अज्ञान छाया हुआ था।

**तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तियाँ—**उत्त समाज की धार्मिक अवस्था भी बड़ी रोचनीय थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बर्म पुरोहितवाद के शिकार थे। उनके ठेकेदार क्रमशः पवित्र और मुफ्त थे। उन्होंने बर्म के नाम पर अनेक झाड़वों और मिष्ठाकारों का पचार कर रखा था। इस युग में माध्यम पद द्रविड़ बर्म से हाथ में हाथ मिलाकर चलने लगा था। अनेक परिणामस्वरूप हिन्दू बर्म में द्रविड़ बर्म के विविध अंतर्द्वेषों का प्रवेश हुआ था। पौराणिक और आर्य बर्म के स्वयं

<sup>१</sup> उत्सवत धाक दिव्यी—हा० आवास्त ५० ४६०

<sup>२</sup> सिद्ध दिव्यीजन परव १ मूमिडा ५० ४१

ने विच्छेद होकर मिथ्यादर्शियों का बना पहिन लिया। जितों की भीमल साधनाओं के कुम्भाव भी समाज पर प्रत्यक्ष परिलक्षित हो रहे थे। इन सबके फलस्वरूप धर्म के वास्तविक स्वरूप का सार हो गया। सत्य के स्थान पर अज्ञान की बूजा हमने लगी थी। समाज के स्थान पर उन्मत्त की प्रतिष्ठा हो गई थी।

**सांस्कृतिक स्थिति**—समाज की सांस्कृतिक स्थिति भी ठीक न थी। हिन्दू समाज का यद्यपि नैतिक स्तर ऊँचा था किन्तु अंधविश्वासों ने उसे पंगु बना रखा था। यवन समाज की नैतिकता यवन की पराजय पर पहुँच गई थी। स्पर्मिबाद, मजान, कुमा और बालगामी आदि का बाजार गर्म था। भौतिक ऐश्वर्य ने उन्हें और भी अधिक बिलासी बना दिया था। विद्या और कला के प्रति उनकी अभिरुचि शून्य पड़ गई थी। हिन्दू समाज में यद्यपि इनका बिनाश नहीं हो रहा था किन्तु दर्शन का सार उठती प्रवृत्ति बिलोप रूप से जागरूक थी।

उपर्युक्त परिस्थितियों के फलस्वरूप समाज में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ रही थी -

(क) अति की प्रवृत्ति—हिन्दू समाज में ऐश्वर्य के प्रति बितनी निवृत्ति भावना प्रबुद्ध थी मुसलमान समाज में उसके प्रति उतनी ही अधिक प्रवृत्ति भावना जागरूक थी। धर्म में निराशावाद अगनी पराभ्रष्टा पर पहुँच गया था और दूसरे में मायबाद अगनी सीमा का उत्सर्जन कर गया था।

(ख) समाज का नैतिक पतन—(१) हिन्दू समाज में मिथ्याचार और मिथ्यादर्शियों का प्रचार। ( २ ) यवन समाज में स्पर्मिबाद, कुमा और मजान आदि का बोलबाला था।

(ग) (१) रुढ़िवादिता की प्रतिष्ठा—हिन्दू समाज में अंधविश्वासी और कुपीतियों का प्रचार था।

(२) यवन समाज में स्मॉथिज्म का प्रचलन था।

(घ) सामानिक भेद भाव—(१) मुसलमानों में शुद्ध और परबन्धित मुसलमानों का भेद-भाव था। शिवा कुन्धियों का भेद भाव भी कम बँडर न था।

(२) हिन्दू समाज में वर्ण-भेदभाव का भेद भाव भी बहुत प्रबल हो गया था।

(ङ) स्पष्टिवाद का प्रचलन—(१) यवनों में स्पष्टिवाद ने उच्चनीतिक अभावस्था उत्पन्न कर रखा थी।

(२) हिन्दुओं में स्पष्टिवाद विरिध बंधी और अज्ञानियों का जनक बन गया —

सन्तों में समाज के उपर्युक्त सभी बिचारों के प्रति प्रतिक्रिया प्राप्त हुई। वे उनका परिहार करने में लग गये। कुछ विरोध शक्तियों और प्रवृत्तियों ने उन्हें और भी अधिक बल और प्रेरणा प्रदान की। वे मौर्य शक्तिवाँ और प्रवृत्तियों संघर्ष में निम्नलिखित हैं—

- (क) सारमाहिता की प्रवृत्ति।
- (ख) उत्पनिष्य।
- (ग) स्वानुभूतिमुक्तक बुद्धिवादिता।
- (घ) लोचर्यस्य की श्रमणा।
- (ङ) सद्बोधन्य की प्रवृत्ति।
- (च) उपदेश की प्रवृत्ति।
- (छ) श्रमन्ति की भावना।

संत लोग सारमाहिी महत्त्व थे। सन्तों की इस सारमाहिी प्रवृत्ति की व्यंजना सन्त दादू ने बड़े प्रयोग पूर्ण शब्दों में की है। वे कहते हैं—मनुष्य को गठ और बच्चे का ज्ञान प्राप्त कर वृष को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। गाय के सींग, पूँछ, बरख आदि को त्याग कर, उसके धर्मों के दुग्ध का पान करना चाहिए।<sup>१</sup> सन्तों की इस सारमाहिी प्रवृत्ति ने उन्हें समाज-मुधार की आर प्रेरित किया था। संत लोगों की उत्पनिष्य ने भी उन्हें समाज-मुधार की प्रेरणा प्रदान की थी। संत लोग स्वानुभूतक करना और श्रम से दूर रहना अपना परम वर्तव्य समझते थे। मीसा ने स्पष्ट उपदेश दिया है कि हे मानव तू उत्प मार्ग का अनुसरण कर। झूठ और कपट को दूर बहा दे। स्वानुभूति<sup>२</sup> मूलक बुद्धिवादिता संतों की सबसे प्रमुख विशेषता थी। वे अनुभवगत्य में निश्चय नहीं करते बल्कि से उन्हें ब्रूया थी। भुक्ति, कुपन और प्रमायनवाद में उन्हें आस्था न थी। वे बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। जीवन की प्रयोगशाळा में वे उत्प-संतों के प्रयोग किया करते थे। जो उत्पसंत लरे उठते थे, उन्हें वे स्वीकार कर लेते थे और जो आदर्श पर अनुभव-विशिष्ट होते थे उनका खंडन कर डालते थे। सन्तों का मार्ग सरल स्वाभाविक और सुकामनैवासा था। वे जो कुछ करते थे वह सब प्रपच स्वानुभूति का परिणाम होता था। कधीर ने पंडितों को सम्बोधित करते हुए यही सिखा

<sup>१</sup> सन्त मुपासार—पृ० ४८०

दादू गठ बच्च का ज्ञान गदि रूप रहै लगे साव ।

सींग पूँछ पग परहरै अत्यन्त आगी मारु ।

<sup>२</sup> मीसा साहब की कानी पृ० १—साँच की दू चास गदि से झूट कपट बराव ।

है—है पवित्र तू जगत् की शिल्पी बाव बहता है मैं प्रत्यक्षानुभूति की भाव बहता हूँ ।<sup>१</sup>  
 तूने सब जगत्का रचना है । मैं मुक्तमाने का प्रवास करता हूँ । इतना हल्ले हुए भी संतो  
 की बुद्धिनादित्त तर्क और वाद-विवाद पर नहीं आचारित्त थी । पीछे हम इस बात पर  
 बार-बार बत दे चुके हैं । संत साग संत मत के प्रवृत्त होते हुए भी लोक-संघ में  
 विश्वास करते थे । संत ज्ञानदास ने दो बातों पर सबसे अधिक बल दिया है—एक  
 दुष्ट को उदरेण देना और दूसरे निष्काम भजन करना ।<sup>२</sup> संत ज्ञानी लोक संघ  
 की प्रवृत्ति का ईश्वरीय प्रेरणा मानते थे । उनका कहना था कि ईश्वर ने उन्हें संसार  
 में लोकसंघ करने के लिए ही भेजा है ।<sup>३</sup> संत मुन्दरदास ने भी लिखा है कि दानी  
 सब व्यवहारों से उदासीन रहकर भी लोकसंघ करता है ।<sup>४</sup> इस प्रकार स्पष्ट है कि  
 लोकसंघ की धमना तन्तो की प्रवृत्त विशेषता है । निश्चय ही उनकी इस विशेषता  
 ने भी उन्हें समाज सुधार की ओर प्रेरित किया होगा । पीछे हम तन्तो की तहसीलरूप  
 की प्रवृत्ति की सर्वां बारम्बार बत चुके हैं । उन्हें समाजसुधार के कार्य में प्रवृत्त करने  
 का भेय उनकी इस प्रवृत्ति का भी है । संत साग उदरेण तो थे ही । उदरेण की  
 सामान्य प्रवृत्ति सुधार की ओर रहती है । यदि वह लोग समाजसुधार की ओर प्रवृत्त  
 हुए तो कोई आश्चर्य नहीं । संतो की ज्ञानि भावना ने भी संतो को समाजसुधार की  
 प्रेरणा प्रदान की होगी । संत स्वभाव से अतिदरशी थे । लोक बन्ध का अन्धाधुन्य,  
 कट्टियों का पावन मिथ्याचारों और मिथ्याईयों का समर्थन उन्हें कराने नहीं सकता  
 था । परन्तु उनके पुत्र इन सबका समर्थन था । निश्चय ही उनके अतिदरशी अन्धा  
 अंधित्त होकर उन सबका मूलान्धरन करने उन लक्ष्मी हुई होगी ।

सुधार के स्वरूप और चतुर्णाएँ—संतों की समाज सुधार साधना  
 निम्नलिखित रूपों में प्रवृत्त हुई थी —

- (क) समाज में अंधकार की प्रवृत्त और अज्ञानरूप का निवृत्त ।
- (ख) निर्गुण आभिरता का प्रवृत्त ।
- (ग) अज्ञानों का प्रवृत्त ।

<sup>१</sup> कबीर कवचकवी १० १५९ पर १७८

<sup>२</sup> ज्ञानदास की कानी भाग २ १० ८२

औरत हूँ उदरेण करि भजन करै किङ्कम

<sup>३</sup> कबीर संसारना—१० ११९

<sup>४</sup> मुन्दर विद्याय १० १२१

‘कानी लोक संघ हूँ करन जगत्तर विधि—

(घ) वृक्ष सामाजिक व्यवस्थाओं का लक्षण और उद्दीकृत सामाजिक व्यवस्थाओं का मखन ।

(ङ) समाज के पारम्परिक मेदमात्र को दूर करने का प्रयास ।

(क) समाज में सत्याचरण की प्रतिष्ठा और कपटाचरण की निंदा— हम पीछे दिखा आये हैं कि मध्ययुगीन समाज में सत्याचरण का लोग और कपटाचरण का प्रचार होता था रहा था । संत कबीर ने सत्याचरण का उपदेश देते हुए लिखा है—मनुष्य को मगवान् से सच्चा व्यवहार रखना चाहिए और दूसरों से भी सरल व्यवहार करना चाहिए यही सत्यत तार है । ऐसा करने पर कोई भी बेचमूया बनने का चक्की है उसके कोई अंतर नहीं पकता । चाहे सिर मुड़ा डाला जाय अथवा जराये रख ली जायें । बरनदास ने सत्याचरण की प्रशंसा और कपटाचरण की निंदा और भी अधिक प्रयोगपूर्ण शब्दों में की है ।<sup>१</sup> संत कबीर और दादू का दृढ़ विश्वास था कि बिना हृदय शुद्ध हुए मगवान् नहीं मिल सकता ।<sup>२</sup>

(ख) निर्गुण आस्तिकता का प्रवर्तन— मध्ययुगीन समाज में सगुणवाद ने बड़ा विकृत रूप धारण कर लिया था । मूर्तिरत्ना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी । लोग मगवान् के लक्ष्मण स्वरूप को मूलकर सिद्धांतधरो में फँस गये थे । कबीर ने ठीक यही लिखा है ।<sup>३</sup> संतों ने सगुणवाद का मूलोद्धार करके निर्गुणवाद का प्रवर्तन किया । इसके लिए उन्होंने बहुदेववाद, मूर्तिपूजा आदि का लक्षण करके प्रवृत्त की प्रतिष्ठा की थी । बर्म साधना के प्रसंग में हम इस नियम पर विचार से प्रकाश डाल चुके हैं । अतः यहाँ पर विष्टेपण्य करना आवश्यक नहीं समझते ।

(ग) सदाचारों का प्रचार—मध्ययुग में सदाचारों के स्थान पर सिद्धाचारों का प्रचार बढ़ गया था । संतों ने सिद्धाचारों का लक्षण करके सदाचार को बर्म का प्रधान तत्त्व स्थानित किया है । संतों ने लिखित रूप से कितनी सक्तिर्वा नहीं हैं उन लक्ष्मण संतों अधिक महत्त्व सदाचार को ही दिया गया है । संत कबीर ने संत मग का सार अत्यन्त संक्षेप में इस प्रकार बख्त किया है—सत्य नहीं है को निर्बैरी

<sup>१</sup> सौच की तु आक गदि के फूँट करत बहाव—भीष्मप्रवचन की शानो ५० ।

<sup>२</sup> हरि न सिद्धै किन हृदय सूख—कबीर धंयावली—७० ११४

इस प्रचार दादू भी लिखने हैं - हृदय करत क्योँ सिद्धै मुरारो । दादूशानो भाग ९ ५० १३८

<sup>३</sup> मूल दादि सव सखी सार्ग—कबीर प्रवचनो ७० १२८

और निष्काम होकर मगवान् के स्थान में मग्न रहना है तथा विषय बाधनाओं से दूर रहना है।<sup>१</sup>

दूषित सामाजिक मयाओं और व्यवस्थाओं का खंडन और सहनीकृत सामाजिक व्यवस्थाओं का मंडन—मग्न युग में अनेक दूषित सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रचार कर रही थीं। इनमें से कुछ तो मूलतः सात्विक और श्रेष्ठ थीं किन्तु समय के प्रवाह में पड़कर दूषित हो गई थीं और कुछ मूलरूप में दूषित और सामयिक थीं। प्रथम जोटि बने व्यवस्थाओं में छूतछात की प्रथा सबसे प्रमुख है। दूखरी ब्राह्मिणी विविध प्रकार की बटिल एवं अशुभविश्वातपूर्ण साधनाएँ आरंभ कीं। इनका घोड़ा सा संकट उत्पन्न करीर और पलट्टू ने किया है। संतों में इन सबके प्रति प्रतिक्रिया सामान्य हुई थी। इसीलिए उन्होंने कुठाराघात करके उनके स्थान पर सहजीकृत क्रमया सदाचार प्रधान मायात्मक व्यवस्थाओं का मंडन किया है। करीर ने एक स्थल पर बहुत ही दूषित व्यवस्थाओं का खंडन करके एक राम-नाम से उन सबका सहजीकरण कर दाहा है।<sup>२</sup> तत्कालीन समाज में वेयाहंवरणी बहुत से शत्रु सम्प्रदाय का भी बालपाशा था। संतों ने उनके भय की निम्दा करके उनका सहजीकरण भी किया था। धर्म साधना के प्रसंग में उनकी चर्चा कर आया है।

छूतछात की प्रथा अनेक मूलरूप में बड़ी सात्विक है किन्तु मग्नयुग में वह बहुत

<sup>१</sup> निर्दोरी निहकामना सारै मती मेह ।

किरबा सुम्बारा रहै संतन का चींग पुर । करीर प्रयावली १०-२०

<sup>२</sup> एक पद्महि पाक एक भ्रमहि उराम ।

एक भगन निरम्तर रहै निगाम ।

एक जोग जुगति तन होय गीन ।

एक रामकाम संगि रहै न जीन ।

एक होरै शीन एक बेदि दान ।

एक कर कछापी गुवापाव ।

एक संत मंग श्रीकपयान ।

एक चकल मित्र सारी भवान ।

एक घोम घाटि हारै तन ववान ।

पू मुकनि महो विन राम नाम । करीर प्रयावली १०-१११

विस्तृत हो गई थी। आठ कन्नौजिया नौ पुरहे पाही धरत वा साक्यविक्र है। सुतकृत की प्रया इत सीमा तक पहुँच गई थी कि ठाठ बहू की और पति-पत्नी तर्कावर सुधा हुआ मही खाते थे। इत ब्रह्माहू की कुमय पर कुठापपाठ करते हुएही शरीर ने ब्रह्मात्मसम्बन्ध-बुद्धि-शरीर-तर्क-मी-प्रसन्न, किया है। सुतको ने इली-पुकर की प्रत्य सामाजिक कुमपाओ और कृतीको-क? मी कुटकर विरुध किया था। विस्तार मय से सपकर कुमय नही किया था, सपका है।

१. 'समान के भेदभाव को दूर करने का बुद्धिवादी मयास—  
हिन्दू समाज में 'भेदभाव' की प्रमुख कारण-वर्णाश्रम व्यवस्था-अपने मूल में तो कही ही अन्धकार की किन्तु निर्गुणमि बहने 'मयकर कम कारण' कर दिया था। साक्ष्य लोग भेदही और शूद्रों की कोषा तक से पुरा करते थे। इती-पकार हिंदू भाष-श्रवनों से पुरो-करीत वे 'बहू' पुरा' पारस्परिक-विशेष का कारण बन गई। उस-हे-भाव का मूलो-भेद करने की-अमनो से सम्यो ने बर्ण-व्यवस्था का अखण्ड-कर उसके-बौद्धिक कर को प्रतिपेदन किया किन्तु और सुमलमानों के भेद के कारण का-पूछते हुए प्रस्तावार्थ कहते हैं—हिन्दू और सुमलमानों में परस्पर भेद-भाव क्यों माना जाता है। सभी एक ही मार्ग से आये हैं। ब्रह्मण और शूद्र में भी क्या भेद है दोनों के एक समान ही हाड मंस शरीर आदि होते हैं। चित्त, और, ज्ञान, मी लक्ष्य ही होते हैं। अतः क्षीय वासियाँ एक ही मानव वासि का वर्ग हैं। बाल्य में एक ही हैं और अनेक भेद दिव्या हैं। उन्होंने क्यों की उपेक्षा ही नहीं की है वे आमतो में भी विरवाच नहीं करते थे। परतदास ने लिखा है—

- १ कबीर प्रयावली पृ० २४४  
एकै एकन एक ही पायी करी रसोई म्यारी बाबी।
- १ कौने हिन्दू धरक बहावा,  
सबही एकै हारे धावा।
- १ एकै एकन एक ही पायी करी रसोई म्यारी बाबी।
- १ कौने सर्वज्ञा बोधनदारा।
- १ कौम कुलीस एकै जानी
- १ एक कुल एकै परिचारा।
- १ एक बीज सबही रूपति। सन्त बागी शंभर भाग २ पृ० १२२





सामाजिक साम्यवाद केवल स्त्री और बच्चों का साम्यवाद वा । संतों ने प्राथमिक स्त्री प्रकृता पर बल दिया है । मूर के नैतिक साम्यवाद से भी यह विश्व है । मूर का नैतिक साम्यवाद अनाजस्यार्थ आदर्शवाद है इतने पर भी बहुत ही संकुचित है । संतों का साम्यवाद उसके कहीं ऊँची वस्तु है । उसकी आधारभूमि अज्ञात है । उक्त अज्ञान को भी उन्होंने अपने जीवन में परिष्कार करके दिखाया था । मौलिक साम्यवाद से संतों के साम्यवाद की कोई तुलना ही नहीं है । संतों का विश्वास था कि आत्मा एक और अद्वैत रूप है । केवल माया मेद के कारण माना कम और बर्ध दिखाई पड़ते हैं ।<sup>१</sup> मुकाल, रजब आदि कुछ संतों ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों आधारों के साम्य पर बल दिया है । वे ब्राह्मणी नीच से उद्भूत समस्त मानवों को एक ही जाति और परिवार का मानते थे । इसके दार्शनिक दृष्टि, माँ, बाम तथा उत्पत्ति मार्ग के साम्य के कारण भी उनके समान ही समझते थे ।<sup>२</sup> यह साम्यवाद मानव के विचलित की पराधर्य है । यह मगवान् रूप हो जाता है ।<sup>३</sup> जो रजब समस्त सृष्टि को पंचतत्व का खेल मानते हैं । उनकी दृष्टि में इतीक्षिण समस्त दृष्टि मेद मात हीन है ।<sup>४</sup> अतः स्पष्ट है कि संतों का साम्यवाद अन्य प्रकार के साम्यवादों की अपेक्षा

<sup>१</sup> दानू बानी भाग २ पृ० १००

१ दानू ३६ आठम एक अदिवा सुनिवा अकलत अनेक ।

२ सत सुबासार पृ० १८२

पूरम मय विचारिबे सख्य आत्मा एक ।

कापा के एव रेखिये ब्याव तरब अनेक ॥

३ सच घट आठम एक विचारी राम ।

४ संत बाबी संग्रह पृ० ३३२ ।

अब हम देखा सोबि करि दृष्य बाही बाम ।

अब कद एकै आठम क्या दिवू क्या सुप्रबामा ॥

<sup>५</sup> संत बाबी संग्रह पृ० १८२

<sup>६</sup> कबीर संपावली पृ० १२०

सोहा कंबन सम कर का नहि

ते मूर्ति भगवाय ।

<sup>७</sup> सत सुबासार पृ० २३०

रजब अमला जाम विचार ।

बंध तब अ सकल प्यारा ।

अधिक सूक्ष्म आपारों पर आपारित है। उसे आप्यात्मिक और आधिभौतिक साम्य वाद कहना अनुचित न होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों ने समाज क्षेत्र में कई बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे। उनके इन सामाजिक सुधारों से निम्नवर्ग के लोग बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। सब तो यह है कि संतों ने निम्नवर्ग के समाज को रूपरेखा ही बदल दी थी। उनमें उन्होंने आत्मसम्मान का भाव जाग्रत किया। उन्हें मानव बनकर रहना सिखाया। इस उपकार के लिए भारतीय समाज संदी से कभी उन्मुख नहीं हो सकता।



## आठवाँ अध्याय

सतों की बानियों की साहित्यिकता और अभिव्यक्ति—

सतों की बानियों के प्रमुख गुण

शास्त्रतता—समीक्षता—रसात्मकता—रस—उद्देश्यक प्रभाव—  
 शब्दार्थो मयगत—अलंकार गत—अद्भुत वर्णन प्रधान  
 शैली—

शुद्ध उपदेशप्रधान शैली—प्रसुप्तमित उपदेश प्रधान शैली—सुन्दर सम्मत् शैली  
 खंडन मंडन प्रधान शैली—नालप्रधान रहस्यत्मक शैली—वाचनाप्रधान रहस्यत्मक  
 शैली

प्रतीक—

सांकेतिक प्रतीक—गार्भिकप्रतीक प्रतीक—संज्ञकप्रतीक प्रतीक—रसप्रतीक प्रतीक  
 विरोधमूलक प्रतीक—

अभिव्यक्ति मूलक प्रतीकार प्रधान रहस्यप्रतीक शैली

उलटबाती शैली—अलंकार प्रधान उलटबातियाँ—प्रतीक प्रधान उलटबातियाँ  
 अद्भुत रस प्रधान उलटबातियाँ—

संभामाया और सत्य लोग—

सतों की भाषा का स्वरूप

ध्वनि—

शाली—शब्द—रमणी—अंग

## सतों की बानियों की साहित्यिकता

सतों में काव्य-रचना नहीं की थी। फिर भी उनकी बानियाँ बहुत काव्य का  
 सुन्दर उदाहरण हैं। अतः इन काव्य की कार्यक्षमता स्पष्ट करने के लिए हमें योद्धा का  
 विचार काव्य पर करना होगा। काव्य स्वरूप का विवेचन हमारे यहाँ दो दृष्टियों से  
 किया गया है—१—शास्त्रीय दृष्टि से और २—आध्यात्मिक दृष्टि से। शास्त्रीय दृष्टि  
 से काव्य का स्वरूप निरूपण करने का भेद काव्याचार्यों को है। काव्य का आध्यात्मिक

दृष्टि से निरूपण साहित्यिकों अन्तर्निपटों तथा कुछ अन्य शास्त्रीय ग्रंथों में मिलता है। शास्त्रीय और आध्यात्मिक भेद से ही काव्य में दो प्रमुख प्रकार मानता है। शास्त्रीय दृष्टि में आचार्य लोग कुछ विशेष साहित्यिक उपादानों से विद्विष्ट रहना ही अर्थ्य रहते हैं। काव्य का आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करनेवालों का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वे काव्य का किन्हीं साहित्यिक नियमों के कटपरे में बंद करके रखना नहीं पसंद करते थे। उनकी दृष्टि में आत्मा की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही काव्य होती थी। इस कोटि के काव्य को ही आध्यात्मिक रूपका सहजकाव्य की संज्ञा देना अधिक उचित समझता है।

सत्यों की रचना निर्विवाद रूप से दूसरी श्रेणियों के अंतर्गत ही आती है। काव्य शास्त्र के अलंकार गीति गुण रस ध्वनि आदि तत्त्वों की बखीरी पर संत काव्य को बसने का प्रयास करने वालों को निराश हो देना पड़ेगा। सत्यों की रचनाएँ सहज काव्य की विभूति हैं। जिस प्रकार उन्होंने अन्य क्षेत्रों में सहजवाद का प्रयासन करने का प्रयास किया था उसी प्रकार काव्य क्षेत्र में सु उन्होंने अस्मा की सहजोक्तिव्यक्ति को भी महत्त्व दिया है। आत्मा की सहजोक्तिव्यक्ति की उन्हें एक लम्बी चौड़ी परंपरा प्राप्त हुई थी। यहाँ पर संक्षेप में उस परंपरा का संक्षेप कर देना अनुपयुक्त न होगा।

अति प्राचीन काल में भारत में वाग्ज काल का काल प्रसंग से सब परंपरा परंपराओं के समूह काठ प। प्राचीन साहित्य में इसका अनेक प्रमाण मिलता है। श्रुतियों के शास्त्रात्मकीय सूत्रों में वाग्ज का प्रयोग ठीक उसी प्रकार प्रसंग के अर्थ में किया गया है जिस प्रकार गीता में कृष्ण का श्रुतियों के दृश्य मण्डल के ११४ वें सूत्र में प्रसंग और वाग्ज का प्रयोग सत्य-पाणिनी की गई है। उसमें वाग्ज का उक्तना ही विस्तार प्रयोग गरा है जिसका अर्थ है।<sup>१</sup> इसी संदिग्ध में एक दूसरे स्थान पर उसे आनन्दस्ते कहा गया है।<sup>२</sup> इसी संदिग्ध में उसे अज्ञान-सु की संज्ञा भी दी गई है।<sup>३</sup> जिस प्रकार वाग्जपुत्र के अर्थ में अस्मा का प्रयोग किया है, उसी प्रकार वाग्ज भी इस रूप से मनोपाहिता का प्रयोग करता है। शुक्ल पत्रों में अर्थ का प्रयोग परमेश्वर के अर्थ में किया गया है।<sup>४</sup> इसी प्रकार वेदान्तनिपट में वादी को प्रसंग कहकर वाग्ज या साहित्य का प्रसंग का परंपराओं की संज्ञा किया गया है।<sup>५</sup>

<sup>१</sup> अग्नेर—१०/११४।८

<sup>२</sup> अग्नेर—८/१००/१०

<sup>३</sup> अग्नेर—८/१००/११

<sup>४</sup> शुक्ल पत्रों में—३/०/८ अस्मिन्नीयस्मिन् अस्मिन् शुक्ल पत्रों में ३/०/८

<sup>५</sup> वेद — १/१४१

वदवाचकमुद्रितः बन बंगालमुद्रिते

वदव बंगाल मुद्रिते येन वदिरमुद्रिते ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी पुरुष<sup>१</sup> को बाहुमय कहकर साहित्य की ब्रह्मरूपता ही प्रकट की गई है। इसी प्रकार पादपदीय में शब्द को ब्रह्म रूप कहा गया है। काव्य को ब्रह्म मानने की परंपरा तभी तक सीमित रह सके जब तक समाज में सहब्रह्मण की प्रतिष्ठा रही। आगे चलकर ज्ञान के आनन्द का प्रतीक कम समझा जाने लगा। अन्य विज्ञान उसके अलग होने लगे। इस अवस्था में भी उसकी आध्यात्मिक प्रतिष्ठा बनी रही। महाभारत में व्यास जी ने कृत्तमयेदं ब्रह्म परमपूषितम किलकुर ब्रह्म को प्रतिष्ठ्य दी की उसका कारण 'उसकी ही आध्यात्मिकता थी'। यहाँ तक कि महाभूषि के समय में भी काव्य की आध्यात्मिक परंपरा के बिन्दु विद्यमान थे। उन्होंने अपने उत्तररामचरित<sup>२</sup> में उसे आत्मा की कला कहकर इसी बात की व्यंजना की है। साहित्य में रीतिमुग के प्रवर्तन से काव्य का प्रयोग पूर्ण लौकिक अर्थ में किया जाने लगा और उसके सहब्रह्मण को साहित्य शास्त्र की अनेक अनावश्यक शृंखलाओं में बन्ध दिया। अलंकारशास्त्रियों ने तो उसके प्रायः ही कुटारापात करने की चेष्टा की थी। हेमचंद्र ने तो उसको जीवन से बिल्कुल अलग करने का ही प्रयास किया था।

जैसे रसवारी आचार्यों के प्रयत्न से काव्य में योही-बहुत आध्यात्मिकता की भूमिका स्थापना अनशय रह पाई साहित्यिक शृंखलाओं से बँधकर काव्य का सहब्रह्मण बिकृत हो गया। उसका लक्षण केवल मनोरंजन भर माना जाने लगा। धीरे धीरे काव्य का यह बिकृत स्वरूप ही रुढ़ हो गया अब काव्य से इसी रुढ़ि स्वरूप का बोध हुआ है। संतों ने जहाँ अन्व सेतों में रुढ़ियों का उच्छेद किया था वही काव्य के बिकृतियों का उच्छेद करके उसके सहब्रह्मण को सामने रखने की चेष्टा की थी। उलझ काव्य उनकी आध्या की निबन्धि सहब्रह्म और स्वामासिद्ध अभिप्रेक्षित है। वही कारण है कि उसमें हमें आत्मवचन की लव, चित्र और आनन्द इन तीनों विभूतियों की शार्वरता लक्ष्यता और उदात्तता के रूप में पूर्ण अभिप्रेक्षित मिलती है। प्रत्येक सहब्रह्मण के यही प्रमुख तीन लक्षण होते हैं। संतों के काव्य का विश्लेषण हम इन्हीं लक्षणों के आधार पर करेंगे।

**शार्वरता**—सहब्रह्मण कृत्रिम बंधनों से अपरिच्छिन्न होने के कारण अमर और पिरंतन होता है। संतों के सहब्रह्मण में यह विशेषता पूर्णरूप से प्रतिष्ठित है। उक्त श्लेष्य प्रमाण्य कही है कि अलंकार मुग्ध रीति और मन्नि आदि साहित्यिक विधानों से विधित होते हुए भी संतार के भेद्यतम कवियों की रचनाओं के लक्षण सीमित और समाहृत है। संतों के सहब्रह्मण को अमरता प्रदान करने का भेष कुछ निम्नलिखित विशेषताओं को है—

<sup>१</sup> बाहुमया अर्थ पुरषा—बृहदारण्यकोपनिषद् १।१।१

(१) संतों के काम्य में हमें अज्ञातम की प्रकृष्टता मिलती है। अज्ञातम का विषय शाश्वत और विरलन है। इसीलिए संतों का काम्य भी शाश्वत और विरलन स्वर का है।

(२) इसमें मानव के सहज सार्वभौमिक सार्वकालिक सामिक सामाजिक और नैतिक मासों और विश्वातों की अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए समय के प्रभाव में पड़कर भी नाश न हो सका।

(३) इसकी रचना किसी स्वार्थ भाव से नहीं बरन 'शिष्येतरस्य' का प्रयोजन सामने रखा है। इसी लिए उसका इतना महत्व है।

(४) उसमें जीवन के अमरसत्व का उल्लेख है। इन कल्प संतों को देशकाल के दृष्टान नष्ट नहीं कर पाते।

(५) उसमें मानवजाति के लिए अमर उदेश्य बना हुआ है। युग-युग तक मानव जाति इन उदेश्यों से प्रेरणा लेती रहती। इसीलिए असादिक निधि के उद्योग उसकी रक्षा करनी चाहिए।

सजीवता—संतों की बानी में एक विशिष्ट सजीवता है एक अमूर्तिक चेतना है। उस सजीवता को कई आचारभूमियाँ हैं—

- (१) आचारमित्र प्रणय की प्रकृष्टता।
- (२) आत्मानुभूतिगत माधुर्य।
- (३) साधनारक्तता।
- (४) रहस्यमयता।
- (५) प्रतिमानूषक सजीवता।

आध्यात्मिक मणय की प्रकृष्टता—संतों की बानियों में हमें आध्यात्मिक मणय की एक विशिष्ट प्रकृष्टता मिलती है। उसमें एक अनिर्वचनीय प्रेरणा मयी हुई है। इस प्रेरणा का भेद शक्तियों और मरसों का है। शक्तियों का मंग का आध्यात्मिक मणय भाव का एक सुंदर उदाहरण संत दूनदास ग दिया या सखा है\*—

दृष्टा है मम मम्य पदा मूनी न दोषा ह्य।  
 पुत्रय इच्छा शर्जा को अर्द मरना यी सखा।  
 ओ पोन आशिया हमार दिल में है जा शक।  
 अर्द पद काम मूर्य का लगाय परि ग अष नक ॥ इत्यादि

\* संतबानी संग्रह—भाग २—पृ० १२३

होती है।<sup>१</sup> इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर उन्होंने परमात्मा विषयक रति की परिमाण देते हुए लिखा है कि लक्ष्मी प्रेम<sup>२</sup> अभी को कहते हैं। जिसमें प्रेमी और प्रेमिणी का पूर्ण वादात्मक हो जाता है। उस आध्यात्मिक रति मात्र की पदवान कह है कि जिसमें यह अत्यन्त हठा है उसके रक्त और नाव नहीं रहता।<sup>३</sup> इस प्रेम के बन्धन होते ही आभय की गयी मुच-मुच मूल जाती है।<sup>४</sup> जिसे इस भाव का बन्धन लग जाता है वह समस्त श्रद्धि-विद्वियों को दुःख समझने लगता है। यहाँ तक कि मुक्ति आदि भी पदचरहीन लगने लगती है।

**विभाव**—संघों के मन्दिरक का आलोकन निर्गुण राम हैं। उल्लेख बर्णन उन्होंने अनेक प्रकार से किया है। मन्दि के प्रसंग में हम उल्लेखी विविध श्लोकियाँ लिख चुके हैं। यहाँ पर केवल एक दो उदाहरण देकर ही मन्दि रस के परिपाक में उल्लेख स्थान निरूपित करेंगे। मन्दि रस का आलोकन ज्ञानमागीन निर्गुण शब्द नहीं हो सकता। इसीलिए संघों ने बहुत से स्थलों पर अपने निर्गुण राम का उल्लेखीकरण कर वाला है। संघ कबीर लिखते हैं—

भद्र नारदादि सुधरि वदिय खरन पंकज भूमिनी ।  
 मजि मजिसि भूपन पिया मनोहर वैषदेध/सिधेयनी ॥  
 बुधि नामि खंदन खरिषिठा धन रिदा मंदिर मीतर ।  
 राम रावसि नीन वानी मुजान सुंदर सुंदर ॥  
 बहु पाप परवत खेदना भी ताप हुरिषि निधारणा ।  
 करी कबीर गोअंभु मजि परमानंद वदिय कारणा ॥

उद्योग रूप में संघों ने वैराग्य उदाहरण मन्त्र आदि का उल्लेख किया है। उनमें बानियों में इसमें संश्लेषित श्लोक उदाहरण मिलते हैं। गुलाब साहब की अति इस प्रकार है—

काम श्लेष भद्र भमता त्यागी  
 प्रसु खरन मंह पागी ॥

<sup>१</sup> शानु हरिपा प्रेम का लामि कुरी दोष ।

इस आत्मा परमात्मा एक सेक राम होष ॥ संत सुधासार—१० ३३२

<sup>२</sup> आसिद्ध मासुक है गपा इसक बहार्थ सोष ।

शानु काम मासुक का आसिद्धि आसिद्ध होष ॥ शानु भाग १ १० ३३

<sup>३</sup> किम बर हुक का तिम बर खोदि न माय । शानु भागो भाग १ १० ३३

<sup>४</sup> मुच-मुच सब गई खोदी में इरक श्रीबानी—अन्यबानी संग्रह १० ३८

<sup>५</sup> कबीर प्रपादशो १० ३१८ संश्लेष्य १३२८

<sup>६</sup> गुलाब साहब की बानी १०

मक्ति के संघारी या स्वमिचारी मावों की संतों में पकी मुन्दर माँची मिलती है। इन स्वमिचारी मावों की अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई भी है। १—प्रत्यक्ष रूप में और २—व्यति फनी के प्रवाकों के माध्यम से। प्रथमतः द्वितीय प्रकार की है। उदाहरण रूप में पलटू साहब की निम्नलिखित उक्ति ले सकते हैं। इसमें ईश्वर और आशय आदि कई संघारियों का समन्वित रूप देना या रचना है<sup>१</sup>—

पिया पिया बोलने पपीहा है।  
मपद मुनत फट्टे हिया है॥  
सोयत में मैं पीक परी है।  
धकर धकर करे जिया है॥

अनुभाव—परमात्मा प्रथम रति माव के उदीत होने पर ठसक अनुभाव लपट दिखार्दे देने लगते हैं। उनमें से कुछ का सुन्दर बयान सहबाबाई ने इस प्रकार किया है। परमात्मा के प्रेम रस से परिपूर्ण मल्ल रो-ये गाथा है और अत्यन्त वात करता है।<sup>२</sup> सन्त परादास<sup>३</sup> का अनुभावों का बयान भी लक्ष्य है—

यहुतन की मति रंग रेंगी है जिनको लागी प्रम।  
यहुतन फो अपना मुधि नाहीं फोन कर अम नम ॥  
यहुतन की गद्गद की पानी नैनन नीर डराय।  
यहुतन की बौरापन लागो छां की क्या न जाय ॥

इसी प्रकार कबीर के शेषों की शक्तिमा विद्यनी माधक है<sup>४</sup>—

आंग्रडिया प्रम कमाडियां लोग आनहिं दूरडिया।  
अपन माई फाररी राई रोई रानडियां ॥

इस प्रकार अने अनुभावों के भी अनेक विषय दूँदे या सकते हैं।

इस प्रकार हम देना है कि सन्तों की बानियों में मक्ति रस का पूर्ण परिचाय हुआ है। यहाँ पर यह स्मरण रखना पड़ेगा कि सन्तों में हमें गूँगार का या स्वल्प दिगार्दे पकता है उद्योग अभिव्यक्ति कथन मंत्र के स्वीकृति के कारण हुए हैं। उक्त गूँगार

<sup>१</sup> पलटू साहब की बाना भाग २ पृ० १७

<sup>२</sup> शेष शाय मायन हैमन देवा अत्यन्त वात ।

हरि राम भाग ३ रई निवरा मला चगाय ३ देवाबाई—पृ० १

<sup>३</sup> परमात्म की बानी भाग १—पृ० २७

<sup>४</sup> कबीर प्रोडकडा—पृ० १



होती है।<sup>१</sup> इसी प्रकार एक दूसरे स्थल पर उन्होंने परमात्मा विषयक रति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि सच्चा प्रेम<sup>२</sup> उनी को कहते हैं। जिसमें प्रेमी और प्रेमिका का पूर्ण साधारण हो जाता है। उस आध्यात्मिक रति भाव की पहचान यह है कि जिसमें यह उत्पन्न होता है उसके रक्त और मांस नहीं रहता।<sup>३</sup> इस प्रेम के उत्पन्न होते ही आत्म्य की सारी सुषुप्त-सुषुप्त मूल जाती है।<sup>४</sup> जिसे इस भाव का बरत लग जाता है वह समस्त शक्ति विदियों को तृप्त समझने लगता है। यहाँ तक कि मुक्ति आदि भी मद्भवहीन लगने लगती है।

**विभाव**—संतों के मकरन्द का आलोकन निर्गुण राम हैं। उसका सर्वान् उन्होंने अपने एक प्रकार से किया है। मक्ति के प्रसंग में हम उसके विविध स्वीकारों का विवरण देते हैं। यहाँ पर केवल एक दो उदाहरण देकर ही मक्ति रस के परिष्कार में उसका स्थान निरूपित करेंगे। मक्ति रस का आलोकन ज्ञानमार्गीय निर्गुण ज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिए संतों ने बहुत से स्थलों पर अपने निर्गुण राम का सगुणीकरण कर दिया है। संत कबीर लिखते हैं—

मज नारदादि मुक्यदि वरिष्ठ चरन पंकरज मीमिनी ।  
 मजि मजिसि भूपन पिषा मनोहर वैषदेव सिरोषनी ॥  
 मुनि नामि पंडन अरुधिता उन रिषा मंदिर भीतर ।  
 राम राससि नैन बानी सुजान सुंदर सुंदर ॥  
 यहु पाप परवत श्रेयना भी वाप दुरिति निषारणा ।  
 कई कबीर गीर्णद मजि परमानंद बंषित कारण ॥

उदीपन रूप में संतों ने बेधम उदाहरण मयन आदि का उल्लेख किया है। उनकी बानियों में इसके संबंधित उदाहरण मिलते हैं। गुलाब साहब की रक्ति इस प्रकार है—

अम श्रेय मद्द समता स्वागी  
 प्रभु परन मंद पागी ॥

<sup>१</sup> बानू हरिया प्रेम का लामि कृषी शोक ।

इस काव्या परमात्मा एक मेरु रस होय ॥ संत सुधास्तर—२० ७६२

<sup>२</sup> आध्यात्मिक मासूक है गया हृदय बहारी सोय ।

बानू अम मासूक का आत्मदि आध्यात्मिक होय व बानू भाग १ पृ ७७

<sup>३</sup> जिस बह इस्क का तिस पर छोदि न माम । बानू बानी भाग १ पृ ३२

<sup>४</sup> सुषुप्त-सुषुप्त सब गर्ज्योरी में इस्क शीबानी—सप्तशती संस्रह पृ १८

<sup>५</sup> कबीर प्रभावको पृ ३१८ संस्रह १२२८

<sup>६</sup> गुलाब साहब की बानी पृ ७

भक्ति क संघापी या स्वभिक्षापी भावों की संतों में बड़ी सुन्दर झँझी मिलती है। इन स्वभिक्षापी भावों की अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई भी है। १—प्रत्यक्ष रूप में प्रार २—पवि-पत्नी क प्रतीकों क माध्यम से। प्रधानता द्वितीय प्रकार की है। उदाहरण रूप में पलटू साहब की निम्नलिखित उक्ति से सञ्चे हैं। इसमें दीप और आवेग आदि कई संचारियों का समन्वित रूप देना जा सकता है<sup>१</sup>—

पिया पिया बोलत पपीछा है।  
सयद सुनत फरटै हिया है ॥  
मोपस में मैं खीस परै है।  
घकर घकर करै जिया है ॥

**अनुभाव**—परमात्मा परम पति मास के बरीत होने पर उसका अनुभाव स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। उनमें से कुछ का सुंदर बखान उदाहरणों ने इस प्रकार किया है। परमात्मा क प्रेम रस से परिपूर्ण भक्त रोने-गाता है और अटपटी बात करता है।<sup>२</sup> अन्य परादास<sup>३</sup> का अनुभावों का बर्णन भी स्पष्ट है—

यहुतन की मति रंग रंगी है जिनको लागी प्रेम।  
यहुतन को अपनी मुधि नाही कौन कर भ्रम नम ॥  
यहुतन की गद्गद् की धानी नैनन नीर वरास।  
यहुतन की योंपन लागो गों की कही न जाय ॥

इसी प्रकार बहीर क नेत्रों की लालिमा विधनी मादक है<sup>४</sup>—

आँगुडिया प्रेम फमाइयाँ लोग जानदिं दूरदिया।  
अपन मारै फरलीं रोई रोई चलदिया ॥

इसी प्रकार अन्य अनुभावों क भी अनक विष दूद जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देना हैं कि सन्तों की बानियों में भक्ति रस का पूर्ण परिचाय हुआ है। यही पर यह मर्यादा रखना पड़ेगा कि सन्तों में हमें गूँगाय का जो स्वभाव दिखाई पड़ता है उसकी अभिव्यक्ति जयन प्रतीक रीति के बावजूद हुई है। उस गूँगाय

<sup>१</sup> पलटू साहब की बानी भाग ३ पृ० १७

<sup>२</sup> शब शब गायन होयत क्या अटपट बात।

दरि इस मान अ रई निजधा मना गगाय ॥ उदाहरण—पृ० १

<sup>३</sup> बरनदास की बानी भाग १—पृ० २०

<sup>४</sup> बहीर प्रेमबर्षी—पृ० ३

६२८ हिन्दी की निर्गुण व्याख्या और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह मक्ति का ही एक अंग है। यही कारण है कि सत्त्वों के गूंगारिक विद्यो में यही पर भी वासना की दुर्गुण नहीं जाती।

मक्ति के अतिरिक्त सत्त्वों की बानियों में शान्त और अदभुत रस का भी अल्प स्फुरण हुआ है। अमिनबगुण ने शान्त रस के अंगों पर प्रभार डालते हुए लिखा है कि शान्त रस के विभाषादि वैराग्य संसार मय आदि हैं। माधुर्याआदि की किंता अनुमाप होते हैं। निर्बेद मति स्मृति बुद्धि आदि अविचारी होते हैं।<sup>१</sup> राम तो उल्लस रपायी है ही। शांतिरस के उपर्युक्त समस्त अंगों की अविभक्त मी सत्त्वों में मिलती है। राम माध की ब्यंजना के लिए हम पलटू साहब की यह उक्ति देख सकते हैं—

मगन अपने ब्यास में माड़ परै संसार।<sup>२</sup>  
 उद्यम विभाव के अन्तर्गत जानेवाली कुछ उक्तिवाँ रस प्रभार हैं—

पलटू वास छजो मृगतृप्या सँठा सकल पमाय है।<sup>३</sup>  
 यह संसार रैन का सपना रूपा भ्रम सीपी केय।<sup>४</sup>

इसी प्रकार दूँदने से अविचारी भावों के उदाहरण मिल जाते हैं। अतः मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि सत्त्वों में शान्तरस की कुन्दर ब्यंजना पाई जाती है। सत्त्वों की बानियों में अदभुत रस के भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं। उनकी उल्लसकतियों में अविच्छर अदभुत रस ही मिलता है। उदाहरण के लिए हम निम्नलिखित उक्ति ले सकते हैं—

ऐसा अदभुत मेरे गुरु कथ्या में रया समले।  
 मूसा हस्ती सो लरे कोई खिरला पेलै ॥  
 मूसा पैय पाम्बि में लारै सापणि छाई।  
 छल्लि भूसी सापणि मिली यह अन्तरज भाई ॥  
 बीटी परपत सखइय लै राख्यो पीके ॥

रस प्रभार हम देखते हैं कि सत्त्वों में माँक और शान्त रस मुख्य हैं गूंगार और

<sup>१</sup> तत्पत्र वैराग्य संसारभीक्ष्णारूपो विभावः। मोघ शान्तचित्तारूपो पु माधाः निर्बेदस्त्वत्त अमिनबगुणारी अरिभ ५० ६४०

<sup>२</sup> तत्पत्र वैराग्य संसारभीक्ष्णारूपो विभावः ५

<sup>३</sup> पलटू साहब माग १ ५० ३०

<sup>४</sup> पलटू साहब माग ३ ५० १०

<sup>५</sup> पलटू साहब माग ३ ५ ३२

<sup>६</sup> कथार प्रभाषणी—५० १४१

प्रदूषण गन्ध है। अन्य स्त्री के उदाहरण देने से मिल तो जायेंगे किन्तु राष्ट्रीय विवेचन की दृष्टि से उनका पाह महत्त्व नहीं है।

**ऊहात्मक चमत्कार**—संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने काव्य में जनरधर के अस्तित्व पर विशेष बल दिया है। आचार्य चन्द्र ने यह चमत्कार अविचारित समर्पण विचारनायक समर्पण समस्त सुखकारी सुखीकृत्येण एव उपदगन, अर्थगत, उभयगत, अक्षरगत, रसगत, रसालंकारभयगत मन्त्र १० प्रकार का माना है। किन्तु आचार्य विश्वेश्वर ने चमत्कार चंद्रिका में चमत्कार के मात्र ही प्रकार बताये हैं—गुणगत, रसगत, वृत्तिगत, पाकगत, शब्दा और अक्षरगत। नया मनस में दोनों यह विभाजन उन आचार्यों के है जो चमत्कार के काव्य का प्राण मानते थे। मैं इन आचार्यों के मत से सहमत नहीं हूँ। काव्य चमत्कार ही काव्य का प्राण नहीं हो सकता। काव्य समाया नहीं है यह एक ऐसा शब्दाभ्युपेक्षण है जिसमें कवि मनसस्त्व हृदयगत, बुद्धिगत और आत्मानस प्रतिबिम्बित हान है। जिस कवि का आत्मा के अंदर आरण्य अन्तःक हान है उसकी अभिव्यक्ति में अपनी ही विशिष्टता होती है। जिस कवि की भाषा में उलझा मन तब प्रतिबिम्बित हागा उसका अर्थ से बचना अनिष्ट मनसहारा ही हो सकता। जिस कवि की रचना में उसका हृदय उभय आध्यात्मिक उसकी भाषा में साहित्यिक स्त्री का लक्ष्य ही सत्य परिगणन मिलता। जिसका अभिव्यक्ति में बुद्धि प्रतिबिम्बित हागी उसकी रचना में सादरता का मात्रा अत्यधिक हागी या फिर ऊहात्मक चमत्कार की प्रशानता हागी। जो सर्वज्ञ आन उपदेशों के रूप में अपनी आत्मा ही उभारने का उभारता रगता है वह उभय आत्मानिक कवि कहलाने का अविचार्य हागा है। साहित्यिक दृष्टि से विश्व का भेठ कवि उभी का बचना साहित्यिक विश्व काव्य में अनुकूल मन, हृदय, बुद्धि और आत्मा सबथ पूरा और परिपूर्ण अक्षरगतानि। इन दृष्टि से हिंदी साहित्य में सुलभ ही सर्वोपलब्धि कवि उभार है। उनमें हमें सबसे अक्षरगत एक काव्य मिलता है। स्त्रियों की बानियों में हमें उनकी आत्मा और बुद्धि का अभिव्यक्ति अत्यधिक मिलता है। हृदय और मनस की अभिव्यक्ति का सुलभ ही रचनाओं में मिलती। यही कारण है कि उनका रचनाओं में उभारता और अक्षरगत चमत्कार सुनी के हाथ सुनी ही विश्व के भेठम काव्य का रूप नहीं बनी का अक्षरी। ही ही आत्मा का अभिव्यक्ति का दृष्टि से देगा और का उभरी गलना कला का बहाक बानियों में भी जायगी।

हम अपनी क, सुख है। क, सुनी की बानियों में हमें उनकी आत्मा और उभय काद उनकी बुद्धि प्रतिबिम्बित मिलता है। आत्मा का अभिव्यक्ति के अक्षरगत मनस मन्त्रगत और उभयगत का काव्य परिगणन मिलता है। बुद्धि की अभिव्यक्ति होने के कारण उनमें विश्व प्रकार के सुलभ चमत्कारों के उभार का है। स्त्रियों में काव्य बनेशन सुलभ बुद्धि चमत्कार उभार प्रकार है—

३१० हिन्दी की नियुक्त कल्पनाएँ और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

- (१) शब्दगत चमत्कार ।
- (२) शब्दाद्योमपगत चमत्कार ।
- (३) छलंकारगत चमत्कार ।
- (४) अद्भुत वर्णन प्रधान चमत्कार ।

शब्दगत चमत्कार—काव्य को शब्दगत माननेवाले आचार्यों की दृष्टि में इस श्रेणी के चमत्कार का बहुत बड़ा महत्त्व है। एतों को अपने विरोधी पक्षियों से लड़ने ही मोर्चा लेना पड़ता था। वे वेचारे शास्त्रार्थ करना तो जानते नहीं थे। अतः उन्होंने पराभित करने की धमना से वे विविध प्रकार के चमत्कारों से शब्दगत चमत्कार प्रपन्न और प्रसुक्त हैं। एतों की बानियों में इस चमत्कार की अभिव्यक्ति द्विविध है—

- (१) पारिभाषिक शब्दगत ।
- (२) शब्दीचित्यगत ।

(१) पारिभाषिक शब्दगत चमत्कार—पारिभाषिक शब्दगत चमत्कार से तो एतों की बानियाँ भरी पड़ी हैं। उदाहरण के लिए हम दादू की निम्नलिखित पंक्ति से लक्ष्य हैं।

गंगा छतटी पैर कर समुना माडे भानि । दादू भानी भा० १ पृ० ६

यहाँ पर गंगा और समुना पारिभाषिक शब्द हैं। उनका प्रयोग पाश और भ्रमण के लिए किया गया है। इनके प्रयोग से ठीक से एक अद्भुत चमत्कार का गया है।

शब्दीचित्यगत चमत्कार—इस प्रकार के सहस्रों उदाहरण एतों में मिलते हैं किन्तु यहाँ यही एक चमत्कार की पाबना की गई है वह अपने ढंग की अनूठी है।<sup>१</sup>

गगन मभन मा गगन मपन में घिन बीपक उजियारी ।

मल्लकि चमकि यह रूप थियई मिनी मकल जौधियारी ॥

यहाँ पर गगन मगन का अनुपात तो स्पष्ट है ही किन्तु महत्त्वपूर्ण बात मल्लकि और चमकि शब्दों का औचित्य है। जौधियारी मिटने के भाव का अनुकूल ही यहाँ पर मल्लकि और चमकि शब्दों का औचित्यपूर्ण प्रयोग किया गया है।

शब्दाद्योमपगत—यदि काव्य में शब्दाद्योमपगत चमत्कार की प्रविष्टि हो चाय तो स्वयं मुगंय संयोग समझना चाहिए। इसीलिए कुठल आदि आचार्यों ने

इस पर विशेष बल दिया है। इसके उदाहरण रूप में हम निम्नलिखित उद्धरण ले सकते हैं—

सजनि रजनि घनती जाय ।

पलपल छीन्ने अथभि दिन आर्य अपनी लाल भराय ॥

यहाँ पर सजनि रजनि का अनुपासगत साम्य तो शब्दगत चमत्कार का चोटक है। रजनि का प्रयोग बहुलपूर्ण जीवन के प्रतीक रूप में किया गया है। इसी प्रकार लाल शब्द एक ओर तो परदेशी प्रियतम का वाचक है दूसरी ओर उस कालुषपूर्ण जीवन का प्रकाशित करने में समर्थ चमत्कार का चोटक भी है। इस प्रकार इस उक्ति में शब्दार्थों भयानक चमत्कार से पार पाँद लाग गय हैं।

**अलंकारगत चमत्कार**—उत्कृष्ट साहित्य में अलंकारवाद की बड़ी धूम रही है। यही कारण है कि जब आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा में उनलक्ष्ण्ठी शब्द का प्रयोग किया तो यहाँ तक चढ़ डाला कि जो साग काव्य को अलंकाररहित मानते हैं वे अर्थ को अभिलक्षित क्यों नहीं मानते।<sup>१</sup> अर्थात् यही इस आलोचना का प्रत्युत्तर देते हुए मम्मट के अनुयायियों ने कहा कि उनलक्ष्ण्ठी से आचार्य का तात्पर्य अलंकार विहीनता से नहीं अस्फुटालंकारमुक्तता से है। अस्फुट अलंकारमुक्त रचना काव्य हो ही नहीं सकती। क्योंकि आनन्दकथनाचार्य ने आदि कवि के आदि रसांक को ही अस्फुट का उदाहरण माना है। उतमें अस्फुट अलंकार की योजना की गई है।<sup>२</sup> अस्फुट अलंकार किसी भी सुन्दर ढंग से नहीं हुए उक्ति में स्वयमेव आ जात हैं। प्रथमपूर्वक उनकी योजना की आवश्यकता नहीं होती। असली बल रह है। यदि किसी उक्ति में मायुर्व है तो वह काव्य की भेरी में आ सकती है। उतमें स्फुटालंकार हो या नहीं। यही बात परिवार में भी मिला है। इस अभिव्यक्ति की सामर्थ्य रगनबाणा चरण राव आनन्ददत्त द्वारा है। अतः उतमें अलंकारों की शिवि आवश्यक नहीं होती है।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> अस्फुटालंकार — अर्थात् १।८

अलीकालिका काव्ये अस्फुटालंकारमुक्तम् ।

अत्र न मम्मट परमास्फुटालंकारमुक्तम् ॥

<sup>२</sup> मानिकार प्रतियोग्यं लक्षणात् अस्फुटालंकारः समाः ।

पद्येषु सिधुकारकम् यथाः काममाहितम् ॥

<sup>३</sup> अतएव तमानुसूयध्वनिकल्पने अलंकाररहितं निष्कालिकं तुष्यति । अन्वयात्काव्यं यो टीका ।

संत लोग भी मम्मर और रश्मिकार के ही सद्य काव्य में अर्थ के प्राप्यत उस रस और रश्मि को आकरयत् मानत थे अलंकारों को नहीं। संत सुन्दरास ने काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उसमें अर्थ सौष्ठव को ही महत्त्व दिया है। उन्होंने अलंकारों का नाम भी नहीं लिया है। संतों ने<sup>१</sup> बैसे भी अलंकारों की योजना करने का इच्छा प्रकृत नहीं किया था। सुन्दरास आदि ने दो-एक पक्ष लिये थे। संतों को छोड़कर और लोग अलंकार शब्द से भी परिचित न होते कोई आश्चर्य नहीं।

यद्यपि संतों ने अपनी शानियों में काव्य की योजना करने की चेष्टा नहीं की थी किन्तु फिर भी सौन्दर्य के साथ वे स्वयमेव आ गये हैं। कहीं-कहीं तो अलंकारों की इतनी सुन्दर योजना हो गई है कि उनका चमत्कार अपने आप प्रकटित हो निश्चया है।

संतों में हमें विरोधमूलक अलंकारों की ही अभिव्यक्ति मिलती है। प्रमुख विरोधमूलक अलंकार विरोधात्मक विरोधात्मक असम्मन विभाषना विरोधोक्ति असंगति विषम विचित्र अत्रिक अत्योम्य स्वाभाव है। रूपक ने विरोध और अतिशयोक्ति को भी विरोधमूलक माना है।<sup>२</sup> संतों की उलटबासियों का चमत्कार इन्हीं विरोधमूलक अलंकारों की योजना पर आधारित है। अतः इनके उदाहरण इसी प्रसंग में दिये जायेंगे।

रूपक भी संतों का एक प्रिय अलंकार है। कबीर आदि कुछ संतों ने इसका प्रयोग बहुत अधिक किया है। उन्होंने उनके सहारे अभिप्रेत गुरु आध्यात्मिक विद्वानों की अभिरम्भना का प्रमादपूर्ण और स्पष्ट बनाने की चेष्टा की है। उदाहरण के लिए हम<sup>३</sup> दानू का निम्नलिखित रूपक ले सकते हैं—

प्राण तरोपर मुक्ति जड़ मछ भोमि तरमाहि ।

रम पीषी पूरै फलै दानू सुखै नाहि ॥

यहाँ पर सन्त दानू ने प्राण, मुक्ति और मछ के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। रूपक योजना से यह भाव स्पष्ट प्रकट हो गया है। प्राण की अपेक्षा मुक्ति उत्तम है और मुक्ति स ब्रह्म स्वप्नवर है। इस प्रकार हम यह सकते हैं कि आध्यात्मिक विद्वानों को सरल और बोधगम्य बनाने में रूपक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संतों के रूपक की सामान्य विशेषताएँ ये ही हैं विनाम ठगोम्य कबीर की विनामपाय में कबीर

<sup>१</sup> एक भंग सुम् भंग अरथ मित्रे न क्यु ।

सुन्दर कृत पत्नी बाबी नदि बोदिये व अन्त सुजायार—पृ० ६२७

<sup>२</sup> संस्कृत साहित्य का इतिहास—पोद्दार—भाग २ पृ० १७२ (१६६८)

<sup>३</sup> दानूवाची भाग १ पृ० २८

के रूपों के प्रसंग में कर चुके हैं। यहाँ पर उनका निरूपण करना उचित नहीं समझता हूँ। इन रूपों की याचना से उनकी कानियों में एक विशिष्ट आकार आ गया है।

**अद्भुत घर्जन सम्बन्धी समस्कार**—सन्तों ने बहुत सारे विशिष्ट और अद्भुत घर्जन किये हैं जिसमें वैचित्र्यमूलक एक विशिष्ट समस्कार मग है। उदाहरण के रूप में हम शारू<sup>१</sup> की यह उक्ति ले सकते हैं—

मनु यह अघमो धायी ।  
फीकी ये हस्ती विद्याम्यो तेन्दे फीठी ग्याण ।

इसी प्रकार की कबीर<sup>२</sup> की यह उक्ति है—

एसा अद्भुत मेर गुरु फया में रहा उभये ।  
मूसा हस्ती मो लई फोई विरला पये । इत्यादि

बात में यह उल्लेखार्थी हैं जिनमें अद्भुत रस सम्बन्धी समस्कार की प्रविष्टि की गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों की कानियों का वाच्यत्व या वा आत्मानन्द मूलक रसात्मकता से अनुप्राणित है या फिर किसी प्रकार के उद्दामक समस्कार से अनुप्रेरित है। इस दृष्टि से उनकी कविता हिन्दी के अन्य कवियों से भिन्न है।

**शैली**—वाच्य के अलावा सन्तों की रचना शैली की विशेषता भी वाच्यशास्त्र में वर्णित कृषियों और शैलियों के प्रकाश में नहीं की जा सकती। इसका प्रमुख कारण यह है कि उनका लक्ष्य वाच्य रचना करना न था। उन्होंने जो कुछ भी लिखा था और कहा या उक्त मूल में दो मानतार्थी थीं। एक थी मरगागर में डूबने हुए बसों का उद्धार करने की। इसका लिए उन्हें ईश्वर से प्रेरित किया था। संत कबीर<sup>३</sup> ने लिखा भी है—

माई परे विपारिया मागी परे फरीर ।  
अर मागर के सोप म फोई परे रोर ॥

एकदू ने भी लगनग इसी मात्र का प्रतिपन्नित दिना है—

<sup>१</sup> शारू कानो—भाग—२ पृ० ११

<sup>२</sup> कबीर प्रपञ्चपी पृ० १०१

<sup>३</sup> कबीर प्रपञ्चपी पृ० २१

<sup>४</sup> कबीर कानो भाग २ पृ० ११



हिन्दी की निर्गुण ब्रह्मपारा और उसकी दार्शनिक दृष्ट्युक्ति

एक न भूला कोई न भूला भूला सब संसार ।  
पलटू दास हम कहा पुकारी अब न दोस इमार ॥

सन्तों को साक्षिण रचना के लिए प्रेरित करनेवाली दृष्टी मानना ब्रह्मालय विद्या के पठन-प्राप्त और साधक की थी। सन्त परनदासजी<sup>१</sup> ने ब्रह्मालय विद्या के पठन-प्राप्त और साधना को ही सन्तों का एकमात्र लक्ष्य ध्यनित कही हुए लिखा है—

आत्म विद्या परै पढ़ावै परमात्म का ध्यान करावै ।

उनकी समस्त रचनाएँ इन्हीं दो माननाओं और लक्ष्यों से अनुप्रेरित थीं। उनकी शैलियों का इतत रूप से बड़ा अनिष्ट संबंध था। प्रथम लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने उपदेश दृष्टि प्रद्वय की थी और दूसरे प्रबोधन के दिग्दर्शक ब्रह्मालय का विवेचन किया था किन्तु उनका ब्रह्मालय विवेचन दार्शनिकों से निम्न है। वे मातृक मानना के माध्यम से किया गया ब्रह्मालय निरूपण बहुत प्रभावित है। आचार्यों पर संतों में स्थूलरूप से दो प्रकार की शैलियों का विभक्त पाते हैं—

(१) उपदेश शैली ।

(२) रहस्यात्मक शैली ।

उपदेश शैली के भी स्थूलरूप से दो स्वरूप दिखाई पड़ते हैं—

(१) शुद्ध उपदेशात्मक और

(२) लंछन मंडन प्रधान ।

इसी प्रकार रहस्यात्मक शैली का विभक्त भी कई रूपों में दिखाई पड़ता है—

(१) भावप्रधान रहस्यात्मक शैली ।

(२) साधनाप्रधान रहस्यात्मक शैली ।

(३) अभिव्यक्ति प्रधान रहस्यात्मक शैली ।

एक साथ विचार करने पर सन्तों की बानियों में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं—

(१) शुद्ध उपदेशप्रधान शैली ।

(२) लंछनमंडन प्रधान शैली ।

(३) भावप्रधान रहस्यात्मक शैली ।

<sup>१</sup> संतबानी संग्रह पृ० १०१ पर इतिवृत्त  
आत्म विद्या परै पढ़ावै, परमात्म का ध्यान करावै

- (४) साधनाप्रधान रहस्यात्मक शैली ।  
 (५) अभिव्यक्ति प्रधान रहस्यात्मक शैली ।

शुद्ध उपदेशप्रधान शैली—कवियों की अधिकांश कवनाएँ शुद्ध उपदेश प्रधान हैं । उपदेश तीन प्रकार के होते हैं—

- (१) प्रसुप्तमित्त ।  
 (२) शुद्धसमित्त ।  
 (३) वाच्यसमित्त ।

प्रसुप्तमित्त उपदेश भक्ति प्रयोगों में दिया हुआ विचित्रात्मियों के लिये आदेशात्मक होता है । वे प्रत्यक्ष अभियोग्य लोग हैं । शुद्ध समित्त उपदेश इतिहास पुराणादि के उपदेशों के लिये न दिया जाता है और न अभियोग्य ही । उनकी अभिव्यक्ति अनेकानेकों के आशय से ही जाती है । वाच्यसमित्त उपदेश बड़ा दिया और मधुर होता है । जिस प्रकार वाच्य प्रियवचन का अन्तर्गत दास्य-भास्य से मुक्त कर ठोस अभिव्यक्ति व्यक्त होती है उसी प्रकार बहुत से कवि स्वयं तथा उनके लिये उपदेशों को उचितता से पाठक के हृदय में मार देते हैं ।

कवियों में हमें अधिकतर प्रथम दो प्रकार के उपदेश ही मिलते हैं । इसलिये उनमें दो प्रकार का उपदेशात्मक शैली का पारिभाषिक है—

- (१) प्रसुप्तमित्त उपदेश प्रधान शैली ।  
 (२) शुद्ध समित्त उपदेश प्रधान शैली ।

प्रसुप्तमित्त उपदेश प्रधान शैली—कवियों की अधिकांश कवनाएँ इस शैली में लिखी गई हैं । इसका बड़ा कारण यह है कि वे कवियों का ईश्वर-प्रेम था । इसका संकलन हम ऊपर कर चुके हैं । दूसरा कारण उनकी साक्षरता की वृद्धि थी । पारम्परिक साधना में निरत रहते हुए भी साक्षरता में लगे रहते थे । इसी कारण साधनाओं से प्रेरित होकर कवियों में प्रसुप्तमित्त उपदेश शैली का अन्तर्गत था । इस शैली के उपदेश भी दो प्रकार के हैं—एक अन्तराल और दूसरे अन्तराल । अन्तराल उपदेश अधिकतर विचित्रात्मियों के लिये दिया जाता है जो कवियों के लिये लिखे गए हैं । अन्तराल उपदेश साधना के साधन के लिये है । यह अधिकतर कवियों में है । प्रथम शैली के उपदेशों में इन मन्त्रदानों की निम्नलिखित उक्ति दे ली है—

मुन्दर दानि दानि क मन्त्र बोध कर गुमान ।  
 पाल दानि दानि क मन्त्र बोध कर गुमान ॥

आत्मरक्त उपदेश का सुन्दर उदाहरण मीखा<sup>१</sup> साहब का निम्नलिखित पद्य है—

मन तू राम से लीं श्राव ।  
 त्यागि के परपंच भाषा सकल श्रगदि नभाव ।  
 साँच की तू भाइ गदि ले मुँठ फपट बहाय ।  
 खनि सीं लीं लीन है गुरु ज्ञान प्यान लगाय ।  
 जोग की यह सद्ज मुक्ति विचार के ठहराय ॥ इत्यादि

इनके अतिरिक्त संतो से हमें प्रसू सम्मिल उपदेश अन्तर्गत चैताननी शैली भी मिलती है। इस शैली में उन्होंने मोक्ष से होते हुए मानवों को बगाने की चेष्टा की है जैसे मल्लकदास की पद्य उक्त है<sup>२</sup>—

आगो रे अब आगो मयमा मिर पर जम की धार ।  
 ना जानू कीने परी कदि ही जई मार ॥

उपदेश की सुहृद्सम्मिल शैली—इस शैली का उद्देश्य भी संतों ने किया है। इस शैली में कवि अपस्तुतों के लिये उपदेश की व्यवस्था करता है। प्रस्तुतों की योजना कई रूपों में की जा सकती है—

- (१) अम्योक्तमूलक योजनाओं के रूप में।
- (२) अम्योक्ति रूपक आदि अलंकारों के रूप में।

प्रथम कोटि की अपस्तुत योजना अविचलित प्रबंधात्मक होती है। संतों में उसके प्रयोग का कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि संतध्याय निर्विकार रूप से दुःखक बाध्य है। हाँ दूसरी कोटि के अपस्तुत योजना के उदाहरण संतों में उपदेश की योजना अविचलित अम्योक्ति के माध्यम से की है। उदाहरण स्वरूप में हम संत कबीर<sup>३</sup> का निम्न लिखित रूपक ले सकते हैं—

मर्जा मारूँ चारूँ प्यान की चाँची रे ।  
 अम की टानी मर्बे उवाणी माया रई न चाँची ।  
 फई कबीर मान क प्रगटै उदित भया सम पीना ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुद्ध उपदेशात्मक शैली के भी कई रूप और प्रकार हैं।

<sup>१</sup> संत भाषी संग्रह पृ० ११०

<sup>२</sup> मल्लकदास की भाषी पृ० ३३

<sup>३</sup> कबीर प्रबंधाली पृ० ३३

खण्डन मण्डन प्रधान शैली—इस शैली की मूल प्रेरिका उपदेश वृत्ति ही है। जब मनीषी अक्षय का निराकरण करके तब का उपदेश देना चाहता है तभी उसे इस शैली का आश्रय लेना पड़ता है। इस शैली के भी कई रूप और प्रकार विचार्य पड़ते हैं—

- (१) क्रांतिपूर्ण खण्ड-मण्डन शैली
- (२) बुद्धिवादी खण्डन-मण्डन शैली
- (३) मात्र प्रधान खण्डन मण्डन की शैली
- (४) स्वगात्मक खण्डन-मण्डन शैली

(१) क्रांतिपूर्ण खण्डन मण्डन की शैली—यही यही संतों की खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति ने बड़ा प्रबल रूप धारण कर लिया है। ऐसे स्थलों पर उनकी रंजि भावना अमयी है। ऐसे वर्णन बड़े उप हो गये हैं। मात्रा शैली भी इसी के अनुकूल लोकोपयुक्त है। अभिव्यक्ति में एक निश्चित प्रयोग है। कथन में उपमा और कल्पना ली रहती है। संक्षिप्तता इस शैली की प्रधान विशेषता है। संतों की मानियों में इस शैली के खण्डन और मण्डन दोनों पक्षों का सुन्दर उदाहरण मिलते हैं, किन्तु प्रधानता उपदेशात्मक उक्तिों की है। इस ढंग की उपदेशात्मक उक्ति के उदाहरण के रूप में [१] कबीर<sup>१</sup> का निम्नलिखित कथन ही लक्ष्य है—

पण्डित मुक्ता जो खिल दीया ।  
छाँड़ि पजे हम फछु न लिया ॥

[२] प्रथम एक उक्ति इस प्रकार है—

यह मय मूर्छी बंदगी धरिया पांच नियात्र ।  
साधि मार भूठि पढ़ि काजा करे अक्षत्र ॥

इस कवि की उपदेशात्मक उक्ति के उदाहरण में हम हरिदास<sup>२</sup> काह्य की निम्नलिखित वृत्ति से लक्ष्य है—

फोगन वीरय माधुन के परना ।

बुद्धिवादी खण्डनारमक मण्डनारमक शैली—संतों का अधिभूत खण्डन मण्डन बुद्धिवादिता पर आधारित है। इस प्रकार का बुद्धिवादी उपदेश प्रायः

<sup>१</sup> कबीर प्रियवचन पृ० १०९

<sup>२</sup> कबीर वचनपत्र पृ० ४९

<sup>३</sup> हरिया वाग्य पृ० ३२

शैली में अभिव्यक्त हुए हैं। उसमें दृष्टान्तों और उक्तों की प्रधानता है। भाषा स्वतः एक विशेष सरल और स्वाभाविक है। संत<sup>१</sup> भीष्मा साहब देखिये—योग ब्रह्म तप दान नैम आदि का खण्डन कितने बुद्धिवादी ढंग से किया है—

योग ब्रह्म तप दान नैम कहिं साहज राम फे मँटा ।  
जब पत्थर करि आघधहिं दामि खेलापहिं वेटा ॥

इसी प्रकार कहीं-कहीं खण्डन के लिए ठामुक्त उक्त प्रस्तुत किये गए हैं—

केव बहुत विस्वार हैं नाना विधि के राम ।  
पढ़वे पार न पाइए जो कीते बहु ब्रह्म ॥

कहीं कहीं दृष्टान्त और चार्किष्ठा का सुन्दर समुच्चय कर दिया गया है। ऐसे स्वतः बड़े मार्मिक हो गये हैं। उदाहरण के लिए हम कबीर<sup>२</sup> की यह उक्ति से लच्छे हैं—

नागे छिने जोग ओ होइ वन का गिरग मुफति भया कोई ।  
मूढ़ मुझाई ओ सिब होय स्वर्गहिं भेङन पहुँची कोई ॥

इसी शैली में लिखी गई मयदानामक उक्तिओं के अन्तर्गत बुद्धिवादी परिमाण विशेष उल्लेखनीय है। संत लोग रुढ़ि के विरोधी थे अतः उन्होंने सर्वत्र विविध रुढ़िवादी मार्मिक उक्तों की बुद्धिवादी परिमाणार्थ प्रस्तुत की हैं। उदाहरण के लिये हम संत<sup>३</sup> सुन्दरदास द्वारा दी गई श्रुति की परिभाषा दे लच्छे हैं—

देहही फे अभिमान देहही सा होइ परधो ।  
जड़ता अज्ञान धम श्रुति सोई जानिये ॥  
इन्द्रानि के क्यापाउनि अत्यन्त निपुन मुद्धि ।  
तमो राम हुहु करि धर्म हू प्रमानिण ॥

संतों ने इसी शैली में ब्राह्मण धर्म की शक्ति, शक्ति, शक्ति और अज्ञान आदि धर्माधारों की बुद्धिवादी परिमाणार्थ परल्लेख की हैं—

भाषमघान खण्डन-मण्डन की शैली—इत परार की शब्दी की अभिव्यक्ति में संतों की मयदानामक उक्ति का अभिप्रेरक है, खण्डनरामक ब्रह्म । मयदानामक स्वागत मयदानामक पूजा विधि मयदानामक मयदान आदि का वर्णन इसी शैली से किया

<sup>१</sup> भीष्मासाहब की बानी पृ० २

<sup>२</sup> कन्नत मुबालार पृ० २२६

<sup>३</sup> कबीर प्रणयकबी पृ० १३०

<sup>४</sup> संत मुबालार पृ० ६३३ पंख १

गा है। उदाहरण रूप में हम मगवाव् की पूजा का निम्नलिखित मावात्मक पद्यन ले लें<sup>१</sup>—

श्रीति सी नपाती खेऊ प्रेम सों न पूछ ।  
चित्त सों न बंदन सनेह सो न सेह्य ॥  
हृदय सों न आसन सहज सो न सिंहासन ।  
भाष सों न सेज और सून्य सों न रोह्य ॥  
सील सों न स्नान भरु प्यान सों न धूप और ।  
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केह्य ॥  
मन सों न माला खेउ सोहसो न जाप और ।  
आसम सों देय नाहि देह सों न देह्य ॥

व्यंगात्मक शैली—संतों के बहुत से लयबद्ध मयबद्ध व्यंगात्मक शैली में आते हैं। व्यंग्यमय शैली की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। सबसे पहली विशेषता है बस्य शक्ति का उदात्तन। कवि जिस बात पर बटाव करना चाहता है उठकी पूरी बाल लोल पर रूप देता है। इस शैली की दूसरी विशेषता सुटीकारन है। कवि इस ढंग से व्यंग्य प्रता है कि वे हृदय में सुमकर रह जात हैं। अत्यन्त स्वातुभूति की निमित्त गावना ऐसी शैली में सर्वप्र भाँकनी रहती है। उदाहरण के लिए हम संत पलटू का नेमतिमित्त अचतरण ले लेंगे<sup>२</sup>—

पर में जिन्दा छोडकर सुरदा पूजन आय ।  
सुरदा पूजन आय भीति खे मिरदा नाय ।  
पान पूज और खाँड जाय क तुल पदार्थ ॥ इत्यादि

यह तो हुए अराम्य संछेन रूप में उदात्त शैली का भदोममेद। अब हम रहस्यमय शैली का विश्लेषण करेंगे।

वेना कि हम ऊपर कह जाय हैं संतो की अभिजाय रचनाएँ रहस्यमय शैली में अभिव्यक्त हुई हैं। रहस्यमय शैली के भी तीन उदात्त दिग्दर्शक पद्य हैं—

- (१) भारमवान रहस्यमय शैली ।
- (२) शापना मयन रहस्यमय शैली ।
- (३) अभिव्यक्तिमयक पद्यनार मयन रहस्यमय शैली ।

<sup>१</sup> मगवावी नेमह भाग १ पृ० ११६

<sup>२</sup> बचटू शादक की बानी भाग १—पृ० ७१

भावमयान रहस्यात्मक शैली—उन्हीं का अभिकंश धारणवाद ही शैली में अभिव्यक्त हुआ है। प्रतीकात्मकता, स्वातन्त्र्यमूलकता, भावना प्रधानता, मधुरता, मार्मिकता, भाष्यात्मिकता आदि इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रतीकात्मकता है। प्रतीकात्मकता उन्हीं समस्त रहस्यात्मक शैलियों की प्राणभूत विशेषता है। अतः यहाँ पर हम उसका योजा सा सन्धीकरण कर देना चाहते हैं।

प्रतीकात्मकता—अभिव्यक्त को व्यक्त करने की चेष्टा ही कवि को प्रतीक योजना में प्रवृत्त करती है। असीम की कथा को अभिव्यक्त करने का एक मात्र साधन प्रतीक ही है। उन्हीं का प्रमुख कक्ष उक्त अभिव्यक्त और अनिश्चनीय को अभिव्यक्त और निश्चनीय बनाना था। अपने उक्त लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्हीं प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ा है। उन्हीं कानियों में हमें कई प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

- (१) सांकेतिक प्रतीक।
- (२) पारिभाषिक प्रतीक।
- (३) संख्यामूलक प्रतीक।
- (४) रूपकालम्बु प्रतीक।
- (५) विरोधमूलक प्रतीक।
- (६) भाषात्मक प्रतीक।

प्रस्तुत शैली में भाषात्मक प्रतीकों की ही प्रधानता मिलती है। अतएव यहाँ पर उन्हीं प्रतीकों के प्रयोग पर प्रकाश डालेंगे। अन्य कोटि के प्रतीकों का विशेषण अन्य रहस्यात्मक शैलियों के प्रयोग में किया जायेगा।

प्रस्तुत शैली में हमें भाषात्मक प्रतीकों के दो रूप मिलते हैं—एक धर्म सम्मत कृष्ण भाष सम्मल। धर्म सम्मत भाषात्मक प्रतीकों के अंतर्गत माता पुत्र के प्रतीक, शिखर गुफ के प्रतीक तथा पति पत्नी के प्रतीक आयेगे। यद्यपि उन्हीं की कानियों में इन तीनों कोटि के प्रतीकों के उदाहरण मिल जाते हैं किन्तु प्रधानता पति-पत्नी के प्रतीकों की ही है। यहाँ पर तीनों के उदाहरण दे देना अनुपयुक्त न होगा। माता पुत्र के प्रतीक का प्रयोग करते हुए कबीर ने लिखा है—

हरि जननी मैं बालक तोय ।

शिखर और गुफ के प्रतीक का प्रयोग उक्त पदद्वय ने इस प्रकार किया है—

<sup>१</sup> कबीर प्रपावली पृ० १२३

<sup>२</sup> पदद्वय साहस की बाणी भाग १ पृ० ३०

पुँपट डारऊँ म्बोलि ज्ञान के डोल बजाई ।  
 पंजिउँ बॉम पर धाड सहर के विर्व गजाई ॥  
 देखि देखि मय चिद्वे लोग में अधिक चिदायी ।  
 लागी गुरू से बोरि मगन हँ साहि रिम्ययी ॥

पति पत्नी के प्रतीकों का प्रयोग तो समस्त सन्तों की रचनाओं में मिलता है । माधारमक खरबाद की बिलनी भी उचितपाँ है वे सब पति पत्नी मात्र के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुई हैं । पति-पत्नी के प्रतीकों के उदाहरण में सन्त कबीर<sup>१</sup> का निम्नलिखित पद साक्ष्यप्रतिष्ठ है ।

हरि मेरा पीष हरि मेरा पीष हरि मेरा पीष भाई ।

इस संस्य के संस्कारक सबगुरु माने गये हैं । सन्त पलटू ने<sup>२</sup> लिखा है—

मगन भई मेरी भाई खी अब स पाया कय ।  
 अब से पाया कय पंय सतगुरु मतलाया ॥

गुरु के द्वारा आवोक्षित विवाह साधारण नहीं होता है । वैठीत देवता और लहरी श्रुति उस विवाह की सादी बतकर आत है । सन्त कबीर<sup>३</sup> ने इस विवाह का वर्णन बड़े समारोह के साथ किया है ।

माधारमक प्रतीकों के अर्थगत सेमी और निश्चयता के प्रतीक आर्येग । पति पत्नी की अभिव्यक्ति सृष्टी साहित्य में ही मिलती है किन्तु व्यक्ति से प्रभावित होने के कारण वहीं-वहीं सन्तों में भी इन प्रतीकों के प्रयोग किये हैं । वहाँ वही सन्तों ने इन प्रतीकों का प्रयोग किया है वहाँ अभिव्यक्ति में एक विशेष आश्चर्य समझकर

<sup>१</sup> कबीर प्रयागजी पृ० ११२

<sup>२</sup> पलटू साहब की बाबो भाग १ पृ० २४

<sup>३</sup> बुजबुजी गाबदु संग्रहकार ।

इस परि चाये हो राम राम भरतार ॥

तन तन करि में मन तन करिहुँ बंधन बरानो ।

राम देख ओरे कहुँने चाय में जोरन मिमातो ॥

सारी बरतार बेरी करिहुँ बका बर उचार ।

सोमरु सँगि औपरि छहुँ बनि पनि भाग ह्यार ॥

सुर सेनीसु औनिग चाये सुनिवर सदसु कठ्यामी ।

कई कबीर इन ल्याहि कये है पुरिब कूक अहिनापी ॥ कबीर प्रयागजी पृ० ८३



और प्रवेग विलसार् पड़वा है। तीव्रतम प्रथम की अभिव्यक्ति इन्हीं प्रतीकों के द्वारा की जा सकती है। उक्त पसदू लिखते हैं<sup>१</sup>—

अम्मा मेरा विक्र लगा मुझसे रहा न आय।  
मुझसे रहा न आय बिना साहित्य को देखे ॥  
जान उसवदुक करीं लगे साहित्य के देखे।  
मुझसे मया है रोग जायगा जीव हमारा ॥  
वषा पही मिछे ओ प्रीतम म्यारा ॥ इत्यादि

इत उक्ति में कितनी मार्मिकता है, कितनी स्वामाबिकता है और कितनी स्वा-  
नुभूति है। सब हृदय पर हीचे चोड़ क्यती है। कहीं-कहीं पर तो ऐसी उक्तियाँ काम्यत्व  
और माधुरी की दृष्टि से इतनी अनुपम हैं कि अज्ञिवाच के मधुरतम शृंगारिक चित्रों  
से होकर लेती हुई विलसार् पड़ती हैं। उदाहरण के लिए हम छव दुसरी<sup>२</sup> साहब का  
निम्नलिखित उदाहरण दे सकते हैं—

प्यारी पिया पीर खली आधी रतियाँ।  
सोबत उमरके छठी सपने में कदा कहुँ बरनि पियतियाँ ॥  
बोली बन्द बदन पिय सटकै उमंग उमंग फटी छतियाँ।  
रोयत रैन बिन नहिं पिय में कूर फरम की बतियाँ।  
हुसारी देस ऐस बिन पिय के सोच सिन्धूँ किय बतियाँ ॥

यह पद विरह की एक परम मार्मिक और माबलमक स्थिति का चित्र है। ऐसे  
ही अवतरणों से उठों की विलक्षण रूपना शक्ति, उरत माधुर्या और अद्वितीय  
मीलितता का अष्टम कामाठ मिलता है। विचारी प्रियतमा प्रियतम के वियोग में  
म्याकुल है। दिन मर कितनी न कितनी प्रार अपनी विरह म्यपा को बरकियाँ देकर दिन  
में मुझाये रहती है किन्तु आधी रात में अमवेदना विरह को बगा देती है। फिर क्या  
है दोनों मिलकर विरहकी को बरकियाने लगती हैं। इन दोनों से व्यक्ति विरहकी की  
छतियाँ कितनी के हृदय से लगने के लिए तबफर ऐसी उमंग पड़ती हैं कि बोली बंद ही  
दूद जाते हैं। इससे अधिक वेदना की स्थिति और हो ही क्या सकती है। अमितारम  
उद्येय आदि विरह दशाओं की इसमें मार्मिक अभिव्यक्ति की ही गई है। प्रथम दग्धा  
मायिका का मधुर सौंदर्य भी विलस पड़ रहा है। इतनी मधुर और रगतमक इन्ते हुए  
मी कही पर बाधना की दुर्गम नहीं है। उठों के शृंगारिक चित्रों की पही सबसे बड़ी  
विशेषता है।

<sup>१</sup> पसदू साहब की बानी भाग १ पृ० १२

<sup>२</sup> अन्तबानी तीव्र भाग २ पृ० २२२

**साधना प्रधान रहस्यात्मक शैली**—सन्तों की रचनाओं का एक बहुत बड़ा भाग इस शैली में ही अभिव्यक्त हुआ है। इस शैली की भी सबसे प्रमुख विशेषता प्रतीकत्वकता ही है। प्रतीकत्वकता एक अतिरिक्त अर्थलगा बुद्धि का और सरलता इसके अन्य उल्लेखनीय गुण हैं। इसमें सर्वत्र एक प्रकार का बुद्धिमूलक समन्वय उल्लेख होता है। इस समन्वय की योजना अचिन्तित प्रतीकों के सहारे की गई है। इस कोटि की शैली में साधनात्मक रहस्यात्मक शैली के अंतर्गत निर्दिष्ट प्रथम च प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

- (१) सांकेतिक प्रतीक
- (२) पारिभाषिक प्रतीक
- (३) संवयामूलक प्रतीक
- (४) रूपक्यात्मक प्रतीक
- (५) विरोधमूलक प्रतीक

**सांकेतिक प्रतीक**—यह प्रतीक अचिन्तित साधनात्मक है। इनका चरित्र किन्हीं उच्च विचार के साध्य के रूप में ही जाती है। उदाहरण के लिए हम कबीर की 'गगन मंडल में झोंका झुँझा'—सायक सागी से उचलत है। यहाँ पर लहरार के लिए गगन मंडल और झरझर के लिए झोंके झुँझा की चरित्रा की गई है। गगन मंडल की चरित्रा संतो के साध्य सिद्धांत—बा विह सा मसा—बान—यान सिद्धांत पर आधारित है। जिस प्रकार विह का अर्थ भाग लहरार होता है उसी प्रकार झरझर का अर्थभाग साधना होता है। विचार और उच्च दोनों के ही समान धर्म हैं। इस साधनात्मक साध्य के आधार पर ही इस प्रतीक की चरित्रा की गई है। इसी प्रकार और कुर्र की चरित्रा भी साधनात्मक साध्य पर ही आधारित है। इस साधनात्मक साध्य की चरित्रा साध्य सांकेतिक होती है इसलिये इनके उच्च अर्थ के प्रतीकों का सांकेतिक प्रतीक कहा है। इसी का साधनात्मक प्रतीक भी कहा जा सकता है किन्तु यह नाम अति संशुभित है। अभी अभी इन प्रतीकों का चरित्रा साधनात्मक साध्य पर ही आधारित नहीं है धर्म साध्य नहीं रहा इसलिये ही सांकेतिक प्रतीक मान ही अति साधनात्मकता है। इस अर्थ के प्रतीकों की संतो का एक मान्य परंपरा सिद्ध थी किन्तु प्रमुख साधनात्मक सिद्ध और साध्य य।

**पारिभाषिक प्रतीक**—सन्तों की धारियों में बहुत से पारिभाषिक प्रतीक भी मिलते हैं। साध्य भाग अनेक साधनात्मक और सिद्धांतों के साधनात्मक साध्य का सिद्ध सिद्ध वे। प्रमुख साधनात्मक और सिद्धांतों के साध्य साधनात्मक उच्च हुआ गया है। ये पारिभाषिक उच्च अचिन्तित साधनात्मक प्रतीकों के रूप में चरित्रा सिद्ध होते हैं। संतो की धारियों

में इन साधनाओं और विद्याओं से आये हुए अनेक पारिभाषिक प्रतीक उपलब्ध होते हैं। इनमें प्रमुखतः अक्षरों का अर्थ और नाय प्रतीकों की है। उदाहरण के लिए हम ईगला, विंगला नादियों के लिए प्रयुक्त गंगा यमुना के प्रतीक से उचित हैं। ये प्रतीक संतों को नापर्ययी इत्युक्त साधना से मिलते थे। इत्युक्त प्रतीका में इन प्रतीकों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। उसमें लिखा है कि—इहा मगपती गंगा, विंगला यमुना गदी है—सन्तों की बानियों में गंगा यमुना के प्रतीकों का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) उन्नी गंगा यमुन मिलाने<sup>१</sup> ।

(ख) गंगा यमुन मिलि किलर वाह<sup>२</sup> ।

अथ उरु मुरति निरति चन्द्र सूर्य आदि चक्रों इसी ढंग के प्रतीक संतों की बानियों में दूँके का उचित है ।

संख्यावाचक प्रतीक—सन्तों ने बहुत से संख्यावाचक पारिभाषिक प्रतीकों का प्रयोग भी किया है। अनेक सिद्धान्त और साधना में कुछ निश्चित संख्या में कुछ निश्चित बातें मान्य होती हैं। इस प्रकार की निश्चित संख्याओं का प्रयोग भी सन्तों ने प्रतीक रूप में किया है। उदाहरण के लिए हम सन्त कबीर की निम्नलिखित शाली से उचित हैं—

चौंसठ शीया जोई करि बीरह बंदा माहिं ।<sup>३</sup>

वेहि पर कि को खानबो वेहि पर गाखिन्द नाहिं ॥

यहाँ पर चौंसठ शीयों का चौंसठ ब्याजों के प्रतीक के रूप में और बीरह बंदाओं का बीरह बियाजों के प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है ।

रूपकारमक प्रतीक—सन्तों में हमें बहुत से रूपाकारमक प्रतीक भी मिलते हैं। ऐसे प्रतीक रूपाकार के माध्यम से प्रकट किये जाते हैं। उदाहरण के लिए हम सन्त पतञ्जल<sup>४</sup> का शोधी का रूपकारमक प्रयोग से उचित हैं ।

पुण्यिय फिर मर सामगा धादर खीरि धोय ।

धादर खीरि धोय मिस ई बहुत सगानी ॥

<sup>१</sup> कबीर प्रीत्यवली—२० ३०९

<sup>२</sup> गुलाब साहब की बानी—२० ३९

<sup>३</sup> कबीर प्रीत्यवली पृ० ९

<sup>४</sup> पञ्च साहब की बानी भाग १ पृ० ३

धरती पर ज्ञान के लिए धारा का और शरीर के लिए आदर का प्रतीक चिह्नित किया गया है। विन्दु इसकी अभिव्यक्ति स्वरूप के माध्यम से हुई है। इधर-तहाँ हम स्मृत्यात्मक प्रतीक मानते हैं।

**विरोधमूलक प्रतीक**—उन्तों की उलटधानियों में अक्षिपत्त विरोध मूलक प्रतीकों का ही प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए हम कबीर<sup>१</sup> की निम्न-लिखित प्रसिद्ध शाली ले सकते हैं—

नदियाँ उल फोयना भर मनुन्दर झागी भाग।

मँछी मग्या पढ़ गई देग करिया नाग ॥

इस शाली में कबीर ने समुद्र को प्रसन्न, भाग का विरुद्ध रूप, नदियों का कुपवृत्तियों का और मछली का आतना का प्रतीक चिह्नित किया है।

**अभिव्यक्तिमूलक समस्तार प्रधान रहस्यात्मक शैली**—उन्तों का अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद इस शैली में दिखता है। इस शैली की प्रथम प्रमुख विशेषता अभिव्यक्तिमूलक समस्तारवाद है। यह समस्तार बुद्धिमूलक शैली है। इस शैली के भी दो उदाहरण दिए जा सकते हैं—१—उलटधानियों की, २—अलपत्र अभिव्यक्ति प्रधान शैली।

**उलटधानियों की शैली**—उन्तों ने अपने आध्यात्मिक सिद्धांतों की अभिव्यक्ति इसी शैली में की है। इस शैली की परम्परा बहुत प्राचीन है। श्रुति<sup>२</sup> और स्मृतियों<sup>३</sup> तक में इस शैली में लिखी गई बहुत-सी उद्धरणें मिलती हैं। अग्नि का वर्णन करते हुए महा मे एक रूपक पर लिखा<sup>४</sup> है—एक आदि में अन्तनिहित अग्नि का बीज जानता है पुत्र क्षत्र मो यह इत्ये हाथ अन्तों माताओं का बन देन है। इसी ढंग का एक दूसरा वर्णन इस प्रकार है—अग्नि भू देवों का पुत्र उत्पन्न होता ही गया।<sup>५</sup> उन निषदों में भी बहुत से रूपों पर इस शैली का आभय प्रिया गया है<sup>६</sup>—

आमीनो दूर भजति गयोना यति मरुत

वेदजति समजति वददूरतदन्तिके<sup>७</sup>

<sup>१</sup> कबीर प्रसन्न १२

<sup>२</sup> अग्नेर १।१४ १।१२२।३, १।१२२।२ १।१२, १।१४

<sup>३</sup> अग्नेर १।११४, १।१।१०

<sup>४</sup> अग्नेर मंजिता प्रथम मत्तख १२२। मूक

<sup>५</sup> अग्नेर १।१४

<sup>६</sup> ईशावास्यनिबन्ध २।१०

<sup>७</sup> ईशावास्यनिबन्ध ४।२

आदि उक्तियाँ मरी पकी हैं। वैदिक साहित्य की इस अभिव्यक्ति शैली की परम्परा को, योका हेर फेर के साथ जीवित रखने का प्रयास वाचिकों, सिद्धों और नाचों ने किया। इन तीनों साधना पद्धतियों में हमें उलटवासी शैली का प्रयोग मिलता है। तथा वाचिक सिद्धों की—बलाद विद्यालय गीवा बाँके—‘असरिर कोर्द शरीरहि लुका’<sup>१</sup> जैसे कवन तथा ‘बीबकिन’ बनरति मूल<sup>२</sup> बिन बिरला’ जैसी गोरख की पंक्तियाँ इतना प्रत्यक्ष प्रमाण है। उक्तों ने अपनी इस पूर्ववर्ती परम्परा का ही पोषण किया। उनके उलटवाचियों का मनोयोग पूर्ण अभ्ययन करने पर उनके तीन प्रकार दिखलाई पड़ते हैं।

- १—अलंकारप्रधान उलटवाचियाँ।
- २—मतीअभ्ययन उलटवाचियाँ।
- ३—अद्भुत रसप्रधान उलटवाचियाँ।

अलंकारप्रधान उलटवाचियाँ—उलटवाचियाँ प्रायः सभी विरोधमूलक होती हैं। विरोधमूलकता ही उनमें अलंकार की प्रविष्टि करती है। इस विरोधमूलक अलंकार के विभावक प्रायः विरोधमूलक अलंकार होते हैं। उक्तों की उलटवाचियाँ अविचार विरोधमूलक अलंकारिक अलंकार विधिष्ठ ही हैं। कुछ अलंकारिक उलटवाचियाँ इस प्रकार हैं—

विषमालंकार प्रधान उलटवासी—

उस्ता कुँआ गगन में विसमें अरै चिरग

विभावनालंकार प्रधान उलटवासी —

विममें अरै चिरग विना रोमान बिन रावी

विश्लेषोद्धित और विरोध का संकर—

निकसे एक आभास चिरग की ज्योति माही।

---

१ अर्थात् पृ० ३३  
 २ शोहाकोष पृ० ३२  
 ३ गोरप्रशास्त्री संग्रह पृ० ३२  
 ४ वही  
 ५ पत्रदू साहच की बानी भाग १ पृ० ६१  
 ६ वही  
 ७ वही

**अधिक अलंकार प्रधान उलटवासी<sup>१</sup>—**

जेति सर पड़ा न दूषवा मंगल मलि मलि नहाय ।

देषल वृद्धा फलम मूं पंथि तिमार्डे ॥

इसी प्रकार अन्य उलटवासीयों में भी खात्र काल पर विरावमूलक अलंकारी का चमत्कार ही मिलेगा ।

**प्रतीकमूलक उलटवासीयों<sup>२</sup>—**उत्तों की अधिनाय उलटवासीयों प्रतीक-मूलक हैं । उदाहरण के लिए उंड मुन्दरदाव<sup>३</sup> की निम्नलिखित उलटवासी से उलट है ।

कुंडर कुं कीये गिलिथिठी सिद्धि गाय अपान स्वास ।

मछरी अमि माहिं मुय पायो जल में यदूत हूरी पहाल ॥

यहाँ पर कुंडर मन का प्रतीक है कीये मुक्तिरुतों कीये का प्रतीक है । इसी प्रकार सिद्धि ज्ञान का और स्वास प्रेम का प्रतीक है । मछरी आत्मा के प्रतीक रूप में ब्रह्मिष्ठ लयी गई है । अमि विरहाभि की वाक्य है । अत्र बाधना के लिए प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार की उलटों प्रतीकमूलक उलटवासीयों उत्तों बानियों में मिलती हैं ।

**अद्वैत रस प्रधान उलटवासी<sup>४</sup>—**उत्तों की उलटवासी ऐसी विभिन्न ऐसी में अधिम्यक्त हुई हैं कि उनका अरमुद रस का वा आमास 'विना' है अत्रु प पूषणा सन्त नही हो पाती । उदाहरण के लिए हम कबीर<sup>५</sup> की निम्न लिखित उलटवासी से उलट है—

एमा अद्भुत मेर गुरि कथ्या में एथा अमने ।

मूमा हगतो मी सरे कोड विना पेपे ॥

मूमा पैग योपि मे सार मापणि पाई ।

जलनि मूमे मापणि गिली यदू अचिरज माई ॥

पीनी परबन उगण्या से एगरी पाई ।

मुगी मिनरी मूं लये मान पांरी होई ॥

गुरदी कैंये यदुननि यदादूष टारै ।

एमा नरन गुंगी भया मग्दुलद मार ॥

भान गुग्या बन बाध में ममा मर मारै ।

कैं यकार तादि गुग कैंये जो या पदनि विचार ॥

<sup>१</sup> कबीर प्रणवली पृ. १७ ।

<sup>२</sup> गुरतरिजाग पृ० ८७ ।

<sup>३</sup> कबीर प्रणवली पृ० १११ ।

संख्याभाषा और संत लोग—संख्याभाषा से संत लोगो का पक्ष संबंध है। अतः बोझ का बिचार हम उस पर भी कर लेना चाहते हैं। उनके नाम स्वप्न और अर्थ के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। विद्वानों का एक वर्ग संख्या नाम को मुख्य मानता है और दूसरा संज्ञा अभिधान देने के पक्ष में है। प्रथम वर्ग के विद्वानों में महाप्रज्ञाभाषाय इरपठार<sup>१</sup> शास्त्री और डा० विनयतोष<sup>२</sup> महाशार्य विशेष प्रसिद्ध हैं। दूसरी श्रेणी के विद्वानों में विपुलेश्वर<sup>३</sup> शास्त्री प्रबोधचक्र<sup>४</sup> बाग्वी और एस० एन० दास<sup>५</sup> गुप्ता प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों में अर्थ-संबंधी मतभेद भी है। प्रथम-वर्ग के विद्वान् इसका अर्थ आलोचनार्थी अर्थात् संख्या के सदृश द्वयवक भाषा लेते हैं। दूसरी श्रेणी के विद्वान् ठठका अर्थ अभिसंधिवा अभिप्राययुक्त भाषा लेते हैं। कुछ विद्वान् उठे हिन्दी और अपभ्रंश के संविधान की भाषा मानते हैं और कुछ उठे बिहार और बंगाल के संव्यवस्था की अभिव्यक्ति रीति को प्ति करते हैं। इस शब्द का प्रयोग हमें सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य में मिलाता है। उसमें पुंडरीक नामक ग्रंथ में इसके महत्त्व का विशेषरूप प्रतिपादन किया गया है। बौद्धों के प्रमाचों से सिद्धों ने भी इसका प्रयोग किया है। सिद्ध<sup>६</sup> लोग अपनी भाषा को संख्या भाषा कहते थे। संख्या भाषा से उनका अभिप्राय सांकेतिक और पारिभाषिक भाषा से था<sup>७</sup>।

इस शब्द के उदय और विकास के संबंध में मेरी अपनी धारणा यह है। मेरी समझ में संधि शब्द से संख्या शब्द बना है। संधि शब्द का अर्थ अमर कोष के अनुसार श्लेष वा चिह्न भी होता है। बौद्धों में संधि<sup>८</sup> के इसी अर्थ के आधार पर ही अपनी चिह्नित पारिभाषिक भाषा के लिए संख्या भाषा का अभिधान दिया था। संख्या का ही पिंगककर आगे संज्ञा हो गया। सिद्धों ने इसी संज्ञा का ही प्रयोग किया है।

<sup>१</sup> हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा।

<sup>२</sup> बुद्धि संसारेतिम विनयतोष महाशार्य पृ० ३५।

<sup>३</sup> विपुलेश्वर शास्त्री इतिवच द्विस्तोतीक कवयत्री १३२८ सं० ३ अंक १ पृ० २३३।

<sup>४</sup> स्वरीजह्न संज्ञाज लेखक प्रबोधचक्र बाग्वी पृ० ३०-३३।

<sup>५</sup> चौधमन्तोर रिबीजस कवयत्री पृ० ७८।

<sup>६</sup> हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृ० ३३।

<sup>७</sup> वही

<sup>८</sup> सदर्थ पुंडरीक ३।३।३०

<sup>९</sup> बौद्धागम और बोद्धा पृ० ८ पर बिल्गा की उक्ति हेतु।

<sup>१०</sup> इतिव स्वरीज इव संज्ञाज डा० प्रबोधचक्र बाग्वी पृ० ३०-३३

<sup>११</sup> अमरकोष

वहाँ तक संतों का संबंध है उन्होंने अपनी माया के लिए कहीं पर भी अपना भाषा का प्रयोग नहीं किया है किन्तु परम्परागत रूप से वे उसके प्रभावित अवस्था हुए थे। शिदों और नाथों से उनका सीधा संबंध था। संघ्याभाषा उन्हें उन्हीं से विराएत रूप में मिली थी। संत लोग नाथों और शिदों की भाषा से बहुत अधिक प्रभावित थे। कहीं-कहीं पर तो उन्होंने उनके वाक्य के वाक्य यों क र्यों ग्रहण कर लिये हैं उदाहरण रूप में हम निम्नलिखित अवतरण उद्धृत कर सकते हैं—

बलद बियायिल गिया योम्क ।<sup>१</sup>  
 पटा दुहियेँ तिन साँक ॥  
 बलद बियायिल गिया योम्क ।  
 बधय दुई सीनों साँक ॥<sup>१</sup>

× × ×

यह मन सखी यह मन सीप ।  
 यह मन पाँप सखीयें स्र जीप ॥  
 यह मन ही उनमन रई ।<sup>२</sup>  
 सो तीन लोक की याता रई ॥

बाबरांशों और शब्दों की ता गणना ही नहीं की जा सकती। लगभग ५० शीघरी शब्द और बाबरांश संतों ने शिदों और नाथों से ही लिये हैं किन्तु उन्होंने उनका प्रयोग करने ढंग पर ही किया है।

संतों की भाषा का स्वरूप—शिदों और नाथों की संघ्या भाषा से प्रभावित होते हुए भी संतों की भाषा अपने अलग अस्तित्व रखती है। उसकी अपनी कुछ अलग विशेषताएँ हैं इसीलिए हम उस संघ्याभाषा का अभिधान नहीं दे सकते। मैं संतों की भाषा का संयुक्त ही भाषा का मान से पुष्पारना अपि उक्त उनमता हूँ। इसके कई कारण हैं—

१—उनकी भाषा में उस समय की समस्त भाषाओं, विभाषाओं और बानियों का मयुर मिश्रण मिश्रा है।

२—संतों ने अपनी भाषा में प्रेक्षणीयता को विचार महार दिया है व्यापकदिक और साहित्यिक शुद्ध करने का काम।

<sup>१</sup> बर्वाण १३ ।

<sup>२</sup> बर्वाण प्रस्तावकी ५० ११३

<sup>३</sup> गो० बा० सं० ५० १८ और संघ बर्वाण ५० ८२



इन दोनों बातों पर हम कुछ अधिक प्रकाश डालना चाहते हैं। क्योंकि कहीं भी भाषा की वही वा प्रत्यक्ष विशेषताएँ हैं। उक्त लोग स्वभाव से ही कृष्ण और सुमनस्क थे। एक स्थान पर पर बनाकर रहना उन्हें पसंद न था। देश-देशान्तर में भ्रमण करते हुए अस्वस्थि करना और भाषाप्रसन्न मानवों को उपदेश देना ही उनका लक्ष्य था। उपदेश देने के लिए वह बड़ा आत्परयक होता है कि देश और काल के अनुसार भाषा का प्रयोग किया जाय। ठीकी उपदेश प्रमाणशाली भी होते हैं। उक्त लोग मनोविज्ञान के इस रूप से पूर्णतया परिचित थे। उन्होंने अभिन्न देश, काल और पात्रानुक्रम ही भाषा का प्रयोग किया है। पक्षी करण है कि एक और तो उच्चैः भाषा में हमें अर्थात्, फारसी और संस्कृत आदि के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं और कृष्ण ब्रह्म, अरबी शब्दपुरिया, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी, महाराष्ट्री बंगाली आदि भाषाओं और बोधियों की मधुमयी मकर मिलाती है। अरबी भाषा के शब्द, गाफिल, कर्क, कालिक, इरक, मूर आदि शब्दों शब्द संतो ने प्रयुक्त किये थे। फारसी शब्द तो अरबी से भी अधिक प्रयुक्त मिलते हैं कुमार, मकर, नीलक, रोमा ममाक आदि। फारसी शब्द ही हैं। वहीं कहीं पर तो उन्होंने फारसी के किरा कर्तों का प्रयोग करके अपनी भाषा को 'शुद्ध फारसी' तक बना दिया है। जैसे 'दाह' का निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

हकक हाम्निह मूर कीदम फरारे मकसूर ।  
दीवारें यार अन्नाह आवम मौजूरे मौजूह ॥

इसी प्रकार कुछ संतो पर हमें संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव दिखलाई पकता है। उदाहरण के लिए हम सुन्दरदास<sup>१</sup> का निम्नलिखित छन्द ले सकते हैं :—

ब्रह्म निरीह नियमय निर्गुन नित्य निरंजन और न मासै ।  
ब्रह्म अखंडित है अथ उरप बाहिर भीतर ब्रह्म प्रकासे ॥  
ब्रह्महि सुन्दरमस्थूल जहाँ लगी ब्रह्महि साहिब ब्रह्महि दासे ।  
सुन्दर और कछू मय जानहु ब्रह्महि देखत ब्रह्म तमासै ॥

इन विविध साहित्यिक भाषाओं के मिश्रण का अतिरिक्त उनकी पानियों में हमें पंजाबी, सिन्धी, गुजराती आदि प्राचीन भाषाओं की सुरा भी दिखाई पकती है। प्रत्येक का एक एक उदाहरण दे देना अनुपयुक्त न होगा।

पंजाबी का उदाहरण<sup>२</sup>—

आप वै मकरण आप, मिरपर भरि पाँव ।  
जानी मैंका जिन्द अमाडे ।  
तू रवि दा राप वै सतगुरु आप ॥

<sup>१</sup> दाह वाली भाग १ पृ० ६० ।

<sup>२</sup> सुन्दर विद्यालय पृ० १२२ ।

<sup>३</sup> दाह वाली भाग २ पृ० १४

इत्या उत्यां जित्यां कित्या हींजीया सी नाल बे ।  
 मीया मेंडा आय अमाइ ।  
 तू सालों मिरलालये मन्गणा आय ॥

### सिन्धी का उदाहरण<sup>१</sup>—

हलु धर्मा जो लालर, सोग्य मय मालूम र ।  
 ममें ग्यामा मर्म पर अला ममें लागी बाहिर ॥  
 ममें मुर मचु यियो अला कहिं दरि फरिया दाद र ।  
 विरु फमाई मू परि अला ममें पर बाहिर ॥  
 सीगू कर क्याय जियंअला इयं दादू ने हियावर ॥

### गुजराती का उदाहरण<sup>२</sup>—

माहर र बाहला न फान रिदे जोया न हँ ध्यान धरूँ  
 भाबुल थाय प्राण माहर फोन फनी पर करूँ ॥  
 मौभरय आरं र बाहला पेहला एहीं जोइ ठरूँ ।  
 साथी जो मार्ये घडनि पेही सीर पार तरूँ ॥  
 पीप पाग दिन दुहला जो पडा घरमां मों कम मरूँ ।  
 दादू रजन हरि गुण गातां पूरख म्यामी वे यरूँ ॥

इसी प्रकार उनही बानियाँ में हमने मराठी, राजस्थानी आदि अन्य प्रांतीय भाषाओं का सामंजस्य मिलता है। उद् और हिन्दी के विभिन्न रूपों की भाँती कविद सन्तो की बानियाँ प्रकट ही हैं। उदाहरण रूप में हम कबीर<sup>३</sup> कादब की निम्नलिखित गजब से उद्धृत हैं—

हमन हँ इरु मम्माना हमन पे होगियाये क्या ।  
 रहे आजाद या जग में हमन दुनिया म याये क्या ॥  
 जो विदहे हँ पियार म भयना दर यदर छिन ।  
 हमाय पार हँ हममें हमन का इतजाये क्या ॥  
 एलक मय नाम अपन को यहन पर मिर पत्रकता हँ ।  
 हमन गुरु नाम माया हँ हमन दुनिया म पाये क्या ॥

<sup>१</sup> दादू बानी भाग २ पृ २३ ।

<sup>२</sup> दादू बानी भाग २ पृ २३ ।

<sup>३</sup> कबीर कादब की सरताही भाग ३ पृ ११ ।

हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक विभागाएँ सब, सबकी और लकी बोली हैं। उन्हीं की बानियों में इन सबका प्रभाव दिखता है किन्तु प्रधान मन्त्रिणी लकी बोली की ही है। उनकी अभिव्यक्ति उच्चैः लकी बोली के आदि रूप में ही लिखी गई हैं। यहाँ पर तीनों के उदाहरण दे देना अनुपयुक्त न होगा।

### जगत का उदाहरण<sup>१</sup>—

जगत में भाव के विसारयौ हैं जगतपति  
जगत कियो है सोइ जगत मरतु है।  
वेरे निसि दिन चिंता औरहि परी है भाइ—इत्यादि

### अमयी का उदाहरण<sup>२</sup>—

अरे मन समुक्ति करु पहिचान।  
कीर्ति अहसि कहाँ हैं भावसि काहे मर्म मुलान।  
सुधि समारु विचार करि है ब्रह्म पाविल ज्ञान ॥  
नाथ यहि दुइ बारि दिन का अफल नहिं अस्थान।  
लोक गढ़ यहु कोट काय फठिन माया धान ॥

### लकीबोली का उदाहरण<sup>३</sup>—

कोई जाति न पूछे हरि को भरी सो उँचा है।  
कोटि कुलीन होई ब्रह्ममम सो भी बनसे नीचा है ॥

उन्हीं की बानियों में मोक्ष पुरिषा और वैधित आदि का भी माधुर्य मिलता है।  
बिसे गुणात्<sup>४</sup> कादव की निम्नलिखित उक्ति—

सागसि नेह हमारी पिया मोर।  
पुनि-पुनि कसियाँ सेत्र विद्यापीं  
करीं में मंगलवार  
एकरी परी पिया नहिं अरुसँ  
होइला मोहिं बिरखर

<sup>१</sup> सप्तशती संग्रह भाग २ पृ० १००

<sup>२</sup> सप्तशती संग्रह भाग २ पृ० १२१

<sup>३</sup> ब्रह्म सादर भाग २ पृ० ५९

<sup>४</sup> गुणात् कादव की बाणी पृ०

छाठी आम रैन दिन जोहीं  
नकन हृदय भिसार  
दीन लोकरु के साहब अपने  
फरलहिं मोर लिलार ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि छन्दों की बानियाँ छन्दन प्रकार के व्यंजनों से भरे हुए शाल के लच्छे हैं। इतना मात्र हुए भी उनमें बिना एक मात्र का शुद्ध मापुर्ण नहीं मिल सकता। ये परस्पर इतना अधिक निम्न-सुनी हैं कि उनको कभी-कभी अलग करना भी कठिन हो जाता है। इसीलिए हमने उस सपुनरी माया कहा है।

छन्दों की माया का सधुक्कड़ी भाग रहने का दूसरा कारण उसकी व्यापक और साहित्यिक रूपों के प्रति लक्ष्यता है। लच्छे साग विद्वों की परम्परा के कवि थे। वे साग उद्देश्य के लिए अत्यन्त बर्ण स्वर लोच दूर का शीर्ष, दीप का दृष्ट करना आदि वैध मानते थे। विद्वों के इस आदेश की द्वाया छन्दों की माया पर भी दिगारि देनी है। छन्दों की माया इतनी विकल्प और महत्त्वपूर्ण है कि उसका स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त होना चाहिए। यहाँ पर हम उसके शब्दों के विचारों का थोड़ा दिग्दर्शन क्याकर यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि छन्दों की माया लोकमाया के अधिक लचीली थी साहित्यिक माया के कम। उस उद्देश्ये अरनी सधुक्कड़ी शक्ति से प्रेरित होकर अरनी इन्द्रानुरूप बानि बिया है। बान्यप में माया उनकी बरबर्दिनी है। वह माया के दास नहीं है।

उन्होंने अरने ढंग पर शब्द गढ़ भी ये उदाहरण के लिए हम गुणाल साहब का अबादी<sup>१</sup> शब्द ले लकन है। बाट शब्द से उद्धान अबादी शब्द बनाकर उसका अर्थ बुराह पर बचनेबाना बिया है इसी प्रकार उन्होंने अर भी अनेक नय शब्द गढ़ थे।

अब हम यहाँ पर थोड़ा-सा संकेत उक्त शब्दों के विचारों का भी कर देना चाहते हैं उनके शब्दों के प्रमुख विचार इस प्रकार दिगारि पकड़ हैं—

ह्रस्व स्वर षण्ठी का दीर्घत्व

एान<sup>२</sup> > सुकर्ण

अन्तर्निहित

मनाह<sup>३</sup> > मंद

अप्रागम

अतनान<sup>४</sup> > शान

<sup>१</sup> गुणाल साहब की बानी १०

<sup>२</sup> भीगा साहब की बानी १० २२

<sup>३</sup> बबोर प्रणयकी १० ८८

<sup>४</sup> बबोर प्रणयकी १० १३

मध्यम स्वर का लोप

अ<sup>१</sup> > अर

अधुति

रज्जा > राज्जा<sup>२</sup>

स्वर विपर्यय

वेगुन > विगुन<sup>३</sup>

मध्य व्यञ्जन लोप

असस > असस<sup>४</sup>

व्यञ्जन वर्णों का सपोपरव—

परगाठ<sup>५</sup> > पघाठ

न का ण में परिवर्तन—

नीमल<sup>६</sup> > नीमल

श का स में परिवर्तन—

सिखर<sup>७</sup> > सिलखर

य का ल में परिवर्तन—

सुक्ति<sup>८</sup> > सुक्ति

क्ष का प में परिवर्तन—

मिप<sup>९</sup> > पृष

अन्तिम य का ओ में परिवर्तन—

निमा<sup>१०</sup> > निमद

<sup>१</sup> कबीर प्रणवबली पृ० २०

<sup>२</sup> कबीर प्रणवबली पृ० ४३

<sup>३</sup> आरमदास की बानी भाग १ पृ० १६

<sup>४</sup> कबीर प्रणवबली पृ० १३

<sup>५</sup> पल्लव साहब की बानी भाग ३ पृ० ३०

<sup>६</sup> कबीर प्रणवबली पृ० २२

<sup>७</sup> कबीर प्रणवबली पृ० १३

<sup>८</sup> भीमा साहब की बानी पृ० २७

<sup>९</sup> कबीर प्रणवबली पृ० ८३

<sup>१०</sup> पल्लव साहब की बानी भाग ३ पृ० ३२

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों की भाषा बालबाल की भाषा से अधिक साम्य रखती है।

### छन्द

सन्तों की सभी बानियाँ छन्दबद्ध हैं। उनके छन्दों का अध्ययन करने पर अनुभव होता है कि उन्होंने जिस प्रकार काव्यशास्त्र का अनुमानरूप नहीं किया था। उठी प्रकार विंगलशास्त्र के नियमों की गृह्यताओं से बनने की चेष्टा की थी। उन्होंने अधिकतर उन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है जो उन्हें सरल और प्रभाषोत्पादक प्रतीत होते थे या जो उन्हें लोक-परम्परा से प्राप्त हुए थे।

सब साग लोक जीवन के अधिक समीप से। लोक संग से ही अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए विविध संगीतात्मक प्रकार चुनना रहता है। साध में बहुत से ऐसे काव्य प्रकार प्रचलित रहे हैं जो बहुत ही दृष्टियों से काव्यशास्त्रीय प्रकारों से होकर लेते रहे हैं। मरी अपनी पारवा यहाँ तक है कि बाप का सखा रहकर हमें लाक्षणिकों में ही मिलता है। युग में इन लाक्षणिकों का प्रकार और प्रतिष्ठा का भी अन्वेषण नहीं अधिक थी। इन सन्तों का साधकान्तरों और छन्दों का अनुमाना सामाजिक ही था। उनकी बानियों की अभिव्यक्ति अधिकतर साधारणतया से प्राप्त काव्य प्रकारों में है। यह काव्य प्रकार विरल प्रकार के छन्द हैं और कुछ केवल अभिव्यक्ति का संगीतात्मक प्रकार मात्र है। इनमें भी कुछ परम्परागत हैं और कुछ मौखिक। सन्तों में पाये बालबाल इस वर्ग के प्रसिद्ध छन्दों और काव्य प्रकार इस प्रकार हैं—छाया, लहर रमैनी, बाजनी, चीरसा, विहीरार, पावर दिहाना, बहुरा, बलि, बिरहुनी विमनीषी। इनमें भी सबसे अधिक मात्रातय कागी, लहर, रमैनी है। इन तीनों में भी सन्त साग लहर और कागी का स्थान प्रतिष्ठित मानत हैं। सन्त साधकों ने इनके मध्य की आरंभिक करते हुए लिया है कि 'बिद बानी कुँ के बन के लहर दे बिसे प्राप्त करना जिस विरल का ही नाम दे छिपु साग और लहर सुन्दर लहर के लहर दे बिनका सुन्दर उन सभी प्राणियों का लक्षण से प्राप्त हो जाता है।' सन्त साधक के इस कथन से प्रकट होता है कि कागी और लहर का संबंध की भाँति लहर काही मानत से अभिव्यक्ति प्रकार का छन्द विरल मात्र नहीं। यहाँ पर हम इन पर थोड़ा का विचार से विचार करेंगे।

<sup>1</sup> बर मुखादी बर जब दुग गू मरुति हार।

लहर मानि लहर मरुति सुग पीर लहर काग ३

साक्षी—उन्तों की अभिव्यंजन रचनाएँ कालियों में लिखी गई हैं। उच्चरी शब्द संस्कृत के साक्षी का अपभ्रंश रूप माना जाता है। इसका अर्थ उस काव्य विधान से लिया जाता है जिसमें किसी उन्त ने अपने साक्षात् अनुभव के बल पर प्राप्त किये हुए ज्ञान की प्रतिष्ठा की हो। उन्त लोग गठानुगतिक नहीं थे। उनका लक्ष्य स्वातन्त्र्य के लक्ष्ये जीवन उन्तों की उपलब्धि करना था। विविध प्रयोगों के लक्ष्ये जिन उन्तों की उपलब्धि उन्हें होती थी उन्हें वे साक्षी हृद में अभिव्यक्त कर देते थे। उन्त कबीर ने बीकान<sup>१</sup> में एक स्थल पर साक्षी शब्द की ऐसी ही व्याख्या की है—

साक्षी साक्षी म्यान की समुक्ति हेतु मन माँहि ।

जिन साक्षी संसार का मन्त्र छूट्य नाहि ॥

साक्षी की परम्परा के मूल स्रोत का कोई निश्चित पता नहीं पता जाया है। हमारी अपनी धारणा यह है कि इस प्रकार के काव्य विधान का प्रचार बुद्धिवादी और कृद्विरोधी उन्तों में निर्गुणियाँ उन्तों से पहले की था। इन उन्तों की रचनाएँ अभिव्यंजन मौखिक रूप से ही प्रचलित थीं उनको या तो लिपिबद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया था या समय के प्रवाह में पढ़कर वे स्वयमेव नष्ट हो गईं। फिर भी खोब करने पर प्राचीन इच्छासिद्धि प्रथियों में नामदेव की काली, भोगेश्वरी काली आदि दो चार ग्रन्थ उपलब्ध हो जाते हैं। ये ग्रन्थ स्पष्ट प्रमाणित करते हैं कि कालियों की परम्परा निर्गुणियाँ उन्तों से पूर्व ही प्रचलित हो चुकी थी। उन्तों अपने अनुकूल समझकर उन्तों ने उन्ते विशेष रूप से अपनाते की चेष्टा की थी।

कुछ लोग काली को दोहा का पर्यायवाची मानते हैं। और कुछ उन्ते दोहा का मूलतः अभिव्यंजन कहते हैं किन्तु वास्तव में न तो यह शब्द रूप में दोहा का ही पर्यायवाची है और न दोहा का ही मूलतः नाम है। कालियों का अभिव्यंजन करने पर पता चलता है कि उनके अन्तर्गत दोहा, चौपाई, सोरठे, छन्द आदि छन्दों की भी प्रतिष्ठा की गई है। इसके स्पष्ट प्रमाण है कि हम उन्ते केवल दोहा का ही पर्यायवाची नहीं मान सकते। काली का मूलतः नाम दोहा नहीं है यह बात टुलसी<sup>२</sup> के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है—

साक्षी समझी दोहा कहि फिहनी उपस्थान ।

भगति निरूपहि अपम कवि निंदहि भेद पुरान ॥

उन्तों की कालियों का अभिव्यंजन करने पर हमें उनमें कुछ निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं—

<sup>१</sup> कबीर बीकान हरक संस्करण पृ० ११४

<sup>२</sup> तुलसी संपावली—मृगीय संस्करण पृ० १११

१—इनमें अधिकतर दोहा, चौलाई, चोरटा आदि हैं। २ पंक्तियों एवं चार चरण वाले छन्दों का ही प्रयोग जाता है।

२—इसका बर्णविपर अधिकतर नैतिक और धार्मिक ज्ञान होता है।

३—इनमें लयबद्ध मयबद्ध की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है।

४—इसमें संगीतात्मकता कम अभिव्यक्ति प्रवेग अधिक पाया जाता है।

५—उपदेशों की प्रतिष्ठा सन्तों में अधिकतर इसी काव्य प्रकार में की है।

सात्वियों का प्रयोग सबसे अधिक सन्त कबीर ने किया है। उनके अतिरिक्त सन्त दादू, दरिया साहब (बिहारवासी), सन्त मुन्दरदास, मूलचदास, पल्लू साहब आदि सन्तों ने भी सात्वियों का प्रयोग किया है। सन्तों का सात्व्य प्रयोग का संबंध से एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि इस शब्द का प्रयोग बिना स्वारूप रूप में कबीर ने किया है उनका अर्थ सन्तों में नहीं मिलता है। कबीर का सात्व्य सात्व्य संकुचित छन्द होता गया है और कुछ दिनों बाद यह दादा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। दरिया साहब बिहारवासी ने इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। उनका दरिया सागर में दोहा चौलाई का स्थान पर सात्व्य चौलाई का प्रयोग मिलता है। इस अर्थ में सात्व्य दादा के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं सात्व्य का नामकरण बर्ण विपर से आचार पर किया गया है। वैदिक नियमों से उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। सात्व्य शब्द में अभिव्यक्ति का यह संक्षिप्त रूप है जिसमें सन्त लोग अपने प्रत्यक्ष अनुभव तथा लक्ष्यों की प्रतिष्ठा करते थे।

सुबद्ध—सन्तों का सुबद्ध प्रकृत काव्य रूप शब्द है। इसे कुछ लोग पद का पारोक्षिकी मानते हैं। आदि अर्थ में इन्हीं का छन्द कबीर शब्द का प्रयोग किया गया है। शब्द या पद परमेश कात्मक में बहुत प्रयुक्त है। जिसका अर्थ अर्थ अर्थ का भीगणुय हुआ हागा उही दिन से पद साहित्य की कठना भी प्रारम्भ हो गई होगी। गीतिबोध का दर्शन हमें अग्रदत्त से मिलता है—'कर्म देवाय दत्तिया विपन' काव्य सुबद्ध काव्य में गीत का रूप में ही लिया गया है। सुबद्ध का गीत गीतबद्ध एक तरह गीतिबोध है। पद साहित्य की मन्त्र उभमें भी टैरी का कर्ता है। उक्त बाद विचारित, उभरति आदि की पदार्थिता आता है। ये सात्व्य मनुष्या के विरुद्ध साक प्रकृत हैं। इनमें भी पदने कर्ता और कर्ता आता है। पद सन्तों के कर्ता पद का ही आचार सेवक सन्तों का शब्द साहित्य महा हुआ अन्त पकता है। पद साहित्य का प्रयोग साहित्य में था। उसका इन्हीं मन्त्र नाप दुनि हाय संकीर्ण ना साहित्य प्रकृत का मन्त्रों में मिलता है।

सन्तों के शब्द अधिकतर शब्द-सात्व्यियों में मिले गये हैं। यह शब्द-सात्व्यियों



संख्या में बहुत अधिक हैं। बहुत ही राग-रागनिर्वाण तो उनकी अपनी मीलिक उपाय हैं। सन्तों के पदों के प्रयुक्त की गई कुछ प्रसिद्ध राग-रागनिर्वाण निम्नलिखित हैं—

राग खोसठ<sup>१</sup> राग अरुणा<sup>२</sup> राग श्री वैशन्ती<sup>३</sup> राग मलार<sup>४</sup> राग रामकली<sup>५</sup> राग भनाभी<sup>६</sup>  
 राग केदाध<sup>७</sup> राग बिलावल<sup>८</sup> राग काञ्ची<sup>९</sup> राग बिहाग<sup>१०</sup> राग अम्बाल<sup>११</sup> राग  
 बिलास<sup>१२</sup> राग गौरी<sup>१३</sup> राग लारंग<sup>१४</sup> राग होरी<sup>१५</sup> राग मंगल<sup>१६</sup> राग देवतार<sup>१७</sup>  
 राग मालवी<sup>१८</sup> राग भरवा<sup>१९</sup> राग वैशमी<sup>२०</sup> राग ललित<sup>२१</sup> राग मैत्रे<sup>२२</sup> राग  
 मारु<sup>२३</sup> राग बलन्त<sup>२४</sup> राग अखाना<sup>२५</sup> आदि आदि। इन राग रागनिर्वाणों के प्रयोग

१ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ३८

२ वही पृ० ३३

३ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ४०

४ वही पृ० ४१

५ वही पृ० ४१

६ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ४२

७ वही पृ० ४३

८ वही पृ० ४३

९ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ४४

१० वही पृ० ४६

११ वही पृ० ४६

१२ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ४७

१३ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ५०

१४ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ५२

१५ वही पृ० ५३

१६ वही पृ० ५४

१७ अरुणास की बानी भाग १ पृ० ५६

१८ वही पृ० ५८

१९ वही पृ० ७०

२० हानू हवाळ की बानी भाग २ पृ० १०२

२१ हानू हवाळ की बानी भाग २ पृ० १०३।

२२ हानू हवाळ की बानी भाग २ पृ० १०४

२३ वही पृ० १३

२४ हानू हवाळ की बानी भाग २ पृ० १२६

२५ वही पृ० १७

से स्पष्ट प्रकट होता है कि संत लोग अपने शब्दों में गपता को विशय महत्त्व देते थे। इस गपता के कारण उनके शब्द और भी लाक्षणिक हो गये हैं।

सन्त लोग इन्द्र शास्त्र से विशय परिचित नहीं थे। मुन्दरदास आदि पन्नाप संतों को झाङ्कर अर्थात् संतों को सम्भवतः होन्वार लोक प्रचलित छन्दों के नामों के अतिरिक्त अन्य छन्दों के नाम भी नहीं जानते होंगे। इतना हाथ कुछ भी उन्होंने भरना बाणों की साहित्यिक पनाने की कामना से कुछ प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया था। उनके द्वारा प्रयुक्त किये गये कुछ छंदों के नाम इस प्रकार हैं—गुरदलिया अर्थात्, रेणुता, मूंगना, इंदर, मनहर, छनप, माइनी, बरषे, दाहा, चौगई आदि आदि। यह सभी छंद बहुत प्रचलित हैं। इनका प्रयोग लाक कवि भी करते रहे हैं। हो सकता है संतों का इनका ज्ञान लाक कवियों से ही प्राप्त हुआ है। संतों ने इन छंदों का प्रयोग भी सकलतापूर्वक नहीं किया है। उनमें स्थान-स्थान पर छन्द-भंग दास मिलता है। सब बातों का यह है कि उनका लक्ष निगल शायं में अपनी निपुणता दिखाना नहीं था। वे अपनी बाणों की अर्थिक से अर्थिक प्रभावशाली पनाना चाहते थे। उन्हें वहाँ वहाँ ऐसा अनुभव हुआ है कि छंदों का प्रयोग से उनकी पाण्डी प्रभावशाली बन जायगी वही पर उन्होंने छंदों का त्याग किया है।

रमिनी—रमिनी का प्रयोग हमें अतिरिक्त बगीर में ही मिलता है। रमिनी शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद हैं। संत विचार<sup>१</sup> द्वारा के मतानुसार रमिनी शब्द का स्तोत्र है और पहिल परशुयाम<sup>२</sup> मद्रुंती के अनुसार वह यमाप्य का अर्थान्तर रूप है। मैं इन दोनों ही मतों से सहमत नहीं हूँ क्योंकि दोनों ही अत्यन्त मानिक हैं। हमारी समझ में रमिनी लाक गीतों का एक भाग्य प्रकार है जिसका प्रयोग मानिक रूप से सम्भव नहीं हो सके भी था। कारण ने उस अर्थ अत्यन्तिक विचारों का अभिव्यक्ति के अनेक कारणों से ही अर्थान्तर की शक्त की थी। रमिनी शब्द की और निश्चित व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकता है। गरी समझ में अर्थान्तर के अर्थ के लिए रमिनी शब्द राम के अर्थ पर गढ़ किया गया होगा। संत लोग हिन्दू मुसलमान जैस मद्द का स्वीकार नहीं करते थे। और दोनों ही रमिनी शब्द का ही अर्थ प्रदान रूप में स्वीकार करते थे। मान दास<sup>३</sup> का न इन शब्द का अर्थान्तर अर्थान्तर किया है—

हिन्दू मुसलमान प्रदान रमिनी मरदी मागो।

<sup>१</sup> बगीर मद्रुंती की शीर्षक—विचार राम ५० १८१ १०

<sup>२</sup> बगीर मद्रुंती की शीर्षक ५० १११

<sup>३</sup> अर्थान्तर—अर्थान्तर प्र स अर्थान्तर ५० १११

# नवौं अध्याय

## उपसंहार

सन्त मत की संक्षिप्त रूपरेखा—

तत्कालीन युग पर विहंगम दृष्टि—सन्तों की स्वभावगत प्रेरणाएँ

संत मत का प्रामाणिकी मत है—यह विचारधारा मूलक अनुभव पर ठिकी हुआ है।

सन्त मत की पृष्ठभूमि पर विहंगम दृष्टि—

निर्गुणवादी मत है।

सन्त मत की आत्मवादिता और आधिष्ठिता—

सन्त मत का सद्भावराय—

सद्भाव ज्ञान—मक्ति—वैराग्य—और बाग का मिलन बिंदु—सन्तों की सद्भाव

अद्वैत भावना—सन्त मत की भावनात्मक पूजा विधि सन्त मत का मध्य

मार्गानुसरण—सत्याचारण

निष्कर्ष—

## संत मत की संक्षिप्त रूपरेखा

सन्त मत मध्ययुग की सबसे बड़ी देन है। इसका उदय आधुनिक और अप्रत्याशित नहीं था। तत्कालीन वातावरण में सन्त मत से अधिक सद्भाव और प्रेरणा पर मत का प्रवर्तन नहीं किया जा सकता था।

मध्ययुग राजनीतिक<sup>१</sup> दृष्टि से बचन सघा के परभावन और प्रसार का युग था। पहली ने राष्ट्रीय युद्ध से शर्म उठाकर अपनी वलवार के बल पर भारत को पंगु बनाकर अपने आपीन कर लिया था। तत्कालीन बचन शासक क्रूर धर्मोप और बर्बर हुंजरे थे। इनका लक्ष्य भारत में केवल राजनीतिक सघा का परभावन भर नहीं था। वे हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का मूलोपेदन भी करना चाहते थे। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति उन्होंने श्री लोकाकर की थी। वे वलवार के बल पर हिन्दुओं को मुतलमान बनने के लिए बाध्य करते थे। यदि कोई इस्लाम के स्वीकार करने में रती भर भी आशी कानी करता तो उसे दण्ड ही मृत्यु के बाद उगार दिया जाता था। हिन्दुओं की माँ बहनों की हाथ उगरी घालों के सामने ही बचत लूट ली जाती थी। और वे सुबान

<sup>१</sup> इसका सम्भाव्य विवेचन इसी ग्रंथ के प्रथम अध्याय में किया गया है।

मौ नहीं दिखा सकते थे। देव-देवताओं की मूर्तियों या छवियों के सामने पर  
 दक्षिण अमानित कर लोकी जाती देखते-देखते उनकी छाँटें पक गई थीं। राजनीति और  
 धर्म के माग सत्त्वही हुए हिन्दुओं के सामाजिक अद्विचार तक छीन लिये गए थे। वे  
 न तो अष्टा मोहन या अथवा य और न अष्ट ब्रह्मचर्यकार ही पारथ्य कर सकते थे। वे  
 यहाँ तक कि वे अन्न पर में तीन महीने से आपक का माशन भी नहीं रख सकते थे।  
 हिन्दुओं पर अष्टौ मीथरिषी मौ नहीं दो जाती थीं। उन राजनीतिक परिस्थितियों  
 के उपसम्भ्य हिन्दु जनता में पर निपट्या, पैराय और समुत्थागतता के प्रति प्रतिक्रिया  
 की भावना जाग्रत हो गई।

मत्स्यपुराण की धार्मिक स्थिति और भी गंभीर थी। हिन्दू धर्म पुराहितवाद के  
 पात्र से अपवित्रताओं, दिव्याचारों आदिवाङ्मयों एवं धार्मिक संघर्षों का अड्डा बन  
 गया। उभर दशन घुम में आपार्य लाग अस्ती-अस्ती बुद्धि की कलाकारी दिखाने  
 लगे हुए थे। आपना घुम और भी अद्विच विद्वान और बहुमुनि हो रहा था।  
 पाली विद्व लाग योगिक आपना के नाम पर और अनाचार पत्न रहे थे।

दश थी सामाजिक स्थिति मा अर्थ न थी हिन्दू समाज में सदाकाय कती  
 देवता के स्थान पर अनेक पुत्रप्राप्ति एवं अपवित्रताओं की सत्त्व-उद्धृति की पूजा  
 होने लगी थी। परन अनाथ हिन्दू समाज से भी अद्विच दूजिन था। उनमें अमिषाए,  
 बोधी और आनशाही आदि अस्ती पनाशान्य पर पहुँचे हुए थे।

उत्तरुक भीत्य परिस्थितियों से अथ और पपन्न अन्वय जनता प्राय के  
 निर पुहार रही थी। इत पुहार का मुनकर हिन्दू और मुक्तमान सब मिगकर एक  
 देता माग दूँने लग अिषय किती का भी विषय न हा और अिषयें आई भी दाय न  
 हो तथा साथ ही साथ सद्म अरम सामाजिक और अहिन मौ हा। उनक इत प्रभाव  
 के उपसम्भ्य ही अन्ध मत का प्रवर्तन हुआ।

अन्ध मत का विषयन करने से पूर्व हम एक बात पर विचार बन दे देना चाहते  
 हैं। यह-यह कि उभरा अन्धान बिधी पर संघ या अन्धराय के प्रभाव में नहीं दिना  
 जाना चाहिये। अन्ध मत आशय में सब प्रकार के आर्य, संघों और अन्धरायों से परे  
 हैं। उभरा अन्धना एक सत्त्वही और मीथिब कर है। परी बाल है कि इत मत में  
 हमें सर्व संवाद<sup>१</sup> पदादा<sup>२</sup> और आद-विवाद<sup>३</sup> व मिता विन्दो है।

अन्ध मत का समझने के लिए सर्वो को एक ही शब्दावय विद्वानाओं का भी

१ अथ मुत्स्यपुराण भाग १ पृ. १८१—अध्यायी ११  
 २ अथ मुत्स्यपुराण भाग १ पृ. १८१—अध्यायी १  
 ३ अथ मुत्स्यपुराण भाग १ पृ. १०८—अध्यायी १-७

## नवौं अध्याय

### उपसंहार

सन्त मत की संक्षिप्त रूप रेखा—

तत्कालीन युग पर विहंगम दृष्टि—उन्तों की स्वभावगत प्रेरणाएँ

संत मत साध्याही मत है—बह विचारधामूलक अनुभव पर टिका हुआ है।

सन्त मत की दृष्ट्युक्ति पर विहंगम दृष्टि—

निर्गुणवादी मत है।

सन्त मत की आत्मवादिता और आत्मिच्छता—

सन्त मत का लक्ष्योपदेश—

लक्ष्य ज्ञान—मक्ति—सैराम्य—और वाग का मिलन बिंदु—उन्तों की उच्च

आद्वैत भावना—सन्त मत की माहात्म्यक पूजा विधि सन्त मत का मूल

मार्गानुसरण—उत्पादक

निष्कर्ष—

### संत मत की मसिप्त रूपरेखा

सन्त मत मध्ययुग की सबसे बड़ी देन है। इसका उदय आधुनिक और आधुनिक नहीं था। तत्कालीन वातावरण में सन्त मत से अधिक उच्च और भेदरहित मत का प्रवर्तन नहीं किया जा सकता था।

मध्ययुग राजनीतिक<sup>१</sup> दृष्टि से बचन उच्छा क प्रस्थापन और प्रसार का युग था। पबनों में भारतीय धर्म से लाभ उठाकर अपनी लक्ष्यार के बल पर भारत को र्णग बना कर अपने आपीन कर लिया था। तत्कालीन बचन शासक और धर्म और धर्म के दुष्टों से। इनका लक्ष्य भारत में बचन राजनीतिक उच्छा का प्रस्थापन भर नहीं था। वे हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का मूलतत्वेदम भी करना चाहते थे। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति उन्होंने की लोचन की थी। ब लक्ष्यार के बल पर हिन्दुओं को मुठलमान बनने के लिए बाध्य करते थे। यदि कोई इस्लाम के स्वीकार करने में रची भर भी जाती धनी करता था उसे सुन्द ही मृत्यु के पात्र उगार दिया जाता था। हिन्दुओं की माँ बहनों की लाक डवरी आँसों के धानने ही बचन लूट ली जाती थी। और वे उवान

<sup>१</sup> इसका सम्भाव्य विवेचन इसी ग्रंथ के प्रथम अध्याय में किया गया है।

भी नहीं दिखा सकते थे। ऐसी-देवताओं की मूर्तियों का अपनी भावों के सामने पद दलित अथमानित कर लोकी जाती देखते देखते उनकी भावों में भी परिवर्तन आने लगा। राजनीति और धर्म के मार्ग में एक ही रूप हिन्दुओं के सामाजिक अर्थिक और नैतिक जीवन के लिए गये थे। वे न तो अष्टाशोचन या सन्तों के और न अष्टाशोचन की भावना को नहीं रख सकते थे। यहाँ तक कि वे अपने पर में ही नहीं देखते थे। उन राजनीतिक परिस्थितियों में अष्टाशोचन नैतिकता में भी नहीं देखते थे। उन राजनीतिक परिस्थितियों में अष्टाशोचन नैतिकता में भी नहीं देखते थे। उन राजनीतिक परिस्थितियों में अष्टाशोचन नैतिकता में भी नहीं देखते थे।

अष्टाशोचन की धार्मिक स्थिति और भी सोचनीय थी। हिन्दू धर्म पुरोहितवाद के प्रभाव से अर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक संघर्षों का अज्ञान बन गया था। उपर दृष्टान्त में अष्टाशोचन की अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है।

ऐसा ही सामाजिक स्थिति या अर्थिक नहीं थी हिन्दू समाज में अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है।

उपर्युक्त भीषण परिस्थितियों से अर्थ और धर्म का अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है।

अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है। अज्ञानता और भी अर्थिक स्थिति और अज्ञानता की दृष्टि में लग रहा है।

१ संन सुपायार भाग १ पृ० १८६—सागी १२  
 २ संन सुपायार भाग १ पृ० १८६—सागी ३  
 ३ संन सुपायार भाग १ पृ० १०८—पृष्ठ ६-७

ध्यान में रखना पड़ेगा। उक्त लोग स्वभाव से बुद्धिवादी और अतिमिथ महत्त्वा थे। पार्श्वपूर्व अंधविश्वास प्रचलन रुद्धियों के प्रति उनमें खरबनिष्ठ धारणा खरब निरोह करती रही है। उनका रुद्धिबिरोध श्रद्धा की सीमा तक पहुँच गया था। यही कारण है कि उन्होंने रुद्धियों के प्रवर्तक मुक्ता और पंडित दोनों का बहिष्कार किया है। कबीर ने लिखा है—

पंडित मुक्ता को खिल दिया।

छाँकि पहले हा कछू न लिया ॥ क० प्र० पृ० २७२

बिध बठोरठा से उन्होंने रुद्धियों का विरोध किया था उसी दृढ़ता से उन्होंने बुद्धिवादी एवं अनुमृत छत्य लंबों की भी स्थापना की थी। वे निती की बात को समीचीन करके थे जब उनमें बुद्धियाँ अनुभव की कछीटी पर लगी उठती थी। यही कारण है कि उनके द्वारा प्रवर्तित मत की समीचीनता या तो अनुमृत छत्य के रूप में अभिन्नक हुई है या बुद्धिवादिता की ठोस मूर्तिका पर विभी हुई है। संतो की स्वभावगत विशेषताओं में उनकी फलकता विशेष उल्लेखनीय है। वे फलक मुम फलक और मनमौजी सन्त थे। कबीर की निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए उनकी फलकता की कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई—

हम पर आप्ता आपना लिया मुपणा दाम।

अम पर आली हास का डे चली हमारे साथ ॥ क० प्र० पृ० ६७

उनकी फलकता में उनकी अभिव्यक्ति को निरामर और प्रवर्गपूर्ण तथा उनके मत को अत्यधिक लोचनित बना दिया है।

उक्त मत को समझने के पूर्व हमें संतो की साक्षात् प्रकृति का भी थोड़ी तरह समझ लेना पड़ेगा। हम बार-बार कह चुके हैं कि संत साग नीर-खोर विवेकी महत्त्वा थे। उनकी उक्त प्रकृति की ओर संकेत करने हुए दादू साहब ने लिखा है—

दादू साधू गुण गई भीगुण छडे पिचार।

मान सतेपर हम म्यूँ छाँड़ि नीर गदि मार ॥

—दादू यानी भाग १ पृ० १७७

मोड़ संत मोड़ निर्धानी नीर खीर पिपरन कर जानी।

संत कबीर<sup>१</sup> ने भी यही बात गुरु के कलक से प्रकट की है—

मार मंभई सूप ज्यों स्वागि पटक अम्यार।

<sup>१</sup> बही

<sup>२</sup> कबीर प्रवचनो ४ २७

इसी बात को दादू ने गाय के हृन्मन्त्र से व्यक्त किया है। उनका कहना है कि सन्धे छात्र को गाय और घर के वास्तविक रहस्य का समझकर गाय के दूध का पात्र बनने की कामना से उसके धींग, पूँछ और पद का परित्याग कर उसके धनों की छात्र ही पान लगाना चाहिए<sup>१</sup>। अपनी इस छायाही प्रकृति क कारण ही संतों ने अपने मन को धाररूप और दूसरे मनो को भ्रमभाल रूप करा है—

सन्त मया ही सार और मय जाल बसाए<sup>२</sup>।

यहाँ पर एक प्रश्न उठ खड़ा होता है, वह यह कि संत लोग चारे संपत्ती मात्र से उनका सधन केवल मित्र-मित्र दायानक और धार्मिक संप्रदायो, बादो एवं पदविषयो के धारभूत सिद्धांतो का संग्रह करना मात्र या या किसी मौलिक और ध्वनरिपय विचारधारा को प्रस्तुत करना। कुछ दिनों पूर्व तक इस प्रश्न का उत्तर संदिग्ध शब्दों में ही दिया जाता था किन्तु इनपुक्त विवेचना के परवापु हम निरिन्त रूप से यह कहते हैं कि सन्त मय एक ध्वनरिपय एवं मौलिक विचारधारा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सन्तों ने धन्य युग की समस्त प्रकृति, दायानिक, धार्मिक एवं सामाजिक विचारधाराओं के धारभूत तत्त्वों का प्रक्षुण किया था। किन्तु उन्होंने उस प्रतीत धानवी को धरनी प्रविभा के धींगे में टालकर तथा रुद्धक का तथाम् में तीव्रधर एक ध्वनरिपय और मौलिक रूप दे दिया है। यह ध्वनरिपय और मौलिक रूप ही सन्त मय के नाम से प्रसिद्ध है।

सन्त मन की सधध बड़ी विरूपता उसकी अनुभवभंगता है। सन्त लोग सधधे धरान्तेवध से। उन्होंने सधध का धन्यपय धरे बागबाल पर ही नहीं ध्यापारिध किया था। वे अनुभव की प्रयोगधारा में सदैव सधधर्षणो की ग्रीध किया करते थे। उनक मन में इन्ही सधधर्षणो का धनन किया गया है। यहाँ पर एक प्रश्न और उठ खध्या है वह यह कि जब प्रत्येक सन्त का सधध धरने धरन अनुभूत धरतो का धनन मान करता था तब सधधकी विचारधारा का एक ध्वनरिपय मात्र क रूप में कैध माना का सधधा है। धान्य में इस प्रधर क धीमूणक प्रश्न तकनूतक एवं अनुभवमूणक धनन के धार को न समझते क कारण ही उडा है। धनन क का सधधपय केवल सधध की कभीही धर कधधर किन बात हैं उनमें कन्तो भी पूण धरधरता नहीं धारी कथोकि तद के धन पर पुण लाग एध ही बात का धन्य सिद्ध करत है और दूसरे उधो बाध का धरधन सिद्ध करत है। किन्तु अनुभव धनन में इस प्रधर का धुनिवा नहीं दितारै

<sup>१</sup> गद बापु का नाम गदरे दूध रर कन्ती धार।

<sup>२</sup> गीत पूण पग कलिरे धरधन धान धार ३ सन्त मुधधगार पृ० ३८३

<sup>३</sup> सन्त बाबी र प्रध धान ३ पृ० ११०



पड़ती। प्रत्येक भाषक के अनुभूत सत्यलक्ष्य व्यवहारिक दृष्टि से वही निश्चलित-विक्षलित पर्ये किन्तु तात्त्विक दृष्टि से एक और अद्वैत रूप होते हैं। सत्य दातृ ने इसी सत्य का समर्पण करते हुए शिक्षा है—

जे पहुँचे से पूछिय तिनकी एकै बात ।

सब साधों का एक मत विषय के याहू वाट<sup>१</sup> ॥

सत्य मुन्दरदास ने भी बात का बोझ ही केर के साथ रखने की चेष्टा की है। उन्होंने शिक्षा है कि परमेश्वरों में नहीं विश्वास करते क्योंकि वे तर्क की वृत्तमूर्ति पर बिके पड़ते हैं। हमने सत्य की खोज अनुभव ज्ञान के सहारे की है। अनुभवमूलक ज्ञान सार्वत्रिक सार्वभौमिक अखंड और अस्थायिक होता है। तबमें किसी प्रकार के सां-  
 द्यायिक भेदभाव के दर्शन नहीं हो सकते<sup>२</sup>। संत मुन्दरदास ने अनुभव के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा है कि अनुभव की अवस्था में द्वैत अद्वैत का कोई भेद नहीं रहता। तब जेठा है उसी रूप में माणित होता है। अनुभवजन्य ज्ञान के कारण ही संत मत सब प्रकार के बादों और संघर्षों से परे<sup>३</sup> हैं।

संतों का अनुभव ज्ञान अन्तर्दृष्टिमूलक विचारणा पर आधारित है। विचारणा के सहारे वे अपने अहंकार का निराकरण करते थे। संत मुन्दरदास ने शिक्षा है—

निस्संग विचार से अपन पी टारिय<sup>४</sup> ।

जब यह अपन पी या अहंकार नष्ट हो जावेगा तो तब की अनुभूति स्वयमेव हो जावेगी। उन्हीं संत ने एक दूसरे स्थान पर शिक्षा है कि जो ताकत भीरव कारण करके विरतन विचारणा में निमग्न रहता है उसे तत्परणी ब्रह्म की अनुभूति स्वयमेव होने लगती<sup>५</sup> है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संतमत विचारणाजनित अनुभव ज्ञान पर आधारित है। यह अनुभव ज्ञान ध्यानमूक और अन्तर्दृष्टि<sup>६</sup> है। इसके प्रकाश में सब

<sup>१</sup> सत्य सुधासार पृ० ४८१ ।

<sup>२</sup> मुन्दर अद्वैत पञ्चासक मौहि भयो वाप ।

जके अनुभव ज्ञान सब से बड़ो है ॥ मुन्दर विज्ञान पृ०

<sup>३</sup> अनुभव किं पृ० दोष न गनेह क्यु ।

मुन्दर अद्वैत क्यूँ है क्यूँ ही ताहि वेदिय ॥ मुन्दरविज्ञान पृ० ११८ ।

<sup>४</sup> मुन्दरविज्ञान पृ० १०१ ।

<sup>५</sup> भीरव धारि विचार निरन्तर लोदि रूपो सोर भापुइ भरहे ॥ मुन्दर विज्ञान पृ० ४१

<sup>६</sup> सत्य सुधासार पृ० ११० भाग १ चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं पंक्ति ।

पक्षर के मैदमात्र और अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। यह साक्षात् ज्ञान के लक्षण महत्त्वपूर्ण है।

सर्व मनुष्य की विशेषताओं का अध्ययन करते समय एक बात पर और ध्यान रखना चाहिए वह यह कि उन्होंने सदैव अपने मठ में धर्म के सामान्य तत्वों पर ही अधिक बल दिया है जिससे वह किसी देश विशेष, काल विशेष और जाति विशेष का धर्म न रहकर सार्वभौमिक सार्वभौमिक मानव धर्म के रूप में निरंतर आया है। हमारी समझ में सत्य मठ का मानव धर्म का प्रतिपादन देना अनुचित न होगा।

सत्य मठ का विश्लेषण करते हुए उसकी दृष्टान्त पर भी टिप्पणी रखनी पड़ेगी। यह एक ठार संघर्षी मठ है। मठ पर हमें उनके पूर्व की समस्त दार्शनिक, धार्मिक और साधु परम्पराओं के सम्बन्ध सिद्धान्तों की जाया बिल्वाई पड़ती है। मठ का यह है कि सन्तों ने अपने पूर्वजों सभी सारभूत दार्शनिक धार्मिक सामाजिक तत्वों को विचारणा मूलक अनुभव ज्ञान के तन्त्र में टालकर सत्य मठ के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

भारतीय, धर्म, दर्शन, उपासना, साधना, संस्कृति इन सब का मूल सत्य वेद है। वेद का मूल मंत्र अद्वैतवादी है—एक सद् विश्व बहुधा बदन्ति त्रैयी उक्त्यां हमारे इस कथन का अर्थ प्रमाण है। सद्दिव्यों में बीकारान्ति अद्वैत मानना का सम्यक अनुभव और विश्वास अनिष्ट साहित्य में हुआ। उपासकों में बाहर अस्थायी विज्ञान अपनी पराजय पर पहुँच गया। इतिहासिक उपासकों की संस्था का गर्भ। उपासकों दर्शन का उदय आकाश के धर्मवाचक की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था किन्तु फिर भी धर्मवाचक की पराजय नष्ट नहीं हुई। समय पाकर वह मृत्यु और स्मृतियों का आभार परस्पर पुनः अधिनत रूप में अस्तित्व में हुई। आकाशों का पुनर्जागरण मृत्यु और स्मृतिवाचक में अपनी पराजय पर पहुँच गया था। इन दो पराजयों के अतिरिक्त एक पाशा प्रतिक्रियावादी भी थी। वैदिक ज्ञानों के उदय प्रकटन हुआ था। जिस कुछ दिनों परन्तु उस पराजय में संबंधित उपासकों के समस्त निर्वाह मन्त्रों से बढ़ने लगी। धार्मिक बौद्ध और जैन धर्मों में उपासकों प्रतिक्रियावादी उपासकों का अस्तित्व मिलता है। इनमें सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी, अतिवादी उपद्रववाद, अज्ञानवाद, अनिश्चिततावाद, बहुमान उपासकों तथा धार्मिक उपासकों का अस्तित्व आदि की थी। किन्तु प्रतिक्रियावादी बौद्ध धर्म जैन उपासकों के उपासकों विचार में उपासकों की संस्था में उपासकों प्रतिक्रियावादी मठों की उपासकों पर निम्न। फिर भी उनकी ही पराजय सामान्य जनता में मनुष्य सत्य मठ की उपासकों पर निम्न उपासकों के वेद

१ सुन्दर विज्ञान १० ११४ पर प्रतिक्रियावादी धर्मियों उपासकों—बहुमान उपासकों उपासकों का अस्तित्व।

विरोधी प्रकृति मध्ययुग की बहुन-सी धर्म और दर्शन पद्धतियों में समाविष्ट मिलती है।

उपर्युक्त तीनों प्राचीन परम्पराओं का सम्मेलन विद्यमान मध्ययुग में दिखाई पड़ा। प्राचीन उपनिषदिक दार्शनिक परंपरा का विकास पददर्शनो के रूप में हुआ। इन पददर्शनो में सबसे अधिक प्रचार और प्रतिष्ठा वेदांत की रही। उलची अनेक शास्त्रार्थ एवं प्रयासार्थ प्रस्तुति हुए। इनमें अजातवाद, मायावाद, कल्पनावाद आदि अद्वैतवादी पद्धतियाँ तथा विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। ब्राह्मणों की धर्मश्रयणी तथा उपनिषदों का दार्शनिक विचारधाराओं के मेल से आचार प्रधान संन्यासोपासना पद्धतियों का विकास हुआ। उनके नाम क्रमशः शैव वैष्णव शाक्त ग्यारवि और सूर्य सम्प्रदाय हैं। इन पाँचों उपासना पद्धतियों में प्रथम तीन बहुत अधिक विख्यात हो प्राप्त हुए। इनसे संबंधित अनेक दर्शन पद्धतियों, उपासना सम्प्रदायों तथा साधु सम्प्रदायों का जन्म हुआ। शैव दर्शन पद्धतियों में वासुदेव दर्शन और शैव दर्शन तथा शैव दर्शन और प्रतिमिमा दर्शन विशेष उल्लेखनीय हैं। साधु और ताचना सम्प्रदायों में ज्ञानात्मिक सम्प्रदाय ब्रह्मसुख सम्प्रदाय दक्षिण व शैव मठ सम्प्रदाय, श्रीपद सम्प्रदाय, किंगानत सम्प्रदाय आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। वैष्णव धर्म और दर्शन सम्प्रदायों में दक्षिण के ब्रह्मचार मठ सम्प्रदाय, महात्म्यीय सन्त सम्प्रदाय, सहस्रनाम गौरीय वैष्णव सम्प्रदाय, गुहार्थ सम्प्रदाय, पंचसला, मान माव, तथा दद्या वेव सम्प्रदाय के नाम विशेष निदिष्टिम्प हैं। कुछ छोटे-मोटे मिथित सम्प्रदायों का भी उदय हुआ था। जिनमें लालदेव सम्प्रदाय, सातवेनी सम्प्रदाय और बास्मीकि सम्प्रदाय विशेष प्रसिद्ध हैं।

प्राचीन प्रतिक्रियावादी पाठ मध्ययुग में आरम्भ विरुद्ध शैव दर्शन और ताचना पद्धतियों के रूप में पनपने लगी। मन्त्रज्ञान, वज्रज्ञान, सहस्रनाम, जात ब्रह्मज्ञान आदि उलची धारा से संबंधित सम्प्रदाय रहे या सक्त हैं। मध्ययुग की सबसे प्रसिद्ध धारणा पद्धति का उदय वेद और शैव धारणा और दर्शन पद्धतियों के मिश्रण से हुआ था। उलकत नाम माय सम्प्रदाय है। उलकत माखीय धर्म दर्शन और धारणा पद्धतियों के अतिरिक्त कुछ विदेशी धर्म और दर्शन पद्धतियों भी विद्यमान या रही थीं। इनमें इतलाम ईसाई तथा सुदी मत का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ ताचना पद्धतियों का विकास इन सब के सम्मेलन से भी हुआ था। बाल्य सम्प्रदाय एक ऐसा ही देशी एवं विदेशी सम्प्रदायों का मिश्रण से बना हुआ साधु वर्ग था। इस प्रकार सन्त मन की दृष्टिभूमि के रूप में अनेक दार्शनिक धार्मिक और साधु सम्प्रदाय पहले से ही वर्तमान थे। इनके मत पर इन सब का क्रियात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़े हैं। पीछे इन इन सबका स्पष्ट निर्देश कर आये हैं। वहाँ पर उलकत इतना ही बहना पाइल है कि सन्त मत का

अप्ययन करते समय उरुषी उरुषुल संधी-चौकी घुटमूमि को किसी भी प्रकार मुक्तापा नहीं का सकता। उरुक जाने-जाने इसी घुटमूमि पर वीपार किये गये। बाद में संतो की विचारकामूलक अनुमति तथा प्रथिमा ने नया रंग भरकर उसे मौलिकता प्रदान कर दी। संत मठ निर्गुणवादी मत है। निर्गुण से घटा का क्या अभिप्राय है? इस प्रश्न का उत्तर हमें यह सुन्दरदास भी एक ठकिय में सरलता से मिला था। उन्होंने निर्गुण के अर्थ में निर्गुण का प्रयोग किया है। मय विष्णु महेश आदि को वह त्रिगुणापिरति विद्यमान हैं। उन तीनों देवताओं को प्रति उन्हें भद्रा नहीं है वे लिखत हैं ब्रह्माभी कुम्हार का नाम करते हैं बीबा को बर्मानुसार बग्न देकर शरीर प्रदान करते हैं। इसलिये वे हमें स्पष्ट नहीं लगते। विष्णु अनेक प्रकार के व्यवहार पारण करते हैं गर्भ में आकर अनेक प्रकार के रूप ग्रहण करते हैं तथा जीवन जाल में कुछ का सजावट है और कुछ भी रचा करते हैं। इसलिए उनके प्रति भी हमें भद्रा नहीं है। यह भी का वेग बड़ा अमंगलकारी है। वे भूत पिशाचों के पति हैं। हाथ में कपाल लिए रहने हैं अथवा उनका रूप भी हमें विष नहीं लगता। य तीनों ही क्रमशः सत रज तम के प्रतीक होने के कारण हमें प्राय नहीं हैं। हम त्रिगुणालय एक निरञ्जन निर्गुण का उपासना करना ही भेयस्वर उपमन्य हैं।

सन्त सुन्दरदास ने सत्य ही सत कपीर न भी निर्गुण मय का कथन करने का उद्देश्य दिया है वे लिखत हैं दे भार्द निर्गुण मय का कथन स्मरण और विवेचन करना चाहिए। उरुक स्मरण स मुधि-मुधि शीर मति की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार बग बीजन याज्ञिक में निर्गुण मय का पान करने का उद्देश्य दिया है। अब प्रश्न यह है कि उनके इस निर्गुण मय का स्वरूप क्या है। वेसे ता संतो के निर्गुण मय के स्वरूप

- १ मय कुत्ताय रचै बहु भाजन ।
- बामनि क बस मादि न भारी ।
- मिमुदि संख्य चाप स, प्रम ।
- काहू को रचक काहू मनाई ।
- संकर मय पिशाचनि को पति ।
- पानि करोन विष् विलकारि ।
- वादि ते सुंदर निगुण रपागमु ।
- निगुण पक निर्जन वपारि । सुंदर विजय पृ० ७४
- २ निगुण मय कपीर रे मई ।
- को मुनिरन मुनि मुनिमनि पारि । कपीर संतापनी पृ २१२
- ३ ब्रह्माभीजन मूक नाम परि क निगुण परिष्कारं । सत्य वाकी संख्य भाग २ पृ० १११

वर्षों ब्रह्म निरूपण के प्रसंग में किया गया है। किन्तु यहाँ पर हम उनके उत्साम्भी अन्तिम मतवाद का संकेत कर देना आवश्यक समझते हैं। उक्त दाहू ने लिखा है कि निर्गुण ब्रह्म वैसा ही वैसा ही है अर्थात् उसकी अनुसृष्टि मर की जा सकती है। उसका वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। अन्तर्गतों ने भी निर्गुण के संबंध में यही अन्तिम निर्णय दिया है। किन्तु निर्गुण के इस प्रकार के स्वरूप निर्देश से एक समस्या और सामने आ जाती है वह यह कि जब निर्गुण केवल अनुभव सम्पन्न मान है तो फिर उसकी साधना और उपासना कैसे की जाये। इस संबंध में संतों की बारम्बारें बहुत स्पष्ट हैं। उनका कहना है कि निर्गुण परमेश्वर का केवल आत्म रूप है। उसकी सेवा और उपासना करनी चाहिए। संत कबीर ने लिखा है—

निराकार निरूप रूप है प्रेम प्रीति से सेवा<sup>१</sup>।

इस निर्गुण आत्मा तरह पर विचार करना, चिंतन करना और उसी का ध्यान करना ही संतों का प्रमुख लक्ष्य था। किन्तु विचारणा और ध्यान आदि का मार्ग भी अठिन है। अतएव संतों को निर्गुण की सहजतम उपासना की भी सलाह करनी पड़ी। उस लोभ के फलस्वरूप ही उन्हें तप मास का बोध हुआ। उनी को उन्होंने निर्गुण का आचार कहा है। संत दरिया साहब ने लिखा है—

सत्त नाम है निरगुन आचार<sup>२</sup>।

संतों की साधना में इही किर नाम स्मरण और नाम बन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। उक्त मन्त्रवाच ने लिखा है कोई मानसगती साधक ही निर्गुण के गुण गाता<sup>३</sup> है।

संत मत पूर्व आस्तिक और आत्मवादी है। अर्थात् हम ऊपर कबीर का उद्धरण देकर दिखता चुके हैं कि संत लोग निर्गुण ब्रह्म से आत्मतत्त्व का बोध कर चले थे। उन्होंने सर्वत्र आत्मरह की पूजा का ही उपदेश दिया है। संत दरिया साहब ने लिखा है कि आत्मा ही सर्वभेद देवता है। उसके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं होता। उनी की साधना करनी चाहिए<sup>४</sup>। इही प्रकार संत दाहू ने भी आत्म राम में ही ली सगने का उपदेश दिया<sup>५</sup> है। संत तुन्दरदास ने भी आत्म राम के ही मन्त्र करने का आदेश

<sup>१</sup> कबीर प्रीतिवली पृ०

<sup>२</sup> दरिया सागर पृ० १२।

<sup>३</sup> ब्रह्म मन्त्र निरगुन के गुण कोई बड़ भागी गावे। मन्त्रवाच की बानी पृ० १०

<sup>४</sup> आत्म पूजा यहाँ देव पूजा—दरिया साहब क चुने हुए पर और सानी पृ० ०

<sup>५</sup> दाहू आत्म राम सों मना रहे कौं साप। दाहू बाची संग्रह भा० १ पृ० ८१

दिया है। संत पापी लाहड़ ने वृत्ति को अंतर्मूर्त्ति करके आत्म पूजा करने का निर्णय दिया है। संत खीरदास का सारा प्रवास, सभी अभिव्यक्ति, सम्पूर्ण वाचना आत्म-परायण ही है उन्होंने स्पष्ट बोधका की है—

सोम कहे यह गीत है यह तो मझ विचार रे ।  
धंयल कहि समुझइया आवतम साधन सार रे ॥

आत्मसाधना के संतों ने अनेक साधन निर्दिष्ट किये हैं। उनमें विचारणा, आचारण प्रवृत्तिया, अथवा सहजापरस सहज धैर्य, माध मगति, आत्मज्ञान और सहज योग प्रमुख हैं। जैसे इन सब पर विचार से विचार किया जा सुख है। यहाँ पर केवल आचारण-व्याप्तुद्धन संकेत मात्र करेंगे। एवं सुन्दरदास की हृदय-पारणा है कि आत्म-विचार करत-करत आत्म-वाष्पकार स्वयं होने लगता है।<sup>१</sup> जैसे तो संतों ने कर्मवाद की निन्दा की है किन्तु कर्ममार्ग स भीता कि गता में लिखा है किनी को भी मुक्ति नहीं मिल सकती।<sup>२</sup> इसके लिए संतों ने सहजाचरण और उदाचरण का निर्देश किया है। उदाचरण संत मार्ग का प्रासभूत लक्ष्य है। संतों ने कहा कही भी शिद्धमठ रूप से अपने मन का उद्वेग किया है कहा कथय रहन उन्होंने उदाचरण को ही महत्त्व दिया है। एवं मल्लू-प्रदास को ने मझ की प्रथम करनेवाले मार्गों में सहजाचरण और उदाचरण का ही सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है। उन्होंने सिखा है कि संतों का निर्धार निर्गुण मझ न तो बन करने से प्रथम हाता है न बन करने से और न आत्मा का कष्ट देने से। यह धीरे धीरे जैसे इत्यादि प्रक्रियाओं और रसानादि बाष्पकारों से भी प्रथम नहीं होती। वह निर्गुण उठी शक्ति के प्रति इतना दया है ना प्रथम जीवन में रहते हुए भी उदाधीन रहता है, समाचरण करना है और दूसरों के प्रति सहानुभूति रखता है औः दूसरों की कष्ट शानिवाँ रहन करता है। लख दास<sup>३</sup> ने श्रेष्ठ वातु के लक्षण

- १ आत्मन राम मंत्रे क्यों न सुंदर ।—सुन्दरचिन्तास पृ० १०
- २ भावा उलझि आत्ममा हुआ ।—पारो सादर की वाता पृ० १
- ३ आत्मन विचार किये आत्ममा ही शीमे रुक । —कलकान्ठी संग्रह भाग २ पृ० १०१
- ४ न कल्पमणि कविचर अतु निर्यति अकर्महृत् । —गीता ।
- ५ ना को शीमे बनन बगिह ना आत्मन का कर ।  
ना को शीमे जाती नती ना बचा पूछे, पगारे ।  
रपा करे परम मज गरी बर में रहे उरामी ।  
अपना मा दुग सब का जाने लादि मिथि अविनामी ।  
सरे कुपपर बाहूँ रपागी पाई गरं मुळना ।  
बहि हीम मरा निर्धार क अदन मरुह दिवाना ॥ सत्य वाणी धर्मह मता ० पृ० १२८

कहाते हुए लिखा है कि साधुओं में विरोध ही नहीं माना जाता है, जो मगवान् के गुणों का गान करता है विषय वाचना का त्याग कर देता है तथा अहंकार से दूर रहता है और मिथ्या वाणी नहीं बोलता। वह वृषों की निम्ना भी नहीं करता है तथा अन्न गुणों का परित्याग कर गुणों का आचरण कर मगवान् के शरणों में अपने मन को अर्पित करने रहता है। वह किसी से बैर नहीं करता सब में परमात्मा के दर्शन करता है। वह अपने और परमेश में भेद नहीं करता है तथा सत्यवादी रहकर पवित्र आत्म-चित्ता में लीन रहता है। वह सब प्रकार के विकारों से दूर रहकर निर्मल मन से मगवान् के मन्त्र में निमग्न रहता है।<sup>१</sup> इस मास को सन्त कबीर ने और भी अधिक उद्योग में व्यक्त किया है। सन्तों का सबसे बड़ा लक्ष्य यह है कि वे निष्काम मास से विषय विकारों से दूर रहते हुए मगवदमर्क में लीन रहते हैं।<sup>२</sup> इसी प्रकार अन्न सन्तों ने भी अनेक प्रकार से उदाहरण और उदाहरण का उद्देश दिया है।

सन्तों ने उदाहरण के साथ ही साथ उदाहरण के प्रति भी आस्था प्रकट की है यह उदाहरण रखना चाहिए कि सन्तों ने कहीं पर भी मन में आकर वाचना करने का उद्देश नहीं दिया है। उन्होंने उदाहरण मन को शुद्ध करने का उद्देश दिया है। उनकी दृष्टि में मन का शुद्ध करना ही सच्चा और उदाहरण है। उदाहरण कबीर ने स्पष्ट लिखा है—

यन्तु वसी कर कीजिए जे मन नहिं पछिछि बिकर।<sup>३</sup>  
 वाचना के परित्याग और मन के शुद्धिकरण पर सन्तों ने विशेष बल दिया

<sup>१</sup> सोई साय सिरोगनी गोकिन् गुण गरी ।  
 राम भजे विषया तत्रै आपान बनाये ॥  
 मिथ्या सुखि बोधे नहीं पर विद्या नाही ।  
 श्रीगुण वाये गुण गरी मन हरि पर माही ॥  
 निरौरी सब आत्मा पर आत्म जानै ।  
 पुन्य दार् सन्निता गरी आपा नहिं जानै ॥  
 आपा पर अन्तर नहीं निमल मारा ।  
 अलवादी साचा रहै अखीन विचारा ॥  
 निर्भे मजि म्बारा रहै काहु विपत'न' होइ ।  
<sup>२</sup> निर्भेरी निबामला सोई सेंती बह ।  
 विषया सं म्बारा रहै सन्तनि का संग यह ।  
<sup>३</sup> कबीर प्रयागवासी पृ० १०८ ।

है। उन्मत्त पल्लव साहब ने लिखा है कि सबसे वैद्यक्य श्री प्राप्ति तभी हा तज्जी है जब वासना का बीज नष्ट हो जाय।

बीज वासना को जरै सब छूटे संसार।

उन्मत्त दरिवा साहब का तो यहाँ तक विश्वास था कि सापक श्री सफलता मन विषय पर ही आपावित रहती है—

मन के जीते जीतिया।<sup>१</sup>

उन्मत्त कबीर का यह उद्ग निश्चय था कि जब तक मन विह्वल रहता है तब तक सद्ग्य वैद्यक्य श्री प्राप्ति नहीं होती।<sup>२</sup> वे लिखते हैं कि जब तक मन में विकार रहता है तब तक सापक को संसार से मुक्ति नहीं मिलती। किन्तु जब मन पवित्र हो जाता है तो उसे शीघ्र ही निर्मल आराम के दर्शन होने लगते हैं। अथ परन्तु यह उन्मत्त है कि इस मन को कित्त प्रकार बध में किया जाय। दादू के शब्दों में मन बड़ा प्रबल होता है यह बिना मारे हुए किसी भी प्रकार बध में नहीं हा सकता<sup>३</sup>। इसी लिए उन्होंने मन का मारने के लिए ज्ञान सद्ग्य का प्राप्त करने का उद्देश्य दिवा है। वे कहते हैं कि बुद्धिमान् सापक संदेह ही गुरु के द्वारा दी हुई ज्ञान सद्ग्य का उपयोग करता है। उक्त ज्ञान सद्ग्य से मन मिरगा का मारना चाहिए। उक्तका मोठ बहुत मगुर दस्ता है। ज्ञान मन<sup>४</sup> रूपी मिरगा को मारनेवाला है। सम्भवत हीसलिए संतो ने ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया है। मुन्दरदास का तो उद्ग विश्वास था कि ज्ञान के बिना मुक्त नहीं मिल सकता। उनका<sup>५</sup> विश्वास था कि वा सोम बिना ज्ञान का ही वैद्यक्य मार्ग में चल सकते हैं उनसे अपरथा मोठ का होने का उद्देश्य हा जाती<sup>६</sup> है। अथ परन्तु यह उन्मत्त है कि ज्ञान से संतो का क्या अभिप्राय था। पारी साहब ने संतो के ज्ञान पर प्रत्यक्ष ज्ञानते हुए लिखा है कि संतो का उच्चम ज्ञान हृद और बहद से परे निर्गुण ब्रह्म से संबंधित

<sup>१</sup> दरिवा सागर पृ० ३०

<sup>२</sup> जब जग भक्त विचारा तब जग नदि छूटे जगारा।

जब मन निर्मल करि जना तब निर्मल मादि जगारा ॥ कबीर प्रबंधजी पृ० १०८

<sup>३</sup> मार्गो बिन मनै नही पदु मन दरी की जान। सादूरपाठ की बाकी भाग १ पृ० ११०

<sup>४</sup> ज्ञान सद्ग्य गुरोरे का ता संग मरा मुखाय।

मन मिरगा मारे मरा ताका सीय मय ॥ सादूर बाकी भाग १ पृ० ११०

<sup>५</sup> मुन्दर ज्ञान बिना न कहुँ मुक्त ब्रह्म को बनु मोनि गती है।

<sup>६</sup> कैमेदि मुन्दर ज्ञान बिना का पौदि

मने नर भांड के हीना। मुन्दर विद्याय पृ० ६९



होया है। इसके शब्दों में आत्मज्ञान को ही वे सच्चा ज्ञान मानते<sup>१</sup> हैं। संत मन्कू-दास की ने लिखा भी है कि गणित् स्वामी गुरु ने हमें सार मत की दीक्षा दी बिना दीक्षा के पतस्वयम् हमें आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। यह आत्मतोष बड़े भाग्य से प्राप्त होया है। इसके प्राप्त होते ही समस्त भ्रमों का निराकरण हो जाता है। आत्म<sup>२</sup> जनों ने भी आत्मज्ञान को ही भेद ज्ञान विद् करने की चेष्टा की है। संतो के लिए ज्ञान का महत्त्व एक दृष्टि के और था। उनका विश्वास था कि सच्चे आत्मात्मिक प्रेम की उत्पत्ति ज्ञान की शक्ति से ही होती<sup>३</sup> है। कुछ संत ज्ञान का योगमूलक अर्थ भी मानते थे। सत्य दरिया साहब ने लिखा है कि गम्भीर ज्ञान उठी को कहते हैं जिसके सहारे भिक्षुकी के मरण में स्थित आत्मव्यस के बर्तन होते<sup>४</sup> हैं।

सन्त मीठा के शब्दों में हम ऊपर शब्द आये हैं कि ज्ञानाग्नि से ही प्रेम-वदार्थ की उत्पत्ति होती है। यह<sup>५</sup> प्रेम-वदार्थ संवसत का प्राणभूत स्व है। इस प्रेम-वदार्थ की अभिव्यक्ति उनही शक्तियों में हमें दो कर्मों से मिलती है एक मजमागीब दंग पर और दूसरी शक्तियों के रहस्यवादी दंग पर। यही कारण है कि उनही-शक्तियों में हमें प्रेम स्वयम् के उगावनात्मक और रहस्यात्मक दोनों पक्षों का उत्पादन बड़े विस्तार से मिलता है। यदि इसके दोनों पक्षों का वियेकन किया जाय तो एक स्वतन्त्र प्रणय ही बन सकता है। हम यहाँ पर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि संवसत में सदाच वैराग्य रहस्य ज्ञान सदाच विचारणा से भी अधिक प्रेम मयति<sup>६</sup> या प्रेम लक्षणा मक्ति या मोक्ष मयति<sup>७</sup> का महत्त्व बताया गया है। ज्ञानवादी संतों तक ने मक्ति को ही स्व

<sup>१</sup> इह वेदु के बाहरे पारी जन्तु को उत्तम ज्ञान। पारी साहब की रत्नवाणी पृ० १

<sup>२</sup> गुरु गेविन्दा सार मत दीक्षा।

महा भया को आत्म शीक्षा।

बड़े भाग्य से आत्म आगा।

कहत मन्कूदास सदाच भ्रम भाग। मन्कूदास की बानी पृ० १८

<sup>३</sup> प्रेम पदार्थ प्रगट मयो जब ज्ञान शक्ति प्रवहार। मीठा साहब की बानी पृ० १६

<sup>४</sup> ताके कहिए ज्ञान गम्भीर।

त्रिजुटी मन्व को पारि हीरा व दरिया सागर पृ० १४ पंक्ति २

<sup>५</sup> प्रेम पदार्थ प्रगट मयो जब ज्ञान शक्ति प्रवहार—मीठा साहब की बानी पृ० १६

दादू रसाळ की बानी भाग १ पृ० १४

<sup>६</sup> जन्त मुपाकार भाग १ पृ० २७०

<sup>७</sup> आदि के दरवार में केवल मक्ति रिया। पतदू साहब की बानी भाग १ पृ० ८२

सैछोहि मुन्दर कीर किया जब

राम बिबा निदरै ना रोरी। मुन्दर विद्यास पृ० ११

साधनों का शर कर बढ़ा है। शान को बिरोग महत्त्व देनेवाले उक्त सुन्दरदास ने भी लिखा है—

सक्यत् उपाङ्ग सच्चि एक यम यम मच्चि<sup>१</sup> ।

तथा

सुन्दर एक मच्चि भगवन्महि सो मुरम सागर में निव<sup>२</sup> भूत्तै ।

सुन्दरदास के उक्त ही अन्य उक्तों ने भी प्रेम भक्ति का ही सब साधनों में भेद और महान् सिद्ध करने की चेष्टा की है। सहजोबाई ने उक्त पास्या की है—

बिना भक्ति घोधे ममी योग अह्न आचार<sup>३</sup> ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संत मन में प्रेमाभक्ति का विशय महत्त्व दिया गया है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के वैधी और रागानुगा वा दो भेद बताये गये हैं उनमें संतों की भक्ति भावना रागानुगा क अन्तगत आरगो किन्तु उक्तम भी उक्तों ने सहजी करण किया है। उन्होंने भक्ति सूत्र में प्रसिद्ध नाम जय रमण्य का ही बिरोग महत्त्व दिया है। संत लाग ईश्वर क प्रति त्य आत्मसमर्पण में भी विश्वास करत व। संत रैदास न लिखा है कि हे प्रभु मैं आरणी चरण्य में हूँ। आन वैशी पादे वैशी गति मुके हूँ। प्रसिध<sup>४</sup> और आत्मसमर्पण मात्र क अतिरिक्त संतों ने अन्नी भक्ति में नाम जय को भी शरभ्य महत्त्व दिया है। संत बनना की नै रान्य पास्या की है—

षड् मठ सीरय पैद् पुण्नी तुने नदी फोई नाँय ममाना ।

नम धर्म मय जय तव मैना नाय ममान फोई हुम्मा न हर्षना ।

ज्ञान मुन्य करि मुना बर्षटा नाँय ममान फोई मुन्य न दीटा ।

नी रारह वृषिषी जोगी जोई परना नदी पठपर होई ।

इसी प्रकार गुलाब शरभ में भी लिखा है—

बिना नाम नदिं मुक्ति अर्थ मय मोक्ष्या<sup>५</sup> ।

<sup>१</sup> सुन्दर विज्ञान पृ० १३

<sup>२</sup> सुन्दर विज्ञान पृ० ७१

<sup>३</sup> सहजो बाई की बानी पृ० ३९

<sup>४</sup> बर्दि रविदत्त नाम प्रभु लेते ज्यों ज्ञानहुँ त्यों जय गति मेरी । गण्य सुपाप्यर शरभ ३ पृ० १८२

<sup>५</sup> गुलाब शरभ की बानी—पृ १२

वे तो नाम को ही सच ज्ञान मानते थे। इसी प्रकार<sup>१</sup> संत रत्नचर भी ने मी लिखा है कि नाम के बिना कभी मुक्ति की प्रशंसा नहीं हो सकती<sup>२</sup>।

संतों ने अपनी भक्ति में उत्सर्गति को भी विरोध महसूस दिया है। वे उत्सर्गति को प्रेम भक्ति को बढ़ करने का एक साधन मानते थे।<sup>३</sup> इसी प्रकार भीष्मा साहब ने भी लिखा है कि उत्सर्गति से माव-भक्ति बढ़ती है और परमानन्द की माव-भक्ति का बोध अधिक होता है। उक्त<sup>४</sup> दादू ने तो चार रूप से संसार में दो प्रमुख छन्दों का उल्लेख किया है। एक भगवान् स्वयं हैं और दूसरे सन्त जन हैं<sup>५</sup>। संत पल्लू साहब तो संतों को भगवान् का अवतार ही मानते थे<sup>६</sup>।

सन्त मठ शुद्ध ऐक्यव्यक्तिक नहीं था, उसमें लोकसंघर्ष के माव को भी महसूस दिया गया है। उक्त कबीर ने लिखा है मुझे भगवान् से आदेश मिला है कि मैं लोकों को उद्देश्य हूँ और भवसागर के बीच में जो डूब रहे हैं उनका उद्धार<sup>७</sup> करूँ। जब सन्त मठ स्वयं लोक संघर्षी था तो उसमें प्रतिष्ठित भक्ति भी लोक-संघर्षी ही मानी जायगी। उक्त पल्लू साहब ने इसका समर्थन भी किया है। उन्होंने लिखा है कि मठ लोग जगत् को सम्मार्थ पर जाने के लिए उपदेश दिया करते हैं।<sup>८</sup>

ऊपर हम अभी यह आये हैं कि सन्त लोग त्रिकुटी मत्परम आत्मतत्त्व के दर्शन करने को ही भेष्ट ज्ञान मानते थे ऐसे संतों में साधना में योग का भी विरोध महसूस दिया है। क्योंकि त्रिकुटी मत्परम आत्मतत्त्व का साक्षात्कार योग के सहारे ही हो सकता है। माय में योग के छिद्रों प्रकार प्रवृत्त रहे हैं जिनमें दृढयोग शत्रुयोग मन्त्रयोग तथा राज योग की विरोध साम्यता थी है। शिव संहिता में एक राजाधिराज योग की भी बर्षा की गई है। संतों की बानियों में हमें ठरसूँक सभी प्रकार के योगों की क्रियाशून्य-प्रतिश्रावों के दर्शन होते हैं। किन्तु तिष्ठत रूप से वे उल्टे योग में विश्वास करते थे। योग का मार्ग बड़ा कठिन है। उक्त पल्लू साहब ने तो यहाँ तक

<sup>१</sup> नाम न जानहुँ सच ज्ञान। गुवाक साहब की बानी—२० ६२

<sup>२</sup> नाम बिना गार्हो निस्तारा कबहु न पहुँचे बार। संत मुवासाह भाग १ पृ० २१३

<sup>३</sup> दिव प्रति दरसब साधक प्रेम भक्ति दिव देव। दादूसाहब की बानी भाग १ पृ० १६०

<sup>४</sup> उत्सर्गति में माव भक्ति परमानन्द जाने। उक्त मुवासाह भाग २—२० १४६

<sup>५</sup> दादू इस संसार में हैरतन जमोख।

एक छोई क्व सन्त जन इनका मोख न तोख ॥ दादूसाहब की बानी भाग १ पृ० १६३

<sup>६</sup> सन्त रूप धरधार आप हरि धरि के थाप। पल्लू साहब की बानी भाग १ पृ० १३

<sup>७</sup> मोहि घण्ट बह दयाल दबा करि काहु हूँ समझाय। कबीर संघर्षवली २० १६६

<sup>८</sup> भक्ति करि उपदेश जगत् को राह बजावे। पल्लू साहब की बानी भाग १ पृ० १३

लिखा है कि रथ में सुक करना ठटना कठिन नहीं है भितना योग करना कठिन<sup>१</sup> है। इसीलिए सन्तो ने याग के विशेषकर हठयाग के प्रति उतसा माव प्रकट किया है। सन्त कबीर ने हठयाग का विरोध करत हुए लोगों को मगवर्मक के उतरेय दिया है—

आसन पवन दूर कर बीरे  
छोड़ कपट निव हरि भज पीरे ।<sup>२</sup>

योग क्षेत्र में सन्तो ने सहजयाग के अतिरिक्त लव याग को भी महार दिया है। उनका शब्द सुरति योग लव योग का ही एक प्रकार है। योग के प्रथम में हम इतजत बिलार से किनेकन कर चुके हैं। वहाँ पर उतकर संकेत मात्र करेंगे। सन्तो ने शब्द बल से सुरति का तादस्तम् स्थापित करने के बहुत से उपाय बताये हैं। इसमें ध्यान धर मन पवन आदि प्रमुख हैं। ध्यान का उतरेय देत हुए पारी साहब ने लिखा है—

त्रियुनी म चित्त देह ध्यान धरि देखि लहा ।<sup>३</sup>

त्रियुनी के अतिरिक्त मुनि में ध्यान बल का उतरेय भी दिया है। पारी साहब कहत हैं कि रूप में ध्यान करने से निर्गुण प्राप्त हो सक्ता है।<sup>४</sup> अर साधना के अन्तगत नाम धर और अज्ञात आर दोनो को महार दिया गया है। नाम धर से किश प्रकार सहज माव से सुरति शब्द योग की सिद्धि हो जाती है। रत्ना मुन्दर पत्न भीका साहब ने निम्नलिखित वक्तियों में किया है—

हर दम नाम मुनत अभ्यंतर ।  
अनुभव सधुर अपनिया ॥  
मुनत मुनत विल मीत्र जगी ।  
सगी सुरग निरम उननुनिया ॥<sup>५</sup>

अज्ञात आर से भी याग की सिद्धि हो जाती है। रत्न संकेत करत हुए भीका साहब ने लिखा है—

अध में उत भत जाप अज्ञपा जपा ।  
पीरे बीरे रूप मिलि त्रियुनी चरणा ॥<sup>६</sup>

<sup>१</sup> रथ का करना महार है सुरिकत करना याग। कपट साहब की कानी भाग १ पृ० ११

<sup>२</sup> कबीर प्रीत्यवली पृ० २१२

<sup>३</sup> पारी साहब की रत्नावली पृ० ११

<sup>४</sup> कबीर साहब की रत्नावली पृ० १ वृत्ति भाग

<sup>५</sup> भीका साहब की कानी पृ० ११

<sup>६</sup> भीका साहब की कानी पृ० २४

इसी प्रकार मन पवन साधना के सहारे भी शब्द सृष्टि योग स्थापित करने का उद्देश्य दिया गया है। उक्त मत में सबसे अधिक महत्त्व सहज योग को दिया गया है। सहज मात्र से आत्मा को परमात्मा में लीन कर लेने को ही सहजयोग कहते हैं। वादू साहज नै सिद्धा है—

सहज भाव सुख समाय जीव ब्रह्म में जाय रे।<sup>१</sup>

इसी प्रकार का सहज योग मन को संश्लिष्ट करने से पूर्व होता है। वास्तव में उक्तों का योग मन साधना और आचरण प्रवृत्तता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह बात कबीर के बागी स्वरूप के निम्नलिखित बर्णन से स्पष्ट प्रकट है—

मो जोगी जाँके मन में मुद्रा ।

यसि निवास न करई निद्रा ॥

मन में आसपु मन में रहैला मन का अप तप मन सूँ कह्यां ॥

मन में बपरा मन में सीगी अनहद येन बसाई रंगी ।

पंच परमारि भसम करि भूख करे कबीर सो लहसै संख ॥<sup>२</sup>

योग साधना को महत्त्व दिये जाने के कारण कानासाद और युवाव की भी बख्शी प्रसिद्ध है। उक्त कबीर ने कथा को ब्रह्माण्ड के समकक्ष माना है। उतमें उन्होंने कबीर आदि क्योको तीनों तथा कमलापति की रिकति बताई है।<sup>३</sup> इसी प्रकार इत मत में गुरु को भी सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। कुछ उक्तों ने तो गुरु को मंगलान् से अधिक महत्त्व ही बताया है। सहजोपाई ने लिखा है कि गुरु परमेश्वर से भी बड़े होते हैं। परमेश्वर तो केवल मुक्ति देते हैं और गुरु परमेश्वर से मिलता देते हैं।<sup>४</sup>

उक्त मत में किसी भी प्रकार का भेद मात्र गाम्य नहीं है। अर्थात् स्वयं से वे पूर्ण अद्वैतवादी हैं। उक्त सुन्दरदास ने उक्त घोषणा की है कि उक्तों ने अद्वैतज्ञान को ही महत्त्व दिया है—

और उपाय यके सपही तय संतन अत्रे ज्ञान बयो ।

<sup>१</sup> बाहुरपास की बागी भाग २ पृ० १८

<sup>२</sup> कबीर प्रवचनश्री पृ० १२८

<sup>३</sup> कथा मन्थे कोटि तीरथ कथा मन्थे कबीर ।

कथा मन्थे कमलापति कथा मन्थे ब्रह्मं बागी व कबीर प्रवचनश्री पृ० १२१

<sup>४</sup> परमेश्वर से गुरु बड़े गायन वेद कुमान । सहज हरि के मुक्ति है गुरु के पर मंगलान् व उक्त सुभामार काल २ पृ० १८२ ।

<sup>५</sup> सुन्दर विद्यास पृ० १२८ ।

संतों के इस अद्वैतज्ञान का उद्घाटन तो उनकी दृश्य पद्धति का प्रसंग में पर  
पुके हैं। यहाँ पर केवल इतना ही कहना अर्थात्कि यह कि संतों का अद्वैत तक पर आपा  
विषय न होकर विचारणा मूलक अनुभूति पर आभित है। संत मुन्दरदास न लिखा है—

मुन्दर विचारत यू उपरि अद्वैत ज्ञान।<sup>१</sup>  
आपनु आगएक प्रसन्न एक पठिचान्या है।

इसी प्रकार अनुभव ज्ञान भी अद्वैत रूप हुआ है—

अनुभव किम एव शोधन अनक फलु।  
मुन्दर फलत न्यो है तूँ ही वाहि दर्शियण ॥<sup>२</sup>

संतों का आभ्यस्तमचरित्र अद्वैतवाद समाप्त क्षेत्र में सामान्य रूप रूप में प्रचारित  
हुआ है। अतः सामान्यवाद का समर्थन में उद्घाटन का प्रकार का एक उदाहरण विषय है—  
एक आध्यात्मिक और दूसरे आधि भौतिक। सामान्यवाद के लिए आध्यात्मिक तथा दो  
दुए संन दातू सिंगत हैं कि अत्मा वास्तव में एव अद्वैत रूप है और का प्रत्यक्ष गद  
दिशानाई पकत हैं के स्वकारिक मर है।<sup>३</sup> इस बात का दातू ने और भी कई स्थलों पर  
वृत्त शब्दों में उद्घाटन की चेष्टा की है।<sup>४</sup> इस आध्यात्मिक तर्कों का अतिरिक्त संतों न  
असने सामान्यवाद का समर्थन में कुछ आदि भीतिव तक भी लिपि हैं। संत गरी दास कहते  
हैं जब प्रत्यक्ष मनुज की उत ए एक ही प्रकार से होता है तो उनमें हिन्दू और  
मुसलमान का भेद करो माना जाता है। इसी प्रकार जब प्रत्यक्ष मनुज में समान रूप  
से एक ही हनु और समझा जाता है तो फिर सामान्य प्रकार तदर्थ भेद करो किता  
जाता है।<sup>५</sup> संतों का यह सामान्यवाद समाप्त में विपरि हेतु अनक भेद मारो का एक रूप  
में सरलता से बोलने में समर्थ हुआ है। विरि सामाजिक भेद-भारों का समाप्त की  
यह चेष्टा संत सत की सपथ मही विशुद्धता है।

<sup>१</sup> मुन्दर विचारण २० १२६।

<sup>२</sup> मुन्दर विचारण २० १२८।

<sup>३</sup> दातू की आत्मम पद कविता मुनिता जगत अनक। दातू बाबा भाग २ २० १००

<sup>४</sup> क—एतम मनु विचरति मरत आत्मा पद।

बाबा क मुन शक्ति कदा बरत अनक ३ मनु मुसलमान २ ३८१

त—एव हनु एवा शक्ति करि हूमा कही आत।

मर पर पद आत्मता क्या लिखु का मुसलमान ३ मनु मुसलमान २० ३१६

<sup>५</sup> ईय लिखु मुसल कदाता मरही पद श्रोते आया। दातू की सं० बा० सं० भाग २  
२० १८४

ऊपर हम अभी दिखला आये हैं कि संतो ने साधना क्षेत्र में सर्वत्र सहजीकरण की प्रवृत्ति को महत्व दिया है। वास्तव में संत मत सहजवादी मत है। उन्में केवल साधना क्षेत्र में ही सहजीकरण करने की चेष्टा नहीं की गई है। बल्कि उपासना और आत्मात्म क्षेत्र तथा व्यावहारिक जीवन में भी सहजवाद को अपनाते हुए उपदेश दिए हैं। उनके पुत्र की उपासना विधि बड़ी बाह्याचार प्रत्यक्ष थी। संतो ने उसे उदात्तर प्रवृत्त बनाकर उतका सहजीकरण कर डाला है। उनकी पूजा के सहजस्वरूप का प उदाहरण इस प्रकार है—

प्रीति सी न पावी कोऊ प्रेम से न फूल और  
 पित्त सो न चंदन सनेह सो न सोहर ।  
 हृदय सो न आसन सहज सो न सिंहासन  
 माप सी न सेज सून्य सो न गेहर ॥  
 सील सो न स्नान अरु ध्यान सो न भूप और  
 ज्ञान सो न कीपक अज्ञान तम केहर ।  
 मन सो न मासा कोऊ सोह सा न माप और  
 भावम सो वैष वाहि वेद सो न वैहर ॥

संतो ने अपने अत्यात्म तत्त्व को भी सहज के नाम से अभिहित कि सहज तत्त्व का वर्णन करते हुए दादू ने लिखा है—

अदिनासी अंग वैज का ऐसा तत्य-अनूप ।  
 सो हम देखी नैन भर सुन्दर सहज स्वरूप ॥ दादू पयाल की  
 यानी भाग १ पृ० ५४

इसी प्रकार व्यवहार क्षेत्र में भी सहजभाव से विपरीत का परिष्कार करने का उद्देश्य दिया है। संत कबीर लिखते हैं सहज-सहज चिन्ताते तो समी हैं किन्तु सहज के अर्थ को विरुद्ध ही समझते हैं। वास्तव में सहजवादी उन्हीं को समझना चाहिए जो धीरे-धीरे सहज भाव से विपरीत वादनाओं का परिष्कार कर देता है। संत दादू ने तो तत्त्व मत के प्राणभूत सिद्धांतों को एक पंक्ति में निबोधकर रख दिया है। उनमें सहजाधार्य प्रमुख हैं—

कम बहै सहज रई की सुन्य विचारै १ ।

१ अन्त बाबी संग्रह भाग १ पृ० ११६ ।

२ सहज सहज सब को कही सहज न कीन्हे कोय ।  
 जिन सहजै विरया तनी सहज कही ज सोय ॥ कबीर प्रयागवासी पृ० ११

३ अन्त सुभामार पं० १ पृ० ३३३ ।

सहजाचरण से सर्वों का क्या अभिप्राय था इसे स्पष्ट करने के लिए उनके मध्य मार्गीय स्वभाव पर प्रकाश डालना पड़ेगा।

संघ लोगों ने साधना और भीजन दोनों में ही मध्यमार्ग के अनुसरण को ही बेरोप महत्त्व दिया है। इस मध्यमार्ग के अनुसरण को ही वे सहजाचरण मानते थे। यह बात दादू ने अनेक प्रकार से प्रकट की है। वे लिखते हैं सहज उषी को कहते हैं जो रीषों से रहित है। जिसमें मुख-दुःख समरसता को प्राप्त हो पाते हैं जिसमें जीपन-मरण का कोई भेद नहीं रहता है यही सहजाचरण है इसी को निर्वाण पद भी कहते हैं। यह है आध्यात्मिक सहज की मध्यमार्गीय व्याख्या। व्यावहारिक जीवन में सहज से वे क्या प्रयत्न लेते थे उसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि जीवन में न तो किसी बस्तु का ग्रहण करना चाहिए और न त्याग करना चाहिए। इस सहज भाव से जीवन व्यतीत करना ही विचारणामूलक ज्ञान है। इस मध्यभाव का सेवन करने से ही मुक्ति का द्वार खुलता है। इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार से सहज की मध्यमार्गीय व्याख्या की गई है। इस मध्यमार्गीय साधना में ही उन्हें पंचापछी क्षम्याद आदि से बचे रहने का बल दिया था। उनके समस्त शिष्यों की व्याख्या वास्तव में मध्यमार्गीय सहज भाव के माध्यम से ही की गयी चाहिए तभी उनका वास्तविक रूप समझ में आ सकेगा।

मध्यमार्गानुसरण के अतिरिक्त सहजाचरण के अन्तर्गत पवित्राचरण तथाचरण और सदाचरण भी आते हैं। वास्तव में सहजाचरण की कड़ी ही तब है। पवित्राचरण का उपदेश देते हुए दादू ने लिखा है—

निर्मल गहिए निर्मल रहिए निर्मल कहिए ।  
निर्मल लीजी निर्मल दीजी जनम "न" कहिए रे ॥

इसी प्रकार कबीर ने तथाचरण का उपदेश दिया है।

साईं सेती साँप पल बाँध मू मुख भाइ ।  
भाई लाम्हे कम पर भापि पुरणि मुनाय ॥

तथाचरण की सर्वा हम पीछे कर आये हैं। सहजाचरण से ही सम्बन्धित संन्यास का करने की और कर्मों की पृथ्वा प्रतिनन्दित करनेवाला शिष्य भी है। संन्यास काय शिष्य के रूप में विश्रुत नहीं करते व बल्कि उनके आचरण का भी महार देने दे। संन्यास ने स्पष्ट आदेश दिया है—“भ्रोगे मुनाने इने रीजी पाने पाने” उनका विश्रुत था कि शिना, करने के रूपकी काकट के कोट के लच्छ रहिए और साधन

<sup>१</sup> दादूबाबू की बाबी भाग १—१० १०० सागी हो

<sup>२</sup> दादूबाबू की बाबी भाग १—१० १०० लखी बाइ

<sup>३</sup> कबीर संन्यासी—१० ११



होती है। सगुणदात की ने तो करनी बिना करनी<sup>१</sup> को यदि बिहीन एति के सत्य कहा<sup>२</sup> है उनकी इत करनी और करनी को प्रकटावाले विद्वान्त न ही उन्हें कोरा भादर्शवादी होने से बचा लिना है। वास्तव में सन्त सत भादर्श और दानों के मध्य का विद्वान्त है।

संत सत की इतनी विवेचना करने के परचात् हम इत निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह मध्यमग की एक ऐसी विमूर्ति है बिछने तत्कालीन बर्तमान, अन्धकाराज्ञेय, ताबना क्षेत्र, उपाठनाज्ञेय तथा आदर्य आदि सभी क्षेत्रों में जैसे हुए कृमिपता, अदिकता, अग्यापहारिकता, रुद्धिवादिता और पाञ्चपद आदि के मयाबह तिमिर में सहज का हीपक बलापत्र सबको परिवर्तित और प्रच्ययित करने का सफल प्रयास किना था। यह प्रच्यय आत्र के युग का ही पथ प्रदर्शन कर रहा है और मन्दिष में सुग-सुग तक कटा रहेगा ऐसा हमारा विश्वास है।



<sup>१</sup> करनी करनी तो क्या मया जो करनी ना उदराय।

काव्य शून के कोर उनी एरण ही इत आब ॥ करनीर प्रयापत्री १० ३८

<sup>२</sup> करननाम की बाकी भाग १ १० ३८

करनी बिम करनी इनी ज्यों सीप बिम रकनी।

परिशिष्ट



## परिशिष्ट

### सन्तों के कुछ प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्द

शून्य—सन्तों की बानियों में हमें सेकड़ों स्थलों पर शून्य शब्द का प्रयोग मिलता है। उन्होंने उच्च विविध अर्थों, और विविध रूपों में प्रयोग किया है। उन सबको समझने के लिए इस शब्द की परम्परागत वृत्तभूमि वा सन्धीकरण आवश्यक है। शून्य शब्द का प्रयोग संस्कृत के प्राचीन धार्मिक साहित्य में बहुत कम मिलता है और वहाँ कहीं उल्लास प्रयोग किया भी गया है वह या तो आशय के अर्थ में हुआ है या भास्त्र के अर्थ में। महाभारत में विष्णु के सहस्र नामों का उल्लेख करते हुए उनका एक नाम शून्य भी बताया गया है। हाँ उल्लास है कि महाभारत के इस कथन पर पीढ़ों का प्रभाव हाँ किष्णु इतना तो स्वीकार करना ही पड़गा कि परम एतत् का शून्य करने की परम्परा सन्तों से पहले ही प्रवर्तित हो गई थी। आस्तिक दूरानों में वह उल्लास उल्लास का नाम माला<sup>१</sup> गया है। शून्यशब्द की दृष्ट भूमि पर प्रयास का भेद लगभग प्रथम शताब्दी में होनेवाले बौद्ध दार्शनिक नागाबुन का है। इन्होंने शून्य पर बड़े विचार से विचार किया है। नागाबुन के अनिदिक आन्देज, शान्तिदेश तथा शान्त रचित मानक बौद्ध आचार्यों ने भी उस मन्त्र का समझने की चेष्टा की थी।

शून्य<sup>२</sup> के अर्थ पर विचार करने हुए नागाबुन ने लिखा है। 'अनरक्षणं शान्तं प्रत्येकप्रवृत्तं निर्दिष्टं अनानार्थं एतदन्वयं लक्षणम्'<sup>३</sup>। अर्थात् शून्य वा शान्त अनरक्षण शान्त प्रवृत्तों द्वारा अनरक्षित निर्दिष्ट और अनानार्थ होता है। अनरक्षण का अर्थ है अनिवच्य स्वरूप अर्थात् शून्य वा शून्य का कोई भी मनुष्य जिज्ञासु के निवेदन नहीं कर सकता है। शान्त का अर्थ निरन्तर और निरन्तर भिन्न होता है। प्रवृत्तों द्वारा अनरक्षित रहकर भी शून्य की अनिदिकता की ओर ही संवत्त किया गया है। निर्दिष्टक कहकर शून्य की निरन्तर अन्वयता की ओर संवत्त किया गया है। उनके अनेक अर्थ भी नहीं लगाए जा सकते। इसी शब्द उस अनानार्थ कहा गया है। शून्य की इन विशेषताओं का उल्लेख बौद्धग्रन्थों में विविध प्रकार से कर विचार से किया गया है। नागाबुन के माननिक मत में शून्य का निर्दिष्टक भी कहा

<sup>१</sup> भारतीय दर्शन—बन्नेट उरण्याप—पृ० १११

<sup>२</sup> बौद्ध का शून्यशब्द का अर्थक्य एही अर्थ से—बौद्ध दर्शन और शून्य बहिः के अर्थक्य का किया गया है।

<sup>३</sup> बौद्ध दर्शन—बन्नेट उरण्याप—पृ० १११

गया है। नागार्जुन के अतिरिक्त अन्य माध्यमिकों ने शून्य की धारणा को आस्तिकता की सीमा तक पहुँचाने की चेष्टा की है। उन्होंने छत्र के दो प्रकार बताए हैं एक सामुचित और दूसरा पारमार्थिक। सामुचित छत्र का प्रयोग अविद्या उन्मुख व्यावहारिक छत्र नामरूपों के लिए किया गया है। पारमार्थिक छत्र से प्रज्ञाबलित वास्तविक छत्र का अर्थ लिया जाता है। इस छत्र को ही उन्होंने शून्य या शून्यता रूप कहा है। वे उक्त शून्यता का निरन्तर और निर्बाध को अस्ति कहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि माध्यमिक नागार्जुन का शून्य सम्बन्धी धारणा कुछ अस्पष्ट थी। उनके सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि वह अस्ति रूप है या नास्ति रूप है। किंतु बाद के माध्यमिकों की शून्य विवेचना से ऐसा स्पष्ट आभास होने लगता है। कि उनका शून्यवाद बहुत अर्थों में आस्तिक है। किंतु वह आस्तिकता भी मध्यम है। इसीलिए विद्वानों में उनके सम्बन्ध में मतभेद है कुमार<sup>१</sup> शंकर<sup>२</sup> आदि मध्दीन विद्वान् उनके नास्तिक मानने के पक्ष में हैं। विनयतोम<sup>३</sup> महाशार्व<sup>४</sup> अरबाण<sup>५</sup> आदि आधुनिक विद्वान् आस्तिक। हमारी समझ में वह नास्तिक होते हुए भी आस्तिकता की ओर झुका हुआ है। यही मूर्ति आगे बढ़ कर पीरे पीरे आस्तिक शून्यवाद के रूप में विकसित हुई। हमारा कथन भी कुछ रहस्यपूर्णता लगता है। क्योंकि हममें परस्पर विरोधाभास है। नास्तिक का आस्तिक को ओर रुझान कैसे हो सकता है। यह बात सम्भवतः माध्यमिक आचार्यों को भी सटकी थी इसीलिए उन्हें देता-देत<sup>६</sup> विहायवाद की अप्रत्या कल्पना बड़ी। उन्होंने अनेक रणकों पर शून्य का स्वरूप निरूपण देता-देत विहाय कदम ही किया है। यह विवेचना हुई महावाणियों के दृष्टिकोण से।

शून्य शब्द का प्रयोग हमें हीनवाणियों में भी मिलता है। किंतु वे उलट्ट अर्थ पूर्व अभाव रूप ही लेते थे। माध्यमिकों की तरह अर्थार्थरूप नहीं। अभावता शंकराचार्य आदि बौद्ध विरोधी आचार्यों में हीनवाणियों की शून्य धारणा को ही अंतिम मत् मानकर उलट्टा खपड़न किया है<sup>७</sup>।

<sup>१</sup> भारतीय दर्शन—बहोदर अण्णायाय—पृ० २२०

<sup>२</sup> छोड़नास्तिक—पृ० २६८—२७२

<sup>३</sup> शांकर मत—पृ० २११/२१

<sup>४</sup> अरबाण का बोधार्थ—पृ० २६०

<sup>५</sup> बौद्ध दर्शन—पृ० २९९

<sup>६</sup> बौद्ध दर्शन—पृ० २२२

<sup>७</sup> वेदान्त सूत्र—पृ० २११/२१९



मत्र बताया गया है। उसे बौद्धधर्मों में प्रज्ञा को ज्ञी और वाम कम मी कहा गया है। अतिशून्य को आलोच्यमात्र रूप बताया गया है। इनमें ४० विकल्पों की स्थिति मानी गई है। इसका स्वभाव परिकल्पित बताया गया है। उसे दक्षिण या उदात्त रूप मी कहा गया है। महाशून्य शून्य और अतिशून्य के मिलन से उद्भूत अवस्था का नाम है। बौद्ध तंत्र ग्रंथों में उसे प्रज्ञा और उदात्त के मिलन से उद्भूत अवस्था बताया गया है। कुछ ग्रंथों में परिनिष्पन्न रूप और आलोच्येयलम्बि स्वभाववाला भी निर्दिष्ट किया गया है। इती को अविद्या रूप मी बताया गया है। वह मी कई विकल्पों का स्थान है। सर्वशून्य चौथी अवस्था में है। इस अवस्था का स्वयं प्रकाशरूप निर्बिकार ज्ञानमय परमार्थ रूप तथा हेतुवैत विस्तारण कहा गया है। हठयोगप्रदीपिका<sup>१</sup> में चार शून्यों के स्थानात्मक पौगंडिक शब्दानुभूति की अवस्था में गुने जाने वाले चार प्रकार के शब्दों का उल्लेख किया गया है।<sup>२</sup> इससे प्रकट होता है कि तांत्रिकों की चार शून्योंवाली पाठ नापस्थी योग में अनेक समय पर विच्छिन्न हो रही थी। नापस्थ में ३ और १८ शून्यों वाली कल्पना की अवधारणा मी दूँदी या सक्ती है। किन्तु सिद्ध और संत मत में केवल चार शून्यों की कल्पना का ही किसी किसी रूप में अपनाने की चेष्टा की गई है। शून्य के अर्थ का जैसा कि हम ऊपर संकेत कर आये हैं क्रमिक विकसित होता गया। नापस्थ और सिद्धमत में आकर यह केवल परमार्थ उदात्त का ही वाचक नहीं रह पाया उसका प्रयोग और मी कई अर्थों में किया जाने लगा। केवल हठयोग प्रदीपिका में ही इतना प्रयोग चार-पाँच अर्थों में मिलता है। एक स्थल पर यह ब्रह्मरूप का वाचक है।<sup>३</sup> दूसरे स्थल पर उसका अर्थ देशकाल वस्तु परिच्छेद हीन ब्रह्म से किया गया है।<sup>४</sup> एक तीसरे स्थल पर यह गुण्मा नाडी के अर्थ का चोटक है।<sup>५</sup> एक स्थल पर यह अनाहव शक्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गोरक्षनाथ ने शून्य का प्रयोग उमाधि की अवस्था के लिए मी किया है।<sup>६</sup>

गोरक्षनाथ ने शून्य के अर्थ को और भी अधिक स्थापना दी। नागार्जुन ने उसका प्रयोग हेतुवैत विस्तारण तत्त्व के रूप में किया था। गोरक्षनाथ ने उसे हेतु

<sup>१</sup> पंच कर्म पातक ग्रंथ की दस्तलिखित प्रति पृ० २० की

<sup>२</sup> हठयोग प्रदीपिका—आर्यगर—४।०।१०२

<sup>३</sup> हठयोग प्रदीपिका—४।१०

<sup>४</sup> बदी—४।१२ की टीका दक्षिण

<sup>५</sup> बदी—४।४२ की टीका पृग्निप।

<sup>६</sup> गोरक्षनाथी मंत्र—७० ६०-६१

'व विसृज्य शब्द के रूप में वर्णित किया है।' यह उस परमात्मा रूप भी मानते । इसीलिए उसे उन्होंने कर्ण मर्ता और चहर्ता कहा है।<sup>१</sup> उनकी दृष्टि में हमें बात और निरंजन आदि सभी कुछ है।<sup>२</sup> गोरक्षनाथ मन का परमात्मा रूप मानते थे यह हम अभी ऊपर बता आये हैं। इसी लिए उन्होंने शून्य को मन स्वरूपी होने में संकोच नहीं किया है।<sup>३</sup> मायपदियों ने मुनि का प्रयोग सहस्रार बनन के लिए किया है।<sup>४</sup> कहीं कहीं यह अक्षरम का बाधक भी बनकर आया है<sup>५</sup> उसका प्रयोग गुप्ता के अर्थ में भी मिलता है।<sup>६</sup>

मायपद में शून्य की कल्पना बौद्धों के विजाय सिद्धांत का आधार लक्ष्य नहीं है बान पकड़ी है। गोरक्षनाथ ने तीन शून्यों की कल्पना की है। त्रिभु ठाडोन इन तीनों के नाम भिन्न-भिन्न रूपों पर भिन्न प्रकार से गिनाये हैं। एक रूप पर उनका नाम क्रमशः सहज सुनि, समि सुनि और अतीत सुनि बतलाये गए हैं।<sup>७</sup> तथा दूसरे रूप पर अमम सुनि, परम सुनि और अतीत सुनि बदे<sup>८</sup> गए हैं।

संतों की शून्य के प्रयोग की उत्पत्ति कभी-कभी परम्परा प्राप्त हुई थी। उनकी ज्य संक्षेपी धारणाएँ इसी दृष्टभूमि पर कुछ मौनिकता लिए विवक्षित हुए हैं। संतों ने हमें शून्य का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में सिखाया है।

परमार्थ तत्त्व के रूप में—इसका उदाहरण में दाह की निम्नलिखित विधा देनी आ सक्ती है। —

- १ बसनी न मुख्य सुख न बसनी अमम अगाध पया ।  
गगन स्थिर मर्दि बाधक बोध ताका नीर धादुग कैया ॥ गोरक्षनाथी—१० १
- २ अक्षर सुनि धारि सुनि आरि । सुनि बोधा रदे म्मारि ।  
सत्त सुनि मन तन धिर रहै । पया विचार मन्नि १६ ॥ गोरक्षनाथी—१० ११२
- ३ सुनि न आरि सुनि न बाध । सुनि निरंजन धारि धार । गोरक्षनाथी १० ७३  
(पं० २००३)
- ४ अक्षर मन का सुनि कर । गोरक्षनाथ की बानी—१० १८०
- ५ सुनि अक्षर कर्ण कीकर अदिका अंद सुनि अ उक्तनि परिप । गोरक्षनाथी १० २०
- ६ गगन संक्षेप में सुनि द्वारमन्त्रिणी अक्षर धार अक्षर । गोरक्षनाथी १० ९०
- ७ गोरक्षनाथी संग्रह—३० अक्षरम १ ११४
- ८ अक्षर अक्षर सुनि अक्षरनी धारि । मनि सुनि गगनपु बुकारि ।  
अनीन सुनि अदा म्मारि । परम तन में कई मयअरि ॥ गोरक्षनाथी १० ११३
- ९ अक्षर उम लेख में अति बसरे । अमम सुनि ध बाधा नुरे ।  
परम सुनि ये विमुक्त सार । अनीन सुनि अदिका कर ॥ गोरक्षनाथी १० ११४
- १० गोरक्षनाथी भाग १—१० २१



सहज मुनि सब ठौर है सब पद सबही माहिं ।

वहाँ निरञ्जन रमि छाया कोई गुण व्यापै नाहिं ॥

गोरखनाथ के छाया श्रवणों ने भी शून्य को कर्त्ता मर्त्ता और संहरता ज्ञानित करने की चेष्टा की है। दादू ने लिखा है<sup>१</sup>—

सुनहिं भाग्य आईया सुनहिं भागर आई ।

शब्द शब्द के अर्थ में—श्रवणों ने शून्य का प्रयोग शब्द शब्द के लिए भी किया है। भोज्या साहब लिखते हैं<sup>२</sup>—

शब्द शब्द मन सुनि लीन मीला रहति न वहाँ दिन ।

शिव के अर्थ में—श्रवणों ने शून्य का प्रयोग शिव के अर्थ में भी किया है। संत गुलाब साहब ने लिखा है<sup>३</sup>—

सुनहिं सकति समाइल शिव के घर शक्ति निवास ।

बीज के अर्थ में—संत कबीर ने एक स्थल पर मुनि का प्रयोग साधक आत्मा अर्थात् बीज साध्य आत्मा अर्थात् परमात्मा इन दोनों के लिए एक साथ ही किया है<sup>४</sup> ।

सुनहिं मुझ मिला समदरीं पपन रूप हुई जायेगी ।

समय और स्थान के अर्थ में—श्रवणों ने कहीं-कहीं तपस्वि का प्रयोग उलखी अर्थ में किया है बिना अर्थ में पारंपार्य दर्शनो में बाइबल और त्वेथ का प्रयोग किया गया है। निम्नलिखित पंक्ति में मुझे मुष्नि का प्रयोग स्थान या 'त्वेष' के अर्थ में किया हुआ जान पड़ता है<sup>५</sup>—

सहजै मुष्नि में रमि रह्या अहाँ सहाँ सयठाम ।

इस प्रकार पलटू साहब की निम्नलिखित पंक्तियों में मुष्नि का प्रयोग दर्शन या समय प्रवाह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है ।

<sup>१</sup> दादूबानी भाग १—पृ० ८२

<sup>२</sup> भोज्या साहब की बानी—पृ० ४१

<sup>३</sup> गुलाबसाहबी संग्रह पृ० ४६

<sup>४</sup> कबीर संग्रहपत्री पृ० २०१

<sup>५</sup> दादूबानी संग्रह भाग १ पृ० २०

मोह मोह मंत्रि में बोलते यह राज्य की म्यानी ।<sup>१</sup>

घट्टारंघ के रूप में—संतो ने शून्य का प्रयोग ब्रह्मरंघ के रूप में भी किया है। दादू ने एक स्थल पर मन को मीन ब्रह्मरंघ का सारास तथा निगुण ब्रह्म को नीर कहते हुए लिखा है—

मुक्ति मरोयर मीन मन नीर निरंजन देय ।<sup>२</sup>

इस प्रकार संतो ने गुण का प्रयोग बहुत से मौलिक अर्थों में भी किया है। इसी प्रसंग में हम तीन शून्यों का छि छिदात्र की बर्णा कर देना चाहते हैं।

ऊपर हम संकेत कर चुके हैं कि शून्यों की संख्या व संबंध में भिन्न-भिन्न जाटि के विद्वानों में परस्पर मतभेद है। तंत्र प्रथा में कहीं-कहीं पर चार और कहीं छान्द शून्यों की पर्यन्ता भी गई है। बौद्ध प्रथा में शून्यों की संख्या बीस तक पहुँचा दी गई है। गोरखनाथ न बसल तीन शून्यों वा ही उल्लेख किया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

तीन मुन्य की रदनी जानै ता घटि पाप न पुना ।<sup>३</sup>

संतो में हमें केवल दो एक स्थलों पर ही शून्यों की संख्या का उल्लेख मिलता है। दादू ने एक स्थल पर तीन शून्यों का बर्णन किया है कि—

फायो मुक्ति पंचम पाया आत्म शून्य मान परगामा<sup>४</sup> ।

परम शून्य ब्रह्म सोमेला आगे दादू आप अनेना ॥

दादू की इस पंक्ति से स्पष्ट प्रकट होता है कि यह तीन व अतिरिक्त एक चौथा शून्य भी मानत थे। जो इन तीनों से परे थे। उन्होंने दूसरे स्थल पर इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा है—

तीन गुण आकार की थींथी निगुण नाम<sup>५</sup> ।

तीन शून्यों की कहना हमें गोरखनाथ व अनुकरण पर भी गई जान पड़ती है। और चौथे शून्य की कहना ठाँकरी के आचार पर लड़ी हुई प्रथा है ही है। दादू के अतिरिक्त तीन शून्यों की बर्णा और चित्री ग्रंथ में मटी मिलती। इस प्रकार हम देखा है कि संतो न शून्य का प्रयोग बहुत व अर्थों में किया है। वही पर एक प्रश्न उठ

<sup>१</sup> बहट्ट मारव की बानी भाग ३ पृ० ३२

<sup>२</sup> दादूबानी भाग ३ पृ० ३२

<sup>३</sup> गोरखबानी—पृ० ३२

<sup>४</sup> दादूबानी भाग ३ पृ० ३३

<sup>५</sup> वही

सच्यता है वह यह कि क्या संत लोग शून्य में सिद्धांत रूप से विरक्त रहते थे। या उन्होंने उठकर अश्वेत केवल परम्परागत रूप में ही कर दिया है। हमारी अपनी हठ धारणा है कि वे लोग शून्य को अपने निर्गुण ब्रह्म से ही ब्रह्म समझते थे। संत शून्य में तीन शब्द संकेत किया है। संत दरिया साहब ने जो शून्यवाद के प्रति शब्द शब्दों में अभ्युपाय प्रगट की है।

सुप्त-सुप्त सप सरी मुक्ताय सुप्त न होसी हमरि उपाय।  
सुप्त न धरती सुप्त न पानी सुप्त कतही नहि रूचिय कानी<sup>१</sup>।

**सुरति निरति**—शब्द सुरति योग के अंतर्गत में हम संतों के इन दोनों पारिभाषिक शब्दों के संबंध में विचार कर चुके हैं अतएव यहाँ पर हम बहुत संक्षेप में उनकी विवेचना करेंगे। इन दोनों शब्दों के अर्थ के संबंध में मतभेद नहीं है। तत्पूर्वार्ध 'नर' में सुरति शब्द को सोप से निष्ठा हुआ सिद्ध किया है। शब्द 'ब्रह्म' इसको 'सुरति' का अन्वय मानते हैं। संत गुलाब साहब ने उसे मन का पर्यायवाची बतलाया है। राधास्वामी<sup>२</sup> मतवाले इसे जीव का वाक्य कहते हैं। आचार्य चित्तिमोहम<sup>३</sup> सेन ने सुरति का अर्थ प्रेम और निरति का प्रेम वैराग्य लिया है। आचार्य हजारी<sup>४</sup> प्रसाद ने इन दोनों के अर्थ क्रमशः अंतर्मुखी बुद्धि और बहिर्मुखी बुद्धि सिद्ध करने की चेष्टा की है। डॉ० रामकुमार<sup>५</sup> वर्मा ने इसे सुरते इसलामिया का वाक्य माना है। श्री परशुराम बतुर्वेदी ने इसका अर्थ शब्दोन्मुक्त विद्य किया है। साम्प्रदायिक ग्रंथों में भी श्री बौद्ध-बौद्ध भिन्नता गया है। विचारशील यह है कि इनके अर्थों के संबंध में इतना मतभेद क्यों है। वास्तव में वाच्य यह है कि संतों में प्रायः एक ही पारिभाषिक शब्द कुछ तो भिन्न-भिन्न परम्पराओं के प्रभाव के कारण तथा कुछ सीलित्वता प्रदर्शन की कामना से भिन्न-भिन्न शब्दों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है। यदि लोक की भाव हो इन शब्दों का प्रयोग उन सभी अर्थों में मिल सकता है किन्तु यहाँ ऊपर की गई है। इनके अतिरिक्त उल्लेख प्रयोग और भी कई नये अर्थों में मिलता है।

<sup>१</sup> दरिया सागर पृ० २१

<sup>२</sup> विद्यापीठ त्रैमासिक पत्रिका भाग २ पृ० १२२

<sup>३</sup> किंग्ज हल्ल आठ हिंदी कोठी पृ० २६७ पण्डितजी गोप्य रेजि

<sup>४</sup> हिंदी भाषा में किंग्ज सम्पादन पृ० ७१८ से उद्धृत

<sup>५</sup> कल्याण के योगार्थ सुरतियोग तीर्थक संग्रह

<sup>६</sup> कबीर जवा संस्कार पृ० २२७

<sup>७</sup> वही

कबीर का रहस्यवाद परिशिष्ट शब्द।

<sup>८</sup> कबीर साहित्य की परत—पृ० २२१

यदि इन शब्दों की परम्परा की खास की जाये तो इनका सर्वप्रथम रूप प्रयोग नाथपर्य में मिलेगा। सिद्धों की बानियों में भी इस शब्द की गलत मिलती है। वहाँ पर इसका प्रयोग प्रेम या मीसुन के अर्थ में किया गया है।<sup>१</sup> संत लोग इस प्रश्न के अर्थ से सर्वत्र पूछा करते रहे हैं। अतएव ऊपर इन शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से सिद्धों की परम्परा का कोई प्रभाव नहीं माना जा सकता।

संतों ने इन दोनों शब्दों के प्रयोग में नाथपर्यी परम्परा से अच्छी प्रेरणा मिली थी। नाथपर्य में मुक्ति को बहुत महत्त्व दिया गया है। मछीन्द्र गोरक्षबोध में लिखा है—

अथधू मुक्ति मुनि धैरी मुक्ति मुनि चले।<sup>२</sup>  
मुक्ति मुनि धोस्त मुक्ति मुनि मिले।

मुक्ति का अर्थ वे सम्भक्तः विमुक्ति अथवा मन की मुक्ति लेते थे। उन्होंने उक्त पद्यन करते हुए लिखा है कि पिना कानों के होते हुए यह नाथ का साधन करनी है। एक<sup>३</sup> दूसरे स्थान पर उन्होंने इसका प्रयोग शब्दोक्तुना चित्त के और निरति का प्रयोग निरात्म्य अथवा के अर्थ में किया गया है।<sup>४</sup> एक दूसरे स्थान पर उन्होंने मुक्ति निरति में निर्भय रहने का उद्देश्य दिया है। कद<sup>५</sup> स्थानों पर उन्होंने मुक्ति और निरति का प्रयोग इ द क रूप में किया है। वे अद्वैताचार्य का पण्डन करने हुए लिखते हैं—

निरति न मुक्ति जोग न भोग जुरा मरग्य नहीं तहाँ रोग।

यहाँ पर निरति और मुक्ति के साथ साथ भोग और जुरा मरग्य प्रयोग करके संत गोरक्षनाथ ने दोनों की विरोधी प्रकृति का स्पष्ट संकेत दिया है। मुक्ति का अर्थ यह मुक्ति या साधना में लगे हुए साधक चित्त का अर्थ लेते व और उक्त विरोध में निरति का अर्थ करमा। वे साथ निरति लगाना या करता है। यह अर्थ ऊपर मन साधना से मल भी पाता है। नाथपर्यियों का सपर मुक्ति से निरति का विभा कर शब्द मल या साधन करना था।

<sup>१</sup> सिद्ध साहिब—वर्षादीर भारती—१० ४०२

<sup>२</sup> गोरक्षबानी संप्रद १ १११

<sup>३</sup> गोरक्षबानी संप्रद—१० ११०१-१० पर

<sup>४</sup> अथधू साध अथारन मुक्ति मुक्ति निरति निरति मल साधन संद। सं० बानी १० १११

<sup>५</sup> मुक्ति निरति में मुक्ति रहे जग विचार मुक्ति परे। गोरक्षबानी—१० ११०

<sup>६</sup> गोरक्षबानी १० १२

संतों की और नामपवित्रों की सृष्टि निरति साधना एक एक नहीं समझी जा सकती जब तक उपनिषदों की आत्म साधना का रूप स्पष्ट न हो जाये। उपनिषदों में आत्मा से ही परमात्मा के साक्षात्कार के सिद्धांत की स्पष्टता की गई है। ऋग्वेदनिषद्<sup>१</sup> में आत्मा के प्राप्त और प्राप्त्य मेदा को छाया और आत्म के सहारे स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार मुंडकोपनिषद्<sup>२</sup> में दो पक्षियों के रूपक से आत्मा और ज्ञेय आत्माओं की स्पष्टता की गई है जब जीवात्मा अंतर्मुखी की जाती है तभी उसे हृदयरस पर आत्मा का साक्षात्कार होता है। ऋग्वेदनिषद् में<sup>३</sup> इस संबंध में स्पष्ट सिद्धांत है कि स्वयं भू परमात्मा ने बहिर्मुखी वृत्तियों को दृष्टि कर दिया है। यही कारण है कि जीव बाह्य वृत्तियों को देखता है अंतःरत्ना का नहीं। अमरत्व की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति बहिर्मुखी वृत्तियों को जब में कर लेता है और उनका अंतर्मुखी करके प्रत्येक आत्मा के दर्शन करता है। उपनिषदों का यह सिद्धांत ही संतों के शक्ति शिवापाठना तथा नामपवित्रों और संतों के शब्द सृष्टि योग की वास्तविक आधारभूमि है।

उपनिषदों के प्रत्यक्ष-योग साधना का प्रमाण भी संतों के शब्द सृष्टि योग पर दिखलाई पड़ता है। मुंडकोपनिषद्<sup>४</sup> में लिखा है। प्रत्यक्ष योगी प्रत्यक्ष रूप के सहारे अपने बहिर्मुखी जीव को अंतर्मुखी करके हृदयरस प्रसव में लीन कर देता है। संतों के शब्द सृष्टि योग को समझने के लिए उपयुक्त स्रोत एवं नामपवी परम्पराओं को ध्यान में रखना पड़ेगा।

शब्द सृष्टियोग शब्दों का प्रयोग संतों ने अविच्छेद परम्परगत अर्थों में किया है किन्तु नहीं-कहीं पर उन्होंने अपने ढंग पर मौलिक अर्थ देने की भी चेष्टा की है। वह शब्द उनमें हमें सामान्य और पारिभाषिक दलों रूपों में प्रयुक्त मिलता है। सामान्य अर्थ में तो वह सृष्टि अथवा ज्ञेय का वाचक है। अपने पारिभाषिक रूप में वह निम्न लिखित अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—

गोरक्षनाथ के अनुकरण पर शब्दोन्मुख विषय के अर्थ में—

सब कहीं में हमें गोरक्षनाथ के ढंग पर सृष्टि निरति का प्रयोग मुक्ति और निरसंब विषय के अर्थ में मिलता है।

<sup>१</sup> ऋग्वेदनिषद्—२।७

<sup>२</sup> मुंडकोपनिषद्—३।१२

<sup>३</sup> ऋग्वेदनिषद्—२।१।१

<sup>४</sup> मुंडकोपनिषद्—२।७

सुरति समानी निरति में निरत रही निरपार ।

सुरति निरति परचा भया तप सुने स्वप्न दुष्कार ॥<sup>१</sup>

इन पंक्तियों का अर्थ उरनिर्दिष्ट परंपरा के अनुकूल साधक आत्मा और साध्या आत्मा भी श्रिया भा सचता है । निरति या साध्या आत्मा का शुद्ध बुद्ध नित्यरूपणी होती है । सुरति साधक आत्मा है जब वह उक्त सादात्म्य स्थापित कर लेती है तो संसृति अर्थात् मगधान के दर्शन हा करते हैं । यह अर्थ तो दुष्सा उरनिर्दिष्ट परंपरा के अनुकूल और नापरंपरी परंपरा के अनुकूल । इसका अर्थ थाका इसका भिन्न हागा कि जब शब्दात्म्य विषय निरालंब विषय से मिल जाता है तब स्वयंभूतार सुख जाता है और अनहद नाद रूपी मस श्री अनुभूति होने लगती है ।

सुरति का अर्थ परमात्मा के रूप में—कबीर<sup>२</sup> ने एक स्थान पर 'साहब सुरति स्वरूप' लिखकर सुरति का परमात्म का भी स्वभाव लिखा है ।

स्मृति के अर्थ में—भीमा साहब<sup>३</sup> ने सुरति का प्रयोग स्मृति के अर्थ में करते हुए लिखा है—

फालिल माम उपासिन सुरति पलत परदेस

यहाँ पर उन्होंने स्मृति रूपी सुरति का मानवीकरण करके उस रिशदनी मारिषा के रूप में चित्रित किया है । इन अर्थों के अतिरिक्त कठों में हमें सुरति निरति का प्रयोग नाद विन्दु के अर्थ में भी मिलता है । कठ भीमा साहब न लिखा है—

सुरति निरति के मेला होय नाद विन्दु पन्धमम मोय<sup>४</sup> ।

इन अर्थों के अतिरिक्त कठों ने सुरति शब्द का प्रयोग चित्त<sup>५</sup> वृत्ति, मन, सुसुप्ता<sup>६</sup>, सुहसनी<sup>७</sup>, शक्ति<sup>८</sup> प्यान<sup>९</sup> बीब<sup>१०</sup> आदि अनेक अर्थों में किया है । बाग्यव

<sup>१</sup> कबीर प्रंपाचसी ५० १२

<sup>२</sup> कबीर प्रंपाचसी ५०

<sup>३</sup> भीमा साहब की बाणी ५० ७

<sup>४</sup> भीमा साहब की बाणी ५० ३४

<sup>५</sup> प्रेम प्राणि एत कृपण हो सुरति के उर लगाव—५० बा० ५० ८१

<sup>६</sup> हारम में सुरति काम उरत तन बाणी—५० बा० १२०

<sup>७</sup> चंद्र सुरत नंब रोषा सुरति होर लगाव—५० बा० साहब की बाणी ५० ७१

सुरति कर सम्यक कर कर पूव उरत भुग—पन्धु बाणी भाग ३ ५० १

<sup>८</sup> एता मला सुरति श्री समजाव कृपा कर न काम—५० बा० बाणी ५० ११

<sup>९</sup> साहब कर क नम हा सुरति लगाव—१० ५० ७१

<sup>१०</sup> सुरति प्रेमव बाग्यव जाते बरम हाइ करि धारा । भीमा साहब की बाणी ५० ४

में उम्तो की यह प्रवृत्ति थी कि वे परंपरागत शब्द से अपनी प्रतिमा के कल पर अपना मनमाना अर्थ ले लिया करते थे और यह लटकता भी नहीं था।

नाद विन्दु—उम्तो में हमें नाद विन्दु की अर्थों भी मिलती हैं। सृष्टि निरपेक्ष के उद्देश्य नाद विन्दु शब्द भी एक ही शाय प्रयुक्त होते हैं। इन दोनों अर्थों अर्थ तकनीकी शाय भी बहुत है। नाद विन्दु शब्दों का प्रयोग उम्तो से पहले तंत्र मय में तथा नाद सम्प्रदाय में प्रचुरता से मिलता है। शैवशाक्त तंत्रों में इनका प्रयोग विविध अर्थों और विविध अर्थों में किया गया है। तंत्र शास्त्र के मंत्र पद्य में यह अर्थ और अर्थ के प्रतीक माने गये हैं।<sup>१</sup> कुछ तंत्रों में नाद को विराट् शक्ति के रूप में कल्पित किया गया है और उससे सृष्टि का विकास बतलाया गया है।<sup>२</sup> कुछ तंत्रों के अनुसार सच्चिदानन्द रूपी तन्मय शिव से शक्ति का प्रादुर्भाव और शक्ति से नाद विन्दु की उत्पत्ति कही गई है। इसी विन्दु से आगे चलकर संपूर्ण सृष्टि विकसित हुई है। कुछ<sup>३</sup> भेदवादी तंत्रियों का मत है कि शिव शक्ति नाम के दो तत्त्व होते हैं। शिव विमर्श के रूप में शक्ति में प्रवेश करता है और बाद में विन्दु का रूप धारण कर लेता है। विन्दु का प्रथम विकास नाद में होता है। पुनरुत्पत्ति का विकास होता है।<sup>४</sup> कुछ भेदवादी तंत्रिक शिव शक्ति को समवाय रूप से परिभाषा एक तत्त्व मानते हैं और विन्दु को वृत्त तत्त्व।<sup>५</sup>

बीज तंत्रों में नाद विन्दु की व्याख्या प्रतीकवाचक रूप से भी की गई है। विन्दु को अपरिवर्तनीय ज्ञान का प्रतीक कहा गया है।<sup>६</sup> इनमें हमें कहीं-कहीं पर विन्दु की कल्पना इतनीगिक व्याप्ति के रूप में भी मिलती है।<sup>७</sup> इसी शैव तंत्रों में नाद और विन्दु शिव और शक्ति के पर्यायवाची मान गये हैं।<sup>८</sup> बीज तंत्रों में शंखे प्रका और उपाय का वाचक भी बतलाया गया है तंत्रों और इतनीगिक अर्थों में प्रयुक्त होने वाले रत्ना, सूर्य, रवि, प्राण, शमन, अक्षी, बसुना, शक्त, रज मात, पुण्य, नाद और

<sup>१</sup> दृष्टि मार्गदर्शक चार्जर अवेकन पृ० ३३

<sup>२</sup> तंत्राक्षर चित्राक्षरी पृथक् अवेकन सीकेएल पृ० ११३

<sup>३</sup> का काकरोसोतन कोणपूज ११३० में को० सी० कच्छरी विभिन्न विद्यामयी आक्ष तंत्र नामक खेप पृ० ३३ से १०० तक।

<sup>४</sup> अवेकन अक्षर आक्ष चार० जी० अक्षरकर वाकपूज पृ० २११। ११२२ का अक्षरवाय।

<sup>५</sup> अक्षरवाय के साधनाक गापीनाथ अक्षरवाय विभिन्न तंत्रिक दृष्टि नामक खेप पृ० ४८१

<sup>६</sup> इंदोहरान दू तंत्रिक पुस्तिका पृ० १०

<sup>७</sup> इंदोहरान दू तंत्रिक पुस्तिका पृ० १११

<sup>८</sup> प्रीतिविक्रम आक्ष तंत्र चार्जर अवेकन पृ० २२६

स्वप्न आदि शब्दों का प्रयोग भी कभी कभी बिन्दु के अर्थ में किया गया है। इसी प्रकार भाद्र के लिए लक्ष्मी, पन्ना, शशि, अराज, धनन, चाली, गंगा, शुक्र, वसु, अनाक, महति, माहक और स्वर शब्दों का प्रयोग नाद के अर्थ में मिलता है।<sup>१</sup>

इन शब्दों के अर्थों का अर्थज्ञा विज्ञास हमें मत्स्येन्द्रनाथी, गोरक्षनाथी तथा अन्य योगिक ग्रन्थों में मिलता है। कौलरान नियम में बिन्दु को एक स्थान पर मना लिए भी शक्ति बतलाया गया है। दूसरे स्थान पर उस शिव की स्तम्भ शक्ति कहा गया है। इसमें बिन्दु से ही नाद की उत्पत्ति बतलाई गई<sup>२</sup> है।

नाद बिन्दु साधना को गोरक्षनाथ ने विशेष महत्त्व दिया<sup>३</sup> है। उन्होंने लिखा है—नाद बिन्दु शुक्र परस्पर के समान हैं बिन्दु बिन्दुने उनकी साधना कर ली से पूर्ण सिद्धाकारण को प्राप्त हो जाते<sup>४</sup> हैं। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने पुन लिखा<sup>५</sup> है—

नाद बिन्दु जाके अरु ताकी सेवा पारपनी करै ।

इन शक्तियों से प्रकृत हुआ है कि गोरक्षनाथ नाद और बिन्दु को केवल भौतिक स्तर मानते थे पर शिव का इन दोनों से परे समझते हैं। पर यह भी अनुभव करते थे कि आध्यात्मिक अनुभूति के बिना बिन्दु साधना भी अर्थहीन है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—बिन्दु बिन्दु सभी बालक हैं बिन्दु महाबिन्दु का कोई निरन्ता हो प्राप्त करता है। आध्यात्मिक अनुभूति के बिना का बिन्दु मात्र के अर्थ बाद किया का आभय प्रदान करते हैं उनका शरीर स्थिर रहन नहीं देना जाता है। योग्य न बिन्दु उद्भूत का प्रयोग हठयोग महीरिद्धा के ढंग पर बीजात्मा के अर्थ में भा प्रयुक्त किया है। जहाँ पर वे नाद में बिन्दु के गानने की बात करते हैं वही बिन्दु का अर्थ बीजात्मा ही लेना चाहिए। उन्होंने कहीं-कहीं पर उभे शिवशब्द<sup>६</sup> भी कहा है। याग उदनिपरी में नाद बिन्दु के अर्थ का और भा अर्थिक विज्ञास

<sup>१</sup> ह्योदयान ह्यु तादिक बुद्धिम्य ५ ११८ व ११९

<sup>२</sup> एक मय के लिए शक्ति शक्तिज्ञान विज्ञाप भूमिक भाग ५० ४४ ।

<sup>३</sup> भा० बामी ५० ९१

<sup>४</sup> नाद बिन्दु है शैवी विद्या बिन्दु साधना में विद्ये विद्या । योग्य बामी ५० ९१ ।

<sup>५</sup> गोरक्षनाथी ५ ०

<sup>६</sup> गोरक्षनाथी संग्रह ५ १००



बिनाई पड़ता है। बिंदु का प्रयोग उनमें महेश्वर<sup>१</sup> पर मन<sup>२</sup> बाध<sup>३</sup> बुद्धि<sup>४</sup> आदि विविध अर्थों में किया गया है। नादबिंदु शब्दों का प्रयोग इत्योग प्रदीपिका में भी किया गया है। उसमें नाद शब्द का प्रयोग परब्रह्म<sup>५</sup> और अनहद<sup>६</sup> नाद इन दो अर्थों में मिलता है। इसी प्रकार उसमें बिन्दु शब्द का प्रयोग भीष<sup>७</sup> तथा<sup>८</sup> जीवत्मा<sup>९</sup> इन दो अर्थों में मिलता है।

नाद बिंदु शब्द का प्रयोग सिद्धों में भी मिलता है। किन्तु उनही इनके प्रति विशेष ब्रह्म<sup>१०</sup> न थी। कारण यह था कि बिन्दु साधना अभिधत्तर सदाब्रह्म और ब्रह्मपर्यं से संबंधित थी और सिद्ध लोग अभिधत्तर ब्रह्ममागी होने के कारण इनको विशेष महत्त्व नहीं देते थे।

नाद बिंदु शब्द का प्रयोग सर्वों में भी किया है। ये लोग इन शब्दों को उन्हीं अर्थों में ग्रहण करते थे जिन अर्थों में उनका प्रयोग माधवजी साहित्य में हुआ है। सर्वों में नाद बिंदु का प्रयोग अभिधत्तर उन्हीं अर्थों में किया है जिस अर्थ में वे सुरति निरति का अर्थ थे उन्हें वे नाद का समकक्ष मानते थे। भीष्मा साहब ने लिखा<sup>११</sup> है—

सुरति निरति का मेला होय नाद बिंदु एक सम मोय ।

संत काग नाद बिंदु में सम्यं सेवक संबंध भी मानते थे। वे सम्यतः उपनिषदिक शरीररूप ज्ञेय और ज्ञान वाले सिद्धों से प्रभावित थे। उन्हीं से प्रभावित होकर ही सम्भवतः उन्होंने सम्यं सेवक भाव माना है। भीष्मा साहब लिखते<sup>१२</sup> हैं—

नाद बिंदु को मूह होय ये साहस्य पै सेवक जोय ।

<sup>१</sup> यथात्र बिन्दु उपनिषद् १०२ उक्तोक्त और योगोपनिषद् ५० १११ ।

<sup>२</sup> योगोपनिषद् ५० ११० पर योगब्रह्मोपनिषद् २ उक्तोक्त तृतीय अध्याय ।

<sup>३</sup> योगब्रह्मोपनिषद् ३ ८

<sup>४</sup> योगसिद्धोपनिषद् १११००

<sup>५</sup> इत्योग प्रदीपिका ३।०२ पी टीका

<sup>६</sup> इत्योग प्रदीपिका ३।०२

<sup>७</sup> इत्योग प्रदीपिका ३।१०२

<sup>८</sup> इत्योग प्रदीपिका ३।०२

<sup>९</sup> हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल ५० ३

<sup>१०</sup> भीष्मा साहब की बानी ५० ३७ ।

<sup>११</sup> भीष्मा साहब की बानी ५० ३० ।

संतों ने नाद विंदु की एककार की स्थिति में मन क लय होने की बात भी नहीं है।  
भीष्मा साहब ने लिखा<sup>१</sup> है—

नाद विंदु को जूह भयो मनया तहं खल लुभाई ।

बिना प्रभार गोरलनामी लोग तत्त्व चिंतन के बिना नादविंदु साधना को व्यर्थ समझते  
ये उठी प्रकार संत लोग भक्ति के बिना उसे निश्चार समझते थे। यह बात कबीर की  
निम्नलिखित<sup>२</sup> श्रुतियों से प्रकट होती है—

नाद विंदु की नायरी राम नाम फनिहार ।

कही कबीर गुण गाहने गुरु गनि उवरी पार ॥

यहाँ तक कबीर ने नादविंदु को नाद और राम का रूपधार कहकर नादविंदु की ब्रह्मा  
और राम की सक्रियता व्यंजित की है। बिनाके प्रभार कर्णपा क बिना नाद ब्रह्म और  
उपभोगहीन होती है उठी प्रकार नादविंदु साधना भगवद् भक्ति के बिना निश्चार होती  
है। संतों ने कही-कही पर विंदु का अर्थ भीर्य साधना अथवा ब्रह्मपर्य भी लिया है।  
उठ अक्षरपा में भी वे विचार और भ्रष्टाहीन साधना का अर्थ समझत थे। उन्होंने  
एक स्थल पर स्पष्ट लिखा<sup>३</sup> है—

विंदु रात जो तरई माई । सुमरं क्यों न परमगति पाई ॥

इत प्रकार हम देखते हैं कि संत लोग नाद विंदु का कर्ण साधना मात्र मानत थे  
साध्य नहीं।

सूत्र—संतों में हमें तद्वत् शब्द का प्रयोग भी बहुत अधिक मिलता है।

विशेष तः तद्वत् साधना बहुत प्राचीन है। इतना उदात्त कर्मगत और आचार्य प्रदान  
वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में वैदिक युग में ही ही कहा गया था। पुरो में बलिष्ठ  
निवारणीय तथा ब्राह्म्य तद्वत्पर्यं क ही अनुप्रायी थे। वे भाग पुरुरात्तः य और पुरुर  
का हा सबसे अधिक महत्त्व देते थे। वैदिक युग के बाद तद्वत्साधना निवारण तद्व  
विषय ब्राह्म्य और वैदिकों में हुआ। तद्वत्साधना की ओर से तद्वत् शब्द का प्रयोग कई  
श्रुतियों में किया है। समस्तप्रमाण तथा वे उभे ही तद्वत् निवारण तथा के रूप में प्रमाण  
करते हैं।<sup>४</sup>

<sup>१</sup> भीष्मा साहब की कामी पृ० ११ ।

<sup>२</sup> कबीर प्रणवकवी पृ० १४ ।

<sup>३</sup> कबीर प्रणवकवी पृ० २०० ।

<sup>४</sup> निस्सी० शेरशेख—कामी पृ० १ ।

‘सहस्रं भावाभावस्य पुच्छत् । सुखस्य कस्यचिद्दि समसस इच्छत्’ हेतुवदेव विना  
 प्रत्येक तत्त्व के अतिरिक्त संतों ने सहस्रशब्द का प्रयोग शुरू<sup>१</sup> ‘आत्मा के सहस्राक्षरस्य’  
 शीघ्रचिति<sup>२</sup> महासुख<sup>३</sup> परमार्थस्व<sup>४</sup> आदि के अर्थों में भी प्रयुक्त किया है। यह सम-  
 रकता का वाचक भी है।

सहस्रेष्वित्तियोऽहं शृंग । इह जन्मदि सिद्धि ॥ भौस मंग ।

सहस्र शब्द का प्रयोग सहस्रिका वैष्णवों में भी पाया जाता है। किन्तु वे  
 उलकी शीघ्र सहस्रियों की भाँति केवल शुद्ध परमार्थ स्व रूप ही नहीं मानते हैं उनमें  
 उन्होंने परमप्रेम की प्रसिद्ध भी की है। दूसरे शब्दों में हम पूँ चक्षु सचते हैं कि सह-  
 स्रिया वैष्णव सहस्र का अर्थ प्रेम की चरम स्थिति सेते हैं।

सहस्रशब्द का प्रयोग नायर्षधियों में भी मिलता है। उन्होंने उलकी कमी परम  
 स्व<sup>५</sup> के अर्थ में कमी परमज्ञान<sup>६</sup> के अर्थ में कमी परमपद<sup>७</sup> के अर्थ में और कमी  
 शिवाशक्ति<sup>८</sup> के सर्वोत्तम की सहस्र स्थिति के अर्थ में प्रयुक्त किया है। किन्तु सामान्य  
 तया वे इसका प्रयोग जीवन के सहस्राक्षरस्य के अर्थ में करते थे।

संतों वर सहस्र के प्रयोग की उपर्युक्त सभी परमशब्दों का प्रभाव परिच्छिन्न  
 होगा है। सामान्यतया उन्होंने उलका प्रयोग सहस्राक्षरस्य और सदाक्षरस्य के अर्थ में  
 किया है। उदाहरण के लिए कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं<sup>९</sup> —

सहस्र-सहस्र सय फोय फई सहस्र न पीम्हे फोय ।  
 जिन सहस्रि पिपया तजी सहस्र कही से सोय ॥  
 सहस्र-सहस्र सय फोय फई सहस्र न पीम्हे फोय ।  
 पाँचु एसे परमनी सहस्र कहीसे सोय ॥

<sup>१</sup> सोप्रास्तोर रिधीअत्र कस्यस्य—दाम्य गुप्ता पृ ७८

<sup>२</sup> बही पृ० २४

<sup>३</sup> बही पृ० १०

<sup>४</sup> बही पृ० ६०

<sup>५</sup> बही पृ० ६०

<sup>६</sup> गो० बा० पृ० १००

<sup>७</sup> गोरक्षवाणी संसह पृ० १२९

<sup>८</sup> गोरक्षवाणी संसह पृ० १२१

<sup>९</sup> गोरक्षवाणी पृ० १००

<sup>१०</sup> कबीर संसहवाणी पृ० ७१

महजै-सहजै सब गण सुत वित फरमणि काम ।  
 एके-एक ह्यई मिल खा काम कयीर राम ॥  
 महज-महन मथ कोय फई महज न पीगद कोय ।  
 जिन सहजै हरि जौमिले महज फई जै सोय ॥

उद्धोः उसका प्रयोग सहमतत्व क रूप में भागिया है। दादू न उक्तय राकर निरूपित करते हुए लिखा है<sup>१</sup>—

अधिनामी अंग तेन का एमा तस्य अनूप ।  
 सो हम दया नैनमरि सुन्दर महन स्वरूप ॥

शुभ का प्रयोग श्रीर क शर्ष में भिन्ना है। उधरकरा रिबड़े में रिपठ बीर क्री लोठे का वर्णन करते हुए दादू लिखते हैं<sup>२</sup>—

पिंजर पिंज शरीर में सुभय महन ममाय ।

सहज शब्द लीं की बानिया में कुछ अन्व शब्दों क साथ मिलकर भी आता है। जैसे सहज शील<sup>३</sup> सहज मुक्ति<sup>४</sup> सहज मुनि<sup>५</sup> सहज समाधि<sup>६</sup> इत्यादि। ऐस स्थानों पर सहजशब्द के अर्थ आन में आनैवान शब्द क अनुप्राण पदन आा हैं। जैसे सहज मुक्ति का अर्थ पूर्ण अद्वैतारथा हागा। सहजज्ञान का अर्थ उदात्त सुप्त सहज लुनि का अर्थ ब्रह्मरूप और सहज समाधि का अर्थ पूर्ण आशारथा दागा। इनके अति रिक्त लीं में सहज शब्द का प्रयोग और भी कई अर्थों में और कई लीं में दूंगा का सज्जा है।

निरंजन—सहज श्रीर शुभ शब्दों क गच्छ लीं की बानियों में हमें निरंजन शब्द का प्रयोग भी भिन्ना है। निरंजना शब्द बहुत आनन काम क प्रबुद्ध हाजा आ रहा है। सर्वप्रथम इनका प्रयोग सुहृद्भाविन्दू में भिन्ना है<sup>७</sup>—

तदां विद्वान् पुण्य पार विभूष निरंजन परम मात्मसुवर्ति ।

सुहृद्भाविन्दू क परवार इनका प्रयोग भीन्दूभाविना म भी भिन्ना है।

<sup>१</sup> दादू बानी भाग १ पृ० २१

<sup>२</sup> दादू बानी भाग १ पृ० २०

<sup>३</sup> दादू बानी भाग १ पृ० ३२ पाया ३६

<sup>४</sup> इतिहासगर पृ० २४

<sup>५</sup> दादू बानी भाग १ पृ० ३०

<sup>६</sup> भीका सारथ का व ली १ २३ का १ वन गच्छ लीं बानी भाग १ पृ० ३२

<sup>७</sup> सुहृद्भाविन्दू ३१३

हिन्दी की निर्गुण आम्पबाध और उच्चरी दार्शनिक दृष्टमूर्ति

मुहम्मदनिपद् में निरञ्जन शब्द का प्रयोग महावेत्ता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है क्योंकि वह विद्वान् का विशेषण बनकर आया है। भीमरूमागत में उच्च प्रयोग निर्मित और पवित्र अर्थ में हुआ है। उतमें लिखा है।<sup>१</sup>

नीलकर्ममन्त्रयुत माणवर्जितम् न शोभते ज्ञानमहं निरञ्जनम् ।  
अर्थात् नैव्य कर्म स्वरूप निरञ्जन ज्ञान ही अणुपुन माण के बिना शोभा नहीं पाता है ।

निरञ्जन शब्द का प्रयोग इतयोग<sup>२</sup> प्रदीपिका में कई बार किया गया है। एक स्थल पर वह माया रहित शुद्ध बुद्ध मुक्त ब्रह्म का वाचक प्रतीत होता है दूसरे स्थल<sup>३</sup> पर वह शुद्ध और पवित्र के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। योगद्वयद्वय<sup>४</sup> पतिपद् में इत शब्द को उच्च उन्मनी आदि का पर्यायवाची भी बताया गया है। इतयोगप्रदीपिका<sup>५</sup> में

अधिकतर इतका प्रयोग शुद्ध शब्द के साहचर्य से प्राप्त किया गया है।  
वह निर्विकल्पक अलंकार और निर्वेष आदि अर्थों का चोकर है। वहीं-वहीं पर उनमें उक्त प्रयोग वैतारेव बिलक्षण के अर्थ में किया हुआ मिलता है।<sup>६</sup>

इत शब्द का प्रयोग हमें मायवंधी साहित्य में भी मिलता है। ऐसे स्थलों पर अधिकतर इतका इदयस्थल यौगिक ब्रह्म के अर्थ में ही किया है। एकत्राय<sup>७</sup> स्थल पर वह शुद्ध का विशेषण बनकर आया है। ऐसे स्थलों पर वह निर्विकल्पक अलंकार और निर्वेष आदि का ही वाचक प्रतीत होता है।<sup>८</sup>

निरञ्जन शब्द वायुस्त दर्शन में भी पाया जाता है। उक्त दर्शन में माया विधिपद् पद्य को बीच कहा गया है। इत पद्य के भी दो भेद किये गये हैं—ताम्र और निरञ्जन ताम्र शरीरवादी बीच को कहते हैं और निरञ्जन अशरीरी बीच को। इतसे<sup>९</sup> शब्द

<sup>१</sup> भीमरूमागत १।२।१२

<sup>२</sup> इतयोगप्रदीपिका—१।१०२ और भी इति ४।४

<sup>३</sup> इतयोगप्रदीपिका— ४।१

<sup>४</sup> योगद्वयद्वयपतिपद्—२।३

<sup>५</sup> इतयोगप्रदीपिका—

<sup>६</sup> दोहाकोश—वाल्मी पृ १

<sup>७</sup> दोहाकोश वाल्मी पृ० २

<sup>८</sup> गोरखवाणी डा० बहन्नास पृ० १९

<sup>९</sup> गोरखवाणी डा० बहन्नास पृ० ७२

<sup>१०</sup> सर्वदर्शन संग्रह—भारतीयपत्रमित्री भाग ४ पृ० १९८

रूप होता है कि इस दर्शन में आक्षर निरञ्जन शब्द पूर्वरूपण एक पारिभाषिक शब्द बन गया है। इस पाशुपत दर्शन का आधार लेकर बहुत ही रोचक साधना पद्धतियों का उदय हुआ। इसमें एक निरञ्जनी साधना पद्धति भी थी। इस निरञ्जन मत में निरञ्जन शब्द का प्रयोग बहुत कुछ सांख्यिक अर्थ में किया है। त्रिष्ठ पाद में किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण निरञ्जन शब्द के अर्थ में बार परिवर्तन हुआ और वह अज्ञान और माया का प्रतिकरूप माना जान लगा। आगे चलकर पंचो माहसो ने इसका विकृत स्वरूप का ही विशेष प्रकृष्टता दी। त्रिष्ठका परिशाम यह हुआ कि वह केवल माया और अज्ञान का वाचक मात्र रह गया। कबीर पंथ में तो निरञ्जन देवता का ही बहना कर सी गई है। वह अज्ञान और माया आदि के अभिन्नाता मानून पढ़ते हैं।

संतों की भाषितियों में निरञ्जन शब्द का प्रयोग हमें सत और अतत दोनों रूपों में मिलता है। जहाँ पर अतत प्रयोग सर्वत्र में हुआ है वहाँ वह आत्मज्ञान<sup>१</sup> वागिक<sup>२</sup> ब्रह्म<sup>३</sup> शब्द ब्रह्म निर्दिष्ट<sup>४</sup> निसंग और निर्द्वेष<sup>५</sup> आदि में से किसी एक अर्थ का वाचक है।

जहाँ पर अतत प्रयोग अतत अर्थ में किया गया है वहाँ वह अज्ञान या माया का वाचक है। संत दरिशा साहब ने अतता बणन करत हुए निगा है<sup>६</sup>—

आप निरञ्जन मरुल पमास पंद इंद्र फरम रचि दास ।  
 सीनों लोक निरञ्जन राइ रॉइह रॉई जम किमाई ॥

उपर्युक्त पंक्तियों में हमें पंचोभारंतों की निरञ्जन उपशा की स्थापना भी दिखलाई

<sup>१</sup> शब्द शास्त्री भाग १ पृ० १३ पर दृश्य ।

विष्णुनिरञ्जन ज २६ वचो न गतार्थे वाय ।

<sup>२</sup> गुप्तर मतार “मीन” मत और निरञ्जन दर ।

शब्द बहुल्य विवर्णित जग आपण समर ॥

शब्दशास्त्री भाग १ पृ ५२ ।

<sup>३</sup> गुप्तर ज्ञान पर बीहब परि एक निरञ्जन गृह मदा

गुप्तर विवाय पृ० २२ ।

<sup>४</sup> निरञ्जन की बात कही कही अत्रम कर्दि ।

शब्द मत जार्थे जग जग जग कर्दि ॥

शब्दशास्त्री भाग १ पृ १० ।

<sup>५</sup> दर्शनमतार पृ० २१ ।

मुद्राद्योऽनियत् में निरञ्जन शब्द का प्रयोग ब्रह्मवेदा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है क्योंकि यह विद्वान् का विशेषण बनकर आया है। श्रीमद्भागवत में उसका प्रयोग निर्मल और पवित्र अर्थ में हुआ है। उसमें लिखा है।<sup>१</sup>

नैकान्दर्भमच्छुत मायवर्जितम् न शोभते ज्ञानमर्हं निरञ्जनम् ।

अर्थात् नैव कर्म स्वल्प निरञ्जन ज्ञान ही अशुभ माय के बिना शोभा नहीं पाता है।

निरञ्जन शब्द का प्रयोग इत्यादि<sup>२</sup> मदीपिच्छ में कई बार किया गया है। एक स्थल पर वह मात्रा उचित शुद्ध शुद्ध मुक्त ब्रह्म का वाचक प्रतीत होता है दूसरे स्थल<sup>३</sup> पर वह शुद्ध और पवित्र के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। योगब्रह्मब्रह्म<sup>४</sup> अनिष्ट में निरञ्जन हृदयरथ यौगिक ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इत्यादिमदीपिच्छ<sup>५</sup> में इस शब्द को सहज उन्मत्ती आदि का परावर्तनाभी मी बताया गया है।

आगे चलकर निरञ्जन शब्द का प्रचार सिद्धों और नाथों में हुआ। सिद्धों ने अविच्छेद इत्यत्र प्रयोग शून्य शब्द के साहचर्य से आचरकर किया है। ऐसे स्थलों पर वह निर्निवृत्त अर्थ और निर्वेष आदि अर्थों का चोख<sup>६</sup> है। चर्ची-चर्ची पर उनमें इत्यत्र प्रया<sup>७</sup> द्वैतद्वैत विलक्षण के अर्थ में किया हुआ मिलता है।<sup>८</sup>

इस शब्द का प्रयोग हमें नाथ्यवादी साहित्य में भी मिलता है। गोरक्षनाथ ने अविच्छेद इत्यादि हृदयरथ यौगिक ब्रह्म के अर्थ में ही किया है। एतद्भाव<sup>९</sup> स्थल पर वह शून्य का विशेषण बनकर आया है। ऐसे स्थलों पर वह निर्निवृत्त अर्थ और निर्वेष आदि का ही वाचक प्रतीत होता है।<sup>१०</sup>

निरञ्जन शब्द पाशुपत दर्शन में भी पाया जाता है। उक्त दर्शन में माया विच्छिन्न पशु को बीच कहा गया है। इस पशु के मी दो भेद किये गये हैं—सांजन और निरञ्जन सांजन शरीरपायी बीच को कहते हैं और निरञ्जन शरीरपी बीच को। इत्ये<sup>११</sup> रथ

<sup>१</sup> श्रीमद्भागवत १।२।१२

<sup>२</sup> इत्यादिमदीपिच्छ—५।१०५ और भी देखिये ४।१०

<sup>३</sup> इत्यादिमदीपिच्छ— ४।११

<sup>४</sup> योगब्रह्मब्रह्मब्रह्म—३।३

<sup>५</sup> इत्यादिमदीपिच्छ—

<sup>६</sup> बोद्धव्ये—वाल्मी १०. १

<sup>७</sup> बोद्धव्ये वाल्मी १०. २

<sup>८</sup> गोरक्षनाथ ४।० ब्रह्मशास्त्र १०. १९

<sup>९</sup> गोरक्षनाथ ४।० ब्रह्मशास्त्र १०. २३

<sup>१०</sup> अर्धदर्शन संग्रह—श्रीमद्भक्तिसिद्धि भाग ४ पृ. १९८

मन्त्र होता है कि इस दर्शन में आकर निरंजन शब्द पूर्णरूपेण एक पारिभाषिक शब्द बन गया है। इस पाशुपत दर्शन का आधार लेकर बहुत ही रोचकाक्त साधना पद्धतियों का उदय हुआ। इसमें एक निरंजनी साधना पद्धति भी थी। इस निरंजन मत में निरंजन शब्द का प्रयोग बहुत कुछ सांख्यिक अर्थ में किया है। त्रिष्टु बाद में किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण निरंजन शब्द का अर्थ में पार परिवर्तन हुआ और वह अज्ञान और माया का प्रतिरूप माना जाने लगा। आगे चलकर पंथी भाइयों ने इसका विद्वत स्वरूप का ही विशेष प्रतिष्ठा दी। त्रिषष्ठा परिणाम यह हुआ कि वह केवल माया और अज्ञान का वाचक मात्र रह गया। कबीर पंथ में तो निरंजन देवता की ही बरतना प्रसी गइ है। वह अज्ञान और माया आदि के अभिच्छिन्ना मान्यून पढ़ते हैं।

संतों की धानियों में निरंजन शब्द का प्रयोग हमें सब और अस्तव दानों रूपों में मिलता है। यहाँ पर उसका प्रयोग सद्गुरु में हुआ है यहाँ वह आत्मतत्त्वा<sup>१</sup> यागिक<sup>२</sup> ब्रह्म<sup>३</sup> शब्द ब्रह्म निर्दिच्छन्त<sup>४</sup> निरंजन और निर्वैद्य आदि में से किसी एक अर्थ का वाचक है।

यहाँ पर उसका प्रयोग अस्तव अर्थ में किया गया है यहाँ वह अज्ञान या माया का वाचक है। संत दरिया साहब न उसका प्रयोग करने हुए मिलता है<sup>५</sup>—

आप निरंजन सकल पमाय फंद बंद करम रचि दाण ।  
धीनों लोक निरंजन छई पीदह पीछी जम धिमाई ॥

उपर्युक्त पंक्तियों में हमें पंथीभाइयों की निरंजन देवता की छाप भी दिखलाई

<sup>१</sup> शाहू बाबी भाग १ पृ० १३ पर दृश्य ।

विच्छन्तिरंजन ज रह क्यों न मनाई पाय ।

<sup>२</sup> सुग्ग मतारर “मीन मन नीर निरंजन रूप ।

शाहू बहुगम दिखमिण जगा चक्रग समर ॥

शाहूबाबी भाग १ पृ० ३२ ।

<sup>३</sup> सुग्गर जानि यह भीदख परि एक निरंजन मू का मेदा

सुग्गर विद्याय प० २५ ।

<sup>४</sup> निरंजन की बात कही आवै चक्रम मरि ।

शाहू मन मारी यहाँ मर्ग रयाजक मरि ॥

शाहूबाबी भाग १ प० ३० ।

<sup>५</sup> दरियासाहब प० २१ ।



हिन्दी की निर्गुण काव्यधातु और उसकी दार्शनिक वृत्तपूर्ण  
 पद्धति है। कहीं कहीं पर निरबन शब्द मूल के अर्थ में भी प्रयुक्त बान पढ़ता है। जैसे  
 मरुप्रदास की निम्नलिखित पंक्तियों में<sup>१</sup>—

अंध धुंध चल जात निर्जन भर्म न जानै कोई ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छंदों में निरबन शब्द के अर्थ की छत और  
 असत दो परम्पराएँ मिलती हैं।



<sup>१</sup> मरुप्रदास की बानी पृ० २ ।

## सहायक ग्रन्थों की सूची

### संस्कृत के ग्रन्थ

अत्रिचरिता	ईश्वर चरिता
अत्रिभूमि	उत्तराखण्डन सूत्र
अथर्ववेद	एषादशानिर्द्
अहिबुध्न्य चरिता	ऐतरेय ब्राह्मण
अद्वय ब्रह्म संग्रह (G O S N ४०१६ २७)	ऐतरेयोपनिर्द्
अमरीष प्रबोध	श्रुतयेद
अद्वयकारिकायनिर्द्	ब्रह्मनिर्द्
अभिनव मारुती टीका	कठोपनिर्द्
अमरकोश	कुमारव्युत्पन्न
अभिधान भाग	कामो विद्याय उच्यते
अष्टाध्यायी	कुम्भिका उच्यते
अमृतनादीयनिर्द्	कीरतिरी
अनुमान	कूर्म पुराण
अमरीष शास्त्र-सिद्ध गोरक्षनाथ शिखि (१०० अ० वि० प्र० म० २०)	कीर्तिलाली निम्ब (१०० पत्रकेत)
अष्टाध्यायी शतानिर्द्	काण्डान-निम्ब (१०० पत्र कापी) मीठा
अथ हविषा दशानिर्द्	गणेश उच्यते
(१०० शतानिर्द् मिस्र ब्रह्मणा १०००)	गणेश विन्ता उच्यते
अभिषेक वेद-सं० सुदृश शतानिर्द्	गणेश उच्यते (मिस्र का गणेशनाथ कीर ब्रह्मणा मीठे में संकलित)
अनिर्द् भाग	गौतम धर्म शास्त्र
अष्टाध्यायी	सुदृश उच्यते मिस्र (१०० शतानिर्द् कापी १६१६)
अष्टाध्यायी	गणेश उच्यते—१००० १६६०
अष्टाध्यायी	गणेश उच्यते मिस्र—१०० शतानिर्द्
अष्टाध्यायी	कीर्तिलाली मिस्र उच्यते १००
ईश्वरचरिता	केरल उच्यते

७२२ हिन्दी की निगण कव्यभारा और उसकी दार्शनिक वृत्तमूर्ति  
 पकती है। कहीं कहीं पर निरबन शब्द मूल के अर्थ में भी प्रयुक्त जान पड़ता है। जैसे  
 मल्लभद्रास की निम्नलिखित पंक्तियों में<sup>१</sup>—

अर्थ धुन खस जात निरबन भर्म न जानी कोई ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वृत्तों में निरबन शब्द के अर्थ की सव और  
 अस्त हो परम्पराएँ मिलती हैं ।



<sup>१</sup> मल्लभद्रास की बानी पृ. २ ।

# सहायक ग्रन्थों की सूची

## संस्कृत के ग्रन्थ

अभिसंहिता	ईश्वर संहिता
अभिमूर्ति	उत्तराखण्डन सूत्र
अथर्ववेद	एकदशानिर्णय
अहिमुच्य संहिता	ऐतरेय ब्राह्मण
अथर्व वेद संग्रह (G O S N V. १६ २७)	ऐतरेयोपनिषद्
अमरीष प्रथाप	शुग्नेद
अथर्वशास्त्रोपनिषद्	शेनोपनिषद्
अभिनव भारती टीका	शत्रोपनिषद्
अमरकाण्ड	कुलाशय काण्ड
अभिधान श्लोक	कामी विद्या काण्ड
अक्षुण्डीर उग्र	कुण्डिका उग्र
अन्त्याष्यायी	कीर्ति शिखर
अमृतनाशोपनिषद्	कूर्म पुराण
अनुमान	कीर्तिकाशी निघण्टु (४० एरनेन)
अमरीष शासन-विद्व गारुडनाथ विरचित (११० स० वि० प्र० प० २०)	कान्त ज्ञान निघण्टु (४० प्र० बाकी) गीता
अथर्वशास्त्र शास्त्रोपनिषद्	ग उन्नीर उग्र
अथर्व हविषा प्रजापतिमिता	गणेश विमर्श काण्ड
(४० शतेंद्रकान्ति मिथ वसुधत्ता १००००)	गारुड उग्र (द्विधा य गारुडनाथ श्री बनकटा य गी में संदीप्त)
अभिधर्म काण्ड-० उग्रुण संस्कृतान्त	गोपम धर्म काण्ड
अनन्द भाष्य	गुण गणेश काण्ड (४० शतेंद्रकान्ति उन्नी १६११)
अनन्ताश्रम स्मृति	ग उग्र उन्नीर—कामी १६००
अनन्ताश्रम स्मृति	ग उग्र उन्नीर उग्र—४० ग उन्नीर
अनन्द १६११	कामी गणेश काण्ड काण्ड १०
ईशावास्योपनिषद्	केदार संहिता

बुद्धिकोपनिषद्  
विषय विशुद्धि प्रकरस्य  
अन्तर्लोक (बबदेव)  
आयुष्य नीति दर्पण  
अष्टसम्भार सत्र (काबी रंग सङ्गुप-वात्रिक  
डेवदर सेरीज)

परतन्त्र संहिता  
प्रत्येक तत्त्व प्रदीपिका  
पंचदशी  
पार्वतलत योग—सूत्र  
प्रज्ञासामिता सूत्र (बरेली सं० १९१०)  
बोधिचर्यावतार-प्रबिषय  
बोधिचर्यावतार  
धीपापन भोत सूत्र  
महासूत्र शंकर भाष्य  
मविष्य पुराण  
भागवत  
मगवती सूत्र  
मविष्य पुराण

छान्दोग्योपनिषद्  
जैमिनीय ब्राह्मण  
शाखाशिक्षादर्शनोपनिषद्  
तैत्तिरीयोपनिषद्  
तैत्तिरीय ब्राह्मण  
तैत्तिरीय अरण्यक  
वसु संमह शास्त्ररुचिः—डा० विनय

तोष महात्मावै तन्नादित  
दर्शनोपनिषद्  
सुरिकोपनिषद्  
ध्यान विभूषणपत्र  
ध्वन्यालोक श्री बीका  
नारद पांचरात्र  
नारद मण्डल  
नैरभीय चरित

श्याप सूत्र  
श्याप ब्रह्मण—सं० गंगानाथ म्हा  
नैरख्य परिपुस्त (विश्वमाथी) (१९१०)  
पराशर स्मृति  
मरुतोपनिषद्  
पद्यतत्र  
पारशर पद्मसूत्र  
पंचकर्म (हस्तलिखित)  
पार्वतलत योगदर्शन  
प्रज्ञोपाय विनिरुषय सिद्धि (बी० प्रो०  
पत्र० न ४०१९१९)  
प्रबोध चन्द्रावय

महामात  
मनुस्मृति श्री बीका (दुर्लभपुस्तक)  
मुयद्वयोपनिषद्  
मीमांसी उपनिषद्  
मुक्तिधोरनिषद्  
मीमांस्योपनिषद्  
मांडूक्य चरिका  
मिलिन्द प्रश्न  
माध्यमिक चरिका  
माध्यमिक वृत्ति (वीरसंबगं १९०१)  
मुनेन्द्र संघ  
मस्त्र सूत्र  
मातृमातृ (महामूर्ति)  
मातृविद्यमि मित्र (कालिदास)  
महापाप विज्यक (सं० विपुत्रोत्तर महा  
पार्व १९११)  
महापाप द्वालयकार लेनी तन्नादित  
१९०७  
महापर्व मंत्रदी  
यजुर्वेद



शतकत्रयम्—महर्षि—

शिखा—समुच्चय

पदग्रथन समुच्चय कविका

पदग्रह निरूपण

हर्यचरित सार

ईशोपनिषद्

इठयोग प्रदीपिका—योगीभीनिवास

आर्यगर (१९४८)

भित्तिलमन्त्रोपनिषद्

ज्ञान सार समुच्चय—भार्य मल्ल—

ब्रह्मसूत्र संघ

ज्ञानविद्धि—इन्द्रभूति—गायक वाङ्

आरियमल्ल सेयक) न० ४४

भीमभगवगीता

—

## अग्नेजी ग्रथ

आत्मेवद् भाष महाभान बुद्धिहृत्म् एंड इत्थ रिलेशन डू हीनयान—एन० दत्त १९२९

अरलीमोमारिक बुद्धिहृत्म्—१९४१

आसाभीक—इत्थ कर्मेशन एंड रियलमेव—बानीकथ काक्यती—गौहावी १९१४

अरली हिरूरी भाष आपरुम राम के० एल० (बकथा) १९३३

आठरसाईत भाष इडियन फिलॉसफी हरियभा—

आर्कितिक होम इन दि वेदाङ्क—दिलक

आर्कितिकोवीकल सर्वे भाष इडिया म्युतिपीक—नार्यवेरदन प्रापितेक माग ९

आरने अकषरी—वेरवहाय संपादित—

आरने अकषरी—स्ताकमीन हाय संपादित १८२३—८४

आठर साईत भाष महाभान—बुद्धिहृत्म्—सुमुषी १९००

आठर साईत भाष इस्तामिक कम्बर—सुमुषी—

आपरकषोर रिलीकल कम्बर डा० एम० बी० दात गुल १९४३

इडिया धू दि एकेव—के० सरवार १९५०

इताइकोसीडिया भाष रिलीकन एयड एयिक्ल १९५१

इडियन थी इहम्—मैकिकल साहब

इडिया—एल० बायम १९५४

इन्डूपल भाष इठनाम ओन इडिया कम्बर ताणवेर

इडियन इठनाम—टिठल—

इलाण्डेयन आक दि डिग्री एंड

वेन्डिमेव आक दि टथ—एपोरदन इन्—१८१०

- किलासपी आरु दि वामवशिष्ट—पी० एन० अथेय
- इंडोइन्डियन टु बुद्धिस्ट इगोटिगिग—विनयनागमशास्त्र— १९३२
- ए के सिद्धमहिन्डियनपी आरु हिंदू माइयापात्री इगठन १९५०
- इडियन सिटरेनर—डा० बिट्टरनिट्ट
- इडियन किलासपी—डा० रासट्टभान
- इडिया एन नान टु पाणिनि डा० वामुदेवचरण अमयाप
- इडिया एरट आपना—डा० पी० सी वाम्बा
- इट्टाडकयन टु पंथर्वत्र एरट
- आहिर्षुपन्य संदिता—डा० एरु० आटो भादर—१९१९
- इडियन पहिल्य इन सीट आप स्ना—एरु० सी० दास कनकसा १८९३
- एन इट्टाडकयन टु वामिक बुद्धिअ एरु० वा० दास गुना १९५०
- उवांग पुवांग—वाटस
- एरुवांग हिन्डो आरु इडिया १९५०
- एरुव इन बुद्धिअ—कण्ट थिपीव डा० मुपुगी
- एन आठट लाइन आरु रिशेवव
- निटरेवर आरु इडिया एट्टुवर साइव १९२०
- ए दिन्डो आरु दि मरदहा पीपुल भाग २
- एन एरुवांग हिन्डो आरु इडिया आर० वा० माल्लहार १९५०
- इन्नादेदिच माट्स इन काउप
- इडिया मद्रास—१९०६
- एथिपादिक रिशेवव—रेर १९८—१८३९
- ए दिन्डो आरु रिवाकके डा० एन० एन० रासगुना १९५८
- ए दिन्डो आरु इडियन डिवाकथ उनादे पनरेववर
- एन आइडियनिस्ट नू आरु
- साइव—यपाट्टान्
- नाट्ट आन वागुव डिवाकथ—ग पीनाप वरिचव मरुगी भात एरुव २११९
- निगुग एरुव आरु हिन्दा वागुव—डा० वडवाम १९३९
- मानव आरु गोड (नभनवार) वा० ए० नैगुन मंगल
- म्याव (कार्यर एन०न)
- पंजाव वागुव—री इगठन—१९१९
- वंगर पांग मरुदिता वंगर—एरु एरु० एन० वलवामा १९३०
- वापी एरुव इ एन दिवटनपी—नाग वरिड पी० सी० एन० ए० न १९३५
- व वेम्ला टुव दिन्डो आरु बुद्धिस्ट रिवाकथ पी० एन० वामा



फाइवान का बर्तन—सरोकुल

फिलासफी आफ योगनचिष्ट—बी० एल० अग्नेय

फिलासफिक एसेब—एस० एन० दास कलकत्ता १९५१

ब्राह्मनिष्म एवम द्विन्दुइष्म—मोनियर बिलियम

बेन्सबिष्म सैरिबेब एवम माइनर रिलीबस लिस्टम डा० भंडारकर

बुद्धिष्म एवम सिम्बल—सावैरैल

बनारस दि सेन्ट्रेड सिटी आफ—दि दिग्लून् येरिंग

बैदिक एब - के० एम० मुखी

बयकरीयू—दि फौरमौरय बेन्सब

बेबटस आफ महाउद्र—बलदेव उगाथाम

बुद्धिष्ठ फिलासफी इन इंडिया एवम

बीलोन—ए० बी० परिय—आक्स० १९५३

बुद्धिस्ट इष्मनोवाफी

बुद्धिस्ट रेकार्ड्स आफ दि वेस्टर्न बरड बीरु

भिष्णु नारद बेरो—बुद्धिष्ठ आइडियल आठवार पैम्फलेट नं० १५८

मिस्त्रीकिष्म इन महाराष्ट्र—यनाडे

मेसुबल आफ इंडियन बुद्धिष्म—एब० कर्न १८९९

मेडोबल मिरथकिष्म पियि मोहन धन—१९५६ लंदन

मुस्लिम कल इन इंडिया—ईस्वीपसाद

मैडीरिपल आफ दि क्विडिष्म

एडोशन आफ दि आसाड चर्चाराशत कलकत्ता

मिरिडक सेंड एड एसेडिबल—जे० सी० आम्न—१९०३

महाबोनि धनिपन

मैडिकल इंडिया

माहन बुद्धिष्म एवम इटलानोमर्थ

इन उडीला—एन० एम० बोर—कलकत्ता १९११

मिरिडक डेकल आफ लामा वारनाप

महावारी निर्वाथ वत्र—प्रोब्रुवलेसन एम० एम० लच—कलकत्ता—१९००

मैनभरा आदमिरिडीक प्रोर योगानार्थ मैगुभन—बु इबसयू हाथ अनूदित

मिरिडकिष्म इन इंग्लिश लिटरेचर रजमन—१९२७

मिरिडकिष्म—प्रगडिग १९१२ प्रोर १९५८ का संस्करण

मिरिडकल आफ इल्लाम निष्मन—

रिपोबन इन बर्दिक सिन्धुवर पी० एल० देशमुख—१९३३

- रिलीमन्त आठ इटिया—इम्पू० हापकिठ—१८६६
- रिलीमन्त आठ दि शुभवेद—प्रिथबोफ्ट आस्सफोद
- रिलीमन्त सेक्रेट आठ हिंदूइम्पू—एच० विलसन १८६२
- एन एन्योलाबी आठ क्रिस्तीकन स्टेटमेन्ट—अमरनाथ भट्ट, इलाहाबाद १९११
- एग्जिक्यूटिव आठ विवेक—ए० एच० कैर, कलकत्ता
- ए रिफार्म आठ बुद्धिस्ट रिलीमन्त ऐज प्रेसिडेंट इन इन्डिया एण्ड मनाया—  
आर्चिबेलेगो बाइ इटाइ आठ वकासुमु—आस्स० १८८६
- ओल्ड बंगाली टेक्स्ट—डा० मुकुमार सेन
- ओरीजिनल एण्ड डिक्शन आर्मा आठ इण्डियन बुद्धिस्ट—आर० रिमरु कलकत्ता  
१९२०
- ओरीजिनल एंड डेवसमेंट आठ बंगाली लेनिगब—माग प्रथम—डा० एच० के० पटवर्दी
- ओरीजिनल एंड डेवसमेंट आठ भावपुरी—पू० विषापी
- वेगिजल डिस्ट्री आठ इटिया माग १५
- कबीर एंड हिज फालोअर्ल—डा० श्री
- कबीर एंड हिज बाँपमाछे—डा० मोहनसिंह
- कबीर एंड दि कबीर पंथ—बसकट
- कॉन्ट्रिब्यूटर्स एंड आठ उरगिरादिक रिक्वाथचे—राना८
- कलेक्टरेड कब्र आठ मंदारकर कन्फुन मकहूर आर०ए०निष्कन्त०दाय संज्ञा १९१९
- क्यरमीर शक्ति—अ० सी० पटवर्दी
- कोल ज्ञान नियम—डा० बाबो १९१४
- क्यरट्ट एंड ट्राइभ आठ साउथ इंडिया—इ० पलटन, मद्रास १९०७
- गोइसाद—महादेबन् १९५४
- गारभैड आठ सेटर्स—आर्षे एवेजेन
- गोएनाथ एंड दि कनफटा—नागीब क्रिष्ण
- गोएनाथ एंड मैडिकल मिगिटिगम—डा० मोहन सिंह
- गाइल आठ नार्दनल बुद्धिज्ज—ए० गटी, काकतपट्ट
- जानी क्रीम मर्याद टु मनुष्य—बुबर
- ज्याय मिगिटिगम—अ० व० एन्जर १९४२
- ड्रेबल—उबेनियर—माग १, १८८६
- ड्राइभ एंड वायल्ड आठ बंगाल १८९१ १९११—रिबन
- ड्राइभ एंड वायल्ड आठ एन० सी० आर्चिबेलेग एंड कबर—इम्पू बुक
- ड्राइभ एंड वायल्ड आठ दि नार्थ वेगन आर्चिबेलेग एंड कबर—माग १, इम्पू बुक
- ड्राइभ आठ बेरी एवाटिंग टु शान्तुष—मुम्बई

क्रिस्टियन एपनासोमी आफ् बंगाल—डास्टन ई० सी० १८०२-०७

डिक्शनरी आफ् हिन्दु भाषयोसोबी

डेविडसट—गोविन्दार्य

डापनेसिड् हिस्ट्री आफ् नादन इंडिया—भाग प्रथम—एच० सी० राय०, कलकत्ता

दक्षिण उच्च मुबाहिस्त्रीनका, अयेबी अनुवाद—रायल एंड सन्स

संभाव—देवर फिजासपी एंड आफ्स्ट ठीकोउठ—डी० एन० बोस

दविस्तान मबाहिष—ट्रोपर एंड सी

दि हिस्ट्री आफ् एफिम—डा० ए० बे० आखेरी

दि पीपुल आफ् इंडिया—इन्डियनली, कलकत्ता

दि सिररम्भ आफ् वेदाङ्ग—डापसन शिकागो १९१२

दीन इलाही—रायचौधरी १९४१

दि महाभारत—ए क्रिस्टियन—सी०-सी० वैप

दि शकताम—एनिबाने १९३३

दि फाइविंग एथिस्टिक आफ् इंडिया—फर्गुसर लाइव

दि ग्रेट एपिक—डापकिन्स

मामदेव—बी० ए० मदेसन

मोदुस ओल दि रेत वरदुस १८८८

कमी पापट एपड मिन्टिक—निक्लसन

रेलत आफ् इन्डिविडुअल इन हिस्ट्री, मारसो १९४९

राष्ट्रकूट एंड देवर टाइम्स—ए० ए० अलवेकर—पूना १९३४

सेल वागटव मिरिडक—डे कान्हा पट डे १९२८

सराहा—एम० लडबुल्ला—पेरिस १९२८

शामाइम्—एल० ए० वदेस

शारफ् आफ् रामानुज

शारफ् एंड डीविन्स आफ् मायबार्थ—गम्माबाथार्थ

सेकबर्त ज्ञान दि हिस्ट्री आफ् डी वैश्व—एल० अयपर

सोटस आफ् सेन्ट ला—सेन्टबर्त आफ् ईरत सेरीय वा० २

सिन्निगिरिक ठर्बे आफ् इंडिया—क्रिपेसन

वैश्व रिधमर्त आफ् इंडिया

वेदान्त लख दिद रामानुजस वमेस्ट्री

वैदिक भाषासोबी—वीडरानेन

वैश्वविम्भ ठविम्भ एपड अदर माइनर रिनीयस सिररम्भ—आर० बी० मंडारकर

वदबीव इन सन्भाव—डा० प्रबोपर्वद वागबी १९३९

- विष्णु रिश्रीवन—भाग ६—मैटघटक—१६०६
- धौम्य आक दादू—दादादत्त गाराला
- मुत्तानेट आक देहली—टा० भीषाम्ब १६५०
- स्टारिया हू मागर—इबल्यू० अरविन—१६०५
- सेक्रेट छिटी आक मधुप—शेरिंग
- साहसोवात्री आक घटस—बाणी
- रिमट आक इस्लाम—अमीरअली—१८८१
- सिरिसुअल फिजाठफी इन लाइफ—एम० के० शेम्बर १६४२
- सेक्रेट बुक आक दि ईस्ट, सीरिब—बाल्यूम १०
- सेक्रेट बुक आक दि ईस्टसेठीब—बाल्यूम २०
- संस्कृत बुद्धिस्ट निटरेबर आक नैराम—मुजुली—मदन १६००
- शेब स्तूम दिगुहम्म—शिबपादमुम्बरन्
- शक्ति एण्ट दि शाक्त—आर्यर एवेमेन—१६१८, १६५१
- शक्ति आन टिवाइन पारर—एल० व० दास, कलकत्ता
- भी समानुब—एल० भीकृष्ण स्वामी आर्यगर
- द्वित्री एण्ट इन्डियन आक दि आर्मीरिका—ब—एल० बायम १६५१
- होम आक वांदिम्म—मादन रिग्यू
- द्वित्री आक इटिया देब डेरुट बार्ड इटल् आन इस्त्रारिपम्(१८१६—१८६०) इन्डियट  
एण्ट डाउनन भाग ५
- द्वित्री आक इस्लाम—गेट, कलकत्ता १६०६
- द्वित्री सिरिदसिम्म—एम० सरवार
- द्वित्री आक संस्कृत निटरेबर—मैटघटनेम
- द्वित्री आक कलाशिक्षल निटरेबर—कृष्णामाया
- दिन्दू सिमिन्डियन—गपाजुमुद कुच्छी
- द्विष्णु आक दि आण्णार कटल्—हू—१६१६
- दिन्दू बाण्टल एण्ट सबडल्—ब गट्ट महाबार्द
- हान्टल वारम्भ आक बधीर—इबेन्नाप देगार
- हैट बुक आक बर टैविम्म—एल० ली० नगोनड, कलकत्ता
- द्वित्री आक बंगाल भाग १ ली० आर० ली० मन्डनगर
- द्विगुहम्म एण्ट कु अरभन, ली० इन्डियट—मदन १६२१
- द्वित्री आक नैराम—नरविना हाग अट्टिंग
- द्वित्री आक बनारस—आर० ली० बिाट्टी
- द्विटी (बल अमर आक अर्धट हा० ब० ली० डैरी, हुना १६०८

## हिन्दी ग्रन्थ

- अरु और भारत के सम्बन्ध—वीर हनुमान नदवी ।  
 अनुराग रागर—पुष्पादास, बनारस, सं० १६८२ ।  
 अनन्ददास की परिचर ।  
 आर्यो का आदि देश—डा० सम्पूर्णानन्द ।  
 उद्योगी भारत की सत परम्परा—परशुराम अक्षुर्वेदी, सं० २००० ।  
 सुन्दर का हिन्दी अनुवाद—रामगोविन्द मिश्रेदी ।  
 कबीर प्रेमलाली—डा० रामकुन्दरदास १६२८ ।  
 कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा, १६११ ।  
 कबीर चरितचौम ।  
 कबीर की विचारधारा—डा० गोविन्द त्रिगुणाचल, २००८ ।  
 कबीर—हजारोपवाद द्विबेदी, १६४२ ।  
 कबीर—संस्कृत ।  
 कबीर साहित्य की परल—परशुराम अक्षुर्वेदी, २०११ ।  
 कबीर और बानसी का रहस्यवाद—डा० गोविन्द त्रिगुणाचल ।  
 कबीर साहब की शम्दावली—बेलबेदियर प्रेस ।  
 कबीर बीबक ।  
 कबीर साहब का बीबक—विचारपाल ।  
 कबीर साहित्य का अध्ययन—पुरुषोत्तम एम० ए०, बनारस, सं० २००८ ।  
 कबीर कव्य—महर्षि शिवप्रसाद साहू, मिशन प्रेस, इलाहाबाद ।  
 गुणास साहब की बानी—बेलबेदियर प्रेस ।  
 मारलबानी संग्रह—बङ्गाल, द्वितीय संस्करण ।  
 गुड मानक—शालग्राम, श्रीधर आदर्श चरितमाला, प्रयाग ।  
 गोरखदासजी की बानी—पम्बर, सं० १६७५ ।  
 बट रामायण—बेलबेदियर प्रेस, भाग २ ।  
 वैकुण्ठ चरितानुग ।  
 श्रीराजी तिरु चौम मे—परशुराम अक्षुर्वेदी, श्रीरिपटल काकोट, लखनऊ ।  
 बपदेश चरित—रचनीकान्त गुप्त ।  
 जगदीश्वर साहब की बानी—बेलबेदियर प्रेस, प्रयाग ।  
 निम्बड मे लका बरल—पुस्तक साहित्यपादन ।

- संवसार—आर० सी० पटवर्णी ।  
 सुलतो प्रयागपी—यमचन्द्र शुक्ल ।  
 वलमुक्त अयथा सूत्रे मठ—सरस्वती मंदिर, बनारस, चन्द्रपपी पटव ।  
 दानूदयाल श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 दानू—दिवि मोहन मन ।  
 दरिपा सागर—बेलबेडियर प्रेस ।  
 दरिपा साहब बिहारबाने क जुने हुए पद—बेलबेडियर प्रेस ।  
 दयाबाई श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 होहाकोर—प्रयाग चन्द्र बानी ।  
 दुलनदास श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 परमदास श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 नाथ सम्प्रदाय—इलाहाबाद दिवेदी ।  
 नामदेव बंगारसी—नादे विह ।  
 नामदेव बाना गाथा—किन्तुपर विह भाग संपादित ।  
 पद्मावत—बापसी ।  
 पुरातन्य निबन्धावली—राहुल साह्यपापन ।  
 पलटू साहब श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 पाहुप होहा—रामविह, सं० हीराजाल मैत्र, बारासी, १९६० ।  
 प्रयाग विन्तामणि—इलाहाबाद दिवेदी द्वारा प्रकृत और मुनि भीविनविषय द्वारा  
 संपादित—अहमदाबाद, कलकत्ता १९४०  
 शैल दशन मोलाका—श० बलदेव ठाण्णाय ।  
 बुम्ना साहब श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 शैल गान और बुहा—इलाहाबाद छापी ।  
 भारतीय संस्कृति और उगवा इतिहास ।  
 भारतीय साहित्य श्री संस्कृति देगावे—प० परशुराम चन्द्रदेवी ।  
 मकउनाम—हरिमंकि प्रकृतिव्य—गंगाणा देगाद बम्बई ।  
 मकउनाम दानव—बेलबेडियर प्रेस ।  
 मकउनाम नामादास—सटीक लगनऊ, १९११ ।  
 मगवान विविदास श्री मदन कथा—रामचरण कुमन ।  
 मीना साहब श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।  
 मागरीय साहाब—बलदेव ठाण्णाय ।  
 भारतीय दशन—बलदेव ठाण्णाय ।  
 मीराबाई श्री पदावली ।

मूल गोवर्द्धन चरित ।

मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति—गौरीशंकर हीराचन्द्र शोभा ।

मधुसूदाय की बानी—बेलबेडियर प्रेस, प्रयाग ।

यायी साहब की रत्नावली—बेलबेडियर प्रेस ।

योगप्रसाद—वीशम्बर दत्त ब्रह्मपाल, सं २००१ ।

समानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव—अप्रकाशित मसिख ।

रैदासजी की बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

रत्नचर की स्तयांगी—

राजपूताने का इतिहास—महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र शोभा ।

बैदिक साहित्य परिशीलन—रत्ननीकंठ ।

सपना की की बानी—मंगलदास ।

विद्यापति ठाकुर—डा० ठमेल मिश्र ।

संत मुदासार—बियोगी हरि ।

संत बानी संग्रह—बेलबेडियर प्रेस ।

सिद्ध साहित्य—डा० बर्मनर भारती, १९३५ ।

सन्त कबीर—डा० रामकुमार वर्मा, १९४२ ।

सन्त हरिवा एक अनुशीलन—डा० अर्जुन प्रसादी ।

सहजानाई की बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

सुन्दर विलास—बेलबेडियर प्रेस ।

साधना माला—गायबबाबु ओरिएन्टल लिटिचर, सं० ४२ ४६ ।

सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकी नाथराय दीक्षित ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास—कईवालाज पोद्दार, सयम मुंढरीप्रमूला ।

सन्त मुदासार—बियोगी हरि, १९५१ ।

सन्त दर्शन—डा० दीक्षित, १९५१ ।

सन्त कव्य—पराशुराम पद्मवर्दी श्लाहाबाद ।

सुन्दर सम्भावली—हरि नारायण वर्मा, रामगणान गिरधर साताहरी, कनकलता, सं० १९९१ ।

सन्त विज्ञान—इस्तलिनिव प्रति ।

सन्त सुन्दरदास—इस्तलिनिव प्रति ।

संन्यासार्थ का ध्यान दर्शन—समानन्द त्रिवाणी ।

शिबसिद्ध सरोज—शिबसिद्ध सेंगर, नवल बियोर प्रेस, लखनऊ ।

भी मक्ति सागर ग्रन्थ—डॉन सारादव, नवल बियोर प्रेस ।

द्विग्री साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० ब्रह्मचर्य ।

- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, १९४८ ।  
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।  
हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डॉ० बनीप्रसाद इसाहाबाद, १९३१ ।  
हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डॉ० मर्गीरम मिश्र ।  
हिन्दी साहित्य का इतिहास—प्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।  
योग सम्प्रदायसंस्कृति—योगी "ब्रह्म" नाथ, १९२४ ।  
योग प्रवाह—डॉ० पदमनाभ ।  
संस्कृति संगम—प्राचार्य चिदि मोहन सेन, १९३१ ।  
मध्यकालीन कविता ।  
हिन्दी काव्य में निगूण सम्प्रदाय ।

## कुछ अन्य भाषाओं के ग्रन्थ

- सर्वज्ञान कुतरा—छारकी ।  
समीन खलुन अलफिना—छारकी ।  
गुलाता उलगाथिन ।  
इन्सार द सा भिगायतूर पैदुर ए पैदुरानो, गावा द वाधी—छारकी ।  
सबायम उल पु ६ ।  
ताथिन इनादो—छारकी ।  
दाव मस—इफिना ।  
धम्म पद—गामी ।  
बुधन उरुद—छारकी ।  
गुद दय वाद—गुरदुगी ।  
नाथ सम्प्रदाय इतिहास, दयन घोष काव्य "नाथ"—इफिना-मि-६ ।  
महिम्न निवा—२ बंद, वाया देवद क नावरी, लखन, १९९९ ।  
वाय निवा—२ बंद, वाया देवद अकादमी, लखन, १९९९, १९९९ ।



मूल मोघाई चरित ।

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—गीरीशंकर हीराचन्द्र भोम्रा ।

मञ्जूकदास की बानी—बेलबेडियर प्रेस, प्रयाग ।

मायी साहब की रत्नावली—बेलबेडियर प्रेस ।

योगप्रसाद—पीठाभर दत्त बङ्गाल, सं २००३ ।

रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव—अप्रकाशित शीर्षक ।

शैलदासी की बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

रत्नचक्र की स्तवगी—

राजपूताने का इतिहास—महामहोदयराय गौरीशंकर हीराचन्द्र भोम्रा ।

शैक्षिक साहित्य परिशीलन—रत्नचक्र ।

बचना की बानी—मंगलदास ।

विद्यापति टाइटल—डा० ठमेश मिश्र ।

संत सुभाषार—विद्योमी हरि ।

संत बानी संग्रह—बेलबेडियर प्रेस ।

सिद्ध साहित्य—डा० चर्मबीर भारतीय, १९५५ ।

सन्त कबीर—डा० रामकुमार वर्मा, १९५२ ।

सन्त दरिया एक अनुशीलन—डा० परमेश्वर प्रसादायी ।

सहजोगी की बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

सुन्दर बिलास—बेलबेडियर प्रेस ।

साधना माता—सावधपाद चोरिण्डल विद्युत्, नं० ५२ ५९ ।

सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोची नारायण दीक्षित ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास—एनईवाक्ता प्रोफेसर, लक्ष्मी पंडरीकमूल ।

सन्त सुभाषार—विद्योमी हरि, १९५९ ।

सन्त दर्शन—डा० दीक्षित, १९५९ ।

सन्त चम्प—बदराम चतुर्वेदी, इलाहाबाद ।

सुन्दर प्रयावली—हरि नारायण वर्मा, राजस्थान रिकर्व सोसाइटी, कलकत्ता, सं०

१९६१ ।

सन्त बिलास—द्वैतलिखित प्रति ।

सन्त सुन्दरदास—द्वैतलिखित प्रति ।

संन्यासपार्व की आन्तर दर्शन—रामानन्द विद्यापी ।

शिबभिरु ठरोव—शिबभिरु सेगर मन्त्र किशोर प्रेस, लखनऊ ।

श्री मक्ति सागर मन्त्र—डॉन हररादय, नवल किशोर प्रेस ।

शिंदी साहित्य में निर्मूल्य सम्प्रदाय—डा० बङ्गाल ।

- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—ग० रामकुमार वर्मा, १९४८ ।  
हिन्दी साहित्य की भूमिका—ग० इमलीचन्द द्विवेदी ।  
हिन्दुस्तान की पुरानी कम्पना—डा० बेनीचन्द इसाहाबाद, १९३१ ।  
हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डा० मगीरम मिश्र ।  
हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र गुप्त ।  
योग सम्प्रदायविज्ञान—शास्त्री "बन्धु" माधव, १९१४ ।  
योग प्रसाद—डा० यदुनाथ ।  
संस्कृति संगम—आचार्य चिन्ति माहान सन, १९३१ ।  
मध्यकालीन धर्म विचार ।  
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय ।

## कुछ अन्य भाषाओं के ग्रन्थ

- वज्रकीर्त्य कुहरा—फारसी ।  
वहीन अष्टम अंगिका—फारसी ।  
गुलाब काव्यसंग्रह ।  
रसनार द ला निगाहएर देहुरे ए देहुरानी, गाठी द काठी—फारसी ।  
गजावन उम पु ६ ।  
गाथीय रनाहो—फारसी ।  
बाब ब्रह्म—अरबी ।  
धम्म पद—संस्कृत ।  
बुद्धन चरित—अरबी ।  
गुद बय काहद—गुरुमुखी ।  
नाथ सम्प्रदाय इतिहास, बुद्धन और काव्य संग्रह—ब्रह्मगोपी वर्मा ।  
धर्मग्रन्थ संग्रह—२ भाग, भाग देहुरे द काठी, अरबी, १९०० ।  
द्वार निहाय -- २ भाग, भाग देहुरे द काठी, अरबी, १९००, १९०१ ।

मूल गोवार्दे पणित ।

भाग्यचरणीन मात्वीय संस्कृति—गौरीशंकर हीरचन्द्र ब्राम्ह ।

महाभारत श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस, प्रयाग ।

भारी साहब श्री रत्नावली—बेलबेडियर प्रेस ।

योगप्रवाह—पीताम्बर दत्त बहध्वारा, सं २००३ ।

रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उद्यम प्रभाव—अपेक्षित श्रीधर ।

रैदासजी श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

रत्न श्री श्री स्वर्णांगी—

उज्ज्वलाने का इतिहास—महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीरचन्द्र ब्राम्ह ।

वैदिक साहित्य परिशीलन—रत्ननीशत ।

बन्ना श्री श्री बानी—मंगलदास ।

विद्यापति ठाकुर—डा० उमेश मिश्र ।

संत सुपाठार—बिजोगी हरि ।

संत बानी संस्कृत—बेलबेडियर प्रेस ।

सिद्ध साहित्य—डा० बर्मेश्वर मास्ती, १९५५ ।

सन्त कबीर—डा० रामकुमार वर्मा, १९४२ ।

सन्त दरिया एक अनुशीलन—डा० धर्मेश्वर बसवारी ।

सहजाबाई श्री बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

मुन्दर बिलास—बेलबेडियर प्रेस ।

साधना माता—गायनबाइ ओरिएण्टल सिरीज, सं० ४२ ४६ ।

मुन्दर दर्शन—डा० ब्रिजाश्री नारायण दीक्षित ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास—ज्जैपालाल पोद्दार, उद्यम पुस्तकालय ।

सन्त सुपाठार—बिजोगी हरि, १९५३ ।

सन्त दर्शन—डा० दीक्षित, १९५३ ।

सन्त धाम्य—परशुराम बजुवैरी, इलाहाबाद ।

मुन्दर प्रवचनी—हरि नारायण वर्मा, यशरथान रिकर्स छोणारदी, कलकत्ता, सं० १९६३ ।

सन्त बिलास—इत्यनिमित्त प्रति ।

सन्त मुन्दरदास—इत्यनिमित्त प्रति ।

संस्थाचार्य कर आचार्य दर्शन—यमानम् विवारी ।

विश्वविद्यालय—विश्वविद्यालय, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ ।

श्री मक्ति सागर प्रवचन—दान वरदाइव, नवल किशोर प्रेस ।

हिन्दी साहित्य में निर्गुण उद्यम—डा० बहध्वारा ।



मूल गोधरुं खरित ।

मन्त्रकाकीन भाखीव संस्कृति—गोरीरंकर हीरपन्द आम्भ ।

मल्लुकराठ की बानी—बेलबेडियर प्रेस, प्रयाग ।

यारी साहब की खनाबली—बेलबेडियर प्रेस ।

योगप्रसाह—पीलाम्बर दल बङ्गाल, सं २००३ ।

रामलन्ध सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उल्लेख प्रसाह—अप्रचलित बीरिङ् ।

रैदासकी की बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

रविवर की स्वयंसी—

राजपूताने का इतिहास—मद्रासहोसप्रदाय गोरीरंकर हीरपन्द आम्भ ।

वैदिक साहित्य परिशीलन—रबनीकंत ।

बन्ना की की बानी—मंगलदास ।

बिद्यापति ठाकुर—डा० उमेश मिश्र ।

संत सुभाषार—वियोगी हरि ।

संत बानी संग्रह—बेलबेडियर प्रेस ।

सिद्ध साहित्य—डा० बर्मबीर माळी, १९५५ ।

सन्त बबीर—डा० रामकुमार वर्मा, १९५१ ।

सन्त हरिपा एक अमुरीकन—डा० फर्नेन्ड ब्रसचारी ।

सहजाबाई की बानी—बेलबेडियर प्रेस ।

मुन्दर बिलाठ—बेलबेडियर प्रेस ।

सायना माला—गणपतबाइ ओरिव्ण्डस सिरीङ्, नं० ५२ ५६ ।

मुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकी मारापण्य वीरिङ्ग ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास—बन्देयाकान्त पोरार, सन्तम पुंडरीचमुल ।

सन्त सुभाषार—वियोगी हरि, १९५३ ।

सन्त दर्शन—डा० वीरिङ्ग, १९५३ ।

सन्त आम्भ—परशुराम बभुर्वेदी, इलाहाबाद ।

मुन्दर प्रयागकी—हरि मारापण्य वर्मा, राबराधान रिबर्न सोसाइटी, कलकत्ता, सं १९९३ ।

सन्त बिपाठ—इस्तजिलिख प्रति ।

सन्त मुन्दरदास—इस्तजिलिख प्रति ।

संख्याचार्य का आचार दर्शन—खानानन्द निवापी ।

सिबतिह सरोव—सिबतिह सेंगर मबल बिद्यार प्रेस, लणनठ ।

श्री मक्ति सागर अम्भ—डान स्वरादव, मबल बिद्यार प्रेस ।

हिन्दी साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० बङ्गाल ।

- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, १९४८ ।  
हिन्दी साहित्य की मूलिका—डा० इनायतुल्लाह दिबेदी ।  
हिन्दुत्वान की पुरानी सम्प्रदाय—डा० बेनीप्रसाद इलाहाबाद, १९३१ ।  
हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डा० मगीरथ मिश्र ।  
हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।  
योग सम्प्रदायाभिप्रेक्ति—बोगी “बन्धु” नाथ, १९२४ ।  
योग प्रवाह—डा० मङ्गलाल ।  
संस्कृति संगम—आचार्य द्विवेदि मोहन चैन, १९५१ ।  
मध्यकालीन धर्म साधना ।  
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय ।

## कुछ अन्य भाषाओं के ग्रन्थ

- सबकीसल फुल्ल—फारसी ।  
समीन अल्लुल अलफिया—फारसी ।  
सुलाता उत्तराधिकारी ।  
इस्तिकार ए ला लिगायतूर पैदुरै ए पैदुस्तानी, गाथा ६ वाली—फारसी ।  
लबायत उल मुतह ।  
तारीख इलाहो—फारसी ।  
दास मस—अफ़िजा ।  
धम्म पद—पाली ।  
कुचन शरीफ—अरबी ।  
गुद ग्रंथ साहब—गुस्तुली ।  
नाथ सम्प्रदाय इतिहास, दरशन और साधन प्रस्ताली—अरबी मलिक ।  
मगिभन निदाय—२ खंड, पामी देसर सोसायटी, लन्दन, १९८८ ।  
दोप निदाय -- दो खंड, पामी देसर सोसायटी, लन्दन, १९८०, १९०३ ।

## पत्र पत्रिकाएँ

इंडियन एंटीक्वरी—बम्बई अक्टोबर १९२०

बर्नस आण दि बाम्बे प्रांथ अण दि रायल एशियाटिक सोसायटी—बंबई

बर्नस आण दि रायल एशियाटिक सोसायटी—लंदन । १९१८—१९२०—१९२२

बर्नस आण दि एशियाटिक सोसायटी आण बंगल—कलकत्ता

बर्नस आण दि बिहार एंड ओरीसा रिसेर्च सोसायटी—पटना—१९२८—१९४१

गनेट्रियरल—बमारस, आसमगढ़, बाम्बे इत्यादि

बर्नस आण दि अमेरिकन ओरिएण्टल सोसायटी मा० ४४

बर्नस आण दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स—कलकत्ता

बर्नस आण दि ब्रिग डिपार्टमेंट सोसायटी बा १ न० ४ मार्च १९४०

गंगापुरावांच—१९२०

मागरी प्रचारिणी पत्रिका—अयो—मा० ११ अं० ४ अं० ८० मा० १६ अं० २ अं० १

विश्वमासिकी पत्रिका—शान्तिनिचेयन लंड ६ माग ५ अं० २००४

ब्रह्मबाब के वेदान्तार्क, योगार्क, साधनार्क, शक्तिर्क अर्क

इंडियन हिस्टोरिकल कुवार्टरली—माग १५ अं० १९३९

मॉडर्न रिप्यू अगस्त अं० १९३४

हिंदुस्तानी—माग १ अं० ४, १९६१

इम्पीरियल एनेट्रियर आण इंडिया माग २, १९०९

सेंटर रिपोर्ट रात्रपूतना १९०२ मारबाब १८९१

